क बगलेके सामने) आजमगढ़
र्यालय, ५८१ निवास

वर्ष ६० (पू० सं० १९४७८) १६ फरवरी, १९८० ई०

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

रकारी सेवाओंमें आरक्षण समाप्त

जन अधिकारियोंके बच्चोंको ग कालेजोंमें अब आरक्षण नहीं

डलकी बैठकके बाद ारसीदासकी घोषणा

र असन्तोष व्यक्त किया सरकारी सेवाओंमें जब एवं पिछड़े वर्गके लोगोंको प्राप्त है तो पदोन्नतिमें दुबारा क्यों आरक्षण दिया मुख्य मंत्रीने कहा कि भी इसी आधारपर समाप्त किया है ।

ने बताया कि इन दोनों धिकारियोंकी सन्तानोंके क पदोंपर प्रत्यक्ष भरती

व्यवस्था थी । मेडिकल और इंजीनियरिंग संस्थानोंमें इन वर्गोंके लोगों न्यूनतम योग्यता अंकमें भी अब वृद्धिकर दी गयी है ।

श्री बनारसीदासने बताया कि पिछले वर्ष प्रयाग उच्च न्यायालय ने सरकारी सेवाओंमें पदोन्नति सम्बन्धी आरक्षणको अवैध कर दिया था और इसके बाद सरकारने सर्वोच्च न्यायालयमें [illegible] अभी विचा[illegible] प्रसिद्ध अभिनेत्री

दलबदलके

बड़ी

सपर फिल्में बिकती थीं। बच्चा
या जवान, उसे देखकर सबके
लकी धड़कन बढ़ जाती थी।
शेषकर युवक-युवतियोंमें उसकी

'फिल्मफेयर कान्टेस्ट' में चुनावके
बाद जी० पी० सिप्पीकी फिल्म
[illegible] में [illegible] खन्नाके रूपमें चर्चित हुआ। अस-

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधी दुनिया

बेकार वस्तुओंसे खि

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

चर्चा ज्यादा गरम रहा करती थी
[illegible]

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्व-सभ्यता
का
संक्षिप्त इतिहास

[प्रारम्भिक युग से आधुनिक काल तक]

लेखक

डॉ० बिन्देश्वरी प्रसाद सिंह,

एम० ए० (पटना), पी-एच० डी० (लन्दन)

अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति-विभाग,

पटना विश्वविद्यालय, पटना

प्रकाशक

मोतीलाल बनारसीदास

पुस्तक-प्रकाशक तथा विक्रेता

बाँकीपुर, पटना—४

१९५८] CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. [मूल्य ११ रुपये

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशक
मोतीलाल बनारसीदास
बाँकीपुर : पटना

मुद्रक :
पटना वीक्ली नोट्स प्रेस
मछुआटोली, पटना—४

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

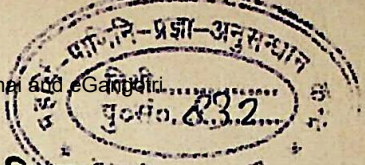

द्वितीय संस्करण की भूमिका

'विश्व-सभ्यता का संक्षिप्त इतिहास' का पूर्णरूपेण संशोधन किया गया है और पटना तथा बिहार दोनों विश्वविद्यालयों के नये पाठ्यक्रमों के अनुसार दो नये विषय—भारत का सांस्कृतिक और औपनिवेशिक प्रसार और इंगलैंड में प्रजातन्त्र का विकास और कैबिनेट का उदय और विकास—जोड़े गये हैं।

पूरी पुस्तक को नया रूप देने की कोशिश की गई है, और एक ही ग्रन्थ में पूरा विषय, न कि अलग-अलग भाग में, रखा गया है।

अन्त में हम पाठकों के प्रति कृतज्ञ हैं, जिनके सहयोग से ही द्वितीय संस्करण प्रकाशित करने की आवश्यकता हुई। विद्यार्थियों का इससे फायदा हुआ है, यह विश्वास ही लेखक के लिए अत्यन्त उत्साहवर्द्धक है। मोतीलाल बनारसीदास की पटना शाखा के मैनेजर श्री दीवानचन्द जैन को क्या धन्यवाद दूँ? यह पुस्तक और इसका यह नया संस्करण उनके प्रोत्साहन और अथक परिश्रम और गहरी दिलचस्पी का परिणाम है। वे असीम धन्यवाद के पात्र हैं।

पटना, सितम्बर १,१९५८

बिन्देश्वरी प्रसाद सिन्हा

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तावना

विश्व-इतिहास के अध्ययन की आवश्यकता निर्विवाद है। विज्ञान ने दुनिया को बहुत छोटा बना दिया है। आवागमन के साधन सहज और अत्यन्त तेज हो गये हैं। दुनिया के किसी कोने की आवाज हम घर बैठे तत्काल सुन सकते हैं। हमारा जीवन—भोजन, वस्त्र, राजनीतिक परिस्थिति, साहित्य और कला—विश्व-घटनाओं और विचारों से अत्यन्त प्रभावित है। हम चाहते हुए भी अलग नहीं रह सकते। इसलिए, आज राष्ट्रीय या क्षेत्रीय इतिहास का ही नहीं, वरन् विश्व-इतिहास का ज्ञान जरूरी है। राष्ट्रीय हित के लिए भी विश्व-इतिहास का अध्ययन लाभदायक है। प्रतिद्वन्द्वी राष्ट्रीयवाद के ही परिणाम-स्वरूप विश्वयुद्ध हुए हैं। आज हमें राष्ट्रीय नागरिक ही नहीं, वरन् विश्व-नागरिक बनना है। हमें अपने देश और विश्व के कल्याण में विरोध नहीं, वरन् सामञ्जस्य देखना है और अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों की सफलता के लिए प्रयास करना है तथा राष्ट्रीयता का अन्तर्राष्ट्रीयता से गठबन्धन कराना है। इसलिए किसी भी देश के वर्तमान और भावी नागरिक के लिए यह जरूरी है कि वह अन्य देशों के इतिहास का अध्ययन करे, अन्य जातियों के भाव और विचार, कला और साहित्य का उचित आदर और मूल्यांकन करे। पहले सांस्कृतिक मंच पर ही विश्व-बन्धुत्व के सिद्धान्त को सफलता मिलेगी। भारत को तो खासकर इस महान् आदर्श की विजय के लिए जिम्मेवारी है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' ही हमारा आदर्श है।

वर्तमान विश्व को समझने के लिए तथा अन्तर्राष्ट्रीय गुत्थियों को सुलझाने के लिए और विश्व की भिन्न-भिन्न सभ्यताओं का उचित आदर

CC-0 In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने के लिए हमें संस्कृतियों के इतिहास का ज्ञान होना जरूरी है। वर्तमान भूत की नींव पर खड़ा है और भविष्य वर्तमान के गर्भ में छिपा है। इसलिए वर्तमान को समझने के लिए प्रागैतिहासिक काल से लेकर आधुनिक युग तक की विश्व-सभ्यताओं के इतिहास की प्रमुख धाराओं का ज्ञान जरूरी है। हमें लड़ाइयों के इतिहास पर जोर नहीं देना है। विश्व-बन्धुत्व के आदर्श को सत्तारूढ़ करने के लिए विश्व-संस्कृति के भण्डार में सभी देशों या क्षेत्रों ने आदिकाल से क्या-क्या रत्न भरे हैं, इनका अनुमान लगाना है। यह ज्ञान कि हमारी आधुनिक सभ्यता भिन्न-भिन्न सांस्कृतिक परम्पराओं से धनी बनी है, हमें संकुचित विचारों से मुक्ति देगा और संसार एक है इस विश्वास को दृढ़ करेगा।

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखकर 'विश्व-सभ्यता का संक्षिप्त इतिहास' पाठकों के हाथ में देते हुए मुझे बड़ा सन्तोष हो रहा है। पुस्तक में राजनीतिक पृष्ठभूमि पर ही सांस्कृतिक रूपरेखा का वर्णन किया गया है। बिना राजनीतिक और तारीखवार इतिहास का ज्ञान हुए संस्कृति के विकास को समझना असम्भव है। राजनीतिक अवस्था का संस्कृति के विकास पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। लड़ाइयों या राजवंशावलियों के विवरण को ही इतिहास मान लेना बहुत बड़ा भ्रम है। इतिहास राजाओं का इतिहास नहीं, वरन् जाति का इतिहास, उसकी सभ्यता का इतिहास है। इसलिए इस पुस्तक में भिन्न-भिन्न देशों की सभ्यताओं की विशेषताओं पर अधिक ध्यान दिया गया है और राजवंशावलियों का ब्योरा या लड़ाइयों का विवरण या महापुरुषों की जीवनी को गौण स्थान दिया गया है। सामाजिक और सांस्कृतिक धाराएँ, जिनसे इतिहास युगों से प्रभावित रहा है, इस पुस्तक की के मुख्य विषय हैं। मैंने सभ्यताओं के पारस्परिक आदान-प्रदान को अधिक महत्त्व दिया है। पुस्तक कैसी है, इसका निर्णय तो पाठक ही कर सकते हैं।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक जनसाधारण और युनिवर्सिटियों के इन्टरमीडियट-छात्रों के लिए उपयोगी होगी, मुझे ऐसी आशा है। चित्रों के लिए मैं आर्केलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, सुपरिन्टेन्डेन्ट, आर्केलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, सेन्ट्रल सर्किल, पटना म्यूजियम के क्यूरेटर और अधिकारियों का ऋणी हूँ। इण्डियन म्यूजियम (कलकत्ता) के भी कुछ चित्र हैं, जिनके लिए मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। रेखाचित्रों के लिए मैं श्री श्यामलानन्द का आभारी हूँ।

पुस्तक में प्रूफ की कुछ अशुद्धियाँ रह गई हैं। इनके लिए मैं क्षमा-प्रार्थी हूँ। पाठकों की सलाह के लिए मैं बराबर इच्छुक और अनुगृहीत रहूँगा।

पटना युनिवर्सिटी, पटना
ता० १०-२-५२

बिन्देश्वरी प्रसाद सिंह

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

प्रथम भाग

पहला अध्याय : सभ्यता की उत्पत्ति .... १—९

हिमयुग और मनुष्य—मनुष्य के साधन—समाज और सभ्यता —सामाजिक परम्परा का हस्तान्तर—भाषा और सभ्यता।

दूसरा अध्याय : प्रस्तर-युग ... १०—१९

प्राचीन प्रस्तर-युग—नवप्रस्तर-युग—नवप्रस्तर-युग की देन।

तीसरा अध्याय : मिस्र की प्राचीन सभ्यता .... २०—४२

मिस्र और नील नदी— संक्षिप्त इतिहास—मिस्र की सभ्यता का मूल्यांकन—लिपि-धर्म, देवी-देवता, अमरत्व में विश्वास, कला – भवन-निर्माण-कला—शिल्पकला—विज्ञान—सभ्यता की अवनति और इसके कारण।

चौथा अध्याय : नागरिक सभ्यता का विकास ... ४३—५२

कारण—मूलतत्व।

पाँचवाँ अध्याय : मेसोपोटामिया की सभ्यता .... ५३—८५

प्राचीन सुमेर की सभ्यता—सारगन—हम्मूराबी—समाज, न्याय, आर्थिक दशा—पुजारी वर्ग—धर्म—शिक्षा—विज्ञान—गणित— ज्योतिष—वैद्यकशास्त्र—कला—असीरिया का उदय—असीरिया का साम्राज्य-विस्तार—असीरिया का पतन और उसके कारण— असीरिया की सभ्यता—चाल्डियन-साम्राज्य।

छठा अध्याय : सिन्धुघाटी की सभ्यता ... ८६—१२८

भूगोल व जलवायु—सभ्यता का विस्तार—नगर-योजना और भवन-निर्माण—असाधारण इमारतें—धर्म—सामाजिक और आर्थिक

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन—कृषि—कपास—पशुपालन—धातु के कारीगर—माला का दाना—हाथी-दाँत का काम—कुम्हार व मिट्टी के बर्तन—मनोरंजन—स्त्रियों का स्थान—दासों की अवस्था—व्यापार—कला व विज्ञान—समकालीन सभ्यताओं से सम्बन्ध—सभ्यता का समय—लिपि—हरप्पावासी कौन थे—हरप्पा-सभ्यता का अन्त।

सातवाँ अध्याय : आर्यों का आगमन और उनका विस्तार ... १२६—१५२

आर्य कौन थे ?—आर्यों का मूलस्थान—मूल सभ्यता—उत्तरी ध्रुव—डैन्युब-काँठा—स्कैण्डिनेविया या जर्मनी—दक्षिण रूस—मध्य एशिया—बल्ख—भारतवर्ष—आर्यों का फैलाव, हित्ती और कस्स—मित्तानी—भारत में आर्य—आर्य-अनार्य-संघर्ष—पर्शिया का उदय—आर्यों की विजय के कारण

आठवाँ अध्याय : सामाजिक और धार्मिक सुधार की लहर ... १५६—१८८

(१) जरथुस्त्र और उनके सिद्धान्त—धर्म का रूप—धर्म और समाज।

(२) चीन—कन्फूशियस और उनके सिद्धान्त।

(३) भारतवर्ष—महावीर और जैनधर्म—महावीर के उपदेश—गौतम बुद्ध और बौद्ध धर्म—बुद्ध के उपदेश।

(४) उपसंहार।

नवाँ अध्याय : यूनान की सभ्यता ... १८४—२४३

क्रीट की सभ्यता—धर्म—नगर—निर्माण—कला—आमोद-प्रमोद—व्यापार—सभ्यता का अन्त।

ग्रीकों का आगमन—उपनिवेश-स्थापना—आर्थिक क्रान्ति और सामाजिक विषमता—लोकतन्त्र का विकास—एथेन्स का विधान—यूनान-पर्शिया युद्ध—मारथन की लड़ाई—थर्मोपल्ली का युद्ध—ऐथेन्स का साम्राज्य और लोकतन्त्र का विकास—एथेन्स-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्पार्टा-युद्ध मैसिडोन का उदय और सिकन्दर—सिकन्दर का उदय—पर्शिया से युद्ध—भारत पर चढ़ाई—सिकन्दर की महानता—साम्राज्य का पतन।

यूनानी सभ्यता का रूप—राजशासन—धर्म—भवन-निर्माण और मूर्त्तिकला—चित्रकला—शिक्षा—साहित्य—दर्शन—विज्ञान—विश्व को यूनान की देन।

दसवाँ अध्याय : रोम की सभ्यता .... २४३—३०२

रोम का उदय—रोम और कार्थेज—साम्राज्य-विस्तार—सैनिकवाद—राजतन्त्र की स्थापना—रोम का पतन।

रोम की सभ्यता की विशेषताएँ-शासन—विधान—रोम की साम्राज्यवादी नीति—यूनानी सभ्यता का प्रभाव—वास्तुकला और अन्य कलाएँ—शिक्षा और साहित्य—धर्म-दर्शन—रोम और ईसाई धर्म—विश्व को रोम की देन।

ग्यारहवाँ अध्याय : भारत की प्राचीन सभ्यता ... ३०३—३५६

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि—भारतीय संस्कृति की रूपरेखा—भाषा—साहित्य—शिक्षा और विज्ञान—धर्म—समाज—कला—वास्तुकला—सांस्कृतिक और औपनिवेशिक प्रसार।

दूसरा भाग

पहला अध्याय : इस्लाम का उदय और प्रसार .... १—४६

शासन-व्यवस्था—साहित्य, विज्ञान और दर्शन—कला—सामाजिक और आर्थिक दशा

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा अध्याय : जागीरदारी प्रथा ... ४७—७५

जागीरदारी प्रथा क्या है—उत्पत्ति के कारण—विकास औरइतिहास—संगठन—इससे लाभ और हानि।

तीसरा अध्याय : आधुनिक युग का आगमन ... ७६—१३६

रेनेसां—धर्मसुधार—राष्ट्रराज्य का विकास।

चौथा अध्याय : इंगलैंड में वैध और उत्तरदायी शासन का विकास ... १४०—१८२

विकास के कारण—विकास—महान् चार्टर—एडवर्ड की पार्लियामेंट—ट्यूडर युग—स्टुअर्ट युग का संघर्ष—रक्तहीन क्रान्ति और इसका महत्त्व—ह्विग् और टोरी दल, कैबिनेट का विकास।

पाँचवाँ अध्याय : अमेरिका का स्वातन्त्र्य-संग्राम ... १८३—१९३

कारण—संघर्ष का इतिहास—परिणाम

छठा अध्याय : फ्रांस की राज्यक्रांति ... १९४—२३८

कारण—प्रगति—आंतक का राज्य—नेपोलियन का उत्कर्ष और इसके परिणाम।

सातवाँ अध्याय : औद्योगिक क्रांति ... २३९—३५९

क्रान्ति का महत्त्व—कारण—कृषि में क्रान्ति—क्रान्ति के परिणाम, उत्पादन में वृद्धि—साम्राज्यवाद का प्रसार, पूँजीवादी व्यवस्था का विकास, शहरों का विकास, मजदूरों का असन्तोष और संगठन, सामाजवाद और साम्यवाद।

आठवाँ अध्याय : यूरोप में राष्ट्रीयता का उदय ... २६०—२८५

स्पेनिश उपनिवेश—यूनान—बेल्जियम—संयुक्त इटली—जर्मनी की एकता—बाल्कन राष्ट्रों में जागृति।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवाँ अध्याय : नवीन साम्राज्यवाद और प्रथम विश्वयुद्ध...२८६—३०७

प्रसार के कारण—अफ्रिका का बँटवारा—आस्ट्रेलिया—अमेरिका महादेश—भारत और मध्यपूर्व—दक्षिण-पूर्व एशिया—सुदूरपूर्व चीन और जापान—साम्राज्यवाद के परिणाम, अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिद्वन्द्विता और प्रथम विश्वयुद्ध।

दसवाँ अध्याय : रूस की क्रांति और प्रगति .... ३०६—३५२

क्रान्ति के कारण—प्रथम विश्वयुद्ध और क्रान्ति का आरम्भ—बोल्शेविकों की विजय—युद्धकालीन साम्यवाद—लेनिन का महत्त्व—स्तालिन का शासनकाल—विदेशी नीति।

ग्यारहवाँ अध्याय : एशिया का पुनर्जागरण ...३५३—४५८

विषय-प्रवेश—टर्की का रूपान्तर—अरब का जागरण, फिलस्तीन, ट्रांस-जौर्डन, सीरिया, इराक, ईरान, अरेबिया—भारतवर्ष—सुदूर पूर्व जापान और चीन—दक्षिण-पूर्व एशिया,—बर्मा, मलाया, स्याम, फिलीपीन, इण्डोनेशिया और इण्डोचीन।

बारहवाँ अध्याय : अमेरिका और विश्व-राजनीति ... ४५६—४७०

मुनरो डॉक्टरीन्—पनामा—फिलीपीन—प्रथम विश्वयुद्ध—तटस्थता—द्वितीय विश्वयुद्ध—अटलांटिक चार्टर—रूस से मत-भेद—साम्यवाद-विरोधी नीति।

तेरहवाँ अध्याय : शान्ति की खोज में ...४७२—४८८

काँग्रेस सिस्टम—शक्ति-सन्तुलन का सिद्धान्त—प्रथम विश्वयुद्ध और राष्ट्रसंघ की स्थापना—राष्ट्रसंघ के अंग और इसकी असफलता—असफलता के कारण—द्वितीय विश्वयुद्ध और संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना—इसके अंग—सुरक्षा-परिषद्—महान् राष्ट्रों में फूट—अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएँ—उपसंहार।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौदहवाँ अध्याय: इंगलैंड में प्रजातन्त्र और कैबिनेट-व्यवस्था का विकास ...४८५-५००

रक्तहीन क्रान्ति के बाद—कॉमन्स सभा का अप्रजातान्त्रिक रूप—बड़ा और छोटा पिट और संसदीय सुधार—प्रथम सुधार विधेयक—चर्टिस्ट आन्दोलन—द्वितीय सुधार-विधेयक—तृतीय सुधार-विधेयक—स्त्रियों का आन्दोलन—१९१८ ई० का कानून—१९२१ ई० का कानून।

वाल्पोल और कैबिनेट—छोटा पिट और कैबिनेट—जार्ज—तृतीय की नीति और उसकी असफलता—कैबिनेट और पार्लियामेण्ट और जनता—युद्ध-कैबिनेट।

———

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम अध्याय

सभ्यता की उत्पत्ति

लिखित इतिहास मानव सभ्यता की लम्बी कहानी अधूरी ही छोड़ देता है। यह हमें पाँच हजार वर्ष पीछे तक ही ले जाता है। जब कि मनुष्य इस धरातल पर पाँच लाख वर्ष पहले ही निकल आया था; और तब से बराबर कुछ-न-कुछ करता ही रहा है, और मनुष्य की क्रियात्मक शक्ति ही सभ्यता की जननी है। इसलिए मानव सभ्यता के विकास की रूपरेखा जानने के लिए हमें लिखित इतिहास पर ही निर्भर न कर भूगर्भशास्त्र (Geology) और पुरतत्व विज्ञान (Archaeology) का ही सहारा लेना है। पुराने खंडहरों के नीचे सभ्यता के चिह्न पड़े हैं जिन्हें विशेषज्ञ ढूंढ़ निकालते हैं, और इस तरह सभ्यता की कई भूली हुई कड़ियों का पता चलता है, जिससे हमें विश्व-सभ्यता का विकास व उसकी एकता की झाँकी मिलती है।

हिम-युग और मनुष्य

सभ्यता की उत्पत्ति कब और कैसे हुई यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता। लाखों-करोड़ों वर्ष पहले इस पृथ्वी पर जीव का विकास हुआ होगा, और मनुष्य इस पृथ्वी पर आखिरी जीव है। जीव का क्रमिक विकास ताप (temperature) के भीषण रद्दोबदल से होता आया है। चार हिम-युग (Ice-Ages) गुजरे हैं। हिम-युग के अत्यधिक ठंढ व अनिश्चित जलवायु में कितने प्रकार के जीवों का अन्त हो गया। दो हिम-युगों के मध्यन्तर उष्ण-युग (Sun-Age) होता था, जिसमें जीवों का विकास सम्भव था। इस तरह ठंढ व गर्म ताप-परिमाण के बीच में जीवों का विकास होता गया। मनुष्य का विकास अन्तिम हिमयुग (Cenozoic)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेनोजोइक के अन्तिमकाल प्लाइसटोसिन (Pleistocene) समय में हुआ। यह समय आज से करीब पांच लाख वर्ष पहले होगा। हिमयुग व उष्णयुग के क्रमानुसार आना-जाना जब कि कितने जीवों के लिए विनाश-कारी हुआ, मनुष्य ने अपनी स्थिति बनाई रक्खी, वरन् वह और भी उन्नति करता रहा।

विपरीत वातावरण व जलवायु से संघर्ष कर अपने को जीवित रखना व प्रतिकूल परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करने की स्वाभाविक तमन्ना ही मानव-सभ्यता की कूंजी है। जब शिकार की कमी हो गई, मनुष्य फल खाने लगा, और जब फल भी इकट्ठे करने में दिक्कत हुई तो वह अन्न उपजाने लगा। जब उसके देश में जलवायु का परिवर्तन हुआ, अधिक ठंढ या गर्मी पड़ने लगी, तो वहाँ से उसका नाश नहीं हुआ, वह अपने को ढ़ंकने की कोशिश में लगा और अन्त में सफल हुआ। पशु-पौधे प्राकृतिक वातावरण के गुलाम हैं, और जब उनके क्षेत्र में ताप-क्रम का भीषण रद्दोबदल होता है तो वहाँ से उनका लोप ही हो जाता है। जीवशास्त्र के विद्वान् हमें बताते हैं कि इस पृथ्वी पर कितने प्रकार के पशु-पौधे पैदा हुए थे, पर उनका आज नामोनिशान नहीं है, जब कि मनुष्य आज उत्तरी व दक्षिणी ध्रुव पर जाकर झंडा गाड़ने की हिम्मत रखता है। अतः प्रतिकूल परिस्थितियों से संघर्ष कर, अपने को उसी सांचे में ढाल कर प्रकृति से सामञ्जस्य कर ही मनुष्य सभ्यता की सीढ़ियों पर लगातार आगे बढ़ रहा है। संघर्ष और सहयोग ये दो विरोधी प्रवृत्तियाँ ही सभ्यता की आधार रहीं हैं। अधिक गर्मी पड़नेपर ठंढे कमरे को ठंढा बनाकर रहना प्रकृति से संघर्ष करना हैं, पर कपड़े उतार कर गर्मी की उष्णता को झेलना प्रकृति से समझौता करना ही समझा जायगा। इस प्रकार ये दोनों प्रवृत्तियाँ ही मानव-जीवन में साथ-साथ पाई जाती हैं, और हमें सभ्यता की ओर अग्रसर करती रही हैं। प्रकृति पर विजय, और प्रकृति से सामञ्जस्य करते रहना ही मनुष्य का इतिहास है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य के साधन (Equipment)

अपने हथियारों में सुधार लाकर ही मनुष्य अपने को जीवित रख सका है, और अपनी संख्या बढ़ाते रहा है। इनके जरिये ही वह बाहरी दुनियाँ के खतरों से अपने को बचाता है, या प्रकृति के भंडार से अपनी कमी की पूर्ति करता है। अपने इन हथियारों (equipments) से ही वह प्रकृति से संघर्ष और सहयोग करता रहा है। प्रत्येक जीव को जीविकोपार्जन के लिए, अपनी रक्षा करने के लिए साधन प्राप्त हैं। पर मनुष्य और पशुओं के प्रसाधन में बहुत अन्तर है। पशु के हथियार उसके शरीर के अंग हैं, जिसे वह शरीर के साथ ही ढोता है, जैसे सिंह अपना पञ्जा, खरहे व भालू अपने घने बाल। पर मनुष्य के साधन उसके शरीर के अंग नहीं हैं। उसे तो बाहरी हथियारों (tools) पर ही निर्भर करना है। पशु और मनुष्यों के इस बड़े अन्तर की तह में ही सभ्यता की उत्पत्ति समझी जा सकती है। अपने साधनों को शरीर के साथ ही बराबर ढोते रहने के कारण पशु सर्वदा आक्रमण करने के लिए व प्रत्याक्रमण रोकने के लिए तैयार रहता है, पर उसकी सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि वह परिस्थितियों के अनुसार अपने हथियार को न बदल सकता है, और न उनमें कोई बड़ा सुधार ला सकता है। इसलिए हाथी, सिंह से बराबर कमजोर ही रहेगा, चूहे बिल्ली का सामना कभी नहीं कर सकेंगे। ठंढे देश में रहनेवाले घने केशवाले खरहे गर्म देश में जीवित नहीं रह सकते, क्योंकि वे अपने साधन को परिस्थिति के अनुकूल न बदल सकते हैं, न छोड़ सकते हैं। ऐसा सम्भव है कि आरम्भ में मनुष्य के भी खतरनाक नाखून व जहरीले दाँत रहे हों। पर जब कि अन्य पशुओं के साधन आरम्भ से आजतक एक-से ही रह गये हैं, मनुष्य अपने उन न्यून शारीरिक हथियारों को भी छोड़ता रहा है, और उसके स्थान पर वह नये-नये हथियार बनाते रहा है। ये हथियार उसके शरीर के अंग नहीं हैं, इसलिए वह उसका जब चाहे प्रयोग करता है, जब चाहे

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़ देता है, या नया बना लेता है। पशु और मनुष्य में यह भेद बड़ा ही महत्वपूर्ण है।

औजार बनाने की प्रतिभा ही मनुष्य को सभ्यता का दूत बना सकी है। और सभ्यता का इतिहास मानव के बनाए यन्त्रों व हथियारों की कहानी है। औजार, हथियार व यन्त्र बनाने की यह आदत मनुष्य के जीवन पर आरम्भ से ही गहरा प्रभाव डालती आई है। हमारे बाप-दादा के समय में रेडियो नहीं था। हवाई जहाज व तार-बिजली का पता इनके पूर्वजों को भी नहीं था। लम्बी यात्रा वे घोड़ेगाड़ी पर ही करते थे। पर जैसे-जैसे इन चीजों का आविष्कार होता गया, मनुष्य के जीवन में इनका प्रवेश हो गया, और हमारे जीवन पर इन अनुसन्धानों का गहरा असर पड़ा है। पर प्रत्येक नये आविष्कार पहले के आविष्कार से ही सम्भव हो सका है। बहुत पहले कोई भी घोड़ा-गाड़ी व बैल-गाड़ी नहीं ही बना सकता था क्योंकि चक्का (wheel) का आविष्कार नहीं हुआ था। इसलिए आज के हवाई जहाज को भी उस मनुष्य का कृतज्ञ होना चाहिये जिसने पहले-पहल चक्केवाली गाड़ी का इजाद किया होगा। इस तरह से आप वर्त्तमान व भूत का गहरा सम्बन्ध अनुभव कर सकते हैं। आज की सभ्यता चंद दिनों की खोज नहीं है, न चंद प्रतिभाशाली व्यक्तियों की ही देन है। वरन् मनुष्य जाति का पूरा इतिहास जाने बिना हम अपनी सभ्यता का मूल्यांकण नहीं कर सकते। मनुष्य का पहला आविष्कार और आज का अणुबम (Atom-Bomb) एक तार ही में गुथे हैं। अपनी जीविका के लिए व सुरक्षा के लिए मनुष्य को हथियार व औजार बनाना ही पड़ा है। उसे अपने औजारों का प्रयोग करना भी सीखना पड़ा है। अन्य जीव इस प्रकार की जिम्मेवारी से मुक्त हैं। मुर्गी का चेगना को जन्म लेते ही अपने पंख, चोच, रोएं व पञ्जा का पता चल जाता है। माँ को इनका प्रयोग करते देख चेंगना भी इनका व्यवहार शीघ्र ही जान लेता है। फिर इन्हीं

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधनों से वह अपनी जीविका चला लेता है। पर मानव शिशु पैदा लेने पर अपने को एकदम असहाय पाता है। वह हथियारों के साथ पैदा नहीं लेता है, और न उम्र के बढ़ने के साथ उसके शरीर पर हथियार व औजार उग आते हैं। जब मनुष्य पैदा लेता है तो उसके पास नंगा शरीर व खाली हाथ छोड़ कर कुछ नहीं होता। जंगली जानवरों के बीच प्राकृतिक विपदाओं से घिरा रह कर मनुष्य आज सभ्यता की जिस ऊँचाई पर पहुँच सका है यह विश्व के इतिहास की सबसे बड़ी आश्चर्यजनक और उत्साहवर्धक घटना है।

समाज और सभ्यता

इसका रहस्य है मनुष्य को हथियार बनाने की योग्यता और विषम परिस्थितियों से संघर्ष व सहयोग करने की क्षमता। पर इतना ही सभ्यता के क्रमिक विकास के लिए प्रर्याप्त नहीं है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, और जब से वह इस पृथ्वी पर पैदा हुआ है बराबर समाज में ही रहा है। समाज और मनुष्य की उत्पत्ति साथ-साथ ही हुई है। प्रत्येक मनुष्य की क्रिया व प्रतिक्रिया की छाप दूसरे मनुष्यों पर पड़ती है, और वह जो कुछ भी करता है उसमें सामाजिक दृष्टिकोण अवश्य रहता है। मनुष्य का वैयक्तिक स्वार्थ और समाज के हित में घनिष्ट सम्बन्ध है। प्रत्येक मनुष्य का व्यवहार व मनुष्य का पारस्परिक वर्ताव समाज के नियम से अलग नहीं होता है। मनुष्य जो कुछ भी करता है, जो नई चीज इजाद करता है, नया विचार प्रकट करता है, ये सब की यथार्थता तभी होती है जब समाज या समाज का कोई विशिष्ट भाग उसे अपनाता है। व्यक्ति और समाज का एक दूसरे पर इस तरह निर्भर करना सभ्यता के विकास के लिए जरूरी है। मनुष्य का सामाजिक-प्राणी होने का एक और लाभ है—सभ्यता की प्रगति बराबर होती रही है, प्रस्तरयुग (Stone Age) से आज तक। प्रत्येक युग बीते हुए युगों के अनुभव व वृद्धि का उत्तरा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धिकारी होता है। बीसवीं सदी में कई खोज व आविष्कार हुए हैं, जैसे टेलिविजन, अणु-शक्ति इत्यादि। पर बीसवीं सदी को गुजरे हुए युगों की संचित बुद्धि व अनुभव का खजाना भी मिला है। लाखों वर्ष पहले अग्नि की खोज की गई होगी, हजारों वर्ष पहले चक्केवाली गाड़ी पहले बनाई गई होगी, पर आने वाली पीढ़ियों को इस अनुभव व खोज की दोहराने की आवश्यकता नहीं हुई। समाज ने अर्जित अनुभव व ज्ञान को सुरक्षित रख कर हमारे लिए प्रगति की राह खुली-छोड़ दिया है। इसीलिए सभ्यता प्रगतिशील है। हम हमेशा आगे बढ़ रहे हैं, अपने पूर्वजों के ज्ञान की पूंजी के बल पर। इसका रहस्य है मनुष्य का सामाजिक प्राणी होना। प्रत्येक युग के समाज का दो कर्त्तव्य है—भूतकालीन ज्ञान व अनुभव को अपने सदस्यों को, मनुष्यों को सौंपना और परिस्थिति के अनुकूल नये सामाजिक विचारों व समस्यायों को सुलझाने में सभ्यता को आगे बढ़ाना। जब कोई समाज प्रगतिशील नहीं रहता है, उसका अन्त हो जाता है। प्रगति ही जीवन है, और विश्व की सभ्यताओं का इतिहास इसकी पुष्टी करता है। असीरिया, कारथेज का नामोनिशान मिट गया। उनकी सभ्यता प्रगतिशील न रह कर कुंठित हो गई थी जीवित रहने का ध्येय ही मिट चुका था।

सामाजिक परम्परा का हस्तान्तर—उदाहरण व उपदेश

अतः मनुष्य सामाजिक परम्परा (Social tradition) का उत्तराधिकारी है। प्रश्न यह है कि, वह किस प्रकार सामाजिक परम्परा को अपनाता है। बचपन से ही उसके माता-पिता उसे उन साधनों का प्रयोग बताते हैं जो कि कई पीढ़ियों से पूर्वजों के अनुभव व ज्ञान से निश्चित हो गये हैं। पशु-जगत में अर्जित अनुभव को नवजात पशु को उसकी माता उदाहरण के द्वारा सिखलाती है; जैसे दाना चुग कर दाना, चुगना सिखाना; शिकार कर, शिकार करना सिखाना; पंखें फड़फड़ाकर उड़ना सिखाना। मनुष्य भी अपने नवजात बच्चे को उदाहरण के द्वारा, नकल करना सिखाता

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। पर यदि मानवशिशु सब कुछ नकल करके ही सीख सकता तो सभ्यता की प्रगति बड़ी धीमी होती, और शायद परिस्थितियों के तेज रद्दोबदल से होड़ न कर सकने के कारण मानवसमूह का नाश ही हो जाता। मनुष्यके बच्चे को इतनी सारी चीजें सीखलेनी है, जानना है, सामाजिक-परम्पराओं को समझकर अपनाना है कि नकल कर वह उन्हें नहीं जान सकता है ; और फिर कई चीजों को तो वास्तविक उदाहरण देकर समझाना मौत का बुलावा देना है। जैसे बच्चों को साँप से डरना, साँप पकड़ कर और उससे अपने को कटाकर बताना मौत से खेलना है, और इस तरह या तो बच्चा कई अनुभवों से अज्ञात ही रहेगा, या सभ्यता की प्रगति कुंठित हो जायगी। इसलिए बच्चों का सामाजिक-परम्परा से अवगत कराने, व उनका उत्तराधिकारी बनाने के लिए नकल कर सीखने के अलावे उपदेश देकर भी ज्ञानबोध कराया जाता है। और इस तरह मस्तिष्क का विकास होता है जो उपदेश ग्रहण करने की क्षमता रखता है।

मस्तिष्क (Brain)

मनुष्य का मस्तिष्क (Brain) सभ्यता का एक विशेष अंग है। (organ of civilisation)। मस्तिष्क का मनोवैज्ञानिक कार्य मनुष्य में वे विशेषताएँ लाती हैं जो कि और जानवरों की दुनियाँ में नहीं पाई जातीं। मनुष्य अपने मस्तिष्क में ऐसे विचारों, स्वप्नों व प्रतिमाओं की सृष्टि करता है जिसे शायद उसने पहले वास्तविक जगत में कभी न देखा हो। और उन ख्यालों व प्रतिभाओं को साकार करने को कटिबद्ध होकर वह ध्यान से उपाय सोचता है, और कार्यरूप में परिणत करने में लग जाता है। और इस प्रकार वह कभी आनेवाली परिस्थितियों का भी अनुभव कर लेता है, और उससे निबटने के लिए साधनों का जुगाड़ या आविष्कार भी करने लगता है। जब हवाई जहाज से बम गिराना मनुष्य ने जान लिया, तो वास्तविक बम गिराने के पहले ही वह इस उधेड़बुन में रहा कि हवाई हमले

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से रक्षा किस प्रकार की जा सकेगी। आज अणुबम बनाए जा रहे हैं पर साथ-साथ उसके बचने के उपाय पर भी अनुसन्धान हो रहा है। भविष्य सोचने की यह शक्ति सभ्यता की प्रगति को तेज रखती आ रही है। मनुष्य का यह व्यवहार अभिप्रायपूर्ण है (Purposeful behaviour) अर्थात मनुष्य अपने कार्यों को अपने अभिप्राय से सम्बन्ध कराता है और इस प्रकार मनुष्य के वर्त्तमान कर्म गुजरे हुए कार्य और होनेवाले कर्म से घनिष्ट सम्बन्ध रखते हैं। उदाहरण के लिए सबसे प्राचीन औजार व हथियार को लें। झगड़े की सरगर्मी में किसी ने समीप के झाड़ी से एक टहनी खींच कर अपने विपक्षी पर आक्रमण किया होगा। पर जब पहले-पहल एक खास वजन, आकार का हथियार बनाया गया होगा तब काफी सोच कर और विशेष अभिप्राय से ही मनुष्य ने इसका इज़ाद किया होगा। इस तरह झोंक में लकड़ी की टहनी खींच कर आक्रमण करना और मुट्ठीदार छड़ी को आक्रमण करने के इरादे से बनाने के मध्य में मनुष्य के मस्तिष्क ने काफी हिस्सा लिया होगा। अतः मस्तिष्क और सभ्यता का विकास का अटूट सम्बन्ध है।

भाषा और सभ्यता

हम ऊपर कह आए हैं कि मानव-शिशु सामाजिक परम्परा को उदाहरण व उपदेश के द्वारा ग्रहण करता है। उपदेश के लिए भाषा की आवश्यकता पड़ी, और भाषा सभ्यता की वाहन है। मानव-समाज ने अपने सदस्यों के पारस्परिक व्यवहार के लिए जो यन्त्र निकाला उसे ही भाषा कहा जा सकता है। मनुष्य अन्य पशुओं के समान कई तरह की आवाज गले से निकाल सकता है; पशुओं की आवाज का कुछ विशेष अर्थ नहीं होता है। डर कर, या भोजन के लिए अधीर होकर जानवर हल्ला करते हैं, पर इससे अधिक उनकी आवाजों का अर्थ नहीं निकाला जा सकता। पर मनुष्य सामाजिक प्राणी है, उसे बराबर समाज में रहना है, और फिर उसे बढ़ता हुआ दिमाग

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी है, इस कारण उसकी प्रत्येक आवाज का एक विशेष अर्थ समाज में मान लिया जाता है, इस तरह आवाज शब्द बन जाती है, जिसे सुनकर या तो कुछ चीजों का बोध होता है, या किसी खास काम करने का लक्षण समझा जाता है। इस तरह ये निरर्थक आवाज अर्थपूर्ण हो जाती है, और यहीं से भाषा की उत्पत्ति होती है। क्योंकि शब्दों का अर्थ वही है जो किसी विशेष समाज में मान लिया गया है, इसलिए बच्चों को बोलना सिखाना पड़ता है, और भिन्न-भिन्न समाजों की भिन्न-भिन्न भाषा होती है।

भाषा सामाजिक परम्परा की गति को बदल देती है। उदाहरण के द्वारा अपने साथियों की नकल कर आप उपस्थित समस्या से निबटना सीख सकते हैं, पर भाषा के माध्यम से जो आपत्ति आनेवाली है उसका सामना करना भी सीखा जा सकता है। इस प्रकार भाषा सभ्यता के विकास में पूरा हाथ बंटाती है, और सामाजिक मौरूसी (Social heritage) को हस्तान्तरित करने में सहायक होती है। मनुष्य के सैकड़ों-हजारों वर्षों के अनुभव भाषा के माध्यम से एकत्रित किया जाता है।

प्रत्येक मानव-समूह की अपनी भाषा होती है—मनुष्य के गले से निकले शब्दों का प्रत्येक समाज विशेष अर्थ मान लेता है। इस प्रकार भाषा एक खास मानव-समूह के व्यक्तियों को एक दूसरे से बहुत घनिष्ट सम्बन्ध पैदा कर देती है, और कई भिन्न-भिन्न संस्कृतियों (cultures) का वाहन बन जाती है। संस्कृतियों का इतिहास, उनकी परम्परा हम उनकी भाषाओं से ही अधिक जान सकते हैं, यद्यपि भाषा का ज्ञान न रहने पर भी उनके भग्नावशेष का पता लगाकर भी संस्कृतियों की रूपरेखा की झलक मिल सकती है। देश-देश, समाज-समाज की सभ्यता कालक्रम से भिन्न-भिन्न रही है, पर तब भी प्राचीन व वर्त्तमान संस्कृतियों का इतिहास पढ़ने पर विश्वसभ्यता की एकता, व उसके अमर तत्वों के एकरूप का पता चलता है।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा अध्याय

प्रस्तर-युग

मनुष्य ने अपने शरीर के बाहर के साधनों में सुधार कर सभ्यता का विकास करता आया है। अत्यन्त पहले उसके साधन-हथियार व औजार—पत्थर के थे। अपने रास्ते में जो पत्थर के टुकड़े उसे मिल जाते थे उसे ही वह अपना हथियार बना लेता था। इस तरह आरम्भ से ही वह हथियार बनानेवाला जीव हो गया, और तब से अपने यन्त्रों व अस्त्रों में सुधार कर, या नये-नये आविष्कार कर वह सभ्यता का दूत बनते आया है। इसलिए सभ्यता का प्रथम युग प्रस्तर-युग कहा जाता है। विद्वान इस लम्बे युग को दो भागों में बांटते हैं—प्राचीन प्रस्तर-युग (Palaeolithic Age, Old Stone Age) और नवप्रस्तर-युग (Neolithic Age, New Stone Age).

प्राचीन प्रस्तर युग

इस समय मनुष्य वस्तुतः जंगली जीवन बिताता था। पर प्रकृति ने उसे अन्य पशुओं से अधिक सुविधा दिया था, जिसके आधार पर वह सभ्यता की ओर बढ़ते गया। आगे-पीछे सोचने की शक्ति, यन्त्र गढ़ने की कला, और समाज में रहने का फायदा का ज्ञान मनुष्य को सभ्य बना सका। प्रारम्भ में तो उसे सिर्फ नंगे हाथ-पाँव थे जिससे उसे क्षुधा की तृप्ति करनी थी, अपनी रक्षा करनी थी और अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्त्ति भी करनी थी। ऐसी परिस्थिति में पैदा होकर मनुष्य को सभी कुछ अनुभव व कठिन उद्योग से ही प्राप्त हो सकता था। बहुत अरसे के अनुभव व प्रयोग के बाद ही पत्थरों के टुकड़ों को हथियार व यन्त्र में परिणत किया गया होगा। ऐसी ही विषम परिस्थिति में मनुष्य ने अग्नि की खोज की

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगी और पेकिंग के सबसे प्राचीन मनुष्यों के गुफाओं में मिली हड्डियों से यह पता चलता है कि अग्नि की खोज और उसका व्यवहार मनुष्य ने बहुत पहले ही किया होगा। मनुष्य के पहले औजार भी प्राकृतिक पदार्थों के ही होंगे—लकड़ी व पत्थर के। लकड़ी के हथियारों का नाश हो गया पर पत्थर के औजार तो अभी भी पाए जाते हैं।

प्राचीन प्रस्तर युग बहुत लम्बा युग था और उस समय संसार के कई भागों में व्याप्त था। उत्तर-पश्चिम भारत और दक्षिण भारत के कई स्थानों में प्राचीन प्रस्तर-युग के हथियार पाए गये हैं, जैसे पोत्वार (रावलपिंडी), मध्य भारत के जब्बलपुर जिला में, मद्रास के कूर्नूल क्षेत्र में इत्यादि। अफ्रिका और दक्षिणी इंगलैण्ड में भी इस प्रकार के पत्थरों के औजार मिलते हैं। एक बात ध्यान देने की है—इन दूर-दूर देशों में पाए गये उपकरण (Instrument) एक तरह के हैं। उनमें इतनी समानता है कि कोई यह नहीं कह सकता कि अमुक उपकरण दक्षिणी भारत का है या इंगलैण्ड का। इससे यह सिद्ध होता है कि इस युग की सभ्यता किसी देश-विशेष की सभ्यता नहीं, वरन् विश्व-सभ्यता थी। एक ही सभ्यता उस समय की दुनिया में फैली हुई थी, और इसलिए मनुष्य के प्रारम्भिक काल के इतिहास से ही हमें विश्व की एकता का स्वरूप का पता चलता है, और हमें बराबर संकुचित नहीं वरन् विश्व-दृष्टिकोण रख कर ही सभ्यता के इतिहास का मूल्यांकन करना है, यह सिद्ध हो जाता है।

मूलरूप में प्राचीन प्रस्तर युग की सभ्यता का एक ही रूप था, पर यन्त्र-कला (Technique) के दृष्टिकोण से हम इस सभ्यता में दो प्रकार की संस्कृति पाते हैं। रूखे पत्थरों के औजार दो प्रकार से बनाए जाते थे। पहला तरीका यह था—किसी पत्थरके टुकड़े को लेकर उसे पटक-पटककर तोड़ा गया, और जो शेष बच गया, और सन्तोषजनक हथियार के लायक रह गया, उसे ही हथियार बनाया गया। इस तरह बड़े पत्थर के हृदय-भाग

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही हथियार बना, और ऐसे हथियारों के अन्तर्भागीय हथियार (Core tools) कहते हैं। दूसरा तरीका था, किसी बड़े पत्थर के एक परत (Flake) को निकाल कर उसे ही एक हथियार बना लेना। इसे कहते हैं परत-हथियार (Flake tools)। इस तरह हथियार बनाने के दो भिन्न तरीकों से दो भिन्न संस्कृतियों का जन्म हुआ, और एक यन्त्र-कला एक विशेष भौगोलिक क्षेत्र में पनपी, और दूसरी दूसरे क्षेत्र में। अफ्रिका, पश्चिमी योरप व दक्षिण भारत में अन्तर्भागीय हथियार (Core-tools) का बोलबाला रहा। हिम युग में योरप और उत्तरी यूरेशिया में परत-यन्त्रों का क्षेत्र था।

इस युग में जीविका का प्रधान साधन शिकार था। जानवरों को मार कर उन्हें इकट्ठा किया जाता, और पहले कच्चा माँस ही खाया जाता, और जब अग्नि की खोज हो गई तो उन्हें भून कर खाया जाता। पेड़ के फलों को भी तोड़ कर जमा किया जाता, और परिवार के साथ भोजन होता था। इस समय प्राकृतिक गुफाएँ ही घर का काम देती, या नदी किनारे व वृक्ष की छाया में ही बसर किया जाता। बहुत समय तक लोग नंगे ही रहते थे, पीछे चल कर ठंढ से बचने के लिए शरीर को पत्तों से, वृक्षों की छाल से या मृत पशुओं के चमड़ों से ढँका जाने लगा।

जंगली जानवरों से रक्षा करने के लिए वा भोजन की सामग्री इकट्ठा करने के लिए पत्थरों के औजार काम में लाए जाते थे। शायद पहला हथियार मुट्ठीदार बसूला था, जो कि आठ या दस इन्च लम्बा, ऊपर नुकीला, नीचे चौड़ा था, और इसकी धार इतनी तेज थी कि झाड़ियों को व जड़ों को काट सकती थी ; अभी मुठिया (Handle) लगाने का ज्ञान नहीं था। कुछ दिनों के बाद ये प्राचीन शिकारी अत्यधिक ठंढ का अनुभव करने लगे। जंगल ही उनका घर था, और उसकी हवा में गर्मी की कमी होने लगी। उत्तरी ध्रुव से बर्फ नीचे की ओर बढ़ने लगा, और इस हिम-

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

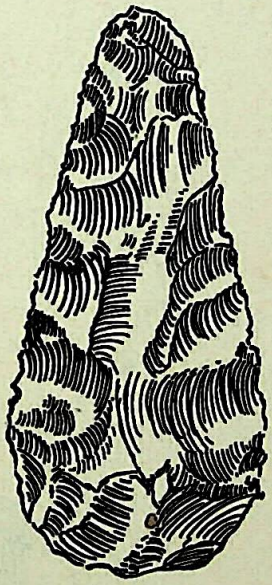

(पृ० ११) पूर्व प्रस्तर युग का बसला

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र २

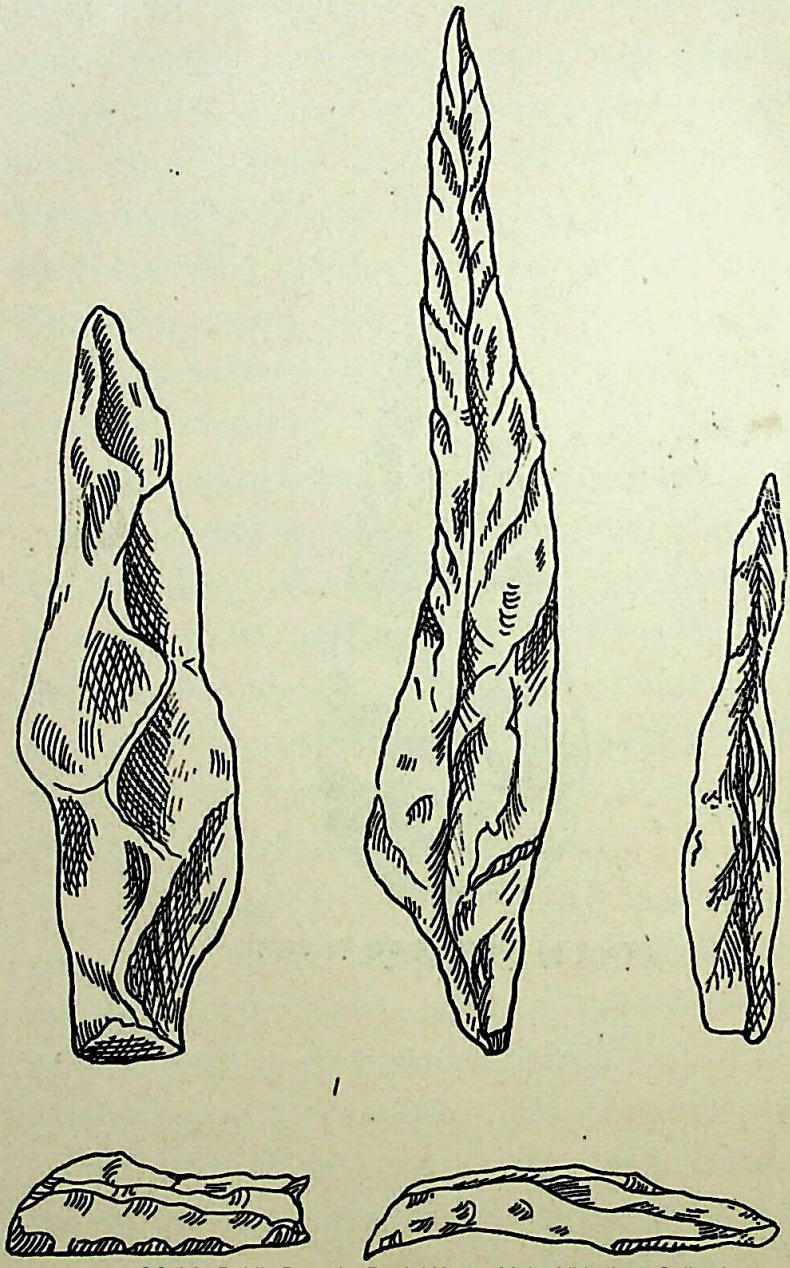

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

पृ० (१३) प्रस्तर युग में हथियार के धार बनाने में प्रगति ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आक्रमण के कारण कई प्रकार के जीव गर्म देश की ओर भाग गये, कई तो नष्ट हो गये। पर मनुष्य को ठंढी ऋतु से अभ्यस्त होना पड़ा।

मनुष्य अभी ठंढ़ से बचने के लिये सुरक्षित स्थान बनाने में असमर्थ था, इसलिए उसने कंकड़ीली चट्टान (Lime stone) की गुफाओं में शरण ली। इन गुफाओं के दरवाजे पर वह पत्थरों के परत के औजार बनाया करता था। पहले तो पत्थर को पटक-पटक कर उसके परतों का अस्त्र बनाया जाता, पर इसमें समय अधिक लगता था, और चीज भी अच्छी नहीं निकलती थी। अब उसने यह जान लिया कि कड़ी हड्डी से दबा कर भी पत्थर के परत निकाले जा सकते हैं, और ऐसे हथियारों की धार बहुत तेज होती है। इस प्रकार प्राचीन प्रस्तर-युग में तीन यन्त्र-कला—संस्कृतियाँ विकसित हुईं—

(क) अन्तर्मार्गीय-पत्थर के औजार—(Core-tools)—एक पत्थर को दूसरे पत्थर से टकरा कर बचे भाग का हथियार बनाना ; (ख) परत के औजार—पत्थर को पटक कर उससे अलग हुए परत का हथियार बनाना ; (ग) कड़ी हड्डी से दबाकर पत्थर से निकले हुए परत का हथियार बनाना। पहली यन्त्र-कला एशिया, योरप व अफ्रिका के जंगली क्षेत्रों में व्याप्त था ; दूसरा पार्को, समतल भूमि में अधिक पाया जाता है, और तीसरी शैली टून्ड्रा (Tundra) में प्रचलित रही होगी।

इस युग में ही परिवार व सम्पत्ति की भावना आ गई होगी। शिकारी शिकार कर गुफा में लौटते थे—अग्नि का व्यवहार तो मालूम था ही, और अंगिठी के चारों ओर परिवार व पड़ोसियों के साथ बातचीत होती होगी। भाषा का भी विकास इस तरह तेजी से हुआ। गुफाओं के भूतल के नीचे कब्रें मिली हैं जिनमें परिवार के सदस्य गाड़े जाते थे। इससे यह पता चलता है कि परिवार भावनाओं के सूत्र से बंधा था और मृत जीवितों के लिए महत्व रखते थे। इन कब्रों में जेवर, औजार व भोजन पदार्थ पाए जाते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिससे यह समझा जाता है कि लोगों को मृत्यु के बाद की दूसरी जिन्दगी में विश्वास था ।

प्राचीन प्रस्तर युग में दो कला का आरम्भ हुआ। पहले टेढ़ी-मेढ़ी लाइन खींच कर ही किसी वस्तु का बोध किया जाता था, पर धीरे-धीरे चित्रकारी कला की उन्नति हुई। चित्रकारी व नक्काशी या पत्थरों पर खुदाई जानवरों की ही की जाती थी । जानवर प्राकृतिक मुद्रा में चित्रित किए गये हैं। स्पेन की गुफाओं में खड़े, लेटे हुए या गर्जते हुए जंगली साढ़ों की नक्काशी है ।

इस युग में मनुष्य जंगलों में भटकता रहा। वह जानवरों का शिकार करता था, और खुद भी उनका शिकार बन जाता था। जीवन एक संघर्ष था, और जीना जरूरी था। इसलिए उसे सर्वदा फुर्तीला रहना पड़ता था। भय और साहस दोनों ही उसके चरित्र के प्रमुख भाव थे। क्षुधा व यौनतृप्ति ही उसकी नीति थी। इसलिए इस सभ्यता के मूल सिद्धान्त हिंसा और भय हो गया। अभी भी सभ्यता के विकास में हिंसा व भय का बड़ा हाथ रहा है। अतः विश्व-सभ्यता पर प्राचीन प्रस्तर-युग की अमिट छाप है ।

नव-प्रस्तर युग

प्राचीन प्रस्तर-युग में मनुष्य अपनी जीविका के लिए प्रकृति पर निर्भर करता था। प्रकृति के फल, कन्द-मूल खाकर रहता था। पर इस जंगली जीवन से मनुष्य ने आर्थिक व वैज्ञानिक-क्रान्ति के द्वारा मुक्ति पाई, और अब वह प्रकृति का शोषक-कीटाणु (Parasite) न रह कर, प्रकृति का उद्योगी सहायक बन गया। इस क्रान्ति की अग्रदूत नारी थी। जब मर्द शिकारी का जीवन बिता रहे थे, औरतें भोज्य-पदार्थों को इकट्ठा करती थीं, और इनमें उन जंगली घासों के भी बीज रहे होंगे, जो जौ और गेहूँ के पुरखा होंगे। कुछ समय के बाद यह देखा गया कि बीज जिस मिट्टी के बर्तन में

CC-0 In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखे गये थे, वहाँ पौधे निकल आए। यह खोज आकस्मिक थी, पर क्रान्ति-कारी। इस ज्ञान का उपयोग बीजों के अनुरूप जमीन पर बोकर किया जाने लगा और खेत को जोतने की प्रथा शुरू हुई। पहले मर्द के द्वारा स्त्रियाँ ही खेत जोतती थीं, क्योंकि मर्द ही श्रमशक्ति (Labour power) के प्रतीक थे। इस तरह समाज अब खाद्य-पदार्थ उपजाने लगा, और भोजन-सामग्री को बढ़ा सका। इसका अर्थ यह हुआ कि बढ़ती आबादी का अब पोषण किया जा सकता था।

नव-प्रस्तर युग की क्रान्ति का यह पहला कदम था। जंगली-जीवन से देहाती-जीवन (Barbarism) की यह बड़ी विशेषता है। फिलस्तीन के कुछ प्राचीन गुफाओं में पत्थर के चमकते हथियार मिले हैं, इनमें हँसिया भी है जिससे घास काटी जाती होगी। प्राचीन प्रस्तर युग के उपकरण शिकार के लिए बने थे, पर नव-प्रस्तर युग के उपकरण कृषि-कार्य के लिए भी बनाये जाते थे।

इस युग में पशुपालन की प्रथा भी शुरु हुई। जहाँ जंगली गेहूँ व जौ स्वयं उपजते थे वहीं जंगली भेड़, बकरी, गाय-बैल व छोटे सूअर भी रहते थे। शिकारी मनुष्य ने धीरे-धीरे इन पशुओं का स्वभाव समझ लिया, और फिर इन्हें वे पालने लगे। खेती-बारी व पशु: पालन इनकी प्रमुख जीविका थी। भोजन में दूध, दही की वृद्धि हुई। अभी तक जानवरों का उपभोग उन्हें मार कर ही किया जाता था, पर अब बिना उनकी हत्या किए उनसे भोजन मिल सकता था।

कृषि व पशु-पालन बिना स्थायी निवास के नहीं हो सकता था। उपजाऊ जमीन गुफाओं के समीप ही रहें ऐसा कोई ठीक नहीं था। पर खेती की रक्षा के लिए खेत के नजदीक ही स्थायी रूप से रहना जरूरी हो गया। इसलिए अब मनुष्य को घुमक्कड़ का जीवन छोड़ना पड़ा, और अब स्थिर जीवन (Settled life) को अपनाना पड़ा। घर मिट्टी के बने रहते

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। पीछे चल कर धूप से सूखे ईंटों का आविष्कार हुआ। पालतू जानवर भी घर के समीप ही बँधे रहते थे।

घर में रहने से परिवार की भावना और भी दृढ़ हो गई। पिता-पुत्र, माँ-बेटे, भाई-बहन का सम्बन्ध मजबूत हो गया। जीवन सहज और आनन्द-दायक हो गया, और इसलिए स्थिर और सुरक्षित वातावरण में आबादी बढ़ने लगी, और बढ़ती आवादी के लिए अधिक अन्न उपजाने की चेष्टा होती रही, इस कारण कई तरह के अन्न की भी खोज हुई।

शरीर को ढकने के लिए बुने हुए वस्त्र का व्यवहार भी इसी युग में शुरु हुआ। इस प्रयोग की सफलता काफी अरसे की मेहनत के बाद ही हुई होगी। बीजों व अन्न को पहले पत्तों के दोनो में रखा जाता था, पर यह बहुत सन्तोषप्रद नहीं था। पतली-पतली लकड़ी की टहनियों व नरकट (Reads) व बाँस की छड़ियों को बुन कर डलिया (basket) बनाया जाने लगा। डलिया की बनावट से ही औरतों को ऊन के बुने कपड़े बनाने का प्रयोग करने में प्रोत्साहन मिला होगा। जंगली भेड़ व बकरियों के शरीर पर घने बाल होते थे, और मर्द उनके शरीर पर उपजे ऊन को काटते थे, और औरतें ऊन का कपड़ा बुन लेती थीं।

मिट्टी के बर्तन बनाना भी इस युग में ही शुरू हुआ। भोजन करने के लिए, पशुओं को खिलाने के लिए, अन्न व बीज का संग्रह करने के लिए मनुष्य को अब बर्तन की जरूरत हुई। हमारे ये प्राचीन पुरखों ने गिली मिट्टी को आग की लपट से सूखते देख लिया होगा, और इसी ज्ञान के आधार पर बर्तन बनाने की कला का श्रीगणेश हुआ। गिली मिट्टी जिसे किसी तरह का आकार दिया जा सकता है, उससे चतुर हाथों के द्वारा कई प्रकार व आकार के बर्तन बनाए जाने लगे।

इस युग की एक और प्रमुख देन है। अब यह पता लग गया था कि पत्थर के औजार को धार को सिल्ली (whetstone) पर रगड़ कर

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेज किया जा सकता है। इसलिए अब मनुष्य के साधन काफी उन्नति कर चुके थे। मकान बनाने की आवश्यकता, कृषि की जरूरत, और बर्तन की सर्वप्रियता ने इस युग के मनुष्यों को कई तरह के उपकरण रखने या बनाने को बाध्य किया। कुल्हाड़ी, छूरी, रुखानी, छेदने का बरमा, आरी और सिल्ली इनमें मुख्य हैं। अब इन हथियारों में मुठिया (handle) भी जोड़ा जाने लगा। इनमें मुट्ठीदार कुल्हाड़ी जिसकी धार पैनी और पजी हुई है, और जो बहुत चमकती है अपना विशेष स्थान रखती है। नव-प्रस्तर युग के पत्थर के उपकरण में जैसी चमक रहती थी (Polished Stone) वह प्राचीन प्रस्तर युग के ऊबड़-खाबड़ हथियारों में नहीं पाई जाती।

इस युग में व्यापार, चीजों का एक जगह से दूसरी जगह आना-जाना भी होता था। सबसे प्राचीन नव-प्रस्तर युग के गाँवों व कब्रों में पुरातत्व वेत्ताओं (Archaeologists) ने बहुत दूर से आई हुई कई चीजों का पता लगाया है। मिश्र के प्राचीन हारों में मध्यसमुद्र व लाल सागर के सीप पाए जाते हैं। विशेष क्षेत्रों में कुछ खास तरह की चीजों पर ध्यान दिया जाता था। आर्थिक विकास के इतिहास में इस नयी धारा (अमुक स्थान में अमुक वस्तु बनाने की विशेषता) (Specialisation) का बहुत महत्व है। मिश्र, सिसली, पुर्त्तगाल, फ्रांस, इंगलैण्ड, बेलजियम, स्वीडेन और पोलैण्ड में चकमक-पत्थर (Flint) के खान की खुदाई होती थी। कुछ गाँवों में बर्त्तन बनाने की कला पर विशेष ध्यान दिया जाता, और वहाँ से दूसरी जगहों में बर्त्तन भेजे जाते। पर व्यापार करने के लिए न मुद्रा का प्रयोग होता था, न धातु का ज्ञान था।

नव-प्रस्तर युग की सभ्यता को ग्रामीण-सभ्यता कहा जा सकता है। इस युग में ग्रामों का निर्माण हुआ, और सभ्यता का विकास ग्रामों के किसानों के घर की चहारदिवारी के अन्दर ही हुआ। इस युग में सभ्यता के विकास में स्त्रियों ने बड़ा प्रमुख भाग लिया। बीज बोकर अन्न उपजाना,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कपड़े बुनना, डलिया बनाना, भोजन आग पर बनाना, इत्यादि क्रान्तिकारी खोज का श्रेय इनको ही है।

यह बताना नामुमकिन है कि इस सभ्यता की शुरुआत कहाँ हुई और किन लोगों ने किया। दक्षिण-पश्चिम एशिया में, फिलस्तीन में, उत्तरी अफ्रिका व पश्चिमी योरप में स्पेन से रोन की घाटी तक, सिरिया, एशिया माइनर, इरान, मेसोपोटेमिया, भारतवर्ष में सभी जगह नव-प्रस्तर युग के चिह्न पाए जाते हैं। कुछ लोग कृषि का आरम्भ नील की घाटी (Egypt) और कोई सिरिया व मेसोपोटेमिया में समझते हैं। यह मानना अधिक तर्क-संगत होगा कि इस सभ्यता की विशेष कृतियों को संसार की कई जातियों ने मिलकर अपनाया।

विश्व-सभ्यता नवप्रस्तर युग का बहुत आभारी है। आज हम जितने खाद्य-अन्न का उपभोग करते हैं, उनमें बहुतों की खोज हमारे ये पुरखों ने ही की है। अमुक अन्न व फल खाद्य है या अखाद्य इसका प्रयोग करने में बहुतों ने काफी संकट झेला होगा, और कुछ के तो प्राण भी चले गये होंगे। पर उनके वर्षों के अनुभव व प्रयोग का उपभोग हम आज कर रहे हैं। अन्न का उपजाना और पशुपालन इस युग की अमर देन है। इसी आधार पर सभ्यता विकसित हुई है; मनुष्य जंगली न रह कर, ग्रामवासी व नागरिक बन सका है। इसी काल में पत्थरों के औजार चमकीले व पैनी धार वाले होने लगे, चिकने पत्थरों के औजार के अलावे, लकड़ी व चमड़े की डलिया इत्यादि कई प्रकार की चीजें भी बनने लगी। बर्तन बनाने की कला भी इसी कौशल से विकसित हुई। वस्त्र बनना भी इस युग की ही कृति है। मिट्टी व लकड़ी के मकान के बाद ईंटों व पत्थर के मकान भी बनाए जाने लगे, और इस युग में बढ़ई, शिल्पकार, थवई (राज) के उपयोग में आने वाले औजार या उपकरण बनाये जाने लगे। इस तरह मनुष्य के साधन में इतनी उन्नति हुई कि प्रकृति से वह पूर्ण सहयोग कर सका। कृषि के आरम्भ के साथ-ही-साथ वैयक्तिक व पारिवारिक

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पत्ति के भाव की वृद्धि हुई। जिस खेत को पिता जोतता था, उसी खेत को पुत्र जोतने लगा, और धीरे-धीरे उस खेत पर अपना अधिकार समझने लगा। इस युग की आर्थिक-व्यवस्था स्वावलम्बन के सिद्धान्त पर (Self Sufficiency), आत्म-यथेष्ठता पर आधारित थी। प्रत्येक परिवार अपने सदस्यों के लिए पर्याप्त अन्न उपजा लेता था, कपड़े बुन लेता था और बर्तन बना लेता था, दूध-दही का बन्दोबस्त कर लेता था। पर व्यापार के भी प्रमाण मिलते हैं, जो कि आत्म यथेष्ठता के सिद्धान्त के अपवाद ही समझे जायेंगे।

अतः इस युग में मानव-जीवन का नया संगठन हुआ। जनसंख्या की वृद्धि हुई। सामाजिक व जातीय जीवन स्थायी हो गय। श्रम का बटवारा हो गया, अर्थात् किसी के जिम्मे कुछ काम रहा, किसी के जिम्मे कुछ दूसरा। औरतें खाना बनातीं, कपड़ा बुनतीं, मर्द खेत जोतते, पशु चराते व शारीरिक मेहनत करते। इस कारण धन की वृद्धि हुई, और धन संचय भी होने लगा। सामाजिक नियम के अनुरूप ही कार्य करना पड़ता और धन-जन को सुरक्षा का आश्वासन मिला। इसी युग में चन्द्र, सूर्य, पृथ्वी जो कि मनुष्य के कार्य में सहायक व दुश्मन समय-समय पर होते थे, उनकी पूजा होने लगी। जिस युग में कृषि, पशुपालन व घरेलू धन्धों व शिल्पों का आविष्कार हुआ, उसे यथार्थ में उन्नति का प्रथम महायुग कहा जाना चाहिये। जनता के लिये तो प्राचीन प्रस्तर-युग और वर्त्तमान औद्योगिक-युग के मध्य में नव-प्रस्तर युग में ही मनुष्य के सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन में महत्वपूर्ण परिवर्त्तन हुए हैं। यथार्थतः मशीन युग व औद्योगिक नगरों की उत्पत्ति के पहले, सभी सामाजिक व सांस्कृतिक उन्नति ग्रामीण सभ्यता के आधार पर ही होती रही। नवप्रस्तर युग में जीवन का जो संगठन हुआ था, उस पर ही भविष्य की शान्ति, स्थिरता व धन आधारित था।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीसरा अध्याय

मिश्र की प्राचीन सभ्यता

प्राचीन देशों में मिश्र एक विशेष स्थान रखता है। बहुत से इतिहासकारों के ख्याल में सभ्यता का बीज पहले-पहल यहीं पनपा। सिलसिलेवार वंशावलियों का इतिहास ईसा से ३५०० वर्ष पूर्व तक का हमें मिलता है। प्रोफेसर पेट्राइ (Petrie) का मत है कि मिश्र की सभ्यता दस हजार वर्ष पुरानी है, और इस समय भी यहाँ के लोग मिट्टी के सुन्दर वर्तन व चिकने पत्थर के उपकरण हाथों से बनाते थे।

मिश्र ही में सभ्यता का इतिहास प्राथमिक स्थिति से लेकर अति विकसित स्थिति तक क्रमानुसार पता चलता है। इसी कारण विश्व-सभ्यता का इतिहास का अध्ययन मिश्र से ही शुरु किया जाता है।

मिश्र की भौगोलिक स्थिति, अनुकूल जलवायु, प्राकृतिक साधनों का बाहुल्य व उद्योगी नागरिक—सबने मिल कर यहाँ सभ्यता का विकास होने में काफी सहायता दी। प्राचीन सभ्यताएँ पूर्वीय भूमध्यसागर की घाटी में फली-फूली। एशिया के तिघरिस-यूफ्रेटिस घाटी और अफ्रिका की नील नदी की घाटी में ही मानव-सभ्यता का यथाक्रम विकास का ठीक-ठीक पता चलता है। मिश्र जलमार्ग से क्रीट प्रायःद्वीप की प्राचीन सभ्यता व एशिया-माइनर की सभ्यता से सम्बन्ध रखता था, और इस कारण यहाँ की सभ्यता और भी ऐश्वर्यशाली हो सकी।

मिश्र और नील-नदी

मिश्र की उन्नति की कूँजी नील नदी है। नील नदी की घाटी नील नदी की कृति है। भूमध्यरेखा से तीन डिग्री दक्षिण, नील नदी निकलती है, और चार हजार मील चल कर साढ़े तैंतीस डिग्री उत्तरी अक्षांश पर

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र ७

(पृ० १४) प्राचीन प्रस्तर युग की एक गुफा में एक चित्रित मायावी।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानचित्र १

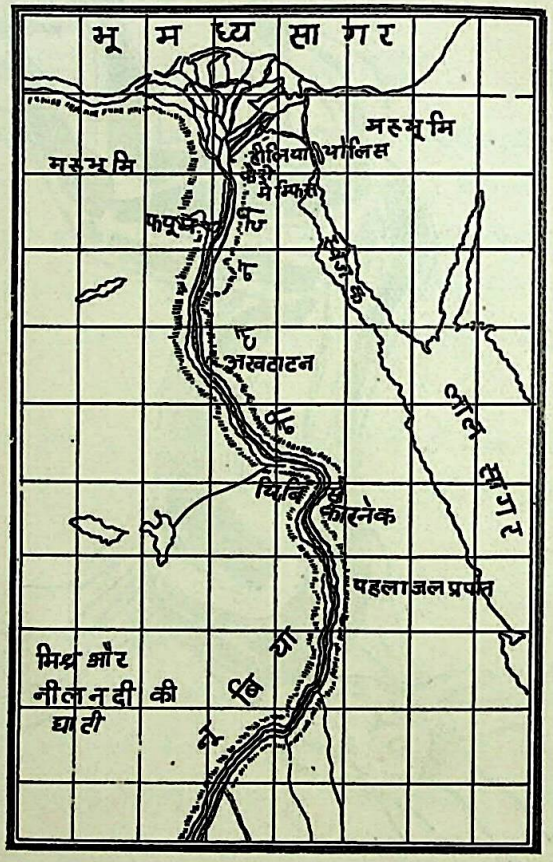

(Facing Page 20)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमध्यसागर में गिरती है। यह नदी पहाड़ी इलाकों व जलप्रपातों से होती हुई समतल भूमि पर छा जाती है, जिसका विस्तार नदी के मुहाने तक है। यथार्थ में मिश्र नील नदी के मुहाने से लेकर पहला जलप्रपात तक विस्तृत है। इस क्षेत्र में कंकड़ीली पत्थरों (lime stone) का अभाव है। घाटी के दोनों ओर ऊँची चट्टाने हैं, और घाटी की चौड़ाई उत्तर की ओर बढ़ती जाती है। पहाड़ी इलाकों से होती हुई, कंकड़ीली पत्थरों को चूरती हुई, नील नदी द्रुतवेग से उत्तर की ओर बढ़ती है, और अपने साथ लाई हुई उपजाऊ बालू और मिट्टी घाटी में जमा करती जाती है। अतः मिश्र की उर्वरा जमीन नील नदी की देन है। नील नदी में प्रतिवर्ष मौसमी बाढ़ आती रहती थी, जिसके कारण इसके दोनों किनारे की जमीन जलमग्न हो जाती थी। जान-माल की हानि काफी होती थी। प्राचीन मिश्रवासियों के लिए नील नदी के बाढ़ को रोकना या उसे नियन्त्रित करना एक जरूरी समस्या थी। मिश्र में वर्षा पर्याप्त नहीं होती है इसलिए नील नदी के पानी पर ही निर्भर करना पड़ता है। मौसमी बाढ़ का पानी यदि एक दृष्टि से हानिकारक था, तो दूसरी दृष्टि से लाभदायक भी। क्योंकि उपजाऊ बालू और मिट्टी देश के बड़े हिस्से में फैल जाती थी। अतः नील नदी के पानी को, बाढ़ के समय में भी, लोकोपकारी रखना यहाँ के प्राचीन निवासियों के लिए जरूरी था। इसलिए मिश्र में हमें अति प्राचीन नहरों के चिह्न मिले हैं। बड़े-बड़े नहरों को खुदवाना, उनकी रक्षा करना, साधारण जनता के बूते के बाहर की बात थी। इसलिए प्राचीन मिश्र में मजबूत राजतन्त्र का ही बोलबाला रहा है। शक्तिशाली एकक्षत्र राजा हजारों मजदूरों के द्वारा नहरें खुदवा सकता था, और अपनी वृहत् सेना व नौकरशाही से इनकी रक्षा करने में भी समर्थ था। इस तरह राजनीतिक व आर्थिक दृष्टिकोण से मिश्र का इतिहास नील नदी पर काफी मात्रा में निर्भर करता है। इसीलिए यह कहा जाता है कि मिश्र नील नदी की देन है (Egypt is the gift of the Nile)। मिश्र के पूरब व पश्चिम

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेगिस्तान है, उत्तर भूमध्यसागर और दक्षिण पहाड़ी इलाका। इस भौगोलिक स्थिति में यहाँ के निवासियों को अपनी सभ्यता का विकास करने में काफी शान्ति मिली।

मिश्र के दो प्रमुख भाग हैं—नील नदी की तंग घाटी, और विस्तृत मुहाना, उत्तर व दक्षिण मिश्र—ये दो हिस्से हैं (Lower and Upper Egypt), और मिश्र का इतिहास हमें बताता है कि राजनीतिक दृष्टिकोण से भी ये दो प्रमुख भाग रहे हैं, और दो हुकूमते यहाँ होती रही है। इन दो राज्यों में बराबर झगड़ा रहा है, और कभी उत्तर से, कभी दक्षिण से, यह कोशिश रही है कि सारा मिश्र एक राजसूत्र में बँध जाय। आर्थिक रूप से समूचा देश एक है। नील नदी इस एकता की स्रोत है। इसलिए बराबर यह प्रयत्न रहा है कि सारा देश एक राज्य के अन्दर रहे, और जब-जब इस दशा में सफलता मिली है, देश की उन्नति हुई है।

यह तो बता दिया गया है कि नील-नदी का स्रोत मिश्र से बहुत दक्षिण भूमध्यरेखा के निकट है। मिश्र के प्राचीन निवासी व सरकार को मौतमी बाढ़ की समस्या का सामना करना पड़ता था। पर जब तक स्रोत का पता न चल जाय, कब अत्याधिक पानी नील नदी में आना शुरू करता है इसका ज्ञान न हो जाय, तब तक मिश्र के लोगों के लिए यह वार्षिक बाढ़ एक दैवी प्रकोप ही था। इसलिए अज्ञानवश वे यह समझते थे कि नील नदी का उद्गम स्वर्ग से होता है। पर संकट मनुष्य को साहसी और साधनपूर्ण बनाता है। नील नदी के उद्गम स्थान की खोज में ही मिश्र ने दक्षिण की ओर अपना प्रभाव बढ़ाया, और इस तरह साम्राज्यवादी नीति को अपनाया। नील नदी में पानी कब बढ़ेगा इसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए ज्योतिष व खगोल विद्या की ओर इनका ध्यान बहुत पहले गया। अतः

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नील नदी ने मिश्रवासियों को धनी, उद्योगी, वैज्ञानिक बनाया और देश के राजनीतिक इतिहास का पथ मोड़ा।

संक्षिप्त इतिहास

मिश्र की सभ्यता का उत्कर्ष व अवनति को समझने के लिए हमें उसके इतिहास का सिंहावलोकन करना जरूरी है। अति प्राचीन काल के शिकारी मनुष्यों के चिह्न मिले हैं, और मनुष्य ने शिकारी जीवन से घुमक्कड़जीवन को किस तरह अपनाया, और आगे चल कर वह कैसे कृषक बन गया, इसका भी पता हमें मिश्र के पुराने खण्डहरों से मिलता है। इस समय उनके पास पत्थर के उपकरण थे, जौ और गेहूँ की उपज होती थी, मृतकों को गाड़ा जाता था, और कब्र में मिट्टी की सुराहियों में भोजन रखा जाता था। सन के बुने हुए कपड़ों का भी पता था। कच्चे ईंटों के मकान में रहते थे और ये लोग कृषक लोग स्थानीय सरकार को नहरों की रक्षा के लिए कर देते थे। लिखने की कला का भी आविष्कार यहाँ इस युग में हुआ। यह लिपि चित्र संकेत-लिपि कही जाती है। धीरे-धीरे इसका विकास होता गया। नरकट के कलम, पैपिरों के बने कागज, और स्याही का भी व्यवहार होता था। विद्वानों के मत से मिश्र में ही धातु (Metal) का ज्ञान पहले-पहल हुआ। सिनाई प्रायद्वीप में ताम्बा बहुत पाया जाता है, और प्राचीन मिश्रवासियों ने आग की लपट से अपने को बचाने के लिए तांबों के ढेर आग के चारों ओर रखा, और आग की गर्मी से कच्चे ताम्बे से उसका धातुरूप मुक्त होकर निकल आया। अब धातु युग का आरम्भ हुआ, जिसका महत्व सभ्यता के विकास में अकथनीय है

धातु युग और मिश्र का राजवंश का आरम्भ करीब २ साथ ही हुआ। प्रथम वंश दक्षिण मिश्र में स्थापित हुआ, और द्वितीय वंश ३०००-२७८० ईसा से पूर्व उत्तरी मिश्र की ओर झुका था। तृतीय वंश की राजधानी

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेम्फिस (मुहाने व तंग घाटी के मध्य) में स्थित था, और इसी वंश से पिरामिड युग का आरम्भ होता है। तृतीय, चतुर्थ व पंचम वंशों के आधिपत्य में मिश्र की आर्थिक व सांस्कृतिक उन्नति का क्या ठिकाना! इस युग में, तृतीय वंश का राजा (Pharaoh) जोजर का वजीर इमहोटेप ने चतुर्भुजाकार पत्थरों की राजीगरी (Square stone masonry) व इमारत इज़ाद किया, और औषधि व ज्योतिष पर शास्त्र लिखा। इस युग में नागरिक सभ्यता का विकास हुआ। शहरों की उन्नति हुई और वे राजनीतिक व सामाजिक केन्द्र हो गये। कृषि सन्तोषप्रद योजना के कारण खूब पनपी। अन्न काफी उपजता था, और चतुरकारीगरों को बिना स्वयं अन्न उपजाए वेतन रूप में भोजन मिलता था। इस कारण धंधों की उन्नति हुई, और जीवनस्तर ऊपर उठता गया। इस युग की विशेषता है पिरामिडों का निर्माण। पहले राजा के कब्र कच्चे ईंटों के बनते थे, पर जब ताम्र के बने हथियारों का व्यवहार होने लगे तब कंकड़ीले चट्टानों (blocks of Limestone) को चतुर्भुजाकार तोड़ कर विशाल त्रिभुजाकार कब्र बनाए जाने लगे। जिन्हें पिरामिड कहते हैं। गाइजा का विशाल पिरामिड बादशाह खूफू के लिए बनाया गया। तेरह एकड़ तक फैली हुई यह एक ठोस इमारत है जिसमें २३००००० कंकड़ीले पत्थर के चट्टान हैं, प्रत्येक का वजन $\frac{1}{2}$ टन है। यह इमारत ४८१ फीट ऊँचा है, और प्रत्येक भुज ७५५ फीट है। ऐसा कहा जाता है कि एक लाख मजदूर २० वर्ष तक काम करके इसे बना सके। इस महान् पिरामिड के इर्द-गिर्द और भी बहुत से पिरामिड हैं। प्रत्येक राजा अपने व अपने परिवार के लिए पिरामिड बनवाते थे। इसमें इनका मृत शरीर मसाले की सहायता से सुरक्षित रखा जाता था। अभी भी कई ऐसी लाशें मिली हैं जो उस समय की इस कला के जीवित उदाहरण हैं। इन पिरामिडों की

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

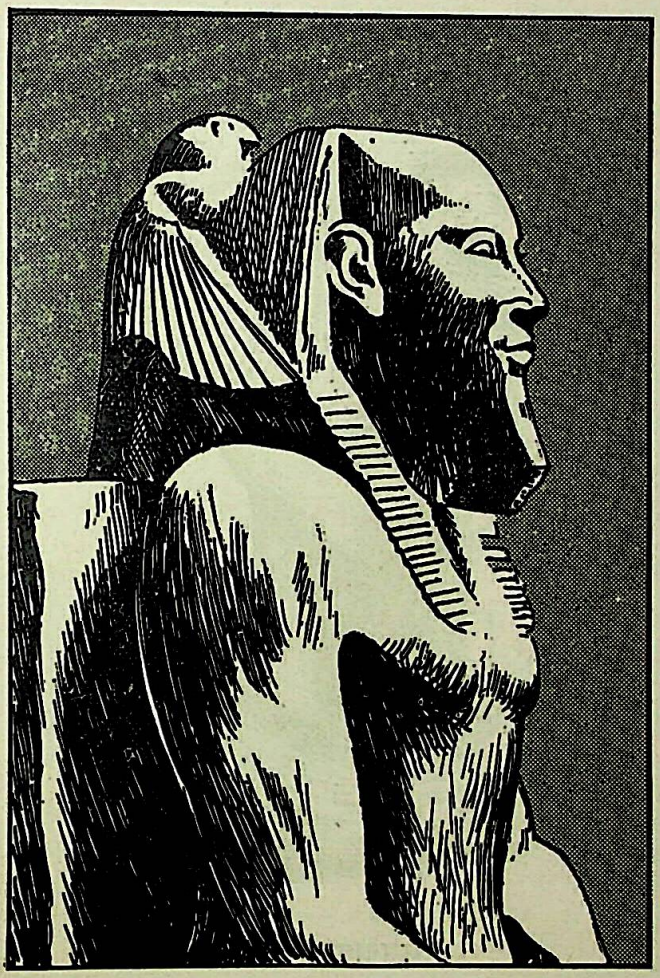

(पृ० २४) सम्राट् ख़फ़े (गाइज़ा का दूसरा पिरामिड का निर्माता)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र ५

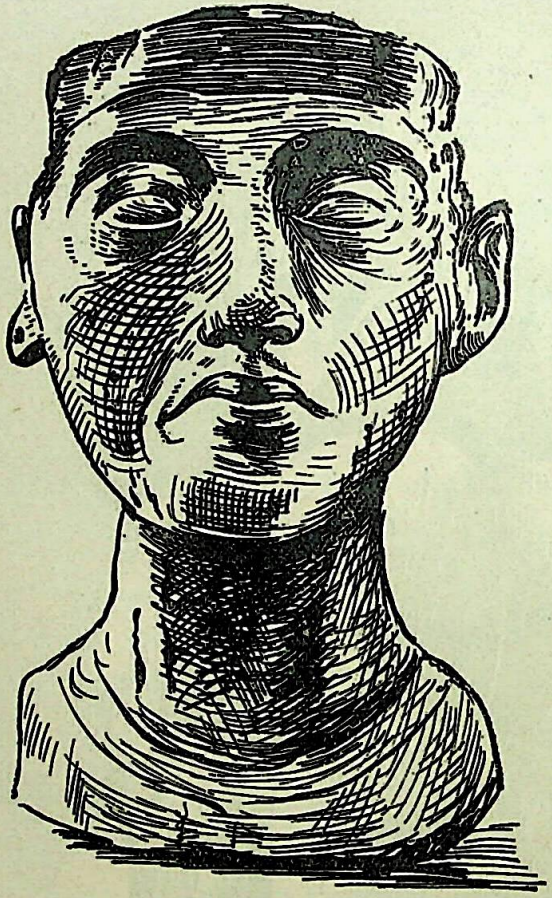

अखनातन

(Facing Page 28)

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीवालों पर चित्रकारी भी की जाती थी, जिससे उस समय की कला व जीवन की झाँकी मिलती है। प्राचीन मिश्रवासियों को यह विश्वास था कि मरने पर भी प्रेतात्मा को उन चीजों की जरूरत होती है जिसका उपयोग वे पृथ्वी पर करते थे। इसलिए इन कब्रों में भोजनपदार्थ, शृंगार की सामग्रियाँ, अस्त्रशस्त्र, खिलौने व आमोद-प्रमोद की चीजें रखी जाती थीं। कहीं तो छोटे खाट पर एक स्त्री की मूर्ति भी पाइ जाती है। शायद ऐसा ख्याल रहा हो कि दूसरी दुनियाँ में भी राजा को रखैली व वैश्या की जरूरत होगी। अतः प्राचीन पिरामिड मिश्र की सभ्यता का ज्ञान के लिए अक्षय भण्डार सिद्ध हुये हैं।

पिरामिड युग के शाशक स्वेच्छाचारी थे। विशाल और ठोस पिरामिड इसके प्रतीक हैं। राजा के इर्दगिर्द उसके संबंधी और बड़े२ अफसर रहते थे, और इन लोगों की मदद से राज चलता था। साधारण जनता श्रम करती थी, और जो धन पैदा होता था उसका बहुत बड़ा भाग राजा और उसके सामन्तों के पास चला जाता था। अफसर व पादरियों को कई विशेष सुविधाएं थी, उन्हें करमुक्त जमीन मिली थी और वे अपनी जमीन्दारी के स्वतन्त्र शासक थे। इस कारण जब राजा कमजोर हो गया तो ये लोग अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा करने लगे, इस तरह पिरामिडयुग का अन्त हो गया, और सारे देश छोटे २ राजों में बंट गया। स्थानीय सामन्त वस्तुतः अपने ३२ क्षेत्र में स्वतन्त्र हो गये और जागीरदारी प्रथा स्थापित हो गई।

छठा राजवंश के काल (२४००-२२७० ईसा से पूर्व) में ऐसी दशा रही। पर जनता के हितों की यह उपेक्षा बहुत दिनों तक नहीं चल सकी, और ऐसी सामाजिक व राजनीतिक क्रांति हुई जिसमें अमीर-उमरावों को रोना पड़ा, और साधारण जनता खुशी से नाचने लगी। राजसत्ता मध्यमवर्ग के हाथ आई, और जनता

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से न्याय व समता का व्यवहार होगा, ऐसा आश्वासन मिला। बारहवाँ राजवंश काल मिश्र के इतिहास का सुनहला युग है। इस समय मिश्र की जनता की जंजीरें टूट गई थीं, और देश में ऐसी स्फूर्ति व क्रियात्मक-शक्ति फैली कि सभ्यता के प्रत्येक पहलू में अपूर्व उन्नति हुई। शिल्पकला, चित्रकारी, भवन-निर्माण कला, लेखन कला, साहित्य, संगीत व धर्म सभी क्षेत्रों में इस युग ने बहुत कुछ प्रदान किया है। मिश्र की सभ्यता का आशातीत वैभव व ऐश्वर्य बारहवाँ व तेरहवाँ राजवंश काल (C. 2000-1800 B.C.) पर आधारित है। यह जनक्रांन्ति थी, जिसमें जनता ने अमीरों का घर लूटा, राजव्यवस्था को उलट दिया, अशान्ति फैलायी, अमीरों व पादरियों की हत्या की। इस अराजकता के फलस्वरूप दृढ़ केन्द्रीय सरकार की स्थापना हुई। थिबिस् (Thebes) नयी राजधानी बनी। राजशासन फारोहा (बादशाह) एक सुव्यवस्थित नौकरशाही के द्वारा चलाता था। वजीर की सलाह से काम होता था। सिनाई और नूबिया देशों पर विजय किया गया। वैदेशिक व्यापार की वृद्धि हुई, धन का बाहुल्य रहा। राजधानी थिबिस् अच्छी-२ इमारतों से सजी गयी। बारहवाँ राजवंश काल की कब्रें, इमारतें व मन्दिरें मिश्र की उन्नति व सौभाग्य की गवाही देते हैं।

यह स्वर्णयुग स्थायी न रह सका। बारहवाँ व अट्ठारहवां राजवंश के मध्यान्तर मिश्र का इतिहास का ठीक-ठीक पता नहीं चलता है। इसी बीच में एशिया से हिक्सोस् का आक्रमण हुआ अट्ठारहवी शताब्दि में मध्य एशिया में नयी जातियों का दवाब बढ़ने लगा, जिसके फलस्वरूप हिक्सोस् लोगों को एशिया छोड़ना पड़ा। इतिहासकार इन्हें हिक्सोस् कहते है क्योंकि इनके मुखिया गड़ेरिया थे। ये लोग असभ्य थे और इन्होंने मिश्र को काफी नुकशान पहुँचाया। मंदिर तोड़े गये। सभ्यता

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की गाड़ी रुक गई। पर कुछ समय बाद आक्रमणकारी मिश्र की सभ्यता को अपनाने लगा। हिक्सोस्-राज्य का फल महत्वपूर्ण है। मिश्र की आँखें खुलीं, और अपने देश से बाहर की दुनियाँ का ज्ञान हुआ। नये देवी-देवता की पूजा होने लगी, मन्दिरें बने और गणित व ज्योतिष के क्षेत्र में काफी उन्नति हुई। हिक्सोस् को अपने देश से खदेड़ते हुये विजयी मिश्रवासी एशिया तक पहुँच गए। मिश्र ने साम्राज्य स्थापित करने का निश्चय कर लिया। हिक्ससों ने मिश्र को साम्राज्य-वादी देश बनने में प्रेरणा दिया।

पर मिश्र बहुत दिनों तक गुलामी की बोझ नहीं ढो सका, और करीब १५८० ई० ईसा से पूर्व, हिक्सोस्-राज्य का अन्त कर दिया गया। इस राष्ट्रीय यज्ञ का अग्रदूत अहमोसी (Ahmose) था, जिसने १८ वां राजवंश की स्थापना की। यहीं से मिश्र का साम्राज्य-युग का आरम्भ होता है, जो कि साढ़े चार सौ वर्ष तक चलता रहा। मिश्र का आत्मसम्मान जग उठा, और इस नये उत्साह का परिणाम था दक्षिण पूर्व एशिया पर विजय। थोथमस तृतीय (Thotmose III) बड़ा ही शक्तिशाली राजा था, जिसने मृत्यु की परवाह न कर, एशिया पर दर्जनों बार आक्रमण किया। एशियामाइनर, सिरिया, आरमिनिया पर विजय प्राप्त की। असेरिया और बेबोलिनिया के राजाओं ने मिश्र की प्रभुता स्वीकार की। इन सफल आक्रमणों व साम्राज्य-विस्तार के कारण मिश्र बहुत धनी हो गया और इस धन को फौज के सिपाहियों व देवताओं के पुजारियों में बांटा गया जिससे कि समाज के ये दो प्रमुख वर्ग राजा के पृष्ठपोषक बने रहें।

कृषि, व्यापार की अकथनीय उन्नति हुई, और इस अत्याधिक धन का उपयोग बड़े२ मन्दिरों, कीर्त्तिस्तम्भों, ध्वजपताकाओं, सूच्चाकार स्तम्भों (obelisks) पत्थरों की विशाल मूर्तियों का निर्माण

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में हुआ । इस युग की शिल्पकला, चित्रकला जो कि मन्दिरों की दीवालों पर खुदी हुई वा चित्रित है, कला की उन्नति की द्योतक हैं। कारनक का मन्दिर दो हजार वर्षों में तैयार हुआ, और एक चौथाई मील लम्बा है। खम्भों का विशाल हाल, रानी हेटशेपसू का सूच्चाकार स्तम्भ इसके प्रमुख अंग है। थिबिस् के मन्दिर सुन्दर ढंग से रंगे हुये थे, और उसकी दीवालों पर युद्ध के दृश्य चित्रित थे। आज रंग उड़ गया है, मन्दिरें टूटे पड़े हैं। पर तब भी हमलोगों को उस समय का ऐश्वर्य व वैभव का पता चलता है। यह निर्विवाद है कि मिश्र के प्राचीन बादशाह इन भवनों पर अत्याधिक खर्च करते थे। मिश्र का बादशाह एमेनहोटेप तृतीय मिश्र का शाहजहां कहा जा सकता है। इनके समय कई सुन्दर और विशाल इमारतें बनीं।

एमेनहोटेप का पुत्र एमेनहोटेप चतुर्थ या अखनाटन (Akhnaton) संसार के इतिहास में अपना खास स्थान रखता है। उसने धार्मिक क्रान्ति शुरू किया। इस समय मिश्र में कई देवी-देवताओं की पूजा होती थी—जिनमें (सूर्य), औसिरिस—यमराज; इसीस उसकी स्त्री, होरस उसका पुत्र; सेट औसिरिस का शैतान दुश्मन प्रमुख हैं। प्रत्येक जिला, गाँव में अलग २ देवता और देवी की पूजा होती थी। करीब २२०० देवी-देवता थे। एमेनहोटेप चतुर्थ ने इस अनेक देवता में विश्वास वाले धर्म की जगह पर एकेश्वरवाद का सिद्धान्त चलाया। उसने यह घोषणा की उसके सारे साम्राज्य में एटन (Aton) की पूजा होनी चाहिये। पुराने मन्दिरों को तोड़ा गया। इससे सबसे बड़ी हानि एमेन-देव के पादरियों की हुई जिनका कि देश पर बड़ा प्रभुत्व था, और राजा से जिन्हें काफी भूमि व विशेष सुविधाएं मिला थी। एमन सूर्य देव थे, पर एटन (Aton) सूर्य के पीछे छिपी शक्ति का नाम था। दर्शनीय सूर्य की पूजा नहीं वरन्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्य की शक्ति का स्रोत—ईश्वर की पूजा ही अखनातन का धर्म था। पर साधारण धर्मभिरु जनता और स्वार्थी पादरियों ने कस कर विरोध किया, और अखनातन को थिबिस् छोड़ना पड़ा, और उसने एक नयी राजधानी एखटाटन (एटन का नगर) की स्थापना की। यहाँ से एटन-धर्म को फैलाने की चेष्टा की गई। एटन निराकार, और निर्गुण थे, इसलिए इस धर्म में मूर्ति-पूजा का स्थान नहीं था। अखनातन का विचार समय से पहले था, और अत्यन्त विरोध के कारण उसके मरने पर उसके चलाए धर्म का भी अन्त हो गया। अखनातन विश्व इतिहास में प्रथम व्यक्ति है जिसने अपना व्यक्तित्व का पूर्ण विकास किया। वह साहसी व निर्भीक था, और अपना विश्वास व सिद्धान्त पर विपरीत परिस्थितियों के बावजूद, चलने की क्षमता रखता था। जब उस समय की दुनियाँ में भ्रान्तिमूलक धर्मसिद्धान्त, अन्ध-विश्वास फैले थे, अगणित देवी-देवताओं की पूजा और स्थानीय व राष्ट्रीय सम्प्रदायों में अवांछनीय होड़ हो रही थी, उस समय अख-नातन ने सर्वशक्तिमान एक शक्ति का आवाहन किया। भिन्न २ विरोधी धर्मों को मिटा कर संसार के लिए एक बुद्धिवादी सर्वमान्य धर्म चलाने की चेष्टा की। यदि मिश्र अपना साम्राज्य स्थिर रखना चाहता था तो उसे अपने राष्ट्रीय धर्म को अन्तर्राष्ट्रीय रूप देना जरूरी था। अखनातन का प्रयास इस दृष्टिकोण से भी अच्छा ही था। पर अखनातन के चलाए धर्म की सबसे बड़ी विशेषता थी, संसार के सभी जीवों में ईश्वर का ही रूप देखना। प्रकृति की स्वाभाविक सुन्दरता में, चिड़ियों की चहचहाहट में, फूलों की सुगन्ध में, सिंह की गड़गड़ाहट में, मानव की कृतियों में वह एक ही स्वर्गीय आनन्द अनुभव करता। उस समय की कविताएँ, जो भाग्यवश अभी भी उपलब्ध हैं, प्राकृतिक सौन्दर्य के वर्णन के लिए अद्वितीय हैं। मनुष्य का यह प्रकृति

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम स्वर्गीय है। प्राकृतिक वस्तुओं का आदर व स्वर्गीय है। प्राकृतिक वस्तुओं का आदर व प्रेम की छटा हम उस समय की चित्रकारी और शिल्पकला में देखते हैं। दहाड़ते हुये सिंह और बादशाह व उनकी रानी अपने स्वाभाविक रूप में ही चित्रित किये गए हैं। अखनातन के चलाए धर्म का भले ही नाश हो गया, पर मिश्र की कला और साहित्य पर उस युग का प्रभाव चिरस्थायी व युगान्तकारी ही रहा। उसके धर्म का अन्त हो गया। पर विश्व अखनातन ऐसे प्रतिभाशाली व नये सूझवाले महापुरुष का सदा आभारी रहेगा। वह अपने युग का नहीं, वरन् आगामी युग का नेता था।

अट्ठारहवां राजवंश का अन्तिम बड़ा बादशाह अखनातन ही था, उसके मरने के थोड़े दिन बाद ही उन्नीसवां वंश शुरू हो गया। इस वंश के राजाओं ने अपना समय साम्राज्य-विस्तार व युद्ध में ही अधिक बिताया। इस वंश के अन्तिम दिन मिश्र के बड़े दिन के अन्तिम काल सिद्ध हुए। इसके बाद मिश्र की अवनति होने लगी, और अन्त में मिश्र असीरिया के अधीन हो गया, फिर पर्सिया और फिर यूनानियों के।

मिश्र की सभ्यता का मूल्यांकन।

मिश्र ने विश्वसभ्यता के भण्डार में काफी दान दिया है। पुराने खोज के आधार पर यह कहा जाता है कि मिश्र से ही पहले पहल अन्न व सन (flax) योरप में प्रवेश किए। राजा व सरदार को कर देने की प्रथा मिश्र में ही शुरु हुई। बड़े २ नहरों व खाईयों की रक्षा करने वाले सरदार को साधारण कृषक अपने अन्न के कुछ भाग कर (tax) के रूप में देने लगे, क्योंकि यदि किसान कर न दें, तो सरदार पानी का रसद ही बन्द कर दें, और इस तरह जीविका का साधन ही मिट जाय। यह भी संभव है

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि लेखन कला की उत्पत्ति भी मिश्र में ही हुई। आज का paper (कागज) शब्द मिश्र के पैपिरस (Pappyrus) से ही निकला है। प्राचीनकाल में अपने आशय का अर्थ दूसरे को समझाने के लिए चित्रकारी का उपयोग किया जाता था। पर प्राचीन मिश्र वासियों ने वर्णमाला (alphabet) का आविष्कार किया। पहली वर्णमाला चौवीस वर्णों की है। कलम, रोशनाई और कागज का व्यवहार वे तब करते थे जब मेसोपोटेमिया या भारत में मिट्टी की छोटी-छोटी टिकियों पर ही शब्द खोदे जाते थे। धातु युग का प्रारम्भ भी मिश्र में ही हुआ था। इसके विशाल पिरामिड गृह-निर्माण विज्ञान का ज्वलन्त उदाहरण हैं। यन्त्र-शास्त्र (Engineering) की इतनी उन्नति उस समय हो सकी थी, बहुतों को आश्चर्य में डाल देता है।

मिश्र की लिपि (Script) और उसका साहित्य

यह प्रत्यक्ष है कि मिश्र की प्राचीन लिपि के चिह्न प्राकृतिक जानवर, चिड़ियाँ व पौधों के रूप से विकसित हुई। पर अन्त में ये चिह्न उस विशेष पशु व पंक्षी का द्योतक न रह कर खास शब्द बन गए। ठंढ का बोध पानी से भरे बर्त्तन से होता था। एक मर्द व औरत के चित्र से मनुष्य (Peoplo) का बोध होता था।

मिश्र का साहित्य बहुत पुराना है। सबसे प्राचीन लेख बर्त्तनों पर खुदे नाम व शीर्षक हैं। आदि वंशो के समय के धार्मिक व धर्मनिरपेक्ष (Secular) लेख मिलते हैं। पाँच पिरामिडों की दीवालों पर लिखे हुये मूल-सूत्र, (Pyramid Texts) ईसा से अढ़ाई हजार वर्ष पहले के है। मध्यराजकाल (Middle-Kingdom में सामाजिक व राजनीतिक विषयों पर पुस्तकें लिखी गईं। वैज्ञानिक ग्रन्थों का भी अभाव नहीं रहा। लिखने की कला कुछ खास परिवार

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिपिकारों का एकाधिकार बनी रही, और लिपिकारों की एक जाति ही बन गई। इनका राज व समाज पर बड़ा प्रभाव था। Pyramid Texts के अलावे "मृतको की पुस्तक" (Book of the Dead) भी धार्मिक साहित्य का प्रमुख भाग है। एशिया पर विजय के उपलक्ष्य में काफी लिखे गए हैं। वारहवाँ राजवंश के समय में पद्य व नाटक की वहुत उन्नति हुई। मिश्र का प्राचीन साहित्य वेविलोन के साहित्य से किसी भी दृष्टि में न्यून नहीं है।

धर्म

मिश्र के प्राचीन धर्म में अनेक देवी-देवताओं की पूजा और भिन्न २ प्रकार के रस्म-रिवाजों का बोलवाला था। कभी -कभी तो ये धार्मिक क्रियापद्धति असंगत प्रतीत होतीं।

देवी-देवता

प्रकट रूप से मिश्र के प्राचीन निवासी एक सर्वव्याप्त शक्ति में, जिसे वे "क" (Ka) कहते थे, विश्वास करते। पर कालक्रम के अनुसार इसी एक शक्ति से कई देवताओं की उत्पत्ति हुई। प्रथम देवता स्थानीय क्षेत्रों के या कुलों के ग्राम व कुल देवता थे, या जातीय-संबंध सूचक चिह्न (Totem)। दक्षिण मिश्र में खरहें, शृगाल, और सिंहनी की पूजा होती थी, और उत्तर मिश्र में साँढ़, गाय, भेड़ और मछली की। ये सब जाति-सूचक चिह्न थे। इन जातीय देवी देवताओं के अलावे, कुछ विशेष देवताओं की पूजा होती थी, जिनमें रा (Ra, सूर्य) शू (Shu, वायु), नुट (Nut, आकाश), गेब (Geb पृथ्वी) देव प्रमुख हैं। होपि (Hopi) नील नदी का देव था। स्थानीय जातियों के खास खास देवता थे। कुछ देवताओं के

CC-0. Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिरूप मनुष्य और पशुओं के शरीर के सम्मिश्रण के द्वारा होता था, और कुछ का सिर्फ मनुष्य, कुछ का पशु का आकार होता था।

राजनीतिक उलटफेर ने देवताओं की महत्ता पर भी प्रभाव डाला। जब हेलियोपोलिस के पादरी शक्तिवान् थे, तब वहाँ का नगरदेवता को ही सूर्य तुल्य समझा जाता था। उत्तर व दक्षिण मिश्र में झगड़ा उठा, तब उत्तर मिश्र का देवता सेट और दक्षिण मिश्र का देवता होरस (Horus) में विरोध खड़ा हो गया। अटुम (Atum) सर्वशक्तिमान ईश्वर समझा जाने लगा, उसे सूर्यदेव रा (Re) से मिलाया गया। बहुत दिनों के बाद जब थिबिस् (Thebes), हेलियोपोलिस (Heliopolis), और मेम्फिस (Memphis) के पादरियों ने राज पर अपनी धाक जमाई, तब मिश्र के विश्वदेवताओं में एमोन (Amon), रा (Re), और टाः (Ptah) की महत्ता बहुत बढ़ गई।

अमरत्व में विश्वास

मिश्रवासी का यह विश्वास था कि इस पृथ्वी पर शरीर छूट जाने के बाद भी दूसरी दुनियाँ है जहाँ मृत जीव अपनी जिन्दगी पहले की तरह बिताते हैं। प्राचीन कब्रों को देखने से यह प्रत्यक्ष है कि यहाँ के लोग मृत्यु के बाद एक दूसरा जीवन पर विश्वास रखते थे। शरीर का अन्त भले हो जाय, पर आत्मा अमर है, ऐसा उनका सिद्धांत था। शरीर और आत्मा की भिन्नता का उन्हें ज्ञान था। शरीर को खत (Khat) कहते, और उसके नाश के बाद जो अमर चीज रह जाती थी, उसे कहते 'क' (ka)। 'क' का स्थूल प्रतिरूप था पत्थर की एक मूर्त्ति। विशिष्ट आत्मा का चिह्न एक पक्षी था। कब्र 'क' का घर समझा जाता था।

पहले मिश्र के बादशाह (Pharaoh) और उसके आशीर्वाद प्राप्त हुये ही अमरत्व प्राप्त करने के अधिकारी थे। पर बारहवाँ वंश

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के समय की सामाजिक क्रान्ति के परिणाम-स्वरूप अमरत्व का द्वार जनसाधारण के लिए खुल गया। ओसिरिस (Osiris), मृतकों के देवताओं का प्रतिरूप था, और अब ओसिरिस-धर्म (Cult) जनप्रिय सम्प्रदाय हो गया। तेरहवाँ राजवंश के महाराजों ने ओसिरिस-सम्प्रदाय के उपलक्ष्य में उत्सवों की स्थापना की।

ओसिरिस की पौराणिक कथा बड़ी ही मनोरंजक है। ओसिरिस नील-नदी का देवता था, और इसिस उसकी (Isis) बहन और जीवन-संगिनी थी। इसिस उवर्रा जमीन की देवी थी। ओसिरिस ने हल का आविष्कार किया, मनुष्य को खेती करना सिखाया, रोटी, शराब बनाना भी इसीने बताया। खनिज और द्रव्य पदार्थों का पोशक भी यही था। 'इसीस' इसे इन लोकहितकारी कार्यों में मदद देती थी। नील-नदी की बाढ़ इसिस के बहते आँसू का परिणाम था। अट्ठाइस वर्ष की उम्र में ओसिरिस को उसका भाई और शत्रु सेट् (Set) ने मार डाला। पर इसिस ने ओसिरिस का शरीर सिरिया के समुद्रतट पर पाया, और उसे फिर पुनर्जीवित किया। सेट् ने फिर उसकी हत्या की, और इस बार उसके शरीर को चौदह टुकड़ों में काट कर अपने साथियों में बांट दिया। ओसिरिस की मृत्यु का परिणाम था नील नदी के पानी का घटना, वनस्पति का सूखना, और मरुभूमि की सनसनाती हवा का प्रकोप। सेट् (Set) मरुभूमि व गर्म हवा का दूत था। इसिस ने ओसिरिस के शरीर के टुकड़ों की खोज आरम्भ की, और सभी अंग, सिर्फ जनेन्द्रिय को छोड़ कर, मिल गये। इसिस ने इस शरीर को मसाला लगा कर सुरक्षित रखा। यही पहला मम्मी (Mummy) था। कुछ दिनों के उपरान्त दैविक शक्ति के द्वारा इसिस ने एक पुत्र उत्पन्न किया, जिसे होरस (Horus) नाम दिया गया, और होरस ने सेट् को हराया। सेट् ने देवताओं की कचहरी में यह नालिश की कि

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होरस वर्णसंकर है, पर उसका मुकदमा असफल रहा, और होरस विजयी हुआ । और वह सारे मिश्र का राजा हो गया। मृत्यु के बाद ओसिरिस पाताल चला गया, और वहाँ न्याय की कहचरी का सभापति बन गया। यहाँ 'आत्मा' का न्याय होता था। एक तराजू पर हृदय तौला जाता था, और बगल में अनुबिस (Anubis) शृगाल-सिर देव इत्यादि भक्षक खड़े रहते थे। जब आत्मा ओसिरिस के सामने लाई जाती, तो वह यह निषेधार्थक स्वीकृति (Negative Confession) करती—"मैंने कोई बुरा काम नहीं किया है, मैंने चोरी नहीं की है, मैंने किसी मनुष्य को धोखे से नहीं मारा है। मैंने झूठ नहीं बोला है, मैंने फसल नहीं बर्बाद की है, मैंने बलात्कार नहीं किया है, मैंने किसी गुलाम को परेशान नहीं किया है, मैंने नहर नहीं काटी है, मैंने ईश्वर की निन्दा नहीं की है । मैं पवित्र हूँ, पवित्र हूँ।" इस स्वीकारोक्ति के बाद हृदय को तराजू पर तौला जाता, और यदि वह ठीक उतरा तब आत्मा आइओरा के मैदान (Fields of Iora) में आराम करती, अन्यथा भक्षकों के नजदीक फेंक दी जाती ।

इस उद्धरण से हमें मिश्र वासियों के नैतिक सिद्धांत, पाप-पुण्य के भेद का ज्ञान होता है। उनका यह विश्वास था कि यदि उनका चरित्र पवित्र रहा है, उन्होंने समाज, राजा व देवताओं की हानि नहीं की है, तो उनका दूसरा जीवन सुखप्रद होगा । यह धार्मिक विश्वास वैयक्तिक व सामाजिक पवित्रता व संगठन को दृढ़ बनाता था। इन लोगों का यह विश्वास था कि मनुष्य की उन्नति व उनके ऐश्वर्य की वृद्धि देवताओं को प्रसन्न रखने से ही होती है, और बुरे ग्रहों की शान्ति का भी यही उपाय है। सरकारी काम, कला, साहित्य और विज्ञान सभी में इस विश्वास की छाया मिलती है। देवताओं को खुश रखने

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए पूजा-पाठ, यज्ञ इत्यादि करना जरूरी था। इनकी विधि का पता पुरोहितों या पादरियों को ही था। पुरोहित ही जानते थे कि किस काम से देवता प्रसन्न होंगे। इस कारण मिश्र में पादरियों का सरकार, समाज व जनसाधारण पर गहरा प्रभाव था। पादरी समाज का सबसे मजबूत वर्ग हो गया। इसका प्रभाव मिश्र की राजनीति पर बुरा हुआ।

मिश्र की कला

विशाल पिरामिड इस सत्य के साक्षी हैं कि मिश्र की कला कितनी टिकाऊ है। एक ही परम्परा (tradition) सर्वदा वर्त्तमान रही है, उसके रूप भले ही कालक्रमानुसार व ज्ञानवृद्धि व अनुभव के अनुसार बदलते रहे हों।

भवन निर्माण कला (Architecture)

पिरामिड के अलावे मिश्रवासियों ने मकान, झोपड़े, मन्दिरें, कब्रें व महलें बनाईं। पत्थर, मिट्टी, खर, लकड़ी और धूप में सूखी ईंटों का व्यवहार करते थे। पर इस कला के क्षेत्र में संसार को मिश्र की विशिष्ट देन है—चतुर्भुजाकार पत्थर व ईंट की बनी इमारतें और पिरामिड का आकार बनाने का आविष्कार। बादशाह खुफू के लिए बना गाइजा का विशाल पिरामिड जगत् प्रसिद्ध है। पिरामिड मिश्र की सबसे न्यून विशेषता है, और संसार के अद्भुत वस्तुओं में एक। पत्थर काटने की कारीगरी की आशातीत उन्नति हुई। विशाल पत्थरों को यन्त्रद्वारा ढोया जाता था। यन्त्र-विद्या का विकास श्लाघ्य है। पिरामिड की खूबियाँ हैं उसकी सरलता (Simplicity), ठोसपन और चिरस्थिरता। पिरामिड-युग के बाद, सरदारों ने कब्र और मन्दिर बनाना शुरू किया। बारहवां राजवंश के समय में इस कला का अभूतपूर्व विकास हुआ। चट्टान काट कर बड़े २

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रेट स्फीन्क्स

(पृ० ३७)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

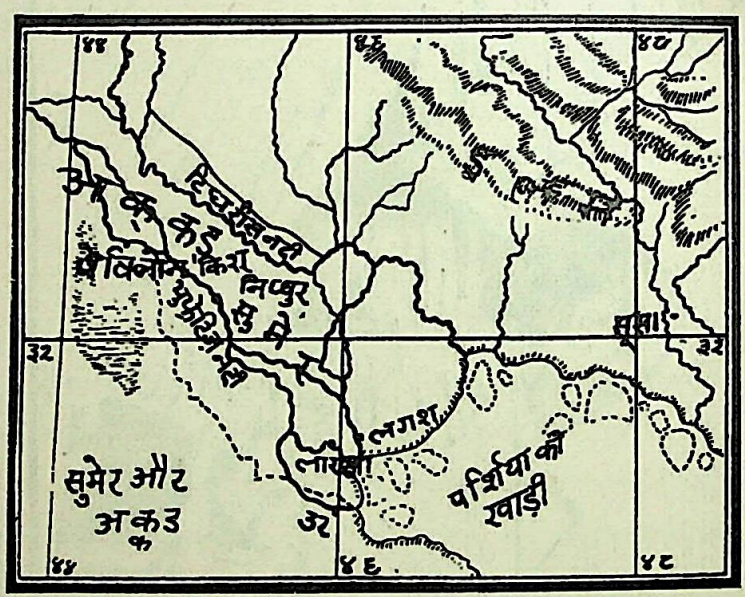

(Facing Page 54)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कब्रस्तान बनाए गये, बड़े२ मन्दिरों का निर्माण हुआ। मन्दिर, कब्र व राजहमल के बनाने में स्तम्भों का प्रयोग होने लगा। इन इमारतों में बहुत खर्च किया गया, और ये उस समय के ऐश्वर्य का जीता-जागता उदाहरण हैं। कारनक का मन्दिर दो हजार वर्ष में पूरा हुआ, और एक चौथाई मील तक फैला है।

शिल्पकला

इस कला का प्रारम्भ मिट्टी के बने मनुष्य व जानवरों की मूर्तियों से शुरू हुआ। लकड़ी पर नक्काशी के बाद ही पत्थरों की मूर्त्तियाँ बनने लगी होंगी। प्रथम वंश के समय का अलबेस्टर का बना हुआ लंगूर और ग्रेनाइट का बना सिंह मिला है। ये सरल पर यथार्थ शिल्पकला के साक्षी है। मूर्त्तिकला मिश्र की विशेषता है। इसका उद्गम का स्रोत धार्मिक था। इन्हें यह विश्वास था कि दूसरी दुनियाँ के जीवन के लिए आत्मा को शरीर की आवश्यकता थी। इस धारणा से प्रेरित होकर चतुर्थवंश के समय के बाद से कलाकारों ने चेहरे को चित्रित करने में काफी प्रयत्न किया और अवर्णनीय सफलता प्राप्त की। मूर्तिकला का ज्वलन्त उदाहरण ग्रेट-स्फीन्क्स है (Great Sphinx)। इससे बडी मूर्त्ति अभीतक नहीं बनी है। इसमें सिर मनुष्य का है और शरीर जानवर का। यह १६० फीट लम्बा है और ७० फीट ऊंचा; माथा ३३ फीट लम्बा है, चेहरा १३ फीट से अधिक चौडा है। खाफ्रे का सिर और एक लेखक की मूर्त्ति से यह पता चलता है कि कलाकारों ने अपनी कृति में शरीर व मन दोनों को प्रदर्शित करने की चेष्टा की। मिश्र की शिल्पकला के और भी उदाहरण हैं; जैसे सुन्दर स्तम्भ, बड़े २ कमरे (hall), राजाओं की अतिसुन्दर पत्थरों की विशाल मूर्त्तियाँ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीवालों पर चित्रकारी बड़ी ही लोकप्रिय थी। कब्रों व मन्दिरों की दीवालों पर चित्र रंगे व खोदे जाते थे। पशु, पक्षी, मनुष्य, युद्ध-दृश्य, धार्मिक रस्मों के चित्र दीवालों पर पाए जाते हैं। अन्य कलाएँ भी काफी विकसित हुईं। ताबीज, बड़े २ कटोरे व प्याले और आभूषण कड़े पत्थर के सुन्दर आकार के बनाये जाते थे। सोने-चाँदी के आभूषण—अंगूठी, हार, कंगन इत्यादि बहुत ही आकर्षक ढंग के मिले हैं।

विज्ञान

मिश्र वासियों को काल का ज्ञान व समय का पता सूर्य, चन्द्र व तारों की चाल से होता था। काफी प्रमाण है कि हेलियोपोलिस में ४२२६ ईसा पूर्व सूर्यवर्ष पर आधारित एक पंचाग बनाया गया था। ३६५ दिन का एक वर्ष, वर्ष में १२ महीने, और तीस दिन का एक महीना होता था। दिन व रात बारह घंटों का होता था, पर ऋतु के अनुसार इसमें फर्क पड़ता था। धूप व जलघड़ी का प्रयोग किया जाता था। माप के लिए हस्त, अंगूली और फुट का व्यवहार होता था।

गणित का ज्ञान प्रयाप्त था। दस का इकाई से गिना जाता था, जैसे १०, २०, ३० इत्यादि, और प्रत्येक अंक के लिए विशेष चिह्न था। गणित का प्रयोग व्यावहारिक था। रेखागणित का भी ज्ञान था। एक त्रिभुज का क्षेत्र फल आधार (base) और ऊँचाई के गुणनफल का आधा होता है इसका उन्हें पता था।

आयुर्वेद के क्षेत्र में मिश्र के प्राचीन निवासी पश्चिमी दुनियाँ के अग्रणी थे। यहाँ के मन्दिर आयुर्वेद के प्रथम स्कूल थे, और इनके पुरोहित प्रथम चिकित्सक। डाक्टर, सर्जन और ओझा इस पेशा के तीन अंग थे। चिकित्साशास्त्र की ६ पुस्तकें अभी तक वर्त्तमान हैं। इनमें कुछ तो ४००० वर्ष पुरानी हैं। एडविन-स्मीथ-पैपिरस शल्य-शास्त्र या जर्राही का प्रथम ग्रन्थ है।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभ्यता की अवनति और इसके कारण

किसी के दिन एक से नहीं रहते। अतिप्राचीन काल से मिश्र सभ्यता के शिखर पर चढ़ता आ रहा था। उसका साम्राज्य एशिया और अफ्रिका में विस्तृत था। उसके नाविक योरप के देशों से तिजारत करते थे। उसके कलाकारों की कृति अद्वितीय है, और सभ्यता के विकास में मिश्र ने युगान्तकारी प्रगति की। पर १९वां राजवंश के बाद, १३वीं शताब्दी ईसा से पूर्व के बाद, मिश्र की अवनति शुरू हुई। एशिया में प्रबल असीरिया का उदय हुआ, और असीरिया और मिश्र में एशियामाइनर व फिलस्तीन को अधिकार में रखने के लिए बराबर युद्ध होता रहा। वृद्ध मिश्र युवा असीरिया के आगे नहीं टिक सका, और असीरिया के सारगनवंश के राजाओं के समय में मिश्र पर कई आक्रमण हुए, और उसका बड़ा हिस्सा असीरियन साम्राज्य में चला गया। असीरिया की अवनति के बाद मिश्र में पुनर्जीवन की लहर दौड़ी, पर यह प्रगतिशील न होकर, अपने पुराने स्वर्णयुग की झूठी नकल करने में ही मिट गई। इस समय, सातवीं व षष्ठीशताब्दी ईसा से पूर्व, दुनियां के कई सभ्य क्षेत्रों में, भारत में, चीन में, इरान में, बेबिलोन में, एशिया माइनर व यूनान में महान् धार्मिक व सामाजिक सुधार-आन्दोलन चल रहे थे, और एक क्रियात्मक शक्ति जन-साधारण को नयी सभ्यता व नया समाज को संगठन करने में प्रेरित कर रही थीं। मिश्र भी इस लहर से अछूता न रहा। पर यहाँ अभाग्यवश यह लहर नवजीवन का संचार नहीं कर सकी। पुराने ऐश्वर्य की नींव पर नया और स्वस्थ समाज बनाने की कोशिश नहीं की गई। शक्ति का दुरुपयोग पुरानी वस्तुओं को फिर से बनाने में, गड़े मुर्दे उखाड़ने में किया गया। १५ वीं व १६ वीं सदी ईसा से पूर्व मिश्र का साज, जामा-जोडा १००० वर्ष बाद के मिश्र को पहनाने की हास्यास्पद चेष्टा की गई। यह कोशिश इतनी ही लज्जास्पद थी जितनी एक बूढ़ी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औरत का अपने गाल, और आठ को गुलाबी रंग से रंग कर जवान बनने की कोशिश। कोई भी सभ्यता जब आगे न बढ़कर पीछे की ओर चलने की गलत चेष्टा करती है, तब यह समझना चाहिए कि उसमें प्राणवायु का अभाव है। इसलिए मिश्र की अवनति होती गई। इरानियनों ने इस पर अधिकार जमाया, और फिर यूनानियों का सिक्का जम गया। प्राचीन मिश्र के इतिहास का अन्त हो गया, और अब वह योरप के इतिहास का एक अंग बन गया।

इस अवनति का क्या कारण था? मिश्र की उन्नति उस समय हुई थी जब कि दक्षिण पश्चिम एशिया में कोई बड़ी ताकत नहीं थीं। अट्ठारहवें राज-वंश के समय में मिश्र ने साम्राज्यवादी नीति अपनाई, और लगातार युद्ध में संलग्न रहा। इस नीति का फल था धन की वृद्धि, और इस धन का ही नतीजा था कला की सर्वतोन्मुखी उन्नति। पर इसका नतीजा बुरा भी हुआ। युद्धलिप्सा के कारण सैनिकों का प्रभाव बढ़ गया। उन्हें खेत व और बहुत सी सुविधाएँ दी गईं। सैनिक वर्ग एक शक्तिशाली समूह बन गया और राजा उनपर निर्भर करने लगा। सैनिकों की आवश्यकता इतनी बढ़ी कि विदेशी वेतनभोगी भी सेना में भर्ती हो गये। विदेशियों पर इस तरह आश्रित होना बड़ा ही हानिकारक सिद्ध हुआ। सेना का राष्ट्रीयरूप न रहा और विदेशी सिपाही मिश्र की सभ्यता व परम्परा का ख्याल न कर सके। विदेशी प्रभाव अल्पाधिक पड़ा, और मिश्र की प्रगतिशील सभ्यता कुंठित हो गई, विदेशी बोझ से दब गई। जब कोई भी संस्कृति प्रगतिशील नहीं रहती, तो उसका अन्त समीप होता है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का यह नतीजा हुआ कि मिश्र के राजवंश में भी विदेशी खून आ गया, और इस प्रकार राजा भी राष्ट्रीय संस्कृति का पक्का रक्षक न रह सका।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अखनातन की धार्मिक-क्रान्ति भी मिश्र की अवनति में सहायक सिद्ध हुई। मिश्रवासी अनेक देवी-देवताओं में विश्वास करते थे। एमोन सबसे बड़े देवता थे। एमोन (Amon) सूर्य का रूप था। अखनातन ने एकेश्वर-वाद चलाया। मूर्त्ति पूजा का विरोध किया। मन्दिरों को तोड़ा, और सबों को वाध्य किया कि वे सर्वशक्ति-शाली एटन (Aton) की पूजा करे। एटन (Aton) सूर्य नहीं, वरन् सूर्य के पीछे छिपी हुई शक्ति का रूप है, और यही शक्ति सारे विश्व में व्याप्त है। इस वैज्ञानिक बुद्धिवादी धर्म को समझना मिश्रवासियों के लिए मुश्किल था। स्वार्थी पुरोहितों के द्वारा उभाड़े जाने पर उन्होंने राजा का विरोध किया, और एटन धर्म का अन्त हुआ। इस विद्रोह का फल था एशिया में गड़बड़ी और मिश्र का साम्राज्य का पतन। अखटाटन नगर के पुराने खण्डहरों की खुदाई में कई महत्वपूर्ण पत्र विदेशी राजों के मिले हैं। इन्हे टेल-एल-अमरना लेटर्स (Tell-el Amarna letters) कहते हैं। अखनातन के समय की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति पर ये चिट्ठियाँ काफी प्रकाश डालती हैं। असीरिया, बेबिलोनिया, मित्तनी के बादशाह अखनातन से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रखते थे, और इन चिट्ठियों में मिश्र का सोना की मांग की गई है। इन चिट्ठियों से यह भी पता चलता है कि इन देशों में व्यापार भी खूब चलता था। आर्य मित्तानियों से तो अखनातन के परिवार से वैवाहिक सम्बन्ध भी था। इसलिए अखनातन के समय में विदेशी प्रभाव मिश्र पर काफी पड़ा और यह रूढ़िवादी व स्वार्थी मिश्रवासियों को बहुत खलता था। अमरना की चिट्ठियों से यह भी मालूम होता है कि उस समय दक्षिण-पश्चिम एशिया एक संकटकाल से गुजर रहा था और कई शक्तियां-हिटाइट, (हित्ती) मित्तनी, असीरिया, इत्यादि सार्वभौम सत्ता संघर्ष करने पर आतुर थे। ऐसे समय में मिश्र को थोथममस तृतीय के ऐसा वीर सेनानी की जरूरत थी, जो कि साम्राज्य की रक्षा

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर सकता। पर इस समय मिश्र में धार्मिक, क्रान्तिकारी व दार्शनिक चिन्तक अखनातन राज कर रहा था। जब एशिया से मिश्र के दोस्त व सैनिक अक्सर मदद के लिए सन्देश भेजते (ऐसे कुछ सन्देश-पत्र मिले हैं), तो उनकी अवहेलना की जाती और मिश्र का धन व शक्ति का उपयोग एटन धर्म को फैलाने में और गृहविद्रोह दबाने में किया गया। ऐसी स्थिति में एशिया का साम्राज्य का हाथ से निकल जाना स्वाभाविक था। समृाज्य के अन्त के साथ ही मिश्र के सुनहले दिन बीत गए। उन्नीसवाँ राजवंश के राजा रैमसिस द्वितीय ने सामृाज्य को पुनः स्थापित करने की कोशिश की, पर अन्त में यह कोशिश बेकार सिद्ध हुई। लोगों को युद्ध से रुचि हट गई। इसलिए राजा को विदेशी सैनिकों की भर्ती करनी पड़ी। थिविस् के मन्दिरों की दीवालों पर हम विदेशी सैनिकों के चित्र पाते हैं। उत्तरी भूमध्यसागर के ये विदेशी मिश्र पर आक्रमण करने लगे, और बहुत से मिश्र की सेना में भर्ती हो गए। मिश्र की अवनति में उत्तर भमध्यसागर तटवर्ती इन विदेशियों का बहुत बड़ा हाथ है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्थ अध्याय

नागरिक सभ्यता का विकास

नव प्रस्तर युग में अन्न उपजानेवालों ने धीरे २ सारे संसार में ग्रामिक सभ्यता फैलाई। इस काल में आबादी खूब बढ़ी, पर बढ़ती आबादी के लिए और भी उपजाऊ जमीन की आवश्यकता पड़ी, जिससे अन्न की कमी न हो। इस कारण कृषियोग्य जमीन के लिए कृषक जातियों में होड़ होने लगी। पहले तो जंगली जातियों पर विजय प्राप्त कर उपजाऊ जमीन की वृद्धि की गई। पर इतने से ही काम न चल सका। प्रत्येक ग्राम, परिवार को अपनी बढ़ती जनसंख्या के लिए अपनी अपनी शाखाएँ बनानी पड़ती। आसानी से सभी जातियों को जितनी जमीन की जरूरत थी, न भी मिलती, इसलिए आपस में लड़ाई भी होती। आर्थिक दबाव का परिणाम हुआ भीषण युद्ध का आरम्भ। यह सिलसिला अभी तक चल रहा है। प्रत्येक कृषकजाति को अपनी सुरक्षा और बढ़ती आबादी का पोषण करने के लिए युद्ध का सहारा लेना पड़ता। नवप्रस्तर युग की आर्थिक व्यवस्था में यह एक बड़ा व्याघात (Contradiction) था, और इस समय के उपकरणों में पत्थर के युद्धोपकारी कुल्हाड़ी और परत के बने छूरे (Flint daggers) प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। मनुष्य का मनुष्य शत्रु होना इसी युग से आरम्भ होता है। बालकन, यूनान, अनाटोलिया, सिरिया व इरान के प्राचीन मनुष्यों के क्रमबद्ध निवासस्थानों की खुदाई से वह मालूम होता है कि इस युग में एक सांस्कृतिक परम्परा पर दूसरी परम्परा स्थापित होती रही; अर्थात् एक जाति पर दूसरी जाति विजय करती रही। इस प्रकार जब कि एक ओर नव-प्रस्तर-युग में जनसंख्या की वृद्धि होती रही, दूसरी ओर उसके संहार की राह भी खुल

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गई। नव-प्रस्तर-युग का यह विरोधाभास नागरिक-सभ्यता के विकास से ही नियन्त्रित हो सका।

दूसरी समस्या थी आर्थिक दृष्टि से प्रत्येक ग्राम व जाति का स्वावलम्बी होना, व आत्मयथेष्ठता की नीति अपनाना। नव-प्रस्तर-युग में प्रत्येक परिवार अपने लिए पर्याप्त अन्न उपजा लेता था, कपड़े बुन लेता था, और अपनी रक्षा का प्रबन्ध करता था। यह स्थिति बहुत दिनों तक नहीं चल सकी। इसमें काफी असुविधा का सामना करना पड़ता। कालक्रम के अनुसार एक परिवार सुविधा के लिए दूसरे परिवार पर कुछ विशेष काम के लिए निर्भर करने लगा। एक परिवार अन्न उपजाता, तो दूसरा परिवार कपड़े बुनने में ही काफी समय लगाता, और तीसरा औजार व हथियार बनाने में मस्त रहता। इस तरह परिवार नहीं ; वरन् ग्राम अब आत्मयथेष्ठता का सिद्धांत का प्रतीक बना। पर इस आत्मयथेष्ठता (Self-Sufficiency) के सिद्धांत की विफलता एक दूसरे रूप में और भी स्पष्ट हो गयी। कृषक भविष्य के लिए मेहनत कर व अधिक खेत जोत कर कुछ अधिक अन्न उपजा सकते थे। पर यदि बाढ़, अनावृष्टि, तूफान, पाला का प्रकोप हुआ तब पशु व अनाज का नाश हो जाता था, और कृषकों की मेहनत बेकार हो जाती, और जीवन का साधन ही न रहता। इस विपत्ति से भी छुटकारा पाना, सभ्यता के विकास के लिए आवश्यक था, और नागरिक सभ्यता (Urban Civilisation) की उत्पत्ति ही इस समस्या का समाधान सिद्ध हुई। इस नयी सभ्यता का आधार था कृषकों को अपनी जरूरत से अधिक अन्न उपजाना, और इस अतिरिक्त अन्न से उन नये आर्थिक वर्गों का पोषण करना जो कि स्वयं अन्न नहीं उपजाते थे पर समाज का हित दूसरी तरह से करते थे। अतिरिक्त अन्न की उपज ही सभ्यता के विकास की कूंजी है। अन्न उपजाने की परेशानी से मुक्त होकर कारीगर, शिल्पीकार, वैज्ञानिक, साहित्यिक और सैनिक सभ्यता

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के विभिन्न अंगों की उन्नति कर सके, और संस्कृति बहुमुखी हो सकी।

इस क्रान्ति का रंगमंच परिमित था। एक भौगोलिक क्षेत्र में संकुचित था। पश्चिम में भूमध्यसागर व सहारा की मरुभूमि, पूर्व में हिमालय व थार-मरुभूमि, उत्तर में यूरेशिया के पहाड़ों, और दक्षिण में उत्तर अयनवृत (Tropic of Cancer) से घिरा हुआ क्षेत्र नागरिक-सभ्यता का क्रीड़ास्थल रहा। भूतल का इस भाग की जलवायु और प्राकृतिक भूगोल नागरिक-सभ्यता के विकास में बहुत हितकारी सिद्ध हुये। कच्चा माल खोजने से यहाँ काफी मिलता और बड़े पैमाने पर सहयोग करने से प्रचुर लाभ की आशा मनुष्य को प्रेरित करती रही। इस क्षेत्र में नदियाँ और समतल भूमि ने यातायत को आसान कर दिया और इसलिए एक क्षेत्र के अनुभव दूसरे क्षेत्रों में आसानी से पहुँच सके। इस तरह मनुष्य के सारे अनुभवों को एक दिशा में संचय कर सभ्यता का विकास द्रुतगति से हो सका। यह सभ्यता स्थानीय न रह कर अन्तर्राष्ट्रीय हो गई, क्योंकि पूरे क्षेत्र में यही सभ्यता व्याप्त रहीं।

नागरिक सभ्यता के मूलतत्त्व

अन्न उपजानेवाली व अन्न पर निर्भर करनेवाली जातियों के स्थाई निवासस्थान नदी किनारे या बारहमासी झरने के किनारे ही हो सकते थे। कृषि सिंचाई पर बहुत आश्रित है, इसलिए जहाँ पानी की दिक्कत न हो वहीं यह सभ्यता पनप सकती थी। इस क्षेत्र में अन्न के अलावे कई तरह के भोज्य-पदार्थ जसे खजूर, अंगूर, अंजीर प्रतिवर्ष मिल जाते थे। इस कारण लोग उन स्थानों में स्थायी रूप से टिक जाते थे।

कृषि की सिंचाई के लिए नहरों व आहरों को खुदाई की आवश्यकता थी। यह एक व्यक्ति व परिवार की शक्ति से परे था। इस कार्य

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के सम्पादन में सामूहिक शक्ति की जरूरत पड़ी, और व्यक्ति को सामाजिक दृष्टिकोण रखना पड़ा। ऐसे वृहत् कार्य के लिए संचालन शक्ति जरूरी है, और इसलिए सामाजिक संगठन की आवश्यकता महसूस होने लगी। यहीं से 'राज' नामक संस्था का विकास द्रुतगति से हुआ। राजा व सरदार समाज का नेतृत्व करता, और नहरें खुदवाने की जवाबदेही लेता। प्रत्येक मनुष्य से इस सामाजिक-कार्य में सहायता लेना राजा का काम था, पर जो व्यक्ति इसमें सहयोग नहीं करते, समाज उन्हें वहिष्कृत कर देता, और नहरें व आहरों का व्यवहार वे नहीं कर सकते। यह बड़ा भीषण दण्ड था। पर समाज के हित के लिए, समाज विरोधी शक्तियों के लिए, यह व्यवधान जरूरी था, और दण्ड देने का काम भी समाज ने राजा को सौंपा।

हम आगे बता चुके हैं कि आत्मरक्षा नवप्रस्तर युग की जातियों के लिए एक समस्या हो गई थी। कृषि योग्य जमीन की खोज में एक जाति दूसरी जाति से उलझ जाती, और युद्ध की आशंका प्रत्येक जाति को बनी रही। इसलिए प्रत्येक जाति को दूसरी जाति के आक्रमण से रक्षा करने की जरूरत पड़ी, और नागरिक सभ्यता की बुनियाद यहीं पड़ी। जन साधारण सुरक्षित स्थानों में जमा होने लगे, और बाहरी आक्रमण से बचने के लिए किलेबन्दी व मजबूत चहारदिवारी बनाने की आवश्यकता हुई, और इस महान् कार्य को भी राजा व सरदार के जिम्मे छोड़ा गया। खेतों के बीच असुरक्षित ग्रामों के स्थान में अब राजा का विशाल सुरक्षित किला अपने ईर्दगिर्द ग्रामों की रक्षा के लिए उठ खड़ा हुआ। नगर की उत्पत्ति की यही कहानी है, और नगर ही अब सभ्यता का केन्द्र हो गया।

नागरिक सभ्यता के विकास के लिए मनुष्य ने कई क्रान्तिकारी खोज और आविष्कार किया। ताँबा व काँसा का धातु शोधन, पशु-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्ति का उपयोग, पहियेदार गाड़ी, ईंट और मुहर (Seal) का प्रयोग। मनुष्य की इन क्रान्तिकारी कृतियों ने सभ्यता का विकास सम्भव कर दिया। धातु का प्रयोग ने प्रस्तर युग का अन्त कर दिया। धातुशोधन विद्या से जिस तरह का औजार व हथियार की जरूरत पड़ती बनाया जा सकता। पत्थरों के उपकरणों से ये अधिक मजबूत होते। इनके आकार व परिमाण कारीगर की कुशलता और व्यक्ति व समाज की जरूरत पर निर्भर करता। जितना बड़ा व जैसा चाहें ढाले जा सकते थे। पत्थरों के औजार बनाने में यह सुविधा नहीं थी। पत्थरों के औजार यदि टूट गये तो बेकार हो गए। उन्हें फिर जोड़ा नहीं जा सकता। पर तांबे व कांसे के टूटे औजार को गला कर फिर से ढाला जा सकता। कम खर्च व कम मेहनत में नया रूप दिया जा सकता था। ये उपकरण पत्थरों के उपकरण से अधिक टिकाऊ भी थे।

इन विशेष सुविधाओं व लाभ को व्यवहार में लाने के लिए मनुष्य को कई चीजों का आविष्कार करना पड़ा। अंगिठी, धातु गलाने की थरिया, सड़सी व चिमटा का आविष्कार धातुशोधन क्रिया के निमित्त हुआ। पर धातु-पदार्थों की रसद अपरिमित नहीं है, इसलिए इसी युग में मनुष्य ने यह बड़ी खोज की कि कुछ खनिज पत्थरों को गलाने पर, या उचित मात्रा में उन्हें गर्म करने पर कई प्रकार के धातुतुल्य पदार्थ मिल जाते हैं। रसायनिकशास्त्र में तब से बराबर उन्नति होती रही है। दो या अधिक धातुओं का मिश्रण (Alloy) का भी ज्ञान इस युग में हो गया। इस तरह धातु युग का द्रुतगति से आगमन हुआ और सभ्यता के इतिहास का रुख ही बदल गया।

धातुशोधन (Metallurgy) बड़ी ही कठिन और लम्बी क्रिया है। इसलिए धातु के काम करनेवाले कारीगरों के लिए यह पेशा सारा समय ले लेता है, और ये कारीगर विशेषज्ञ

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझे जाते हैं। अपने इस पेशे के अलावे उनसे कोई काम नहीं होता है, और न समाज लेना चाहता है। पर इनके बनाए हुई चीजों का उपयोग वे अपने घर में नहीं करते हैं, बल्कि इनकी माँग बाहर से होती हैं। अब तक मनुष्य वही चीजें पैदा करता था जो उसकी गृहस्थी के लिए जरूरी थी। पर अब वह ऐसी चीजें बनाने लगा जिसे दूसरों को जरूरत थी। इस तरह अपनी बनाई हुई चीजों के खपत के लिए उसे दूसरों पर निर्भर करना पड़ा। पर उसके लिए इन चीजों की खपत जरूरी थी, क्योंकि वह खाने की चीजें नहीं पैदा करता था। इसलिए समाज में अब ऐसे वर्गों की उत्पत्ति हुई जो कि अपने निर्वाह के लिए अपनी बनाई हुई चीजों के ग्राहक—अतिरिक्त अन्न पैदा करने वाले कृषकों पर आश्रित हो गए। ये कृषक भी हथियार व औजार के लिए इन नये वर्गों पर निर्भर करते थे। इस तरह समाज के भिन्न २ वर्गों का एक दूसरे पर आश्रित होना नये समाज का मूल आधार हो गया।

कारीगर अपने माल को परदेश व अपरिचितों में भी बेच सकते थे। आर्थिक लाभ के लिए वे एक जगह से दूसरी जगह, एक देश से दूसरे देश जाकर, अपनी कला का उपयोग चीजें बना कर करने लगे। इस तरह कई क्षेत्रों में एक ही प्रकार की चीजें, एक ही शैली व परम्परा का प्रचार हो गया। इसीलिए इस युग की धातु की बनी चीजें कई दूरस्थित क्षेत्रों में एक तरह की मिली हैं। यातायात की सुविधा के कारण बने माल एक जगह से दूसरी जगह जल्दी पहुँचने लगे, एक ही प्रकार के कारीगर कई जगहों पर चीजें बनाने लगे, और कई जगह दूसरी जगह की बनी चीजों की नकल भी होने लगी। अतः यह सभ्यता विश्वव्यापी बन गई, और विस्तृत क्षेत्रों में बहुत आदान-प्रदान होता रहा।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस युग की एक प्रमुख खोज है—बैलों के द्वारा खेत जोतना। पहले छोटे २ जमीन के टुकड़े पर औरतें मर्दों के द्वारा खेत जोतती थीं। इस काम में समय बहुत लगता था, और कार्य भी अरुचिकर था। मनुष्य ने जानवरों को पोसना तो पहले ही सीख लिया था, और उनके दूध व माँस उसे मिल जाते थे। पर अब अपने कंधे की मेहनत को उनके कंधों पर डाल देना भी जान लिया। पहले-पहल एक जोड़े बैल से खेत जोतना बड़ा ही युगान्तकारी घटना समझी गई होगी। बैलों का यह उपयोग की तह में हल, जुआ इत्यादि का आविष्कार है। ३००० वर्ष ईसा से पूर्व ही भारत, मिश्र और मेसोपोटेमिया में हल का व्यवहार होता था। अब कुदाली व फावड़े (hoe) से खेती नहीं होती थी। सब जगह हल-बैल का ही व्यवहार होने लगा। इसका फल यह हुआ कि खेती अब छोटे-छोटे टोपरों में न होकर विस्तृत खेत में होने लगी। अब खेत जोता जाने लगा, क्योंकि बैल मनुष्य से अधिक मेहनत कर सकता था, और हल फावड़ा से अधिक तेज काम करता था। जब खेतों में हल चलने लगा, तब इस कठिन काम से स्त्रियों को छुट्टी मिली, और घर गृहस्थी के काम में उनका एकाधिकार हो गया। समाज में उनका विशिष्ट आदर मिलने लगा, पर अन्न उपजाने पर जो उनका एकक्षत्र अधिकार था उससे वे वंचित हो गई, और इस कारण उनके अधिकार में भी फर्क आ गया। उनकी आर्थिक महत्ता और स्वतंत्रता का ह्रास होता गया।

बैल जोतकर खेत जोतना एक महत्वपूर्ण खोज है, क्योंकि मनुष्य ने अब पशुबल का उपयोग अपनी भलाई के लिए जान लिया। अभीतक वह अपनी शारीरिक शक्ति पर ही निर्भर करता था, पर अब वह दूसरी शक्ति का प्रयोग करना सीख लिया। पशुबल का व्यवहार भांप से चलनेवाली, इंजिन बिजली

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से चलनेवाले यन्त्र, पेट्रोल से चलनेवाली मोटर का व्यवहार का पहला कदम है।

नयी प्रेरकशक्ति (motive power) का व्यवहार कृषिकार्य के अलावे और भी दूसरी दिशा में होने लगा। अभी तक बोझा ढोने का काम मनुष्यों का, विशेषकर स्त्रियों का था। पर अब कुछ जानवरों के जैसे गदहे, खच्चर, बैल, ऊँट के कंधे इसके लिए विशेष उपयोगी सिद्ध हुये, और बोझा ढोने का काम इन जानवरों से लिया जाने लेगा। कुछ ही दिन बाद 'पहिये' का आविष्कार हो गया और बैलों व खच्चरों से जुती हुई पहियेदार गाड़ी ने यातायात के साधनों में क्रान्ति पैदा कर दी। आना-जाना, बोझा ढ़ोना अब बहुत सुलभ हो गया। दूरस्थित सांस्कृतिक केन्द्रों में लेन-देन बहुत आसान हो गया और बढ़ गया। सभ्यता अन्तर्राष्ट्रीय हो गई। बैल गाड़ी का प्रयोग ईसा से ३००० वर्ष पूर्व मेसोपोटेमिया, उत्तरी सिरिया, और भारत में होता था, इसके ठोस प्रमाण हैं। खच्चर व भुटिया घोड़े (Asiatic horse) को भी दो पहिये की गाड़ी में जोता जाने लगा।

अतः ईसा पूर्व चतुर्थ-हजार-शताब्दि के अन्त में बैल, घोड़े व गदहों, व दो पहिये वाली गाड़ी का व्यवहार के कारण स्थल यातायात आसान हो गया, और स्थल मार्ग से दूरस्थित संस्कृतियाँ एक दूसरे के निकट आ गईं। व्यापार व यात्रा ने दूसरे २ देशों की कला, यन्त्रशैली, और विचारों को मिला दिया, जिसका फल हुआ संस्कृतियों में समन्वय, सभ्यता की उन्नति और उसका अन्तर्राष्ट्रीय रूप का विकास पर एक देश से दूसरे देश में जाने का मार्ग सिर्फ स्थल मार्ग ही नहीं था। मनुष्य ने जलमार्ग को भी अपनाया। प्राचीन प्रस्तरयुग के शिकारी मनुष्य ने भी नदियों में लट्ठों के बड़े, या डोंगी का व्यवहार किया होगा। ईसा से ३००० वर्ष पूर्व भूमध्यसागर क्षेत्र में पालवाले नाव का इस्तमाल होता था। शायद इस तरह के नाव का पर्शिया की खाड़ी (Persian Gulf) में आविष्कार हुआ। इस

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आविष्कार से मनुष्य ने पहले पहल अप्राणी शक्ति या निर्जीव शक्ति (Inorganic force) के द्वारा प्रेरक शक्ति का उपयोग किया। ये भद्दे नाव उन्नीसवीं सदी तक चालू रहे।

नावों व गाड़ियों के द्वारा आवागमन में बड़ी क्रान्ति हुई। नये २ कारीगर व पेशेवाले उठ खड़े हुए। नाव बनाना, गाड़ी बनाना बढ़ई का काम था, और काफी कौशल की जरूरत थी। बढ़ई एक विशेषज्ञ था। इसी तरह कुम्हार की चक्की का आविष्कार ने बर्तन बनाना एक कौशलपूर्ण कला बना दिया। चलती हुई चक्की पर मिट्टी का लोंदा रख कर हाथ से सुन्दर आकार के बर्तन बना देना मामूली बात नहीं थी। जो काम हाथ के द्वारा बहुत दिनों में होता, वह अब चक्की पर कुछ घण्टों में हो जाता। और बर्तन भी पूर्ण सुडौल निकलता। पर इसके बनाने में अब इतनी हस्तकौशल व दक्षता की जरूरत होती, कि नवसिख को बहुत दिनों तक गुरु का शिष्य बनना पड़ता। अपनी चीजें व चक्की लेकर कुम्हार आसानी से एक जगह से दूसरी जगह जाकर बर्तन बनाता, और इसीलिए इस युग के बर्तन दूर २ देशों में एक से लगते हैं। बर्तन बनाने की कला अतिशीघ्र ही सारे विश्व की पूंजी हो गई, और एक ही शैली (technique) दूसरे २ देशों में पाई गई है।

इस स्थान पर एक मनोरंजक पहलू का उल्लेख करना असंगत न होगा। नवप्रस्तरयुग के आविष्कार अधिकतर स्त्रियों ने किया था, पर इस युग में मर्दों ने ही नये २ आविष्कार किये और सभ्यता के विभिन्न पहलू पर उनका ही आधिपत्य रहा। तभी से यह क्रम चला आ रहा है। नारियों को कई कठिन व आवश्यक कर्मों—जैसे कुदाली चलाना, बोझा ढोना, बर्तन बनाना—से मुक्ति देकर मर्दों ने मातृ अधिकार के आर्थिक आधार का जड़ खोद दिया।

धातुशोधन (Metallurgy) व धातु का व्यवहार, पहिया, बैलगाड़ी, खच्चर, न मालूम ने नाव के आविष्कार से एक नई

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्थिक व्यवस्था का जन्म दिया। यह नई आर्थिक व्यवस्था का संगठन नागरिक सभ्यता में हुआ। नागरिक सभ्यता का विकास और पूर्ण उन्नति नदियों की उपजाऊ घाटी में सुलभ हुई। यहाँ का वातावरण व प्राकृतिक साधनों का समुचित फायदा उठाने पर काफी प्रतिफल मिलता था। इसीलिए नागरिक सभ्यता का पूर्ण विकास सिंधु नदी की घाटी, नील नदी की घाटी और टिघरिस-यूफ्रेटिस् नदी की दोआब में, जिसे मेसोपोटमिया कहते हैं, हुआ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंचम अध्याय

मेसोपोटेमिया की सभ्यता

मेसोपोटेमिया-टीगरीस और यूफ्रेटीस् नदियों के मध्यस्थित प्रदेश को कहते हैं। प्राचीनकाल में मेसोयोटेमिया के दो प्रमुख भाग थे—उत्तर में असिरिया और दक्षिण में बेबिलानिया। बेबिलिनिया के दक्षिण भाग को सुमेर (Sumer) था, और उसके निवासी सुमेरियन कहाते थे।

नागरिक सभ्यता की उत्पत्ति व उसका विकास का सिलसिलेवार पता हमें मेसोपोटेमिया के प्राचीन खंडहरों व टीलों की खुदाई से मिलता है। यहाँ पुराने शहरों की खुदाई से यह पता चलता है कि किस तरह नवप्रस्तर युग के बाद धातु युग आया, और ग्रामीण सभ्यता ने नागरिक सभ्यता को स्थान दिया।

शहर बसाने के पहले मनुष्यों को काफी अन्न, पानी और मकान बनाने के साधन रहने चाहिये। यूफेटिस-टिघरिस के बीच के प्रदेश में इन सब चीजों का बाहुल्य था। वर्षा कम होती थी। इसीलिए सिंचाई के लिए नहरें बनाना जरूरी था, और इस काम में जनसाधारण का सहयोग व एक संचालनशक्ति की आवश्यकता भी। धूप खूब होती थी, इसलिए धूप में सूखे ईटों का मकान बनाने में आसानी थी। जमीन उपजाऊ थी, और मछली, जंगली मुर्गी व सूअर खूब मिल जाते थ। खजूर बहुत पैदा होता था, और भोजन का एक अंश था। उपजाऊ भूमि व सिंचाई की सुन्दर योजना के कारण अतिरिक्त अन्न पैदा हो सकता था, और यही नागरिक सभ्यता का विकास का आधार था।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन सुमेर की सभ्यता

यहाँ के सबसे प्राचीन निवासी, जिन्होंने शहरों की स्थापना, की, सुमेरिअन थे। ये कौन थे और कहाँ के रहने वाले थे, इसका ठीक पता नहीं चलता। प्रोफेसर हाल साहव का मत यह है कि ये लोग हिन्दुस्तान से आये, और द्राविड़ जाति के थे। मोहन्जेदाड़ो व हरप्पा में पाई हुई बहुत सी चीजें सुमेर की हैं, और कुछ पर सुमेरिअन सभ्यता का प्रत्यक्ष प्रभाव है। सिंधु तटकी सभ्यता ने सुमेरिअन सभ्यता को प्रभावित किया था इसका भी ठोस प्रमाण हैं। सुमेरिअनों ने शहरें बसाई जिनमें निपूर (Nippur), उर (Ur) प्रमुख हैं। ये लोग लिखना भी जानते थे। गीली मिट्टी पर नरकट (Reed) की कलम से चिह्न बनाते थ, जो कि सूख कर बहुत कड़ी हो जाती। इनकी पहली लिपि चित्रसंकेत सम्बन्धी थी, पर कुछ दिनों वाद स्वर प्रयायवाची हो गई। सुमेर-लिपि में ३५० चिह्न थे, प्रत्येक चिह्न से एक स्लेवल (Syllable) समझा जाता था। सुमेर-लिपि में वर्णमाला (Alphabet) का सर्वथा अभाव था। इस लिपि का आकार पच्चड़ (Wedge) का था, इसलिए इसे Cuneiform (Wedge) लिपि कहते हैं।

इनके नगरों में आपस में लड़ाई होती रहती, और कभी एक, और कभी दूसरा अपना आधिपत्य स्थापित करता। प्रत्येक नगर का एक विशेष देवता होता, और युद्ध में विजय या पराजय उसी देवता की हार या जीत समझी जाती। प्रत्येक शहर में राजा और उसके सामन्त थे। कारीगरों, शिल्पकारों व सरकारी दफ्तरों में काम करनेवालों का मध्यमवर्ग था। पुरोहितों व पुजारियों का संगठन बहुत मजबूत था और प्रभावशाली था, क्योंकि उस समय मनुष्य बहुत धर्मभिरु था, और पुरोहित ही मन्दिरों की देखरेख करता था, ईश्वर की इच्छा को समझ सकता था। सुमेरिअन लोग देवता के लिए ऊँचे-ऊँचे मन्दिर वनाते थे

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन्हें चबूतरेदार मीनार (Terraced Tower, Ziggurat) कहा जाता है । शायद बेबिलोन की मीनार ही यहूदियों की बेबल की मीनार की कहानी का स्रोत है। इस समय की शिल्पकारी मिश्र की शिल्पकारी की तुलना नहीं कर सकती पर धातु के बने कुछ बर्तन व गुलदस्ते बड़े ही सुन्दर हैं। प्रत्येक महीने का आरम्भ नया चाँद से होता था, और बारह महीने का एक वर्ष होता था । पर ऐसे बारह महीने एक वर्ष से कम होते हैं, और सुमेरवासी पीछे से एक महीना जोड़ने लगे। इसी पंचाग को यहूदियों व मुसलमानों ने अपनाया। प्रत्यक वर्ष का नामकरण उस साल की कोई महत्वपूर्ण घटना के उपलक्ष्य में होता था। इस कारण इनके वर्षों के नाम से इतिहास की प्रमुख घटनाओं का पता चल जाता है।

सारगन

सुमेरिअनों का साम्राज्य बहुत दिनों तक नहीं टिक सका। उत्तर बेबिलोनिया में, एक्कड में (Akkad) सारगन (Sargon) नामक महापुरुष पैदा हुआ और उसने पूरे सुमेर प्रांत को अपने कब्जे में कर लिया। पूर्व में इलम (Elam) की पहाड़ियों से लेकर पश्चिम में भूमध्यसागर तट तक उसका साम्राज्य विस्तृत था। पूर्व देश में शायद यह पहला सबसे बड़ा साम्राज्य था। एक्कडवासी सुमेरिअनों की तुलना में असभ्य थे, पर यदि उन्होंने सुमेरिअनों पर विजय प्राप्त किया तो सुमेरिअन सभ्यता ने उनके हृदय पर। उन्हें सुमेरिअन संस्कृति अपनानी पड़ी और सुमेर-एक्कड साम्राज्य दो सौ वर्ष से अधिक फलता-फूलता रहा। सुमेरिअन व सेमाइट (Semite) जातियों में रक्तमिश्रण हुआ। इस वंश का राजा नरमसिन (Naramsin) ने पूरब में विजय प्राप्त की, और पत्थरों में खुदा नरमसिन के विजय का दृश्य उस समय की मूर्तिकला का आकर्षक नमूना है । इसी युग में एशिया में प्रथम साहित्य की सृष्टि हुई। कई पौराणिक कथाएँ लिखी गईं जिनसे

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन, मृत्यु व मृत्युपर्यन्त जीवन की समस्याओं पर उस समय का दृष्टिकोण क्या था, पता चलता है। इनमें गिल्गमेश (Gilgamesh) का महा-काव्य (Epic) प्रसिद्ध है। गिल्गमेश महान् योद्धा था, और उसके हौसले बहुत बड़े थे। कई कठिनाइयों के बावजूद उसने अमरत्व का पौधा पा लिया, पर मनुष्य के अभाग्यवश उसके हाथ से छुट कर सदा के लिए विलीन हो गया। पर मानव का यह प्रशंसनीय प्रयास हमें बराबर उत्साह और प्रेरणा देता रहेगा।

हम्मूराबी

सुमेरिअन-एक्कडियन साम्राज्य भी कालक्रम से कमजोर हो गया, और एक नई सेमाइट जाति ने सिरिया से इस देश पर आक्रमण किया, और अमोराइट राजवंश की स्थापना बेबिलोनिया में हुई। इस वंश का छट्ठा राजा-हम्मूराबी था। इसका समय ईसा से १८०० वर्ष पूर्व माना जाता है।

हम्मूराबी ने सारे देश को एक सूत्र में बाँधा, और बेबिलोन अपनी राजधानी बनाई। तभी से बेबिलोन संसार प्रसिद्ध हो गया, और सारा देश उसके नाम पर बेबिलोनिया कहलाने लगा। हम्मूरावी प्राचीन राजाओं में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। उसने देश में सिर्फ एकता ही नहीं स्थापित किया, बल्कि ऐसी शाँति और संगठन फैलाया कि उस समय की दुनिया आश्चर्य में डूब गई।

उसके राज्य के विषय में हम उस समय की चिट्ठियों से जानते हैं। बेबिलोनिया में गिली मिट्टी की टिकरियों पर नरकट की कलम से चिन्ह बनाये जाते, और वे सूखकर खूब कड़ा हो जाते। यह लिपि बहुत काल तक चली। आगे चल कर महत्व-पूर्ण संदेश की गुप्तता की रक्षा के लिए बन्द लिफाफे (Envelopes) का भी आविष्कार हुआ। लिखी हुई टिकरियों (Tablets) को दोनों ओर से गिली मिट्टी से बन्द कर दिया जाता और

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस पर मुहर लगा दी जाती। फिर उसे भट्ठी में पका कर जला दिया जाता। इस तरह संदेश की गुप्तता की रक्षा का समुचित प्रबन्ध किया गया। हम्मूरावी के समय की ऐसी कितनी टिकरियों का पता चला है। इनसे हमें उसके व्यस्त जीवन के विषय में जानकारी होती है, और राजकार्य व राज-शासन का भी ज्ञान होता है। इन चिट्ठियों में हम कभी हम्मूरावी को बाढ़ के प्रकोप को रोकने की आज्ञा देते देखते हैं, कभी वह सरकारी अफसरों को कर वसूल करने में कड़ाई करने का हुकुम दे रहा है, कहीं हम्मूरावी अपराधी अफसरों को दण्ड की धमकी देता है, कभी न्याय कर रहा है इत्यादि इत्यादि। देश की सभी समस्याओं का, प्रत्येक घटनाओं का उसे पता रहता था, और सब कुछ उसके हुकुम से होता था।

हम्मूराबी के समय की सबसे प्रमुख देन है उसकी धर्म-संहिता (Law Code)। हम्मूरावी न्यायप्रिय था, और उचित न्याय के लिए उसने यह जरूरी समझा कि प्रत्येक नागरिक और सरकारी कर्मचारी को कानून का ठीक ज्ञान हो। कई पीढ़ियों से कानून चला आ रहा था। इन सबों को एक स्थान पर यथाक्रम से इकट्ठा करना हम्मूराबी का काम था। हम्मूरावी ने सभी कानूनों को नहीं बनाया, कुछ कानून तो बहुत पहले के थे, कुछ हाल के, और कुछ उसके समय के। इन सबों को विधिपूर्वक एकत्रित कर उसने धर्म-संहिता बनाई, और उसे एक चट्टान पर खुदवाया। इस चट्टान के ऊपर एक दृश्य था, जिसमें हम्मूराबी को सूर्यभगवान धर्म-संहिता दे रहे थे। इस दृश्य का यह आशय था कि कानून की यह पुस्तक हम्मूराबी की बनाई नहीं, वरन् दैवी थी, इसलिए इसका पालन करना मनुष्य के लिए धार्मिक कर्त्तव्य था। देवता ने राजा को इस काम के लिए यन्त्र चुना, अतः राजा की प्रतिष्ठा भी बढ़ी। इस धर्म-संहिता को भगवान् मारडुक (Marduk) के मन्दिर बेबिलोन में प्रतिष्ठित किया गया। सौभाग्यवश यह

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्थर अभी तक मौजूद है और संसार की सबसे प्राचीन धर्म-संहिता यही है। इस संहिता से हमें उस समय के सामाजिक और आर्थिक नियम का पता चलता है। न्यायपद्धति, वैयक्तिक अधिकार व नागरिकों के कर्त्तव्य का ज्ञान होता है।

दो प्रकार की जमीन्दारी न्याय संगत थी। पहला तो वह जमीन जो राजा नागरिकों को सैनिक सेवा के लिए देता था; दूसरा वह जमीन जिन पर स्वामी का पूरा अधिकार था, वेच दे, दान दे दे, या रेहन कर दे। सैनिक सेवा के बदले जो जमीन मिलती थी उसे वह अलग नहीं कर सकता था। संसार में वैयक्तिक सम्पत्ति के सिद्धांत का जन्म व विकास सबसे पहले यहीं हुआ।

रैयत, व्यवसायी और मजदूरों के विषय में कई नियम दिये गये हैं। जर्राह की फीस तक तय थी। जमीन को कृषिकार्य के लिए किराए पर देने का किराया निश्चित था।

समाज

गुलामों की आवश्यकता पर यथेष्ठ ध्यान दिया गया था। प्राचीन सभ्यताओं में दास-प्रथा खूब प्रचलित थी। बड़ी २ इमारतों का निर्माण, आहर व नहरों की खुदाई, धरेलू कार्य का सम्पादन, सभी दासों के द्वारा ही किया जाता था। सच पूछा जाय तो प्राचीन सभ्यताओं की अनुपम देन—पिरामिड, जिगुरैट (Ziggurat), विशाल-भवन व मन्दिर दासप्रथा के कारण ही सम्भव हो सके। बेबिलोनिया में गुलामों को पहिचान के लिए दागा जाता था, और उन्हें विशेष प्रकार की पोशाक पहननी पड़ती थी। स्वतन्त्र नागरिकों पर आक्रमण करने पर दासों को कड़ी सजा मिलती थी। महीने में तीन दिन छुट्टी मिलती थी। दास सम्पत्ति अर्जन कर सकते थे, और अपनी स्वतन्त्रता खरीद सकते थे। यदि उनके माता या पिता स्वतन्त्र नागरिक हों, तो वे भी स्वतन्त्र समझे जाते थे। दासता से मुक्ति पाने के और

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी उपाय थे। मालिक को अपने दास की जिन्दगी या मौत पर कोई अधिकार नहीं था।

परिवार में पति और पिता का पूर्ण अधिकार था। ब्याह माँ-बाप तय करते थे, और कानूनी नियमपत्र (Registration) जरूरी था। लड़की को माँ-बाप के यहाँ से दहेज मिलता था, और दामाद अपने श्वसुर को उपहार देता था। यदि एक पत्नी से सन्तान न हो तो पति उसे तलाक दे सकता था, पर तलाक के साथ उसे स्त्रीधन भी देना पड़ता। पति एक स्त्री रहते दूसरी शादी भी कर सकता था। यदि पत्नी भ्रष्टाचरणा निकली तो उसे नदी में फेंक दिया जाता। कर्ज को अदा करने में पति अपनी स्त्री व बच्चों को गिरवीं रख सकता था। यदि कर्ज अदा न हो सका तब महाजन कर्जदार की स्त्री व बच्चों को तीन वर्ष तक दास बना लेता था। यदि स्त्री रोगी रही तब भी पति उसे घर से नहीं निकाल सकता था, पर उसे दूसरी शादी करने का अधिकार था।

न्याय

दण्ड विधान (Criminal law) का आधार था, जैसे का तैसा। यदि किसी मनुष्य ने दूसरे की आँखें बर्बाद कर दी, तो उस अपराधी की आँखें फोड़ दी जाती, यदि किसी ने दूसरे का दाँत तोड़ दिया तो उसे अपने दाँत से हाथ धोना पड़ता। यदि किसी राज ने मकान बनाने के समय असाव-धानी की, और मकान गिर जाने से मकान मालिक के लड़के की जान चली गई, तो उस राजमिस्त्री के लड़के की जान ले ली जाती। दण्डविधान का एक लक्षण यह था कि दण्ड देने में वर्ग विशेष का ध्यान रखा जाता। दासों के प्रति अपराध का दण्ड कम होता, पर दासों के द्वारा स्वतन्त्र नागरिकों के अधिकार पर चोट की सजा अधिक होती। यदि किसी मनुष्य ने पुजारी व राजा के

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैल, बकरी या भेंड़ की चोरी की तो उसे तीस गुणा अर्थ दण्ड देना पड़ता, पर यदि वे चीजें साधारण स्वतन्त्र नागरिक की रही, तब दस गुणा दण्ड देकर ही पींड छुट जाता। बलात्कार, चोरी से भगा ले-जाना, व्यभिचार, डकैती, युद्ध में कायरता की सजा थी डूबा कर मारना या शूली पर चढ़ा कर मारना। असत्य अभियोग या जादू व ओझा-डाइन से संबंध रखनेवाले मुकदमों का फैसला कठिन परीक्षा (Trial by Ordeal) से होता था। इस परीक्षा में जल और अग्नि का प्रयोग होता। अभियुक्त को नदी में फेंक दिया जाता, यदि वे डूब जाते तो दोषी, उपलाये रहते तो निर्दोष समझा जाता। नगर के शासकों को डकैती व चोरी से माल की हानि का चुकता करना पड़ता।

मुकदमों की सुनवाई मन्दिरों में होती। पुजारी गवाहों की साक्षी लेते, और राज न्यायाधीश फैसला देते। मौखिक गवाही भी ली जाती पर लिखित साक्षी पर ही जोर दिया जाता। निची कचहरियों से ऊँची कचहरियों में अपील सुनी जाती। राजा सर्वोच्च न्यायालय था और उसका फैसला अन्तिम था। सभी मुकदमों की फाइल संग्रहालय में सुरक्षित रखी जातीं, जिससे कि समय पर काम आवे। फैसलों की नकल भी पार्टिय. को मिल सकती थी। बेबिलोन की न्यायपद्धति बहुत अंशों में दकियानुसी थी। पर कुछ अंशों म आधुनिक सिद्धांत भी पाए जाते हैं।

आर्थिक दशा

इस काल में बेबिलोनिया की आर्थिक उन्नति बहुत हुई। अन्न व खजूर की उपज काफी होती थी। ऊन बिनने का व्यवसाय बहुत सफल था। पश्चिमी एशिया में ऊनी कपड़े पहने जाते थे।

व्यापार बहुत बढ़ा-चढ़ा था। स्थायीसेना सीमाओं की रक्षा करती थी, और शान्तिपूर्ण वातावरण में व्यापारियों की दशा

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अच्छी रही। बेबिलोनिया के व्यापारी शहर-शहर घूमते पाए जाते थे। व्यापारियों को अपनी मुहर रहती थी, और कई आँगनों में कपड़े की गाठों का ढेर पड़ा रहता, और सब पर मिट्टी के मुहर पर खुदा रहता व्यापारी का नाम। कभी व्यापारी संघ की भी मुहर मिलती है। ये टूटी मुहरें अभी भी बेबिलोनिया के शहरों के कूड़ाकरकट में पड़ी मिलती हैं। आर्थिक व्यवस्था इतनी विकसित हो चुकी थी कि व्यापारियों के एजेन्ट क्रय-विक्रय में नगद पैसे न देकर उधार-पावने का चिट्ठा देते, और प्रत्येक व्यापारी को रोकड़बही व उधार पावने की वही रखनी पड़ती। कहीं तो बैंक ऐसी संस्था का भी पता चलता है, जो कि व्यापार का आय-व्यय का प्रबन्ध करता। बेबिलोनिय में व्यपारीवर्ग का बड़ा प्रभाव था। सबसे धनी और साधनपूर्ण वर्ग यही था।

पुजारीवर्ग

दूसरा प्रभावशाली वर्ग था पुजारियों का। बड़े विशाल मन्दिरों की स्थापना में हजारों मजदूरों की आवश्यकता पड़ी होगी। इनमें कुछ तो इस पुण्यकार्य में स्वेच्छा से हाथ बटाने आए होंगे, पर बहुतों को तो वेतन या वेतन के रूप में कुछ मिलता ही होगा। कम से कम जब तक ये लोग काम करते होंगे तब तक तो इनका पोषण होता ही होगा। उपजाऊ भूमि से उपजाया हुआ अतिरिक्त अन्न से इनकी भूख मिटाई जाती। मंदिरों पर काफी खर्च किया जाता था। इससे यह प्रत्यक्ष है कि मंदिरों में धन का संग्रह होता था, और वहीं से मजदूरों व सेवकों में इस धन का वितरण होता। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन बेबिलोनिया में यह विश्वास था कि जमीन का सच्चा मालिक देवता हैं। पर इन देवताओं को वास्तविक प्रतिनिधि की आवश्यकता अनिवार्य थी, इसलिए मंदिरों के साथ-ही-साथ पुरोहित व पादरी की उत्पत्ति हुई।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेबिलोनिया में बहुत पहले ही पुजारियों ने अपना संगठन कर लिया, और यह संगठन देवता के समान ही सनातन समझा गया। एक पुजारी के मरने बाद उसकी जगह दूसरा ले लेता। ईसा से चार हजार वर्ष पहले ही पुजारियों ने देवता की सम्पत्ति का प्रबन्ध करने का अधिकार ले लिया था, और अतिरिक्त धन का उपयोग करने का हक भी उन्हीं का था। सिद्धांततः नगर की सभी जमीन देवताओं में बंटी थी, सबसे अधिक और महत्वपूर्ण जमीन नगर के प्रमुख देवता की जमींदारी थी। पर वास्तव में इन देवताओं के पुजारी ही इस विशाल सम्पत्ति के मालिक थे।

मन्दिर इस सम्पत्ति का प्रबन्ध व अतिरिक्त धन (Surplus wealth) के उपयोग का कार्यालय था। मन्दिरों में अन्न का गुदाम रहता। कर के रूप में जो अन्न आता वह यहीं जमा रहता। इसी अतिरिक्त अन्न से कारीगरों व मजदूरों का पोषण होता। मंदिरों में भिन्न २ कौशल व कला (Crafts) का कार्यालय था, और कारीगर काम करते। 'वौ' देवी के मन्दिर में २१ नानवाई (Baker, पकाने वाला) रहते थे जिन्हें वेतन के रूप में जंव (Barley) मिलता था, और यहाँ २७ दासियाँ, ६ दासों के साथ २५ शराब बनाने वाले, भेड़ों से ऊन निकालने के लिए ४० स्त्रियाँ, सूत कातने वाली व बिननेवाली स्त्रियाँ, और कई लोहार, सोनार, कांसार इत्यादि इस मंदिर में रह कर मंदिर के अधिकारियों के लिए काम करते थे। इस तरह मंदिर एक दैवी गृहस्थी का केन्द्र था, जिसके काम भिन्न २ विशेषज्ञों को बाँट दिया गया था। ये विशेषज्ञ अपने लिए अन्न नहीं उपजाते थे, और इसलिए इनका भरन-पोषण अतिरिक्त अन्न से होता था। अतः मंदिरों के द्वारा नहरों का उचित प्रबन्ध करना और अतिरिक्त अन्न उपजाना इस नयी आर्थिक व्यवस्था के लिए जरूरी हो गया। इस नयी आर्थिक व्यवस्था में प्रत्येक परिवार की आत्म यथेष्टता व स्वावलम्बन का

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्त हो गया, और समाज का एक वर्ग दूसरे वर्ग पर आश्रित हो गया। कारीगर व मजदूर यदि अन्न उपजाने के कष्ट से मुक्त हो गये तो उनकी स्वतन्त्रता भी खो गई। अब उन्हें अपना श्रम-बेचकर पेट पालना होता।

बेबिलोनिया के प्राचीन मंदिर उद्योगों व व्यापार का केन्द्र था। यहाँ से कर्ज भी दिया जाता, और नागरिक अपनी अतिरिक्त पूंजी भी यहीं जमा करते। सूद की व्यवस्था थी। मंदिर आजकल के बैंक का काम करता। कला व आमोद का भी केन्द्र यही था। वाद्यक बाजे बजाते, गायक गाना गाते, नृतक नृत्य करते, और कहानी कहनेवाले कहानी कह कर लोगों का मनोरंजन करते।

राजनीतिक क्षेत्र में भी मंदिरों का बड़ा हाथ रहता। नगर नगर—देवता का क्षेत्र समझा जाता, और नगर का राजा व सरदार उसका लौकिक प्रतिनिधि। देवता के नाम पर ही राजा राज चलाता, और अपने को उसका पुजारी ही समझता। इसलिए पुजारीवर्ग, जो कि दैवी सम्पत्ति का प्रबन्धकर्त्ता था, राजा व शासन पर काफी प्रभाव रखता।

धर्म

सुमेरिअन और बेबिलोनियनों के धार्मिक विश्वास प्राचीन विचारों पर आधारित थे। उन लोगों की यह धारणा थी कि स्वप्न पाताल से प्रेतों के द्वारा लाई हुई दैवी संदेश है। कोई भी प्राकृतिक घटना शकुन व अपशकुन समझी जाती थी।

प्रमुख देवता ६ थे। अनु (Anu) स्वर्ग का देवता, एन्लिल (Enlil) वायु का देवता, इआ (Ea) पृथ्वी का देवता, निन्तुद (Nintud) उपज की देवी, सिन (Sin) चन्द्रदेव, और उतु (utu) सूर्यदेव थे। जब सेमिटिको का बेबिलोनिया पर आधिपत्य हो गया तब सेमिटिक देवताओं को सुमेरिअन देवताओं

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से मिला दिया गया। सुमेरिअन का सूर्यदेव सेमिटिक का सूर्यदेव शमश (Shamash) बन गया। बेबिलोन का सेमिटिक देव मारदूक (Marduk) सर्वश्रेष्ठ देवता माना जाने लगा।

प्रत्येक परिवार के खास देवी-देवता होते थे, और इनकी मिट्टी की मूर्त्तियाँ मिली हैं। परिवार का पिता इन देवताओं का मुख्य पुजारी था। इन देवताओं की पूजा की आज्ञा सिर्फ परिवार के सदस्यों को दी जा सकती थी। प्रत्येक नगर के भी विशेष देवता होते थे, और नगर-देवता के लिए विशाल मंदिरों का निर्माण होता था। नगर-देवता ही नगर का शासक समझा जाता था, इसलिए राजा का मुख्य कर्त्तव्य था देवता की यथोचित पूजा। पर जब पूरा देश एक सूत्र में बंध गया, तब राष्ट्रीय भावना की उत्पत्ति हुई, और राष्ट्रीय देवताओं की कल्पना की गई। निप्पुर का एन्लिल-धर्म को राष्ट्रीय स्थान मिला। निप्पुर मेसोपोटेमिया का पवित्र नगर था, और उसका नगरदेवता एन्लिल प्रत्येक राजवंश का संरक्षक। सार्वजनिक धर्म था इनन्ना व इश्तार की पूजा। इनन्ना उपज की देवी थी। माँ और दूधपिती सन्तान की मिट्टी की मूर्त्ति इनन्ना का ही रूप हैं। मातृदेवी की पूजा प्राचीन काल में सर्वाधिक जनप्रिय थी।

बेबिलोनिया के प्राचीन निवासी भत-प्रेतों में बहुत विश्वास करते थे, और इनकी बुरी हरकतों से बराबर डरते थे। उनका यह ख्याल था कि ये बुरी प्रेतात्माएं तूफान व महामारी लाती है। इसलिए पूजा का असली मतलब था इन बुरे ग्रहों की शान्ति, इनसे मनुष्यों की रक्षा।

पर मनुष्य को दुःख सिर्फ बुरे ग्रहों, भूतों या प्रेतों के कारण ही नहीं होता था। प्राचीन बेबिलोनियनों का यह भी विश्वास था कि मनुष्य के बुरे आचरण भी दुख के कारण होते हैं। 'पाप'

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का भाव इनके धर्म में जोर पकड़ता गया, और ईश्वर से प्रार्थना की जाती थी कि उनके पाप मिट जायँ। दुःख से पीड़ित होकर भी मनुष्य धैर्यपूर्वक ईश्वर की पूजा करते रहता क्योंकि उसे विश्वास था कि अन्त में देवता दया करेंगे ही।

देवताओं के आशीर्वाद से सब कुछ मिल सकता था। उन्हीं की कृपा से भविष्यवाणी करने की योग्यता भी मिलती। भविष्यवाणी करने वाला पुरोहित को भविष्यज्ञाता कहा जाता। चतुर पुरोहित यज्ञ में बलि के दिये हुये भेड़ की यकृत या गुर्दे (liver) पर के रहस्य-पूर्ण चिह्नों की व्याख्या कर भविष्य बता सकता था। तारों व ग्रहों की चाल से भी भविष्यवाणी कर सकता था। ये अभ्यास पश्चिम में भी फैल गए, और रोम में यकृत से अर्थ निकालना एक साधारण अभ्यास था।

शिक्षा

पर प्रत्येक साधारण मनुष्य भविष्यवाणी नहीं कर सकता था तारों व ग्रहों की चाल का पता नहीं लगा सकता था। बलिप्रदत्त —भेड़ की यकृत पर के चिह्नों का रहस्योद्घाटन वह नहीं कर सकता था। यह काम विशेषज्ञ ही कर सकते थे, इसलिए शिक्षा की जरूरत पड़ी। राजशासन या धंधों को चलानेवाले क्लर्कों के लिए भी शिक्षा की जरूरत पड़ी। गणित के नियम व अंक लोकसम्मत (Conventional) थे। लोगों ने मान लिया था कि अमुक चिह्न का अमुक अर्थ होगा। अंकों के लिखने की विधि भी मान ली गयी थी। ये नियम व संकेत परम्परा के लिए सुरक्षित रहें, और आनेवाली पीढ़ियों के लिए सुलभ, इसलिए शिक्षालयों की आवश्यकता पड़ी, जहाँ इन नियमों का बचपन में बच्चों को अभ्यास करा दिया जाता। इसलिए अति प्राचीन काल में ही यहाँ पाठशालाएँ खोली गईं। साधारणतः स्कूल मंदिर में होता था, या मंदिर से संबंध रखता था। हम्मूरावी के समय का एक स्कूल का भग्नावशेष

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाया गया है। मिट्टी की पट्टियों पर अभ्यास किए जाते थे, और कुछ अभी भी जमीन पर पड़ी पाई गई ह। इनसे हमें यह पता चलता है कि छोटे २ बच्चे किस प्रकार लिखना-पढ़ना सिखना आरम्भ करते थे। मिट्टी की पट्टी और सरी की कलम का व्यवहार होता था। लिखने की कला का कितना आदर था, यह उस समय की मिट्टी की टिकिया पर लिखा हुआ एक मुहावरा से पता चलता है। मुहावरा का आशय यह है—"जो कि टिकियों पर लिखने की कला में श्रेष्ठ होगा वह सूर्य के समान चमकेगा, प्रज्ज्वलित होगा।"

विज्ञान

धन का संचय प्रकृति का ज्ञान की वृद्धि से ही संभव हो सका। प्राचीन बेबिलोनिया-निवासियों ने विज्ञान के कई क्षेत्रों में आशातीत प्रगति किया।

"विज्ञान परिमित प्रमाण व माप से ही आरम्भ होता है," ऐसा एक आधुनिक वैज्ञानिक का मत है। बेबिलोनिया में काल, दूरी, क्षेत्रफल और राशि व अदद (quantity) का माप के प्रथम नियम निकाले गए, और इस आधार पर हम यहाँ के प्राचीन निवासियों को विज्ञान का संस्थापक कह सकते हैं। अन्य नागरिक सभ्यताओं में भी माप के नियम बने, पर बेबिलोनिया के ये नियम सबसे अधिक पूर्ण सन्तोषजनक हैं।

३६० दिनों का एक वर्ष होता था, और वह सूर्यवर्ष पर आधारित था। प्रत्येक मास में ३० दिन होते थे, और चन्द्रमास ही इसका आधार था। चन्द्रमास पर आधारित बारह महीने सूर्य-वर्ष से मेल नहीं खाते थे, इसलिए पंचांग में अतिरिक्त दिन जब तब जोड़ दिये जाते थे। सप्ताह सात दिनों का होता था, और प्रत्येक दिन का नामकरण ग्रह-देवताओं के नाम पर

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया गया था। सप्ताह का सातवाँ दिन--शब्बतु--आराम करने का दिन था। यह नियम पीछे चलकर यहूदियों ने अपनाया, और आज वस्तुतः सारी दुनिया मानती है। दिन और रात दुगुना बारह घण्टे (याने २४ घण्टे) के होते थे। ६० मिनट का का एक घण्टा, और ६० सेकेण्ड का एक मिनट भी इन्होंने ही पहले पहल सोचा था, कारण यह था कि ६० ही संख्या का मूल आधार था।

गणित

जैसे-जैसे सभ्यता का विकास होता गया, गणित की आवश्यक प्रगति होती गई। मनुष्य शिकारी अवस्था में था तब लकड़ी पर निशान देकर वह अपने व अपने समूह के शिकारों की गणना कर लेता था। पर अब तो मन्दिरों व जमींदारों के पास इतने अधिक पशु थे कि उनका लेखा लकड़ी पर चिह्नों के द्वारा करना असंगत व अव्यवहारिक हो गया। १ से ९ तक का रूप तो पुराना ही रहा, अर्धवृत्ताकार चिह्न। पर १० के लिए एक नया प्रतीक माना गया। २० के लिए ऐसे ही दो प्रतीक। ६० का चिह्न था एक बड़ा अर्धवृत्त। इस चिह्न से जव की शराब (Beer) नापा जाता, पर यही चिह्न अन्न के तौलने में १०० माना जाता। इस तरह दशमलव और साठवां हिस्सा दोनों अंकविद्या व गणनाविधि का प्रचार था। ईसा से २५०० वर्ष पूर्व सुमेर में सिर्फ साठ के आधार (Sexagesimal) पर ही गणना का व्यवहार होता था। भिन्न अंक (Fraction) बराबर किसी पूर्ण विभाजक संख्या का भाग के रूप में देखा जाता था, जैसे $\frac{3}{4}$ को लिखा जाता $\frac{1}{2}+\frac{1}{4}$। जोड़, व घटाव का ज्ञान था। सवालों का जवाब मिट्टी की पट्टियों पर मिले हैं। ईसा से २००० वर्ष पूर्व बेबिलोनिया के निवासी गुणा करना भली-भाँति जान गये थे। गुणा की तालिकाएँ मिट्टी की टिकियों पर लिखी मिली है। ज्योमिति विद्या का

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी काफी ज्ञान था। ईसा से चार हजार वर्ष पूर्व की चित्रसंकेत-लिपि (Pictographic Script) में लिखी टिकियों से हमें पता चलता है कि उस समय भी खेतों का क्षेत्रफल लम्बाई × चौड़ाई का गुणनफल समझा जाता था। वृत्त (Circle) की परिधि (Circum ference) और व्यास (diameter) का संबंध (Ratio) जिसे हम पाई (π) कहते हैं, ३ के लगभग समझा जाता था। त्रिभुज का क्षेत्रफल आधार (Base) का आधा और ऊंचाई का गुणनफल ($\frac{1}{2}$ Base × Altitude) था।

गणित व ज्यामिति विद्या में इतनी उन्नति मंदिर के पुरोहितों के ही द्वारा हुई थी। मंदिर की चीजों का लेखा रखना जरूरी था, क्योंकि देवता की सम्पत्ति थी, न कि अमुक् पुरोहित की, इसलिए प्रत्येक पुरोहित का यह कर्त्तव्य था कि वह अपने उत्तराधिकारी के लिए सूची तैयार रखे। मंदिरों के भवन-निर्माण के लिए खाका (Plan) खींचा जाता, इस प्रयास में ज्यामिति, क्षेत्रमिति (Mensuration), व भवननिर्माण कला की उन्नति होती गई।

ज्योतिष विद्या

तारों व ग्रहों की चाल का भी अध्ययन किया जाता था। समय का शुभाशुभ, फल का ख्याल रखा जाता था। तारों की गति का इतना अच्छा ज्ञान हो गया था कि कृषि-कार्य कब आरम्भ किया जाय जिससे अधिक लाभ होगा ये लोग जान गये थे। इसी आधार पर पर उन्हें यह आशा हो गई थी कि ये लोग भविष्यवाणी कर सकेंगे।

वैद्यक शास्त्र

रोग भूत-प्रेत या बुरेग्रहों का परिणाम समझा जाता था। विशिष्ट रोग विशिष्ट भूत का प्रकोप माना जाता। रोग पहिचान की सबसे

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधारण क्रिया थी शकुन निकालना। भूतप्रेत का अपसरण (ओझाई) प्रत्येक रोग के निदान में व्यवहार में लाया जाता। विशेष पुरोहित भिन्न २ प्रकार की ओझाई करते थे। रोग से बचने के लिए मन्त्रों व जन्तरों का सहारा लिया जाता। कभी २ रोग से मुक्ति पाने के लिए पशुओं की बलि दी जाती।

अभी तक औषधिशास्त्र की कोई प्रति नहीं उपलब्ध हुई है। पर यह प्रत्यक्ष है कि दो प्रकार के वैद्यकशास्त्र रहे होंगे। एक में रोगों का विवरण था, जैसे मानसिकरोग, छूतकी बीमारी, सिर का गंजापन, आँख-कान की बिमारियाँ। रोगों के लक्षण (Pathology) का विस्तृत विवरण दिया जाता था। अंगो व इन्द्रियों के विषय की काफी जानकारी थी। शरीर-शास्त्र (Anatomy) का ज्ञान था। दूसरे प्रकार के शास्त्र में रोग और उनके निदान के उदाहरण दिये गये होंगे।

कला

भवन-निर्माणकला, शिल्पकला, मूर्तिकला और चित्रकला के कोई विशेष उदाहरण हमें नहीं मिलते। शायद सब कुछ बर्बाद हो गया है। हम्मूराबी का शहर नेस्तनाबूद है, और उसके बनाए हुये एक भी भवन का पता नहीं चलता है। दूसरे प्राचीन शहरों के भवन-निर्माण में Arch का व्यवहार हुआ है, यहाँ इसे प्रमुख स्थान मिला, और यहीं से पश्चिम योरप में इसका प्रचार धीरे-धीरे हुआ। शिल्पकला के क्षेत्र में मीनाराकार मंदिर बेबिलोनिया की विशेष देन है। हम्मूराबी के समय में चित्रकारी का वस्तुतः अभाव ही था। जिस दृश्य में हम्मूराबी सूर्यदेव से धर्मसंहिता (Law Code) ले रहा है। वह रोविला भले हो पर मनुष्य के शरीर की सुन्दरता को चित्रित करने में कलाकार अवश्य ही असफल रहा है। सारगन के समय के सुन्दर मुहर काटने की प्रतिभा का इस समय में कहीं पता नहीं चलता। हम्मूराबी का यग व्यापार के क्षेत्र में भले सफल हो, पर कला का महान् युग तो इस समय अवनति के पथ पर ही अग्रसर था।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कला की अवनति शायद बेबिलोनिया के आनेवाले बुरे दिन की द्योतक थी। हम्मूराबी के मरने के थोड़े समय के बाद बेबिलोनिया पर संकट के बादल टूट पड़े। पूर्व की पहाड़ी इलाकों से बर्बर 'कश' (Kassites) जाति का आक्रमण हुआ। उनके देवता सूर्य, वरुण थे, इसलिए इन्हें आर्य जाति की एक शाखा समझा जाता है। पर इनकी भाषा व इनके नाम आर्य नहीं हैं। ये लोग मिश्र जाति के थे। बहुत संभव यह है कि जब करीब ईसा से २००० वर्ष पूर्व कई जातियों का सभ्य संसार में आक्रमण हो रहा था, तो उस समय 'कश' लोग इस महान् आन्दोलन के परिणाम स्वरूप पश्चिम की ओर चल पड़े। इनमें कुछ आर्यजाति के साहसी नेता भी रहे हों तो असम्भव नहीं। इन लोगों ने बेबिलोनिया को तबाह कर डाला। इनके साथ ही इस क्षेत्र में पहले-पहल घोड़े व घोड़े की सवारी—रथ का आगमन हुआ। घोड़ा और रथ ने यातायात और युद्ध की रीति में भीषण क्रान्ति कर दिया। इसी विशेष सुविधा के कारण 'कशों' ने बेबिलोनिया पर आसानी से विजय प्राप्त कर लिया। कशराजाओं ने बेबिलोनिया पर सैकड़ों वर्ष राज्य किया। वे आये थे विध्वंशक बन कर, पर पीछे धीरे-धीरे बेबिलोनिया की संस्कृति को अपनाने लगे। बेबिलोनिया की सभ्यता की प्रगति रुक गई, और सभ्यता का प्रथम युग का अन्त हो गया। कश-जाति के आक्रमण के साथ ही साथ, एशिया माइनर से हिटाइट् लोगों ने बेबिलोनिया पर धावा बोल दिया। पूर्व से 'कश' और पश्चिम से हिटाइट से घिर कर बेबिलोनिया अशक्त हो गया। हम्मूराबी का वंश ही मिट गया। कुछ दिनों तक दक्षिण में, पर्शिया की खाड़ी के तट पर स्वतन्त्रता का दीप जलता रहा, पर अन्त में 'कश' ज़ाति के राज़ाओं ने समूचे बेबिलोनिया पर अपना राज्य, तृतीयवंश का राज्य, स्थापित कर लिया।

बेबिलोनिया का भाग्य-सूर्य हजारों वर्ष तक अस्त रहा। सातवीं-षष्ठी शताब्दी ईसा से पूर्व चाल्डियन लोगों के नेतृत्व में बेबिलोन

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने फिर करवटें बदलीं, पर यह कोशिश बेकार सिद्ध हुई। ईसासे ३००० वर्ष पूर्व से लेकर करीब १३०० वर्ष तक बेबिलोनिया सभ्य-जगत के क्षितिज पर उज्ज्वल नक्षत्र की तरह चमकता रहा। पर कश-युग का प्रारम्भ से बेबिलोनिया के इतिहास के प्रथम अध्याय का अन्त हो जाता है।

असीरिया का उदय

जब बेबिलोनिया अपना महत्वपूर्ण स्थान खो चुका था, तब असीरिया का उदय हुआ। असीरिया बेबिलोनिया के उत्तर टिघरिस घाटी के उत्तरी भाग में स्थित है। असूर शहर टिघरिस के पश्चिम-दक्षिण व पश्चिम की मरुभूमि से घिरा हुआ, ऊँची भूमि पर स्थित था। इस तरह प्रकृति ने इसे सुरक्षित बनाया। इसी शहर के नाम पर सारे देश का नाम असीरिया पड़ा, और यहाँ के रहनवाले असीरियन कहाने लगे।

असीरिया पहाड़ी इलाका था, आवहवा भी बेबिलोनिया की तुलना में ठण्ढी ही थी। इसलिए यहाँ के निवासी बेबिलोनिया में रहने वाले की अपेक्षा अधिक स्वस्थ, साहसी और उग्र थे। असीरिया के पहाड़ी इलाकों में भेड़ें खूब मिलती, इसलिए ऊन काफी मात्रा में मिल सकता था। नदियों की घाटी की उपजाऊ खेत में गेहूँ और जव उपजते। कृषि और भेंड़ पालना जीविका के प्रमुख साधन थे। बेबिलोनिया की तरह यहाँ वाणिज्य व व्यापार का बोलबाला नहीं था। यहाँ के पहाड़ियों में कंकड़ीली पत्थरों के चट्टान मिलते। इसलिए जहाँ बेबिलोनिया में भवननिर्माण में ईंट का प्रयोग होता, असीरिया में पत्थर के मकान बनते थे। दोनों देश की शिल्पकला में यह महान् अन्तर है।

असीरिया में भी ईसा से करीब ३००० वर्ष पूर्व सेमिटिक लोगों का प्रवेश हुआ। शायद सुमेर के लोग यहाँ भी आकर पहले

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे हों। असीरिया की अतिप्राचीन संस्कृति ने सुमेरिअन संस्कृति से बहुत कुछ लिया था। उनकी नागरिक सभ्यता, लिपि, शिल्प-विज्ञान सभी सुमेर की संस्कृति पर आधारित थे। सुमेर पंचांग का व्यवहार असीरिया में होता था।

पर यह समझना कि असीरिया पर सिर्फ सुमेर की सभ्यता की ही छाप पड़ी, गलत होगा। उत्तर में हिटाइट् और पश्चिम में आरमिअनो का प्रभाव भी असीरिया पर काफी पड़ा। हिटाइट् असीरिया पर आक्रमण करते रहे और कभी २ अपना राज्य भी यहाँ स्थापित कर लिया। असीरिया कभी बेबिलोनिया के अधीन और कभी हिटाइट् के अधीन रहा। इस तरह करीब १५०० वर्ष तक असीरिया-निवासी अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए बाहरी दुश्मनों से जूझते रहे; उन्हें कभी सफलता मिलती, कभी असफलता। पर इस लम्बे संघर्ष का परिणाम हुआ कि असीरिया के रहनेवाले कर्मठ वीर और कठोर प्रकृति के हो गए। घोड़ा का व्यवहार का ज्ञान हो गया। युद्ध में रथ का प्रयोग होने लगा। इन शारीरिक व सैनिक सुविधाओं से भूषित होकर असीरिया ने पश्चिम की ओर बढ़ना शुरु किया और ईसासे करीब १३०० वर्ष पूर्व युफ्रेटिस नदी को पार कर हिटाइटों को उस क्षेत्र से मार भगाया। दक्षिण की ओर टिघरिस नदी के नीचे उतरने लगे, और अन्त में बेबिलोनिया पर भी अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।

पर असीरिया अभी तक स्थलशक्ति ही था। पश्चिम में भूम-ध्यसागर की ओर उसकी प्रगति को रोकनेवाले थे आरमिअन। आरमिअन सेमिटिक जाति के थे, और ईसासे करीब १४०० वर्ष पूर्व इन्होंने सिरिया में अपनी शक्ति स्थापित कर ली थी। दमस्क (Damascus) उनकी राजधानी थी। इसके अलावे इन्होंने और भी कई नगरों की स्थापना की। मिश्र और हिटाइट् सभ्यताओं से इन्हें प्रेरणा मिलती थी। आरमिअन बड़े ऊँचे दर्जे के

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र ८

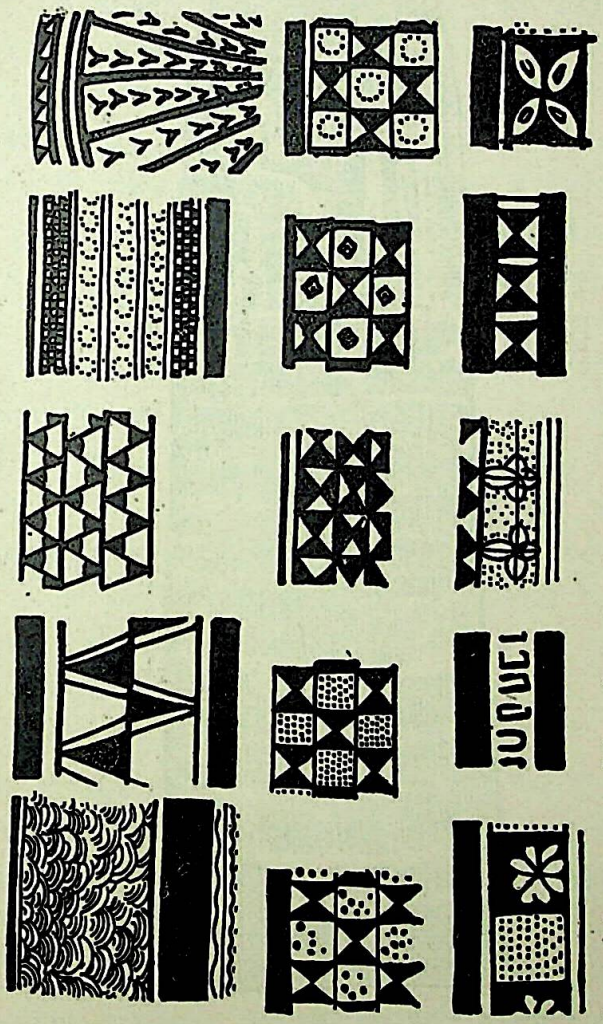

असीरिया के प्राचीन मिट्टी के बर्तनों पर डिजाइन (पृ० ७२)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

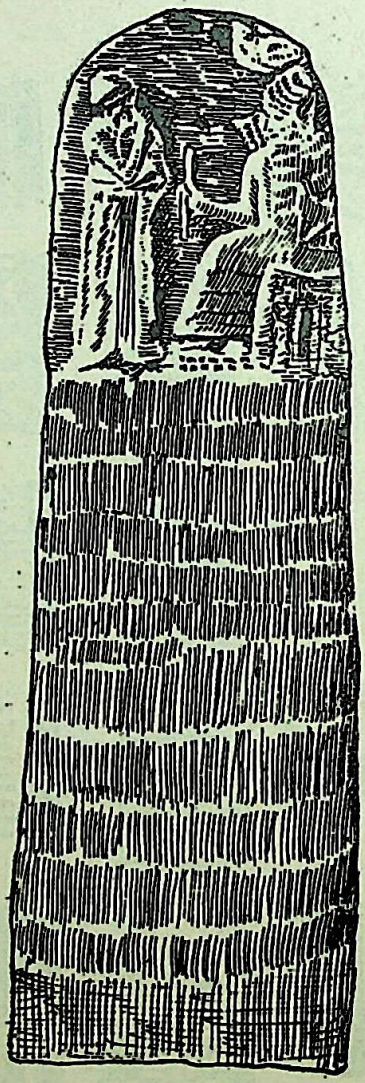

(पृ० ५७) सर्यदेव के द्वारा हम्मूरावी
को धर्मसंहिता देने का दृश्य ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवसायी व तिजारती थे। उनके कारवाँ सारे पश्चिम एशिया में चलते थे। उनका काँसे का बटखरा (तौल) असीरिया की राजधानी नैनवां (Nineveh) में पाया गया। इससे यह प्रत्यक्ष है कि आरमिअन व्यापारी असीरिया में वर्त्तमान थे। आरमिअनों की लिपि और भाषा बहुत विकसित थी। ये लिखने में वर्णमाला (Alphabets) का प्रयोग करते थे। ये कागज पर नरसर की कलम से लिखते थे। असीरिया में क्यूनिफॉर्म लिपि का (Cuneiform script), जिसकी उत्पत्ति बेबिलोनिया में हुई थी, व्यवहार था। पर १००० वर्ष ईसा से पूर्व के बाद हम असीरिया में आरमिअन लिपि का भी प्रयोग पाते हैं। जिस प्रकार बेबिलोनिया के कारवाँ के साथ २ क्यूनिफॉर्म लिपि व बेबिलोनिया की भाषा समूचे पश्चिम एशिया में फैल गई थी, उसी प्रकार आरमिअन लिपि का भी विस्तार सारे पश्चिम व मध्यपूर्व एशिया में हो गया था। यहाँ तक कि भारत की उत्तर-पश्चिम सीमा पर भी आरमिअन लिपि का प्रभाव पड़ा। आरमिअन भाषा का व्यवहार इतना बढ़ा कि बहुत से असीरिया-निवासी इस भाषा का व्यवहार करने लगे। असीरिया में पाई गई कई मिट्टी की टिकियों में क्यूनिफॉर्म लिपि के साथ-साथ आरमिअन लिपि का प्रयोग मिलता है। शायद आरमिअन व्यापारी ने अपनी सुविधा के लिए आरमिअन लिपि में मारजिन में नोट कर लिया है। असीरिया में सरकारी काम दोनों भाषाओं में होता था। आरमिअन क्लर्क आफिस में बहाल किए जाते थे। असीरिअन क्लर्क क्यूनिफॉर्म लिपि में मिट्टी की टिकिओं पर लिखता था, आरमिअन क्लाक पैपिरस पर कलम और रोशनाई से आरमिअन लिपि में काम करता था। शक्तिशाली आरमिअन असीरिया की प्रगति रोकने में कई शताब्दी तक सफल रहे। इनके सिवा एशिया-माइनर के बन्दरगाह-शहरों पर फिनिशियनों का राज्य था। ये लोग भी सेमेटिक जाति के

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही थे, और व्यापार में बड़े माहिर। सामुद्रिक व्यापार पर इनका एकक्षत्र राज्य था। इन लोगों ने अपने शहरों को काफी मजबूत बना लिया था और असीरिया के राजाओं को इन लोगों से काफी संघर्ष रहा। अरसे तक असीरिया समुद्र के तट तक पहुँचने में असफल रहा।

असीरिया का साम्राज्य-विस्तार

आरमियन और फिनिशिअन सर्वदा के लिए असीरिया की प्रगति न रोक सके। प्राकृतिक और आर्थिक कारणों से असीरिया को साम्राज्य-विस्तार करना जरूरी था। लड़ाकू असीरिअन अपनी शक्ति का उपयोग करने को आतुर थे। उस समय पश्चिम एशिया में कोई सार्वभौम सत्ता नहीं थी। मिश्र का एशिया का साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया था। आरमिअन साम्राज्य स्थापित न क सके। इस अनुकूल परिस्थिति में असीरिया ने कदम बढ़ाया। पश्चिम एशिया मिश्र और भूमध्यसागर-तटवर्ती प्रदेशों से लाभदायक व्यापार करता था। योरप व मिश्र के माल पर्शिया व हिन्दुस्तान इसी रास्ते से जाते थे। बेबिलोन इन तिजारती रास्तों पर अपना अधिकार स्थापित कर संसार का सबसे धनी नगर बन गया था। असीरिया दरिद्र देश था, इसलिए वणिक् पथों पर यदि उसका आधिपत्य हो जाता तो उसकी आय की अतिवृद्धि होती। पर असीरियन लोग स्वयं तिजारती नहीं थे। इसलिए यदि असीरिया पश्चिम एशिया का तिजारती धन (Commercial wealth) में हिस्सा बँटाना चाहता था तो उसे इन प्रदेशों पर, वणिक् पथों पर, अपना राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करना था। असीरिया की साम्राज्यवादी नीति के पीछे यही मूल सिद्धांत छिपा है।

ईसा से करीब ११०० वर्ष पूर्व तिगलथ पिलेसर प्रथम (Tigleth Pileser I) ने असीरिया को साम्राज्य-पथ पर अग्रसर किया। इसने दक्षिण में बेबिलोनिया पर विजय प्राप्त की।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्व में यह ईरान की सीमा तक पहुँच गया। उत्तर में हिटाइटो को हरा कर टारस की पहाड़ियों तक असीरिया का प्रभाव जमा दिया। पश्चिम में सीरिया और फिलस्तीन के शहरों को जीता। फिनिशिअनों से भी इसने लोहा लिया। इसके मरने के बाद इसके विजित साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह खड़े हो गए। सीरिआ में ही जबर्दस्त विरोध हुआ। शालमन्जर तृतीय व अदद निरारी तृतीय ने साम्राज्य को बचाने की अकथ कोशिश की, पर असीरिया का प्रथम साम्राज्य टिक न सका। फिलस्तीन आरमिअनों और फिनिशिअनों का प्रत्याक्रमण इस असफलता के कारण बने।

पर असीरिया का भाग्य सूर्य सारगन द्वितीय व उसके वंशजों के राजकाल में खूब चमका। सारगन ईसा से ७२२ वर्ष पूर्व गद्दी पर बैठा। इसने असीरिया की बड़ी उन्नति की, और साम्राज्यवादी नीति अपनाई। नैनवां के उत्तर पूर्व इसने एक सुन्दर राजमहल बनाया जिसका सानी उस समय एशिया में नहीं था। असीरिया पश्चिम एशिया की रानी हो गई।

सारगन का पुत्र सेन्नाचरिब ७०५–६८१ (Sennacherib) एशिया का महान् सम्राटों में गिना जाता है। वह क्रूरता का अवतार था। उसने यवन (Greek) शहरों को भी लूटा। भूमध्यसागर तट उसका कार्य-क्षेत्र था, और मिश्र की सीमा पर उसकी फौज थी। मिश्र बराबर एशिया की कमजोर शक्तियों को असीरिया के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए प्रोत्साहित करता रहता था, इसलिए सेन्नाचरिब ने खीझ कर मिश्र पर ही आक्रमण करने का निश्चय किया, पर महामारी के प्रकोप से उसकी सेना का बहुत बड़ा भाग सीमा पर नष्ट हो गया, इसलिए उसकी आशा पूरी न हो सकी। बेबिलोन बराबर विद्रोह करता था। जब कभी असूर की राजधानी में नया राजा गद्दी पर बैठता, बेबिलोन स्वतन्त्रता का स्वप्न देखने लगता, और विद्रोह करता। सारगन ने बेबिलोन पर विजय

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त की थी, पर उसने बेबिलोनियनों की भावना का आदर करते हुये अपने को बेबिलोन का सम्राट् घोषित किया था। सेन्नाचरिब ने बेबिलोन में शान्ति स्थापित रहे ऐसी कोशिश की, और कई प्रकार के प्रयोग शासन में किया, पर जब वह पश्चिम में बुरी तरह फंसा था, बेबिलोन ने फिर विद्रोह कर दिया। सेन्नाचरिब ने इस बार उसे एक सीख देना निश्चय किया, बेबिलोन का विद्रोह दबा दिया, और नगर को लूटा-खसोटा। हम्मूराबी का सुसज्जित शहर को बर्बाद कर दिया। दुनियाँ सेन्नाचरिब के इस कुकर्म को कभी नहीं माफ कर सकती।

सेन्नाचरिब मिश्र को अपने अधीन नहीं कर सका था। असीरिया विजित प्रदेशों से बहुत अधिक कर वसूल करता, इसलिए असीरिअन साम्राज्य में असन्तोष की आग बराबर जलती रही। इसका फायदा मिश्र उठाता था, और बराबर इन देशों को असीरिया के विरुद्ध उभाड़ता रहा। मिश्र की यह नीति अवांछनीय थी। वह स्वयं तो कमजोर था, और असीरिया की प्रगति खुले मैदान में रोकने में असमर्थ सिद्ध हो चुका था। सारगन ने राफिया के मैदान में मिश्र की सेना को हराया था। पर मिश्र कमजोर राष्ट्रों को असीरिया की क्रोधाग्नि में जलने के लिए छोड़ दिया करता। इससे पश्चिम एशिया का बहुत नुकशान हुआ। शान्ति दूर रही, आर्थिक दशा बिगड़ती गई, कला की प्रगति रुक गई। मिश्र पर निर्भर करना टूटी हुई सरी डाली का सहारा लेना था।

सेन्नाचरिब का पुत्र इशारहेड्डन (Esharhaddon 681–668 B. C.) ने उत्तरी मिश्र पर, मुहाने के प्रदेश पर आक्रमण किया और उसका पुत्र असूरबनिपाल (668–626 B. C.) ने उत्तर मिश्र पर अपना राज्य स्थापित कर लिया। जमाना पलट गया। एशिया का साम्राज्य मिश्र पर हो गया।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्पाचित्र ३

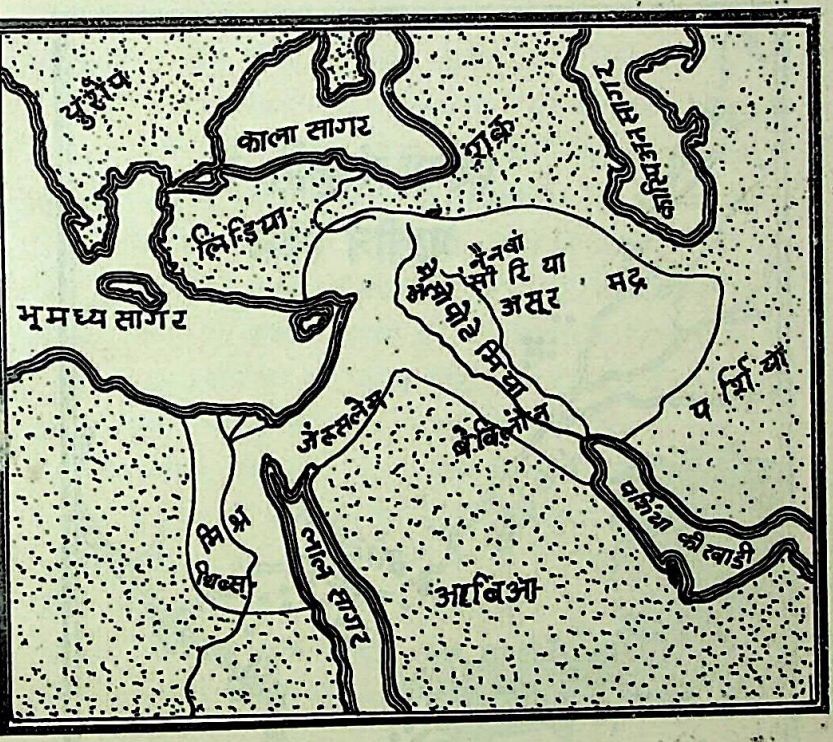

असीरिया का साम्राज्य

(Facing Page 76)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मापचित्र ४

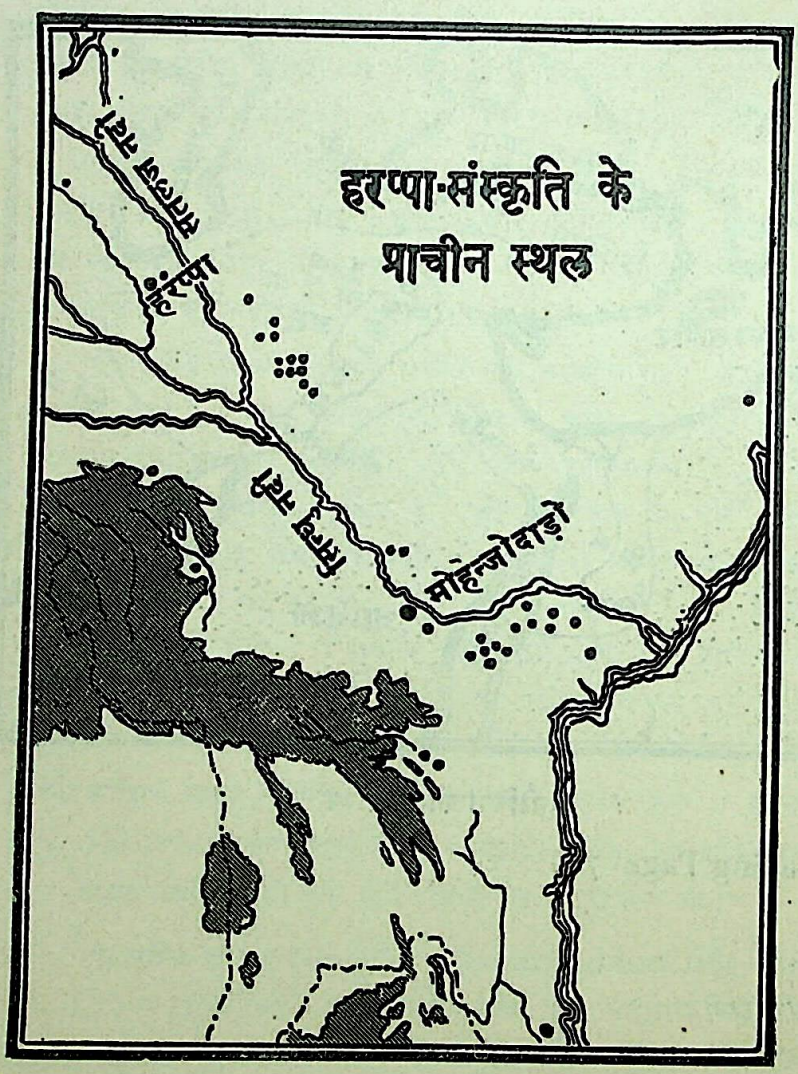

(Facing Page 90)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असीरिया का पतन और उसके कारण

असुरबानिपाल असीरिया का अन्तिम महान् सम्राट् था। उसके अन्तिम दिन बुरी तरह बीते। मिश्र, बेबिलोन (बावेरु) फिनिशिया, इलम सभी विजित प्रदेशों में विद्रोह होने लगे। मिश्र ने एशियामाइनर के वेतनभोगी सैनिकों की मदद से असीरियनों को मार भगाया, और स्वतन्त्रता प्राप्त कर लिया। असुरबानि पाल ने बहुत मुश्किल से बेबिलोनिया के पूरब स्थित प्राचीन देश इलम को हरा कर अपने राज्य में मिला लिया था। पर इलम अपनी प्राचीन प्रतिष्ठा व गरिमा को न भूल सका था, इसलिए असीरिया बराबर इलम के प्रति खबरदार रहा। इलम का पतन के बाद असीरिया की पूर्वीय सीमा आगे बढ़ गई और असीरिया नयी लड़ाकू आर्यजातियों के रास्ते में आ गया। असीरिया युद्ध करते-करते थक गया था। अन्त में चाल्डिया, मिडिया और पर्शिया ने मिल कर ६०६ ई० पू० असीरिया का नाश कर दिया। नैनवां (Ninevah) जो एशिया का सबसे सुन्दर व ऐश्वर्यशाली नगर था, नेस्तनाबूद हो गया। असीरिया का विश्वप्रसिद्ध क्रूर साम्राज्य का पतन हो गया, और कुछ वर्षों के बाद ही असीरिया का नामनिशान तक की याद भूल गई।

असीरिया का पतन आकस्मिक और पूर्ण था। इसके कई कारण थे। असीरिया का साम्राज्य सैन्यबल पर आधारित था; पाशविक शक्ति पर ही निर्भर करता था। ऐसा साम्राज्य चिरस्थायी नहीं हो सकता। असीरिया अपने विजित प्रदेशों को बुरी तरह सताता था। कर के बोझ से वे दबे रहते थे। प्रजा असीरिया के सैनिकों के दुर्व्यवहार से तबाह रहती। विजित देशों में असीरियन शासक व सैनिक-छावनी का बन्दोबस्त रहता और प्रजा को बराबर यह याद दिलाई जाती थी की वह गुलाम

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, और उसका जीवन, धन सब असीरिया के हित के लिए है। युद्ध में असीरिया के सम्राट् व सैनिक क्रूरता का ताण्डव नृत्य करते थे। शहर का शहर जला दिया जाता। हारे हुये सिपाहियों को जीता जलाया जाता। मृतकों के ढेर बनाये जाते, मुण्डों का मीनाराकार टीला बना कर लोगों को आतंकित किया जाता। हजारों स्त्रियाँ व बच्चे मौत के घाट उतार दिये जाते। हजारों को अपने घर से उजाड़ कर दूसरे देश में बसाया जाता। असीरिया के सम्राट् ऐसे कर्म पर अफसोस क्या करते, बल्कि गर्वपूर्ण भाषा में इन दुष्कर्मों का विवरण पत्थरों में, या मिट्टी की टिकियों पर खुदवा कर आत्मश्लाघा से बाज नहीं आते थे। इस स्थिति में कोई भी विजित देश की प्रजा असीरिया के राज्य से सन्तुष्ट नहीं रह सकती थी, इसलिए उनके दिल में विद्रोहाग्नि बराबर भड़कती रहती थी। प्रत्येक अवसर पर वे अपना सर उठाते थे। उनके प्रयास भले ही विफल कर दिये गये हों; पर असीरिया की शक्ति की लगातार हानि होती रही। युद्धों का ताँता असीरिया के प्रत्येक सम्राट् को झेलना पड़ता। असीरिया सैनिकप्रधान देश था, पर किसी भी चीज की हद होती है। लगातार युद्ध में संलग्न रहने के कारण उसकी शक्ति क्रमशः क्षीण होती गई। असीरिया के पतन में मिश्र का बड़ा हाथ था। एशियाई राज्यों को बराबर उभाड़ता रहा, और असीरिया को हमेशा विद्रोह का ही सामना करना पड़ा।

असीरिया का साम्राज्य राजा के व्यक्तित्व पर बहुत अंशों में निर्भर करता था। किसी भी योग्य राजा का उत्तराधिकारी योग्य ही होगा, ऐसा कोई नियम नहीं है। किसी भी राजवंश में चार या पाँच पीढ़ियों के सुयोग्य राजाओं के पश्चात् अयोग्य और कमजोर राजा गद्दी पर बैठते हैं। कितना भी योग्य राजवंश क्यों न हो, उसका ह्रास स्वाभाविक है। असुरबानिपाल के पश्चात् असीरिया की

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गद्दी पर अयोग्य राजा आये, और साम्राज्य की उलझती हुई समस्याओं का समाधान करने में असमर्थ सिद्ध हुये।

असीरिया युद्धलिप्सा में इस तरह फंस गया था कि उसके प्रत्येक योग्य नागरिक को युद्ध का आवाहन सुनना पड़ता था। इस कारण कृषि की उपेक्षा होने लगी। आर्थिक दृष्टि से असीरिया कमजोर हो गया। विदेशों का ही मुँह जोहता रहा। यह देश के लिए बड़ी ही घातक बात थी।

असीरिया की उन्नति में राष्ट्रीयता की भावना का बड़ा हाथ था। असीरिया के सैनिक एक जाति व राष्ट्र के थे। एक भावना से प्रेरित होकर वे एकता की सूत्र में बंधे थे। इसलिए सेना में जोश व आत्मविश्वास था। पर जैसे २ साम्राज्य बढ़ता गया विजित देशों के नागरिकों को असीरिया में स्थान दिया गया। असीरिया की एकता में बाधा आ गई। उसकी सेना में गैर असीरिअन भी भर्ती होने लगे। सेना की एकता लुप्त हो गई। वेतनभोगी व अराष्ट्रीय सैनिक असीरिया के लिए युद्ध में उतना जोश व आत्मबलिदान का भावना कहाँ दिखा सकते थे जितना की असीरियन स्वयं!

इन सब कारणों के अलावे बाहरी आक्रमणों ने भी असीरिया की कमर तोड़ दी। जब अन्दरुनी कमजोरी आती है तब बाहर के दुश्मनों को बन आती है। पश्चिम एशिया में नई जातियों का आक्रमण हो रहा था। सातवीं शताब्दी ईसा से पूर्व शकों ने पश्चिम एशिया पर धावा बोल दिया। असीरिया का सम्राट् इशारहेड्डन (Esharhaddon) को इन बर्बरों का सामना करना पड़ा। शकों की एक शाखा से वैवाहिक सम्बन्ध कर उसने बला टालने की कोशिश की। पर शकों को रोकना असम्भव था। वे नदी की बाढ़ के समान रोके न रुकते थे। और

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

तिथी.....
पु०सं०.....
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्त में उन्होंने असीरिया के साम्राज्य को खूब लूटा-खसोटा। असीरिया की इज्जत मिट्टी में मिल गई। इसकी आर्थिक दशा विगड़ गई। असीरिया की शक्ति जर्जर हो गई थी, अब सिर्फ एक और धक्के की जरूरत थी। विशाल महल की नींव हिल चुकी थी, अब वह गिर कर ढेर होने ही वाला था। चाल्डियन लोग असीरिया के पुराने दुश्मन थे। वे बराबर बेबिलोनिया पर अपना अधिकार जमाना चाहते थे, पर असीरिया की सैनिक शक्ति के सामने उन्हें झुकना पड़ता था। इस बार चाल्डियनों ने मिड्स (मद्र) व पशिर्अन (परशु) से मित्रता कर असीरिया पर आक्रमण कर दिया, और असीरिया का पतन हो गया। असीरिया का पतन ने विश्व को आश्चर्यचकित कर दिया। उसकी विजित प्रजा कभी नहीं सोचती थी कि शक्तिशाली असीरिया का कभी पतन भी होगा। अपनी कीर्ति व गौरव की चरमसीमा पर पहुँच कर असीरिया एकाएक गिर पड़ा, और पूरी तरह चूर हो गया। उसके अन्त पर कोई रोनेवाला नहीं था। उसकी साम्राज्यवादी नीति इतनी कठोर व शोषक थी कि असीरिया के पतन पर पश्चिम एशिया व उत्तरी अफ्रिका के निवासी ताली पीट कर खुशी का इजहार किए होंगे। असीरिया का पूर्ण पतन यह दिखाता है कि पशुबल पर स्थापित साम्राज्य बहुत दिनों तक कमजोरों की छाती पर नहीं टिक सकता। प्रजा का क्रोध अन्त में साम्राज्य का नाश ही कर देता है।

असीरिया की सभ्यता

असीरिया का पतन उसके दोषों के कारण हुआ। पर असीरिया ने विश्वसभ्यता व इतिहास के भाण्डार में सिर्फ क्रूरता व नृशंशता की निशानी ही नहीं छोड़ा, वरन् शासन, सैन्यसंचालन और कला के क्षेत्र में काफी दान दिया है। असीरिया का साम्राज्य सैनिक बल पर निर्भर करता था। लोहे के हथियार का व्यवहार इस शक्ति का स्रोत

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। इसकी सेना में भाला-बर्छी का प्रयोग होता था। इनके सैनिक तीर-धनुष चलाते थे, तलवार भी भाँजते थे, और रथ पर चढ़कर सेना का नेतृत्व करते थे। असीरिया की सेना ने किलों को तोड़ने में विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की थी। शहरों को घेरना, बड़ी ऊँची दीवालों को तोड़ना व उस पर चढ़ना सेना के लिए मुश्किल नहीं था। सैनिक-यन्त्रकला व युद्ध-विद्या में असीरियनों ने भविष्य को बहुत कुछ दिया।

साम्राज्य-शासन की नीति में भी असीरियनों ने काफी न्यूनता दिखाई। विजित देशों को आतंकित रखना, और कर के बोझ से उन्हें परेशान करना उनकी नीति थी। युद्ध में अत्यन्त कठोरता का व्यवहार करना उनका स्वभाव सा हो गया था। भय की नीति पर ही इनलोगों ने अपना आधिपत्य स्थापित किया था। विजित राष्ट्रों में एकता न रहे, वे एक जाति के न रहें और उनके नेता और उत्साही देश भक्तों को उनसे जुदा कर दिया जाय, इसलिए विजित देशों से हजारों स्त्री-पुरुष को निकाल कर दूसरे देश में बसाया जाता था। आशय यह था कि विद्रोह करने की शक्ति ही खत्म कर दी जाय। फिर विजित देशों में भिन्न २ राष्ट्रों के नागरिक रहने लगे, और इस तरह एक दल दूसरे दल की प्रगति का अवरोधक हो गया—प्रत्येक विजित प्रदेश में फूट का आखाड़ा खुल गया और इसका फायदा असीरिया उठाता था। एक समूह दूसरे राष्ट्रीय समूह के विरुद्ध असीरिया का मुंह जोहते रहता। एक विजित राष्ट्र के नागरिकों के द्वारा दूसरे विजित राष्ट्र को इस तरह दबा कर रखा जाता। हिटलर ने ऐसी ही नीति अपनाई थी। पोलैण्ड के हजारों मनुष्यों को आस्ट्रिया में बसाया था। पोलैण्ड और आस्ट्रिया में पुरानी अनबन थी। इसलिए आस्ट्रिया में बसे पोल हिटलर के इशारे पर चलते थे। वरना आस्ट्रियावासी उन्हें बेहद परेशान करते।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्येक विजित देश में असीरिया अपना सैनिक छावनी रखता, और सैनिक शासक। ये लोग असीरिया के हितों की रक्षा करते, राष्ट्रीय नागरिकों को सताते और जरा-सा भी हलचल होने पर इन्हें कुचल देते।

असीरिया को कभी अपने गर्वनरों पर भी विश्वास नहीं रहता था, इसलिए उन पर बराबर कड़ी दृष्टि रखी जाती थी। गुप्तचर सभी जरूरी बातों का पता देते। यदि किसी गर्वनर को राजधानी बुलाया जाता तो वह घबड़ा कर आत्महत्या कर लेता था।

इस तरह भय व कठोर नियन्त्रित शासन के द्वारा साम्राज्य स्थापित किया गया, और उसे स्थिर रखने की फिजूल कोशिश की गई। असीरिया की साम्राज्यवादी नीति व नृशंश शासन यद्यपि अन्त में असफल रहा, तब भी भविष्य में आनेवाली साम्राज्य-वादी शक्तियों ने असीरिया की नीति को बहुत अंशों में अपनाया। विश्व-साम्राज्य का भाव असीरिया के विशाल साम्राज्य के बाद ही विकसित हुआ। पर्शिया का साम्राज्य का आधार असीरिया का साम्राज्य ही था।

संस्कृति के क्षेत्र में असीरिया की सबसे बड़ी कीर्ति थी बेबि-लोन की संस्कृति को जीवित रखना। बेबिलोनिया 'कशों' के आधिपत्य-काल में अवनति कर रहा था। उसकी संस्कृति कुंठित हो गई थी। असीरिया ने बेबिलोनिया की संस्कृति को अपनाया और उसे अपने साम्राज्य में फैलाया। जब असीरिया का पतन हुआ तब चाल्डियनों ने बेबिलोनिया की संस्कृति का भार अपने ऊपर लिया।

शिल्पकला व भवननिर्माण कला में असीरियनों ने बहुत उन्नति की। पत्थर के बने सुन्दर मकानों से सुसज्जित कई शहर बने, जो कि एशिया में अद्वितीय रहे। क्रूर सेन्नाचरिब ने नैनवाँ

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Ninevah) को संसार का सबसे सुन्दर शहर बना दिया और प्राचीन बेबिलोन की गरिमा इसके सामने फीकी पड़ गई। सारगन का महल 'दुरशरूकिन् (Dur-Sharukin) का घेरा १ वर्गमील था, और यहाँ ८०००० मनुष्य रह सकते थे। असीरिया में सम्राट् सेन्नाचरिब के समय में पश्चिम एशिया में पहले पहल सड़क बनाने का काम मुस्तैदी से शुरू हुआ। सारगन द्वितीय ने नैनवां और दुरशरूकिन् के बीच एक सड़क बनवायी थी। सड़क के प्रमुख कोनों पर सरकारी आफिस स्थापित किए गये थे।

साम्राज्य-विस्तार से जो धन का अपहरण किया गया था वह सिर्फ सेना पर ही खर्च नहीं किया जाता था। कला पर भी असीरिया के सम्राट् काफी व्यय करते थे। भवन-निर्माण कला में आर्च (Arch) का प्रयोग नये ढंग से हुआ, और भवन का यह एक प्रमुख भूषण हो गया। दीवालों पर कई तरह के दृश्य खुदे हुये थे। शिकार व युद्ध के दृश्य प्रमुख थे। मूर्तिकला में मनुष्य का रूप स्वस्थ और कठोर है। असीरिया की प्रकृति का प्रतीक! प्राकृतिक भावनाओं से पूर्ण सिंह, बाघ व साँढ़ों के चित्र पाए गये हैं। कला की उन्नति में विदेशी कलाकारों की सहायता ली जाती थी। रंगीन ईंटो को चमकाने की कला मिश्र से सीखी गई। फिनिशिअनों ने असीरिया के असबाब (Furniture) बनाए। सेन्नाचरिब ने अपने राजमहल में हिटाइट् की नकल पर एक द्वार बनवाया था।

असूरबानिपाल साहित्य का बहुत बड़ा प्रेमी था। उसके पुस्तकालय में २२००० मिट्टी की लिखित टिकियों का संग्रह पाया गया था। उनमें कुछ आज भी बृटिश म्यूजियम मे पाये जाते हैं। वह स्वयं लिखना-पढ़ना जानता था।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाल्डियन साम्राज्य (Chaldean Empire)

चाल्डियनों ने अपना राज्य बेबिलोनिया (वभेरु) पर स्थापित कर लिया, और मेसोपोटोमिया के इतिहास का तृतीय अध्याय शरू हुआ। वेबिलोन का पुनः निर्माण हुआ। सारे शहर की जबर्दस्त किलेबन्दी की गई। नहर का समुचित प्रबन्ध किया गया। वेबिलोन का क्षेत्रफल वढ़ाया गया, और वह पहले से अधिक सुन्दर वन गया। पुराने मंदिरों का फिर से निर्माण हुआ। इन मंदिरों से राजमहल तक जाने के लिए सुन्दर झुरमुट (avenue) वने, और एक विशाल आकर्षक द्वार, इश्तार-द्वार (Ishtar Gate) का निर्माण हुआ। इस द्वार के वाद सरकारी महल व आफिस थे और तत्पश्चात् सवको अपनी प्रतिभा से आछन्न करनेवाला मीनाराकार मन्दिर, जिसे हम वेबेल का मीनार (Tower of Babel) कह सकते हैं। वेविलोन का पुनर्निर्माण का श्रेय राजा नेबूचढ़नेजर (Nebuchadnezer) को है। इसीने अपनी रानी के लिए आसमान में लटकता हुआ बाग (Hanging Garden) वनाया, जिसे यूनानी लोग संसार के सातवें आश्चर्यजनक वस्तुओं में एक समझते थे। यह बाग सम्राट् के राजमहल के छत पर वसा था। इस पर मुड़ेर पर मुडेरे सजे गये थे, प्रत्येक मुड़ेरे पर वृक्ष रोपे गये थे, और पूरे बाग में टहलने के लिए पगडण्डी थी। दूर से देखने पर यही लगता था कि आसमान में वाग लटक रहा है।

इस समय व्यापार व उद्योग की भी उन्नति हुई। कला और साहित्य की प्रगति वढ़ती गई। ज्योतिष में उन्नति हुई। ग्रहों के द्वारा भविष्यवाणी करने का प्रयास जारी रहा।

पर चाल्डियनों ने कभी नया कदम उठाने की इच्छा प्रकट नहीं की। उनका आदर्श था हम्मराबी के समय का गौरव को पुनर्जी-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वित करना। इसलिए इस प्रयास में हम नयी लहर नहीं देखते। पुरानी चीजों को फिर से जीवित करने की कोशिश में कला के क्षेत्र में प्रर्याप्त उन्नति हुई, पर जब आदर्श ही पीछे की ओर जाना था तब बेबिलोनिया का पुनरुत्थान नामुमकिन था। जनता व शासकों में नवजीवन की शक्ति का अभाव था। अतः बेबिलोनिया का इतिहास का पटाक्षेप शीघ्र ही हो गया। पर्शिया का राजा कुरुश प्रथम (Cyrus I) ने चाल्डियन साम्राज्य का ५३९ ई० पू० में अन्त कर दिया।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षष्ठ अध्याय

सिन्धु-घाटी की सभ्यता

मेसोपोटेमिया और मिश्र की नवप्रस्तर युग की ग्रामिण-सभ्यता नागरिक सभ्यता में परिणत हो गई थी। अतिरिक्त अन्न की उपज (Surplus food) के आधार पर ही यह संभव हो सका था। इन्हीं कारणों से भारत में भी नदी किनारे के गाँव विशाल शहर और सभ्यता के केन्द्र बन गये। भाग्यवश स्वर्गीय राखल दास वन्धोपाध्याय ने सिन्ध के लारकाना जिला में स्थित मोहन्जोदाड़ों में अति प्राचीन सभ्यता के अवशेष का पता लगाया। वह कुशनकालीन स्तूप की खुदाई कर रहे थे कि उन्हें वहुत पुराने ईंट व मुहरें मिलीं। भारत की सवसे प्राचीन सभ्यता की खोज का श्रेय उन्हें मिलना चाहिये। यह १९२२ ई० की वात है। पंजाब के मोन्टगुमरी जिले मे हरप्पा और पूर्व पंजाव में रूपड़ में कई चीजें मिली थीं, जो पुरातत्व-वेत्ताओं की राय में नवप्रस्तर युग की वाद की थी; पर भारत के इतिहास की प्राचीन सभ्यता, संभवतः वेदकालीन सभ्यता से भी पुरानी थीं। मोहन्जोदाड़ो में भी इसी प्रकार की चीजें मिली थी। संसार की आँख इस बड़ी खोज पर गई, और मोहन्जोदाड़ो और हरप्पा की खुदाई मार्शल (Marshal), हारग्रिवर्ज, (Hargreeves) वत्स, मैके (Mackey), दयाराम साहनी और दीक्षित महोदयों ने कड़ी मेहनत कर किया। अमेरिका की एक विद्वान सोसाइटी ने सिन्ध में स्थित चान्हूदारों की खुदाई में वड़ी सहायता की। अभाग्यवश अर्थाभाव, जनता की उपेक्षा, और धनीमानी सज्जनों के असहयोग के कारण खुदाई का काम अधूरा ही रह गया। कुछ साल पहले व्हीलर साहब (Wheeler) ने फिर से काम शुरु किया था, और उन्हें अ.शा से अधिक सफलता मिली थी। अब यह क्षेत्र पाकिस्तान में है और सुनने में आता है कि वहाँ की सरकार अपनी इस वृहत् जवाबदेही को समझती है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोहन्जोदाड़ो और हरप्पा में हमें पूर्णविकसित नागरिक सभ्यता के भव्य अवशेष मिले हैं। लोग सुविधाजनक मकानों में रहते थे। मकान में स्नानागार भी था। शहर की सड़कें सीधी और चौड़ी होती थीं। शहर का निर्माण किसी योजना के आधार पर हुआ था। लोग ताम्वा व कांसा का प्रयोग जानते थे । इनके वने सुन्दर बर्तन व मूर्तियां मिली हैं। कई देवी देवताओं की पूजा होती थी। मातृ-पूजा, योगाभ्यास, विशेष प्रकार के पशु व वृक्षों की पूजा का प्रचार था। लिंग व योनि पूजा प्रचलित थी। जव और गेहूं के कई किस्मों का ज्ञान था। कपास के कपड़े बुने जाते थे। शृंगार के लिए आँखों का सूरमा, कपोलो के लिए रंग का व्यवहार होता था। आईने व कंघी पाए गये हैं। बड़े २ विशाल भवनों के अवशेष मिले हैं। इनमें कुछ सरकारी और कुछ धार्मिक महत्व के होंगे। कहने का तात्पर्य यह हैं कि इस युग की सभ्यता सर्वोत्मुखी थी, और अपनी समकालीन नागरिक सभ्यताओं से कई क्षेत्रों में यह सभ्यता बढ़ी-चढ़ी थी। मोहन्जोदाड़ो व हरप्पा में सबसे नीची सतह पर जो चीजें मिली है, शहर का जैसा सुन्दर रूप मिला है, इससे तो यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि सिन्धुघाटी की सभ्यता मेसोपोटेमिया और मिश्र की सभ्यता से कम पुरानी नहीं है ।

मोहन्जोदाड़ो की नीची सतहों पर की सभ्यता इतनी विकसित और परिपक्क है कि यह मानना तर्कसंगत होगा कि इसके पीछे सदियों का विकास है। कुछ दिन पहले यह समझा जाता है था कि कोई नयी विदेशी सभ्यजाति ने यहाँ आकर इन उन्नत शहरों का निर्माण किया और विदेश से लाई हुई विकसित सभ्यता को यहाँ स्थापित किया। पर हाल में सिन्ध के कुछ और प्राचीन क्षेत्रों की खुदाई हुई जैसे अमरी, चन्हूदारो, झुकुर, झांगर इत्यादि, और हमें सिन्ध की सभ्यताओं का क्रमिक विकास का कुछ-कुछ पता चलता है। चन्हुदारों की खुदाई इस दिशा में सबसे महत्वपूर्ण है। सभ्यता के चार प्रत्यक्ष रूपों का पता चला है। अमरी-सभ्यता हरप्पा-सभ्यता के पहले की है। इस समय बर्तन अच्छे वनते थे पर मकान मामूली तरह के बने हैं। धातु का प्रयोग नहीं के बराबर था। हरप्पा सभ्यता नागरिक

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized by eGangotri. Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभ्यता का पूर्णविकसित रूप है। बड़े २ भव्य भवनों का निर्माण हुआ। बर्त्तन साधारण और उपयोगी हैं। अन्तिम स्थिति में शिल्पकला में अवनति पाते हैं। कला और मिट्टी के बर्त्तन में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है। शायद इस युग में नयी जाति का आगमन हुआ हो। इस सभ्यता को झुकर सभ्यता कहा जाता है। इसके बाद की झांगर—संस्कृति में सब दिशा में अवनति ही है। विद्वान लोग एक और नई जाति का आगमन ही इस अवनति का कारण बताते हैं।[1]

भूगोल व जलवायु

भारत की सबसे प्राचीन कृषक जातियों की स्थिति का पता हमें पश्चिम भारत-सिन्ध व बलूचिस्तान में ही मिलता है। सभ्यता के क्रमिक विकास व नागरिक-सभ्यता का उत्कर्ष का पता यहीं चला है। पर यह प्रदेश आज प्रायः रेगिस्तान ही है। वर्षा बहुत कम होती है, गर्मी बहुत अधिक पड़ती है और जमीन पर बालू ही बालू है। । ऐसे शून्य व आतिथ्यविमुख प्रदेश में सभ्यता किस तरह पनपी होगी! यह ठीक है कि सिन्धु नदी अपने साथ सिन्ध में काफी उपजाऊ मिट्टी लाती है। सिन्ध नदी ने ऐतिहासिक काल में कई बार अपनी दिशा में परिवर्त्तन किया है। पहले भी ऐसा ही हुआ होगा। यहाँ की जलवायु भी बहुत पहले भिन्न थी। सिकन्दर के समय में, ईसा से चार शताब्दी पूर्व, सिन्ध व बलूचिस्तान की वही हालत थी जो अब है। पर प्राचीन स्थानों की खुदाई से, हरप्पा-सभ्यता में पाई गई चीजों से यह निष्कर्ष निकलता है कि उस समय इस प्रदेश में वर्षा आज से काफी अधिक होती थी। बलूचिस्तान में तो इसके प्रत्यक्ष प्रमाण मिले हैं। सिन्ध के लिए हमें अनुमान ही करना है। पके हुये ईंटों के मकान, पानी निकलने की सुन्दर

---

१. सभ्यता का नामकरण जिस स्थान पर उस प्रकार की सभ्यता के चिह्न पहले पहल पाये गये हों, उसी नाम से किया जाता है। हरप्पा व मोहन्जोदाड़ो की सभ्यता एक है, इन सभ्यता के अवशेष पहले हरप्पा में पाए गए थे, इसलिए इसे हरप्पा-सभ्यता कहते हैं।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवस्था, हाथी, वाघ, गैंड़ा इत्यादि पशुओं का पाया जाना इस वात की पुष्टि करता है कि उस समय यह प्रदेश इतना सूखा नहीं था जितना कि आज है। शायद वर्षाकालिक वायु (Monsoon) पहले पश्चिम तक फैल जाती थी। और यह भी सम्भव है कि उस समय भी सिन्धु नदी में सालाना वाढ़ आता होगा और उसका फायदा नहरें व आहर के द्वारा लिया जाता हो, जैसे मिस्र में।

सभ्यता का विस्तार

सिन्ध व वलूचिस्तान के प्राचीन स्थानों की खुदाई व निरीक्षण से हमें इस प्रदेश की कई संस्कृतियों का पता चला है, जिनमें हरप्पा की सभ्यता सब से महत्वपूर्ण है। वर्तन के रंगने की कला में वरावर फर्क होता रहा, और प्रत्येक नये तरीके से एक नयी सभ्यता का जन्म समझा जाता है। इसी आधार पर सिन्ध व बलूचिस्तान में कई सभ्यताओं का पता चला है। क्वेटा, अमरी-नाल और कुल्ली सभ्यताएं का विस्तार दक्षिण बलूचिस्तान में था। सिन्ध में अमरी व बलूचिस्तान में नाल में पाए हुये मिट्टी के रंगे वर्तन एक ही तरीके के हैं, और यह प्रत्यक्ष प्रमाण है कि हरप्पा सभ्यता के पहले भी सिन्ध और वलूचिस्तान की सभ्यताएं एक दूसरे से निकट सम्बन्ध रखती थीं। अमरी-सभ्यता अपने अन्तिम समय में दक्षिण वलूचिस्तान में पूर्ण रूप से फैली हुई थी। इस समय के बर्तन कई रंगों से रंगे जाते थे। लाल, पीला, हरा व नीला रंग का व्यवहार होता था। बर्तन पर वर्गाकार चौखटे में खड़ी और पड़ी रेखाओं के रेखाचित्र मिलते हैं। काले और लाल रंग का सुन्दर प्रयोग होता था। इस युग में ताम्बे के भी कुछ उपकरण पाये जाते हैं। ताम्बे में सीसा और निकल मिलाया जाता था। मकान छोटे-छोटे थे, और पत्थर या मिट्टी की ईंट के बने थे। मुर्दों को जलाया जाता था और अव-शेष पर समाधि बनायी जाती थी।

अमरी-सभ्यता के पश्चात् हरप्पा सभ्यता का विकास हुआ। अमरी व चन्हुदारों में हरप्पा-सभ्यता के अवशेष अमरी-सभ्यता के अवशेषों के

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपर पाये गये हैं, इसलिए उनका समय अमरी सभ्यता के बाद का ही है। हरप्पा और मोहन्जोदाड़ों में जो चीजें मिली हैं, सभ्यता का जो रूप है, वह एकदम एक है। हरप्पा (पंजाब) और मोहन्जोदाड़ों (सिन्ध) में एक ही सभ्यता थी। अमरी व चन्हूदारों (सिन्ध) में भी हम वही भवन-निर्माण कला, वर्त्तन-कला और सामाजिक व आर्थिक जीवन पाते हैं। इसलिए यह तो प्रत्यक्ष है कि पश्चिम पंजाव और सिन्ध में यह सभ्यता एक समानरूप से विस्तृत थी। सतलज नदी के किनारे ऊत्तर में भी हरप्पा सभ्यता के विशिष्ट चिह्न मिले हैं। दीक्षित साहब का ख्याल है कि हरप्पा सभ्यता दक्षिण पश्चिम में काठियावाड़ तक, दक्षिण में राजपूताना और नमर्दा व ताप्ती की घाटियों में, और पूर्व में उत्तर गंगा-प्रदेश अर्थात् पश्चिम उत्तर प्रदेश में वन्नू विजनौर व मथुरा तक फैली हुई थी। भारतवर्ष के अन्य भागों से भी सम्वन्ध था। काश्मीर से हरिणों की हड्डियां, और मैसूर से सोना मंगाया जाता था। मार्शल साहव का भी यह संकेत था कि यह सभ्यता पूर्व में गंगा की कांठे में भी फैली होगी। पर अभाग्यवश अभी इसका कोई प्रमाण नहीं मिला है। सिन्ध और पंजाब, जहाँ कि हरप्पा सभ्यता पूर्णरूप से विकसित थी, क्षेत्रफल में मेसोपोटेमिया या ईरान से बड़ा है। इसलिए प्राचीन नागरिक सभ्यता का सवसे विस्तृत-क्षेत्र सिन्धु-कांठा ही था।

नगर योजना और भवन-निर्माण

मोहन्जोदाड़ों के खण्डहरों में घूमने पर यही मालूम होता है कि हम आज के किसी औद्योगिक आधुनिक शहर के भग्नावशेष में घूम रहे हैं। शहर एक निश्चित योजना के आधार पर बसा था। और यही योजना, यही यन्त्रकला (technique) एक ही तरह के ईंटे, एक ही शिल्प-कला सभी समकालीन नगरों में प्रचलित थीं। हरप्पा सभ्यता काफी विस्तृत थी। पर यह ध्यान देने की बात है कि सारे क्षेत्र में एक ही प्रकार की, एक ही ढांचे की, चीजें मिलती हैं। इन चीजों में इतनी समानता है

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि हम नहीं कह सकते कि अमुक वस्तु मोहन्जोदाड़ों की है या हरप्पा की, या चान्हूदारो की। यही नहीं एक ही किस्म की ईंट, एक ही आकार की ईंट, एक ही तरह का पलस्तर, एक ही नगर-योजना हम इस युग के सभी नगरों में पाते हैं। ये नगर एक दूसरे से सैकड़ों मील दूरी पर बसे थे। पर उनमें इतनी समानता है, इतना एकापन है कि यह प्रत्यक्ष है कि सारा समाज एक मजबूत केन्द्र के द्वारा संचालित था। यहाँ स्वतन्त्र शहरों का नागरिक-राज्य नहीं था, वल्कि एक सुगठित और सुव्यवस्थित साम्राज्य था जिसका दवदवा समूचे सिन्धु-कांठे पर पूरा था। यह राज्य कई सदियों तक लगातार टिका रहा। इसका प्रमाण यह है कि हरप्पा व मोहन्जोदाड़ों की खुदाई से यह पता चला है कि ये शहर कई बार बसाये गये थे। शायद बाढ़ के वजह से पुराने शहर पर पर नया शहर बनाना जरूरी हो जाता था। मोहन्जोदाड़ो शहर पाँच-सात सौ वर्ष तक आवाद रहा। इस शहर के नौ सतह खोदे गये हैं। पर इन सतहों पर पाई गई चीजें एक समान है। देखकर कहना असंभव है कि अमुक चीज नीची सतह पर, और अमुक उपरी सतह पर पाई गई है। इसलिए यह निर्विवाद है कि एक ही राजसत्ता यहाँ सदियों तक स्थापित रही। एक ही सभ्यता यहाँ पनपती रही। संगठित और शक्तिशाली राज ने शान्ति कायम रक्खी, और सभ्यता की गति में कोई फर्क नहीं आया। बिना शक्तिशाली राजसत्ता व सुगठित समाज के किसी एक योजना के अनुसार नगरों का निर्माण नहीं हो सकता था, न सारे क्षेत्र में जो, आर्थिक व सामाजिक जीवन में, समता पाते हैं, वह मिल सकती थी।

मोहन्जोदाड़ों व हरप्पा ऊँची दीवालों की चहारदिवारी से घिरा था। मोहन्जोदाड़ो की दीवालों के अवशेष यहाँ वहाँ पाए जाते हैं। हरप्पा में हाल ही में जो खुदाई हुई थी उससे उसकी किलेबन्दी व मजबूत चहर-दिवारी का पता चलता है। सुरक्षा के लिए मजबूत दीवाल से शहर घिरा था। मिट्टी या कच्चे ईंटों के टुकड़ों का बाँध व ऊंचा चबूतरा बनाया गया था, और उस पर रक्षापंक्ति की दीवाल खड़ी की गई थी। दीवाल कच्चे ईंटों की बनी थी, और अन्दर व बाहर से काफी पीटी हुई थी। आगे चल कर

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाहर से भट्टे में पक्की हुई ईंटों से किले की दीवाल को मजबूत किया गया था। दीवाल ४० फीट चौड़ी और ३५ फीट ऊँची थी। इसी चहारदिवारी के अन्दर दुर्ग था। दुर्ग का पश्चिमी दरवाजा का पता चला है। प्रमुख द्वार उत्तर की ओर था। रक्षापंक्ति की दीवाल बुर्जो से और भी मजबूत कर दी गई थी। मोहन्जोदाड़ों में भी दुर्ग था ऐसी आशा की जाती है। सबसे पश्चिम टीले पर तृतीय या चतुर्थ शताब्दी का एक बौद्ध स्तूप खड़ा है। यह स्तूप एक ऊँचे चबूतरा पर खड़ा है, और ऐसा अनुमान है कि इस प्लैटफार्म पर कोई बड़ी भव्य इमारत खड़ी होगी। इस क्षेत्र में कई विशाल भवनों के अवशेष मिले हैं। इसलिए यह संभव है कि यह क्षेव राजनीतिक व धार्मिक केन्द्र था। बौद्ध स्तूप के नीचे शायद प्राचीन दुर्ग हो, जिसमें नगर का प्रमुख मन्दिर हो, और उसके पुरोहित-राजा रहे हों। बेबिलोनिया के के प्राचीन नगरों में पुरोहित-राजा का ही शासन था। शायद यही रवैया यहाँ भी हो।

दुर्ग के नीचे शहर बसा था। शहर किसी विशेष योजना के आधार पर बना था। शहर का आकार समकोण चतुर्भुज था। सीधी सड़कें पूर्व पश्चिम और उत्तर दक्षिण तक फैली थी, और एक दूसरे से समकोण पर मिलती थी। एक मील लम्बी सीधी सड़क अभी भी अच्छी दशा में है। खुदाई के समय में इसका व्यवहार हुआ था। शहर की मुख्य सड़कें काफी चौड़ी थी— ३० फीट चौड़ी एक सड़क का पता चला है। इन सड़कों में गलियाँ व पगडंडियाँ आकर मिलती थीं। ९फीट चौड़ी गलियाँ थीं। इसका पूरा ख्याल रखा जाता था कि सड़कों के किनारे सटे हुये मकान न बने जिससे कि सड़के संकुचित हो जायँ व राहगीर व यातायात-गाड़ियों को मकान की दीवालों से रगड़ लगे। सड़कों के कोने पर के मकान की बाहरी दीवाल थोड़ा वृत्ताकार कर दी जाती थी जिससे कि गाड़ियों के रगड़ से रक्षा हो सके।

साधारण मकान प्रायः एक ही प्रकार के थे। बड़े मकान की योजना में कोई विशेष अन्तर नहीं था, सिर्फ उनमें जगह अधिक थी, और आराम

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की सुविधाएं प्रयाप्त। मकान मिट्टी में पके ईंटों के बने थे। मिट्टी व चूना का पलस्तर का व्यवहार था। सभी शहरों में एक ही प्रकार व आकार के ईंटों का व्यवहार था। एक ही योजना नगर-निर्माण का आधार थी। मकान में स्नानागार का प्रवन्ध था। कुछ मकान दोतल्ले भी थे। कभी २ सीढ़ियाँ बाहर से दी गई थीं। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि दो स्वतन्त्र परिवार किराया देकर रह सकते थे। प्रत्येक मकान में द्वारपाल के रहने की व्यवस्था थी। वह रात्रि में चौकसी करता था। आंगन वड़ा रहता था, गाय-वैलों को यहीं बाँधा जाता था। आँगन में कहीं २ ऊँचे चबूतरों के अवशेष मिले हैं। शायद बाढ़ के जमाने में पानी मकान में घुस आता था, और लोग इस चबूतरे की शरण लेते थे। वड़े २ मकानों में अतिथिगृह, और विश्रामागार का भी प्रवन्ध था।

इन नगरों की सवसे वड़ी विशेषता थी शहर की सफाई और पानी निकालने का प्रवन्ध। प्रत्येक मकान में मिट्टी के बड़े नाद आँगन में रखे रहते थे जिनमें गन्दी चीज व गन्दा पानी जमा रखा जाता था, और जब वह नाद काफी भर जाता था तव उसका पानी बाहर नावदान में डाल दिया जाता। मिट्टी के ऐसे बड़े नाद व घड़े जमीन में गड़े पाए गये हैं। आँगन में नाली भी पाई गई हैं, जिसके द्वारा गंदा व बरसात का पानी बाहर नाबदान में या गली व सड़क के नीचे बहते हुये नाले में गिरता था। प्रत्येक मकान में स्नानागार था। बाथ-रूम की गच खड़ी ईंटों (खडंजा) से इस तरह पाटी जाती थी कि पानी गच क अन्दर न चला जाय। गच नाली की ओर ढालुआ था। नाली से पानी बाहर नाबदान में गिरता था। बाथरूम में मिट्टी के खिलौन के कुछ टुकड़े पाये गए हैं। बच्चों को स्नान करने के समय खेलने के लिए दिये गये हो। शरीर का मैल साफ करने के लिए झाँवा के टुकड़े भी मिले हैं। आगे वता दिया गया है कि कुछ मकान दो मंजिले भी थे। कोठे पर भी बाथ-रूम की सुविधा थी। दुमंजिले से बाथ-रूम का पानी या बरसात की छत पर का पानी नीचे नावदान में मिट्टी की टोंटी से गिरता

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। कुछ मकानों में मिट्टी की पाईप के अवशेष मिले हैं। मिट्टी की कई टोटियों को छत पर से नावदान तक जोड़कर पाइप बनाया जाता। जोड़ इतना अच्छा रहता कि बाहर से पता नहीं चलता। कभी २ तो पाइप वाली दीवाल को ईंट से इस तरह चुन दिया जाता था कि बाहर से पता नहीं चलता कि दीवाल में पाइप लगी हुई हो, बल्कि बाहर से दीवाल की खूबसूरती भी बढ़ जाती, और समूची कारीगरी शोभनीय होती। पाइप से पानी एकाएक पूरे जोर से नाबदान में गिर कर सड़क व गली में चलते हुए यात्रियों पर छींटे न उछाले इसलिए पाइप को कई जगहों पर जरा कोणाकार (टेढ़ा) कर दिया जाता जिससे गिरते हुए पानी का जोर कम हो जाय। जब नाबदान तीन चौथाई भर जाता तब उसका पानी स्वयं गली के नीचे बहते हुए नाले में गिरने लगता। गली व पगडण्डियों की नालियाँ खुली न रहतीं, बल्कि जमीन के नीचे बहतीं। वे सब सड़क व प्रमुख राज-पथों के पक्के नाले में मिल जातीं। जब एक नाली दूसरी नाली से मिलती तो संगम पर कोणाकार बना दिया जाता, जिससे पानी द्रुतगति से बहते हुये नाले के तल भाग के नीचे न चली जाय और भूमि को गीला कर दे। नाले पक्की ईंटों के बने थे, और सड़कों के दोनों ओर अन्दर ही अन्दर बहते थे। निश्चित अन्तर पर नाले में पक्के गढ़े बने थे जिससे पानी जमा होता, और समय पर शहर के मेहतर इसे साफ करते। सड़क पर यहाँ-वहाँ नाली में मनुष्यों के उतरने के लिए छिद्र (Manhole) पाये गये हैं। कहीं २ तो नाली में उतरने के लिए छोटी-छोटी पक्की सीढ़ियाँ (Steps) बनी हुई थी। बराबर बाढ़ आने के कारण शहर तथा सड़कों का समतल ऊँचा होता रहता, इसलिए नाला काफी गहरा हो जाता। कभी २ तो नालों की सतह भी ऊँची कर दी जाती। नाबदान का पानी गलियों के नालियों में जाता, और गलियों की नाली का पानी प्रमुख सड़कों के नीचे बहते हुए नाले में गिरता। इस तरह शहर का अतिरिक्त पानी व गन्दा पानी सड़कों के नीचे बहता, और ये बड़े २ नाले इस बेकार व गन्दे पानी को शहर के बाहर ले जाते। इसका प्रमाण है

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक काफी बड़ा मेहराबदार नाली (Culvert) का अवशेष। शहर के कूड़ा-कर्कट फेंकने के लिए ईंटों के बने डस्टविन मिलते हैं। समय पर मेहतर इन्हें साफ कर दिया करते थे।

इस तरह मोहन्जोदाड़ों व हरप्पा में सफाई का जो प्रबन्ध था वह आज भी हमारे प्रमुख शहरों के लिए अनुकरणीय है, और ईर्षा के योग्य। प्रमुख सड़कों के संगम पर कोठरी के अवशेष मिले है। शायद पुलिस के लिए यह व्यवस्था हो। इतना सुन्दर व योजनापूर्ण नगर अवश्य ही नगरपालिका के वार्डो में बंटा होगा, जिससे जन साधारण व शासक को सुविधा रहे। चोरों का भय बना रहता था। मकानों के प्रमुख द्वार सड़क की ओर न रहकर गलियों में खुलते। दो मकानों के बीच अलगाने वाली दीवाल (Partition wall) होती थी। दोनों ओर के मकान मालिक इस दीवाल को ईंटों से दुहरा मजबूत रखते, जिससे चोरों को सेंध डालने में दिक्कत हो। मकानों में खिड़कियों का अभाव का भी शायद यही रहस्य हो।

पानी का भी अच्छा प्रबन्ध था। मकानों में स्नानागारों का रहना इस बात का प्रमाण है कि लोग शारीरिक सफाई का काफी ध्यान रखते थे। बड़े २ मकानों में कुएँ थे। कभी २ कई मकानों के लिए एक ही इनारा रहता। कुएं पक्की ईंटों के बने थे, और उनकी दीवाल में पानी नहीं घुस सकता था। इनारे के ऊपर मुड़ेरे रहते। इन मुड़ेरों पर पानी-भरने के बर्तन, (गगरे) इत्यादि के रखने के चिह्न मिले हैं। मिट्टी के बर्तन के कई टुकड़े नजदीक में मिले हैं। शायद लोग मिट्टी के गिलास में पानी पीकर उसे फेंक दिया करते थे। पनघट पर यात्रियों व पानी भरने वालों की भीड़ का अनुमान हमलोग लगा सकते हैं। आज की तरह उस समय भी पनघट शहर का गपशप (gossip) का केन्द्र रहा होगा।

शहर एक पूर्व निश्चित योजना के आधार पर बसाया गया था। शहर के अधिकारी इस ओर पूरी तरह सतर्क थे कि योजना का

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवहेलना न हो। घरों के जो अवशेष मिले हैं उससे साफ मालूम हो जाता है कि मकान निश्चित नमूने (Types) के आधार पर बने थे। मकान छोटे, मझोले व बड़े तीन नमूने के थे। मकान किसी एक टाइप (Type) के बनाये जाते थे। इसका प्रमाण मजदूरों का महल्ला है। मोहन्जोदाड़ों में एक किनारे सोलह मकान के अवशेष मिले हैं। सब एक प्रकार के हैं। समान क्षेत्रफल और एक ही ढांचा। आठ-आठ मकान दो समानान्तर पंक्ति में है, और इनके बीच एक तंग गली है, और दूसरी ओर सड़क है। दीवालें पतली हैं। इसलिए ये मकान एक-मंजिले रहे होंगे। आजकल के कुली-घर के ऐसे हैं। हरप्पा में किले के उत्तर नीचे में मजदूरों का एक महल्ला बसा था। चौदह मकान मिले हैं, सात २ की दो पंक्तियों में बने हुये। प्रत्येक घर में दो कोठरियाँ थीं, एक बड़ी और एक उनसे छोटी। मोहन्जोदाड़ों के कुली-घर से हरप्पा का कुलीघर अधिक बड़ा था। मध्यवर्ग व उच्च वर्ग के मकान में आँगन था, और आँगन की दो-तीन ओर कोठरियाँ थीं, कुछ बड़ी और कुछ छोटी। स्नानागार, भांडार, रसोईखाना, अतिथि-गृह सभी बड़े लोगों के मकान में पाए जाते हैं। मकानों में अंगीठी का अभाव है। लकड़ी के कोयले की बोरसी से शरीर और कोठरी गर्म रखा जाता होगा।

असाधारण इमारतें

साधारण मकानों व दूकानों के सिवा मोहन्जोदाड़ो व हरप्पा में ऐसी विशाल ईमारतों के अवशेष मिले हैं, जो अवश्य ही विशेष प्रयोजन के निमित्त होंगे। मोहन्जोदाड़ों में एक बहुत बड़ा स्नानागार (Great Bath) मिला है। खुले चौखुटे आँगन के चारों तरफ बरामदे है। तीन बरामदे के पीछे कई गैलरी व कोठरियाँ है। दक्षिण की ओर एक लम्बा तंग बरमदा है जिसके प्रत्येक कोने में एक छोटा कमरा है। पूर्व में छोटे कमरे की एक कतार है, और दक्षिण में कई हाल व बड़े कमरे हैं। खुली आँगन के बीच में स्नान करने का तालाब है। यह आठ फीट

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

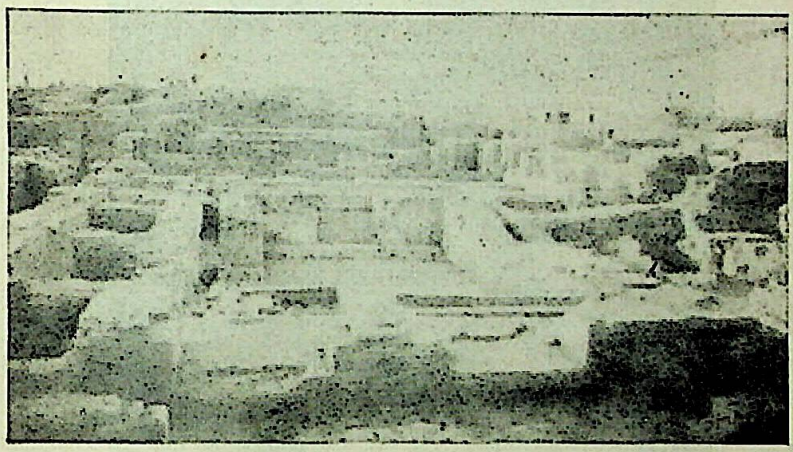

(पृ० ९६) मोहेन्जोदाड़ो का विशाल स्नानघाट (Great Bath)

(*Copyright Reserved. Arch.Surve. India*)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

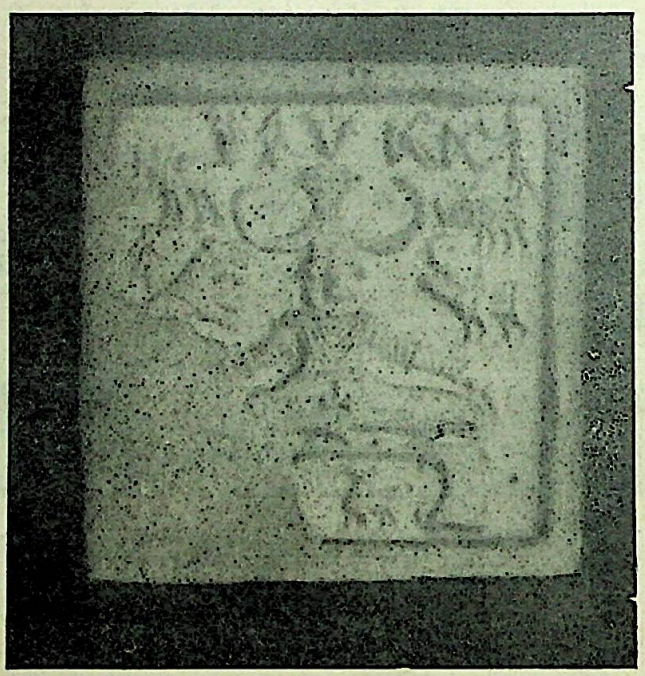

(पृ० १००) शिव (?): मोहेन्जोदाड़ो (*From a Cast*)
(पटना म्यूजियम् के सौजन्य से)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गहरा, ३३ फीट लम्बा और २३ फीट चौड़ा है। दो ओर सीढ़ियों से नीचे उतरने का प्रबन्ध है। नीचे में दोनों ओर नीचा चबूतरा है जिस पर बच्चे व नाटे आदमी स्नान करते थे। इस तालाब में पानी एक कोठरी के कुएं से आता था, और पानी बाहर निकालने का भी रास्ता था। इस तालाब के उत्तर दो पंक्ति में कई गुसलखाने बने थे, इनके बीच थोड़ा रास्ता छोड़ दिया गया था, आने जाने के लिए, या पानी ले जाने के लिए। इन गुसलखानों के दरवाज़े इस तरह बने थे कि आमने-सामने के गुसलखाने में नहाने वाले एक दूसरे को नहीं देख सकते थे। इन स्नानागारों के ऊपर छोटी कोठरियाँ थी, जिनमें शायद यात्री व पुजारी ठहरा करते। स्नानागार से ऊपर की कोठरी में जाने के लिए खास सीढ़ी का प्रबन्ध था। मार्शल साहब ग्रेट-बाथ के समीप 'हम्माम' का भी प्रबन्ध का अनुमान करते हैं। ठंढे व गर्म भाप से स्नान करने का प्रयोग भी लोग जानते होंगे। हिन्दुस्तान में धार्मिक व सामाजिक अवसरों पर इकट्ठे नहाने का रिवाज है। शायद ग्रेट-बाथ इसी प्रकार का कोई पुण्य स्थान हो, या उसके समीप ही विशेष अवसरों पर स्नान करनेवालों का मेला लगता हो। पुजारियों व पण्डों का ऐसे स्थानों पर रहना स्वाभाविक है। ग्रेट-बाथ का पूरा क्षेत्र २३० फीट × ७२ फीट है। इसकी विशालता का इसी से अनुमान लगाया जा सकता है।

एक और भव्य इमारत स्तूपवाले टीलेके दक्षिण है। ९० फीट समचतुर्भुज के आकार का एक बड़ा कमरा (Hall) मिला है। इसकी छत पाँच-पाँच की चार धारी की २० ईंटों की खम्भों पर टिकी थी। इन समानान्तर कोराइडरों की गच ईंट से पीटी हुई थी, और खम्भों के बीच की जमीन गच नहीं है। यह संभव है कि यहाँ पर बैठने के लिए लकड़ी की छोटी बेन्चें रखी गई हों, जो अब नष्ट हो गई हैं। क्या यहाँ बाजार लगता था? ऐसे स्थानों पर आजकल बाजार लगता है, या यह एक

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ा धार्मिक सभा-भवन था, जहाँ बैठकर लोग धार्मिक चर्चा करते व भाषण सुनते थे। स्तूप वाले टीले का सामीप्य धार्मिक महत्व की ओर संकेत करता है।

हर पा में अन्नों का एक बड़ा गोला (Granary) का अवशेष मिला है। दो समानान्तर पंक्ति में ५२ फीट लम्बा 'अवेष्ठित प्रतिष्ठान है'। इनके बीच २३ फीट चौड़ा रास्ता है। दीवाल की मुटाई ९ इंच है। हाल ही में मोहन्जोदाड़ों में भी एक विशाल गोला का पता चला है।

मैके साहब (Mackay) की यह यह धारणा है कि मोहन्जोदाड़ो में बौद्ध स्तूप के नीचे सबसे बड़ी इमारत पड़ी है। २० फीट ऊँचे चबूतरा पर एक विशाल भवन के अवशेष मिले हैं, और यह शायद नगर का प्रमुख मन्दिर हो। इसके ऊपर स्तूप बनाया गया है। साधारणतः पुराने धार्मिक भवनों के ऊपर नये धर्म-मन्दिरों के निर्माण किए जाते थ। मन्दिर के ध्वंशावशेष पर मस्जिदें मुसलिम युग में बनाई गई थी। सुमेर में भी प्रत्येक शहर का सबसे भव्य भवन प्रमुख मन्दिर ही होता था।

शहर के उत्तरी भाग में, मध्यसड़क के उत्तर की ओर, एक विशाल भवन के चिह्न पाये जाते हैं। इसका क्षेत्रफल २४२ फीट लम्बा, १०० फीट चौड़ा और दीवाल पाँच फीट चौड़ी थी। पीछे चल कर इसके ऊपर मामूली मकान बनाये गये थे। यह भवन गैर मजहबी मतलब का था। शायद सरकारी आफिस रहा हो। इसके दक्षिण राजमहल के अवशेष पाए गये है। इसकी राजगिरी अद्वितीय है, बड़े २ मकान एक विस्तृत आंगन के चारों ओर बने थे। कई भण्डार, और नौकरों के और धातु के काम करनेवाले कारीगरों के रहने के लिए कोठरियाँ भी थीं। यह भी गैरधार्मिक संस्था का स्थान था। शायद मोहन्जोदाड़ो में राजा भी होता था। क्रीट में नौसस् (Knossus) में राजमहल का नक्शा इसी प्रकार का है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सड़कों के कोने पर मकानों के ध्वंश मिले हैं। यहाँ शायद जलपान-गृह व पनसल्ला रहा हो। एक मकान में, एक हौल स दूसरे छोटे कमरे में जाने के लिए रास्ता था। वड़ा हाल शायद जलपान-गृह रहा हो, और छोटा कमरा भण्डार (Pantry) रहा हो, जहाँ चीजें इकट्ठी कर रक्खी जाती हों।

अतः मोहन्जोदाड़ो की नगर-योजना प्राचीन युग में अद्वितीय थी, और आज भी एशिया के प्रमुख शहरों के लिए अनुकरणीय। पूर्व-योजना के आधार पर शहर वसाना वर्त्तमान युग की विशेषता समझी जाती है। पर आज से प च हजार वर्ष पहले मोहन्जोदाड़ो नगर वर्तमान योजनानुकूल नगर के समान था। उसकी सड़कें टेढ़ी-मेढ़ी नहीं थी, वरन् सीधी और चौड़ी। शहर का विकास घटनाक्रम पर नहीं छोड़ा गया था, पर पूर्व-विवेक का परिणाम था। मोहन्जोदाड़ो की स्वच्छता और स्वास्थ्य-संबंधी साधन मेसोपोटेमिया के समकालीन ऊर व किश् नगर में नहीं पाए जाते। मोहन्जोदाड़ों प्राचीनकाल का सबसे स्वस्थ नगर रहा होगा।

धर्म

हरप्पा वासियों का धर्म क्या था? उनके देवी-देवता कौन थे? धार्मिक विधि क्या थी? इन सब प्रश्नों का समुचित उत्तर अभी नहीं दिया जा सकता। सबसे विलक्षण बात यह है कि अभी तक कोई ऐसा भवन नहीं मिला है जिसे निश्चय ही मंदिर कहा जाय। क्या मंदिर नहीं होते थे? बौद्ध स्तूप की खुदाई के बाद शायद मंदिर का पता चले। छोटी २ मिट्टी की स्त्री-मूर्तियाँ मिली हैं। इससे यह पता चलता है कि उस समय मातृपूजा का बहुत प्रचार था। मातृपूजा का प्राचीन सभ्यताओं में जैसे मेसोपोटेमिया, मिश्र या क्रीट के धर्म में सबसे ऊँचा स्थान था। ये मूर्तियाँ करीब-करीब नंगी है, या बहुत छोटा घाँघरा पहनी हुयी हैं। सर का साफा (Head dress) विचित्र प्रकार का था। पंखे की आकार का भारी बोझ सर का शृंगार था। दोनों ओर प्यालानुमा चीजें बनी हुई थीं। शायद धूपदानी

CC-0 In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहीं हो। गले में कई प्रकार के हार पड़े हैं जो त्रिकोणाकार सजे हैं। एक मुहर पर एक स्त्री की मूर्त्ति उल्टी पड़ी है, सर नीचे पैर ऊपर और गर्भाशय से एक पौधा निकला हुआ है। कुछ लेख भी है जिसे पढ़ा नहीं जा सकता। दो पशु-पिशाच हैं (Genii)। मुद्रा की दूसरी ओर वही लेख दुहराया गया है। एक स्त्री जमीन पर बैठी हुई है, और उसके दोनों हाथ उपर उठे हैं। पास में एक मनुष्य हंसिया लेकर खड़ा है। क्या यह देवी के सामने नर बलि का दृष्टान्त है ? मातृपूजा, देवीपूजा आज भी खूब प्रचलित है, और आदिम जातियों में सबसे प्रधान पूजा है। काली, दुर्गा मातृदेवी के ही रूप हैं।

मातृदेवी की पूजा के अलावे एक प्रमुख देवता की भी पूजा होती थी। एक मुद्रा पर एक ध्यानावस्थित योगासन में प्रायः नंगा पुरुष की मूर्त्ति हैं। उसके तीन सिर है। दोनों हाथों में बड़े २ कड़े व बाजूबन्द हैं। सर पर त्रिशूलनुमा साफा है। दोनों ओर पशु खड़े हैं, व्याघ्र व हाथी दाहिने ओर, गैंड़ा (Rhionceros) और भैंस बायीं ओर। छोटे चबूतरे पर, जिस पर, मूर्ति बैठी हुई है, दो मृग की मूर्तियाँ हैं। मार्शल साहब इस मूर्त्ति को हिन्दूकालीन शिव का प्राचीन रूप समझते हैं। पशुओं से घनिष्ट संबंध के कारण इसे हम पशुपति कह सकते हैं। योगमुद्रा महायोगी शिव का प्रिय मुद्रा है। सर पर त्रिकोणाकार श्रृंगार पीछे चल कर त्रिशूल बन गया हो। विश्व की सभी प्राचीन सभ्यताओं में मातृदेवी के साथ एक प्रमुख देवता का घनिष्ट संबंध माना गया है। हिन्दूधर्म में भी यही बात मिलती है। हरप्पा व मोहन्जोदाड़ों में अभी कोई ऐसा प्रमाण नहीं मिला है जिससे हम यह निश्चयपूर्वक कह सकें कि मातृदेवी और इस देवता (शिव ?) का अचुक्षण सम्बन्ध था। पर ऐसा संबंध रहा हो, यह अनुमान के परे की बात नहीं है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योगाभ्यास इस काल के धर्म का अंग था, यह शिव की मूर्ति के अलावे दूसरी मूर्तियों से भी पता चलता है। पत्थर की कुछ मूर्तियाँ मिली है, जिनमें योग मुद्रा है। आँखें आधी खुली हैं, सर, गर्दन व सीना ऊँचा है। मातृपूजा, शिवपूजा व योगाभ्यास जो पीछे चल कर हिन्दूधर्म के अभिन्न अंग बन गये हैं, शायद इस प्राचीन धर्म से ही निकले हों। पत्थर की एक टूटी मूर्ति मिली है। इसके तीन सिर थे ऐसा मालुम होता है। यह एक नर्तक की मूर्ति है। मूर्ति दाहिना पैरपर खड़ा है, बायाँ पैर उठा हुआ है और मूर्ति बाईं ओर झुकी है। मार्शल साहब का विचार है कि यह मूर्ति शिव का नर्तक-रूप है। पर हिन्दू-साहित्य में त्रिमूर्ति ब्रह्मा का भी उल्लेख आया है।

पशुओं की पूजा, व जानवरों को ईश्वरीय दूत समझना इस धर्म का सार्वजनिक अंग था। मिट्टी की बहुत सी मानवीय मूर्तियों में बकरी व साँढ़ के सींग पाए जाते है। इससे यह प्रत्यक्ष है ये पशु धार्मिक महत्व के समझे जाते थे। कई ताबीज व जन्तर मिले हैं जिनमें जानवरों की मूर्ति है। जानवरों की पत्थर की मूर्तियाँ भी मिली है, जिनका आशय धार्मिक ही होगा। भेड़, बकरी, कई प्रकार के साँढ़, व्याघ्र हाथी, गैड़ा, मगर, पेड़की इत्यादि धार्मिक महत्व के पशु हैं।

मुहरों या जन्तर पर सबसे अधिक संख्या में एक सींगवाला साँढ़ चित्रित है। इसके सामने एक स्तम्भाकार चीज खड़ी है। ऊपर और नीचे के दो बर्तन एक सीधा डन्डा से जुटे हुये हैं। इसका क्या अर्थ है नहीं कहा जा सकता।

सर्पों या नागों का भी धार्मिक महत्व था। पत्थर के एक टुकरे पर एक बैठे हुये मनुष्य की दोनो ओर फन खोले हुये साँप है।

पशु-पूजा और भी प्राचीन सभ्यताओं में पाई जाती है। जानवरों से मनुष्यों को बहुत पहले भय था। वे उन्हें देवताओं के रूप समझते थे। इसलिए भय से उनकी पूजा करते। कुछ जानवरों को देवताओं का दूत

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझा जाता था। उनकी पूजा से देवता का आशीर्वाद प्राप्त किया जा सकता था। पीछे चलकर कई जानवर भिन्न २ देवी-देवताओं के वाहन समझे जाने लगे। हरप्पा सभ्यता का धर्म और ऐतिहासिक हिन्दूधर्म दोनों में पशु पूजा पाई जाती है। मोहन्जोदाड़ों व हरप्पा में कई मुहरें पाई गई हैं जिनमें एक से अधिक पशुओं का व उनके अंगों का सम्मिश्रण है। एक मुहर में लेटे हुये भेंड़ के सामने एक लम्बी चीज लटक रही है, जो हाथी का सूँढ़ है। यह भेंड़ व हाथी दो पशु—देवताओं का मिश्रण है। एक मुहर में चार पशुओं के सिर हैं—तीन प्रकार के साँढ़ और एक व्याघ्र का, और दो भिन्न पशुओं की गर्दन हैं। इस तरह के दृश्य से यही पता चलता है कि कई धार्मिक पन्थों का, भिन्न२ देवताओं का, सम्मिश्रण किया गया था। आशय शायद यह रहा हो कि इससे पूजा करने वाले को अधिक ताकत व फल मिलता है। एक ताबीज पर व्याघ्र की मूर्त्ति है, उस पर एक देवी बैठी हैं। देवी को बकरी की सीघ है, शरीर व पूंछ बाघ का है, और सिर में से फूलों का गुच्छा निकल रहा है। एक मुहर में विजयी भैंस कुछ लोगों पर आक्रमण कर खड़ा है। व्याघ्र देवी की पूजा अभी भी कुछ जातियों में होती है। व्याघ्र देवी का वाहन भी माना गया है। भैंस यम का वाहन है। इस तरह हम हरप्पा-कालीन धर्म और हिन्दूधर्म में काफी समानता पाते हैं। एक ठप्पे पर सींघ वाले मनुष्य के पैर व पूंछ साँढ़ के हैं, और वह सींघ वाले बाघ से युद्ध कर रहा है। कुछ मुहरों पर एक बलवान मनुष्य, जिसके घुंघराले बाल मुंह पर लटक रहे हैं, दो बाघों से लड़ रहा है। ऐसे दृश्य प्राचीन सुमेर में भी पाये गए हैं। सींघदार मनुष्य (Horned-men) के चित्र प्राचीन मिश्र व सुमेर में धार्मिक महत्व रखते थे। ऋग्वेद में भी 'सुवर्णसींघ वाला असुर' का उल्लेख है।

इस समय वृक्षों की भी पूजा प्रचलित थी। कुछ वृक्ष पूजे जाते थे, और कुछ वृक्षों का देवताओं या देवताओं के दूतों से घनिष्ट सम्बन्ध था। इस आशय को स्पष्ट करने के लिए एक जन्तर-मुहर पर खुदे हुये दृश्य पर ध्यान देना जरूरी है। वृत्ताकार जमीन से एक पीपल का पेड़,

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

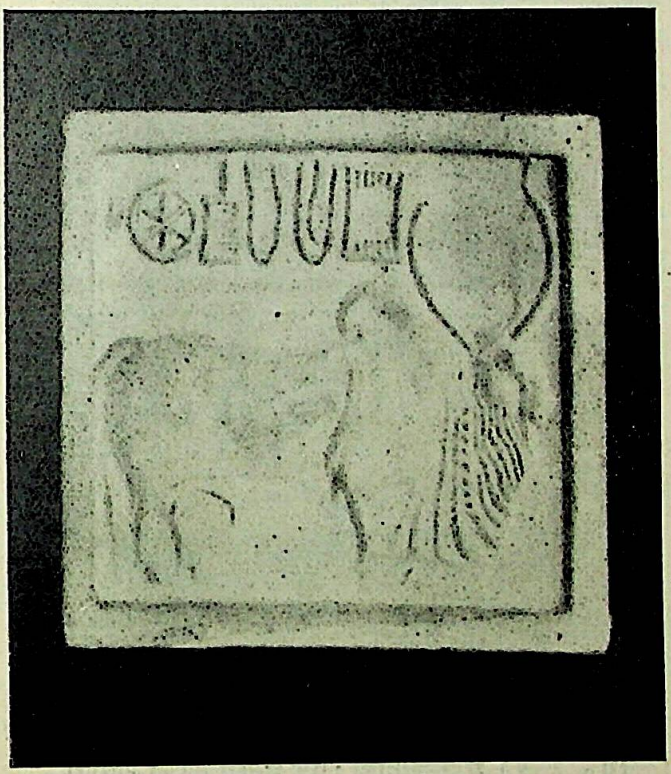

(पृ० १०१) बाह्मी साढ़ (मोहेन्जोदाड़ो) (*From a Cast*)
(पटना म्यूजियम् के सौजन्य से)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पृ० १०१) मोहेन्जोदाड़ो : एक मनुष्य का दो व्याघ्रों से लड़ना (*From the Cast*)
(पटना म्यूजियम के सौजन्य से)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसकी दी शाखाएं चित्रित है, निकल रहा है। इन दो शाखाओं के बीच में एक सींघदार मनुष्य खड़ा है। इसके बाल लम्बे और घुघंराले है। सिर पर त्रिशूलनुमा साफा है। मूर्त्ति वस्तुतः नंगी है। उसके सामने एक व्यक्ति भक्तिमुद्रा में घुटने टेके हुये है। इसकी भी चोटी लम्बी है, बाहों में बाजूबन्द हैं और सर पर सींघों के बीच फूल का एक गुच्छा निकला आ रहा है। इस मूर्ति के पैर के समीप एक छोटे स्टूल पर एक चीज रक्खी हुई है। इस व्यक्ति के पीछे एक बकरीनुमा पशु जिसका चेहरा मनुष्य का है खड़ा है। मुहर के निचले भाग में सात स्त्रियों की खड़ी मूर्तियां हैं। इस दृश्य का अभिप्राय समझना आसान नहीं हैं। मार्शल साहब वृक्ष के बीच की मूर्त्ति को स्त्री मूर्त्ति समझते हैं, और उसे 'उपज की देवी' मानते हैं। घुटने टेकने वाला व्यक्ति पुरुष है, और देवी की आराधना कर रहा है। बकरी शायद बलिदान के लिए है। सात स्वर्ग की परियाँ गवाह हैं। शीतला महारानी भी सात बहन हैं। कौन जाने ये मूर्तियाँ शीतला और उसकी बहन ही हों। कुछ लोग वृक्ष के बीच की मूर्ति को पुरुष की मूर्ति समझते हैं। वृक्ष देवी के अलावे वृक्ष-देव भी होते हैं। बकरी का चेहरा मनुष्य का है, और वह भक्त के पीछे खड़ा है इसलिए संभव है कि वह बलिदान का बकरा न होकर, वृक्ष देव का दूत हो, और भक्त को देवता के सन्निकट लाने का श्रेय उसी का हो। कुछ भी हो यहाँ हम वृक्ष-देव व वृक्ष देवी की पूजा देखते हैं। एक दूसरे मुहर पर के अंकित दृश्य से यह आशय और भी स्पष्ट हो जाता है। वृक्ष के बीच एक देवता हैं, और उनके सामने एक भक्त घुटने टेक रहा है, इस भक्त के सर पर सींघदार साफा नहीं है। इसके हाथ में एक छूरी है, और सामने एक बकरा, जिसकी आकृति मनुष्य की नहीं है। मुहर के ऊपर के भाग पर ६ मूर्तियाँ खड़ी है। यह दृश्य किसी वृक्ष-देव की पूजा है जिसमें बकरा का बलिदान होता होगा।

वृक्षों में पीपल व नीम पवित्र वृक्ष समझे जाते थे। आज भी ऐसी ही धारणा है। कुछ मुहरों पर पीपल के वृक्ष के जड़ के चारों ओर एक

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटा चबूतरा बना है, शायद पूजा की सुविधा के लिए। आज भी ऐसी चीज पाई जाती है। हरप्पा के एक प्रसिद्ध ठप्पे पर पीपल का एक वृक्ष है जिसके अधोभाग से एक सींघ वाला विशेष पशु का सिर व गर्दन निकले आ रहे हैं। एक सींघवाला पशु अवश्य ही देवता व देवतुल्य समझा जाता था। क्या एकशृंगी पशु का वृक्ष-देवी से घनिष्ठ सम्बन्ध था? एक दूसरे मुहर पर एक वृक्ष चित्रित है, इस वृक्ष की फुनगी पर एक पशु का सिर निकला हुआ है, और सर पर सींघ है, जिसके बीच में फूलों का गुच्छा निकल रहा है। इस वृक्ष के चारो ओर अधोभाग में एक ऊँचा चबूतरा है। एक और मुहर में हम दो मनुष्यों को एक वृक्ष के दो शाखाओं को या एक प्रकार के ही दो वृक्षों को पकड़े देखते हैं। शायद यह वृक्ष रोपन का धार्मिक महत्व का प्रमाण है, या कोई विशेष त्योहार रहा हो।

इस काल में लिंग-पूजा का भी चलन था। कई चिकने नोकदार पत्थर मिले हैं, जिन्हें हम 'लिंग-पूजा का प्रतीक समझते हैं। बैडूर्य पत्थर (Lapis-lazuli) के बने दो इंच लम्बे लिंगाकृति के पत्थर बहुत से मिले हैं, जिन्हें शायद लिंग-सम्प्रदाय के अनुयायी अपने पास बराबर रखते रहे हों। ऐतिहासिक कालमें लिंगायत-सम्प्रदाय के माननेवाले पीछे चलकर ऐसा करते थे।

पत्थर के बड़े चक्र मिले हैं जिन्हें कुछ लोग योनि (स्त्रीलिंग) का प्रतीक समझते हैं। कई तो अँगूठी के समान छोटी भी है। प्राचीन काल में यह समझा जाता था कि स्त्रीलिंग के प्रतीक को अँगूली में पहने रहने से या गले में पहने रहने से बुरे ग्रहों की शान्ति होती है या प्रेतों से भय नहीं होता। एक योनि में स्थित लिंग भी मिला है। लिंग पूजा अवश्य ही प्रचलित थी। पर शिव (?) से उसका सम्बन्ध था या नहीं, हम नहीं कह सकते।

पूजा व धार्मिक उत्सव में जूलूस, नृत्य व गाना-बजाना का भी स्थान था। दो जन्तरों में एक सांढ़ की मूर्ति जूलूस में ले जाया जा रहा है। हरप्पा से प्राप्त एक मुहर में एक मनुष्य बाघ के सामने ढोल पीट रहा

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

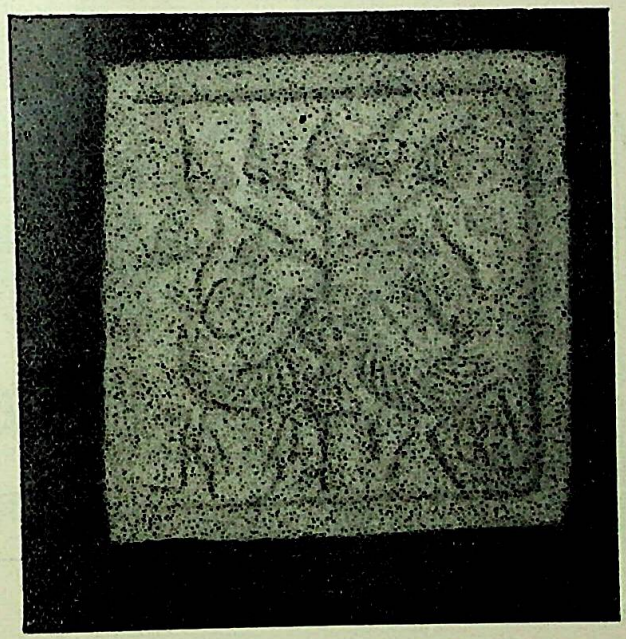

(पृ० १०४) मोहेन्जोदाड़ो : पीपल का वृक्ष और दो एक सींघ वाला सिर (*From a Cast*)
(पटना म्यूजिअम् के सौजन्य से)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

चित्र १४

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

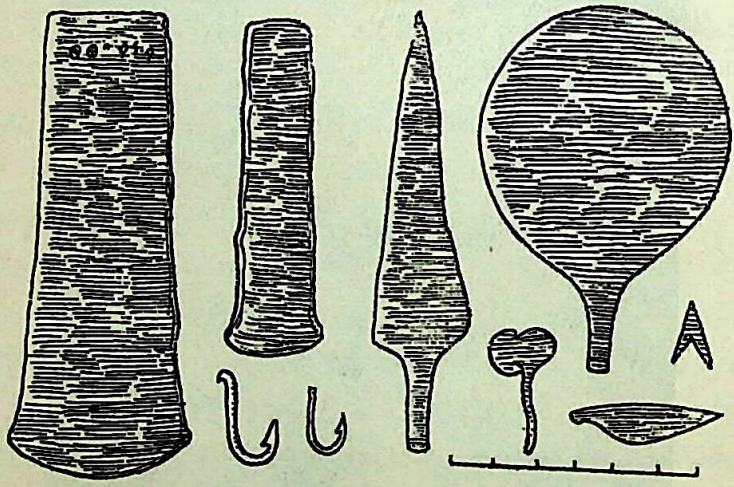

(पृ० ११०) हरप्पा-सभ्यता के धातु के औजार।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। एक दूसरे ठप्पे पर एक स्त्री धर्मस्तम्भ के समीप नाच रही है। एक पत्थर के टुकड़े पर एक मनुष्य ढोल बजा रहा है और लोग उसके ताल पर नाच रहे हैं। काँसे की एक नृतकी की मूर्ति का भी शायद धार्मिक महत्व ही हो। ऐतिहासिक काल में देवदासी देवता की मूर्त्ति के सामने नाचती थी।

कुछ ठप्पों पर स्वस्तिका, यूनानीक्रास भी मिले हैं। उस समय भी इनका शायद धार्मिक महत्व रहा हो।

जन्तर पर बहुत विश्वास था। अमूल्य पत्थर व मामूली मिट्टी के जन्तर मिले हैं, जिन पर पशुओं के चित्र और भिन्न २ धार्मिक दृश्य अंकित है। कुछ जन्तरों में दो-दो छेद है, जिससे पता चलता है कि इन्हें गले में या बाजू में बाँधा जाता था।

जल का भी धार्मिक महत्व रहा होगा। मकानों में स्नानागार का विशेष प्रबन्ध था, और एक वृहत् तालाब (Great bath) और उसके ईर्द-गिर्द मकानों का पता चला है। इसका धार्मिक महत्व ही होगा। विशेष पर्वों में यह सम्मिलित पुण्यस्नान का स्थान होगा। हिन्दुओं के मन्दिर अधिकतर तालाब के समीप ही बने हैं। पर्वों के अवसर पर सम्मिलित स्नान एक साधारण घटना है।

हरप्पा निवासियों के धर्म का रूप का आभास अब आपको मिल चुका होगा। उनके दर्शन व धर्मसिद्धांत का पता नहीं है क्योंकि उनकी लिपि अभी तक पढ़ी नहीं गई है। पर धर्म के इन बाहरी लक्षणों की विवेचना करने के पश्चात् यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि हिन्दूधर्म ने हरप्पा धर्म के कई लक्षणों को अपना लिया। मातृ-पूजा, शिवभक्ति, लिंग-योनि पूजा, पशु-पूजा व कुछ पशुओं को ईश्वरीय दूत समझना, पीपल व नीम के वृक्ष की पूजा व वृक्ष-देव व देवी में विश्वास, धार्मिक उत्सवों में जलूस, नृत्य, गान का व्यवहार, जन्तर-मन्तर में श्रद्धा, योगाभ्यास इत्यादि लक्षण हिन्दू धर्म व हरप्पा धर्म में एक समान पाए जाते हैं। ऐसा समझना निराधार न होगा कि आर्यों ने अनार्यों पर विजय प्राप्त कर कालक्रम

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से इनके धर्म के कई प्रमुख अंगों को स्वीकार कर लिया, और पीछे चलकर हिन्दूधर्म के ये अभिन्न भाग बन गये। हिन्दूधर्म की यही विशेषता बराबर रही है कि यह अपने विशाल हृदय में भिन्न २ सम्प्रदायों को स्थान देकर उन्हें अपने में समन्वय कर लेता है।

मृत संस्कार

हरप्पावासियों के मृत-संस्कार के विषय में अभीतक पूरा पूरा पता नहीं चला है। मोहन्जोदाड़ों में सभी उम्र के मनुष्यों के, स्त्री-पुरुष, बूढ़े-बच्चों के अस्थिपंजर एक जगह मिले हैं। पर वे ऐसी दशा में पड़े हैं, कि उस स्थान को कब्रगाह नहीं कहा जा सकता। मालूम तो यही होता है कि ये लोग अपमृत्यु (Violent death) के शिकार हो गये हैं। हरप्पा में शहर के बाहर करीब बीस मनुष्यों के अस्थिपंजर एक दूसरे से सटे पाए गए हैं। कहना मुश्किल है कि यह एक साधारण कब्रगाह था या इसका कुछ दूसरा मतलब है। इसी शहर में एक जगह आंशिक दफन (Fractional Burial) के चिन्ह मिले हैं। मनुष्य के शरीर की कुछ अस्थियों को जमा कर गाड़ने की प्रथा शायद उस समय भी प्रचलित थी। दाहक्रिया के पश्चात् किसी वर्तन में कुछ अस्थियों को जमा करने की वर्तमान विधि उस समय प्रचलित थी। मोहन्जोदाड़ों व हरप्पा में कई शवभस्म रखने के पात्र मिले हैं, जिनमें जले हुये राख के साथ हड्डियाँ भी मिली हैं। शायद शव को जलाने की प्रथा का भी व्यवहार होता था, और अग्नि में से चुन कर भस्म को वर्तन में रखा जाता, और बाकी सब कुछ नदी में डाल दिया जाता होगा।

हाल की खुदाई से हरप्पा में एक मुख्य कब्रगाह का पता चला है। यह कब्रगाह कई पीढ़ियों तक कायम रहा और हरप्पा-सभ्यता का समकालीन है। इसके ५७ कब्र खोदे गये। शव का सर उत्तर की ओर रखा जाता था, और शव लम्बा रखा जाता। कब्र काफी बड़ा खुदा

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहता जिसमें मिट्टी के बीसों पात्र रखे जा सकते थे। मृतकों के साथ उनके खास जेवरात व शृंगार की चीजें गाड़ी जाती थीं। कुछ कब्रों में शव के दाहिने हाथ की अंगुली में ताम्बे की अंगूठी है। कुछ में पाये गए हैं गले के हार व पैर के पायजेब, बाला व माला के दानों के तार और सुरमा करने की सलाई। बारह कब्रों में ताम्बे के मूँठदार आइने मिले हैं। एक लकड़ी का वक्स मिला है जिसमें एक लड़की का अस्थि पंजर है, और वह सरी (Reeds) के कफन से ढका है। शव की रक्षा का प्रबन्ध प्राचीन सुमेर में भी होता था।

हरप्पावासियों का सामाजिक व आर्थिक जीवन

हरप्पा में दुर्ग के प्रामाणिक अवशेश मिले हैं। मोहन्जोदाड़ों में भी दुर्ग-क्षेत्र मिलने की सम्भावना बहुत है। दुर्ग में शासक और उसके कर्मचारी रहते होंगे। ऐसा बहुत संभव है कि जिस तरह प्राचीन सुमेर के नगरों का शासन धार्मिक व सियासी दोनों उच्चाधिकारियों के अधीन था, हरप्पा में भी यही नक्शा रहा हो। हरप्पा व मोहन्जोदाड़ों के भवन भी समाज के भिन्न २ वर्गों की स्थिति का ज्ञान देते हैं। समाज में सबसे ऊँचा स्थान शासक का था, जो शासन में उच्च पुरोहित की सलाह शायद लेता रहा हो। गढ़ के क्षेत्र में ही कुछ और बड़े मकान के अवशेश मिले हैं, जिसमें उच्चवर्ग के अमीर-उमराव रहते होंगे, या सरकार के सर्वोच्च कर्मचारी। इसके बाद मध्यमवर्ग का स्थान आता है, जिनके मकान साधारण थे। चार-पाँच कोठरियाँ थीं, स्नानागार का प्रबन्ध था। कृषक, धातु के कारीगर, बनियां मध्यम वर्ग के प्रतिनिधि थे। निम्न वर्ग के लोग छोटे २ मकान में रहते थे। छोटे कारीगर, कूली-मजदूर, व कुम्भकार के मकान दो कमरे के होते थे। समाज में इनका स्थान नीचे था। शहर के बाहर सीमा पर ही खास मुहल्ले में इनके क्वार्टर रहे होंगे। प्रत्येक सभ्रान्त मकान में नौकरों व चौकीदार के रहने के लिए खास कमरा था। तृतीय वर्ग (Third Estate) की संख्या काफी रही होगी।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृषि

असमानता पर आधारित यह समाज-व्यवस्था अतिरिक्त अन्न के सिद्धांत पर ही टिक सकती थी। मोहन्जोदाड़ों-हरप्पा के शासकवर्ग, धनी सेठ और कारखाने के कारीगरों के लिए कृषकों को अतिरिक्त अन्न उपजाना पड़ता था। बड़ी २ नदियों से नहरें निकाली गई होगी, अन्न के यातायात में भी इनसे मदद मिलती होगी। शासक का यह कर्त्तव्य था कि वह ऐसी व्यवस्था करे कि अतिरिक्त अन्न उपजे और जो कृषक नहीं है उन्हें अन्न मिले। सिन्ध की उपजाऊ भूमि में अतिरिक्त अन्न मेहनत करने से ही पैदा हो सकता था। कृषक व खेत-मजदूर को काफी परिश्रम करना पड़ता था। गेहूँ और जौ की खेती होती थी। तिल और मटर उपजाया जाता था। राई भी पैदा होता था। इस प्रकार भोजन के लिए अन्न, तेल और मसाला उपजाया जाता। भोजन आजकल के समान ही था।

कपास

सबसे आकर्षक बात यह है कि इस समय यहाँ कपास की भी खेती होती थी। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण मोहन्जोदाड़ों में मिला है। एक चाँदी के कलश में सूती कपड़े के टुकरे लिपटे हुये थे। ये लाल रंग में रंगे हुए थे। यह सूत जंगली कपास का नहीं, वरन् उस कपास का है जिसकी खेती अभी भी इस प्रदेश में होती है। मिश्र के कुछ प्राचीन ममी (रक्षित मृतक-शरीर) सूती कपड़ों से लिपटे हैं। यह सूती कपड़ा भारत से ही आया होगा। यहाँ से सूती कपड़ा मेसोपोटेमिया भेजा जाता था।

पशुपालन

कृषि पर आधारित आर्थिक व्यवस्था के लिए पशुपालन आवश्यक है। हरप्पा-सभ्यता में कई प्रकार के पालतू पशुओं का पता चलता है। भिन्न २ प्रकार के पशुओं की हड्डियाँ मिली हैं। ककुदवाले साँढ़ (Hump-edull) के कई किस्म पाए गये हैं। बिना ककुद के ठिगने कद और छोटी सींघ वाले साँढ़ भी थे। भैंस, बकरी और भेंड़ पाले जाते थे। बकरे व भेंड़ के

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाल से गर्म कपड़ा तैयार किया जाता था। दो प्रकार के कुत्तों के भी चिन्ह मिले हैं। बिल्लियाँ आज-कल की तरह तब भी पोसी जाती थीं। चान्हूदारों में एक ईंटे पर एक कुत्ते और बिल्ली के पैर के निशान हैं; एक दूसरे का पीछा कर रहे थे। एक विशेष नस्ल के ऊंट की हड्डियाँ हरप्पा में मिलीहै। ठिगने कद के देशी घोड़े भी पोसे जाते थे। गदहे भी पाए गयेहैं। दो नस्ल के हाथी पोसे जाते थे। मुहरों व ठप्पों पर हाथी के चित्र काफी संख्या में खुदे हैं। देशी घोड़े व ऊंट का इस काल में पोसा जाना हरप्पा-सभ्यता की, समकालीन सभ्यताओं की तुलना में, विशेषता है। इन पालतू जानवरों के अलावे गैंड़ा, व्याघ्र, मगर, जंगली भैंस इत्यादि भी इस प्रदेश में उस समय पाए जाते थे।

धातु के कारीगर

कृषि व पशुपालन के अतिरिक्त जीविकोपार्जन के और भी अनेक साधन थे। इस युग में सोना, चाँदी, ताम्बा, और कांसा इत्यादि धातुओं के कई चीज बनाए जाते थे। धातुओं की कारीगरों की संख्या काफी थी। धातु की बनी चीजें सिर्फ उपयोगी ही नहीं, वरन् सुन्दर कारीगरी की भी होती थी।

ताम्वा राजपूताना, बलूचिस्तान, छोटा नागपुर या अरब से मंगाया जाता होगा। ताम्बा का प्रचुर व्यवहार होता था। ताम्बा को बंग (tin) से मिश्रित कर कांसा बनानेकी विधि ज्ञात थी। ताम्बा को गलाया भी जाता था, क्योंकि मोहन्जोदाड़ो में ईंट से पाटे हुये कई गढ़े मिले हैं जिनमें कच्चा ताम्वा के ढेर पाएगए हैं। पर अभी तक कोई भट्ठी नहीं मिली है। धातु की चीजों में सबसे अधिक मात्रा में कांसे की सुराही हैं, कटोरा, डन्टीदार तवा, तेजधार वाली लम्बी और छोटी कुल्हाड़ी हैं। कांसा की एक आरी, जिसकी मूठ लकड़ी की थी, मिला है। ताम्बा की बनी दो तलवार भी मिली है, छूरे व छूरियाँ भी पाई गई हैं। मछली फंसाने का काँटा भी कांसा का होता था। चार प्रकार के बाल-बनाने वाला छूरा मिला है। इनमें एक दो-धारी छूरा है, जिसमें एक लम्बा मूठ लगा हुआ है। कुछ पात्रों में लेख व चिन्ह खुदे हुये हैं, शायद वे व्यापार के विशिष्ट चिन्ह (Trade-

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

mark) हों, या स्वामित्व के चिन्ह। ढाले हुये कांसे की मूर्तियाँ व खिलौने भी मिले है। नर्तकी की कांसे की मूर्ति कला की दृष्टि से विलक्षण है। बैलगाड़ी व ताँगे के नमूने मिले है।

सीसा (Lead) का भी व्यवहार होता था। सीसे की एक तस्तरी मिली है।

सुवर्णकार का पेशा खूब चलता था। सोने-चाँदी के वर्तन या आभूषण काफी मिले हैं। स्त्री व पुरुषों की मूर्तियों में हम आभूषण का व्यवहार देखते हैं। कमरधनी, गले के हार, इयररिंग, नाक का बेसर, बाला, बाजू-बन्द और कंगन मिले हैं। मोहन्जोदाड़ो में एक बहुत ही सुन्दर सोने का कंगन मिला है जिसमें सोने के दानों की ६ समानान्तर कतार है और दानों के बीच में निश्चित अन्तर पर सोना का पत्तर बीच में पाया जाता है। अपनी सरलता और बनावट की अचूकता के लिए यह प्रशंसनीय है।

माला का दाना (Bead making)

माला का दाना (Bead) बनाने का रोजगार खूब बढ़ा चढ़ा था; सोना के दाने के बने कंगन का उल्लेख उपर कर चुके हैं। बहुमूल्य पत्थरों के, कसकट के, सोना और चाँदी के लम्बे व वृत्ताकार दाने बनते थे। इन दानों में बारीक छेद भी किया जाता था। छेद करने में काफी कौशल की आवश्यकता थी। अकीक (Carnelian), और Jadeite के दानों के हार बनते थे। कई और पत्थरों के दाने बनते थे। पत्थरों के परत को लम्बा तोड़ा जाता, उसको निश्चित आकार का बनाया जाता, और फिर हड्डी से घिस कर उसे चिकना किया जाता था। अन्त में सूराख किया जाता था। कभी२ दो और अधिक पत्थरों को जोड़कर दाना बनाया जाता। पीपे के आकार का करीब आधा इंच लम्बा एक दाना पाया गया है। यह पाँच रंग-विरंगे पत्थरों के टुकड़ों का बना हुआ है, पर ये टुकड़े इस चतुराई से जोड़े गए हैं कि यदि ये टूटे न रहते तो पता न चलता कि यह एक ही बहुरंग पत्थर

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पृ० १११) मोहेंजोदाड़ो–मिट्टी के रंग बर्तनों के टुकड़े (*From Casts*)
(पटना म्यूज़ियम् के सौजन्य से)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र १६

(पृ० ११७) मोहेन्जोदाड़ो : पुजारी (?) की पाषाण मूर्ति

(पटना म्यूजिअम् के सौजन्य से) (*From a Cast*)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का दाना नहीं है। Carnelian के दाना के ऊपर उजले रंग में कोई चित्र (Pattren) रंग दिया जाता, और फिर उसे आग में डाल कर पका दिया जाता। । इसे Etched Bead कहते हैं । चान्हूदारों की यह विशेषता थी। इस प्रकार के दाने सुमेर और फारस में भी मिलते थे, पर मैके साहब ने इस विषय पर बहुत अध्ययन करके यह प्रमाणित करने की चेष्टा की है कि माला के दाना बनाने की कला में सिन्धुतट वासी आगे थे। चान्हूदारों में माला के दाना बनाने की एक दूकान मिली है। माला के दानों में बारीक छेद करने के लिए बरमी (Drill) व्यवहार किया जाता था।

हाथी-दांत का काम

हाथी के दाँत की बनी चीजों का भी व्यवहार था। कंघी, छोटी छड़ी इत्यादि पाई गई हैं। हाथी के दाँत का काम करने वालों का बाजार इस समृद्ध शहर में गर्म ही रहा होगा।

कुम्हार व मिट्टी के बर्तन

मिट्टी के बर्तन और कुम्हारों के विषय में काफी जानकारी है। मिट्टी के बर्तन चाक पर कुशल कुम्हारों के द्वारा बनाये जाते थे। बर्तन भट्टे में पकाए जाते थे। कुछ ईंटों के पैंजावों के अवशेश मिले हैं। सुराही चाक पर गढ़ लिया जाता, और धूप में सूखने के लिए छोड़ दिया जाता था। जब सूख जाता था तब उस पर लाल गेरू का लेप लगाया जाता, और लेप के सूखने पर झिकटे व हड्डी से उसे चिकना किया जाता था। ऐसे बर्तन प्राचीन इलम, सुमेर, चीन, सीरिया, साइप्रस, और होरमुज में पाए गये हैं। जब लेप सूख जाता तब उस पर काले रंग की स्याही से चित्र व रेखाएं बनाई जातीं, और तब उस सुराही को आग में पूरी तरह सावधानी से पकाया जाता था। सुराही की चमक खूब खिलती। सबसे प्रिय डिजाइन है एक केन्द्र के कई वृत्तों की रचना (Concentric Circles), वृक्षों

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का चित्र भी काफी साधारण और लोकप्रिय डिजाइन है। त्रिकोण व शतरंज के बोर्ड के पैटर्न भी मिलते हैं। जानवरों और चिड़ियों के चित्र भी इन बर्तनों परपाए गये हैं। कभी २ प्राकृतिक वातावरण भी उपस्थित किया गया है, जैसे पैड़ों पर चिड़िया, झाड़ी में जंगली मुर्गे। मोहन्जोदाड़ों में मनुष्य के चित्र मिट्टी के बर्तन पर नहीं मिले हैं, पर हरप्पा में के एक ठिकरे पर एक आदमी और एक बच्चा चित्रित है। कुछ बर्तनों के अन्दर (तह में), जैसे तस्तरी में, चित्र खुदे हैं। यह आश्चर्य की बात है कि बहुरंगे बर्तन (Polychrome pottery) हरप्पा-सभ्यता में अपवाद के रूप ही में मिले हैं। आमरी-काल में (हरप्पा-सभ्यता के पूर्व) बहुरंगे बर्तन का खूब व्यवहार था। हरप्पा-सभ्यता में इस कला की अनुपस्थिति इस निष्कर्ष को दृढ़ करती है कि इस युग में कला के विपरीत उपयोगिता का अधिक महत्व था, और मिट्टी के बर्तन बहुत बड़ी संख्या में एक सर्वमान्य सिद्धांत के अनुसार बनाये जाते थे। हरप्पा-सभ्यता के बाद की सभ्यता में, जिसे झुकुर-सभ्यता कहते हैं, रंगीन बर्तनों का खूब प्रचार था, पर उनके डिजाइन एकदम भिन्न हैं।

मिट्टी की थाली, कटोरा, हुमाददानी, इत्रदान, सुराही, ग्लास, बड़े २ नाद व गगरे मिले हैं। मिट्टी के ट्रे भी पाए गये हैं। कुछ कई भागो में बटे हैं, जिसमें शायद लौंग, इलायची, पान व जर्दा अलग २ रखा जाता हो। मिट्टी के बक्स, तिपाई, चूहे फँसाने का जाल, मछली के जाल के लिए मिट्टी के कड़े टुकड़े भी मिले हैं। तोता के लिए एक पिंजड़ा भी पाया गया है। मिट्टी के मुहर तो बहुत अधिक संख्या में पाये गये हैं। इन पर जानवर और धार्मिक दृश्य अंकित है। कला की दृष्टि में ये लासानी है। बर्तन को चमकाने की विधि का भी ज्ञान था।

अन्य पेशा

सिलाई-बिनाई का भी काम होता था। ताम्बा और क़सकट की सूई मिली है। दो सोने की सूई भी मिली हैं। शायद अमीर स्त्रियों

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए सिलाई का काम एक मनोरंजन रहा हो।

मछुये और नाव बनाने वाले भी होते थे। एक मुहर पर नाव का नक्शा है जिसके बीच में एक केबिन बना है। मछली फंसाना भी एक पेशा था। मछली के जाल के पत्थर (Net weights) पाए गये हैं, ये मिट्टी के बने हैं। हरप्पा में पाए गए मिट्टी के एक ठिकरे पर एक मनुष्य के कंधे पर बांस में लटके हुये दोनों ओर मछली फँसाने के जाल हैं। इसी चित्र में एक मछली और एक कछुआ पास ही में पड़े हैं।

मनोरंजन

बड़ों और बच्चों के लिए मनोरंजन के सामान भी थे। बच्चों के कई खिलौने मिले हैं। अधिकतर ये मिट्टी के थे। गुसलखाने में पड़े मिट्टी के टुकड़े शायद खिलौने के टुकड़े ही हैं। मिट्टी के बने कुछ मनुष्य व जानवर का चित्र इतना मामूली है कि वे शायद बच्चों के बनाए हुए हों। बच्चे आपस में खेल में खिलौने बनाने का भी दुःप्रयोग करते थे। मिट्टी की बैलगाड़ी व टमटम खिलौने मिले हैं। मिट्टी का झुनझुना भी पाया गया है, चिड़ियानुमा सीटी का भी पता चला है। बांस पर चढ़ते हुये बन्दर और दूसरे जानवर के खिलौने मिले हैं। धागे से जानवर या आदमीकी मूर्ति को ऊपर व नीचे खींचने वाला खिलौना किसी पेशेवर खिलौनावाला का ही बनाया हुआ होगा।

शतरंज और पासा (dice) खेलना प्रिय मनोरंजन था। हाथी के दातों की बनी शतरंज की गोटियाँ मिली हैं। ईंटों पर पचीसी (हिन्दुस्तान का एक लोकप्रिय मनोरंजन) व चौसर के घर खुदे पाये गये हैं। बच्चे होली भी खेलते थे। पत्थरों की बनी गोलियां मिली हैं। नाच-गान भी सामाजिक मनोरंजन था। ढोल व तबला का प्रयोग मालूम था। वीणा का व्यवहार ज्ञात था।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्रियों का स्थान

हरप्पा-सभ्यता में स्त्रियों का स्थान ऊँचा था। मातृदेवी की पूजा सबसे अधिक प्रचलित थी, और शायद समाज भी मातृकुल के सिद्धान्त पर ही (Matriachal) आधारित होगा। मकानों में स्त्रियों के लिए विशेष प्रबन्ध नहीं था। इसलिए उस समय यहां पर्दा का रिवाज नहीं था। स्त्रियां अपने लम्बे बाल को वेणी में गूँथती थीं, और कई तरह के साफा (head-dress) का व्यवहार होता था जिनमें कुछ तो काफी तकलीफ दे रहे होंगे। रेस्टोरेशन युग में और वर्त्तमान युग में भी पश्चिम की फैशन-परस्त स्त्रियों को बाल संवारने व बनाने में काफी परेशानी उठानी पड़ती है। उस समय भी स्त्रियां आभूषणप्रिय थीं। कंगन, बाजूबन्द, गले का हार, नाक का कील, इयररिंग, कमरधनी, पायजेब, अंगूठी इत्यादि का व्यवहार होता था। जेवर सोना, चांदी, कांसा और बहुमूल्य पत्थरों के बने होते थे। बालों के हेयरपिन कई तरह के मिले हैं। कँसकट का एक चार इंच के पिन के मस्तक पर दो काले मृग पीठ सटाए विरोधी दिशा में बैठे हुये हैं। लकड़ी के भी पिन रहे, होंगे, जिनके मस्तक कंसकट व ताम्बे के थे। करीब आधा इंच के एक मस्तक पर (Pin head) तीन बन्दर गलबहिंया दिये चित्रित हैं। समूचा दृश्य बड़ा ही आकर्षक है, और उस समय की उच्चतम कला का द्योतक। एक पिन पर कमल का चित्र अंकित है। बालों को संवारने के लिए कंघी का व्यवहार होता था। दोनों तरफ दांतवाला हाथी की दांत की बनी एक कंघी मिली है। इस पर एक केन्द्र के कई वृतों का ढांचा (design) है। यह कंघी एक तरुण युवती के अस्थिपंजर के नजदीक मिली थी। कांसा व ताम्बा के आइने, सूरमा की सीसी व सलाई मिली हैं। स्त्रियां उस प्राचीन काल में भी सौन्दर्य-प्रिय थीं। पर मर्द भी कई तरह से बाल संवारते थे। इसका पता मिट्टी व पत्थर की मूर्तियों से मिलता है। वे भी बालों में कंघी या पिन लगाते थे। बाल बनाने वाले व संवारने वालों की दूकान (Haircutting

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

and dressing saloons) खूब चलती होगी, और नाइयों का पेशा काफी लाभदायक रहा होगा।

दासों की अवस्था

प्राचीन काल में सभ्यता व आर्थिक विकास बहुत अंशों में दासों पर ही निर्भर करता था। बेबिलोनिया के मीनाराकार मंदिर या मिश्र के पिरामिड व विशाल देवालय दासों के श्रम के बिना असम्भव होते। मोहन्जोदाड़ो व हरप्पा के बड़े २ मकान, और हरप्पा और मोहन्जोदाड़ों में पाए गये विशाल अन्न का गोला (granaries), दासों के श्रम से ही बने होंगे। अन्न का विशाल गोला इस बात का प्रमाण है कि उस समय की सरकार कृषकों से कर के रूप में अन्न ही लेती थी, और यह अन्न सरकारी गोले में जमा किया जाता था। कुलियों व मजदूरों के द्वारा अन्न की ढोलाई होती होगी। अन्न को पीसने व कूटने का काम भी इन गरीबों के ही जिम्मे था। हरप्पा के दुर्ग (Citadel) के उत्तर नीचे में कुली-बाड़ी था। इस क्षेत्र के नजदीक खुदाई में कई जांतों के अवशेष मिले हैं। ये जांता आजकल के ऐसे ही थे। इनके द्वारा अनाज पीसा जाता था। इसी क्षेत्र के पीछे बड़ा गोला था। मजदूरों के लिए एक खास मुहल्ला का होना आर्थिक व औद्योगिक व्यवस्था के विकास का चिह्न ही समझना चाहिये।

व्यापार

मोहन्जोदाड़ो व हरप्पा की समृद्धि, चौड़ी सड़कों का होना, सड़कों के कोने पर रेस्टूरां का रहना, और दूर २ के देशों की चीजों का पाया जाना इस बात का प्रमाण है कि उस काल में ये नगर व्यापार के केन्द्र थे। राजपूताना से ताम्बा, सीसा और कई प्रकार के पत्थर; मैसूर से सोना, काश्मीर व शिवालक पहाड़ियों से देवदार की लकड़ी, शिलाजित और मृगचूर्ण मंगाया जाता था। राल (Bitumen) सेतखली इत्यादि बलूचिस्तान से आता था। पर्शिया या अफगानिस्तान से चांदी आता

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा। अतिरिक्त अन्न का उपयोग वणिक्वर्ग के लिए किया जाता था। व्यापारी चीजें ले आते व ले जाते, थे और उन्हें अन्न पैदा करने की परेशानी से मुक्ति रहती थी। व्यापार नावों के द्वारा या बैलगाड़ी व बैल पर लाद कर होता था। नाव का नक्शा एक जन्तर पर मिला है। आन्तरिक व्यापार के अलावे अन्तर्देशीय व्यापार भी होता था। सुमेर की कई चीजों को हम हरप्पा व मोहन्जोदाड़ो में पाते हैं। हरप्पा-कालीन चीजें सुमेर के नगरों में पाई गई हैं। सुमेर में मुहरें मिली हैं जिस पर हरप्पाकाल के विशेष दृश्य व ढाँचें चित्रित हैं। बनावट जरा निम्न प्रकार की है, और ऐसा सम्भव है कि सिन्धु तट के कुछ व्यापारी सुमेर में तिजारत के लिए बस गये हों, और इन भारतीयों के लिए सुमेर के कारीगरों को भारतीय धर्म-जन्तर बनाने पड़े हों। हरप्पा और मोहन्जोदाड़ो में कई कँसकट के पिन का मस्तक एक ओर या दोनों ओर झुका हुआ है—(Spiral pins) ऐसे पिन एशियामाइनर और क्रीट में दो हजार वर्ष ईसा से पूर्व पाए गये हैं। इन दूरस्थित देशों से शायद प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष व्यापारिक सम्बन्ध रहा हो। प्राचीन इलम और सूसा से तो बहुत ही घनिष्ट व्यापारिक सम्बन्ध था। मिट्टी के बर्तनों के उदाहरण इसके साक्षी हैं। सिन्ध में कई जगह दुर्गों के अवशेष मिले हैं, शायद ये व्यापारियों की सुविधा व सुरक्षा के लिए बनाये गये हों।

कला व विज्ञान

विभिन्न कलाओं के क्षेत्र में हरप्पा-वासियों ने काफी प्रौढ़ता दिखाई। भवननिर्माण कला में ये लोग उस समय अद्वितीय थे। मूर्ति निर्माण कला के उदाहरण न्यून हैं, पर जो कुछ भी मिले हैं वे कला के दृष्टिकोण से अपना सानी नहीं रखते। इनमें कुछ मूर्तियां इतनी स्वाभाविक हैं कि कला के आलोचकों के लिए यह मानना मुश्किल हो जाता है कि ये ईसा से तीन हज़ार वर्ष पूर्व की कृतियां हैं। लाल बलुवे पत्थर

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Red sand-stone) की बनी एक मर्द की नंगी मूर्ति मध्यपूर्व के प्राचीन मूर्तियों में सर्वोत्तम है। मनुष्य के शरीर का इतना स्वाभाविक चित्रण इस मूर्ति के कलाकार को भविष्य के कलाकारों का आदर्श सिद्ध करता है। उत्तर काल की भारत की मूर्तियाँ कई अंशों में इस मूर्ति की तरह हैं। इस मूर्ति का पेट तो कुशाणकाल की मूर्तियों के पेट-सा ही है,। हरप्पा से भूरे रंग के बलुवे पत्थर का बना एक नंगा धड़ प्राप्त हुआ है। धातु के कीलों से इस मूर्त्ति का सर अलग से जोड़ा गया था। इसके हाथ-पैर कई टुकड़े में जोड़े गए हैं। यह मूर्ति एक स्वतन्त्र शैली की प्रतीक है, मोहन्जोदाड़ो में भी कई मूर्तियाँ मिली हैं। इनमें त्रिदलाकार बूटेदार चांदर ओढ़े दाढ़ीवाला मनुष्य की मूर्ति सबसे अधिक प्रसिद्ध है। आँख व कान अलग से जड़ दिये गये हैं। पत्थर के एक छोटे सांढ़ की मूर्ति में धातु के बने कान, आँख व सींघ के लिए छेद छोड़ दिये गये हैं। एक वात ध्यान देने की है कि पत्थर की मूर्तियों में जड़ाऊ व धातु का काम प्रागैतिहासिक पश्चिम-एशिया में तो पाये जाते हैं, पर हिन्दुस्तान के ऐतिहासिक युग की मूर्तियों में इस गुण का अभाव है। कँसकट की नर्तकी की मूर्त्ति मानव शरीर व भाव भंगियों के चित्रण के लिए जगत प्रसिद्ध है। इस मूर्ति में इतनी सजीवता है कि मानों वह अब नाची कि तब नाची। इस मूर्ति के आभूषण और शृंगार बलूचिस्तान के नाल क्षेत्र से प्राप्त मिट्टी की बनी स्त्री मूर्तियाँ ऐसे हैं। इन सब प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारत के उत्तरकालीन मूर्तिकला के भिन्न २ रूप हरप्पा व मोहन्जोदाड़ो में प्रथम-प्रथम उत्पन्न हुए ।

मूर्तिकला के अतिरिक्त और भी अन्य कलाओं के सुन्दर उदाहरण मिले हैं। सोना-चांदी के आभूषण इतने आकर्षक और सुन्दर डिजाइन के बने हैं कि आजकल की स्त्रियां भी उन गहनों को ग्रहण कर लेंगी। माला व धागे में पिरोने के लिए दाना बनाने की कला में तो हरप्पाकालीन कलाकार समकालीन दुनियां में अपना सानी नहीं रखते थे।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाल अकीक के दाने (carnelian beads) पर उजले डिजाइन खोदे जाते थे जिन्हें Etched Beads कहा जाता है। मिट्टी के बर्तन पर के भिन्न-भिन्न आकर्षक डिजाइन में कला का ध्यान रखा जाता था, और उनके ऊपर रंगे चित्र व रेखाचित्र तो आकर्षक हैं ही। मिट्टी के बर्तन अधिकतर बिना रंग के हैं, सिर्फ लाल लेप पर काले रंग में चित्र बने हैं। पर कुछ बहुरंगे बर्तन भी मिले हैं। बर्तनों को शीशे की तरह चमकाने की कला (Glazing) का उन्हें ज्ञान था। धुमिले (Buff) रंग के लेप पर लाल व हरे रंग में मिश्रित चित्र बनाये जाते थे। कांसा व ताम्बा के बने उपकरण धातुशोधन की विद्या का ज्ञान के प्रमाण हैं। खुदे हुये मुहर या ठप्पे इस क्षेत्र में पूर्ण विकसित कला के जीते-जागते उदाहरण हैं। इनमें खुदे कुछ जानवर बड़े ही स्वाभाविक मुद्रा में चित्रित हैं, जैसे कुछ मनुष्यों पर विजय प्राप्त कर खड़ा विजयी भैंसा। इनमें बहुत से मुहरों का धार्मिक महत्व है, जन्तर का काम में आते होंगे। पर बहुत से मुहर आजकल के ऐसा ठप्पे हैं, जो स्वामित्व के प्रतीक हैं। जबकि समकालीन मेसोपोटेमिया में गोलाकार मुहरें थीं, यहां समचतुर्भुजाकार मुहरे या ठप्पे (Seals) मिलते हैं।

पत्थर के घनाकार बटखरे (Weights) काफी संख्या में प्राप्त हुये हैं। ये सब एक नियम के आधार पर हैं। तुलना करने की उनकी पद्धति समकालीन पद्धतियों से अलग थी। इस पद्धति का युनिट १६ था। यह कम आश्चर्य की बात नहीं है कि अभी भी भारतीय मुद्रा का युनिट १६ ही है। शुद्ध नाप की पद्धति के भी कुछ प्रमाण मिले है। मोहन्जोदाड़ो और हरप्पा में नापने का दण्डा मिला हैं, जिससे पता चलता है कि एक फुट = १३·२ इंच का था और एक हाथ (cubit) २०·६२′ इंच का। यही परिमाण प्राचीन दुनियां में खूब प्रचलित था। नाप के ये दण्डे बड़े ही शुद्ध हैं। शुद्ध नाप और हरप्पाकालीन भवनों व सड़कों की सुन्दर योजना इस बात का प्रमाण है कि ये लोग व्यवहारिक ज्योमिति और भूमिनाप में पंडित थे।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समकालीन सभ्यताओं से सम्बन्ध

उत्तर में हिमालय, दक्षिण में हिन्द महासागर, पूर्व-पश्चिम में बंगाल की खाड़ी व अरब का समुद्र, व उत्तर-पश्चिम व उत्तरपूर्व पहाड़ियों से घिरा रहने के बावजूद भारतवर्ष कभी भी बाहरी प्रभावों से अछूता न रहा। अति प्राचीनकाल से ही समकालीन देशों से भारत का व्यापारिक व सांस्कृतिक सम्बन्ध रहा है। दुनिया से भारत बराबर कुछ लेता रहा है, और संसार के भण्डार में बहुत कुछ देता रहा है। हरप्पा काल में सिन्धु-कांठे का ईरान और मेसोपोटेमिया से घनिष्ट सम्बन्ध था, और मिश्र व एशियामाइनर से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध भी रहा होगा। इसके कई प्रमाण मिले हैं।

सभी समकालीन सभ्य क्षेत्रों में, विशेष कर मेसोपोटेमिया, ईरान व पंजाब और सिन्ध में हम पत्थरों के उपकरण के साथ साथ धातु की बनी चीजों का व्यवहार पाते हैं। इन सब जगहों में कुम्हार के चक्की का प्रचार था, ईंटों के बने मकान थे, चित्रसंकेत पर आधारित लिपि थी, चक्केवाली गाड़ी का व्यवहार था, और मातृदेवी की पूजा होती थी। इन सभी चीजों का सम्मिलित प्रमाण इस तथ्य की पुष्टि करता है कि इन विभिन्न सभ्य क्षेत्रों में पारस्परिक सम्बन्ध और आदान-प्रदान होता रहा और इसीका परिणाम है कि सभ्यता के प्रमुख अंगों को सब जगह सामान्य रूप से पाया जाता है।

सुमेर और सिन्धुघाटी में ईसा से ३००० वर्ष पहले से ही व्यापारिक व सांस्कृतिक सम्बन्ध था। हरप्पा के मुहर व ठप्पे प्राचीन सुमेर के शहरों की खुदाई में मिले हैं। इश्नुन्ना में एक ऐसी मुहर मिली है जैसी मोहन्जोदाड़ो के ऊपरी सतहों पर मिलती हैं। ऊर में भी हरप्पा की मुहर मिली है जिसका समय २१०० ई० पूर्व होगा। ये मुहरें सिन्धु-घाटी मुहरों की तरह न गोल है न समचतुर्भुजाकार, बल्कि पश्चिमी एशिया की मुहरों की तरह लम्बनुमा (Cylindrical)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। ये शायद सुमेर के कलाकर सुमेर में हिन्दुस्तानी प्रवासियों के लिए बनाये हों। ऊर में एक हरप्पा-सभ्यता की मुहर जिसपर भारतीय डिजाइन बने थे और हरप्पालिपि अंकित थी, काफी नीचे मिली है और उसका समय २४००–२५०० ई० पूर्व होगा। ऊर के शाही कब्रों में 'हरप्पा' के ताम्बा के शृंगार दान (toilet case) पाये गये हैं। ऊर की स्त्रियों की मूर्तियों में बाल संवारने का ढंग 'हरप्पा' की स्त्रियों के ऐसा ही था। ये प्रत्यक्ष सम्बन्ध के प्रमाण हैं। इश्नुन्ना में 'हरप्पा' के बने बर्त्तन मिले हैं। हरप्पा और मोहन्जोदाड़ो में भी सूमेर सभ्यता का प्रभाव के उदाहरण मिले हैं। कुछ मिट्टी के बर्त्तन, एक शृंगारदान मेसोपोटेमिया से आए होंगे। मुहरों पर नर-केशरी को दो बाघों से लड़ने का दृश्य सूमेर का पौराणिक वीर गिलगमश का ही नकल है। हेयर-पिन व छड़ी के मस्तक पर जानवरों के चित्र पहले-पहल मेसोपोटेमिया में ही पाए जाते हैं। मोहन्जोदाड़ो के अकीक के दाने विशेष कर (etched cornelian beads) सूमेर में पाए गये हैं। इन सब उदाहरणों से यह सिद्ध हो जाता है कि हरप्पा-काल में सिन्धु-घाटी और मेसोपोटेमिया से घनिष्ट सम्बन्ध था। भारतीय व्यापारी सूमेर के नगर में बस गए थे, और कुछ सूमेर के तिज़ारती यहाँ भी रहने लगे हों। सूमेर की प्राचीन सभ्यता के इतिहास का विश्लेषण करने पर पेट्रिक कार्लटन साहब इस अनुमान पर पहुँचे हैं कि सूमेर की सभ्यता का इतना सर्वव्यापी और संक्षिप्त विकास प्रौढ़ हरप्पा-सभ्यता से उत्साह पाकर ही सम्भव हो सका, और जब हरप्पा-सभ्यता नष्ट हो गई तब सूमेर की सभ्यता का स्रोत ही बन्द हो गया, और वह सूख गई। प्रसिद्ध आंग्ल विद्वान हॉल साहब का यह मत है कि सूमेर-निवासी भारतीय थे।

मेसोपोटेमिया व ईरान के अतिरिक्त और भी समकालीन देशों से हरप्पावासियों का सम्बन्ध था। 'हरप्पा' में भूरे रंग की मिट्टी के बने बर्तन मिले हैं, इन पर गाढ़ा काला लेप चढ़ा है। यह शैली

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हरप्पा' की निजी नहीं वरन् सिरिया में पहले पहल पनपी। मोहन्जो-दाड़ो और चान्हूदारो में एक ओर और दोनों ओर मुड़े हुए (Single spiral & double spiral) ताम्बे के पिन मिले हैं। ऐसी चीजों का २५०० ई० पू० पूर्वी भूमध्यसागर के क्षेत्रों में व्यवहार था। प्राचीन शहर ट्राय (दूसरा) और डैनूब नदी की घाटी में भी ये पाए गए हैं।

प्राचीन मिश्र से सम्बन्ध का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिलता है। पर अप्रत्यक्ष सम्बन्ध जरूर रहा होगा। सिन्धु-घाटी के विलक्षण माला के-दाने प्राचीन मिश्र में पाए गये हैं। मिश्र की 'ममी' शायद सिन्धु-घाटी में बने महीन सूती कपड़े से ढके जाते थे। मिश्र और "हरप्पा" दोनों जगह बैले के पैर-वाला स्टूल मिले हैं। छोटी खाट पर एक लेटी हुई स्त्री की मूर्ति दोनों जगह पाई गई है। प्राचीन मिश्र में मृतकों के कब्र में खाट पर रखैल की मूर्ति रख दी जाती थी। शायद दोनों सभ्यताओं में यह विश्वास रहा हो कि मृतकों को दूसरी दुनिया में भी रखैल की जरूरत है। मिश्र के १३-१७ वाँ राजवंश काल के कुछ मुहरों पर रस्सी-नुमा डिज़ाइन है, और यह डिज़ाइन 'हरप्पा' की विशेषता है। अतः यह अनुमान तर्क संगत है कि 'हरप्पा' व मिश्र में अप्रत्यक्ष सम्बन्ध रहा होगा। मिश्र की पौराणिक कथा के आधार पर मिश्र के प्राचीन सभ्यता के स्थापक लालसागर के तट पर रहते थे। यहां वे मेसोपोटेमिया से अवश्य ही प्रभावित होंगे, और मेसोपोटेमिया और सिन्धु-घाटी का सम्बन्ध तो हम जानते ही हैं। इस तरह मिश्रवासी बहुत पहले ही 'हरप्पा' संस्कृति के संसर्ग में आ गए थे।

समीपस्थ बलूचिस्तान से 'हरप्पा' का बहुत ही घनिष्ट सम्बन्ध था। उत्तर व दक्षिण बलूचिस्तान में कई प्राचीन स्थलों का पता चला है। इन जगहों में मिट्टी के बर्तन के टुकड़े, व मिट्टी की बनी मूर्तियां मिली हैं। इन मिट्टी के बर्तनों की परीक्षा के बाद विशेषज्ञों ने यह सिद्ध कर दिया है कि बलूचिस्तान में, सिन्धुघाटी व ईरान दोनों की सांस्कृतिक धाराएँ मिलती थी, उनका समन्वय होता था। बलूचिस्तान के ही रास्ते

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिन्धु-घाटी और मेसोपोटेमिया, सिन्धु-घाटी और ईरान का पारस्परिक सम्बन्ध होता था। दक्षिण बलूचिस्तान के 'नाल' (Nal) के बर्तन का प्रभाव आमरी (सिन्ध) सभ्यता के बर्तन पर है। 'हरप्पा' की मातृ देवी की मूर्तियां कई अंशों में बलूचिस्तान की मातृदेवी का अनुसरण मात्र है। 'हरप्पा'-काल में बलूचिस्तान 'हरप्पा' सभ्यता के पार्श्व में पूरा आ गया था, और उस समय के यहां के बर्तन, जिन पर हरप्पा-कालीन विशेष चित्रकारी है, हरप्पा से ही मंगाये गए होंगे। दाहर-कोठ, मेही-दाम्बे, इत्यादि प्राचीन स्थल हरप्पा सभ्यता से बहुत प्रभावित थे।

हरप्पा-सभ्यता का समय

'हरप्पा' सभ्यता का काल निर्णय करना एक कठिन समस्या है। मोहन्जोदाड़ो में ३० फीट तक खुदाई हुई है, और कई सतह (levels) पाए गये हैं। कम से कम तीन बार यह शहर बाढ़ से बर्बाद हुआ और फिर बसा, पर ध्यान देने की बात यह है कि सबसे ऊपर के तह पर की चीजों में और सब से नीचे की तह पर मिली चीजों में कोई फर्क नहीं है, एक ही शैली, एक ही रूप। एक ही संस्कृति नगर में व्याप्त रही। ३० फीट से अधिक नीचे जाने में पानी निकल आता है, इसलिए यह कहना मुश्किल है कि और नीचेकी सभ्यता वही थी या दूसरी। पर जहां तक शहर की खुदाई हुई है, उससे मार्शल साहब इस शहर का इतिहास ५०० वर्ष का मानते हैं। सबसे नीचे की तह पर भी संस्कृति का विकसित रूप ही मिला है, इसलिए इस अति पूर्ण विकसित इतिहास के पीछे १००० वर्ष का इतिहास रहा-हो तो मुश्किल नहीं है। आमरी और चान्हूदारो की खुदाई से मोहन्जोदाड़ो की सभ्यता के पूर्व की सभ्यता का भी आभास मिलता है, और आमरी-सभ्यता नाल सभ्यता के समकालीन थी। हरप्पा में हाल की खुदाई से 'हरप्पा'-सभ्यता के बाद के इतिहास व संस्कृति का भी पता चलता है। इस तरह सिन्धु-घाटी की सभ्यताओं का सिलसिले-वार इतिहास की झांकी मिलती है, विस्तृत विवरण नहीं मिलता है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोहन्जोदाड़ो में बाढ़ बराबर आया करता था, और शहर का सतह बराबर ऊंचा उठता रहता था। कई बार तो शहर बर्बाद ही हो गया था। इसलिए यह सम्भव है कि शहर के सात सतह का समय औसत से कम ही हो। मैके साहब ३०० वर्ष बताते हैं, और ह्वीलर साहब १००० वर्ष।

शहर की जिन्दगी जितने सालों तक रही हो, इस सभ्यता का क्या समय होगा, इस पर विचार करना है। सौभाग्यवश हरप्पा-सभ्यता और सुमेर की सभ्यता का घनिष्ट सम्बन्ध का हमें पता है। सुमेर के नगरों का तारीखेवार या सिलसिलेवार इतिहास विशेषज्ञों ने करीब २ तय कर दिया है। इसी आधार पर हम हरप्पा-सभ्यता का भी सयम का अन्दाजा लगा सकते हैं। हरप्पा व मोहन्जोदाड़ो में पाई गई चीजों में बहुत कम संख्या में सारगन प्रथम (मेसोपोटेमिया का प्रथम बड़ा बादशाह) के समय के पहले की चीज हैं। सारगन प्रथम का समय पहले २८०० ई० पू० समझा जाता था, पर अब नये प्रमाणों के आधार पर उसका समय २३५० ई० पू० माना गया है। इसलिए मोहन्जोदाड़ो का करीब २५०० ई० पू० सूमेर से सम्बन्ध था, यह स्वयंसिद्ध है। 'हरप्पा' के ताम्बा व कंसकट के बने हथियार समकालीन मेसोपोटेमिया के हथियारों की तुलना में बहुत निम्नकोटि के हैं, और इसलिए 'हरप्पा' का समय सुमेर के पहले का समझा जा सकता है, पर ये चीजें ऊपरी सतहों पर मिली हैं। पर धारवाली कुल्हाड़ी जो 'हरप्पा' में मिली है वह तो प्राचीन ईरान के प्रथम युग की है। इसलिए इस सभ्यता का काल निर्णय बहुत ही कठिन हो जाता है। सारगन के समय का ऊर में एक मुहर मिली है जो कि 'हरप्पा' की है, और वहीं एक और मोहर मिली है जिसमें एक आदमी दो मछली के जाल डन्टे के सहारे कन्धे पर लिए हुये है। ऐसा ही दृश्य हरप्पा में मिट्टी के एक ठिकरे पर मिला ह। ऊर का यह मुहर कस्स युग के बाद का है और इसका समय १६००-१५००

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ई० पू० होगा। इस तरह २३०० ई० पू०—१५०० ई० पू० तक के उदाहरण हरप्पा में पाये गये हैं। बहुतों ने हरप्पा सभ्यता का काल २५००-२००० वर्ष ई० पू० तक माना है। इसके बाद झुकुर युग की नयी सभ्यता का पदार्पण हुआ। फिर झांगर सभ्यता का बोल-बाला रहा। ये आर्य थे, या आर्यों के अग्रदूत, कहना मुश्किल है।

हरप्पा-लिपि

बर्तनों और मुहरों या ठप्पों पर संक्षिप्त लेख मिले हैं। यह लिखावट अभी तक पढ़ी नहीं गई है। शुरू में यह लिपि चित्रसंकेत लिपि ही होगी। हिन्दुस्तान की प्राचीन ब्राह्मी लिपि या खरोस्ती से इसका कोई सम्बन्ध निश्चय नहीं हो सकता है। कुछ लोगों का ख्याल है कि यह लिपि मेसोपोटेमिया के क्यूनिफार्म लिपि से निकली है। कुछ लोग इनका सम्बन्ध प्राचीन मिश्र की हाइरोग्लिफ से बताते हैं। यह बहुत संम्भव है कि इन प्राचीन लिपियों का स्रोत एक ही हो, पर आगे चल कर इनका रूप अलग अलग हो गया। हरप्पालिपि इन समकालीन लिपियों से भिन्न है। इसके चित्र अलग हैं, और शब्द-चित्रों की संख्या कम है। यह काफी प्रौढ़ और विकसित लिपि है। इसके पढ़ने के लिए बहुत प्रयास किए गये हैं। लैंगडन, हंटर, प्राणनाथ, और स्वामी शंकरानन्द के नाम उल्लेखनीय हैं। सबसे पिछले सज्जन तान्त्रिक मन्त्रों के द्वारा इन लेखों को पढ़ते हैं, इसकी भाषा वे संस्कृत मानते हैं। विद्वत्संसार अभी इसे मानने को तैयार नहीं है।

हरप्पा-वासी कौन थे

हरप्पा-वासी कौन थे, यह भी एक विवादग्रस्त प्रश्न है। हरप्पा व मोहन्जोदाड़ो में कुछ अस्थिपंजर मिले हैं, जिनका वैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है। मृतसंस्कार के आधारपर भी काफी बहस

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई है। पर कुछ स्थिर परिणाम नहीं निकलता है। चार भिन्न प्रकार की जातियों की खोपड़ी के नाप मिले हैं। इससे तो यही सिद्ध होता है कि जैसे वर्त्तमान काल में वैसे ही, उस समय भी इस प्रदेश में विभिन्न जातियों का सम्मिश्रण होता था। इनमें कौन विदेशी थे, और कौन इस सभ्यता के जनक, कहना नामुमकिन है। बहुत से विद्वान हरप्पा-वासियों को द्रविड़ समझते हैं। हॉल साहब का मत था कि द्राविड़ों ने ही सूमेर की सभ्यता की स्थापना हिन्दुस्तान से चल कर की। उत्तर-पश्चिम सीमा पर ब्राह्यू लोग की भाषा द्रविड़-समूह की है, इससे यह समझा जा सकता है कि ये प्राचीन पश्चिम-भारत के द्रविड़ों के अवशेष हैं। आर्यों ने द्राविड़ों को उत्तर से दक्षिण मार भगाया। पर ब्राह्यू लोगों के शारीरिक लक्षण द्राविड़ों के नहीं हैं। हो सकता है कि शताब्दियों के रक्तमिश्रण से द्रविड़ विशेषताएँ लुप्त हो गई हों। कुछ विद्वान, जैसे श्री रमेश प्रसाद चन्द, हरप्पा-वासियों को फिनिशियन समझते हैं। वेदों के 'पणि' उनके मत से हरप्पा के व्यापारिक प्रभु थे, और पणि-फिनिशियन।

कुछ भारतीय विद्वान् हरप्पा-वासियों को वैदिक आर्य समझते हैं, कोई ऋग्वैदिक और कोई अथर्ववैदिक। इनलोगों का कहना है कि हिन्दुओं के प्राचीन ग्रन्थों में भारत में आर्यजाति के बाहर से आक्रमण का कहीं जिक्र नहीं आया है। हरप्पा और वैदिक सभ्यता में धर्म, व कला के क्षेत्र में समानता है। हरप्पा के मृतसंस्कारों का भी वेद में उल्लेख है, इत्यादि, इत्यादि।

पर अधिकतर विद्वान, खासकर पश्चिम के विद्वान, इस बात पर दृढ़ हैं कि हरप्पा सभ्यता आर्य सभ्यता के पहले की सभ्यता है, और हरप्पावासी अनार्य थे। नागरिक सभ्यता का इतना विकास वेदों की ग्रामीण सभ्यता से परे की चीज है। आर्य जब कि लिंग व योनि के पूजकों की निन्दा करते थे, हरप्पावासी लिंगपूजक थे। हरप्पा-युग में

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोहे का ज्ञान नहीं था। उनके हथियार निवारक (defensive) नहीं, आक्रमणक होते थे, जबकि आर्य लोग ढाल व बख्तर का प्रयोग करते थे। आर्यों के प्रमुख देवता पुरुष थे, हरप्पा में मातृपूजा की प्रमुखता थी। वैदिक युग में प्रत्येक घर में अग्निकुण्ड रहता था, हरप्पा के किसी भी मकान में अग्निकुण्ड (hearth) का चिह्न नहीं मिला है। इन सब कारणों से हरप्पा-वासी को अनार्य माना गया है। हरप्पा-सभ्यता वैदिक सभ्यता के पहले की है, नहीं तो यह समझना मुश्किल है कि आखिर लोहा का ज्ञान हो जाने पर भी क्यों उसे भुला दिया गया या निवारक हथियारों को हरप्पा-सभ्यता में छोड़ दिया गया। इन सब प्रश्नों का सही जबाव यही हो सकता है कि हरप्पा सभ्यता अनार्यों की सभ्यता थी, और आर्य सभ्यता के स्थापक उनसे भिन्न थे और उनकी संस्कृति भिन्न थी।

हरप्पा-सभ्यता का अन्त

इस पूर्ण विकसित सभ्यता का अन्त भी इतना ही रहस्यमय है जितना इसका आरम्भ। जलप्रलय ही मोहन्जोदाड़ो का अन्त का कारण होगा, क्योंकि सबसे ऊपरी तह पर हम वही सभ्यता के चिह्न पाते हैं। पर हरप्पा व बलूचिस्तान में कुछ प्रमाण मिले हैं जिससे इस सभ्यता का अन्त कैसे हुआ इस पर कुछ प्रकाश डाला जा सकता है। हम देख चुके हैं कि सदियों तक 'हरप्पा' सभ्यता एक रफ्तार से चलती रही और इसका अन्त आकस्मिक हुआ। ईरान व बलूचिस्तान के प्राचीन स्थलों व उनके मिट्टी के बर्त्तनों की रूपरेखा के आधार पर विद्वान् लोग इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि ईसा से करीब १८००–१६०० ई० पू० पश्चिम एशिया में नई जातियों का आगमन शुरू हुआ, और इस दबाव के कारण बसी हुई जातियां अपने देश छोड़ कर नये देश की ओर चल पड़ीं। पर तब भी आक्रमणकारी जातियों ने उनका पीछा न छोड़ा। १८०० ई० पू० कस्सजाति का दबाव बेबिलोनिया पर पड़ा और हम्मू-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Facing Page 126)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

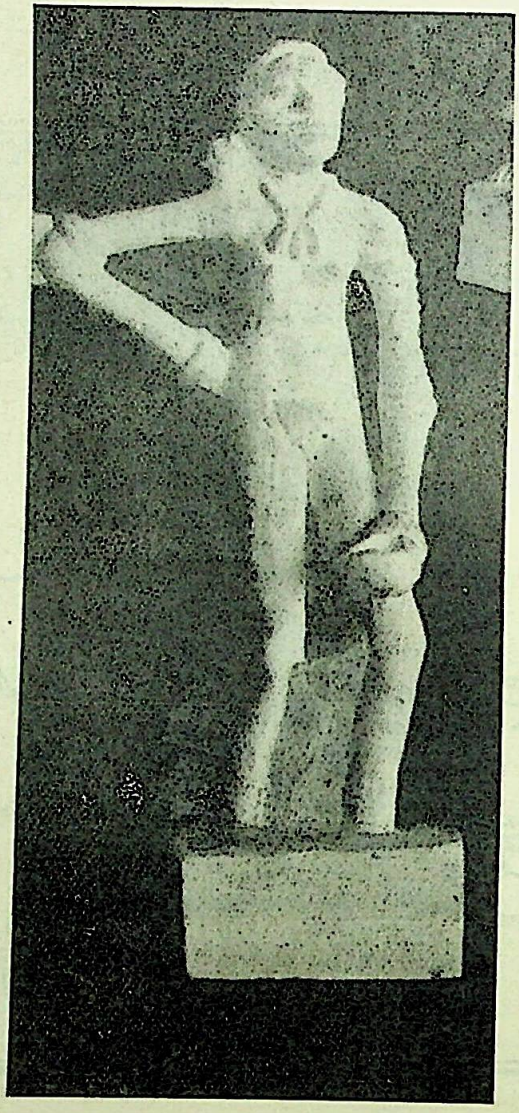

(पृ० ११७) मोहेन्जोदाड़ो : नर्तकी की काँसे की मूर्ति
(From a Cast)
(पटना म्यूजिअम के सौजन्य से)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रावी का वंश मृतप्राय हो गया। ये जातियां गिरोह बांधकर और काफी संख्या में चलतीं। सारे क्षेत्र में उथलपुथल मच गया। उत्तर बलूचिस्तान के झौब घाटी (Zhob valley) में रानाघुन्डाइ नामक एक टीले के खुदाई से इस समय के इतिहास पर काफी प्रकाश पड़ा है। यह स्थल बराबर मनुष्यों का निवासस्थान रहा, और यहां बर्तन बनाने की शैलियां विकसित होती रहीं। रा० घु० ३ (तीसरा काल) हरप्पा के समकालीन है, और इसका समय २००० वर्ष माना जा सकता है। इस समय यहां काफी लूटपाट हुई थी, और इस स्थल में आग लगाई गई थी। इसके बाद जो मिट्टी के बर्तन मिले हैं जिन्हें रा० घु० ४ के समय का कह सकते हैं, पहले के बर्तनों से एकदम भिन्न हैं, हरप्पा-कालीन बर्तनों से एकदम अलग है। इसके बाद फिर बर्बादी हुई, आग लगी, और इसके पश्चात् के जो बर्तन हैं वे रा० घु० ४ से भिन्न हैं, निम्न हैं, उन्हें रा० घु० ५ का कह सकते हैं। दक्षिण बलूचिस्तान में नाल क्षेत्र में भी इस समय के उथल-पुथल के प्रमाण मिले हैं। दक्षिण बलूचिस्तान के शाहीटम्प में हरप्पा-कालीन गांव को इसी समय कब्रिस्तान में परिणत कर दिया गया था। हरप्पा में भी हरप्पा-सभ्यता से दो भिन्न शैली के मिट्टी के बर्तन व मृतसंस्कार के नियम पाये गये हैं। झुकर, झांगर व चान्हूदारों में इनका उचित क्रम पता चलता है। अतः यह निष्कर्ष स्वाभाविक है कि पश्चिम एशिया में नई जातियों का जो आवागमन शुरू हुआ, (जिससे बेबिलोनिया की सभ्यता न बच सकी), उसका प्रभाव भारत पर भी पड़ा। बहुत सम्भव है कि झाकर व झांगर सभ्यता के लोग आर्य नहीं हो, शायद वे आर्यों के पदश्चाप से बचने के लिए हिन्दुस्तान में शरण लेने आए हों। पर अन्त में उन्हें आर्यों का सामना करना ही पड़ा। आर्यों के आक्रमण का यह पहला फल था कि बचे-खुचे अनार्य नगरों को आर्यों ने तबाह किया। उनके देवता इन्द्र पुरभेत्ता व पुरन्दर कहे जाते थे—दुर्गों पर विजय प्राप्त करना इन्द्र का ही काम था। किलों के तोड़ने में वे आगे रहते थें।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तभी तो वे आर्यों के समर-देव थे। वेदों म इन किलों का जिक्र आया है । हरप्पा व मोहन्जोदाड़ो में किला का अवशेष मिला है, मोहन्जोदाड़ो व हरप्पा में कई अस्थिपंजर ऐसे अस्तव्यस्त अवस्था में पड़े पाए गये हैं कि मालूम होता है कि ये युद्ध में मारे गये हों, या जल्दी में मृत छोड़ दिये हों।

उपसंहार

हरप्पा नगर का अन्त भले हो गया हो, पर हरप्पा-सभ्यता की कई पहलुओं को हिन्दू-सभ्यता ने अपनाई जैसे मातृपूजा, लिंगपूजा, शिवपूजा, पशुवलि, जन्तर-मन्तर पर विश्वास, और बर्तनों के रूप; कला व मूर्त्तिनिर्माण कला से प्रोत्साहन लिया। आर्य व हरप्पासभ्यताओं का समन्वय ही हिन्दूधर्म और सभ्यता का सच्चा रूप निश्चित हुआ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्तम अध्याय

आर्यों का आगमन और उनका विस्तार

हरप्पा व चान्हूदारों की खुदाई में पाए गए अवशेषों से पता चलता है कि "हरप्पावासियों" को नयी जातियों वा नई संस्कृतियों का मुकाबिला करना पड़ा। सम्भव है कि ये लोग आर्य न रहे हों, पर आर्यों के दबाव के परिणाम स्वरूप भागते भागते भारत पहुँचे हों, और आर्य उनकी पीठ पर थे। वेदों में आर्यों की सभ्यता व विस्तार का वर्णन मिलता है। प्रश्न यह है कि आर्य कौन थे और उनकी जन्मभूमि कहां थी ?

आर्य कौन थे ?

योरप के विद्वानों ने जब संस्कृत का पता पाया तब उन लोगों को योरप की कई भाषाओं और संस्कृत में घनिष्ट सम्बन्ध मालूम पड़ा। फ्लोरेन्स (इटली का एक शहर) के एक व्यापारी फिलिप्पो सस्सेटी ने सोलहवीं शताब्दी में यह घोषणा की कि सस्कृत और योरप की मुख्य भाषाओं में बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है। पर इस सम्बन्ध का कारण एक ही स्रोत है, इस तथ्य का विश्लेषण पहले पहल सर विलियम जोन्स (William Zones) ने कलकत्ते में १७८६ में बंगाल एशियाटिक सोसाइटी की एक एक सभा में किया। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि संस्कृत, जर्मन, लैटिन, इंगलिश, ग्रीक, पर्शियन इत्यादि सभी भाषाओं की जननी एक ही थी, सबों की उत्पत्ति का एक ही स्रोत था। इसके पश्चात् भाषा-विज्ञान के प्रकाण्ड विद्वानों ने इस विषय पर खूब सोचा-विचारा। जब यह तय हो गया कि इन सब भाषाओं का एक ही स्रोत था तब यह मानना युक्तिसंगत है कि इन सब भाषाओं के बोलनेवालों के पूर्वज एक ही रहे होंगे,

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और इनकी भाषा वही होगी जिसकी शाखाएँ आज की मुख्य योरोपीय व संस्कृत, फारसी इत्यादि भाषाएं हैं। इस मूल भाषा के बोलनेवालों को इन्डोग्रोरोपियन या इन्डोजर्मन या आर्य कहा जाता है।

अब प्रश्न यह है कि यदि कोई मूल भाषा थी, तो उसके बोलने वाले भी रहे होंगे। यह जरूरी नहीं है कि एक भाषा के बोलने वाले एक ही जाति (Race) के हों। अमेरिका के हब्शी (Negro) और अमेरिकन एक ही भाषा बोलते हैं, पर भिन्न जाति के हैं। इसलिए 'आर्य' शब्द को जातीय महत्व न देकर सांस्कृतिक महत्त्व देना ही अधिक श्रेयस्कर होगा। यह निर्विवाद है कि इस मूल आर्य भाषा के बोलने वाले बहुत दिनों तक एक ऐसे भौगोलिक क्षेत्र में बसे होंगे, जहां उनमें घनिष्ट सम्बन्ध रहा होगा; उस क्षेत्र में यातायात सुलभ होगा; वरना आर्य भाषाओं का दूर २ देशों में फैलना, और हजारों व सैकड़ों वर्षों से अलग रहने पर भी इन भाषाओं को मूल-भाषा के आधार पर स्थिर रहना नामुमकिन होता।

आर्यों का मूलस्थान।

इस मूल-आर्यजाति का निवास स्थान कहां था? यह विषय बहुत ही विवादग्रस्त है और अभी तक विद्वान कोई निश्चित परिणाम पर नहीं पहुंचे हैं। राष्ट्रीय भावना से प्रभावित होकर जर्मनी के विद्वान जर्मनी में ही इनकी जन्मभूमि मानते हैं, अधिकतर योरोपीय विद्वान आर्य को योरोपवासी समझते हैं, और कुछ भारतीय भारतवर्ष को ही यह श्रेय देते हैं। प्राप्त प्रमाणों के आधार पर इस विषय का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से ही अध्ययन होना चाहिये। यदि किसी परिणाम पर पहुंचना असम्भव है तो हमें अपनी परिमितता माननी ही पड़ेगी।

भाषाविज्ञान के आधार पर आर्य-भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन करने से कुछ धातुओं (roots) का पता चलता है जो इन सभी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषाओं में पाये जाते हैं, और उनका एक ही अथ हं। ऐसे धातुओं की सूची बनाई गई है, और इससे मूल आर्य-सभ्यता का परिचय मिलता है।

मूल सभ्यता

तुलनात्मक भाषाविज्ञान के आधार पर मूल आर्यसभ्यता के विषय में हमारी जानकारी वहुत कम है। पर इस सभ्यता का ज्ञान हमें और किसी अन्य स्रोत से उपलब्ध नहीं हो सकता है। आर्यभाषाओं के समान-शब्दों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर यह पता चलता है कि मूलआर्य स्थिर जीवन व्यतीत करते थे और मिट्टी की झोपड़ियों में रहते थे। गाय-वैल, भेड़, घोड़ा, कुत्ता और सूअर पोसते थे। अन्न उपजाते थे। जव (Barley) और गेहूं का व्यवहार जानते थे। उनके देश में वलूत का पेड़ (Oak), बीच (Beech) (एक जंगली वृक्ष) सरपत या सरइ (Willow), और अन्य समशीतोष्ण-कटि-वन्ध के पौधे पाये जाते थे। बत्तक, भेड़िया और भालू से ये लोग परिचित थे। समुद्र का ज्ञान इन्हें नहीं था, क्योंकि समुद्र शब्द सभी भाषाओं में नहीं पाया जाता है। मछली का व्यवहार वे नहीं जानते थे। पर निषेधात्मक प्रमाणों के आधार पर निश्चित परिणाम पर नहीं पहुंचा जा सकता है। ऐसा सम्भव है कि कालक्रम व स्थान की दूरी के कारण कुछ भाषाओं में वे शब्द अब नहीं रहे हैं जो मूलभाषा में रहे हों। पशु-पौधे एक जगह से दूसरी जगह ले जाये जा सकते हैं। मूल आर्य जाति की शाखाएं जब अपनी जन्मभूमि से चली तो अपने नये घर में वहां की चीजों को लेती गईं, या नये घर की चीजों का अपनी मूलभाषा में ही नामकरण किया। पर यह भी सम्भव है कि कुछ दिनों के उपरान्त उनकी नयी भाषा में उन पुरानी चीजों का, पशु-पौधों के नाम का अभाव ही हो गया हो क्योंकि वहां वे चीजें पाई ही नहीं जाती हों। पर इसका अर्थ यह नहीं हो सकता कि मूल आर्य भाषा में ही उन चीजों के नाम का अभाव

CC-0. JM Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। सभी भाषाओं में भाई-बहन शब्द आया है। पर ग्रीक में भाई शब्द है, पर बहन के लिए जो शब्द है वह अन्य आर्यभाषाओं के शब्द के समान नहीं है। तो क्या इसका यह अर्थ होगा कि मूल आर्यजाति में बहन का सम्बन्ध नहीं था, और भाई का था? यह भी सम्भव है कि समय और स्थान की दूरी के कारण आर्य भाषाओं में एक ही चीज के लिए दूसरे शब्दों का व्यवहार होने लगा हो। इसलिए निषेधात्मक प्रमाणों की नींव पर कोई भवन नहीं खड़ा किया जा सकता है। पर समान-शब्दों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि मूल आर्यजाति की सभ्यता क्या थी। पर शब्दों की असमानता के आधार पर हम उतनी ही दृढ़ता से यह नहीं कह सकते कि मूल आर्यसभ्यता में अमुक भाव व वस्तु का अभाव था। हमें स्पष्ट प्रमाणों के आधार पर ही मूल-आर्य-सभ्यता का नक्शा जानना है।

उत्तरी ध्रुव (?)

मूल आर्य सभ्यता का रूप ऊपर बताया जा चुका है। सबसे प्रमुख प्रश्न यह है कि वह कौन सा देश है, कौन सा भौगोलिक क्षेत्र है, जहां यह सभ्यता फैल सकती थी। यह सर्वमान्य है कि जब आर्य जातियां अन्य देशों की ओर चलीं उस समय की जलवायु व भूगोल आजकल से बहुत भिन्न नहीं रहा होगा। मूल आर्यजाति व सभ्यता की जन्मभूमि के प्रश्न पर विद्वानों में गहरा मतभेद है। वेद की कुछ ऋचाओं का खास माने लगाकर श्री लोकमान्य तिलक ने आर्यों का निवास स्थान उत्तरी ध्रुव क्षेत्र समझा था। पर यह अनुमान विद्वानों को ग्राह्य नहीं है। प्रासङ्गिक ऋचाओं का दूसरा अर्थ भी लगाया जाता है। और यदि उन ऋचाओं से यह अर्थ लगाया भी जाय कि दिन-रात कई महीनों के होते हैं, और सूर्य का वास्तविक में न उदय होता है और न अस्त, तो इससे तो यही अर्थ लगता है कि उतने प्राचीनकाल में भी आर्यों ने खगोल-विद्या में अद्भुत प्रगति किया था और उन्हें उत्तरी ध्रुव सम्बन्धी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घटनाओं का पता था, और न कि उत्तरी-ध्रुव उनका जन्म स्थान था।

डेनूब-कांठा (?)

अधिकतर विद्वान लोग आर्यों की जन्मभूमि एशिया या योरप के कतिपय क्षेत्रों में बताते हैं। डा० गाइल्स् (Dr. Giles) योरप के डेनूब-काठें को ही यह श्रेय देते हैं। उनके ख्याल में पूर्व में कारपेथियन पहाड़, दक्षिण में बालकन, पश्चिम में आस्ट्रिया के आल्प और उत्तर में इर्जेब्रिज (Erzgeberge) पहाड़ियों से घिरा हुआ डेनूब क्षेत्र में अनुकूल जलवायु, समतल व ऊंची जमीन, और प्रासांगिक पशु-पौधे पाए जाते हैं। यहां सुरक्षित होकर आबादी बढ़ती गई, और यहां से संकट आने पर देशान्तर-गमन भी सम्भव था। यहीं से आर्य जातियां एशिया माइनर व काला-समुद्र के तट होते एशिया पहुंचीं।

पर यह मत विद्वानों को मान्य नहीं है। पुरातत्व-विज्ञान के आधार पर यह पता चला है कि डेनूब-कांठे में नवप्रस्तर युग की संस्कृति के कई रूप विकसित हुये—और यहां के निवासियों ने पोलैण्ड, दक्षिण जर्मनी, बेल्जियम व पूर्वी-प्रशिया को भी अपने प्रभाव में कर लिया था। उत्तर में उत्तरी योरप के नौर्डिक निवासी से भी इनका सम्बन्ध था। इस तरह काफी जाति-मिश्रण हुआ होगा। अतः डेनूब सभ्यता का प्रभाव हम योरप के कई क्षेत्रों में पाते हैं, पर एशिया-माइनर पर इस सभ्यता का कोई प्रभाव नहीं मिलता। ट्राय शहर की खुदाई में डेनूब-सभ्यता का कोई चिह्न नहीं मिला है। यह साफ है कि डेनूब-सभ्यता का जैसा फैलाव मोरभिया से बेल्जियम तक पाते हैं, वैसा एशिया व एशिया माइनर में नहीं मिलता है। अतः डेनूब-कांठे से आर्य-जातियां एशिया में फैलीं, यह सिद्ध नहीं होता। यहां तीर और आर्यों के अन्य हथियार भी नहीं मिलते हैं। इस समय यहां मातृदेवी की पूजा होती थी। इन सब कारणों से यह कहा जा सकता है कि तुलनात्मक भाषा विज्ञान के

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधार पर स्थित आर्य-सभ्यता के सब प्रमाण यहां नहीं मिलते हैं। फिर सदियों से इस समतलभूमि में स्थिर जीवन व्यतीत करने वाले आर्य भला क्यों कष्टदायक रास्ते से होकर बञ्जारों का जीवन व्यतीत करने के लिए निकल पड़ते ? इस देश में जलवायु का कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन, जो कि यहां के निवासियों को देशान्तर गमन करने को बाध्य करता, नहीं हुआ।

स्कैन्डिनेभिया या जर्मनी (?)

पेंका (Penka) और कोसिन्ना (Kossinna) प्रभृति विद्वानों ने आर्यों की प्रथम क्रीड़ाभूमि उत्तरी योरप (Scandinavia) या जर्मनी समझा। उनके विचार राष्ट्रीयता से प्रभावित थे। योरप के इस भाग पर बाहरी आक्रमण नहीं हुआ है, और यहां के निवासी गोरे लम्बे हैं और उनके बाल हल्के रंग के है। ये नौर्डिक (Nordic) ही आर्यों का शुद्ध और सच्चा प्रतीक हैं। मूल आर्य की शारीरिक विशेषता ऐसी ही थी। वेदों में आर्यों को कृष्णवर्ण दस्युओं से भिन्न माना गया है। कस्सी, एचिअन, यवन, और रोमन सभी आर्यजातियों का यही रूप-रंग था। क्योंकि यह नस्ल अभी भी योरप में उत्तर-समुद्र से कास्पिअन समुद्र तक फैली समतलभूमि में ही शुद्ध पाई जाती है इसलिए आर्यों की जन्मभूमि भी यही है। यहीं की जलवायु और भूमि में मूलआर्यों की शारीरिक विशेषता बच सकी है। इस अति विस्तत क्षेत्र के मध्यस्थित भाग (North Central Europe) या यूक्रेन ही आर्यों का प्रथम कीड़ास्थल रहा होगा। ये स्वदेशाभिमानी विद्वान यह भी कहते थे कि संसार में आर्यभाषाओं की श्रेष्ठता या प्रधानता और नौर्डिक जातियों की शारीरिक श्रेष्ठता में स्वाभाविक सम्बन्ध है। जर्मनी का विश्वविजयी होने का दावा को उचित व न्यायसंगत समझने के लिए उपरोक्त दलील की मदद ली जाती थी। पेंका का यह विचार था कि नौर्डिक जाति बराबर विजयी ही रही, और इस पर कभी किसी अन्य जाति ने विजय नहीं प्राप्त किया।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वानों ने इस विचार का खोखलापन दिखा दिया है। स्कैन्डिनेभिया या उत्तरी जर्मनी में प्राचीन अस्थिपञ्जर पाये गये हैं। उनके मस्तकों के नाप लेने पर यह पता चला है. कि यहां भी एक से अधिक जातियों का मिश्रण हुआ था। ट्यूटोनिक (Teutonic) भाषा सबसे शुद्ध आर्यभाषा नहीं हैं, और इसमें भी अनार्यभाषाओं का समिश्रण है। स्कैन्डिनेभिया की सबसे प्राचीन-सभ्यता मूलआर्यसभ्यता से भिन्न है। यह सामुद्रिक प्रदेश है, मछली यहां बहुत मिलती है, और इसका प्रचुर व्यवहार भी है। पर मूलआर्य मछली का व्यवहार नहीं जानते थे, और शायद समुद्र से अनभिज्ञ थे। यहाँ की प्राचीन सभ्यता में धातु का प्रयोग का पता नहीं चलता है, पर आर्यसभ्यता में धातु का ज्ञान था। इसलिए तुलनात्मक भाषा-विज्ञान के आधार पर मूल-आर्य-सभ्यता का जो चित्र मिलता है वह स्कैन्डिनेभिया की सबसे प्राचीन संस्कृति से भिन्न है।

दक्षिण रूस (?)

अधिकतर विद्वानलोग दक्षिण रूस (South Russia) में मूल-आर्यों का निवासस्थान समझते हैं। श्रेडर (Schraeder) और चाइल्ड (Childe) इस मत के पोषक हैं। आर्य जातियों के देशान्तर-गमन की पौराणिक कथाओं व भाषा-विज्ञान के आधार पर मूल आर्य-सभ्यता का चित्र का वर्णन हम दक्षिण रूस को आर्यों की जन्मभूमि मान कर अच्छी तरह कर सकते हैं। दक्षिण रूस का विस्तृत चारागाह (Steppes) में हम मूल-आर्य-सभ्यता के अनुकूल जलवायु और पशु-पौधे पाते हैं। इस क्षेत्र में हिमयुग के पश्चात् के सबसे प्राचीन मनुष्यों की सभ्यता और मूल-आर्य-सभ्यता में विलक्षण समानता है। कास्पिअन-समुद्र से नीपर नदी पर्यन्त एक ही सभ्यता फैली थी। पुराने कब्रों के खोदने पर जो अस्थिपंजर मिले हैं उनसे यही निष्कर्ष निकलता है कि ये लोग लम्बे, गोरे अर्थात् नौर्डिक थे। लोग भेंड़ चराते थे, गाय-बैल पोसते थे और फुर्तीले और मजबूत घोड़े की सवारी करते थे।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहियेदार गाड़ी का नमूना भी मिला है। इसमें शायद घोड़े जोते जाते होंगे। घोड़े की सवारी व घोड़े से खींचा गया रथ आर्यों की विशेषता थी। कुछ कब्रों में अन्न भी मिलता है। खेती-बारी के साथ साथ गड़ेरिया का जीवन भी इस क्षेत्र में विताया जा सकता था; यह मूल-आर्य-सभ्यता का विशिष्ट गुण है। मूल आर्य-भाषा और सुमेरिअन भाषा में कुछ सम्बन्ध है। इसका कारण सांस्कृतिक सम्बन्ध ही होगा। दक्षिण रूस के चारागाह के पुराने कब्रों से जिन उद्योगों का पता चला है, उन पर मेसोपोटेमिया की छाप स्पष्ट है। दक्षिण रूस में पाये गए सबसे प्राचीन ताम्बे की छेनी, सूराखदार कुल्हाड़ी, भाले की नोक, क्रीट, मिश्र या पश्चिम योरप की इन चीजों से भिन्न है, और इनका निकटतर सम्बन्ध एशिया से है, मेसोपोटेमिया से विशेषकर। यह सभ्यता कई अंशों में नव-प्रस्तर सभ्यता है। ऐसा मालूम होता कि है मूल-आर्यों ने यहीं नव-प्रस्तर सभ्यता विकसित किया, और फिर यहीं से इनकी कई शाखाएं कई दिशाओं में कालक्रमानुसार दूसरे २ देशों में गईं। मूल-आर्य-सभ्यता किसी अलगाए हुये या पृथक् देश व वातावरण में नहीं विकसी। तुलनात्मक भाषा-विज्ञान के विशेषज्ञ कहते हैं कि मूल-आर्यों का समकालीन जातियों या संस्कृतियों से घनिष्ट सम्बन्ध था; इसकी छाप हम उनकी भाषा में पाते हैं। दक्षिण रूस में गेरुरंग से 'गे प्राचीन शव हजारों की संख्या में कब्रों में मिले हैं। रूसी पुरातत्ववेत्ता इस क्षेत्र की सभ्यता को तीन भागों में बांटते हैं। सबसे पुराने कब्रों की सभ्यता बहुत साधारण है, मिट्टी के बर्तन मिले हैं। इसके पश्चात् बड़े कब्र हैं, ताम्बे की बनी चीजें मिली हैं। अन्तिम भाग में लकड़ी के बने बक्स में शव पाए गये हैं। यह लौह युग, (Iron Age) के समकालीन हैं। प्रथम भाग पर कोई बदेशी प्रभाव नहीं मालूम पड़ता। यह आर्यों की मूल-सभ्यता है, जब कि आर्य लोग अभी अलग नहीं हुये थे। दूसरी स्थिति में हम इस सभ्यता में बर्तन बनाने की कलाओं

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का स्थानीय-विकास पाते हैं। कौकेशश पर्वत के उत्तरी ढाल-प्रदेश पर मेसोपोटेमिया की सभ्यता का तीव्र प्रभाव पाया गया है। यहां राजाओं या ऊच्च वर्ग के कब्र पाए गये हैं। इन कब्रों से काफी बहुमूल्य चीजें मिली हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि ये कब्र आक्रमणकारी आर्य-नेताओं के हों, जो अपनी जन्मभूमि छोड़ कर नये देशों को लूटने चले हों। आर्यजातियों का देशान्तर-गमन का इतिहास का श्रीगणेश शायद यहीं हो। बहुत सम्भव है कि ईरानिअनों व भारत के आर्यों के पूर्वजों ने पहले-पहल लूटेरे बन कर ही इन रास्तों का पता पाया, जिन पर आगे चल कर वे भारत व ईरान पहुंच सके। दूसरी शाखा उत्तर की ओर बढ़ी और बाल्टिक प्रदेश-लिथूनिया, व स्कैन्डिनेभिया पहुंची। फिर यहां से दक्षिण-पूर्व योरप-डेनूब की घाटी में आर्य-सभ्यता फैली। इन्हीं प्रमाणों के आधार पर श्रेडर (Schraeder) साहब फरमाते हैं—"दक्षिण रूस के चारागाह में ही इन्डो-यूरोपिअनों की सबसे प्राचीन क्रीड़ाभूमि थी। हमारी जाति का प्रथम निवासस्थान की खोज हमें यहीं करना है।"[१]

दक्षिण रूस ही आर्यों की जन्मभूमि थी—यह विचार के विरुद्ध भी दलीलें दी जाती हैं। यह भाग समुद्रतटवर्ती है, मछली का ज्ञान यहां के लोगों को बहुत पहले ही हुआ होगा। नमक से भी ये जरूर ही परिचित रहे होंगे। पर मूल-आर्य-भाषा में समुद्र, नमक व मछली शब्द का अभाव है। इस कारण बहुत से विद्वान दक्षिण रूस में आर्यों का प्रथम निवास स्थान नहीं मानते हैं, बल्कि वे यह सम्भव समझते हैं कि अपने देश को छोड़ने के पश्चात् आर्यों का यह दूसरा वासस्थान (Secondary home) रहा हो।

---

१. It is in the Steppe of South Russia that the scene of the most ancient period of Indo-European development, the original home of our race is to the looked for—Schraeder.

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्य एशिया (?)

एशिया में भी कई क्षेत्र हैं जिन्हें कतिपय विद्वान लोग आर्यों की जन्मभूमि समझते हैं। साइबेरिया या पामीर प्लेटो में मूल-आर्य-सभ्यता नहीं विकसित हो सकती थी। पर कास्पिअन समुद्र के पूरब मध्य-एशिया (Central Asia) कई विद्वानों के विचार में आर्यों का प्रथम निवास-स्थान था। संस्कृत और जेन्द भाषा का रूप कई दिशा में योरप की आर्य भाषाओं की तुलना में अति प्राचीन है। ऐतिहासिक काल में मध्य एशिया से कितने बार जातियों का देशान्तर-गमन हुआ है, और संसार के अधिकांश भाग इन आक्रमणों की चपेट में आए ह, जैसे शक व हूणों का आक्रमण। आर्य भाषाओं के समान-शब्दों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर कुछ विद्वानों का यह विचार है कि मूल-आर्य लोग मौंगोल व हूणों के निकट पड़ोसी रहे होंगे। कास्पिअन समुद्र के पूरब व वक्शश झील तक फैला हुआ मध्य-एशिया का चारागाह में अनुकूल समशीतोष्ण जलवायु, प्रासांगिक पेड़-पौधे, पशु और तेज घोड़े मिलते हैं। आर्य यहाँ वञ्जारों का जीवन व्यतीत करते थे। गड़ेरिये भेंड़ चराते और लोग ऊनी कपड़ों का व्यवहार करते थे। आर्य भाषाओं को भाषाविज्ञान के विशारद् 'सौ' (hundred) शब्द के उच्चारण के आधार पर दो भागों में– Satem और Centum में बाँटते हैं। योरप की आर्य भाषाएं Centum समूह की हैं, और संस्कृत व जेन्द Satem की। आर्य भाषाओं का यह अन्तर मध्य स्थित केन्द्र में हो हुआ होगा। एशिया और योरप सीमा पर स्थित दक्षिण रूस इसी कारण आर्यों की जन्मभूमि समझा गया था। पर हाल ही में एशिआई तुर्कीस्तान में तोखारिओं की एक प्राचीन भाषा Centum समूह की मिली है। इस कारण मध्य एशिया ही आर्यों का प्रथम क्रीड़ाभूमि रहा हो ऐसा विश्वास जोर पकड़ रहा है। ऐसा समझा जाता है कि मूल आर्यों की शाखाएं

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देशान्तर गमन के लिए जब निकली थी, उसी समय आर्यभाषा के दो रूप—Centum और Satem हो गये थे। मध्य एशिया से आर्यों का देशान्तरगमन के मार्गों का भी परिचय मिलता है। यहां से पश्चिम की ओर पहली शाखा मुड़ी और योरप की जातियों की उत्पत्ति हुई। इसके पश्चात् एक दूसरी शाखा वल्ख आई, और यहां भारत के आर्य व ईरानियनों के पूर्वज बहुत दिनों तक साथ रहे। बल्ख इन आर्यों (Indo-Aryans) का दूसरा निवास-स्थान रहा। यहीं उस भाषा का विकास हुआ जो संस्कृत और जेन्द भाषा की अतिसन्निहित (immediate) पूर्वज है। यहाँ से एक शाखा ईरान की ओर गई, और वहाँ से एक जत्था भारत की ओर चल पड़ा। वह भी सम्भव है कि वल्ख से ही एक शाखा भारत की ओर, और एक शाखा ईरान की ओर चल पड़ी।

मध्य-एशिया बहुत विस्तृत प्रदेश है कास्पिअन समुद्र से लेकर पूर्व में तरिम जलाशय तक। इस क्षेत्र में मूल आर्यों को अपनी सभ्यता का विकास व भाषा को स्थिर करने में उचित समय व स्थान प्राप्त था। यहां गेहूं की उपज हो सकती थी, इसलिए वे अन्न को कूटते थे। आबादी बढ़ने पर या पूर्व के वञ्जारों के लगातार दवाव से आर्य की कई शाखाएं अपनी जन्मभूमि छोड़ कर बाहर निकल पड़ीं। दक्षिण रूस और वल्ख इन दो धाराओं के गौण निवास-स्थान हो गये। यहां की जलवायु व पशु पौधे मध्य-एशिया की जलवायु व पशु-पौधे से बहुत भिन्न नहीं थे। इसीलिए इन दो क्षेत्रों में एक को विद्वान लोग भ्रमवश आर्यों की जन्म-भूमि समझते हैं।

बल्ख (?)

संस्कृत और जेन्द भाषा की समानता व प्राचीनता के आधार पर बहुत से विद्वान आर्यों का निवास-स्थान बल्ख (Bactria) मानते हैं।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवेस्त और वेद की भाषा में सचमुच काफी समानता है। यहीं से दो शाखाएं विपरीत दिशा में चल पड़ीं, एक ईरान और हिन्दुस्तान की ओर और एक पश्चिम योरप की ओर। ईरानियनों के प्राचीन साहित्य में अपने पूर्व निवास स्थान (Aryan-Vraja) का उल्लेख आता है, और यह भी बताया गया है कि किन परिस्थितियों में आर्यों को अपना देश छोड़ कर ईरान आना पड़ा। इसके आधार पर बल्ख को ही ईरानियनों (आर्यों) का अग्रिम क्रीड़ा-केन्द्र माना गया है। पर यह भी सम्भव है कि बल्ख-मूल आर्यों का गौण निवास-स्थान हो, जहां से ईरानियनों की शाखा निकली हों, और इसलिए इनके लिए बल्ख ही मुख्य निवास-स्थान था।

भारतवर्ष (?)

भारत के कई पंडित भारत को ही आर्यों की जन्मभूमि सिद्ध करने की चेष्टा करते रहे हैं। गंगा-यमुना की अन्तर्वेदी (मध्यदेश), काश्मीर, या मध्यहिमालय प्रदेश, या मुल्तान प्रभृति क्षेत्रों को मूलआर्यों का निवास-स्थान का श्रेय दिया गया है। इस विचार की पुष्टि में कई प्रकार के तर्क दिये जाते हैं। वेद आर्यों का सबसे प्राचीन ग्रन्थ है, और इसमें कहीं भी आर्यों का बाहर से आने का जिक्र नहीं है, और न दूसरी जन्मभूमि का उल्लेख है। संस्कृत मूल-आर्य भाषा की सबसे प्राचीन और शुद्ध प्रतिनिधि है, इसलिए यह अधिक सम्भव है कि इसके बोलनेवाले ही मूलआर्य हों। यहीं यह भाषा परिपूर्ण हुई। यह समझना अनुचित है कि यहां आकर आर्यों ने भाषा को परिपूर्ण किया हो, और जहां से आये वहां भाषा इतनी परिपूर्ण न हो। भारत में मूल-आर्य भाषा में पाए गये पशु-पौधे अधिकतर मिलते हैं। और जो नहीं मिलते जैसे बीच (beech) नामक जंगली, वृक्ष शायद योरप में जाकर आर्यों को मिला, और इसलिए यह शब्द संस्कृत में नहीं है। बाघ व सिंह शब्द योरप की आर्यभाषाओं में नहीं है

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि ये पशु वहां नहीं पाए जाते हैं इसलिए उन्होंने इनके शब्दों को बहुत पहले ही त्याग दिया हो। भारत से बाहर ऐतिहासिक काल में लोग गये हैं, उपनिवेश स्थापित किये हैं, और अपनी संस्कृति फैलाई है। इसलिए यह बहुत सम्भव है कि यहीं से लोग ईरान, और योरप गये हों। इस विचार के पोषक यहां तक कह डालते हैं कि पर्शियन, यवन, शक, पल्लव व कम्बोज सब भारतीय आर्य थे। इनके विचार में हिटाइट् क्षत्रिय हैं और सुमेरिअन ब्राह्मण हैं। सिन्धु-कांठे की सभ्यता आर्य-सभ्यता है। आर्यों का सबसे प्राचीन प्रामाणिक पुस्तक वेद है, इसलिए वैदिक आर्य ही मूलआर्य थे ओर भारत के निवासी थे। अन्य आर्यों में भी अपने इतिहास व संस्कृति के उपाख्यानों को बचा रखने की प्रवृति है। यवनों ने होमर के महाकाव्य को सुरक्षित रक्खा। इसलिए यदि योरप की आर्य भाषाओं में वेद की समकालीन पुस्तक नहीं है तब इससे यही निर्णय किया जाना चाहिये कि ये आर्य जातियां वैदिक आर्य के समकालीन नहीं थे। वेदों के काल के पश्चात् ही भारत से आर्यजातियों के उपनिवेश-स्थापक योरप गये होंगे।

यह विचार कि भारत ही आर्यो की जन्मभूमि है, बहुत ही आकर्षक होते हुये भी सर्वमान्य नहीं हैं। यदि आर्य भारत के ही वासी थे और यहीं से दुर्गम पथों से होते हुये एशिया और योरप में फैले तो उन्होंने पहले पूरे भारत को क्यों नहीं आर्य बना लिया। द्राविड़ व मुण्डा व संथाल भाषाएं व सभ्यताएं भारत में क्यों टिकतीं? समूचा दक्षिण भारत और उत्तर भारत के भी कुछ भाग जैसे मध्यभारत व मध्यप्रदेश व छोटा नागपुर और उड़ीसा के कुछ हिस्से अनार्य-भाषी हैं। बलूचिस्तान में ब्राह्यू भाषा की उपस्थिति महत्वपूर्ण है। यह भाषा द्रविड़-जाति की है। इन स्पष्ट प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पहले करीब करीब पूरे भारत में द्राविड़ भाषा का बोलवाला था और आर्यों के आक्रमण के परिणामस्वरूप द्राविड़ लोग दक्षिण में जमा हो

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गये। पर उत्तर में ब्राह्य भाषा उनके इतिहास की निशानी है। ऋग्वेद में गंगा का जिक्र सिर्फ एक बार है और नदियों का विवरण पश्चिम से पूरब की ओर है। अफगानिस्तान की नदियों का जिक्र है। इससे यह पता चलता है कि ऋग्वद के समय में आर्य पंजाब ही तक फैल सके थे, और उनके विस्तार की दिशा पश्चिम से पूरब थी, न कि पूरब से पश्चिम। भाषाविज्ञान के पंडितों का मत है कि लियूथिनिअनो की भाषा संस्कृत भाषा से भी अधिक प्राचीन है। आर्यभाषाओं की तुलना के बाद जो मूलआर्यभाषा का रूप निकाला गया है उसमें व्याघ्र, सिंह पर्यायवाची शब्दों का अभाव है। पर ये जंगली जानवर भारत में बराबर पाए गये हैं, और यदि आर्यभाषा व आर्यजाति की उत्पति यहाँ ही हुई थी, तो मूलआर्यभाषा में ये शब्द अवश्य मिलते। इसी तरह आर्यभाषा में जिने पेड़-पौधों के नाम-जैसे बीच (Beech) मिले हैं उनका संस्कृत भाषा में अभाव है। एक बात और भी ध्यान देने योग्य है कि योरप में आर्यभाषाएं पूरी तरह विस्तृत है पर एशिया में दो-चार ही आर्यभाषाएं है और वे भी इधर-उधर फैली हुई हैं। इससे तो यही अनुमान सही मालुम होता है कि आर्यों का मूलस्थान योरप या योरप के अति निकट हो रहा होगा, और वहीं से आर्य ईरान व भारत आए होंगे। भाषाविज्ञान के विद्वानों के अनुसार प्राचीन संस्कृत पर भी द्राविड़ व मुन्डा भाषाओं का प्रभाव है, और इन भाषाओं के शब्द इसमें पाये जाते हैं। इन सब तर्कों के आधार पर भारत को आर्यों का प्रथम निवासस्थान समझना उचित नहीं प्रतीत होता है। आर्यों ने भारत पर उत्तर-पश्चिम की ओर से आक्रमण किया, और द्राविड़ और मुन्डा प्रभृति (Austric) जातियों वा भाषाओं का उनकी भाषा व संस्कृति पर प्रभाव पड़ा। 'हरप्पा'-सभ्यता को अधिकतर विद्वान आर्यों के पहले की सभ्यता मानते हैं। मातृदेवी की पूजा, नागरिक सभ्यता का विकसित रुप, मछली का व्यवहार, आक्रमण-निवारक अस्त्रों का अभाव, शिवपूजा, लिंगपूजा इत्यादि हरप्पा-सभ्यता को अनार्य

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभ्यता प्रमाणित करते हैं। हरप्पा-सभ्यता का काल २५०० ई० पू० से १५०० ई० पू० माना गया है। ऋग्वेद का वर्तमान रूप १५०० १००० ई० पू० में ही स्थिर हुआ होगा। आवेस्त और ऋग्वेद के समय में बहुत फर्क नहीं है, और आवेस्त का काल १००० ई० पू० से पहले नहीं माना जा सकता। अतः यह स्पष्ट है कि हरप्पा की अनार्य-सभ्यता वैदिक सभ्यता के पहले की है। कई विद्वान हरप्पा-सभ्यता को द्राविड़-सभ्यता मानते हैं। भाषा-विज्ञान के आधार पर प्राचीन द्राविड़ सभ्यता का जो रूप कालुवेल और आयगंर साहब ने बताया है वह हरप्पा-सभ्यता से बहुत अंशों में मेल खाता है। भाषाविज्ञान के पंडित हिन्दू-सभ्यता पर द्राविड़-सभ्यता का काफी प्रभाव पाते हैं। वेद में भी अनार्यों का प्रसंग आया है। इसलिए हम यह निष्कर्ष पर आते हैं कि आर्यों के पहले उत्तर भारत में द्राविड़ों की सभ्यता थी, और आर्यों ने बाहर से आक्रमण किया और में द्राविड़ों को सिन्धु-गंगा की काठें से मार भगाया; पर द्राविड़ सभ्यता की छाप हिन्दू-सभ्यता पर पड़ी।

आर्यों का फैलाव--हिटाइट् (हित्ती) और कस्स।

आर्यों के मूलस्थान के विषय में हमने ऊपर कई विचारों का अध्ययन किया, पर कोई भी मत अभी तक पूर्ण रूप से सिद्ध नहीं हुआ है। हमें अब आर्यों के इतिहास पर विचार करना है। मध्य और पूर्व एशिया-माइनर में १९५० ई० पू० के बाद हिटाइट् (हित्ती) पाए जाते हैं। हिटाइट् (हित्ती) भाषा शुद्ध आर्य-भाषा तो नहीं थी, पर आर्य-भाषा का इस पर गहरा प्रभाव अवश्य था। हिटाइट् या तो स्वयं आर्य थे, या आर्यों के बहुत निकट के पड़ोसी। १९५० ई० पू० एसिया माइनर में असीरिया के सांस्कृतिक उपनिवेश पाये जाते हैं, पर उसके बाद उनका पता नहीं चलता और हिटाइट् इतिहास में प्रवेश करते हैं। अतः हिटाइट् (हित्ती) लोग

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एशियामाइनर में बाहर से आए, और वे बहुत दूर से नहीं आये थे। पश्चिम से तो कभी नहीं आये थे क्योंकि एशियामाइनर के तट पर उन्होंने अपना राज्य पहले-पहल नहीं स्थापित किया था। हिटाइट् आर्यों के मूलस्थान से एक छोटी गिरोह में निकले, और शायद काला समुद्र और काकेशश पहाड़ों के किनारे होते हुये दक्षिण-पश्चिम टारस-पहाड़ के उत्तरी भाग में उतर आए। इतिहास में हम आर्यों को यहीं सबसे पहले पाते हैं। हिटाइटों का देशान्तर-गमन शीघ्र आनेवाले आर्यों के विश्व-व्यायी देशान्तर-गमन का प्रतीक था।

हिटाइटों के पश्चात् इराक (मेसोपोटेमिया) में सत्रहवीं शताब्दी के अन्त और सोलहवीं शताब्दी ई० पू० के प्रारम्भ में कस्सजाति का आगमन होता है। प्राचीन साहित्य के अनुसार ये लोग (Kassites) इराक में पूरब से आए। कस्स-नेताओं के नाम आर्य हैं, और इनलोगों ने तेज घोड़ों से जुता हुआ रथ की मदद से वेविलोन के प्रथम वंश के साम्राज्य का अन्त कर दिया। हम्मूरावी के समय में ही कस्स व्यापारी व दुस्साहसी पुरुष इराक की भूमि पर छिटपुट तरह से आते रहते थे। कस्सजाति का आगमन और हम्मूरावी द्वारा स्थापित साम्राज्य का पतन से यह ज्ञात होता है कि आर्य अब अपने मूलस्थान से देशान्तरगमन के लिए बड़ी २ गिरोहों में निकल पड़े थे। आर्य अब विश्व-सभ्यता के इतिहास पर छाने लगे।

मित्तानी (Mitanni)

१५वीं व १४वीं शताब्दी ई० पू० आर्य-शब्द मित्तानी के राजाओं के नाम में पाए जाते हैं। मित्तानी का प्रदेश तिघरिस-यूफ्रेटिस के उत्तरी क्षेत्र में स्थित था, जिसे वर्तमान आरमिनिया (आराम) कहते हैं। मिश्र और हिटाइट् राजघरानों से इनका सम्बन्ध था। इन राजाओं के नाम आर्य हैं, जैसे दशरत्त (दशरथ), सुतरन् (सुतर्ण) इत्यादि। हिटाइट् और मित्तानी में १३८० ई० पू० एक संधि हुई थी। इस संधि की

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक प्रतिलिपि हिटाइट् की राजधानी बोघजक्यूई (Boghazquie) में मिली है। इस सन्धि में दोनों दलों ने अपने देवताओं की शपथ ली थी। मित्तानी देवतावों के नाम हैं मि-इत्-त्र-अस्, उ-रु-व्-न-अस्, इन्-द-र और ना-स-ति-इया-न। ये वैदिक मित्र, वरुण, इन्द्र और नासत्य हैं। ध्यान देने की वात है कि मित्र वरुण का द्वन्द रूप है, और नासत्य भी बहुवचन में है। ये शुद्ध वैदिक रूप हैं। इस प्रमाण से यह तो स्पष्ट है कि वैदिक आर्य और मित्तान्निओं के देवता एक थे। बोघज़्क्यूई में पाए हुये लेख-पत्रों में किक्कुली नामक मित्तानी द्वारा लिखा हुआ रथदौड़ (Chariot-race) पर एक पुस्तक है। यह भी सन्धिपत्र के समकालीन ही है। इस पुस्तक में रथदौड़ के प्रत्येक मोड़ के लिए पारिभाषिक (Technical) शब्द हैं, जो कि संस्कृत से वहुत मिलते-जुलते हैं, जैसे ऐकवर्तन्न, तेरवर्तन्न, पन्ज्वर्तन्न, शत्तवर्तन्न। संस्कृत वर्तनम् (मोड़), एक, तृ, पञ्च के ही ये रूप हैं। इसी पुस्तक में सैनिकों का कुलीनवर्ग (Military nobility) को मरिअन्नु (Mariannu) कहा गया है। संस्कृत में आर्य का अर्थ एक कुलीन वीर पुरुष है। अतः यह स्पष्ट है कि भारत के आर्य और मित्तान्निओं में घनिष्ट सम्वन्ध था। डा० जाइल्स साहब के विचार में मित्तान्नी भारत में पश्चिम से जानेवाले आर्य थे। पर यदि चौदहवीं शताब्दी में आर्य 'आराम' में ही थे, तो भारत पहुँचने में भी कुछ समय लगा होगा, पंजाव पर विजय करने में भी कुछ वख्त लगा ही होगा। ऋगवेद की ऋचायों की रचना उस समय ही हुई होगी जब कि आर्य लोग अपने पूर्वनिवासस्थान की याद भी भूल गये होंगे। इस आधार पर भारत में आर्यों का आक्रमण ११००–१००० ई० पू० के पहले नहीं हो सकता है, पर यह सम्भव नहीं है क्योंकि ऋग्वेद की सभ्यता, और उसकी कुछ ऋचाएँ रचना १५०० ई० पू० के लगभग ही हुई होगी। अतः यह मुमकिन नहीं है कि भारत से ही, या हिन्द-इरानियनों के संयुक्त-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल में ही पूर्वसे एक जमायत पश्चिम की और चल पड़ी, और आराम में बस गई। उनके देवता, और उनकी भाषा व सभ्यता हिन्द-इरानी सभ्यता रही। अनार्यों के झुण्ड में बहुत दिन तक वे टिक नहीं सके, और अन्त में उनका, कस्सों का व हित्तियों का नाश ही हो गया।

वल्ख में भी आर्यजाति की एक बड़ी शाखा ईसा से २००० वर्ष पूर्व के लगभग आकर बस गई थी, और यहीं से हिन्दुकूश पर्वत को लांघ कर आर्य भारत में पहुंचे। २००० ई० पू० के लगभग आर्यजातियों का मूल स्थान से देशान्तर-गमन प्रारम्भ हुआ। यह न एक वार और न एक समय हुआ। यह क्रम सदियों तक चला। योरप, भारत और और ईरान में आर्य स्थायी रूप से वस गये।

भारत में आर्य

भारत में आर्यों का प्रवेश का सीमित ज्ञान हमें पुरातत्व-विज्ञान और प्राचीन साहित्य से मिलता है। हरप्पा-सभ्यता का पतन और उत्तर-पश्चिम में जातियों के उथलपुथल में बहुत संबंध है। बलूचिस्तान की झौब-घाटी में स्थित राना-घुन्डाई के टीलों की खुदाई से यह पता चलता है कि किस प्रकार हरप्पा की शान्तिप्रिय सभ्यता पर आघात हुआ। राना-घुन्डाई की हरप्पा सभ्यता के समकालीन सतह (level) के ऊपर इन क्षेत्रों म आग लगाकर बर्वादी कर देने का स्पष्ट प्रमाण है। इन जले हुए सतह के ऊपर जो मिट्टी के वर्तन मिले हैं वे पहले के वर्तनों से भिन्न शैली के हैं। यह शैली जरा भद्दी है। यह नये और कुछ कम सभ्य जाति के आगमन का प्रतीक है। पर यह संस्कृति भी जला दी गई, और इसके वाद जो नयी सभ्यता स्थापित हुई उसके मिट्टी के वर्तन विना रंगे हुये हैं, और इन पर नये प्रकार के चित्र (design) बनाए गये हैं। यह नयी जाति के आगमन का प्रमाण है। अतः यह स्पष्ट है कि इस समय उत्तर बलूचिस्तान में अराजकता, अशान्ति, आगलगी व लूटपाट का बोलबाला था। बलूचिस्तान के नाल क्षेत्र में भी यही दृश्य मिलता है। दक्षिण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलूचिस्तान में शाही-तुम्प की एक टीले की खुदाई से हरप्पा-सभ्यता के समकालीन सभ्यता का पता चला है। पर हरप्पा-सतह के समय के एक उजड़े हुये गांव में कब्रिस्तान मिला है, जिनमें १२ कब्रें पाई गई हैं। इन कब्रों में मिट्टी के बर्तन, ताम्बे के औजार व गहने, पत्थरों के बने आभूषणें मिले हैं। मिट्टी के ये बर्तन मजबूत और अच्छे हैं। इन बर्तनों के ऊपर जो चित्रकारी है वह घेरे में है, या चौखटे में है। इस प्रकार के बर्तन पश्चिम में पर्शिया की सीमा पर पाए जाते हैं। इसका समय २००० ई० पू० माना गया है। इसमें एक कब्र में ताम्बे का भाला, और सूराखदार-कुल्हाडी भी मिली है। हरप्पा सभ्यता से ये चीजें भिन्न हैं, और इनकी समानता हम ईरान के प्राचीन खन्डहरों में पाते हैं, जिनका समय करीब २००० वर्ष ई० पू० है। दक्षिण बलूचिस्तान में इन चीज़ों का पाया जाना इस अनुमान की पुष्टि करता है कि करीब २००० ई० पू० दक्षिण-पर्शिया से होते हुये लोग यहाँ पहुँचे। एक कब्र में ताम्बे का भाला और सूराख-दार युद्ध कुल्हाड़ी (Shafthole battle-axe) प्राप्त हुई है। यह कुल्हाड़ी 'हरप्पा' की नहीं, वरन् मेसोपोटेमिया की समकालीन कुल्हाड़ी से मिलती है, और दक्षिण रूस के सर्दारों के कब्र में, जो मेसोपोटेमिया की सभ्यता की सीमा पर स्थित है, मिलो है। शाही-तुम्प के कब्रों में जो ताम्बे की मुहरें (Seals) मिली हैं उनका पाश्चात्य संबंध और भी स्पष्ट है। जिस सैनिक की कब्र में यह कुल्हाड़ी और भाला मिला है उसकी खोपड़ी की जांच वैज्ञानिकों ने की है, और उनका विचार यह है कि यह मनुष्य समिश्रित जाति का है, और कास्पिअन जाति के बहुत समीप है। इन सब प्रमाणों के आधार पर यह कहना असंगत न होगा कि यह कब्रगाह नये आगन्तुकों का है, जिनका अभिप्राय शान्ति-पूर्ण व्यापार नहीं वरन् नये देशों का जीतना था।

मोहन्जोदाड़ो के अन्तिम दिनों में 'हरप्पा'-सभ्यता और दक्षिण बलूचिस्तान की 'कूल्ली'-सभ्यता का सम्बन्ध अधिक दृढ़ मालूम होता

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। ऐसा बहुत सम्भव है कि जब नयी जातियां इस क्षेत्र में गड़बड़ी मचा रही थीं, तब यहां के शान्तिप्रिय निवासी, कलाकार या शिल्पकार सिंधुकांठे में शरण लेने आए, क्योंकि यहां की सभ्यता और उनकी सभ्यता में घनिष्ट सम्बन्ध था और पारस्परिक तिजारत बहुत था। पर क्या ये लोग इन जातियों के आक्रमण से बच सके? नहीं, इन नयी जातियों ने इनका पीछा न छोड़ा और किरथार पर्वत की श्रेणी पर से घनी और उन्नत आबादियों को देख कर इन्हें लूटने की इच्छा वे नहीं रोक सके। चान्हुदारो, झुकर और लोहुम्जोदारो की खुदाई ने हरप्पा-शहरों के पतन के इतिहास पर नयी रोशनी डाली है। झुकर-सभ्यता हरप्पा-सभ्यता के तुरन्त बाद की है। इस काल के बर्तनों की शैलियों में हम 'आमरी' 'हरप्पा' और 'कुल्ली' (दक्षिण बलूचिस्तान) शैलियों का सम्मिश्रण पाते हैं। विदेशी प्रभाव का अभाव सा ही है। अतः यह अनुमान होता है कि इस समय इस प्रदेश (region) में उपद्रव या अशान्ति थी। 'हरप्पा'-साम्राज्य का पतन और नयी जातियों का उत्तर-पश्चिम में आगमन के फलस्वरूप देशीय झुकर-संस्कृति का जन्म हुआ। झुकर-मुहरों या जन्तर 'हरप्पा'-मुहर या जन्तरों के रूपरंग (design) से बहुत भिन्न है और उनका सम्बन्ध पश्चिम एशिया से साफ मालूम होता है। कुछ पत्थरों के मुहर तो शाही-तुम्प के कब्रगाह में पाए गये मुहरों से बहुत मिलते-जुलते हैं। कुछ मुहरों पर जानवरों के चित्र सुमेर व इलम से प्रभावित हैं, भारतीय तो वे हैं ही नहीं। एक मुहर पर गुथी हुई गाँठ का चित्र है (Interlaced-coil-pattern) जिसका सम्बन्ध एशिया माइनर के हित्तीयों (Hittites) के मुहरों से है। पत्थरों के दानों (Stone-Beads) की भी यही कहानी है। सूराखदार कुल्हाड़ी भी शाही-तुम्प की कुल्हाड़ी से मेल खाता है। झुकरकालीन कांटा (बाल का) प्राचीन सुमेर के कांटों ऐसा है। हड्डी के बने टकुवे मिलते हैं जिनका हरप्पा-काल में पूर्णतः अभाव है। झुकरकालीन

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

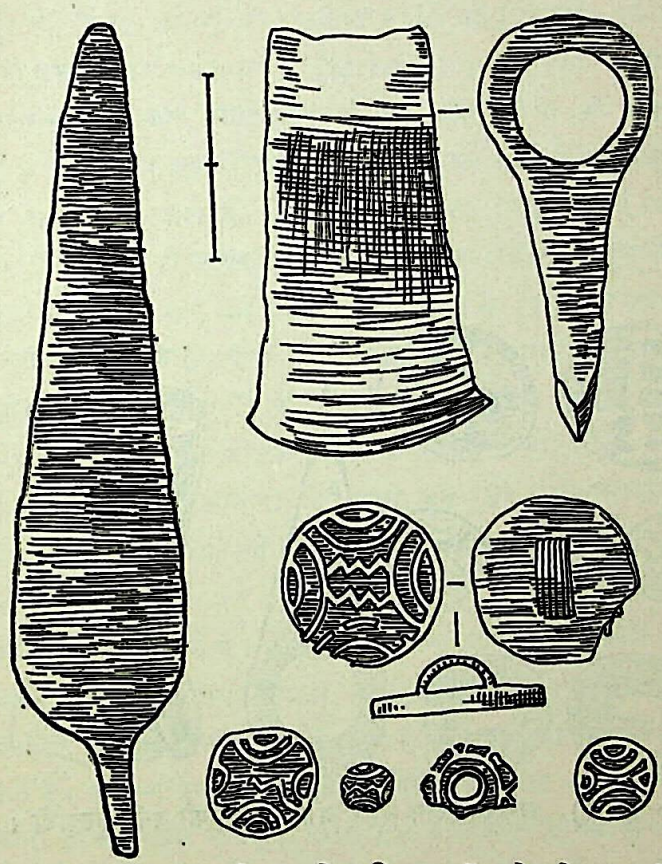

(पृ० १४७) शाही तुम्प के कब्रिस्तान में पाये गये ताम्बा के हथियार और मूहरें।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

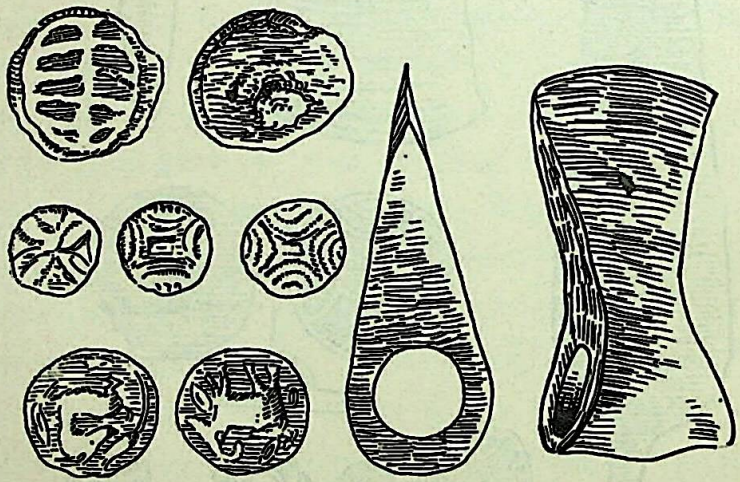

(पृ० १४८) झुकरकालीन मुहरें और ताम्बा की बनी कुल्हाड़ी।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औज़ार हरप्पा काल के औज़ारों की तुलना में शुद्ध और प्राकृतिक हैं (unsophisticated) । उजड़े हुये शहरों में रहने के लिए इन लोगों ने जो निम्न प्रकार की कुटिया (Hovel) बनाई इससे भी इनकी सभ्यता का बर्बर रूप (Barbaric) का पता चलता है। झुकर-सभ्यता और शाही-तुम्प में पाई गयी चीजों में बहुत समानता है । अत: हम इस परिणाम पर पहुँचे कि इस समय दक्षिण बलूचिस्तान और सिन्धु-घाटी में विदेशी जातियों का प्रवेश हुआ। ये लोग या तो स्वयं आक्रमणकारी थे या आक्रमणकारियों के दबाव के फलस्वरूप इस ओर भागे आ रहे थे। इस समय के मिट्टी के बर्तन भले ही स्वदेशी-शैली के हों, पर धातुओं के उपकरण व मुहरें तो विजातीय ही हैं । मोहन्जोदाड़ो के सबसे उपर वाले तह (जो अन्तिमयुग का है) में जेवरों और बेशकिमती चीजों के ढेर मिले हैं । ताम्बे के औजारों के सबसे बड़े ढेर मोहन्जोदाड़ों के अन्तिम समय में ही पाये गये हैं। यह सब संकटकाल व अनिश्चित समय के उदाहरण हैं, जब लोग अपने बहुमूल्य सामान इकट्ठे करके जमीन में गाड़ने लगे थे। समय के मकान इस पूर्व की तुलना में बहुत निम्नकोटि के हैं। नगर-योजना का सिद्धान्त छोड़ दिया गया है। बर्तन के भट्टे शहर के बीच ही में पड़े मिले हैं; एक तो बीच सड़क पर पाया गया है। नगर-योजना के सिद्धान्तों की अवहेलना, संकट का भय, बड़े बड़े मकानों को छोटे-छोटे भागों (flats) में बांट देना यह सब या तो वास्तविक विदेशी आक्रमण या, आगामी आक्रमण के सूचक हैं। सड़कों पर सैकड़ों अस्थिपंजर का पाया जाना और सीढ़ियों पर लाशों के ढेर मिलना यह सिद्ध करता है कि शहर पर आक्रमण हुआ था, और लोग मृतकों का यथोचित संस्कार छोड़ अपनी जान बचा कर भागने में लगे थे। मोन्हजोदाड़ो में ताम्बे का एक बसूला, (Axe-adze), जिसमें डन्डे की मुठिया के लिए सुराख है, पाया गया है। धातु की बनी ऐसी चीजें

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हरप्पा-सभ्यता' में नहीं पायी जाती है, पर मेसोपोटेमिया और उत्तर-पर्शिया में ऐसे उपकरण पाये जाते हैं। इस वसूले की उचित तुलना हम शाही-तुम्प के कब्र में पाये हुये कुल्हाड़ी से कर सकते हैं। मोहन्जोदाड़ो में यह पश्चिम से आया है और युद्धोपयोगी है। इसका काल ईसा से २००० वर्ष शताब्दी है। मोहन्जोदाड़ो में ताम्बे की तलवार या छूरे पाए गये हैं, जिनके आकार (design) 'हरप्पा" परम्परा से भिन्न हैं। इस तरह की तलवार फिलस्तीन में १८००–१५०० ई० पू० काल की मिलती हैं। मोहन्जोदाड़ो में पिछले दिनों के एक घर के आँगन में एक कब्र मिला है, जो कि आक्रमणकारी का मालूम होता है।

हरप्पा में भी उपद्रव और नयी जातियों के आगमन के प्रमाण मिले हैं। हरप्पा का किला का टीला की चोटी पर ईंटों को लूट कर ले जाने का प्रमाण है। किले के अन्तिम दिनों की किलाबन्दी बहुत निम्न-कोटी की है और पूर्व के भग्नावशेषों व मलबों (debris) पर स्थित है। यह स्पष्ट है कि हरप्पा के बुरे दिन आ गये थे, और पतन के पश्चात् यह साधारण किलेबन्दी की गई थी। मूल हरप्पा-सभ्यता के पतन के बाद नयी जातियों के आगमन का निश्चित प्रमाण ऊपरी सतह पर पाया गया कब्रगाह है। 'हरप्पा'-कालीन कब्रगाह से यह कब्रगाह एकदम भिन्न है। मूर्दा गाड़ने की प्रथा भिन्न है। १४० से अधिक कब्र पाये गये हैं। इन कब्रिस्तानों में जो मिट्टी के बर्तन पाए गये हैं वे 'हरप्पा'-कालीन मिट्टी के बर्तन से भिन्न हैं। इन बर्तनों पर कई प्रकार के तारों, पौधों, सीधी और टेढ़ी रेखाओं का मिश्रण और टेढ़ो-मेढ़ी रेखाओं के चित्र पाए जाते हैं। जानवरों व चिड़ियों को जिस प्रकार चित्रित किया गया है वह हरप्पा-काल के लिए अनूठा है। कुछ चित्र प्राकृतिक नहीं वरन् लाक्षणिक (Symbolic) हैं। बर्तनों की यह परम्परा प्राचीन-पूर्व की संस्कृतियों के बर्तन बनाने की ज्ञात परम्पराओं से एकदम भिन्न है। ये लोग हरप्पा में आगन्तुक ही थे। कहां से वे आये,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri
H-Century

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उनका क्या इतिहास रहा कहना अभी मुश्किल है। इस सम्बन्ध में कुछ और मनोरंजक बातें मिली हैं। हरप्पा से ३००मील पश्चिम राजानपुर और हजारों मील पूरब रांची जिले में, और गंगा की घाटी में ताम्बे के औजार व अस्त्रों के ढेर गड़े मिले हैं। ये चीजें हरप्पा-सभ्यता और उससे प्रभावित समकालीन संस्कृतियों की परम्परा की हैं। इससे यह तो निष्कर्ष स्पष्ट ही है कि 'हरप्पा' की धातुशोधन-विद्या का पश्चिम और पूर्व में प्रचार हुआ। पर यह सोचना भी असंगत नहीं होगा कि 'हरप्पा'-कालीन शहरों की बर्बादी के समय, विदेशी आक्रमणों के परिणाम-स्वरूप, सिन्धु-कांठे के कारीगर व धनीमानी लोग अपने बहुमूल्य उपकरणों के साथ पूरब और पश्चिम भागने लगे। पर यहां भी इन्हें चैन नहीं मिला, शायद आक्रमणकारी इन्हें खदेड़ते ही आ रहे थे, इसीलिए तो इन्होंने अपने औजारों को इकट्ठा छिपा कर रख दिया।

अतः बलूचिस्तान, सिन्ध और पंजाब में मिले प्रमाणों के आधार पर यह स्पष्ट है कि हरप्पा-सभ्यता पर बाहरी दुश्मनों का आघात हुआ। खुदाई से प्राप्त हुई चीजों की तुलना जब हम अन्य विदेशी पड़ोसी व दूरस्थित क्षेत्रों में पाई चीजों से करते हैं, तब यह भी पता चलता है कि उपद्रव का काल २००० ई० पू० के पश्चात् है।

प्राचीन वैदिक साहित्य में आर्यों का विजातीयों से युद्धों का उल्लेख है। इन विजातीयों को दस्यु और निषाद् कहा गया है। बहुत सम्भव है कि 'निषाद' आज के मुण्डा प्रभृति के पूर्वज रहे हों, और दस्यु द्रविड़ हों। वेदों में दस्युओं के मजबूत किलों व सुदृढ़ शहरों (पुर) का जिक्र आया है। इन्द्र को इन शहरों (आयसिःपुरः) की किलेबन्दी को तोड़ने वाला (पुरभेत्ता) कहा गया है। विद्वानों का यह विचार है कि मृध्रवाची कृष्णवर्ण, शिष्णपूजक दस्यु 'हरप्पा'-वासी ही थे, और जिन लोगों ने हरप्पा आदि शहरों का विनाश किया, जिसका प्रमाण हमें पुरातत्व-विज्ञान से मिलता है, वे और कोई नहीं ऋग्वेदकालीन आर्य थे, या वे लोग थे जिन्ह

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्य उत्तर-पश्चिम से खदेड़ते आ रहे थे। ऋग्वेद का काल बहुत ही विवादग्रस्त प्रश्न है; पर अधिकतर विद्वान इसके अन्तिम संकलन का समय १५००–१००० ई० पू० समझते हैं। यह समय पुरातत्वविद्वानों के मत से भिन्न नहीं।

एशिया-माइनर के हिटाइट्, मेसोपोटेमिया की कस्सजाति, आरमिया के मित्तान्नी, और भारत व ईरान के आर्यों का इतिहास का विस्तृत दृष्टि से अध्ययन करने पर यह मालूम होता है कि ईसा से करीब २००० वर्ष पूर्व एशिया और योरप को आर्यजातियों का महान् देशान्तर-गमन का सामना करना पड़ा। बहुत सम्भव है कि इसका सूत्रपात किरगिज के चारागाह से—कास्पिअन समुद्र के उत्तर-पूर्व से उत्तर में उराल के पहाड़ों तक और पूर्व में तुर्किस्तान तक विस्तृत हुआ। यहां मेसोपोटेमिया की सांस्कृतिक परम्परा से सम्बन्ध सम्भव था; इस क्षेत्र से पूर्वीय एशिया-माइनर, और आरमिया और बल्ख–पामीर के क्षेत्र में पहले फैलना सम्भव था। काला समुद्र होते हुये योरप भी जाना कठिन नहीं था।

आर्य-अनार्य संघर्ष

आर्यों के देशान्तर गमन से आर्य-पूर्व-सभ्यताओं व जातियों को कठिन मुसीबत का सामना करना पड़ा। लगभग २००० ई० पू० से आर्य-अनार्य संघर्ष का आरम्भ होता है, जो कई शताब्दियों तक चलता रहा। आर्यों के जत्थे एक बार ही सारे संसार पर नहीं छा गए। आर्य जातियों का तांता बना रहा, और एक के बाद दूसरी आर्यशाखा पीठ पर मौजूद थी। इस कारण पहले और पीछे आने वाली आर्य जातियों में भी पारस्परिक संघर्ष रहा। इसका प्रमाण आर्य-भारत व आर्य-यूनान (Greece) के इतिहास में मिलता है। वेद और ब्राह्मण साहित्य में पौरवों, यादवों, हैहयों और परशुओं के झगड़ों का जिक्र मिलता है। ऋग्वेद में दशराज्ञ-युद्ध इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है : भारत-राजा सुदास के

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरुद्ध पुरु, यदु, तुर्वश अनु, द्रुह्यू, और पाँच अन्य आर्य जातियों ने मिलकर युद्ध किया। ग्रीस में आगन्तुक डोरिअनो के उपद्रव से एकिअन प्रभृति आर्य-जातियां पीड़ित रहीं, और बहुत लोग एशियामाइनर व पूर्व-मध्यसागर के स्थित प्रायद्वीपों में भाग गये।

पर आर्य-अनार्य का संघर्ष राजनीतिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से बहुत महत्त्व रखता है। आर्यपूर्व राज आर्यों के प्रहार से चूर हो गये। भारत म हरप्पा-सम्राज्य व सभ्यता का पतन हो गया और पंजाब में आर्य राज्य स्थापित हो गये। ऋगवेद में उत्तर पश्चिम-सीमाप्रान्त और पञ्जाब आर्यों की क्रीड़ा-भूमि रही। इस समय आर्य सिन्ध, राजपूताना, काश्मीर और पूर्व में सरयू-तट तक फैल गये थे। उत्तर-वैदिक साहित्य के समय के पहले ही कोशल, काशी व उत्तर विहार ब्राह्मण सभ्यता के अधिकार में आ गये थे। अंग (भागलपुर-मुंगेर) और मगध (दक्षिण विहार) भी आर्यों के अधिकार में आ गये थे। गंगा का दोआव तो बहुत पहले ही आर्य हो गया था। उत्तर व उत्तर-पश्चिम में काश्मीर व हिमालय तक आर्य फैल गये थे। दक्षिण में विन्ध्य-पर्वत के पार विदर्भ (बरार) आर्यों के अन्तर्गत था। उपनिषद् के समय में नर्मदा के उत्तर सारा भारत आर्य था।

भारत के पश्चिम आर्य-पूर्व सभ्यता पर, जिसके चिह्न सूसा और सिआल्क में मिले ह, इरानिअनों ने विजय प्राप्त की। इरान का नाम ही आर्यों ने दिया है। यहां से ये लोग दक्षिण और पश्चिम की ओर बढ़े और मेसोपोटेमिया की सीमा पर आ गये। इरानियनों की दो प्रमुख शाखाएं हुई—मद्र (Medes) और परशु (पर्शियन)। मेसोपोटेमिया इनके हमलों के पहले ही कस्सों के आक्रमण का शिकार हो चुका था, और बेबिलोन का प्रथम राजवंश का अन्त भी इसी का परिणाम था। इस पूर्व-आर्य देश पर कस्स-आर्यों का आधिपत्य हो गया। कस्सों के

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजवंश के अन्त के बाद भी आर्यजातियों के देशान्तर-गमन के चपेट में आर्य-पूर्व इलम, दक्षिण-पश्चिम पर्शिया और मेसोपोटेमिया के राज आते रहे। आठवीं व सप्तमी शताब्दी ईसा से पूर्व शकों का वक्षु और जक्सार्टीज नदियों के मध्य-स्थित शकस्थान से पश्चिम एशिया पर आक्रमण होने लगा। उनकी बर्बरता से असीरिया-साम्राज्य काफी परेशान रहा, और एशारहेड्डन युद्ध और कूटनीति से काम लेकर इस खतरे को कुकाल के लिए टाल सका। पर असीरिया का महान् साम्राज्य पर मद्रों की गृद्ध दृष्टि पड़ चुकी थी। मद्रों का मिडिया का राज्य बे-बिलोन के उत्तर-पूर्व स्थित था। शकों ने इस साम्राज्य को पहले ही रौंद डाला था, और अब मद्रों ने शकों और चाल्डियनों से मिलकर असीरिया के साम्राज्य का अन्त कर दिया। इस तरह सबसे महान आर्य पूर्व-साम्राज्य को मद्र-सम्राट् हुवक्षत्र ने अपनी कूटनीति और युद्धकौशल से ६१२ ई० पू० में नष्ट कर दिया।

पर्शिया का उदय

मद्रों का साम्राज्य पर्शिया की खाड़ी से लेकर तिघरीस के पूर्व तक फैला हुआ था। उत्तर-पश्चिम में यह काला-समुद्र के क्षेत्र तक विस्तृत था। परशु (Persians) मद्रों के मातहत थे। इरानियनों की पर्शियन शाखा नैनवां के पतन के समय ज़ाग्रो की पहाड़ी के पूरब फैल चुकी थी। पर्शियनों की एक उपशाखा अन्शान ने एक छोटा राज प्राचीन इलम में स्थापित किया था। ईसा से लगभग ५७५ ई० पू० कुरुश प्रथम (Cyrus I) राजगद्दी पर आया। यह महान् सेनानायक और कूटनीतिज्ञ था। इसके हौसले भी बड़े थे। आर्यों का बढ़ाव चाल्डिया-बेबिलोन का साम्राज्य रोके हुए था। इस समय मद्र-राजा आर्यों की प्रगति का नेतृत्व करने के अयोग्य था। कुरुश ने इस परिस्थिति का फायदा उठाकर सभी बिखरी हुई पर्शियन जातियों को एक सत्र में बांधा, और फिर मद्र साम्राज्य को अपने अधीन कर लिया। पर्शियन-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साम्राज्य अब कालासमुद्र से लेकर पूर्व में टीघरिस नदी तक फैल गया। कुरुश का अभ्युदय से वेविलोन, लिडिया और मिश्र के अनार्य राज्य चकित और स्तम्भित हो गये। इनलोगों ने अपनी पुरानी शत्रुता भुलाकर कुरूश प्रथम के विरुद्ध एक संयुक्त मोर्चा खड़ा किया। पर आर्यों की श्रेष्ठतर युद्ध कौशल, अस्त्र-शस्त्र और संचालन-शक्ति के सामने उनकी एक न चली। एशियामाइनर में स्थित लिडिया का प्रसिद्ध राजा कारू का पतन ५४६ ई० पू० हो गया। कारू संयुक्त-मोर्चा का वास्तविक नेता था और उसके पतन के बाद वेबिलोन का चाल्डियन राज्य निराश्रय रह गया। चाल्डियनों ने असीरियनों के विरुद्ध मद्रों को सहायता दिया था, और जिसके इनाम में उन्हें वेबिलोनिया का राज्य मिला था। पर पराश्रयी कब तक खैर मना सकता था। आर्यों को तो एक-एक कर अनार्य राज्यों का विनाश करना था। कुरुश प्रथम ने ५३९ ई० पू० वेबिलोन पर विजय प्राप्त कर लिया, और वहां भी अनार्यों का राज्य समाप्त हो गया। पर्शिया साम्राज्य अब ईरान से लेकर भूमध्यसागर (Mediterranean sea) तक फैल गया। कुरुश प्रथम के बाद कम्बुज या कम्बुश (Cambyses) ५२८ ई० पू० राजगद्दी पर आया। इसने प्राचीन आर्यपूर्व (Pre-Aryan) देश मिश्र पर ५२५ ई० पू० में विजय प्राप्त किया और मिश्र अब पर्शियन-साम्राज्य का अंग बन गया। यह साम्राज्य अब भारतीय सीमा से लेकर नील-नदी और पूर्वमध्यसागर तक विस्तृत हो गया। कम्बुश (Cambyses) का उत्तराधिकारी दरायुस प्रथम (Darius I) ने भारत के उत्तर-पश्चिमप्रान्त, सिन्ध और पञ्जाब पर लगभग २० ई० पू० में अपना राज्य स्थापित कर लिया। इसके ही समय में पर्शिया-यूनान में युद्ध छिड़ा जिसका अन्तिम परिणाम पर्शिया के लिए बुरा हुआ।

इस तरह ईसा से षष्ठी शताब्दिक पूर्व तक भारत और पश्चिम एशिया के आर्यपूर्व (Pre-Aryan) राज नष्ट हो गये, और आर्य राज

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व सभ्यता ने इनका स्थान ले लिया। योरप में एजिअन समुद्र (Aegean Sea) के तटस्थित अनार्य-मिनोअन साम्राज्य और ग्रीस का माइकिनिअन (Mycenaen) सभ्यता का भी अन्त आर्य-यवनों ने १५००-१३०० ई० पू० कर दिया। आर्य-अनार्य संघर्ष लगभग १३-१४ सौ वर्ष तक चलता रहा। दक्षिण पश्चिम एशिया के आर्यपूर्व जातियां-असीरिअन, चाल्डियन, यहूदी, फिनिशिअन, फ्रिजिअन, इत्यादि—सेमेटिक जाति की थीं, और दक्षिणी चारागाह-अरब, रेगिस्तान के उत्तर में स्थित—से उत्तर की ओर निकली थीं। आर्य उत्तरी चारागाह—मध्य एशिया से दक्षिण की ओर बढ़े। बहुत से विद्वान आर्य-अनार्य संघर्ष को आर्य—सेमेटिक संघर्ष के रूप में देखते हैं; उत्तरी व दक्षिणी चारागाह-निवासी में कश्मकश का रूप देते हैं। पर इस लम्बी अवधि की लड़ाई में अन्तिम विजय आर्यों को ही मिला।

आर्यों के विजय के कारण

आर्यों की जीत के कई कारण थे। पहली बात तो यह कि ये लोग बहुत बड़ी संख्या में अपनी जन्मभूमि छोड़ कर रोटी और शरण की तलाश में चल पड़े थे। इनकी संख्या बराबर बढ़ती ही गई। ठण्ढे और कठिन देशों से इनकी जमायत में नया खून बराबर आता ही रहा। इनके पास खोने के लिए कुछ नहीं था, युद्ध का परिणाम इन के लिए कुछ प्राप्ति ही होता, इसलिए धनी औ सभ्य जातियों से लड़ने में इन्होंने अत्यन्त बर्बरता और अदम्य उत्साह दिखाया। आर्यपूर्व सभ्यताओं के क्षेत्रों की खुदाई से आग लगाना, शहर जलाना, कत्लेआम करना, या मकानों को तोड़-फोड़ करना इन आक्रमणकारियों के काम रहे हैं। वेद में भी दस्युओं के सुदृढ़ नगरों को जलाने का उल्लेख आया है। लूट-पाट में भी तो सैनिकों को बहुत धन की प्राप्ति हो जाती होगी। पर आर्य-विजय का सबसे प्रधान कारण था सैनिक श्रेष्ठता। आर्यों ने घोड़े द्वारा खींचा जानेवाला दो पहिये के रथ का युद्ध में पहले पहल

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवहार किया। प्राचीन स्थलों की खुदाई से यह पता चलता है कि आर्यों के पहले भी पश्चिम-एशिया के कुछ भाग में घोड़ा का ज्ञान था। सुमेर में गदहे के द्वारा खींचा जाने वाला दो पहिये की गाड़ी से यातायात में सुविधा थी। हरप्पा-सभ्यता में भी बैलगाड़ी का व्यवहार था ही। पर घोड़े से जुते हुये रथ का युद्ध में प्रयोग करना आर्यों का आविष्कार था। ये घोड़े बहुत फुर्तीले और मुस्तण्ड थे। 'रथ' शब्द का रूप सभी आर्य भाषाओं में पाया जाता है। वैदिक साहित्य और पुरातत्त्व-विज्ञान के द्वारा संकलित प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध हो गया है कि ईसा से पूर्व दोहजाहरवीं शताब्दी में भारत में, मोसोपोटेमिया में, मिश्र में, और ग्रीस में युद्ध में फुर्तीले घोड़े से जुते रथ का प्रयोग होने लगा। यह आर्यों की देन है और अनार्यों के विरुद्ध युद्ध में इससे बहुत लाभ हुआ। रथ में बैठ कर महारथी या रथी सैनिक तीर-धनुष से शत्रुओं की पंक्ति में त्राहि-त्राहि मचा देता था। आर्यों को एक और सुविधा थी। हरप्पावासी के पास निवारक-शस्त्र नहीं थे। ढाल व कवच और व शिरश्त्राण नहीं था। पर आर्यसैनिक अपने शरीर को धातु की बनी, सम्भवतः लोहे के बने (यवन-इतिहास हेरोडोटस ने लिखा है कि भारतीय सैनिक कपास के बने कवच से लैश रहते थे, इसमें तीरों की नोक भी नहीं चुभ सकती थी) जिरह-बख्तर व शिरश्त्राण से अपनी रक्षा करते थे। बहुत से विद्वान लौह-युग का प्रारम्भ भी आर्यों के युग से ही मानते हैं। ऋग्वेद में अयस् शब्द का प्रयोग आया है, जिसका अर्थ कुछ लोग 'लोहा' करते हैं। पर अथर्ववेद का 'श्याम अयस्' तो अवश्य ही 'लोहा' है। लोहे के बने हथियार ताम्बे व कांसे के हथियार से अधिक मजबूत थे। सम्यसंचालन में भी आर्य कुरूश ने अभूतपूर्व योग्यता दिखाई। इन्हीं सब कारणों से आर्य-अनार्य संघर्ष का अन्त आर्यों के अनुकूल हुआ।

आर्य पर्शियन-साम्राज्य संसार का सबसे प्रथम सुदृढ़ और सुशासित साम्राज्य था। कुरुश प्रथम और दरायुश प्रथम ने इस ओर बहुत ध्यान

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया। इतना विस्तृत साम्राज्य बीस प्रांतों में बंटा था। विजित-जातियों को अलग २ प्रांतों में बांट कर उन्हें सीमित स्थानीय-शासन देकर पर्शिया ने असीरिया का साम्राज्य-शासन सिद्धान्त को और भी अधिक बढ़ाया। इस सारे साम्राज्य में एक आदमी-पर्शिया का साम्राट्—की तुती बोलती थी। यह साम्राज्य एक व्यक्ति के द्वारा शासित था। संसार के इतिहास में इस बड़े पैमाने पर यह प्रथम प्रयास था। साम्राज्य में यातायात व सैनिक सुविधा के लिए लम्बी सड़कें बनाई गई थीं। घोड़े पर डाक लाने की प्रथा भी शुरू हुई।

यह निर्विवाद है कि ईसा से षष्ठी शताब्दी के भीतर ही आर्यों ने पूर्ण विजय प्राप्त कर लिया। पर यह समझना ग़लती होगी कि आर्य-सभ्यता अनार्यों की सभ्यताओं से बेहतर थीं। आर्य पूर्व सभ्यताओं के इतिहास के पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये सभ्यताएं भौतिक ज्ञान व धन में खूब बढ़ी चढ़ी थीं, इनकी तुलना में आर्य असभ्य ही कहे जा सकते हैं। पर आर्य गम्भीर चिन्तक व दार्शनिक निकले। इनके धर्म में आध्यात्मिकता की पुट थी। आर्य-अनार्य संघर्ष का फल था कि आर्यों की मूल सभ्यता में कालक्रमानुसार काफी परिवर्तन हुआ। हिन्दूधर्म और संस्कृति, कथा और विज्ञान पर हरप्पा-वासियों का प्रभाव है। इसी तरह ईरानी सभ्यता और साम्राज्य शासन पर सुमेर और असीरिया का प्रभाव है। ग्रीस में यवनों की सभ्यता ने क्रूट प्रायद्वीप की मिनोअन-सभ्यता से बहुत कुछ पाया है। आर्यपूर्व सभ्यताएं नष्ट नहीं हुई, वरन् विजयी आर्यों के जीवन और साहित्य पर छा गईं। हमारी सभ्यताएं आर्य-अनार्य सभ्यताओं का समन्वय के परिणाम हैं।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अष्टम् अध्याय

सामाजिक-धार्मिक सुधार की लहर

पिछले अध्याय में हम देख चुके हैं कि षष्टी शताब्दी ईसा से पूर्व आर्यों ने अपना साम्राज्य एशिया और योरप पर स्थापित कर लिया था। पर आर्य-अनार्य का लम्बा-संघर्ष, और आर्यों का पूर्ण विजय, आर्य-अनार्य सभ्यता व धर्मों का समन्वय और स्वाभाविक धार्मिक परिवर्तन ने बुद्धिवादियों (Intellectuals) में मानसिक क्रान्ति, और धर्म और समाज में सुधारों की आवश्यकता की परिस्थिति पैदा कर दिया। षष्टी शताब्दी ईसा पूर्व में यह फिज़ा यूनान, ईरान, भारत और चीन में एक समय ही उपस्थित हो गया। इस समय इन देशों में महान् चिन्तक और समाजसुधारक पैदा हुये, जिन्होंने विश्व को उच्च नैतिक सिद्धान्तों पर आधारित रखना चाहा। इस समय इन देशों में धार्मिक रूढ़िता, सामाजिक असमानता, और नैतिक ह्रास का बोलवाला था। इन स्थिर स्वार्थों के विरुद्ध महापुरुषों ने अपनी आवाज़ उठाई। इस समय भारत और ईरान में पुरोहितों का प्रभाव बहुत बढ़ गया था, और सैनिक-कुलीनवर्ग इससे विचलित थे। साधारण जनता भी पुरोहितों से परेशान थीं। समाज के भिन्न २ वर्गों में विरोधी भावनाएं उठ रही थीं। इस समय के महापुरुषों ने इस समस्या को सुलझाने की कोशिश की, और समाज व धर्म-व्यवस्था को इस तरह बदलना चाहा कि समाज प्रगतिशील रहे, नैतिक स्तर ऊंचा हो, और जन-कल्याण व धर्म के मार्ग सहल हों। सप्तमी-षष्टी शताब्दियों के धार्मिक और सामाजिक सुधार की लहरों के पृष्टभाग में उस काल का वर्ग-युद्ध और मानसिक असन्तोष ही था।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१
जरथुश्त्र और उसक सिद्धान्त

कालक्रम के अनुसार ईरान में ही धार्मिक सुधार का आरम्भ पहले हुआ। ईरानी सभ्यता प्राचीन ग्रामीण–सभ्यता, व इलम की नागरिक सभ्यता और आर्यों की सभ्यता के समन्वय का परिणाम था। इस सांस्कृतिक और धार्मिक समन्वय ने बौद्धिक क्रान्ति का वातावरण पैदा कर दिया। ईरानियों के धर्म में 'मेजी' (Megi) पुरोहित का बहुत प्रभाव था। पशुवलि व तर्कहीन यज्ञों का प्रचार खूब था। इन्द्रजाल, जादूगिरी और भूतविद्या धर्म के प्रमुख अंग बन गये थे। सैनिक–कुलीन वर्ग (Warrior-nobility, क्षत्रिय वर्ग) मेजी पुरोहितों की बढ़ती ताकत से क्षुब्ध थे। जनता इन सारहीन धार्मिक रीति-रस्मों को ढोती आ रही थी। विश्वास और बुद्धि का अभाव था। बौद्धिकों को यह पुरोहित-धर्म वीर असन्तुष्ट समाज असहनीय हो रहा था। इसी समय जरथुश्त्र (Zoroaster) का आगमन हुआ। मसीहा जरथुश्त्र का काल विवादग्रस्त है। कुछ विद्वान लोग आवेस्ता के कुछ गाथाएं जिनमें इस महापुरुषों के सिद्धान्त मिलते हैं ईसा से १००० वर्ष पूर्व मानते हैं। पर अधिकतर विद्वान जरथुश्त्र का समय ६६० ५८३ ई० पू० मानते हैं। जरथुश्त्र ईरान की दशा से बचपन से ही क्षुब्ध रहें, और बालिग होते दुनियां से विरक्त होकर ध्यान में लगे रहे; और तीस वर्ष की उम्र में जरथुश्त्र ने अपने धर्म का प्रचार शुरू किया। उन्होंने यह बताया कि अहुरमज्द संसार का बनाने वाला है, और विद्या का स्वामी। उसके विरूद्ध दैव या दानव (daimons) मोर्चा लिए हैं। अहुर-मज्द उजाला और अह्रमन अंधियारा के प्रतीक थे; एक पवित्रता व अच्छाई, का देवता था और दूसरा अपवित्रता व बुराई का शैतान। दुनियां दो भागों में बंटी थी, अच्छी और बुरी। जरथुश्त्र की शिक्षा थी कि लोग निशंक होकर शुद्ध व पवित्र जीवन बितावें इससे देवता उनसे खुश रहेंगे, और मरने के

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

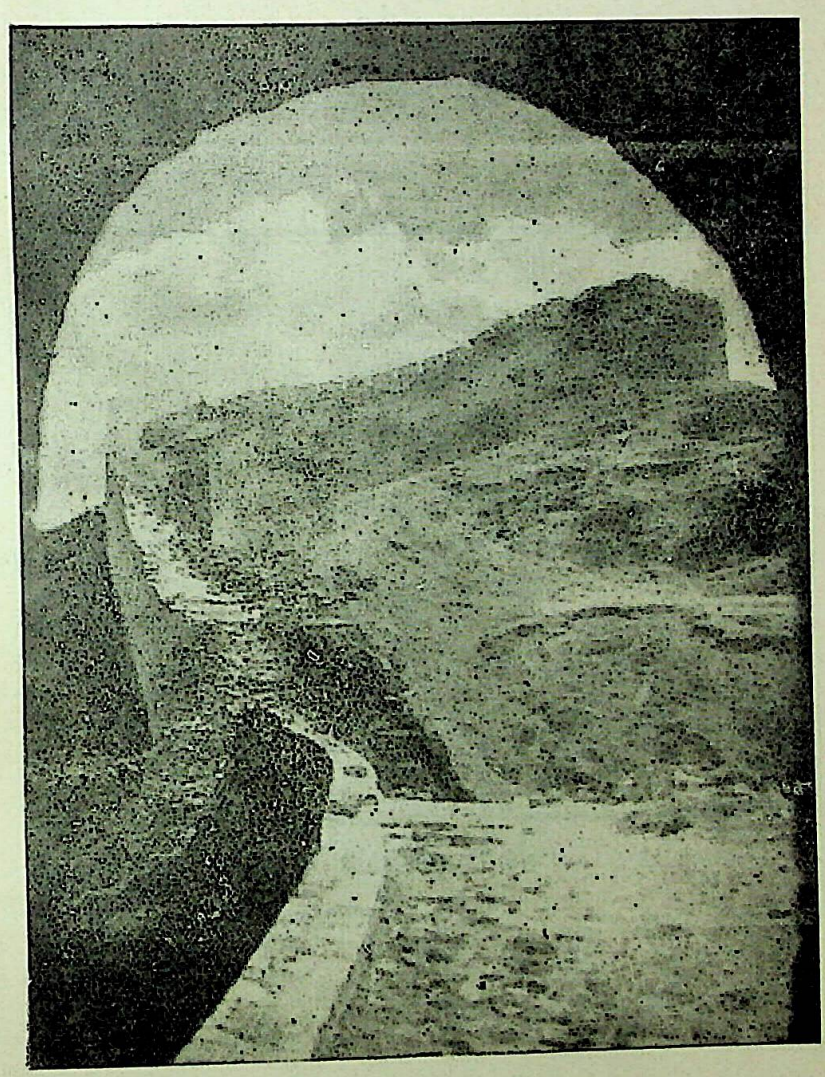

(पृ० १६०) China : The Great Wall

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मापचित्र ६

पर्शिया–साम्राज्य

(Facing Page 154)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाद उन्हें अच्छा परिणाम मिलेगा। अपने कर्मों का फल प्रत्येक मनुष्य को एक दिन भोगना ही पड़ेगा। सद्भाव या पुण्य (Goodness) और शठता या पाप (Evil) में बराबर युद्ध हो रहा है, और प्रत्येक मनुष्य को इस युद्ध में इस ओर या उस ओर भाग लेना है। जरथुश्त्र ने जनता को 'पुण्य' का साथ देने के लिए आवाहन किया। इस तरह इन नैतिक और अनैतिक सिद्धान्तों के पारस्परिक युद्ध को जरथुश्त्र ने प्रत्येक मनुष्य के जिन्दगी को संघर्ष से जोड़ दिया। इस तरह मनुष्य की जिन्दगी को नैतिक प्रयास की ओर बढ़ाया। अहुरमज्द की ओर से शैतानी प्रवृत्तियों से लड़ने का मतलब था पवित्र और धार्मिक जीवन व्यतीत करना, और इसका परिणाम था पृथ्वी पर स्वास्थ्य और वैभव की प्राप्ति, और मरने पर दूसरी दुनियां में अमरत्व। मनुष्य को अपने अच्छे या बुरे कर्मों का फल प्रलय के दिन (Last Day of judgment) भोगना ही पड़ेगा। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन पश्चिम एशिया में पहले पहल यहीं हुआ। यहूदियों और ईसाइयों ने इसे अपनाया।

धर्म का रूप

जरथुश्त्र का धर्म संसार के श्रेष्ट धर्मों में है। इस में रीति-रिवाजों का स्थान नहीं है। इन्द्रजाल (Magic) और जादूगिरी, भूत-विद्या और शास्त्रोक्तविधि (Rituals) को, जो धर्म के प्रमुख अंग बन गये थे, जरथुश्त्र ने अपने धर्म में कोई स्थान नहीं दिया। उनका धर्म सरल था और नैतिक सिद्धान्तों के आधार पर आश्रित। धार्मिक विश्वास सद्जीवन व्यतीत करने में उत्साहवधर्क होता है। न्याय और सत्य के लिए सद्विचार रखना और उत्साहयुक्त कर्म करना ही मनुष्य का कर्त्तव्य था। ये कितने सुन्दर और पवित्र सिद्धान्त हैं। अहुरमज्द की पूजा मंदिरों में नहीं होती थी, न उनकी मूर्ति की पूजा होती थी, और न अलंकृत वेदी ही बनाई जाती थी। खुले आसमान में ऊंची जगहों पर अहुरमज्द की पूजा होती थी; पवित्र विद्वान अग्निकुण्ड

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रज्वलित रखते थे। पृथ्वी (मिट्टी) जल, वायु और अग्नि पवित्र थे। इन्हें कोई किसी प्रकार दूषित नहीं करे, ऐसा उपदेश था। इसलिए मृतक शरीर को न जलाया जाता और न गाड़ा जाता था, उसे ऊंची जगहों पर चिड़ियों या गिद्धों के लिए छोड़ दिया जाता; गन्दी चीजों को नदी-नाले में नहीं फेंका जाता था; और अग्निकुण्ड के सामने पुजारी अपने मुंह ढांके रहते थे।

धर्म और समाज

जरथुस्त्र ने व्यापार की पेशा की निन्दा की, और कृषि की बहुत सराहना की। कृषक अहूरमज्द के प्रबल सैनिक थे। यह धर्म कृषकों का पोषक बना। कुलीनवर्ग (Aristocratic class) के सदस्यों को यह चेतावनी दी गई कि वे कृषकों के गाँव को न लूटें। उपवास की मनाही थी, क्योंकि इससे शारीरिक शक्ति का ह्रास होता था। अहुर-मज्द की शिक्षा यह थी कि कृषक कड़ी मेहनत करें, परिवार की वृद्धि करें। ईरानियन शब्द 'Paradise' का अर्थ ही है सुन्दर ढंग से सुरक्षित क्रीड़ा-बाग (Park)। कड़ी मेहनत का फल है 'स्वर्ग' जहाँ मनुष्य मौज कर सकता है।

यदि कृषकों को कड़ी मेहनत की शिक्षा दी गई, तो उच्चवर्ग (Nobility) कुलीनों को सैनिक योग्यता और पवित्र सिद्धान्तों को अपनाने को कहा गया। पाँच वर्ष से बीस वर्ष तक कुलीन शिशु वा युवक तीर चलाना, घोड़ा चढ़ना और सत्य बोलना सीखता था। उसकी शिक्षा तभी समाप्त होती जब वह अपने वर्ग के सिद्धान्तों को सीख चुका था और सभी वर्गों (Classes) के साथ दया और कोमलता से व्यवहार करना जान गया था। साहस सबसे श्रेष्ठ गुण था, कायरता सबसे निकृष्ट। सत्य बोलना प्रतिष्ठा का मूल-मंत्र था, और झूठ बोलना पाप था। वासना और कल्पित प्रेम के लिए कुलीनों को समय नहीं था। उनकी सच्ची वासना थी "सद्विचार, सद्शब्द, और सत्कर्म"। इसीसे

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति होती और अन्त में अमरत्व प्राप्त कर वे देवों की संगति प्राप्त करते थे।

अहुरमज्द समूची दुनियां का सम्राट् था। राजा और सामन्त (Nobles) को उसका विश्वास प्राप्त था, और उनका काम था दुनिया को पुनः नयी अवस्था में लाना। राजा पितृ-तुल्य था और देश में शान्ति स्थापित रखना और प्रजा की भलाई करना उसका कर्त्तव्य था। कुलीन-वर्ग उसे शासन और युद्ध में मदद करते थे। दूसरे देशों पर विजय का अर्थ था पवित्र अहुरमज्द का छोटे देवताओं या दानवों पर विजय।

जरथुश्त्र ने सन्यास धर्म की शिक्षा नहीं दी। उन्होंने जीवन म निराशावादी सिद्धान्त नहीं अपनाया। उनका विचार था कि सांसारिक आनन्द, इन्द्रिय-सुख मनुष्यों के लिए उचित है। पर मनुष्य को बराबर उस मेहनत (Labour) का ध्यान रखना चाहिये जिसके कारण सांसारिक सुख मिल सका है। इसलिए मजबूत और साहसी पुरुष योग्य हैं, कमजोर नीच।

जरथुश्त्र ने धर्म का सरल रूप दिया। जनसाधारण को नैतिक गुणों पर चलने को कहा। उस समय अनैतिकता, धर्मान्धविश्वास व सारहीन विधियों (rituals) का बोलवाला था। जरथुश्त्र ने इनके विरुद्ध आवाज उठाई, और धर्म का पुनर्संगठन किया, नैतिक सिद्धान्तों पर अधिक जोर दिया। वह नये धर्म के संस्थापक नहीं वरन् प्राचीन धर्म के असली रूप को पुनर्जीवित करने वाले थे। समाज में उच्छृंखलता फैली थी, और भिन्न २ वर्गों के निजी स्वार्थों में विरोध था। उच्चवर्ग व सैनिकों के द्वारा निरीह कृषक सताए जाते थे। धूर्त वणिकों का प्रभाव बढ़ रहा था। कृषकों का पेशा खराब समझा जा रहा था। उत्पादन स्वभावतः कम रहा था। जरथुश्त्र ने समाज व अर्थ व्यवस्था के इन रोगों को देखा। उन्होंने समाज का नवनिर्माण नये सिद्धान्त पर नहीं किया;

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्गों का अन्त करके वर्गविहीन समाज की नींव नहीं डाली। समाज में वर्गों का अस्तित्व और उनकी विशेष सुविधाएं थीं। उन्होंने वर्ग-विभेद समाज में वर्गों के पारस्परिक हितों और कर्त्तव्यों में न्याय और औचित्य का सिद्धान्त अमल में लाने की शिक्षा दी। विभिन्न वर्गों को अपने निजी-स्वार्थों की रक्षा करते हुये वर्ग-सामञ्जस्य का सिद्धान्त अपनाने को कहा। वर्ग-वैमनष्य के स्थान पर उन्होंने वर्ग-सहयोग का पाठ पढ़ाया। वह नये समाज को नये सिद्धान्त पर स्थापित करने वाले नहीं थे, वरन् पूर्व वर्ग-व्यवस्था के अन्तर्गत ही समाज में नियन्त्रण चाहते थे, जिससे समाज में शान्ति और आर्थिक प्रगति हो, उत्पादन बढ़े। पुरोहित, जनता, किसान, और सैनिक व कुलीनों को जरथुश्त्र ने सरल पूजा, कृषि का आदर्श, कुलीनों की उत्तम शिक्षा और न्यायी राज-शासन के सिद्धान्त पर मिलाया।

उनके धर्म का ईरान में खूब प्रचार हुआ। ईरान का शाहंशाह गुश्ताप्प इस धर्म को मानने लगे और यह धर्म राष्ट्रीय धर्म और राजधर्म बन गया। गुस्तास्प का धर्मपरिवर्तन जरथुश्त्र धर्म के लिए उतना ही महत्वपूर्ण है जितना बौद्धधर्म के लिए मगध सम्राट् अशोक का धर्म-परिवर्तन। पर जरथुश्त्र को धर्मप्रचार में कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। ईरान के बादशाह गुस्तास्प के धर्मपरिवर्तन से तूरान का राज अरजेतास्प, जिसने जरथुश्त्र के धर्म को मानने से इन्कार कर दिया था, बिगड़ गया। ईरान-तूरान में घमासान युद्ध हुआ। जरथुश्त्र ने स्वयं ही ईरान के बादशाह को तुरानी सल्तनत का विरोध करने के लिए उत्साहित किया। युद्ध ५८३ ई० पू० तक चलता रहा। काफी खून खराबी हुई। अन्त में जरथुश्त्र-धर्म की जीत हुई। पर महात्मा मर चुके थे। इस तरह इस पवित्रधर्म के फैलाने में युद्ध भी करना पड़ा। सद्धर्म के लिए युद्ध करना जरथुश्त्र की शिक्षा का एक अंग था। इस धर्म के कारण समाज में नयी स्फूर्ति आई, राज-शक्ति बढ़ी, और राजशासन प्रजा का हितचिन्तक बना। जरथुश्त्रधर्म से प्रभावित ईरानी सभ्यता का रूप आशावादी रहा। जरथुश्त्र को यह विश्वास

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था कि मनुष्य को इस पृथ्वी पर आराम व सुख हो, यह अहुरमज्द को प्रिय है। उचित श्रम, ज्ञानपिपासा, युद्ध में साहस—इन गुणों पर अहुरमज्द का विजय निश्चित है। दुनियां को पहले से सुन्दर, और पहले से अधिक सुशासित बनाने वाले मनुष्य को स्वर्ग का आनन्द प्राप्त होता है। पर यह सब चीजें अस्थायी हैं; पर जरथुश्त्र के नैतिक सिद्धान्त और व्यक्तिगत जीवन में पवित्रता व सच्चाई पर जोर प्रत्येक देश और काल के लिए स्तुत्य और मान्य हैं। उनके मरने के बाद भी उनका धर्म चलता रहा। हिन्दुस्तान के पारसी इसी धर्म को मानते हैं। विश्व-इतिहास में जरथुश्त्र के प्रति वही आदर और स्थान है जो कि धर्म सुधारक महात्मा बुद्ध, कन्फ्यूशिअस् और सुकरात (Socrates) के लिए सुरक्षित हैं।

२
चीन

संसार के अति प्राचीन सांस्कृतिक केन्द्रों में चीन एक है। चीन की विशेषता यह है कि जब अन्य प्राचीन संस्कृतियां प्रायः नष्ट ही हो गईं, या उनका रूप एकदम बदल गया, चीन की सभ्यता अभी भी लगातार चलती आ रही है। जब सुमेर, असीरिया, प्राचीन मिश्र, व सीरिया का या तो नामोनिशान मिट गया या उनकी वर्तमान सभ्यता और प्राचीन संस्कृति में सम्बन्ध प्रायः नहीं ही है, चीन अमर है और चीन की सभ्यता दीर्घायु। चीन का समाज और जनता का दृष्टिकोण बहुत अंशों में प्राचीन ही हैं; यहां हम भारतवर्ष और चीन म समानता पाते हैं। हजारों वर्ष से आती हुई सभ्यता व संस्कृति अभी इन दो देशों में जीवित हैं।

चीन की सभ्यता का दीर्घायु और सदा एक रूप होने के कई कारण बतलाए जाते हैं। प्रकृति ने चीन को संसार से अलग रखने का यत्न किया। चीन के पूर्व ऊँचे पहाड़ हैं, और इन पहाड़ों से हुआंग, यांग्तजी, और सी नदियां निकली। इन नदियों की कांठे में सभ्यता पनपीं। पश्चिम में ये उपजाऊ घाटियां समुद्र के किनारे की जमीन

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से मिल जाती हैं, पर प्राचीन काल में समुद्र और इन कांठों (Valleys) के वीच भीषण दलदल और वड़े-वड़े जंगल, मरुभूमि और चारागाह थे। चीन से पश्चिम एशिया और भारतवर्ष जाने के लिए रास्ते दुर्गम थे। वर्षाकाल में एक रास्ता यांग्तजी नदी और पहाड़ों और जंगलों से होकर निकलता था; दूसरा अलताई पर्वत के पश्चिम ओर जुंगरेथिन दर्रा के पूर्व से निकलता था, और तीसरा मार्ग तरिम-जलाशय (Tarim Basin) से होते हुये पामीर-दर्रों की ओर जाता था। भारतवर्ष और मध्यएशिया जाने का यही रास्ता अधिकतर अपनाया जाता था, खासकर जब वर्षा काफी होती थी। वाहरी दुनियां से चीन का सम्बन्ध कठिन मार्गों से ही हो सकता था, इसी का एक परिणाम यह था कि चीन की सभ्यता बहुत अंशों में एकान्तवास में पनपीं। इस सभ्यता का स्थायी और एक रूप होने का यह प्रमुख कारण है। चीन का पृथकत्व इतना काफी था कि उसकी सभ्यता का विकास अविच्छिन्न रहा। यह ठीक है कि जब मध्य एशिया में जातीय उथल-पुथल हुआ तब उत्तरी राह से कुछ लोग उत्तर चीन में घुस आते थे, या मौंगोलिया के असभ्य कभी २ चीन पर टूट पड़ते थे। पर ये जातियां अन्त में चीनियों में विलुप्त हो जातीं, और विदेशीय वस्तु व भाव को चीनी अपनी सभ्यता में पूरी तरह पचा लेते थे। उनकी स्वदेशीय सांस्कृतिक परम्परा में कुछ फर्क नहीं पड़ता था।

चीन गरीब देश है। जंगलों, पहाड़ों से परिपूर्ण यह देश बाढ़ (flood) के प्रकोप से भी बराबर परेशान रहा हैं। नदियों की तंग घाटी में अन्न उपजाए जाते थे, पर कृषिकार्य बड़ा ही कठिन था। हुआंगनदी की लाई हुई पीली मिट्टी बहुत उपजाऊ थी। इस पीली मिट्टी के खेत को तालाब, दलदल इत्यादि से निकालने में सतत प्रयत्न की आवश्यकता पड़ती थी। पर कृषि की सफलता आसान नहीं थी। गर्मी की मौसम में अंधड़ और अनावृष्टि का भय

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मापचित्र ७

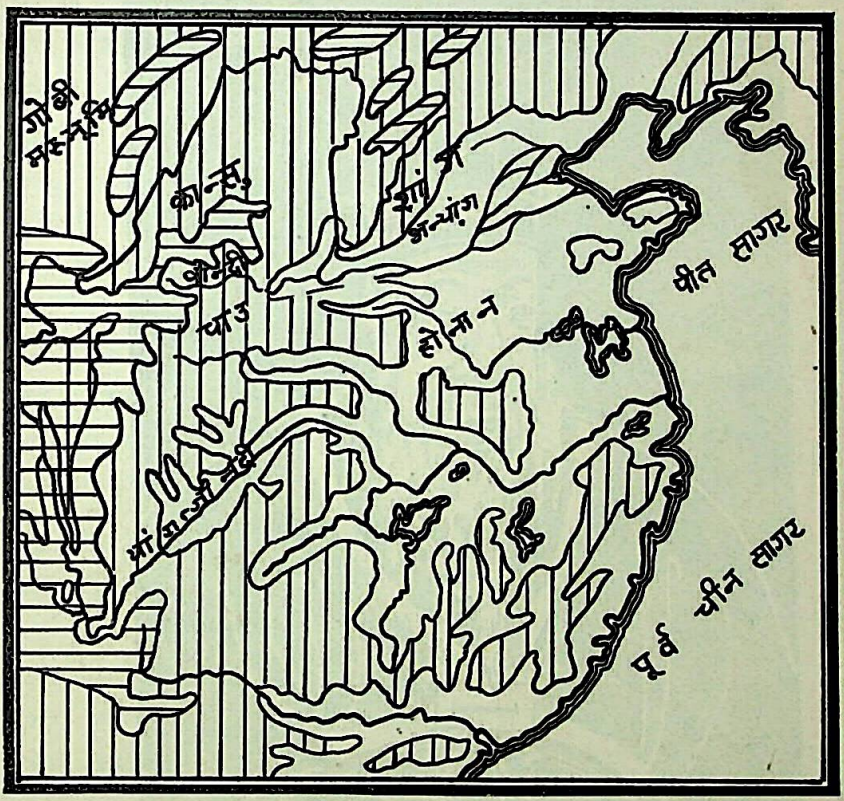

(Facing Page 166) प्राचीन चीन

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र २१ (अ)

(पृ० १७२) कन्फूसिअस्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहता, और कभी टिड्डियों का आक्रमण भी होता था। शीतकाल में बहुत अधिक ठंढ पड़ता, और वसन्त में बाढ़ का भय बना रहता है। इसलिए चार-पांच महीने में ही अति परिश्रम कर बेचारे किसान एक फसल काट लेते थे, और इसी से इनकी जीविका चलती थी। चीन में खनिज पदार्थों का अभाव ही है। इसलिए चीन की प्राकृतिक साधन इतने न्यून थे कि यह किसानों का देश ही रह सका। यहां के किसान बैल की तरह खट कर काम करते और अपना पेट किसी तरह पाल सकते थे। गरीब किसानों की सभ्यता स्वभावतः एकसम और टिआऊ रही।

चीन का इतिहास बहुत पुराना है। किसी भी देश का सिल-सिलेवार इतिहास इतना पूर्ण और पुराना हमें नहीं मिलता। ग्रामिक-सभ्यता के आधार पर यहां भी कई क्षेत्रों में नागरिक-सभ्यता विकसित हुई। सभ्यता लगातार विकसित होती रही। चीन की प्राचीन नागरिक सभ्यता हूयांग-काठें में शाङ्ग वंश के समय में पनपी। इस क्षत्र की खुदाई से हमें प्राचीन राजधानी शाङ्ग शहर (the Great City Shang) का पता चला है। इस समय गेहूं की फसल होती थी, कांसे का प्रयोग होता था, और रथों का व्यवहार होता था। इस सभ्यता का आर्थिक आधार था कृषि और कुछ उन्नत शिल्प (crafts)। शाङ्ग-युग में सरल ग्रामिक जनता के ऊपर एक सैनिक सत्ताधारी वर्ग की उत्पत्ति हुई और एक सबसे प्रमुख सरदार की हुकूमत छोटे सरदारों पर कायम हुई। इस समय भविष्यवाणी पर बहुत विश्वास किया जाता था, और पुरोहित लोग बलि हुए पशुओं के गुर्दे पर के निशान को पढ़ कर ईश्वर का संदेश समझाते थे। अतः सत्ताधारी वर्ग और पुजारीवर्ग में घनिष्ट सम्बन्ध था।

पहाड़ी जातियों ने उत्तर-पश्चिम से हर सभ्य इलाकों पर हमला करना आरम्भ कर दिया, और शांगवंश का ११२५ ई० पू० के लगभग अन्त हो गया, और चाऊ राजवंश की स्थापना हुई, और वह २२५ ई०

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पू० तक कायम रहा। इनकी शक्ति का केन्द्र वाइ नदी की घाटी (Wei Valley) थी, और इन्होंने हुआंग-काठें को एक राज-सूत्र में बांधा। इस समय जागीरदारी प्रथा (feudalism) का खूब प्रभाव था। चाऊ राजाओं ने जागीरें सिर्फ अपने साथियों को ही नहीं दिया, बल्कि पुराने सेनापतियों और बचे हुये शांगकुलोनों को भी दिया। इस तरह सैनिकवर्ग, जिसका आरम्भ शांगयुग में ही हुआ था, इस युग में बहुत संगठित हो गया। धर्म और कुलीनवर्ग (aristocracy) में घनिष्ट सम्बन्ध था। चाऊ-राजा पुरोहित भी था। राजपरिवार में बहुविवाह- था का प्रचार था। राजा व राजकुमार रखेलियां भी रखते थे। उनके पुत्रों में वैमनष्य स्वाभाविक था। इसलिए गृहयुद्ध बराबर होते रहे। पर इन युद्धों के बावजूद चाऊ-युग चीन की सभ्यता के इतिहास में स्वर्णयुग समझा जाता है। राजा ईश्वर का पुत्र (Son of Heaven) माना जाता था। उसकी अवज्ञा करना पाप था। पर राजा का धार्मिक कर्त्तव्य था कि वह प्रजा की भलाई करे। इसीलिए तो वह देश का प्रमुख पुरोहित भी था, और ईश्वर और देवताओं को खुश रखना उसका काम था। सैनिक-कुलीनवर्ग राजसत्ता के सर्वेसर्वा थे, पर उन्हें भी जनता की भलाई का ध्यान रखना पड़ता था। प्राचीन चीनियों का यह विश्वास था कि पूर्वजों की प्रेतात्माओं को प्रसन्न रखकर देश व समाज की रक्षा व उन्नति किया जा सकता है। इसलिए पितरों की पूजा करना धार्मिक कर्त्तव्य था। पर इस काम के लिए भी राजा और कुलीनवर्ग के प्रत्येक सदस्य की जिम्मेवारी अधिक थी। प्रत्येक कुलीन के धार्मिक कर्त्तव्य थे।

चाऊ युग में राज की कई संस्थाएं विकसित हुईं। राजा ईश्वर का भेजा हुआ था। पर वह ईश्वर-नियुक्त तभी तक था जब तक कि वह अपनी शक्ति प्रजा की भलाई में व्यय करता था। इस सिद्धान्त का हुआनिया अर्थ निकला। क्योंकि राजा की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियुक्ति ईश्वर ने की थी, और वह देवपुत्र था, इसलिए राजा दैवी-शाशक हो गया। उस पर कोई वैधानिक व व्यवहारिक रोक नहीं लगाई जा सकती थी। पर राजा यदि जनता की भलाई करने में चूक गया हो तो वह देवपुत्र के आसन से गिर पड़ता था और तब प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य था कि वह राजा के विरूद्ध इस धर्मयुद्ध में भाग लेकर ऐसे राजा को दण्ड दे। अतः चीन के राजनीतिक उलट-फेर व समाज की स्थिति का आधार धार्मिक ही रहा। इस युग में कुलीनवर्ग कई निश्चित क्रमों में बँटा था, और प्रत्येक के अधिकार व कर्त्तव्य निश्चित थे। किसान के प्रत्येक परिवार को भूमि से अपना भाग मिल जाया करता था। किसान कड़ी मेहनत करते और कुलीनवर्ग शासन करता था। कुलीनों की शक्ति अस्त्र-शस्त्रों के एकाधिपत्य पर आधारित थी। सिर्फ उनके पास ही रथ, घोड़े व कांसे के हथियार थे। राजा को युद्ध में सहायता देने के बदले इन्हें जागीर मिलतीं थी, जिसमें वे किसानों के द्वारा खेती कराते थे। कुलीनों को अपने वर्ग के निश्चित नियमों का पालन करना पड़ता। सामाजिक जीवन में शिष्टाचार के नियमों को मानना जरूरी था। किसान कड़ी मेहनत करते थे, पर जमीन पर उनका कोई अधिकार नहीं था। वे स्वयं जागीरदारों के गुलाम थे, और उनको कर देने के पश्चात् इन किसानों को पेट पालने के सिवा शायद ही कुछ और बचता था।

योग्य और धार्मिक राजा, नियमबद्ध कुलीनवर्ग का शासन, और मेहनती किसान चाऊ-युग के स्वर्णयुग के निर्माता थे। पर ईसा से सांतवी-आठवीं शताब्दी पूर्व राजा की शक्ति को जागीरदारों ने कम करना शुरू कर दिया और अन्त में राजा उनका खिलौना बन गया, देश हजारों जागीरदारों में बंट गया, और प्रत्येक जागीरदार निरकुंश व स्वच्छन्द शाशक बन बैठा। राजा की शक्ति का ह्रास का परिणाम यह हुआ की जागीरदारी प्रथा का संगठन टूट गया। सामाजिक परम्परा का नाश हो गया। आपसी झगड़े बढ़ गये।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जागीरदारों की संख्या परस्पर के खूनी झगड़े के कारण कम हो गई। समाज में अव्यवस्था फैल गई। कुलीन शिष्टाचार के नियमों को भूल गये। किसान मेहनत से जी चुराने लगे। पारस्परिक झगड़ों के कारण कृषि का खूब नुकसान हुआ। नैतिकता का पूर्ण ह्रास था। लोहा का व्यवहार इसी समय होने लगा, और इस कारण नयी सामाजिक और आर्थिक स्थिति पैदा हो गई। दीवालों से घिरे हुए शहरों की संख्या बढ़ गई। दलदल से उपजाऊ जमीन निकाली गई। व्यापार की वृद्धि हुई। धन की वृद्धि के साथ साथ राज्यों में पारस्परिक सम्बन्ध बहुत होने लगा। जमीन के लिए युद्ध होने लगे। इन युद्धों में नैतिकता व वीरता के नियम का उल्लंघन होता रहा। चारों ओर अव्यवस्थता थी। जागीरदारी प्रथा की बुराइयों का चरमोत्कर्ष था।

ऐसे समय में लेखक व चिन्तक चाऊ युग के प्रथम वर्षों के सुनहले दिन, जगीरदारी प्रथा के गुणों को याद करने लगे। अतीत के दिन स्वर्णिम लगने लगे, और उनकी किताबों में, जैसे शिह चिन्ग (Book of Poetry) में "अच्छे दिन बीत गये", इसी भाव का पुनरावृति पाते हैं। ऐतिहासिक ग्रन्थ बीते हुये सुनहले दिनों की याद दिलाते हैं।

चाऊ राजपद्धति का विशृंखल होने के कारण आर्थिक व सामाजिक परिवर्तन थे। नगरों की वृद्धि हो रही थी पर इनमें पारस्परिक युद्ध की भी वृद्धि हुई। इस कारण समाज का आधार क्या हो इस पर ही संदेह होने लगा। नये विचार व नयी जागृति की उत्पत्ति हुई। इस कार्य में लेखकों ने ही नेतृत्व किया। वे एक शहर से दूसरे शहर जाते थे, और यह कहते थे कि चीन एक है, और सारे चीन में सामाजिक व्यवस्था और स्थिरता लाई जाय। उन्होंने समाज के कुलीनों को नहीं, जिन्होंने पूर्व परम्परा में शिक्षा पाई थी, वरन् व्यापारियों और उद्योगपतियों को शिक्षा देना आरम्भ किया। कई जागीरदारों ने इन ज्ञानपिपासिकों या समाज के सुधारकों को कुचलने की कोशिश की,

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनकी लिखी पुस्तकों पर रोक लगाई गई। पर शासन में बिना इनके काम भी नहीं चल सकता था। इन बुद्धिजीवियों को शासन में भाग दिया गया। अतः शासन के अनुभव और सामाजिक व्यवस्था के आधार की कल्पना ने इन बौद्धिकों के दर्शन (Philosophy) को प्रभावित किया।

इन दार्शनिक चिन्तकों में कन्फूसिअस् (Confucius) सबसे प्रमुख हैं। इनका जन्म ५५१ ई० पू० हुआ था, और मृत्यु ४७८ ई० पू०। कन्फूसिअस् के पिता ने वृद्धावस्था में एक तरूणी युवती-कन्या से व्याह किया था। इसी स्त्री ने महापुरुष कन्फूसिअस् को जन्म दिया। अपने युग के कुशासन से वे बहुत क्षुब्ध थे। समाज में नैतिकता की कमी उन्हें बहुत खलती थी। अनियन्त्रित सामन्तशाही की बुराइयों से वह पूरी तरह अवगत थे। कन्फूसिअस् कुलीन वंश के थे, और लू नामक एक छोटे राज में उच्च कर्मचारीके पद पर आसीन हुये थे। वे एक जिला शासक बन गये और फिर प्रधान न्यायाधीश। शासन में उन्हें अच्छी सफलता मिली। फिर वे प्रधान मंत्री भी बन गये। यहीं उन्होंने एक उच्च विद्यालय (Academy) खोला जहां लोगों को ज्ञान दिया जाता था। कन्फूसिअस् देश की अव्यवस्थता से बहुत दुखी थे, और इस परिस्थिति को दूर करने के लिए उन्होंने व्यावहारिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया।

उनका यह विश्वास था कि एक आदर्श व्यक्तित्व के सरंक्षण में देश सुधर जायगा और इसलिए वे एक राज से दूसरे राज इस आदर्श व्यक्ति की खोज में भटकते रहे। वे समाज के वर्गीकरण को मानते थे। कुलीनवर्ग श्रेष्ठ है, इसका उन्हें विश्वास था। आदर्श राजा और नियमबद्ध कुलीन-वर्ग ही अतीत का स्वर्णयुग ला सकेंगे ऐसा उनका दृढ़ विचार था। उनका कहना था कि यदि राजा अपने मंत्रियों के सामने आदर्श जीवन बरतेगा तब मंत्री जनता के सामने आदर्श बने रहेंगे और

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारे देश में शान्ति और पुण्य फैलेगा। नियम या विनय (Discipline) पर वे बहुत जोर देते थे; प्रत्येक मनुष्य के सभी काम निश्चित नियम के अनुसार होना चाहिए। उनकी यह कोशिश थी कि समुचित नियमों के पालन कर के मनुष्य उचित नागरिक बन जाय। इसलिए उन्होंने नियम बनाए, क्या खाना चाहिये, कैसे रहना चाहिए, सड़क पर स्त्री-पुरुष किस प्रकार चलें, यहां तक कि कब्रों या मुर्दे के बक्स का क्या माप रहे, यह भी उन्होंने बताया है : अर्थात् मनुष्य के जीवन के सभी अंग नियमवद्ध रहें। कन्फूसिअस् के धर्म का मूल सिद्धान्त था 'औचित्य (Sense of propriety)। उनका यह विचार था कि सभ्य और असभ्य में यही फर्क है कि सभ्य जानते हैं क्या उचित है, क्या नहीं; असभ्य को इसका पता नहीं। 'औचित्य' का ज्ञान प्रत्येक मनुष्य को स्वयं अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ रहने से ही हो सकता है। उसे विनम्र और भद्र रहना चाहिये। वह अपने से बड़े-बूढ़े के प्रति आदर का भाव रक्खें, पूर्वजों की पूजा करें, और माँ-बाप को वृद्धकाल में सहारा दें। प्रत्येक मनुष्य में ये गुण होने चाहिये : (क) मानसिक शुद्धता, (ख) उचित आचरण, (ग) संस्कारों व धार्मिक रीतिओं का ज्ञान, (घ) दान, (ङ) सद्विश्वास। उनका यह सिद्धान्त था कि यदि राजा-मन्त्री, पिता-पुत्र, स्त्री-पुरुष, अग्रज-अनुज और मित्रों के पारस्परिक सम्बन्ध उपरोक्त गुणों के आधार पर स्थित हों, तब देश का कल्याण निश्चित है। कन्फूसिअस् के उपदेश आज करीब २५०० वर्षों से चीनियों के चरित्र निर्माण कर रहे हैं। आज भी कोई चीनी यह कहने का दुःसाहस नहीं कर सकता कि चरित्र बल में वह कन्फूसिअस् से आगे है। कन्फूसिअस् ने अपने जीवन का लक्ष्य एक आदर्श चरित्रवान् पुरुष की जिन्दगी रखी थी और इस पथ पर वह विपत्तियों के बावजूद दृढ़ रहा। सद्विचार उनकी जिह्वा पर बराबर रहते थे। सौहार्द, विनय, दानशीलता, सच्चाई, साहस और दूसरों के प्रति आदरभाव के वे साक्षात् उदाहरण थे। ऐसे पवित्र

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानोपदेश कन्फूसिअस् ने अपने समकालीन लोगों को ही नहीं दिया बल्कि उनके ये उपदेश आजतक बराबर ही चीनी बच्चों व जवानों के कान में पड़ते रहे हैं। चीनी चरित्र में जो व्यावहारिक सदाचार की पुट है वह कन्फूसिअस् की देन है।

कन्फूसिअस् ने कोई नया धर्म नहीं चलाया, न नये समाज की सृष्टि की, और न नयी दिशा की ओर इंगित किया। कन्फूसिअस् ने बराबर यह कहा कि वे कोई मूल चिन्तक नहीं है और उनका दर्शन प्राचीन विद्वानों के उपदेश पर आधारित है। वे आनेवाले युग के मसीहा नहीं थे। उनका ध्यान चाऊ-युग के बीते स्वर्णयुग पर टिका था। उनका आदर्श था कि देश और समाज फिर चाऊ-युग में वापस लौट जाय; तब समाज-व्यवस्था और राजशासन में वर्त्तमान बुराइयों का पता नहीं रहेगा। इस दृष्टिकोण स कन्फूसिअस् प्रतिक्रिया-वादी हैं। पर उनके नैतिक-सिद्धान्त अमर हैं, और सब युग के लिए ग्राह्य हैं। वैयक्तिक पवित्रता और पारिवारिक सामञ्जस्य पर ही सामाजिक स्थिरता सम्भव है, इन सिद्धान्तों के द्वारा कन्फूसिअस् ने विशृंखल समाज में शान्ति और नियम का पाठ पढ़ाया। प्रत्येक वर्ग, प्रत्येक मनुष्य का समाज में निश्चित स्थान है। उसके कर्त्तव्य हैं, और अधि-कार भी। अतः सबों का यह धर्म है कि अपना कर्त्तव्य और दूसरे के अधिकार की रक्षा करें। वर्गों में बँटा हुआ समाज इस प्रकार के आत्मनियन्त्रण के बिना नहीं चल सकता। कन्फूसिअस् ने यह भी समझा कि इस व्यवस्था में राजा का विशिष्ट स्थान है। उनका यह विश्वास था कि अच्छाई छूतक होती है, पर समाज की ऊँची चोटी से ही यह सुधार नीचे आ सकेगा। उनका कहना था कि यदि राजा की आकांक्षाएं शुद्ध और प्रजाहितकारी होगीं, तब जनता भी सच्चरित्र होगी। ऊँचे तपके के लोगों का नैतिक चरित्र वायु है, और निम्नस्तर के लोगों का चरित्र घास है। जब घास पर हवा बहेगी तब घास नवेगा, याने नम्र और विनयी होगा। अतः उनका सिद्धान्त था कि जैसा राजा वैसी प्रजा (यथा राजा

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा प्रजा) न कि जैसी प्रजा वैसा राजा (पश्चिमी सिद्धान्त)। इसलिए राजभक्ति की शिक्षा उन्होंने दी। पर प्रत्येक ऐरे-गैरे राजा कन्फूसिअस् के काम के नहीं थे। वे ऐसे राजा की तलाश में थे जो उसके सिद्धान्तों का पालन कर सके और सामाजिक सुधार ला सके। उनका यह कहना था कि राजा एक मामूली आदमी था जिसे भगवान ने पृथ्वी पर अपना कारिन्दा चुना। जनता ईश्वर की सन्तान थी। राजा प्रजा के लिए बना था, और यदि वह अत्याचारी निकला तब जनता के लिए उसका अन्त करना धार्मिक कर्त्तव्य था। उनके विचार में इस प्रकार का अत्याचारी राजा बाघ से भी अधिक क्रूर है। ऐसी राज्यक्रान्ति समाज के लिए आशीर्वाद थी। योग्य राजा प्रजा को उचित शिक्षा देकर उचित और नियमित शासन, स्थापित कर सकता था। इसलिए उचित शिक्षा पर इन्होंने बहुत जोर दिया। गुण न कि वंश पर शिक्षा पाने का हक निर्भर करता था। राजा को प्रजा पर अधिक कर न लगाना चाहिए। राजा को जनता की उन्नति के लिए सतत तत्पर रहना था। जमीन को लोगों में न्याय पूर्वक बांटना वा सार्वजनिक उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करना, कन्फूसिअस् के विचार थे। कन्फूसिअस् लाउन्से के विपरीत संसार की सेवा करने का उपदेश देते थे, जीवन सुख का आनन्द उठाने कहते थे।

कुछ समय के लिए यहां-वहां कन्फूसियस् राजशासन में भाग ले सके। पर राज शासन का पूरा भार काफी दिनों तक उन्हें नसीब नहीं हुआ, और वे निराश ही रहे कि उनकी योग्यता का उचित प्रयोग नहीं हुआ। वे कहा करते थे कि यदि उन्हें एक वर्ष के लिए मौका मिले तो देश का सुधार आरम्भ हो जाय और तीन वर्ष में यह काम पूरा हो जाय। पर उनकी इच्छा दिल ही में रह गयी और उन्हें मृत्यु का शिकार बनना पड़ा।

वे एक पद्य बराबर दुहराते थे जिसका अर्थ यह था कि ऊँचे पहाड़ जरूर दरदराएंगे; मजबूत शहतीर टूटेगी, और बुद्धिमान मनुष्य एक पौधे की तरह नष्ट हो जायगा।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाउ-त्से

चीन की अव्यवस्था व नैतिक पतन से लाउ-त्से को बहुत धक्का लगा। वे चाऊ वंश के शाही पुस्तकालय के अध्यक्ष थे। बहुत पढ़ने और सोचने के बाद उनका यह विचार हुआ कि मनुष्य को संसार के सुख-दुख से विरक्त रहना चाहिए, और पहले का सादा जीवन, (जो कि वास्तविक में कल्पित था) अपनाना चाहिये। उनके विचार व लेख रहस्यमय होते थे। मनुष्य को प्राकृतिक जीवन बिताना चाहिए, और इसलिए सभ्यता की कृतिमता से दूर रहना चाहिये। लाउ-त्से और उनके अनुयायी राज में विश्वास नहीं करते हैं। उनके ख्याल में जितने अधिक कानून रहेंगे उतनी ही अधिक चोरी और डकैती होगी। इसलिए उनका दर्शन का सिद्धान्त था 'कुछ न करो'। यह निराशावादी सिद्धान्त था और इसका प्रभाव चीन की जनता पर पीछे चल कर बुरा ही हुआ। बौद्ध-दर्शन और लाउ-त्से के सिद्धान्त में काफी मेल है।

३

भारतवर्ष

सामाजिक व नैतिक अवनति व अव्यवस्था के विरुद्ध जरथुस्त्र और कन्फ्युसिअस् ने ईरान और चीन में आवाज उठाई। दोनों महापुरुषों ने प्राचीन परम्परा को ठुकराया नहीं, वरन् उसे फिर से स्थिर करने की चेष्टा की, उसे तर्क का आधार दिया, और उस व्यवस्था में जो बुराई आ गई थीं, उसे दूर करने की चेष्टा की। इसी समय भारतवर्ष में भी बौद्धिक क्रान्ति हो रही थी। वेदकालीन सरल धर्म यज्ञों व शास्त्रपद्धतियों से इस तरह जकड़ दिया गया था कि धर्म का सार तो मिट चुका था, और बाहरी आडम्बर को ही अधिक महत्व दिया जाने लगा था। यज्ञ और पशुओं की बलि धर्म के प्रधान अंग बन गये थे। लोगों में इनके प्रति अन्धविश्वास था। ब्राह्मणवर्ग की श्रेष्ठता जन्म पर आधारित थी। यज्ञ व धर्मपुस्तकें संस्कृत में थीं, और यज्ञकर्म भी संस्कृत भाषा में ही सम्पन्न होता था। लोग बिना

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझे-बूझे धार्मिक रीति-रिवाज यन्त्रवत् मानत आ रहे थे। उन्हें यह विश्वास दिलाया गया था कि धार्मिक उन्नति और देवताओं के प्रसन्न करने के लिए ये अत्यावश्यक हैं। गर्भाधान से लेकर मृत्यु के बाद तक प्रत्येक मनुष्य के जीवन में यज्ञों का तांता लगा रहता। इनमें काफी खर्च भी होता था, और इन यज्ञों व शास्त्रपद्धति के अनुसार रीति-रिवाजों का अत्याधिक महत्व देने के कारण, नैतिक सिद्धान्त और बौद्धिक विकास साधारण मनुष्य के लिए गौण हो गये। ब्राह्मणों का धर्म पर ही नहीं, समाज और राजनीति पर भी बड़ा प्रभाव था। यज्ञों पर ही राजा का राज और प्रजा का सुख निर्भर करता था, और यज्ञों के लिए ब्राह्मणों की आवश्यकता अनिवार्य थी। ब्राह्मणों के बढ़ते हुये प्रभाव का कारण था वर्ण-व्यवस्था। हिन्दू चार वर्ण में विभक्त थे—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। पर वर्ण-व्यवस्था दैवी थी, इसलिए इसकी उपेक्षा पाप समझा जाता था। इसमें ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ था और राजा को उसपर निर्भर करना पड़ता था। ब्राह्मणों का यह अधिकार राजसी क्षत्रियों को जरूर खलता होगा। पशुओं की बलि, और यन्त्रवत् शास्त्रपद्धति और रीतिरस्मों का अनुसरण भावुक और तार्किक मनुष्यों को बेकार मालूम होता था। ब्राह्मणधर्म के इस रूप का विरोध हम उपनिषदों में पाते हैं। इनमें कर्म न कि यज्ञानुष्ठान पर मनुष्य का भविष्य निर्भर करता है, इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया। अहिंसा के महत्व पर प्रकाश डाला गया। यज्ञ व पशुबलि की सार्थकता पर संदेह किया गया। इस समय ब्राह्मण-धर्म से क्षुब्ध और निराश होकर सैकड़ों धार्मिक पंथों की उत्पत्ति हुई, और हजारों परिव्राजक व सन्यासी अपने विचारों को घूमघूम कर फैला रहे थे। देश में धार्मिक हलचल व सुधार की लहर चल रही थी। इन आन्दोलनों में जैन और बौद्धधर्म प्रमुख हैं।

महावीर और जैन धर्म।

जैनधर्म का इतिहास बहुत पुराना है। जैनियों के अनुसार वर्द्धमान महावीर अन्तिम तीर्थंकर थे। इनके पूर्वज श्रीऋषभदेव ने इस धर्म की

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नींव डाली और पार्श्वनाथ ने जैन सिद्धान्तों को स्थापित किया। (इन्हीं के नाम पर छोटानागपुर में पारसनाथ पहाड़ी है)। वर्द्धमान महावीर ने इनके सिद्धान्तों को अपनाया, कुछ नये सिद्धान्त जोड़ा और अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व से जैनधर्म को एक विशिष्ट धर्म के रूप में स्थापित किया। वर्द्धमान महावीर ही जैनधर्म के ऐतिहासिक संस्थापक माने जाते हैं।

वर्धमान महावीर वैशाली के क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुये। उनके पिता सिद्धार्थ पार्श्वनाथ के सिद्धान्त के मानने वाले थे। वर्द्धमान बचपन से ही किसी चिन्ता में खोए से रहते। उनकी शादी भी हो गयी, और एक पुत्री पैदा हुई। पर संसार के बन्धन इस महापुरुष को बाँधने में असफल रहे। और करीब २८ वर्ष की आयु में ये सन्यासी हो गये। १२ वर्षों तक ये पश्चिम बंगाल में घूमते रहे। कठिन तपस्या के पश्चात् इन्होंने संसार की प्रवृत्तियों पर पूर्ण विजय प्राप्त की। ये कर्म के बन्धन से मुक्त हो गये। तब से वर्द्धमान महावीर 'जिन' (विजयी) कहलाने लगे, और इनका धर्म जैन-धर्म कहलाया। अपने सिद्धान्तों को इन्होंने तीस वर्ष तक कोशल, विदर्भ, अंग और मगध में फैलाया। वर्षाकाल में अधिकतर ये वैशाली, श्रावस्ती और राजगृह शहरों में ठहरते थे। बिहारशरीफ के निकट पावा में इनका देहान्त हो गया। इनका जन्म और मृत्यु का निश्चित तारीख नहीं मालूम है। पर गौतम बुद्ध के ये समकालीन थे, और उनसे कुछ पहले ही इनकी मृत्यु हो गई थी। शायद ४६७ ई० पू० उनकी मृत्यु हुई हो।

महावीर के उपदेश।

पार्श्वनाथ के प्रत्येक अनुयायी को चार शपथ लेनी पड़ती थी—जीव हिंसा न करना, सत्य बोलना, चोरी न करना और ब्रह्मचर्य रहना। महावीर ने इस सूची में एक और जोड़ दिया—सम्पत्ति न रखना। इन सिद्धान्तों पर चलकर ही मनुष्य शुद्ध जीवन व्यतीत कर सकता है। कर्मों के बन्धन से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करने के लिए शुद्ध जीवन व्यतीत करना

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जरूरी है। महावीर ने संसार दुखमय पाया, और जीव को अपने कर्मों के बन्धन से जकड़ा हुआ। इस संसार में कई बार कई जन्म लेकर जीव अपना कर्मों का फल भोगता आ रहा है। संसार में आवागमन के दुःख से मुक्ति पाना ही जीवन का मर्म है। दुःख का कारण न तो मनुष्य का स्वभाव है और न उसका क्रूर भाग्य। दुःख का कारण है कर्म के बन्धन में जकड़े रहना। सदाचारी जीवन व्यतीत कर मनुष्य पूर्व-जन्म के बुरे कर्मों का अभिशाप कम करता है, और नये कर्मों के बन्धन से मुक्त होकर मोक्ष की ओर अग्रसर होता है। इसलिए मनुष्य को सदाचारी जीवन और कठिन नियमों का पालन करना चाहिये। महावीर ने शरीर को कष्ट देना और उपवास करना मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति के लिए आवश्यक समझा। यज्ञों व वेदों की महत्ता को नहीं माना। अहिंसा और तपस्या पर बहुत जोर दिया। स्त्रियों को भी उन्होंने दीक्षा दी, और स्त्रियां जैन-भिक्षुणी बनीं। वर्णाश्रमधर्म की भी उन्होंने अवहेलना की, और इस धर्म का द्वार सबके लिए खुला था।

गौतम बुद्ध और बौद्ध धर्म।

बौद्धधर्म की उत्पत्ति उन्हीं कारणों से और उसी अंचल में हुई जहां जैनधर्म आरंभ हुआ; दोनों धर्म समान आदर्श से प्रेरित थे। पर बौद्धधर्म का प्रभाव और क्षेत्र अधिक विस्तृत था।

सिद्धार्थ कपिलवस्तु के राजा शुद्धोधन के पुत्र थे। उनका व्याह यशोधरा नामक एक सुन्दर स्त्री से हुआ था। संसार की वासनाओं से उनका भावुक हृदय, और मस्तिष्क सन्तुष्ट नहीं हो सका। संसार को उन्होंने दुखी पाया। जन्म, युवा, वृद्ध और मृत्यु—जीवन के इन चारों प्रकृतिओं में उन्होंने कहीं भी सार या स्थिरता नहीं पाई। सबों को पीड़ित ही देखा। संसार के दुःख से उनका हृदय द्रवित हो गया, और इस दुःख के कारण जानने और उसका निदान के ज्ञान के लिए वे एक रोज रात्रि में चुपचाप अपनी सोई हुई स्त्री और नवजात पुत्र को छोड़

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर से निकल पड़े। सिद्धार्थ ने राज, स्त्री-सुख और पारिवारिक आनन्द का त्याग जीव के शाश्वत सुख की खोज के लिए किया। ज्ञान की खोज में उन्होंने धार्मिक ग्रंथों को चाट डाला, महापण्डितों से शास्त्रार्थ किया, और मगध में वर्षों कठिन तपस्या की, शरीर को अकथनीय कष्ट देकर ज्ञान की खोज की। पर उन्हें शान्ति न मिली। एक रात उरु-बिल्व (गया) में पीपल के वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ मुद्रा में उन्हें ज्ञान की प्राप्ति हुई। यह स्थान बोधगया, वृक्ष बोधिवृक्ष, और सिद्धार्थ बुद्ध हो गये। भगवान को 'मार' (शैतान) ने कई तरह से पथभ्रष्ट करना चाहा, पर असफल रहा। जब गौतमबुद्ध ने ज्ञान लाभ किया तब 'मार' ने अन्तिम चाल चली। उसने उन्हें कहा कि अब उन्हें (बुद्ध) स्वर्ग-सुख की प्राप्ति होगी और उनका स्वार्थ इसी में है कि इस ज्ञान-लाभ का फायदा स्वयं उठावें। पर बुद्ध ने घर-बार का त्याग और शरीर को इतना कष्ट अपनी मुक्ति व स्वग-प्राप्ति के लिए नहीं, वरन् सभी मनुष्यों को सांसारिक दुःख से मुक्त होने का सुलभ उपाय बताने के लिए किया था। इसलिए गौतमबुद्ध ने जनता में 'ज्ञान' का प्रचार करना निश्चय किया। चालीस वर्ष से अधिक प्रचार करने के बाद अस्सी वर्ष की उम्र में कुशीनगर में उनका देहावसान हो गया। उनके जन्म और मृत्यु की तिथियों के विषय में मतभेद है। उनका जन्म शायद ५६० ई० पू०, हुआ हो और मृत्यु ४८० ई० पू०।

बुद्ध के उपदेश।

भगवान् बुद्ध ने चार महासत्यों का पता पाया। संसार दुखमय है, इसका कारण है जीव की अतृप्त इच्छा, और इसी तृष्णा के कारण इस संसार में जीव बराबर जन्म लेता रहता है और दुख झेलता है। यह दुख तृष्णा को दबा कर ही दूर हो सकता है और इसका उपाय है मध्यम मार्ग। इस प्रकार बौद्ध-दर्शन तर्क पर स्थिर है। सभी कार्य के कारण होते हैं और कारण को दूर करने से उस कर्म का

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्तित्व ही नहीं रहता। बुद्ध ने कहा कि संसार के दुखी जीव की मुक्ति कर्म के बंधन से छूटने पर ही हो सकती है। इसी स्थिति को निर्वाण कहते हैं, जब जीव कर्मों के फलाफल से मुक्त हो जाता है।

संसार के दुख से छुटने का उपाय न यज्ञ है, न पशुवलि और न देवताओं या पुजारियों में अन्धविश्वास। संसार के दुख से दूर होने के लिए न कठोर तपस्या न सन्यास की जरूरत है। शाश्वत सुख की प्राप्ति का सरल उपाय है सदाचार। भगवान बुद्ध ने अत्याधिक वासना और शरीर को अत्याधिक कष्ट देना दोनों रास्तों को गलत बताया। उनका मार्ग 'मध्यम मार्ग' (Middle Path) है। इसके आठ विषय हैं (१) सद्विश्वास, (२) सद्निश्चय, (३) सद्वचन, (४) सद्कर्म,- (५) सद्जीविका, (६) सद्प्रयास. (७) सद्विचार, (८) सद्ध्यान। इस राह पर चल कर मनुष्य को ज्ञान, प्रकाश और निर्वाण प्राप्त होता है। सदाचारी जीवन व्यतीत करने से इच्छा या तृष्णा का दमन होता है, और तृष्णा का नाश होने पर, दुख का कारण दूर होने पर, दुख का नाश हो जाता है। इच्छा की उत्पत्ति का कारण है जीव को संसार को सत्य समझना। पर संसार में जो कुछ हैं उसका नाश निश्चित है, इसलिए उसे अपना समझना, आत्मीय मानना, गलत हैं। इस ज्ञान की प्राप्ति होने पर जीव इच्छा के भंवर से निकल जाता है, तब दुख से उसकी मुक्ति होती है, और वह अपने को 'मुक्त' जान लेता है। तब उसे पुनर्जन्म के चक्कर से मुक्ति मिल जाती है, संसार को असार समझने पर यहां वापस आने की उसे जरूरत ही नहीं होती। उसके कर्त्तव्य की इति श्री हो जाती है। इस अवस्था की प्राप्ति के लिए 'अष्ट्भागीमार्ग' पर चलना आवश्यक है।

इस तरह बुद्ध ने सदाचारी जीवन पर अत्यन्त जोर दिया। बुद्ध के अष्टभुज सिद्धान्तों के अध्ययन से यह साफ मालूम होता है कि उन्होंने जीवन की आन्तरिक और बाहरी शुद्धता दोनों पर बराबर जोर दिया।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सद्कर्म और सद् विचार, सद्जीविका और सद्विश्वास और सद्प्रयास, एक चित्र के दो पहलू हैं। मानसिक शुद्धता और नैतिक आचरण दोनों पवित्र जीवन के लिए जरूरी है। भगवान् बुद्ध ने इसी कारण वर्णव्यवस्था (Caste-System) की अवहेलना की। उनकी दृष्टि में नैतिक आचरण और शुद्ध विचार वाला क्षत्रिय दुश्चरित्र और अज्ञानी ब्राह्मण से श्रेष्ठ था। अत: वर्णव्यवस्था एक दैवी विधान है, यह वह नहीं मानते थे। मनुष्य का वंश व जाति नहीं, वरन् कर्म प्रधान है। नैतिक आचरण और मानसिक शुद्धता के वल पर अतिनिम्नवर्ण का मनुष्य भी सर्व-श्रेष्ठ हो सकता है। भगवान बुद्ध ने वेदों के अधिकार को नहीं माना। यज्ञों व पशुवलि की निन्दा की। जीवहिंसा पाप कहा, और अहिंआ पर वहुत जोर दिया। उनके उपदेश थे :—दूसरे की सम्पत्ति और स्त्री पर अधिकार करनेकी चेष्टा नहीं करनी चाहिये, असत्य न बोलना चाहिये और नशीली चीजों का व्यवहार न करना चाहिये। उनके ये नैतिक सिद्धान्त समाज की स्थिरता या संतुलन के लिए जरूरी थे। उन्होंने धर्म प्रचार के लिए वौद्ध-संघ की स्थापना की, जिसका विधान प्रजातान्त्रिक था। इस संघ में स्त्रियों को भी स्थान मिला। दलितवर्ग और छोटी जातियों ने इस सार्वजनिक धर्म को बहुत उत्साह से अपनाया। धर्म का प्रचार लौकिक भाषा-पाली और प्राकृत में किया जाता था। इसलिए इसका प्रभाव और भी अधिक विस्तृत और स्थायी पड़ा। इस तरह बुद्ध सामाजिक क्रान्ति व प्रगतिवादी शक्तियों के अग्रदूत बन गये। समाज में नव जागृति हुई। वौद्धधर्म के सिद्धान्त सरल और सर्वमान्य थे। सदाचार व सद्विचार का सुन्दर सामञ्जस्य ही वौद्धधर्म था, और शास्त्रपद्धति व खर्चीले यज्ञों से यह मुक्त था। समाज व धर्म में जो अनैतिकता, और अव्यवस्था और अशान्ति आ गई थी, उसके दूर करने का उपाय वुद्ध ने वताया और यह वुद्धिवादियों के मस्तिष्क और हृदय दोनों को ठीक जँचा। उन्होंने ऐसे विषय पर, जिनकी स्थिति का कोई ठोस प्रमाण मस्तिष्क को सन्तुष्ट नहीं कर सकता, कोई प्रकाश नहीं डाला, जैसे ईश्वर की स्थिति।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे प्रश्न पछे जाने पर वे टाल दिया करते थे। उनका यह दृढ़ विचार था कि उनके सिद्धान्त को आंखें मूंद कर नहीं मानना चाहिये। जो कुछ भी उन्होंने बताया है, उसे प्रत्येक अनुयायी को अपनी बुद्धि की कसौटी पर जांचना चाहिये, और यदि उसकी बुद्धि को वह मान्य हो, तो वह उसे ग्रहण करे, वरना नहीं। भगवान बुद्ध के नैतिक सिद्धान्त और अष्टभागी मार्ग इतना सरल और तब भी इतने गहन थे कि उनका प्रभाव काल और देश से परे था। उनका धर्म सारी मनुष्य जाति के लिए है और शाश्वत है।

४

जरथुस्त्र, कन्फूशिअस्, महावीर और गौतमबुद्ध एक ही युग के महापुरुष थे, और इनके विचार भी बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। अहिंसा पर इन सबों ने जोर दिया। नैतिक आचरण के सिद्धान्तों को इन लोगों ने पुनः दृढ़ता से स्थापित करने की चेष्टा की। समाज में स्थिरता लाने का उपाय बताया और सामाजिक व धार्मिक कुरीतियों व रूढ़ियों के विरूद्ध आवाज उठाई। संसार के इतिहास में यह युग सचमुच क्रियात्मक युग है। सामाजिक और धार्मिक सुधारों का युग है। बौद्धिक क्रांति का जमाना है।

इसी समय यूनान में भी नव जागृति का दीपक जल उठा। असभ्य डोरिअनों के आक्रमण से यूनान की प्राचीन सभ्यता पर गहरा आघात पहुँचा। बहुत से यूनानी साहित्यिक, कलाकार, धनी-मानी नागरिक और साहसी युवकों ने यूनान छोड़ कर एशिया माइनर के तटवर्ती प्राय-द्वीपों में शरण ली। यहां इनका सम्बन्ध आर्यपूर्व सभ्यताओं से काफी रहा। अंधकार युग का अन्त हुआ, और बड़े २ वैज्ञानिक, दार्शनिक व कलाकारों का जन्म हुआ। यूनानी दुनियां में नयी जागृति आई, और यूनानी सभ्यता का स्वर्णयुग का आरम्भ हुआ। इस युग के नेताओं में सुकरात (Socrates) प्रसिद्ध हैं। सुकरात

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरिकों को जिरह (Cross-examination) करके बता देता था कि वे कितने मूर्ख हैं। उन्हें वह समझा देता था कि किसी भी जाति व सभ्यता की स्थिति सत्य और पवित्रता पर ही निर्भर रह सकती है। उस समय मनुष्यों में वह सबसे अधिक बुद्धिमान कहा जाता था। पर अपनी दृढ़ता और पवित्रता के इनाम में उसे प्राणदण्ड मिला।

अतः यह अब प्रत्यक्ष हो गया कि संसार में इस समय धार्मिक व बौद्धिक क्रान्ति की लहर चल रही थी, यूनान हो या चीन, भारत हो या ईरान। इन सभी देशों में महापुरुषों ने नैतिक आचरण पर जोर दिया और अन्धविश्वास को दूर करने की चेष्टा की। बुद्ध, कन्फ़ूशिअस् और सुकरात ने धर्म का शाश्वत और एकरूप देखा। बुद्ध और कन्फ़ूशिअस् के धर्म शान्तिप्रिय धर्म हैं। इनके फैलाने के लिए पशुबल का कभी प्रयोग नहीं किया गया। जरथुश्त्र और महावीर ने अहिंसा और सभी जीवों पर दया पर बहुत जोर दिया। बुद्ध और लाउ-त्से दोनों ने वस्तुतः एक ही मार्ग बताया—जिस पर चल कर शान्ति मिल सकती है। लाउ-त्से ने 'ताओ' धर्म का प्रचार किया, और 'ताओ' का अर्थ है मार्ग।

———

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवाँ अध्याय

यूनान की सभ्यता

प्राचीन सभ्यताओं में यूनानी सभ्यता का विशेष स्थान है। योरप की सभ्यता इसी सभ्यता की नींव पर विकसित हुई है। रोम ने इस सभ्यता को अपनाकर पश्चिम योरप में फैलाया, और योरप यूनानी सभ्यता के प्रभाव में आ गया। करीब पचास वर्ष पहले विद्वानों का यह ख्याल था कि योरप की सबसे प्राचीन सभ्यता यूनानी सभ्यता ही है ;. यूनानियों ने ही संस्कृति का दीप यूनान में जलाया, जिसका प्रकाश पीछे चल कर सारे पश्चिमी यूरोप पर छा गया। पर यह धारणा निर्मूल है। यूनानी सभ्यता धुली हुई स्लेट पर नहीं पनपी, यूनानियों ने योरप में पहले पहल सभ्यता का बीज नहीं रोपा। योरप को प्रस्तरयुग से निकल कर नागरिक सभ्यता और धातुयुग की बहुमुखी संस्कृति में लाने का श्रेय यूनानियों को नहीं दिया जा सकता है। आर्य-यूनानियों की शाखा जब यूनान में पहुँची, वे स्वयं असभ्य या असंस्कृत थे। उनको यहां पर एक पूर्णविकसित सभ्यता मिली, जिसके आधार पर यूनानी सभ्यता पनपी। यह यूनानी-पूर्व सभ्यता एजियन-समुद्र में स्थित क्रीट की सभ्यता की एक सन्तान थी।

१

क्रीट की सभ्यता

क्रीट प्रायद्वीप एजिअन समुद्र के दक्षिणी कोने में है, और भूमध्य-सागर और एजिअन समुद्र को मानो अलग करता हो, ऐसा मालूम होता है। यह मिश्र से बहुत निकट है। एजिअन समुद्र में बहुत

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मा० चित्र

(Facing Page 184) क्रीट और प्राचीन एजियां प्रायद्वीप

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र २१ (अ)

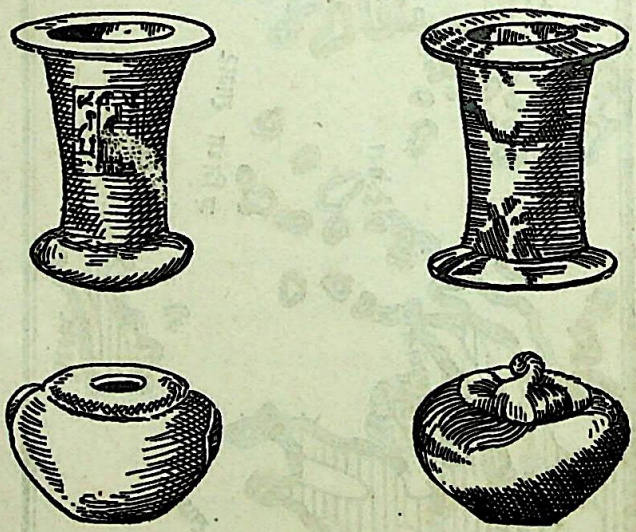

मिश्र क्रीट

(पृ० १९०) क्रीट की कला पर मिश्र का प्रभाव

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से छोटे २ प्रायद्वीप हैं, जो एक दूसरे से काफी निकट हैं। नावों पर एक द्वीप से दूसरे द्वीप पहुँचने में चन्द घण्टों का माजरा है। इसलिए इन द्वीपों में घनिष्ट आर्थिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध रहा है। यदि किसी द्वीप में एक मजबूत शक्ति पैदा हो गई तब अपनी जल-सेना की मदद से वह सारे एजिअन-क्षेत्र पर अपना प्रभुत्व आसानी से और शीघ्र ही स्थापित कर सकती है। इसलिए एजिअन-क्षेत्र सांस्कृतिक व राजनीतिक व आर्थिक दृष्टि से एक है। पूरब में यह क्षेत्र एशियामाइनर के निकट था। एशियामाइनर के द्वारा मेसोपोटेमिया की सभ्यता से भी अप्रत्यक्ष सम्बन्ध था। अतः हिटाइट्, फिनिशिअन, और अन्य आर्य-पूर्व सभ्यताओं से इस क्षेत्र का सम्बन्ध रहना स्वाभाविक था। अतः भौगोलिक स्थिति, और सभ्य मिश्र और एशियामाइनर के सामीप्य व सम्बन्ध के कारण एजिअन क्षेत्र में एक उन्नत सभ्यता का विकास हुआ, और इसका केन्द्र था क्रीट प्रायद्वीप।

ईसा के प्रायः तीन हजार वर्ष पूर्व क्रीट प्रायद्वीप में धातु युग आरम्भ हुआ। मिश्र के जहाजियों ने इस द्वीप में ताम्बा लाया और उत्तर भू-मध्यसागर-क्षेत्र की खानों से टीन मिला हुआ ताम्बा, कांसा आया। क्रीट की प्राचीन सभ्यता कांसा युग (Bronze Age) की सभ्यता है। करीब एक हजार वर्ष बाद यह सभ्यता अपनी चरमसीमा पर पहुँची। २१००–१२०० ई०पू० तक क्रीट-साम्राज्य सारे एजिअन क्षेत्र में फैला हुआ था। मेसोपोटेमिया और मिश्र के साम्राज्य के विपरीत क्रीट का साम्राज्य स्थल-साम्राज्य न रह कर समुद्रीय (Maritime) साम्राज्य था। क्रीट का जहाजी बेड़ा इस साम्राज्य का रक्षक था। क्रीट के प्रमुख शहर नौसस (Knossus) और फेस्टस् (Phaestos) में किलेबन्दी नहीं थी। राजा को अपनी नाविक-शक्ति पर इतना विश्वास था कि राजधानी की किलेबन्दी की जरूरत नहीं महसूस की गई थी। एजिअन-क्षेत्र और क्रीट का व्यापारिक सम्बन्ध मिश्र, एशियामाइनर

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और मेसोपोटेमिया से था। प्राचीन हरप्पा-सभ्यता से भी अप्रत्यक्ष सम्बन्ध रहा होगा। मिश्र के प्राचीन मन्दिरों, व राजमहलों की दीवालों पर क्रीटवासी व्यापारियों व राजदूतों का चित्र है: एक ओर मुड़े हुये या दोनों ओर मुड़े हुये ताम्बे के पिन (बाल का कांटा) मोहन्जोदाड़ो और चान्हूदारों में पाए गए हैं। ऐसे पिन एजिअन क्षेत्र में २५०० ई० पू० के लगभग बहुत पाए जाते हैं। यह सम्भव है कि हरप्पावासियों ने ऐसे पिन यहीं से मंगाये हों, या इनकी ही नकल की हो।

धर्म

मातृदेवी की पूजा प्रमुख थी। इनकी मिट्टी की मूर्तियाँ मिली हैं। एक युवक देवता का मातृदेवी से घनिष्ट सम्बन्ध था। कबूतर और सर्प मातृदेवी के प्रिय थे। कबूतर शान्ति का प्रतीक था, और सर्प उपज का। मातृदेवी के उपलक्ष्य में साढ़ों की बलि दी जाती थी। देवदासियां व पुरोहितों की स्त्रियां मातृदेवी के सामने नृत्य करतीं। इस धर्म के प्रतीकों में, दोहरी-कुल्हाड़ी प्रसिद्ध है। ईसाई धर्म में इस प्रतीक का स्थान है। भारतवर्ष के अति प्राचीन धर्म से इस धर्म की तुलना की जा सकती है। क्रीट में भी सार्वजनिक मंदिरों का अभाव है। पूजा प्रत्येक परिवार अपने घर में ही करता होगा।

नगर-निर्माण

प्राचीन ऐश्वर्यशाली देशों से घनिष्ट समुद्रीय व्यापार के कारण क्रीट काफी समृद्ध हो गया था। इसके वैभव का प्रमाण हमें नौसस् व फेस्टस की खुदाई से मिलता है। यहां विशाल और अत्यन्त अलंकृत राजमहल पाये गये हैं. जिनमें संसार के सभी सुख और आराम के सभी साधन प्राप्य थे। नौसस् का राजमहल मिश्र के राजमहल के आधार पर बना था। मध्य में एक बड़ा आंगन था, और चारों ओर कोठरियां थीं जो कई भिन्न २ सरकारी विभागों के लिए बटीं थीं।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरकारी शिल्पकार, धातु के कारीगर, राज-मजदूर, राज-कर्मचारी सभी के लिए राजमहल में ही स्थान था। कोठरियों में आने जाने का रास्ता बहुत घुमघुमौआ था। जमीन के नीचे जाने के रास्ते थे। इन्हीं अगणित रास्तों के कारण ही यह राजमहल मिनोटौर (Minotaur) का भूलभूलैया (Labyrinth) कहा जाता होगा, जिसके अन्दर जाने पर मनुष्य बाहर नहीं निकल सकता था और मिनौटौर का शिकार (ऐसी किंवदन्ती है) बन जाता था; प्रत्येक वर्ष एथेन्स के कुछ युवक व युवतियों को इस देव के सामने बलि दी जाती थी। अन्त में थिसिअस (Theseus) ने इसकी हत्या की। राजमहल में ही शस्त्रागार था जहां पीतल के कवच और आक्रमक अस्त्र-शस्त्र पाये गये हैं, जैसे तीर-धनुष, व तीर के नुकीले नोक (arrow-heads)। यहां शस्त्रों की एक सूची भी मिली है। इससे पता चलता है कि शासन काफी सुव्यवस्थित था। युद्ध में जहाजी बेड़ा का खूब प्रयोग था। और क्रीट के राजा को 'समुद्र का राजा' कहा जाता था।

नगर-निर्माण व भवन-निर्माण कला काफी विकसित थी। राजमहल में खम्भों पर आधारित विशाल कमरा (Colonnaded Hall) और सुन्दर सीढ़ियां प्रशंसनीय हैं। ये खम्भे ऊपर से नीचे की ओर पतले होते गये हैं; यह एक विशेषता है। राजमहल और बड़े २ मकान दो या तीन मंजिला है। ऊपर के मंजिल पर बरामदा (Balcony) में खड़े होकर राजपरिवार व सभ्रान्त नागरिक शहरों की चहल-पहल या कोई विशेष जुलूस देखा करते थे। इस तरह का एक चित्र नौसस् के राजमहल के अन्दर की दीवाल पर बना है। समृद्धि का जीता जागता प्रमाण यह है कि मामूली कारीगर के मकान में आठ कोठरियां थीं। मकानों में पानी का अच्छा प्रबन्ध था। प्रत्येक मकान में गुसलखाने पाये जाते हैं और पानी का कल का व्यवहार होता था। ताम्बे का या मिट्टी के बने कल मिले हैं। अंगिठी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिली है जिस पर पानी गर्म किया जाता होगा, और गर्म पानी नल के जरिए व्यवहार में लाया जाता होगा। ऊपर छत पर गढ्ढा रहता था, जिसमें पानी इकट्ठा होता था और कल के द्वारा नीचे लाया जाता था। इस दृष्टि में प्राचीन क्रीट निवासी को आधुनिक युग की सुविधा प्राप्त थी। शहर में सफाई का अच्छा प्रबन्ध था। नालियों का इन्तजाम था। मिट्टी की बनी पाइप की नाली के अवशेष मिले हैं। अभी भी ये व्यवहार में लाए जाते हैं।

कला

कला के क्षेत्र में क्रीटवासियों ने बहुत प्रगति की थी। कुम्हार की चक्की और भट्ठा का ज्ञान उन्हें था। बड़े सुन्दर सुन्दर बर्तन बनाए जाते थे, और उन पर प्राकृतिक दृश्य चित्रित हैं। ये चित्र इनलोगों की प्रतिभा के प्रमाण हैं। इन अति आकर्षक बर्तनों की मांग मिश्र और एशियामाइनर और अन्य पूर्व-देशों में बहुत थी। इनके बर्तन संसार में अलंकृत कला के लासानी उदाहरण हैं। राजमहल की दीवालों पर बड़े सुन्दर चित्र रंगे पाए गये हैं। दैनिक जीवन के ये दृश्य ही इन चित्रों के शीर्षक हैं। स्वाभाविकता और सौन्दर्य में ये अद्वितीय हैं। स्त्रियों के चित्रों से ऐसा मालूम होता है कि उस समय का शृंगार व फैशन वर्त्तमान योरोपीय वेश-भूषा और अलंकार से बहुत पीछे न था। स्त्रियाँ नीचे गले की ब्लाऊज पहनती थीं, और झालरदार घांघरा जमीन को छूती रहती थी। पेरिस का फैशन से इनका फैशन मिलता जुलता था। ये चित्र शीशे की तरह चमकते हैं। चमकाने की कला (art of glazing) क्रीटवासियों ने मिश्र से सीखी थी। यूनानी-कहानी है कि डैडलस (Daedulus) ने अपने लिए पंख बनाकर क्रीट से उड़कर इटली चला गया। क्या हवा में उड़नेवाली पहली मशीन क्रीट में ही बनी थी ?

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आमोद-प्रमोद

क्रीटवासी खेल-कूद के बड़े शौकिन थे। पहलवानों की कुश्ती, और साढ़ों की लड़ाई सर्वप्रिय मनोरंजन थे। साहसी मनुष्य उन्मत्त सांढ़ से जान की बाजी लगाकर लड़ता था। ऐसे चित्र दीवालों पर चित्रित हैं। भव्य पुरुष और अलंकृत स्त्रीं (जिनकी वेश-भूषा १७हवीं १८हवीं सदी योरोप व अमेरिका की स्त्री-वेश-भूषा से भिन्न नहीं थी) ऊपर की छत से इन तमाशों को देखती थीं। यूरोप में खेल-कूद का बड़ा महत्त्व है। मनुष्य के जीवन में शारीरिक व्यायाम और मनोरंजन का एक विशेष स्थान है। पहले यह समझा जाता था कि योरप पर यह प्रभाव प्राचीन यूनानियों का ही था। पर अब हम यह जानते हैं कि इस दिशा में क्रीटवासियों ने ही योरप का नेतृत्व किया था।

व्यापार

क्रीट की समृद्धि व्यापार पर ही आश्रित थी। क्रीट अपनी चीजों की खफ़त् के लिए अपने जहाजों पर माल पूर्व या पश्चिम भेजता रहता था। यूनान से भी सम्बन्ध था। क्रीट के जहाज आरगस् की खाड़ी पहुँचते थे, और क्रीट की संस्कृति आरगस् की समतल भूमि पर फैल गई। व्यापार के साथ २ राजनीतिक प्रभाव भी जम गया, और यूनान क्रीट-साम्राज्य का एक उपनिवेश बन गया। यूनान की पौराणिक कथाओं में एक कथा यह भी है कि एथेन्स के युवक-युवती हर वर्ष सम्राट् माइनोस (Minos) के पास कर के रूप में भेजे जाते थे, और मिनोटोर दानव के सामने उनकी बलि दी जाती थी; एथेन्स के एक वीर युवक ने इस दानव की हत्या करने में सफलता पाई। इस कहानी की तह में क्रीट का यूनान (Greece) पर आधिपत्य का प्रमाण छिपा है। ग्रीस के दक्षिण-पूर्व किनारे पर माइकिन (Mycenae) और टाइरिन् (Tiryns) में प्राचीन नगरों के

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवशेष मिले हैं। यहाँ जो सभ्यता मिली है उसका स्रोत क्रीट ही था। योरप के प्रधान स्थल (Mainland) पर माइकिनिअन युग सबसे पुराना सभ्य-युग है। यहां भी राजमहल के अवशेष, सुन्दर चमकते हुये वर्तन, और धातु की चीजें मिली हैं। कुछ क्रीट से आई, कुछ मिश्र से, और कुछ यहीं की बनी हैं।

क्रीट-सभ्यता का युग २५०० ई० पू०-१२०० ई० पू० माना गया है। अतः यह सभ्यता हरप्पा-सभ्यता के समकालीन थी। क्रीट की सभ्यता को मिश्र की सभ्यता से प्रेरणा मिलती रही। मिश्र का उन्नत काल क्रीट-सभ्यता के स्वर्णिम दिन थे। धातु का प्रयोग, लिपि, वर्तन वनाने की कला, दीवालों पर चित्रकारी इत्यादि सांस्कृतिक प्रवृत्तियां मिश्र के सम्वन्ध के कारण ही अपनाई गई। पर क्रीट की सभ्यता मिश्र की सभ्यता की नकल नहीं है। इसमें हम कई दृष्टि में मौलिकता भी पाते हैं। क्रीट-सभ्यता के विषय में हमारी जानकारी वहुत अधिक वढ़ जाय यदि हम इनकी लिपि पढ़ सकें। इनकी लिपि पहले चित्र-संकेत लिपि थी, पर धीरे २ इसका रूप वदलता गया। पर अभी तक यह लिपि पड़ी नहीं जा सकी है। हरप्पा-लिपि का भी यही हाल है। कुछ लोग दोनों लिपियों में काफी समानता पाते हैं।

सभ्यता का अन्त

क्रीट के प्राचीन शहर नौसस् और ग्रीस का माइकिन व टाइरिन के वुरे दिन आ गये। आर्यों ने ही इन शहरों का नाश किया, पर इनकी सभ्यता को धीरे-धीरे अपनाया। असभ्य जातियों ने बालकन की पहाड़ियों से हो कर उत्तर की ओर से आना शुरू किया, और ये ही यूनानी थे। इन्होंने पूर्व-भूमध्यसागर पर धावा बोल दिया, और इस प्राचीन सभ्यता के केन्द्रों का नाश कर दिया। पर यूनानी-सभ्यता ने माइकिनियन सभ्यता या क्रीट की सभ्यता से वहुत कुछ लिया।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२

ग्रीकों का आगमन

ईसा से लगभग १२०० ई० पू० आर्य-एचिअन और तत्पश्चात् डोरिअनों ने ग्रीस और एजिअन क्षेत्र पर आक्रमण कर अपनी सत्ता स्थापित कर लिया। यह अन्धाधुन्ध युद्ध का समय था, और सारे क्षेत्र में अराजकता व अस्थिरता फैली हुई थी। इसी समय ग्रीकों की कई शाखाओं ने एशियामाइनर के तट पर और पूर्व-भूमध्यसागर के प्रायः-द्वीपों में उपनिवेश स्थापित कर लिया। एओलिअन, आइयोनिअन, व डोरिअन उपनिवेश सारे क्षेत्र में फैल गये। इन लोगों पर प्राचीन पूर्व-सभ्यताएँ जैसे ट्राय की सभ्यता, एशियामाइनर की सभ्यता, लिडिया व मेसोपोटेमिया की सभ्यता व एजिअन-सभ्यता का प्रभाव पड़ा। जब प्रमुख ग्रीस स्वयं अन्धकार युग में पड़ा था, इन उपनिवेशों में यूनानियों ने नवजागृति का दीप जलते रक्खा, और वही ज्योति यूनान पहुंची।

नगर-राज्य की उत्पत्ति।

इसी अन्धकार युग में ग्रीस में नगर-राज्य (Polis, City-state) का विकास हुआ। यूनानियों में एकता का भाव का अभाव था। प्रत्येक समूह (group) अपनी ही स्थिति के लिए परेशान था, और दूसरे समूह को कट्टर दुश्मन समझता था। यह ग्रीस का भूगोल का भी परिणाम था कि यूनानियों में राष्ट्रीय भावना की अनुपस्थिति थी। ग्रीस ढलाऊ पहाड़ों से भरा है, इसलिए इस देश में यात्रियों को भ्रमण करने में अभी भी दिक्कत होती है। इन पहाड़ियों की भिन्न-२ घाटियों में यूनानियों की शाखाएं बस गईं। चारों ओर पहाड़ों से घिरे रहने के कारण प्रत्येक शाखा दूसरी शाखाओं से अलग हो गई। उनका संसार ही सीमित हो गया। अपनी सीमा के बाहर के यूनानी उनके लिए विदेशिओं से भी अधिक दूर थे। पारस्परिक सम्बन्ध नहीं के ही बराबर था और जब सम्बन्ध होता भी तो युद्ध-भूमि में। ग्रीस दरिद्र देश है। बहुत कड़ी मेहनत करके ही कुछ अनाज पैदा किया जाता था। अंगूर की लताएँ

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सींची जाती थी। शराब और जैतून का तेल (olive oil) बाहर भेजन वाले मालों में मुख्य थे। यूनानियों का आर्थिक जीवन संघर्षमय था। इसलिए प्रत्येक शाखा अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए और बढ़ती हुई आबादी के पोषण के लिए दुर्गम रास्तों को पारकर दूसरे यूनानी राज्यों पर आक्रमण करता रहता। इन आक्रमण-प्रत्याक्रमणों का फल यह हुआ कि प्रत्येक घाटी में स्थित यूनानी आपस में और भी मिल गए, और यूनानीयों की राष्ट्रीयता अपनी घाटी तक ही सीमित रही। शत्रुओं से रक्षा के लिए ऊँचे टीले पर दुर्ग बनाया गया, और इसी दुर्ग के संरक्षण में नगर-राज्य विकसित हुआ। सैनिक वर्ग कृषकों पर अपना आधिपत्य रखते थे, और समुद्रीय-डाके (piracy) डालते। दुर्ग के नीचे स्थित कृषक-नागरिक दुर्ग में वसे सैनिक व उच्चवर्ग के लिए भोजन के साधन जुटाते, और उच्चवर्ग इन कृषकों की रक्षा का जिम्मा लेता था। इन नगर-राज्यों में समाज पहले दो वर्गों में बंटा था—सैनिक-कुलीन वर्ग जिसके पास बड़ी २ जमींदारियाँ थी, लड़ाई के रथ थे, और बड़ी संख्या में पशुधन। राजा इनका मुखिया था, पर वह इनसे जुदा नहीं था। दूसरा वर्ग कारीगर, मजदूर और दासों का था और इन्हें शोषितवर्ग कहा जा सकता है। पर प्राचीन यूनान के नगर-राज्य के विधान का आधार जनतान्त्रिक सिद्धान्त था। लोकसभा में सभी नागरिकों को उपस्थित होने का अधिकार था, और राज्य के महत्वपूर्ण समस्याओं पर वहीं निश्चय किया जाता थ। अतः शोषितवर्ग, संख्या में अधिक होने के कारण जनहितकारी कार्यक्रम निश्चित करा लेते थे।

उपनिवेश स्थापना

पर ८००-६०० ई० पू० के मध्य में नगर-राज्यों में नयी सामाजिक व आर्थिक हालत पैदा हो गई। हम देख चुके हैं कि समाज बड़े जमींदारों व छोटे किसानों में बँटा था। साधारण किसान छोटे २ टोपरो में खेती करता, और उसे भोजन के लिए पर्याप्त अनाज

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही पैदा करना मुश्किल हो जाता था। कई स्थानों में चारागाह की कमी के कारण किसान गाय-घोड़ा भी नहीं रख सकता था। अतः उसे अपने श्रम पर और कठिन कृषि की उपज पर ही निर्भर करना पड़ता। पर बड़े जमींदार के पास पर्याप्त मूलधन (Capital) था, जिससे वह अंगूर, जैतून के तेल, या पशु-धन की वृद्धि कर सकता था। इन कामों का फल कुछ देर में मिलता। अधिक अनाज उपजाने से जनसाधारण को बहुत अधिक फायदा होता। पर अधिक लाभ के लिए बड़े जमींदार कृषियोग्य जमीन को परती रखते और अंगूर व जैतून के तेल की खेती पर अधिक ध्यान देते थे। इसलिए बेचार मजदूरों को रोजी मिलना मुश्किल हो जाता; अनाज की कमी होती, और दाम की महंगी। कभी २ तो मुनाफे की लालच में जमींदार लोग काफी अनाज राज्य से बाहर भेज देते थे। अतः मजदूरों व मामूली किसानों की हालत बेतरह बिगड़ गई। कुछ साहसी कुलीन नवयुवक भी अपने साथी कुलीनों के आर्थिक एकाधिकार से असन्तुष्ट थे क्योंकि एक नियम यह था कि परिवार का बड़ा लड़का ही सम्पत्ति का वारिस होगा।

इसलिए राज्य छोड़ कर किसान, मजदूर व असन्तुष्ट कुलीन नव-युवक दूर २ देशों में जाकर उपनिवेश स्थापित करने लगे। यूनानी इन उपनिवेश इटली, सिसली और एशियामाइनर और मिश्र में बढ़ने लगे। ईसा से पूर्व सप्तमी और षष्टी शताब्दियां यूनान के इतिहास में युगान्तकारी हैं। उपनिवेशों में नये यूनानी नगर-राज्य स्थापित हो गये। इनके द्वारा यूनानियों को जमीन और भोजन मिल गया। संस्थापक-नगर (Founder city) को भोजन मिलने की सुविधा हो गई, और नये व्यवसाय व तिजारत की खोज होने लगी, जिसका फायदा इस नये उपनिवेश में बसने वाले और संस्थापक नगर-वासियों दोनों को मिलने लगा।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपनिवेश-स्थापना का एक परिणाम यह था कि व्यावसायिक और औद्योगिक उन्नति हुई। पांचवी शताब्दी ईसा से पूर्व कुछ ऐसे नगरों में, जिनकी भौगोलिक स्थिति अनुकूल थी, व्यवसायिक और औद्योगिक धंधे शुरू हो गये। पूर्व-तट में स्थित एइजिन (Aegina) इस क्षेत्र में उल्लेखनीय है। फिनिशयनों से इस शहर की प्रतिद्वन्द्विता रही। एथेन्स (Athens) अनाज और जैतून के तेल बाहर भेजने के लिए प्रसिद्ध था। मिलेटस् अन्दर-एशियामाइनर से सम्बन्ध रखता था, ऊनी कम्बल जूते, कपड़े और तलवार की तिजारत का केन्द्र था। मिलेटस् के मिट्टी-के-बर्तनों की मांग दूर देशों में थी। इटली और सिसली में कौरिन्थ के कई उपनिवेश थे। मिश्र में नौक्रेटिस् (Naucratis) यूनानी माल का डीपो था, और मिश्र और यूनान के पारस्परिक व्यापार का एक केन्द्र बन गया। मस्सिलिआ (Marseille) फ्रांस में, योरप में यूनानी माल और सभ्यता के विस्तार का द्वार था।

उपनिवेश-स्थापना का यह आन्दोलन यूनानी-सभ्यता के विकास में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। लोगों को अपनी पुरानी आदत और जीर्ण सामाजिक व्यवस्था से निकलने का मौका मिला। यूनानियों को नये देशों ने आकर्षित किया, और उनमें नया साहस और नया जोश आया। इन उपनिवेशों की स्थापना और वहां जाकर वसने के कारण उनके जीवन में परिवर्तन आया। परिवर्तन ही जीवन है। विदेशों से घनिष्ट सम्बन्ध का परिणाम था नयी जातियाँ व नई भावनाओं और नये आदर्शों से प्रभावित होना। यूनानी सभ्यता इस प्रकार बहुत समृद्ध बन सकी। दुनियां और मनुष्य के विषय में उनका मानसिक क्षितिज बहुत विस्तृत हो गया। प्रचीन यूनानियों में बराबर नयी प्रवृति अपनाकर अपनी सभ्यता को गतिशील बनाने की आवश्यक प्रतिभा पाई जाती है। इस गुण का कारण है इस युग में विदेशों और विदेशियों से सांस्कृतिक व व्यापारिक सम्बन्ध रखना।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्थिक क्रांति और सामाजिक विषमता

इस सम्बन्ध का एक महत्वपूर्ण परिणाम था मुद्रा (Coinage) का व्यवहार का ज्ञान। अब वस्तुओं के लेन-देन अदल-बदल (Barter) से नहीं, वरन् प्रत्येक वस्तु का मूल्य एक निश्चित मुद्रा के आधार पर तय किया जाने लगा। इसलिए धन का अर्थ था मुद्रा का संग्रह और इसके लिए काफी होड़ होने लगी। बड़े बड़े जमींदार सूद पर कर्ज देकर धन बढ़ाने लगे। बढ़ती हुई तिजारत से भी उनका कुछ फायदा ही हुआ। बेचारे किसान और मजदूर अपनी मामूली पूंजी से भी हाथ धो बैठे। जमीदारों को जमीन रेहन कर वे आवश्यक चीजें खरीदने लगे, और अन्त में वे जमीन रेहन ही रह गई, उसे बेचकर ही वे अपनी खोई आजादी पा सकते थे। धनी-धनी होते गए, गरीब दिनोंदिन और भी गरीब हो गये।

इस तरह प्रत्येक नगर में सामाजिक और आर्थिक विषमता बहुत बढ़ गई। नागरिकों के इस संघर्ष से नगर की राजनीति बहुत ही प्रभावित हुई। दरिद्र नागरिकों की यह मांग थी कि कर्ज रद्द किया जाय, सम्पत्ति का फिर से बंटवारा हो, और शासन में सभी नागरिकों को पूरा भाग रहे। कुलीनों की संख्या तो कम थी पर वास्तविक राजशक्ति इसी वर्ग के अधिकार में था। सम्पत्ति का बहुत बड़ा अंश इनका ही था। इसलिए इनलोगों ने इस मांग का विरोध किया, और अपनी विशेष सुविधाओं के बल पर गरीब नागरिकों का शोषण और तेजी से करते रहे। व्यावसायिक नगरों में कुलीनों ने व्यापार में भी भाग लिया था, और काफी धन इकट्ठा कर स्थिर-स्वार्थों का एक प्रतिक्रियावादी गिरोह बना लिया। पर अमीर और गरीब सभी इस बात पर एक थे कि राज को नागरिकों की आर्थिक आवश्यकता पूरी करनी चाहिये। पर प्रश्न यह था कि किस तरह धन का बंटवारा हो कि कुछ लोग अमीर न होते जायं और न अधिक लोग गरीब।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर समस्या सिर्फ नागरिकों के पारस्परिक हितों की रक्षा ही नहीं थी। प्रत्येक नगर में नागरिकों के अलावे गैरनागरिक अधिक संख्या में थे। विदेशियों को नागरिकता के अधिकार नहीं प्राप्त थे। व्यावसायिक नगरों में विदेशी व्यापारी और दूकानदार या कारीगर काफी संख्या में थे, पर उन्हें कोई राजनीतिक अधिकार नहीं था। प्रत्येक नगर में आर्य-ग्रीक के आने के पहले जो लोग थे उन्हें गुलाम बना लिया गया था। दूसरे देशों में लड़ाई के फलस्वरूप कैदियों को भी दास ही बनना पड़ता था। दासों को सम्पत्ति अर्जन करने का हक नहीं था। उनका काम था यूनानी स्वामियों की सेवा, घर और खेत में काम करना। उनके प्रति मालिकों का व्यवहार बहुत ही बुरा होता था। ग्रीक-नागरिकों का आराम, और जनतांत्रिक शासन जिनमें उन्हें प्रत्यक्ष हिस्सा लेना पड़ता था, दास-प्रथा पर ही अवलम्बित था। कई दृष्टि में यूनानी सभ्यता की सर्वमुखी-कला और विद्या की उन्नति दास-प्रथा पर आधारित थी। यूनानी लोकतन्त्र भी अजीब था जिसमें नागरिकों से कई गुणा अधिक गैरनागरिक थे, और सच पूछिए तो अल्पसंख्या का ही बहुसंख्या पर राज था।

लोकतन्त्र का विकास

सामाजिक संगठन में इन विरोधी स्वार्थों के संघर्ष से समाज व राज-शासन में कई परिवर्तन हुए। गरीब कृषकों और अमीर कुलीनों में विषमता बढ़ती गई। उच्चवर्ग वाले इस झगड़े में तबतक बराबर जीतते रहे जबतक युद्ध में रथ और घुड़ सवार का महत्व अत्याधिक था, पैदल-सेना का महत्व कम था। घोड़े और रथ अमीर लोग ही रख सकते थे। पर इस समय युद्ध-कला में एक बड़ा परिवर्तन हुआ। भाले से लैस पैदल सिपाही घुड़सवार की बराबरी कर सकता था। अब साधारण नागरिक अपने शरीर को लोहे के कवच से ढंक कर एक हाथ में गोलाकार ढाल और दूसरे हाथ में बर्छा-भाला लेकर युद्ध के मैदान में घुड़सवार से कम महत्व नहीं रखता था। इसलिए राज के लिए अब जनसेना का महत्व

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ग-सेना (Class-army) से अधिक था। इसका एक परिणाम यह हुआ कि साधारण नागरिकों को राजनीतिक सत्ता प्राप्त हो गई।

इस आन्दोलन की प्रगति भिन्न २ राज्यों में भिन्न रूप से हुई। नागरिकों की बढ़ती शक्ति को रोकने के लिए कुछ नगर-राज्यों में कुलीनों ने अपना पंजा और मजबूत किया, और अल्पजनों का शासन जनसाधारण पर जबरदस्ती लादा गया। कुछ राज्यों में साधारण जनता ने कुलीनों में से किसी एक को या व्यापारियों में से किसी महत्वाकांक्षी को अपना नेता चुना। अल्पजन या कुलीन के शासन को उखाड़ कर इन नेताओं ने अपना स्वेछाचारी शासन (Tyranny) स्थापित कर लिया। कुछ स्वेच्छाचारी शासकों ने जनता के लिए बहुत अच्छा काम किया। जमीन का फिर से बँटवारा किया, नये दासों की भर्ती को रोका, कज और रेहन के कानूनों को गरीब जनता के हित में आसान किया, शहर के मजदूरों को काम देने के लिए मंदिर, किलाबन्दी, नहरें इत्यादि बनवाना शुरू किया, सार्वजनिक राष्ट्रीय-उत्सवों को प्रोत्साहन दिया, और कला और साहित्य को प्रगतिशील और जनप्रिय बनानेवालों को सहायता दिया। इस प्रकार जाति और वर्ग के विभेदों को हटाकर शुद्ध नागरिकता को पनपने का मौका दिया।

एथेन्स का विधान।

स्वेच्छाचारी जनहितकारी शासकों में एथेन्स के सोलन (Solon) पाइसिट्रेटस् (Pisistratus) और क्लीसथीनिज़ (Cleisthenes) के नाम प्रसिद्ध हैं। इनलोगों के सुधार के फलस्वरूप नीचे तपकों के नागरिकों को भी लोक सभा में स्थान मिला। जिन कर्जों के कारण नागरिकों ने अपनी स्वतन्त्रता व जायदाद रेहन रख दी थी उनको सोलन ने रद्द कर दिया। गरीबों को सस्ता अन्न मिले इसलिए उसने अन्न का बाहर भेजना मना कर दिया। सबसे नीचे-वर्ग के नागरिक भी अब मैजिस्ट्रेटों के चुनाव में भाग ले सकते थे, और अपने मुकदमें

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए जूरियों को चुन सकते थे। पाइसिसट्रेटस् ने राज की ओर से साधारण किसानों को कर्ज दिया। कर कम किया। व्यापार को प्रोत्साहन दिया। क्लाइसथिनिज़ ने नागरिकों को जाति (tribe) के आधार पर नहीं वरन् निवास्थान और व्यवसाय के आधार पर विभाजित किया। एथेन्स की राष्ट्रीयता की नींव यही थी। प्रजातन्त्र तभी चल सकता था, जब कि रगों के खून पर नहीं वरन् आर्थिक व प्रदेशीय आधार पर राज-संगठन हो।

एथेन्स के इस विधान के अनुसार २० वर्ष के ऊपर के नागरिक लोकसभा के सदस्य थे। साल में दस वार इसकी बैठक होती, यहां धार्मिक और वैदेशिक समस्याओं पर विचार होता था। अधर्म, राजद्रोह और कर्त्तव्य की अवहेलना प्रभृति दोषों का न्यायालय भी यही था। कर्त्तव्यच्युत राजकर्मचारी की मुकदमें की सुनवाई होने पर यहीं उन्हें सजा मिलती। उन्हें जुर्माना, देशनिकाला या मृत्युदण्ड की सजा मिलती थी। विरोधी दलों के नेताओं की नीति यदि खतरनाक मालूम होती तो असेम्वली में वोट लिया जाता, और जिस नेता के विरुद्ध अधिक वोट आता वह १० वर्ष के लिए राज छोड़ कर बाहर जाना स्वीकार करता था। सेनापतियों का चुनाव भी असेम्वली ही करती थी। दस जातियों के दस सेनापति का एक वोर्ड होता था। युद्ध में इनकी सेना इनके मातहत में लड़ती थी। निर्वाचित मैजिस्ट्रेटों को ये लोग राजशासन में मदद देते थे। इनलोगों को वेतन नहीं मिलता था, इसलिए अमीर नागरिकों को ही इन पदों पर चुना जाता था। ये निर्वाचित उच्चकर्मचारी एक वर्ष तक राजकार्य चलाते थे। कोई स्थायी नौकरशाही या वेतनभोगी अफसर नियुक्त नहीं था। किसी भी पद के लिए सम्पत्ति रखना जरूरी गुण नहीं समझा जाता था। पेरिक्लस् ने अफसरों को वेतन देने की प्रथा चलाई। साधारण और योग्य नागरिक अब उच्च पद का भार उठा सकने में समर्थ थे। प्रजातंत्र की सफलता के लिए यह जरूरी सुधार था।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरिकता को सीमित किया गया। विदेशी अब नागरिक नहीं बन सकते थे। पेरिक्लिस् ने देखा कि प्रजातंत्र अब मंहगी हो गई है, इसे चलाने के लिए अब बहुत धन की जरूरत थी, और प्रत्येक नागरिक को अब राज से वेतन मिलने का मौका था। इसलिए उसने यह कानून बनाया कि जिनके मां-बाप शुद्ध एथेनिअन थे वे ही नागरिक हैं। अतः नागरिकों की संख्या कम हो गई। रूढ़िवादी दल ने इसका विरोध किया। पर पेरिक्लस् डटा रहा।

एथेन्स् का लोकतन्त्र योरप के लिए आदर्श रहा। यहां जनता का राज्य जनता के द्वारा जनता के लिए था। लोकतन्त्र की सफलता का यह जीता जागता प्रमाण था कि इस समय एथेन्स में विद्या, कला और विज्ञान की आशातीत उन्नति हुई। राजनीति के क्षेत्र में तो एथेन्स सारे ग्रीस का अगुआ था। तभी तो पेरिक्लस् की यह आकांक्षा थी, कि एथेन्स सभी यूनानियों (Hellas) का स्कूल बन जाय (Athens—the School of the Hellas.)।

पर हमें इस लोकतन्त्र के एक व्याघात को नहीं भूलना चाहिये। लोकतन्त्र की सफलता और वैभव का लाभ सिर्फ नागरिकों को ही प्राप्त था। प्रत्येक एथेन्सवासी नागरिक नहीं थे। विदेशी व्यापारी जो एथेन्स में बस गये थे, जिन्हें (Metics) कहा जाता था, नागरिक-अधिकारों से वंचित थे। पर उन्हें राज-कर्त्तव्यों से भी छुट्टी थी। इसलिए वे अपना समय और अपनी बुद्धि व्यापार और उद्योगों में पूरा व्यय करते थे। इसलिए धीरे २ नागरिकों को उन्होंने धातु-उद्योगों से व तिजारत के क्षेत्र से वस्तुतः बाहर ही कर दिया था। राजनीतिक अधिकारों से वंचित होकर भी ये विदेशी आर्थिक क्षेत्र में अपना प्रभुत्व जमाए हुये थे। पर दासों की हालत दयनीय थी। उनका कोई अधिकार नहीं था। उन्हें खानों में काम करना पड़ता था। नागरिकों की चाकरी करनी पड़ती। दासों की आवश्यकता राज और नागरिक को बराबर रहती थी, इसलिए दासों का व्यापार भी होने लगा। बड़े २ ठीकेदार दासों को अपने मुनाफे

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए यहां-वहां काम पर नियुक्त करते थे। विदेशियों ने भी अपनी दूकान पर दास रखना शुरू कर दिया था। दासों का शोषण पर ही एथेन्स का वैभव आश्रित था। दासों और विदेशियों की संख्या एथेन्स के नागरिकों की संख्या से कम नहीं थी। ४३१ ई० पू० एथेन्स की जनसंख्या ३१५५०० थी, इनमें १७२००० नागरिक थे, जिनमें बाल, युवा और वृद्ध सभी शामिल हैं। २८५०० विदेशी थे, और ११५००० दास। यह व्यस्क लोगों की संख्या है। अतः यह स्पष्ट है कि यथार्थ नागरिक गैरनागरिक से संख्या में कम ही थे। इस दृष्टि से अल्पजनों का ही राज्य था।

३

यूनान-पर्शिया का युद्ध

कुरुष प्रथम के नेतृत्व में पर्शिया ने एक वृहत् साम्राज्य की स्थापना की थी। बेबिलोन का साम्राज्य ५३९ ई० पू० पर्शिया के अन्तर्गत आ गया था। एशियामाइनर का प्रबल राज्य-लिडिया का भी नाश हो चुका था। इसके पश्चात् एशियामाइनर के तटस्थित और निकटस्थ प्रायद्वीपों के यूनानी उपनिवेशों की स्वतन्त्रता अपहरण हुई। पर्शिया का सम्राट् ने इन यूनानियों पर भी काफी कर लगाया। पर्शिया शासन निरंकुश राजतन्त्र था। यूनानी इस प्रकार के शासन से पीड़ित रहना नहीं सह सकते थे। अन्त में इन उपनिवेशों ने मिलेटस् के नेतृत्व में विद्रोह खड़ा कर दिया। यूनान इस परिस्थिति से अलग नहीं रह सकता था। पर्शिया ऐसा शक्तिशाली राज की सीमा यूनान के निकट बढ़ आना उनकी स्वतन्त्रता के लिए घातक था। यूनानी राज्यों में एकता नहीं थी, इसलिए यह खतरा और भी अधिक नजदीक आ गया।

मारथन की लड़ाई

एथेन्स ने पर्शिया के विरुद्ध इन विद्रोही आइओनियों की मदद के लिए २० जहाज का जंगी बेड़ा भेजा। पर्शिया-सम्राट् दरायुश् ने रंज

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर यूनान पर ही आक्रमण करने को ठानी। ४९० ई० पू० पर्शिया का जंगी बेड़ा ग्रीस पहुंच गया और पर्शिया की सेना मारथन की खाड़ी में उतर गयी। एथेन्स की ओर बढ़ने का विचार था। एथेन्स और ग्रीस के लिए यह बड़ा संकट का समय था पर एथेन्सवासियों ने धैर्य और साहस से काम लिया। मारथन की लड़ाई में पर्शिअनों को मुंह की खानी पड़ी। पर पर्शिया से भय का अन्त नहीं हुआ था। यह निश्चित था कि पर्शिया इस हार का बदला लेने की चेष्टा करेगा। एथेन्स का महान पुरुष थेमिस्टोक्लस् (Themistocles) ने यह स्पष्ट देखा कि एथेन्स की सफलता के लिए नाविक-शक्ति की प्राप्ति आवश्यक है। उसने एक शक्तिशाली जहाजी-बेड़ा का संगठन किया।

थर्मोपल्ली का युद्ध

दरायुश के बाद जेरेक्सस् (Xerexes) ने यूनान पर स्थल और जल मार्ग से आक्रमण करने की एक वृहत् योजना बनायी। फिनिशिअनों से भी इसमें मदद मिली। समुद्र में तो एथेन्स का जहाजी-बेड़ा मार्ग रोके खड़ा था। स्थलमार्ग से पर्शिया की सेना हेलेस्पौन्ट लाँघ कर यूनान की ओर बढ़ी। थर्मोपोइली (Thermopylae) की तंग-घाटी में स्पार्टा की एक छोटी टुकड़ी ने वीर लिओनिडास् (Leonidas) के नेतृत्व में पर्शिया की बड़ी फौज का रास्ता रोका। मुट्ठी भर बहादुर सिपाही अपने देश की आन पर मर मिटे। वीरों की गाथाओं में लिओनिडास् और उसके साथियों का यह साहसिक यद्यपि असफल प्रयास स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य हैं। पर्शिया की सेना एट्टिका (Attica) की ओर बढ़ी, और एथेन्स पर धावा बोल दिया। एथेन्सवासियों के लिए यह बड़ा परीक्षाकाल था। पर उन्होंने अपना घर-बार और प्रिय नगर को ध्वंस होना मंजूर किया, पर अपनी स्वतन्त्रता और आत्मा का अपसरण नामंजूर किया। एथेन्स जला दिया गया। पर पर्शिया का स्वप्न न पूरा हुआ, और सालमेज (Salmais) की समुद्रिक लड़ाई में (४८० ई० पू०) एथेन्स ने पर्शिया को बुरी तरह हराया। थेमिस्टोक्लस् की दूरदर्शिता का

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मुख्य परिणाम था। पर एथेन्सवासियों ने बड़ी कृतघ्नता दिखाई, और थेमिस्टोक्लस् को पारितोषिक के बदले विरोध ही मिला।

सैलमिज़ की लड़ाई के बाद पर्शिया की प्रधान सेना तो वापस हो गई पर उसकी स्थल-सेना ने ऐथेन्स को ध्वंश किया। स्पार्टा, ऐथेन्स और अन्य मित्रों की संयुक्त सेना ने पर्शियनों को प्लाटिया (Platea) की लड़ाई (४७९ ई० पू०) में बुरी तरह हराया। यूनान का अब पर्शिया की सेना से पींड छुटा और एशिया का स्वेच्छाचारी शासन के भय से यूनान मुक्त हो गया। एथिनिअनों की मदद से आइओनिया प्रभृति एजिअन समुद्र व एशियामाइनर स्थित यूनानी उपनिवेशों ने भी पर्शिया के वन्धन को तोड़ डाला। यूनानी-संसार अब स्वतन्त्र था। योरप के इतिहास के लिए यह अत्यन्त महत्वपूर्ण था। पश्चिमी लोकतन्त्र और मुक्त कला का विकास अब स्वतन्त्र रूप से हो सका।

एथेन्स का साम्राज्य और लोकतन्त्र का विकास।

यूनान से पर्शियनों को खदेड़ने के बाद स्पार्टा युद्ध से उदासीन हो गया। एथेन्स की समुद्रीय शक्ति का एजिअन सागर में एकाधिपत्य हो गया, और अपने नाविक-बेड़ा की मदद से किमोन (Cimon) के नेतृत्व में सभी यूनानी उपनिवेशों को एथेन्स ने पर्शिया के चंगुल से मुक्त कर दिया। पर पर्शिया के प्रत्याक्रमण का भय अभी भी था। इसलिए शक्तिशाली एथेन्स के संरक्षण में एकता बनाये रखना जरूरी था। एक संयुक्त रक्षा-दल की आवश्यकता स्पष्ट थी। एथेन्स ने इस दिशा में नेतृत्व किया। एथेन्स का शक्तिशाली जहाजी बेड़ा इस योजना का आधार था। धनी नगर-राज्यों ने जहाजों से और साधारण राज्यों ने इसके बदले कर के रूप में धन से संयुक्त-जहाजी-बेड़ा व रक्षा-दल को मजबूत करने में हिस्सा बंटाया। इसके लिए एक स्थायी रक्षा-संघ की स्थापना हुई, जिसका केन्द्र डेलोस (Delos) था। संयुक्त जहाजी-बेड़ा का नेता एथेन्स था, और उसे ही

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदस्य-राज्यों से चन्दा वसूल करने का अधिकार मिला। इस संघ को एथेन्स ने धीरे २ अपना साम्राज्य का रूप दे डाला। जो सदस्य इस संघ से निकलना चाहते थे उन्हें एथेन्स ने अपनी सैनिक शक्ति से जबरदस्ती रोक दिया। तीन सदस्यों को छोड़ कर सभी सदस्य-राज्यों से जहाज नहीं वरन् चन्दा ही लेना शुरू किया, जिसका वास्तविक अर्थ था कि स्वतन्त्र सदस्य अब कर देने वाले आधीन राज्य हो गये थे। कर बलपूर्वक वसूला जाता था। पीछे चलकर कर में काफी वृद्धि की गई थी। पर्शिया का भय हट चुका था, पर संघ को एथेन्स ने अपने स्वार्थ के लिए बलपूर्वक कायम रक्खा। आधीन-राज्यों के नागरिकों को एथेन्स जाकर एथेन्सवासी जूरियों के सामने अपने मुकदमें की सुनवाई में भाग लेना वाध्य किया गया। संघ का केन्द्र डेलोस् से हटा कर एथेन्स ले आया गया। एथेन्स के साम्राज्यवादी नीति से उसके आधीन-राज्य बहुत क्षुब्ध थे। मुक्तिदाता (Liberator) एथेन्स स्वयं साम्राज्यवादी बन बैठा। पर्शिया के स्थान पर एथेन्स की दासता स्थापित हो गई। पर शक्तिशाली एथेन्स के सामने इन कमजोर प्रायद्वीपों की कुछ न चली। पर एथेन्स के साम्राज्य से यूनानी संसार को कुछ फायदा भी हुआ। एजिअन सागर में समुद्री डाकुओं का उत्पात कम हो गया। आर्थिक उन्नति हुई। वढ़ती आवादी के लिए अन्न और काला सागर से मछली का आयात होने लगा।

एक तरफ जब एथेन्स यूनानी राज्यों को बेड़ी पहना रहा था, दूसरी ओर एथेन्स में लोकतन्त्र की प्रगति द्रुतगति से हो रही थी। साम्राज्यवादी एथेन्स लोकतन्त्र का पथप्रदर्शक था। प्रबल प्रर्शिया पर विजय और एक विस्तृत समुद्रीय साम्राज्य की स्थापना ने साधारण नागरिकों में अतुलनीय साहस व आत्मविश्वास भर दिया। कुलीन श्रेणी का (aristocracy) का रहा सहा प्रभाव भी मिटा देने के लिए वे आतुर हो उठे। किमोन ने पर्शियनों को एजिअन समुद्र से खदेड़ दिया

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था, और एथेन्स का साम्राज्य की नींव डाली थी। पर वह कुलीन वर्ग का था और स्पार्टा से मैत्री का पोषक था। उसे पदच्युत किया गया, और उसे देश निकाला (ostracise) की सजा मिली। किमोन का पतन जनता का कुलीनवर्ग पर विजय का चिह्न था। कुलीनों की सभा (Council of Elders) की राजनीतिक शक्ति खत्म कर दी गई। सार्वजनिक 'पांच हजार की सभा' का महत्व बढ़ गया। राजकार्य यहीं सम्पन्न होने लगा। नागरिक-जूरियों की संख्या बढ़कर ६००० पहुंच गई, और कई भागों में बँट कर ये न्यायालय बन गये। गरीब और साधारण नागरिक भी जूरी बन सके, इसलिए एक नये कानून के अनुसार जूरियों को वेतन मिलने लगा। प्रत्येक नागरिक प्रायः सभी पदों के लिए उपयुक्त था। इसमें भेद भाव न उठ खड़ा हो इसलिए लौटरी के द्वारा पदों पर अफसरों की नियुक्ति होती। सिर्फ दस सेना-नायकों का विधिवत् चुनाव होता। प्रत्येक अदना सा नागरिक राज्य का प्रभु बन सकता था। राजशासन में इसलिए स्थिर-स्वार्थों (Vested interests) का स्थान नहीं था। इतनी अधिक संख्या में नागरिक राज के शासन में प्रत्यक्ष भाग लेने लगे कि नागरिकों को राजनीति में अतुलनीय और सराहनीय शिक्षा और अनुभव मिलने लगा। प्राचीन राज्यों में एथेन्स-निवासी सबसे अधिक बुद्धिमान और शिक्षित होने लगे। पेरिक्लिस इस लोकतन्त्र का सर्वेसर्वा था। किमोन के बाद इस महापुरुष का उदय हुआ।

पेरिक्लिस् ने लोकतंत्र की ही उन्नति नहीं की, पर साम्राज्य से आर्थिक लाभ उठाने में कोई कसर नहीं रक्खा। एथेन्स् एक बड़ा तिजारती राज्य बन गया। एथेन्स के सिक्के दूर २ देश में चलते थे। एथेन्स के बन्दरगाह में दूर देशों के माल उतारे और लादे जाते थे। एथेन्स एक औद्योगिक नगर बन गया, और यहां के कारखाने में बने माल का बाजार पूरा भूमध्यसागर का क्षेत्र था। एथेन्स् बड़ा ही समृद्ध हो गया।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस धन का उपयोग कला की उन्नति में की गई। कला के भिन्न २ रूपों में एथेन्स ने इस समय प्रशंसनीय प्रतिभा दिखाई। शिक्षा, विद्या और साहित्य के क्षेत्र में तो एथेन्स लासानी था। ध्वंस एथेन्स की जगह एक सुन्दर और समृद्ध एथेन्स उठ खड़ा हुआ।

एथेन्स-स्पार्टा युद्ध।

एथेन्स का विस्तृत साम्राज्य और वैभव स्पार्टा को फूटी आँख नहीं सुहाता था। स्पार्टा दक्षिण-पश्चिम यूनान में एक मध्यदेशीय (inland) राज्य था। यहां डोरिअनों की आर्यशाखा ने अपनी प्रभुता स्थापित की थी। स्पार्टा में राजनीतिक विकास एथेन्स से भिन्न रहा। यहां सैनिक-कुलीनों (Warrior-nobility) ने अपने पशुबल से असंख्य बहु-संख्यक निवासियों पर अपना प्रभुत्व जमाये रखा। अपने रक्त की शुद्धता के लिए इनलोगों ने दूसरी जातियों से विवाह-सम्बन्ध नहीं रखा। इसका परिणाम यह हुआ कि पूर्वजों की युद्धप्रिय प्रवृति इनमें वर्त्तमान रही। सफल सैनिक होना ही स्पार्टा के नागरिकों का आदर्श था और यह जरूरी था, क्योंकि अल्पसंख्यक नागरिक अपनी रक्तशुद्धता और सैन्य बल पर ही बहुसंख्यकों पर आधिपत्य कायम रख सकते थे। उनके लिए दर्शन, कविता व राजनीति व्यर्थ की चीजें थीं। व्यापार वे हेय दृष्टि से देखते थे। उनका सबसे उत्तम कर्त्तव्य था संसार का सबसे सफल और साहसी सैनिक होना। इसलिए शारीरिक व्यायाम और नागरिकों में सहयोग की आवश्यकता पर वे बहुत जोर देते थे। इसलिए बचपन से ही प्रत्येक स्पार्टन् को यह अनुभव कराया जाता था कि वह न अपने लिए और न अपने परिवार के लिए वरन् अपने नगर-राज्य के लिए जीता है। जो बच्चे अस्वस्थ रहते उन्हें मरने के लिए छोड़ दिया जाता था। स्वस्थ बच्चों को उचित व्यायाम व कठिन परिश्रम करना पड़ता जिससे वे स्वस्थ और विश्वासपात्र नागरिक बन सकें। लड़के-लड़कियों सभी को शिविर-जीवन बिताना पड़ता था।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जोखिम का काम उठाना पड़ता था। चोरी करने कहा जाता, और चोरी पकड़ाने पर सजा मिलती, सफल चोरी करने पर तो वाहवाही मिलती थी। एक बालक एक लोमड़ी के बच्चे को चुरा लाया था, और उसे अपने पैजामे के अन्दर छिपा लिया था। लोमड़ी का बच्चा उसे काटते २ लहू-लूहान कर छोड़ा, और बच्चे की जान चली गई, पर वह किसी को अपनी चोरी का पता नहीं देना चाहता था। स्काउटिंग उनकी दिनचर्या थी, और भोजन की चोरी मामूली कार्यक्रम,। उनकी शिक्षा बड़ी ही कठोर होती और, उन्हें कष्ट सहने की आदत हो जाती थी। बड़े होने पर ये लोग हेलोट् (Helot)—गैरनागरिक स्पार्टन्—पर जासूसी करते, और कोई भी साहसी व विद्रोही हेलोट् को चुपचाप खतम कर देते थे।

इस तरह समूची राजशक्ति का व्यवहार बहुसंख्यक हेलोट् को दबाने में किया जाता था। सैन्यबल पर ही राष्ट्र की सारी पूंजी लगा दी गई थी। लोकतंत्र व सांस्कृतिक जीवन का महत्व कुछ नहीं था। स्पार्टा का नियन्त्रित जीवन एक कहावत बन गयी है। व्यक्ति के विकास की एकदम गुंजाइश नहीं थी। आर्थिक व्यवस्था साधारण और अविकसित थी। इस तरह स्पार्टा और एथेन्स एक दूसरे से एकदम भिन्न थे। एथेन्स का लोकतन्त्र, साम्राज्य-विकास, और व्यापारिक उन्नति स्पार्टा के लिए असहनीय हो गई। स्पार्टा ने एथेन्स के आधीन-राज्यों की स्वतंत्रा का का पक्ष लेकर यूनान के नगर-राज्य की स्वतंत्रता का जन-प्रिय सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उसे कोरिन्थ (Corinth) नगर से बहुत सहायता मिली। कोरिन्थ उत्तर-दक्षिण यूनान को मिलानेवाले तंग भाग में स्थित था। व्यापार का यह एक केन्द्र था, और कई उपनिवेश भी इसने स्थापित किया था। एथेन्स की व्यापारिक व नाविक-शक्ति की उन्नति से कोरिन्थ खार खाए बैठा था। इसलिए एथेन्स के विरोधी-गुट में सक्रिय भाग लेना कोरिन्थ के लिए स्वाभाविक था। अतः एथेन्स के विरूद्ध जब काला-सागर के उत्तर-पूर्व स्थित आधान-राज्यों ने विद्रोह

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया तो स्पार्टा और कोरिन्थ ने उनकी सहायता करने की ठानी। अतः स्पार्टा-एथेन्स युद्ध शुरू हुआ, जो ४३१-४०४ ई० पू० तक चलता रहा। तीस वर्ष की इस लड़ाई से यूनान का बहुत नुकसान हुआ। एथेन्स की रक्षा उसकी मजबूत किलेबन्दी से हुई। पर एटिक्का-क्षेत्र ध्वंश हो गया। एथेन्स का साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। पर युद्ध का अहम् प्रश्न—स्पार्टा या एथेन्स में किसका नाश हो जाय—का कोई उचित उत्तर न मिला। एथेन्स की जलसेना को स्पार्टा और उसके साथी नष्ट न कर सके; स्पार्टा की सेना को स्थल पर एथेन्स बर्बाद नहीं कर सका। स्पार्टा की स्थलशक्ति और एथेन्स की समुद्रीय शक्ति अपने २ क्षेत्र में विजयी रही।

इस लम्बी लड़ाई का परिणाम काफी महत्वपूर्ण है। स्पार्टा यूनान का वास्तविक स्वामी हो गया। पर राज्य-स्वतन्त्रा का यह पोषक नगर-राज्यों के लिए घातक सिद्ध आ, और स्पार्टा-निवासी सारे यूनान में घृणा के पात्र बन गये। एथेन्स का काफी नुकसान हुआ। एटिक्का की बर्बादी हुई, और साम्राज्य का ह्रास हुआ। एथेन्स और स्पार्टा की इस लम्बी लड़ाई में दोनों प्रभावशाली राज्य कमजोर हो गये, और थिबिस् (Thebes) नामक यूनानी-नगर राज्य की उन्नति शुरू हो गई। इयामिनोडस् के नेतृत्व में थिबिस् ने कुछ दिनों तक अभूतपूर्व सैनिक-शक्ति का उदाहरण दिया। स्पार्टा की सेना को भी मार भगाया, और दक्षिण यूनान को कई बार रौंदा। सैनिकों की एक नये ढंग की युद्ध-पंक्ति का आविष्कार किया। इसी युद्ध-कला को अपना कर मैसिडोनियनों ने विश्व-विजय का स्वप्न देखा। ३० वर्ष की लगातार लड़ाई का परिणाम था कि यूनानी सैनिक युद्ध से इतने अभ्यसत हो गये कि वे व्यवसायी सैनिक (Professional Soldier) बन गये। जब पर्शिया में राजगद्दी के लिए लड़ाई हुई तो बहुत से यूनानी सैनिकों ने एक दल की नौकरी कर ली थी। अन्त में पर्शिया का एक क्षत्रप (Satrap) ने उन्हें

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कत्ल करने की साजिश की, पर जेनोफोन (Zenophon) के नेतृत्व में १०००० यूनानी सिपाही दुर्गम रास्तों से होते हुये भाग निकले, और काला समुद्र के तटवर्त्ती एक यूनानी बन्दरगाह पर पहुंच कर ही चैन की सांस ले सके। इतिहास में "दस हजारों की यह यात्रा" एक रोमांचकारी घटना है।

एथेन्स स्पार्टा का युद्ध यूनानी नगर-राज्यों के पारस्परिक अनबन का एक वृहत रूप है। ये नगर-राज्य आपस में बराबर झगड़ते रहे। एकता का सम्पूर्ण अभाव था। इस तरह लगातार युद्ध में लिप्त रहने का परिणाम था यूनानियों की राजनीतिक असफलता। देश कमजोर हो गया। प्रत्येक नगर-राज्य बारी-बारी से देश को एक करने में असफल सिद्ध हुआ। जहां यूनानी-राज्य नाकामयाब साबित हुये वहां मैसिडोन और आगे चलकर रोम ने सफलता पाई।

४

मैसिडोन का उदय और सिकन्दर

यूनान के उत्तरी सीमा पर बालकन की पहाड़ी क्षेत्रों में यूनानी सभ्यता का प्रवेश नहीं के ही बराबर था। मैसिडोन इसी प्रदेश का एक राज्य था। यहां के निवासी असभ्य थे, उनकी भाषा आर्यभाषा ही थी पर यूनानी लोग इस अविकसित भाषा को नहीं समझते थे। यूनानी सभ्यता की पहली चाशनी मैसिडोन पर धीरे धीरे चढ़ रही थी। फिलिप की मां को यह गर्व था कि अपनी वृद्धावस्था में उसे लिखने का ज्ञान हो गया था। फिलिप ने यूनानी शिक्षा प्राप्त की थी, और जब वह ३६० ई० पू० मैसिडोन का राजा हुआ तो उसने यूनान में एकता का अभाव का ठीक अर्थ लगा लिया। उसकी यह आकांक्षा थी कि वह फूट के स्थान पर यूनान में एकता स्थापित करे। उसने मैसिडोन के बलिष्ठ किसानों की एक स्थायी सेना बनाई और

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यूनानी युद्धव्यूह को अपना कर उसे और दृढ़ किया। पैदल सेना और घुड़सवार को एक दूसरे का पूरक बनाया।

उसने साम्राज्य विस्तार आरम्भ किया, और पूर्व और उत्तर में डेनूब और हेलेसपोन्ट तक पहुंच गया। मैसिडोन की उन्नति से एथेन्स घबड़ा गया। प्रसिद्ध वक्ता डेमोस्थिनिज (Demosthenes) ने असभ्य मैसिडोनियनों के विरुद्ध विष उगलना शुरू कर दिया। उसकी वाक्यशक्ति के प्रभाव में आकर यूनानी नगर-राज्यों ने फिलिप के विरुद्ध विद्रोह किया, पर वे असफल रहे, (३३८ ई० पू०) और फिलिप समूचे यूनान के, (स्पार्टा को छोड़ कर) संघ का नेता बन बैठा। एशियामाइनर के यूनानी नगर-राज्यों की स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए फिलिप ने युद्ध शुरू किया। पर वह षड़यन्त्रकारियों के द्वारा मारा गया।

सिकन्दर का उदय

उसका पुत्र सिकन्दर २० वर्ष की आयु में ३३६ ई० पू० गद्दी पर बैठा। महान् अरस्तू (Aristotle) उसका गुरु था। सिकन्दर यूनानी संस्कृति में पला, और अपने को यूनानी सभ्यता का पोषक समझता था। पर पहले उसे यूनान की ही समस्या सुलझानी पड़ी। यूनान के नगर-राज्य मैसिडोन के आधिपत्य से छुटकारा चाहते थे। थिबिस् में फिलिप के मरने के बाद दो बार विद्रोह हुआ। सिकन्दर ने सारे यूनान को एक पाठ पढ़ाना निश्चय किया। थिबिस् की सेना कुचल दी गई, और सारे नगर को बिल्कुल नेस्तनाबूद कर दिया गया। अब यूनान के सभी नगर सिकन्दर की प्रभुता मानने ही में अपना कल्याण समझने लगे। सिकन्दर यूनान के राज्य-संघ का नेता निर्वाचित हो गया और उसकी सेना में सभी नगर-राज्यों ने अपनी टुकड़ी जोड़ दिया। स्पार्टा इस संघ से बाहर ही रहा।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्शिया से युद्ध ।

सिकन्दर की महान् आकांक्षा थी पर्शिया साम्राज्य का नाश करना। पर्शिया ने यूनान और यूनानी संस्कृति पर धावा किया था। सिकन्दर का आक्रमण जवाबी हमला था; पर्शिया के विरुद्ध सिकन्दर यूनानी-सभ्यता का प्रतीक बन गया। यूनानी और मैसिडोनिअन सिपाहीयों को लेकर सिकन्दर एशियामाइनर पहुंच गया और ग्रैनिकस् नदी के तट पर पर्शिया-सम्राट् को पराजित किया (३३४ ई० पू०), और उत्तर-पूर्व की ओर बढ़ कर मेसोपोटेमिया की सीमा पर पहुंच गया। दराउश तृतीय ने इस्सस् की खाड़ी में स्वयं ही सिकन्दर का सामना किया, पर इस बार भी सिकन्दर ही विजयी रहा (३३३ ई० पू०)। दराउश ने अब सन्धिवार्ता शुरू की : यूफ्रेटिज़ के पश्चिम सिकन्दर का राज्य रहेगा, और उस नदी से पूर्व दराउश का क्षेत्र होगा। पर सिकन्दर संसार विजयी होने का स्वप्न देखता था। उसने सन्धि नामंजूर किया। पूर्व की ओर बढ़ने की उसकी आकांक्षा थी पर वह पीछे से आक्रमण से अपनी रक्षा करना जरूरी समझता था। इसलिए उसने पश्चिम की ओर मुड़ कर फिनिशअनों का केन्द्र टाइर (Tyre) प्रायद्वीप पर अपना कब्जा कर लिया। यूनानियों ने टाइर से लेकर एशियामाइनर के तट तक एक पुल बना लिया, और फिर जहाजों से प्रायद्वीप को घेर लिया था। इसके बाद सिकन्दर ने (पर्शिया का विजित-देश) मिश्र पर अपना अधिकार कर लिया। इस तरह पश्चिम से आक्रमण से अपनी रक्षा करके सिकन्दर पूर्व की ओर बढ़ा, और ३३१ ई० पू० ननवां के पूर्व अर्बला के निकट दरायुश से फिर युद्ध हुआ, और सिकन्दर की उत्तम युद्ध-कला और व्यूह-रचना के परिणाम-स्वरूप पर्शिया की विशाल सेना पराजित हो गई। दराउश भाग गया, सिकन्दर ने अपने को पर्शिया-साम्राज्य का उत्तराधिकारी समझा। पर्शिया की रानियों के प्रति अच्छा बर्ताव किया। बड़े २ सरमायदारों की इज्जत की। वह

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्व-पश्चिम में सामञ्जस्य व एकता लाना चाहता था। वह पूर्व और पश्चिम-दोनों दुनियां—को मिलाना चाहता था। उसकी इस प्रवृति को यूनानी सिपाही न समझ सके और न सराह सके। दराउश का पीछा करते सिकन्दर पर्सिपोलिस (राजधानी) पहुंचा और उसे जला डाला। पर दराउश वहां भी न मिला; मिली उसकी लाश कुछ दूर और पूर्व जाने पर। दराउश की लाश को सिकन्दर ने ससम्मान उसके सम्बन्धियों के पास भेज दिया (३३० ई० पू०)

भारत पर चढ़ाई

इसके पश्चात् सिकन्दर पूर्व की ओर बढ़ता गया। अफगानिस्तान विजय करके वह भारत की उत्तर-पश्चिम सीमा पर पहुंच गया। पहाड़ी इलाकों में उसका काफी विरोध हुआ, और उसे कभी क्रूर आचरण पर उत्तर आना पड़ा। मसग्गा के किला पर कब्जा करने के पश्चात् उसने सैकड़ों मर्द-औरतों की हत्या की आज्ञा दी। ३२७ ई० पू० वह सिन्धुतट पर पहुंच गया। उत्तर-पश्चिम भारत में उस समय फूट का बोलबाला था। तक्षशिला का राजा अम्भी और झेलम-चेनाव के मध्यस्थित प्रदेश का राजा पुरु में घोर दुश्मनी थी। अम्भी ने सिकन्दर की अधीनता स्वीकार कर लिया, और सिकन्दर तक्षशिला पहुंच गया। पोरस से ३२६ ई० पू० झेलम की लड़ाई हुई। पोरस हार कर पकड़ा गया, पर सिकन्दर ने उसके साथ राजकीय वर्ताव किया। सिकन्दर वीर दुश्मन की इज्जत करना जानता था, और ऐसे दुश्मन की मैत्री का महत्व भी समझता था। उसने पुरु का राज्य लौटा दिया, और आगे बढ़ा। ब्यास नदी तक यनानी सेना पहुंच गई। इसके पर्व मगधराज नन्द का साम्राज्य था। इस राज्य की शक्ति के विषय में यूनानियों को पता लग चुका था। देश से निकले उन्हें कई वर्ष हो गये थे। वे अब थक भी गए थे। इसलिए सिकन्दर को संसार विजय का सपना छोड़ कर वापस लौटना पड़ा। पर इस वापसी यात्रा

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में सिन्धु नदी के दक्षिण-क्षेत्र में मालव-क्षुद्रक गणराज्यों ने सिकन्दर का कस कर विरोध किया, और एक बार सिकन्दर घायल भी हो गया। खैर किसी तरह सिकन्दर हिन्दुस्तान से वापस लौट सका, और बेबिलोन में एकाएक बीमार पड़ा और वहीं उसकी मृत्यु हो गई (३२३ ई० पू०)।

सिकन्दर की महानता।

सिकन्दर एक महान् विजेता ही नहीं वरन् सभी दृष्टि से एक महान पुरुष था। युद्ध में बराबर सलग्न रहने पर भी विज्ञान व अनुसंधान में उसकी रूचि कम नहीं थी। नील नदी में सालाना बाढ़ क्यों आता है, इसका कारण का पता लगाने के लिए उसने अपने दूत भेजे। कास्पिअन सागर के चारो ओर परिक्रमा करने के लिए उसने एक जहाजी बेड़ा का संगठन किया। अपने साथ वह यूनान से कई वैज्ञानिकों को लाया था, और उनकी मदद से प्राकृतिक इतिहास (Natural-history) के लिए जरूरी नमूने अरस्त् (Aristotle) के पास भेजा। अपने विशाल साम्राज्य के सुशासन के लिए वह बराबर व्यस्त रहा। उसे यूनानी सभ्यता पर गर्व था। इसलिए उसने विजित देशों में यूनानी सभ्यता का बीज बोना निश्चय किया। यूनानियों को अपने विधान (Constitution) के अनुकूल राज्य में रहने की आदत थी। उसने विजित देशों में यूनानी राजशिविर व नगर की स्थापना की, जहां यूनानी सभ्यता प्रचलित थी। पूर्व-पश्चिम में मैत्री भाव रहे इसलिए इसने स्वयं एक एशियाई राजकुमारी रोक्साना से व्याह किया, और अपने सेनापतियों को पर्शिया की औरतों से शादी करने में प्रोत्साहन दिया।

पर विजय का नशा सिकन्दर पर चढ़ चुका था। वह एथोस के पहाड़ को अपनी एक विशाल मूर्ति में परिवर्तन करने का स्वप्न देखता था। वह अपने को देवता समझने लगा, और लोगों को ऐसा समझने के लिए उत्साहित किया। मिश्र में इसको जिउस्-एमोन

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Zeus-Amon, यूनान और मिश्र के प्रमुख देवताओं) का पुत्र कह कर सम्मान किया गया। पूर्वीय राजाओं के दरबार की उसने नकल की, और अपने अफसरों को जमीन चूमकर घुटने टेक कर सलाम करने को बाध्य किया। अतः योरप में स्वेच्छाचारी एकतन्त्र और राजा का दैवी अधिकार का सिद्धान्त का प्रवेश हुआ।

साम्राज्य का पतन।

सिकन्दर की मृत्यु इतिहास में एक दुखद घटना थी। सिकन्दर ने यूनानी संसार और एशियाई संस्कृति को मिलाने का प्रयास किया था। उसकी अकाल मृत्यु से यह प्रयोग असफल रहा। यूनानी संस्कृति का प्रभाव विस्तृत था ही। अब इसका राजनीतिक प्रभाव भी उससे अधिक विस्तृत हो गया। इसकी मृत्यु के बाद यूनान का पतन शुरु हो गया। सिकन्दर का एशियाई साम्राज्य उसके सेनापतियों में बंट गया, और इनकी पारस्परिक शत्रुता के फलस्वरूप साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। मिश्र में टोलमी वंश (Ptolemy) का स्वतन्त्र राज्य स्थापित हो गया, और पूर्व भूमध्यसागर व एजिअनसागर के क्षेत्र में मिश्र का साम्राज्य फैल गया। मैसिडोन का नेतृत्व अब यूनानी नगर-राज्य नहीं सह सकते थे। यूनान में फिर पुराना नक्शा लौट आया। नगर-राज्यों की अनबन शुरू हो गई। मैसिडोनिया को यूनान के नगर-राज्यों से बहुत कालतक युद्ध करते रहना पड़ा। यूनान की व्यापारिक उन्नति क्षीण हो गई। एशिया में सिरिया की राजधानी एन्टि-ओक (Antioch), मिश्र में एलेकिजन्ड्रीया पूर्व भूमध्यसागर में व्यापार के नेता बन गये। धनाभाव के कारण अब यूनान के नगर-राज्य तिजारती जहाज व युद्ध-बेड़ा नहीं रख सकते थे, और इसका यह परिणाम हुआ कि वे अब अपनी रक्षा करने में भी असमर्थ होने लगे। इसलिए कुछ राज्यों ने मिलकर संघ बनाया। दो संघ-एचिअत और एइटोलिअन-स्थापित हुये, और इनमें पारस्परिक शत्रुता थी।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एथेन्स और स्पार्टा ने इन संघों का सदस्य होना अस्वीकार किया; तब ये संघ कब तक यूनान को बचा सकते थे। इसी तरह सैकड़ों वर्ष तक यूनान में राजनीतिक अस्थिरता रही और मैसिडोन का आधिपत्य एइटोलिन संघ व एथेन्स को छोड़कर पूरा यूनान पर था। एथेन्स अंत तक यूनान की ऊंची भावनाओं व उच्च आदर्शों का घर बना रहा।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यूनानी सभ्यता का रूप

१

यूनान का इतिहास अन्य देशों के इतिहास की तरह युद्ध और शान्ति, सामाजिक व आर्थिक उलट-फेर से भरा है। पर यूनान की अमर-कृतियां कला, विज्ञान, साहित्य और दर्शन के क्षेत्र में हैं। योरप की सभ्यता ने यूनानी संस्कृति के पूर्ण-भाण्डार से बहुत कुछ लिया है। प्रत्येक योरोपीय यूनान का ऋणी है। इन पृष्टों में हम यूनानियों का कलापूर्ण जीवन का विश्लेषण करेंगे।

यूनानी सभ्यता पर एजिअन-क्षेत्र की प्राकृतिक विशेषता का बहुत प्रभाव पड़ा है। यह क्षेत्र जल और स्थल का विचित्र सम्मिश्रण है। यूनान में समुद्र-तट से कोई भी स्थान अस्सी मील से अधिक दूर नहीं था, और एक स्थान से दूसरी जगह जाने में कोई असम्भव रुकावट भी नहीं थी। एजिअन प्रायद्वीपसमूह में एक द्वीप दूसरे द्वीप से बहुत निकट था, और योरप से एशिया की समुद्र-यात्रा स्थल को आँखों से ओझल हुये बिना किया जा सकता था। इस क्षेत्र में उत्साहवर्धक धूप मिलती थी, और रंग-विरंगे प्राकृतिक दृश्य स्पष्ट थे, न कि धुंधले। इस कारण क्रीट–निवासी और पीछे चलकर यूनानी प्रकृति के पूजक रहे, और स्पष्ट प्राकृतिक दृश्यों और स्वस्थ शरीरों का शुद्ध चित्रण कर सके। यह ठीक है कि यूनान की जमीन उपजाऊ नहीं थी। देश गरीब था, पर निकटस्थ सागर यूनानियों को दुस्साहसी जीवन का आनन्द लेने का न्योता दे रहा था। खुले आकाश में स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करना यूनानियों को स्वभावतः प्रिय था। उत्साह और आत्मविश्वास पर निर्भर करनेवाले यूनानियों ने कला, विज्ञान, और साहित्य के क्षत्र में हमेशा नया जोश और नयी सूझ का प्रमाण दिया।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर यूनानी सभ्यता सिर्फ यूनानी चरित्र और जीवन, या इस क्षेत्र की प्राकृतिक विशेषता (Physical features) का ही परिणाम नहीं थी। इस सभ्यता का विशिष्ट रूप बहुत अंशों में भिन्न २ संस्कृतियों के सम्मिश्रण का फल था। यूनानी सभ्यता ने मिनोअन (Minoan) या क्रीट की (Cretan) सभ्यता से बहुत कुछ लिया। होमर के महाकाव्य से हमे पता चलता है कि इनलोगों ने माइकीन की परम्परा को सुरक्षित रक्खा। आइओनियनोंके नगर मिनोअन-नींव पर आधारित थे। यूनानियों का समुद्रीय-जीवन पर मिनोअन सभ्यता का प्रबल प्रभाव था। यूनानी सभ्यता और जीवन में खेल-कूद का प्रमुख स्थान, धर्मनिरपेक्ष आचरण और विनोदप्रियता मिनोअन सभ्यता की देन हैं।

यूनानियों की सभ्यता पर मेसोपोटेमिया, एशियामाइनर और मिश्र की सभ्यताओं का भी प्रभाव पड़ा। नाविक, व्यापारी, यात्री और वेतन-भोगी यूनानियों ने इन देशों से बराबर सम्बन्ध रक्खा। इसका परिणाम था कि यूनानी-जीवन का प्रत्येक अंग पर इन समृद्ध सभ्यताओं की छाप पड़ी। लिडिया से मुद्रा (Coinage) का व्यवहार सीखा गया। लिडिया एशियामाइनर में स्थित आइओनिअन उपनिवेशों के पूर्व में था, और यहां मेसोपोटेमिया की सभ्यता का पूरा दबदबा था। इसकी राजधानी सारडिस (Sardis) व्यापार का बड़ा डिपो था। यूनानी, बेबिलोनिअन, फिनिशिअन इत्यादि सभी यहां व्यापार के कारण मिलते थे। यूनानियों नें यहीं से बेबिलोन की विकसित व्यवहार-कुशलता (Business technique) अपनायी। बेबिलोन के माप-तौल का अनुसरण किया, और होमर-साहित्य के कई शब्दों का स्रोत् असीरिया की भाषा है, जैसे सुवर्ण, पायजामा, दूत, ऊँट, ईंटा, बोरा इत्यादि। यूनानी धर्म पर भी मेसोपोटेमिया का प्रभाव पड़ा। बेबिलीनिआ की देवी इस्टार (Ishtar) के विशेष गुणों का रूप विभिन्न यूनानी देवियों में पाते हैं,

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे डिमिटर्, अफ्रीडाइट्, आर्टेमिस् और हेकेटि। वेविलोन के विज्ञान और गणित का सहारा यूनानी वैज्ञानिकों ने लिया। थेल्स को वेबिलोन के ग्रहणों के वृतान्तों का संकलन का पता था। प्लेटो ने बेबिलोनिया में दिये हुये ग्रहों के नामों का व्यवहार किया। फिनिशअनों ने ग्रीक-भाषा को वर्णमाला और भी बहुत कुछ दिया। कंघी, इत्र, हाथी के दाँत, और कांसे के बर्तन पर सुन्दर कारीगरी का ज्ञान फिनिशिअनों से ही मिला। मिश्र की सभ्यता का क्रीट की सभ्यता पर बड़ा प्रभाव था। यूनानी संसार भी मिश्र से प्रभावित रहा। यूनानी-स्तम्भ (Column) का विकास ताड़-वृक्ष और कमल के फूल के चित्र से अलंकृत मिश्र के स्तम्भों से ही हुआ। यूनान के मिट्टी के बर्तनों पर मिश्र के चित्रों की नकल है। मनुष्य की पत्थर-की-मूर्ति बनाने की कला यूनानियों ने मिश्र की शिल्पकला से ही सीखी। यूनानी चित्रकारी मिश्र की शैली के आधार पर विकसित हुई। यूनानी चिकित्सा पद्धति और शिक्षा मिश्र का इमहोटेप धर्म (चिकित्सा-देवता) पर आधारित थी। यूनानियों का लहसून चबाना और बटेर-लड़ाना मिश्र के व्यसन थे।

अतः यह स्पष्ट है कि जिसे यूनानी-सभ्यता कहा जाता है, इसकी जो विशेषताए हैं, वह यूनानियों ने धुले स्लेट पर नहीं लिखी। यूनानी-सभ्यता पर समकालीन सभ्यताओं का कई ओर से और भिन्न २ पहलुओं पर प्रभाव पड़ता रहा। यूनानियों ने इन विस्तृत सांस्कृतिक धाराओं को अपनी संस्कृति में मिला कर अपना लिया। अतः यूनानी सभ्यता समृद्ध हो गई। भिन्न २ संस्कृतियों के संसर्ग से यूनानी संस्कृति को प्रगति मिली, नयी सांस्कृतिक दिशाओं की ओर बढ़ने की इच्छा और शक्ति आई। यूनानी सभ्यता का ऐश्वर्य और भिन्न २ दिशाओं में उसका विकसित रूप का उचित ज्ञान हमें इस सभ्यता पर अन्य सभ्यताओं के प्रभाव का पता पाए बिना नहीं मिल सकता।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यूनानी सभ्यता का प्राचीन रूप हम महाकवि होमर की कविताओं में पाते हैं। इससे हमें यह पता चलता है कि कुलीनों का महत्व बहुत था, और उनका जीवन अधिकतर युद्ध में व्यतीत होता था। इन वीरों की प्रशंसा में प्रसस्ति गाए जाते थे, और इन गायकों (bards) में शायद होमर भी एक था। उसने अपने से पहले के गायकों के गानों को संकलित किया। होमर-युग के बाद डोरिअनों का आक्रमण हुआ। डोरिअनों के आगमन से यूनान में अशान्ति पैदा हो गई, और यहां "अन्धकार युग" फैल गया। पर एशियामाइनर के तटस्थित और नजदीक के द्वीपों में बसे यूनानियों ने कला और विद्या के क्षेत्र में नई जागृति का (Renaissance) का नेतृत्व किया। प्राचीन षष्ठी शताब्दी ईसा से पूर्व आइओनिया में जो ज्योति पैदा हुई उसका प्रकाश यूनान पर पड़ना स्वाभाविक था। प्रजातान्त्रिक विधान का आदर्श व्यवहार रूप में सामने आ रहा था। स्वेच्छाचारी शासकों(Tyrants) ने श्रेणीतन्त्र का नाश किया और कला और साहित्य की उन्नति की। एथेन्स में हम सभी दिशाओं में अपूर्व प्रगति और स्फूर्ति पाते हैं। जब पर्शिया ने यूनानी-संसार पर आक्रमण किया, उस समय यूनान एक खास संस्कृति और जीवन-पथ का प्रतिनिधित्व करता था। उसकी कला, और उसका साहित्य और राजशासन के सिद्धान्त पर्शिया के साम्राज्यवादी एकतन्त्र-स्वेच्छाचारी नीति के बिल्कुल विपरीत थे। इसलिए यूनान का पर्शिया पर विजय विश्वसभ्यता के इतिहास में एक युगान्तकारी घटना है। यदि पर्शिया का यूनान पर विजय हो जाता तब आज हम जिन आदर्शों और कृतिओं के लिए यूनान के आभारी हैं, और जिन्हें हम योरोपीय साहित्य और सभ्यता का स्रोत समझते हैं उनका पता नहीं रहता। पर्शिया की पराजय ने यूनानी सभ्यता को पूर्वनिश्चित निर्देश की ओर जाने दिया। यूनानी कला, यूनान का राजशासन, यूनानी बौद्धिक जिज्ञासा अपने पूर्वस्थिर पथ पर अग्रसर होती रही। यूनान का

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्शिया ऐसे शक्तिशाली साम्राज्य पर विजय का परिणाम था देश में अभूतपूर्व उत्साह और आत्मविश्वास की वृद्धि। ऐथेन्स ने इस राष्ट्रीय युद्ध में नेतृत्व किया था, और इसलिए यह स्वाभाविक था कि यहीं हमें कला, विज्ञान, साहित्य और दर्शन में के क्षेत्रों में अतुलनीय प्रगति मिले। पेरिक्लिस्-युग में लोकतन्त्र का ही पूर्ण विकास नहीं हुआ, बल्कि प्रत्येक दिशा में एथेन्स यूनानी-सभ्यता का उज्जवल प्रतीक बन गया। एथेन्स-स्पार्टा की लम्बी लड़ाई में भी सभ्यता की प्रगति कुंठित नहीं हुई। सिकन्दर महान् के समय में, और उसके पश्चात्, मुख्य यूनान तो जरूर पीछे पड़ गया, पर यूनानी संस्कृति ने-कला और विज्ञान ने-मिश्र में, एशियामाइनर में, या एशिया में अपना विजय पताका फहराया। इस युग में भी यूनानी कलाकारों की कीर्ति प्रशंसनीय है। इसी यूनानी सभ्यता (Philhellenism) को रोम ने अपनाया और पश्चिमी योरप में फैलाया। इसी प्रकार योरीपीय सभ्यता यूनानी सभ्यता की नींव पर खड़ी हुई। अब हम यूनानी सभ्यता के भिन्न २ पहलुओं पर विचार करेंगे।

२

राजशासन।

योरप को यूनान की विशिष्ट देन है—नगर-राज्य (City-State)। यूनान में छोटे २ नगर-राज्यों का विकास हुआ। इन राज्यों के नाग रक्त अपने नगर के लिए सब कुछ न्योछावर कर देते थे। इनके लिए यूनान के अन्य नगर-राज्य विदेशी ही थे। अपने नगर के लिए प्रत्येक यूनानी को अटूट देश-प्रेम था। इनकी राष्ट्रीयता की सीमा नगर-राज्य की चहारदिवारी थी। भिन्न २ नगर-राज्यों में बराबर झगड़ा होता रहा, और यूनानियों में जातीय व राष्ट्रीय एकता का प्रायः अभाव ही रहा।

पर यदि राजनीतिक क्षेत्र में एकता का अभाव था, तो कई सांस्कृतिक व धार्मिक क्षेत्रों में सभी यूनानी मिला करते थे। धार्मिक-समीति

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(amphictyonies) बड़े राष्ट्रीय मंदिरों, जैसे डेल्फी में अपोल्लो (Apollo at Delphi) का मंदिर, का प्रबन्ध करती थी। इन्हीं समीतियों का काम था धार्मिक त्योहारों का आयोजन, जैसे डेलोस-प्रायद्वीप में अपोल्लो का वार्षिक त्योहार। इन समीतियों में प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधि रहते थे। यूनानियों का खेल-कूद प्रतियोगिता का बहुत चाव था। इसलिये खेल-कूद का बहुत आयोजन होता था जिसम प्रत्येक यूनानी नगर-राज्य सम्मिलित होता था, और एक दूसरे को इन प्रतियोगिताओं में नीचा दिखाने की कोशिश करता था। इनमें कुछ जैसे ओलिम्पिक खेल-कूद राष्ट्रीय महत्व के थे। इन प्रतियोगिताओं की प्रबन्धकारिणी समीति में भी सभी यूनानी राज्य का प्रतिनिधित्व था। महाकवि होमर का गीतिकाव्य को प्रत्येक यूनानी अपनी चीज समझता था, और होमर के लेख से यूनानी-एकता को बहुत मदद मिली। फिर यूनानियों को अपनी सभ्यता पर गर्व था, और वे गैरयूनानियों को 'असभ्य' (Barbarian) कहते। अतः यूनानी और गैरयूनानी का यह भेद यूनानी संस्कृति की एकता, राष्ट्रीय एकता, के भाव को प्रोत्साहन देता था। कभी २ राष्ट्रीय संकट के समय में, जैसे पर्शिया का आक्रमण, यूनान में कुछ हद तक राष्ट्रीय एकता स्थापित हो जाती, पर यह प्रयोग न कभी स्थायी और न पूरे यूनान में विस्तृत रहा। यूनानी संस्कृति की एकता और धार्मिक क्षेत्र में सहयोग के बावजूद यूनान बराबर छोटे २ प्रतिद्वन्दी राज्यों में बंटा ही रहा। राष्ट्रीयता अधिकतर नगर-राज्य की सीमा में ही बंधी रही।

प्रजातन्त्र के विकास में यूनानियों ने योरप या विश्व को बहुत कुछ दिया। एकतन्त्र (Monarchy) यहां नहीं चल सका और श्रेणी-तन्त्र (Aristocracy) को भी उलट दिया गया। स्वेच्छाचारी शासकों (Tyrants) ने कुलीनों की शक्ति कुचल दी, साधारण नागरिकों के हित का ख्याल किया, व्यापार और कला की सर्वांगपूर्ण उन्नति की।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर उनकी शक्ति निरंकुश थी, और शक्तिमद में उन्होंने अत्याचार भी किया। यूनानियों की प्रजातान्त्रिक भावना और वैयक्तिक स्वतन्त्रता का मोह के विरुद्ध यह निरंकुश शासन चल नहीं सका, और विद्रोह की अग्नि में कितने ऐसे शासक मिट गये। एथेन्स में दो बहादुर युवकों के द्वारा निरंकुश शासक के दो पुत्रों के बध का दृश्य (पत्थर की मूर्तियाँ) अभी भी स्वतन्त्रता प्रेमी यूनानियों की याद दिलाती है। स्वेच्छाचारी-शासकों के युग के उपरान्त प्रजातन्त्र स्थापित हुआ। एथेन्स का प्रजातन्त्र कई दिशाओं में योरप और एशिया के आधुनिक इतिहास में पथप्रदर्शक रहा है। यूनानी नगर-राज्य का प्रजातन्त्र प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र था। लोक-सभा में प्रत्येक नागरिक का अधिकार ही नहीं वरन् क्रियाशील सहयोग आवश्यक समझा जाता था। इसलिए तो आगे चलकर प्रत्येक नागरिक को, गरीब हो या अमीर, राजशासन का भार उठाने में समर्थ होने के लिए वेतन मिलने लगा। न्यायालयों का संगठन नागरिक ही करते थे, और उनका चुनाव वोट से नहीं वरन् लौटरी से होता था। इस तरह प्रत्येक नागरिक को एक समान सुविधा या असुविधा थी। उच्च २ महत्वपूर्ण पदों पर भी नागरिक इसी तरह चुने जाते थे। एथेन्सवासियों को यह भी डर होता था कि कही अतिसर्वप्रिय नेता लोकप्रियता के मद में स्वेच्छाचारी होने का हौसला न करने लगे। इसलिए यह नियम था कि किसी भी प्रभावशाली नागरिक को नागरिक बहुमत से राज्य का दुश्मन करार दे सकते थे, और उसे स्वयं दस वर्ष के लिए देश छोड़ना पड़ता।

इस प्रजातन्त्र के कई दोष भी थे। पहली बात तो यह कि नागरिकों से गैरनागरिकों की संख्या अधिक थी, पर राज्य सिर्फ नागरिकों के लिए और उन्हीं के द्वारा संचालित था। अल्पसंख्या का बहुसंख्या पर राज्य था। प्रजातन्त्र का आधुनिक आदर्श इसे नहीं सहन कर सकता है। यूनान के राज्यों में प्रजातन्त्र गैरनागरिकों के शोषण पर और दासों के

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपर अत्याचार के आधार पर निर्भर करता था। नागरिक तो राज-शासन, लोक सभा और न्यायालय के कार्यभार में ही व्यस्त रहते थे। दासों को उनके गृह कार्य व आर्थिककार्य से कभी छुट्टी नहीं मिलती थी। प्रजातन्त्र के चलाने का यह तरीका श्लाघ्य नहीं कहा जा सकता। दूसरी आलोचना यह हो सकती है कि लौटरी के द्वारा भाग्य पर ऊँचे और उत्तरदायी पदों पर अफसरों की वहाली खतरे से खाली नहीं थी। इस नियम के रहने पर भी इन राज्यों में दलवन्दी रही, जिससे राज्य को नुकसान ही उठाना पड़ा। एथेन्स के इतिहास में इस दलबन्दी के कारण थेमिस्टोक्लस् ऐसे राष्ट्रीय नेता और एथेन्स का हितचिन्तक नागरिक को अपने अन्तिम दिन पर्शिया के राजा की गुलामी में बिताने पड़े। राजद्रोह के झूठे अपराध पर उसे निर्वासन की सजा मिली थी। किमोन, जो थेमिस्टोक्लस् का प्रतिद्वन्दी था और जिसने पर्शिया को एजिया के प्रायद्वीप से निकल भगाया, उसे भी देश निकाला (ostracism) की सजा मिली। पेरिक्लिस् ऐसा महान् पुरुष अपने प्रगतिशील विचारों और बुद्धिवादी दार्शनिकों से मैत्री के कारण राज्यकोष का दुरुपयोग के अपराध में दण्डित किया गया। अतः ऐथेन्स का प्रजातन्त्र का इतिहास हमें जनता की कृतघ्नता और क्रोध या स्वार्थ के वश में आकर नागरिकों का अन्याय का भी पता बताता है।

समाज और व्यक्ति।

समाज और व्यक्ति का पारस्परिक सम्बन्ध बराबर विवाद का विषय रहा है। क्या व्यक्ति सिर्फ समाज के लिए है, या समाज की उपयोगिता व्यक्ति के विकास में ही निहित है? इन प्रश्नों का उत्तर भिन्न २ हो सकता है, और इसलिए राज का स्वरूप भी भिन्न २ होता है। राज्य तो समाज का सर्वश्रेष्ठ संगठन का ही दूसरा नाम है। राज्य और व्यक्ति

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के हितों में कौन श्रेष्ठ है, यह प्रश्न संसार के इतिहास में बराबर प्रश्न-वाचक चिन्ह के रूप में खड़ा रहा है।

एथेन्स और स्पार्टा, यूनान के दो प्रमुख राज्य, भिन्न २ सिद्धान्तों पर चलते थे। स्पार्टा में नागरिक राज्य के लिए थे। बचपन से ही उन्हें यह शिक्षा और अनुशासन मिलती थी कि उनका काम सिर्फ है राज्य को बलवान् बनाना। शारीरिक व्यायाम का महत्व इसी कारण अधिक था। प्रत्येक नागरिक का वैयक्तिक श्रम बस इसी दिशा में व्यय किया जाता था--शरीर स्वस्थ और बलवान रहे। यह स्वाभाविक भी था क्योंकि अल्पसंख्यक नागरिक बहुसंख्यकों का शोषण कर के ही जीते थे, और इसलिए उन्हें पशुबल पर ही निर्भर करना पड़ता था। स्पार्टा में इसी कारण ऐसा राज्य-विधान की स्थापना हुई जिससे राज्य प्रत्येक नागरिक पर पूर्ण अधिकार रख सका। वैयक्तिक विकास, स्वस्थ शरीर का सौन्दर्य को छोड़ कर, प्रत्येक दिशा में वर्जित था।

एथेन्स में व्यक्ति की सर्वमुखी उन्नति और राज्य की उन्नति में समन्वय देखा गया। प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य था कि वह अपने नगर की सेवा करे, उसकी लड़ाईयां लड़े, राजशासन में सक्रिय भाग ले, और कानून का मान करे। पर कर्त्तव्यों की सूची एकतरफा नहीं थी। प्रत्येक नागरिक राज्य को अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन समझता था, और राज्य-आय को अपनी सम्पत्ति मानता था। क्योंकि राज्य नागरिक की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में समर्थ था, इसीलिए एथेन्स के नागरिक अन्य दिशाओं में अपना व्यक्तित्व का विकास करने में सलग्न रह सके। यूनान विशेष कर एथेन्स में प्रजातन्त्र की उत्पत्ति का मूल कारण था दरिद्र नागरिकों का राष्ट्र-धन में अपना उचित भाग ले लेने का सफल प्रयास। जब राज्य पर उनका अधिकार हो गया तब वे आर्थिक चिन्ता से मुक्त हो गये, और प्रत्येक दिशा में इन्होंने

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशातीत प्रगति दिखाई--कला, साहित्य, विज्ञान, और दर्शन। व्यक्ति की दबी हुई शक्ति मुक्त हो गई। पर राज्य और व्यक्ति के हितों में मेल रहा। व्यक्ति का सर्वांगपूर्ण विकास में, कला और विज्ञान की प्रगति में, राज्य का गौरव और शक्ति सन्निहित थी। संसार के कई प्राचीन सभ्य समाजों में व्यक्ति समाज के अधिकार में था और व्यक्ति की स्वतंन्त्रता और उपयोगिता की उपेक्षा की जाती थी। पर यूनान के प्रजातान्त्रिक राज्यों में व्यक्ति की स्वतन्त्रता और उसकी कृतियां राज या समाज को धनी व शक्तिशाली बनाती है, ऐसा समझा जाता था। ऐथेन्स में सभी दिशाओं में वैयक्तिक प्रतिभा का विकास इसीलिए सम्भव हो सका कि वहां राज्य व नागरिक की आर्थिक आवश्यकताएँ सिर्फ सैन्यबल पर नहीं (जैसे स्पार्टा में) वरन् व्यापार, और साम्राज्य इत्यादि कई चीजों पर निर्भर करती थीं। इसलिए नागरिकों की शक्ति और योग्यता भिन्न २ दिशाओं में चमक सकीं। वैयक्तिक स्वतन्त्रता और राज्य -विधान के प्रति अटूट श्रद्धा और भक्ति इन दोनों प्रवृत्तियों का एथेन्स में सुन्दर समन्वय था।

एथेन्सवासियों का अभूतपूर्व देशप्रेम, अपने प्रजातन्त्र के विधान के प्रति अटूट श्रद्धा और कला व विज्ञान के क्षेत्र में प्रदर्शक होने का गौरव इसी समन्वय के कारण सुलभ हो सका।

धर्म

अन्य आर्यों की तरह यूनानियों के देवता पृथ्वी, आकाश और वायु थे। देवता स्वर्ग में रहते थे पर वे कभी २ ऊँचे पहाड़ों या प्रसिद्ध मंदिरों में रहते थे। ज्यूस् (Zeus) आकाश-देव था और देवताओं का राजा। उसकी स्त्री हेरा स्वर्ग की रानी थी। अपोल्लो सूर्य का देवता था; संगीत और धनुषविद्या का देवता भी वही था। उसकी बहन अर्टेमिस् शिकार की देवी थी। पोसइडोन (Poseidon)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समुद्र का और धातु-विद्या का देवता था। हरमिस (Hermes) देव-दूत था, अथिना (Athene), ज्यूस की पुत्री थी। युद्ध और कला की पोषक और ज्ञान की देवी थी। अफ्रोडाइट् (Aphrodite) प्रेम और सौन्दर्य की देवी, और डामिटर (Demeter) अन्न की देवी और पृथ्वी-माता थी। इन देवी-देवताओं के अलावे कुछ महापुरुषों की भी पूजा होती थी। इन महापुरुषों को देवता का अंश समझा जाता था। इनमें हेराक्लिस् (Heracles, Herculus) अति प्रसिद्ध हैं। जंगल, नदी, पहाड़ और समुद्र, पेड़, पत्थर और गुफा ऐसे एकान्त स्थान में रहनेवाले कितने भूत-प्रेतों व अप्सराओं की भी पूजा होती थी। पूजा अत्यन्त साधारण ढंग से होती थी। भक्त प्रार्थना करता था, और देवताओं के नाम पर कुछ भेंट चढ़ाता था। पशु-बलि की प्रथा भी प्रचलित थी।

यूनानियों का यह विचार था कि देवताओं का रूप मनुष्य का ही रूप था। और मनुष्य की कमजोरियां भी उनमें थीं। ज्यूस् और उसकी पत्नी हेरा में पारिवारिक कलह होता था। भूत-प्रेत में अन्धविश्वास, प्राकृतिक शक्तियों को देवता समझना, मरने के बाद मनुष्य की आत्मा पाताल में चक्कर काटती रहती है, और कुछ पशुओं में देवता का अंश है, ऐसी कल्पित धारणाओं में विश्वास रखना यूनानी धर्म को बौद्धिक सतह पर बहुत नीचे ला देता है। ईश्वर की आज्ञा या इच्छा का ज्ञान के लिए यूनानी बेचैन रहते थे। डेल्फी में स्थित अपोल्लो की भविष्यवाणी में सभी यूनानियों को अत्यन्त विश्वास था। स्वप्नों का अर्थ निकाला जाता था, और भविष्यवाणी जानने के लिए पुरोहितों की सलाह ली जाती थी। बलि-प्रदत्त पशुओं की अंतड़ी और इन्द्रियों के ऊपर चिह्न की परीक्षा और की जाती थी, इससे देवता की इच्छा का ज्ञान होता। इन चिह्नों को उचित अर्थ लगाने के लिए या देवताओं, जैसे डेल्फी का अपोल्लो, की भविष्यवाणी को समझाने के लिए पुरोहित व पुरोहिताइनों की जरूरत पड़ती थी। इसलिए इनका स्थान समाज में ऊँचा रहा। प्रत्येक प्राकृतिक घटना जैसे ग्रहण,

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुच्छलताराएं या भूकम्प आनेवाली दुखद-घटना के संदेशवाहक समझे जाते थे। इस तरह के कितने अंधविश्वासों को जीवन में बड़ा महत्व दिया जाता था। इस कारण प्रत्येक नगर में पुरोहित-वर्ग था, और ओझा और शकुन निकालने वालों की आवश्यकता उस समय उतनी ही थी जितना आज समय पड़ने पर डाक्टर की।

बड़े २ धार्मिक उत्सव भी होते थे। कुछ उत्सव प्रत्येक नगर की सीमा में ही मनाये जाते। कुछ त्यौहारों में कई नगर-राज्य सम्मिलित होते थे, जैसे डेलोस में अपोल्लो के मान में अन्तर्राष्ट्रीय पर्व। कुछ पर्व का राष्टीय महत्व था जैसे ज्यूस् के मान में औलम्पिया पर मनाया गया त्यौहार। इस पवित्र अवसर पर सारे यूनान के युवक शारीरिक व्यायाम की प्रतियोगिता में भाग लेते थे। पीछे चलकर औलम्पिअन खेल-कूद (Olympian Games) के अलावे डेल्फी में Pythian Games, कौरिन्थ में Isthmian Games और आरगोलिस में Nemean Games की स्थापना हुई। इन उत्सवों का महत्व धार्मिक था। पर इनसे राष्ट्रीयता का भाव दृढ़ होता रहा, और शरीर को सुन्दर और बलिष्ट बनाने की कोशिश बराबर होती रही।

कुछ काल के बाद यूनानी-धर्म में नये विचार व उत्सवों का प्रवेश हुआ। कुछ लोगों ने यह समझा कि मरने के बाद मनुष्य की आत्मा अंधियाले पाताल में बराबर चक्कर ही नहीं काटती थी। पाप का प्रायश्चित भी हो सकता था और इसके उपाय बताए गये; और मरने के बाद भक्त अपने देवता में लीन होकर स्वर्ग का सुख उपभोग करेगा ऐसा विश्वास जोर पकड़ने लगा। इस विश्वास के नाम पर कई रहस्यमय उत्सव (Mysteris) मनाये जातेथे। इन उत्सवों का सम्बन्ध यूनान के कुछ देवी-देवताओं से था। डाइओनिसस् (Dionysus मदिरा का देवता) की पूजा उसके भक्त खूब जोश से मनाते थे। पहाड़ पर मसालों की रोशनी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Torch-light) में मृग-छाल व अंगूर के पत्तों के वने हार से शरीर को सजकर भक्त लोग नाच-रंग में मदहोश रहते थे। एक-एक कर वे सब उन्मत्त हो जाते थे, और इस अवस्था को डाइओनिसस् से मिलन की अवस्था समझते थे। डिमिटर देवी की पूजा में भी रहस्यमय उत्सव होते थे जिसे Eleusian Mysteries कहा जाता है। पर्सिफोन (Persephone) डीमिटिर की पुत्री थी और पाताल का राजा प्लूटो उसे हर ले गया था। डीमिटिर ने पर्सिफोन का उद्धार किया और इसी पौराणिक कथा का आधार था Eleusian Mysteries। पवित्र स्नान, जुलूस, नाच-गान इस उत्सव के प्रधान अंग थे। औरफिअस् एक पुरोहित-राजा था जिसकी स्त्री सर्प के काटने से मर गई। औरफिअस् ने मनमोहनी बांसुरी की राग से पाताल के देवताओं को प्रसन्न किया और उसे अपनी स्त्री वापस लाने की आज्ञा मिली। पर उसे पाताल के दरवाजे तक अपनी स्त्री की ओर देखना मना था। पर स्त्री की ममता व प्रेम से पागल औरफिअस् इस शर्त को न मान सका, और वह पाताल से बाहर करीब २ निकल ही चुका था कि उसने अपनी स्त्री की ओर देखा कि उसकी स्त्री उससे छिन गई। इस पौराणिक कथा (Myth) को भी एक रहस्यमय उत्सव में मनाया जाने लगा। ये रहस्यमय उत्सव बहुत ही जनप्रिय थे।

भवन-निर्माण और पाषाण मूर्तिकला।

भवन-निर्माण कला का विकास हमें मन्दिरों के निर्माण में देखना चाहिये। राजा व उच्चवर्ग के विशाल भवन प्रजातान्त्रिक क्रान्ति में अपना महत्व खो चुके थे, पर राजभवन से सम्बन्धित जो मन्दिर था उसका महत्व नहीं घटा। मन्दिरों के निर्माण में यूनानी कलाकारों ने कमाल कर दिखाया। निरंकुश-शासकों (Tyrants) के युग में यूनान में जितने मन्दिर बने उतने कभी नहीं। मन्दिरों में लकड़ी के खम्भों की जगह पर पत्थर के गोलाकार खम्भे व्यवहार में आने लगे।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खम्भों को एक खास तरह की पंक्ति में रखा जाता था, जिसे डोरिक पद्धति (Doric Style) कहते हैं। यह कला मिश्र से प्रभावित हुई थी, पर पीछे चलकर यूनानी कलाकारों ने इतनी उन्नति की इनके वनाये हुये खम्भों की सुन्दरता अद्वितीय हो गई। मिश्र के मन्दिरों की तरह यूनानी मन्दिर में भी चमकीले रंगों का व्यवहार होता था। पर्शिया पर विजय के उपरान्त एथेन्स का पुनःनिर्माण हुआ। सरकारी भवन व साधारण गृह तो बहुत ही मामूली थे। मोहन्जोदाड़ो व क्रीट के साधारण घरों की सुविधाएं यहां नहीं पाई जाती हैं। पर उस समय की कला मन्दिरों में ही मुखरित हुई थी। बड़े २ भवन मन्दिर ही थे। उजले संगमर्मर के पत्थरों के बने ये मन्दिर बहुत ही सुन्दर थे। थिसिअस् का मन्दिर एथेन्स में प्रमुख था। एक्रोपोलिस (Acropolis) की चोटी पर एथिना का पारथिनों (Parthenon) मन्दिर अपनी सुन्दरता व भवन निर्माण कला की बारिकी के लिए जगत् प्रसिद्ध है। इस मन्दिर के बनाने में लाखों रुपए खर्च किये गये थे, और पेरिक्लिस् युग की सर्वोत्तम कृतियों में यह एक है। एथेन्स का एक और प्रसिद्ध भवन है एरेक्थिअम् (Erechtheum) जिसमें बहुत सुन्दर खम्भों की पंक्तियां सजी थीं।

पत्थरों की मूर्तियां यूनान की अमूल्य देन हैं। मन्दिरों में देवताओं की पत्थर की मूर्तियां सजायी जाती थीं। बहुत पहले यहां की मूर्तिकला मिश्र की कला की नकल थी, पर कुछ समय के बाद कलाकारों ने सचमुच सुन्दर और स्वतन्त्र कला के उदाहरण पेश किया। यूनान में देवताओं व मनुष्यों की मूर्तियाँ बहुत ही आकर्षक और प्राकृतिक हैं। यूनानी खुली हवा में अधिक रहते थे, और खुले मैदान में नंगे शरीर व्यायाम करते थे। इसलिए कलाकारों को यूनानी शारीरिक सौंदर्य को मूर्त रूप देने में बहुत सुविधा हुई। यह ठीक है कि पहले पहल मिश्र की मूर्तिकला की ही नकल की गई और सबसे

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन मूर्तियां कठोर व भद्दी हैं। खेल-कूद की प्रतियोगिता में विजयी वीरों की पाषाणमूर्ति बहुत ही सुन्दर हैं। शरीर की स्फूर्ति को व्यक्त करने की सफलता का अद्वितीय उदाहरण है एथेन्स के दो वीरों द्वारा निरकुंश पाइसिसट्रेटस् के पुत्रों की हत्या का संगमर्मर-चित्र।

पेरिक्लिस्-युग में शिल्प कला की अतुलनीय उन्नति हुई। परिक्लिस् का मित्र फिडियस् (Phidias) संसार का एक महान् कलाकार हुआ है। पार्थिनों के मंदिर में चारों ओर उसने संगमर्मर की सुन्दर मूर्तियाँ सजाई थीं, जिनमें एथेन्सवासियों का जुलूस गौरव और वास्तविकता के भाव को व्यक्त करने में अत्यन्त सफल चित्र ह। मंदिर के मध्य में हाथी के दाँत और सुवर्ण की बनी देवी एथिना की मूर्ति फिडियस् की कला को अनुपम कृति है। मंदिर के हाते में ही खुले मैदान में एथिना की कांसे की मूर्ति ७० फीट ऊंची है और यह भी फिडिअस् की महान् कृतिओं में एक है। देवी-देवताओं की पाषाण-मूर्तियों के अलावे कवि, दार्शनिक और नाट्यकारों की भी मूर्तियां बनाई गई थीं। जनता इन महान् व्यक्तियों का भी समुचित आदर करती थी। पेरिक्लिस्-युग के बाद के यूनानी मूर्तिकार साधारण नागरिक व उनका दैनिक जीवन के दृश्य को पत्थर पर जीता-जागता उतार लेते थे। इस समय की पाषाण-मूर्तियाँ वास्तविकता और शारीरिक स्फूर्ति को व्यक्त करने में अपनी सानी नहीं रखतीं। एथेन्स का प्राक्जाइटिलिस् (Praxitiles) इन कलाकारों में प्रमुख स्थान रखता है। इसकी बनाई मूर्तियां मनुष्य की हैं, नहीं देवता की। हाड़-मांस के बने मनुष्य की कमजोरियों को व्यक्त करनेवाली इन मूर्तियों से हम अपने को सन्निकट पाते हैं। हर्मिअस् का शिशु डाइओनिअस् से खेलने की पाषाण-मूर्ति उसकी उच्चकोटि की कृति है। सिकन्दर ने एशिया और मिश्र पर विजय प्राप्त किया था। यूनानी सभ्यता इन देशों में फैल गई। यूनानी राज-मजदूरों ने सुन्दर और योजनानुकूल शहर मिश्र और

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इटली में बनाये। यूनानी मूर्तिकारों ने यहाँ पाषाण के सुन्दर और ओजस्वी मूर्तियां बनाईं जो कला की दृष्टि में अद्वितीय हैं। संगमर्मर के पत्थर की बनी कब्रों पर सिकन्दर महान् का इस्सस् का युद्ध में विजय का दृश्य बड़ी खूबसूरती से चित्रित किया गया है। यह सच ही कहा गया है कि मानव शरीर का सुन्दरता और गरिमा को पत्थर या काँसे की मूर्तियों में व्यक्त करने की क्षमता यूनानियों से बढ़कर किसी और को नहीं प्राप्त हुई।

चित्रकला (Painting)।

यूनान में चित्रकला का विकास द्रुतगति से हुआ। स्वेच्छाचारी शासकों के युग (The Age of the Tyrants) में मिट्टी के बर्तनों और घर की दीवालों पर देवी-देवता के ही चित्र नहीं वरन् दैनिक जीवन के दृश्य भी रंगे जाते थे। कलाकारों ने स्वाभाविकता को बहुत ही प्रश्रय दिया, और मनुष्य का प्राकृतिक शरीर और स्वाभाविक भावों के चित्रण में इन कलाकारों ने संसार का नेतृत्व किया। मनुष्य के अंगों को इस तरह चित्रित करना कि एक ओर से देखने में वे छोटे लगे, सचमुच कमाल की चीज है। यूनानी चित्रकारों ने कुछ समय बाद लकड़ी के तख्तों पर चित्र बनाना शुरू कर दिया। अब प्रत्येक चित्रकार अपने घर में ही अपनी चित्रशाला रख सकता था। बड़े २ भवनों की दीवालों पर ही चित्र बनाया जा सकता है, इस मुश्किल से उसे मुक्ति मिली। अब चित्रकार अपने भाव या आदर्श की कल्पना को स्वतन्त्रतापूर्वक अपने लकड़ी के तख्तों पर चित्रित कर सकता था; एक के बाद दूसरा प्रयोग कर सकता था। गला हुआ मोम में विविध रंग मिलाया जाता था और फिर ब्रुश से लकड़ी की पटरी पर चित्र बनाया जाता था। इन चित्रों को चित्रकार बेच सकता था, और अमीर लोग इन चित्रों को खरीद कर अपने घर की शोभा बढ़ाते थे। चित्रकला में एथेन्सवासी अपोल्लोडोरस (Apollodorus) ने बहुत उन्नति की। दुखान्त

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और नाटकीय घटनाओं का स्वाभाविक चित्रण यूनानी कलाकारों का उत्तम प्रयास है। मानवशरीर की चित्रकारी में इस समय काफी प्रगति हुई।

शिक्षा

बहुत पहले लिखने का ज्ञान नहीं था। लोग पाठ याद कर लेते थे, और इन कण्ठस्थ पाठों को दूसरों को कण्ठस्थ कराया जाता था। पर लिपि की उत्पत्ति और विकास फिनिसिअनों के संसर्ग से हुआ। दश शताब्दी ईसा से पूर्व यूनानी जगत् में लिखने का अभ्यास शुरू हुआ। आइओनिया ने अन्य दिशाओं की तरह इस दिशा में भी नेतृत्व किया। लिखना पहले सरकारी विभागों में प्रचलित हुआ। पांचवीं शताब्दी ईसा से पूर्व वर्णमाला का रूप पक्का हो गया, और समूचे यूनान में आइओनिअन अक्षर मान्य हो गये। ईसा से सांतवीं शताब्दी पूर्व तक राजनीतिक व व्यापारिक कार्यों के लिए लिखना अनिवार्य हो गया था। जनता की यह मांग थी कानूनों का संग्रह किया जाय। ६५० ई० पू० पहली धर्म-संहिता (Law Code) की उत्पत्ति हुई। पीछे कुछ दिन बाद गद्य-साहित्य और यात्रियों के लिए सूचना-पुस्तकें तैयार हो गइ। पर प्राचीन दर्शन-साहित्य भी पद्य में लिखा जाता था। मंदिरों में भी सार्वजनिक उत्सव, और धार्मिक आचारों का लिखित विवरण रखा जाने लगा। अतः राजनीतिक, व्यापारिक, धार्मिक और अन्य कारणों से लिखना-पढ़ना अनिवार्य सा होता गया। अतः यूनान में विद्यालयों की स्थापना हुई। पर ये स्कूल सरकारी स्कूल नहीं वरन् गैरसरकारी थे। सरकार शिक्षा की नीति निर्धारित करती थी, पर उसकी आर्थिक मदद नहीं करती थी। स्कूल वैयक्तिक उद्योग का परिणाम था। ६ से १४ वर्ष की आयु तक यूनानी लड़का वर्णमाला सीखता, कविता पाठ करता और महान पुरुषों की गाथाओं व उपदेशों को कण्ठस्थ करता था। संगीत और गणित से उसकी जानकारी की जाती थी। शारीरिक व्यायाम के

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा शरीर को स्वस्थ रखा जाता था। ये लोग इस आदर्श में विश्वास रखते थे कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क रह सकता है। शिक्षा पढ़ना-लिखना से ही खतम नहीं हो जाती थी। संगीत और पवित्र आमोद-प्रमोद शिक्षा के जरूरी अंग थे। स्कूल का अर्थ ही है—अवकाश (Leisure)। प्रत्येक एथेनिअन से यह उम्मीद की जाती थी कि उसे गीत गाने आता है। शिक्षक किताब का कीड़ा नहीं, पर पूर्ण विकसित नागरिक होता था। १४ से १८ वर्ष की आयु में विद्यार्थी ज्यॉमिति, साहित्य और कविता की समालोचना करने का ज्ञान अर्जन करता था। अट्ठारह वर्ष की आयु में एथेन्स का नवयुवक दो वर्ष के लिए सैनिक शिक्षा लेता था। कुछ समय बाद यह नियम उठा दिया गया, और एथेन्स का नवयुवक अन्य विकसित विद्या या शारीरिक व्यायाम में अपनी प्रतिभा का उपयोग करने के लिए स्वतन्त्र था।

साहित्य

इस स्वतंत्र वातावरण में साहित्य ने सभी दिशाओं में अत्यन्त प्रगति दिखाई। यूनानियों का सबसे प्राचीन साहित्य सूरदास होमर की इलिअड और ओडीस्सी (The Illiad and the Odyssey) है। दरबारी बन्दीजनों (Bards) की पद्य प्रशस्तियों का सबसे उच्च उदाहरण है, "इलिअड और औडीस्सी"। करीब ५५० ई० पू० इन पद्यों का पुस्तक के रूप में संकलन हुआ। इस पुस्तक में वीरों का आदर, वीरोचित कर्मों के सिद्धान्त, अनुशासन और देशभक्ति के गुणों का सुन्दर चित्रण है। यूनानियों की अति प्राचीन सामाजिक व धार्मिक अवस्था का ज्ञान हमें इसी पुस्तक से मिली है। यूनानी-सभ्यता की नींव का पता हमें इसी ग्रंथ से मिलता है। यूनानी साहित्यिकों को भी महाकवि होमर के इस महाकाव्य से कई विभिन्न दिशाओं में प्रेरणा मिली है। जैसे रामायण और महाभारत प्राचीन भारतीय साहित्य के लिए आदर्श और कथानक के लिए अक्षय समुद्र सिद्ध हुये हैं, उसी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह होमर का यह महाकाव्य भी। होमर के गीत यूनानी सांस्कृतिक परम्परा का हृदय है, और यूनानी एकता का जबरदस्त प्रतीक। प्राचीन दार्शनिक विचारों का स्रोत भी यही है, और प्राचीन कलाकार व नाट्यकार होमर के कथानक के ही आधार पर अपनी कला को मूर्तरूप देने में समर्थ हुये थे। यूनानी अपने दैनिक जीवन में होमर के नैतिक सिद्धान्तों को बराबर दुहराते (quote) रहते थे।

होमर के बाद कवि हेसिओड् (Hesiod) का स्थान आता है। हेसिओड् जनता का कवि था, और उसने देवताओं को मनुष्य की तरह चित्रित किया। ईसा से षष्ठी शताब्दी पूर्व कई कवि पैदा हुए जिनके गीतिकाव्य (Lyric poetry) में साधारण मनुष्य की खुशी व रंज का इजहार स्वाभाविक रूप से होता था। आइओनिया निवासी 'सैप्फो' का इन कवियों में उच्च स्थान है। सैप्फो स्त्री थी. और अपने गीतों में उसने शारीरिक सौन्दर्य और सरल प्रेम को स्वतन्त्रतापूर्वक व्यक्त किया। पिन्डार (Pindar ५१८-४४८ ई० पू०) एक प्रतिभाशाली कवि था। उसकी गीतों में हम राष्ट्रीय उत्सव व खेल-कूद में विजय का उल्लासपूर्ण चित्रण पाते हैं।

साहित्य में एथेन्स की विशिष्ट देन है नाटक, पहले दुखान्त और पीछे सुखान्त। एश्चिलिस (Aeschyles) नाटक का पिता कहा जा सकता है। पहले-पहल दो अभिनेताओं के वादाविवाद उसी के नाटक में पाया जाता है। उसके कथानक के आधार प्राचीन कहानियां ही थीं, पर उसने उनमें रीति-रिवाज और वैयक्तिक इच्छाओं में विरोध का चित्रण पाया। रीति-रिवाज का आधार दैवी था। इसलिए पूर्व नाटक धार्मिक विचारों से प्रभावित थे, और इन्हें दुखान्त नाटक कहा जाता था। व्यक्ति की हार निश्चित थी। कुछ समय बाद सोफोक्लिज़ (Sophocles ४९६–४०६ ई० पू०) ने तृतीय अभिनेता की रचना की, और अपने नाटक में दृश्य (Scenery) का व्यवहार

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुरू किया। इसके नाटक भी होमर के कथानक पर आधारित थे। एकबार सोफोक्लिज के पुत्र ने इस पर यह आरोप लगाया कि यह बूढ़ा होकर सीढ़ी बन गया है इसलिए सम्पत्ति पर उसके पुत्र का अधिकार हो जाय। सोफोक्लिज ने अपनी अप्रकाशित कविता का पाठ किया, और मुकदमा का फैसला उसके पक्ष में हो गया। यूरिपाइडिस (Euripides ४८०-४०६ ई० पू०) पैरिक्लिस्-युग का प्रतिनिधि था, और उसके अभिनेता, दृश्य, व कथानक का विषय समकालीन एथेन्स था। उसने भावना और कल्पना-प्रधान प्रेम की कहानियों को अपने नाटकों का विषय बनाया। उसके नाटक कला की दृष्टि में सर्वोपरि हैं। साम्राज्यवादी, पुरोहित, और अभिमानी धनिकों के विरुद्ध उसने आवाज उठाई। एरिस्टोफेनिज् (Aristophanes, ४४८-३८८ ई० पू०) ने पहले-पहल सुखान्त नाटक लिखा। इन प्रहसनों के द्वारा समाज की कुरीतियों की ओर ध्यान आकर्षित किया जाता था, और सार्वजनिक जीवन पर कटाक्ष होता था। ये सुखान्त नाटक इतने प्रभावशाली व उत्तेजक होते थे कि ४१४ ई० पू० इनके नाट्यकारों को सार्वजनिक घटनाओं पर आलोचना करना मना हो गया था। योरोपिय साहित्य में एरिस्टोफेनिज़-लिखित The Knight और यूरिपाइडिज़ लिखित The Trojan Women उच्चतम कला के नमूने हैं।

योरप का इतिहास-शास्त्र का आरम्भ में पहले पहल यहीं हुआ। हेरोदोतस् (Herodotus ४८४-४२५ ई० पू०) इतिहासकारों का पिता कहा जाता है। उसने पर्शिया-यूनान-युद्ध का इतिहास क्रमबद्ध लिखा है। उत्तेजक घटनाओं का विवरण के द्वारा ही उसने पाठकों का ध्यान इस विषय पर आकर्षित करने की कोशिश की है। थुसिदाइदिस् (Thucydides) ने समकालीन पेलोपोनेसिअन युद्ध (Peloponnesian War) का इतिहास लिखा है। उसकी कहानी में रोचकता है और स्वाभाविकता की पुट है। ज़ेनोफोन (Xenophon ४३०-३५४ ई० पू०) ने थुसिदाइदिस के इतिहास को

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जारी रखा, और पर्शिया साम्राज्य से दस हजार यूनानी सिपाहियों की यात्रा का इतिहास लिखा है। संसार के इतिहास-साहित्य में इन लेखकों ने पथप्रदर्शक का काम किया है।

दर्शन।

संसार यूनानी चिन्तकों व दार्शनिकों का सदैव ऋणी रहेगा। यूनान में स्वतन्त्र बौद्धिक-वातावरण फैला हुआ था। आइओनिया में पुनर्जागृति (Renaissance) की पृष्ठभूमि बौद्धिक स्वतन्त्रता थी या स्वतन्त्र विचारों को पनपने का उचित वातावरण ही था। यूनानी चिन्तकों ने संसार के मूल प्रश्नों का उत्तर अंधविश्वास व धार्मिक जड़ता के दृष्टिकोण से नहीं देखा। इन्होंने इन प्रश्नों का उत्तर अलौकिक व दैवी सिद्धान्तों के आधार पर नहीं वरन् प्रकृति से पाने की कोशिश की। दुनियां क्या है? यहां क्या चीज स्थायी है? सदैव परिवर्तन क्यों होते रहता है? इन प्रश्नों का उत्तर इन लोगों ने प्रकृति से पाना चाहा। इस बौद्धिक प्रयास के कई रूप हुये और तभी ज्योतिष, विज्ञान और दर्शन का विकास संभव हुआ। संसार क्या है, और कैसे बना है, इन प्रश्नों के उत्तर भिन्न २ चिन्तकों ने अलग अलग दिया, इस तरह कई दार्शनिक सिद्धान्त और पद्धति (School) की उत्पत्ति हुई। प्रथम दार्शनिक और वैज्ञानिक एशियामाइनर-तट या उसके समीप के यूनानी प्रायद्वीपों के रहने वाले थे। यहां एशियाई दर्शन व विज्ञान का प्रभाव था और यह बहुत ही लाभप्रद हुआ।

थेल्स (Thales, ६४०-५४६ ई० पू०) ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि पहले सब कुछ जल था, और इसमें चेतन शक्ति थी, इस कारण इसके कई रूप हो सके। इसी ने पहले पहल सूर्यग्रहण ५८५ ई० पू० होगा इसका ठीक भविष्यवाणी किया था। एनाक्जिमेन्डर (६११-५४७ ई० पू०) का यह विचार था कि विश्व का मूल्यतत्व एक असीम और दैवी पिंड था जिसमें विरोधी गुणों (Opposites) का समावेश था। इन्हीं विरोधी शक्तियों के झगड़े का परिणाम था कुछ शक्तियों का अलग

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाना, जैसे पृथ्वी और आकाश इस 'पिंड' से अलग हो गये। जलते हुये गर्म पिंडों को ठण्डी पृथ्वी के चारों ओर घूमते रहना ही विश्व का रूप है। पैथोगोरस् एक महान् दार्शनिक हो गया है। उसके विचार में विरोध नहीं वरन् अनुरूपता (Harmony) ही विश्व की मूल विशेषता है। ईश्वर प्रकृति में वास करता है। मनुष्य के शरीर में आत्मा है, और आत्मा का यह सतत प्रयास रहता है कि वह अपने मूल में, ईश्वर में, मिल जाय। पवित्र जीवन का अर्थ है स्वस्थ आत्मा। प्रत्येक जीवात्मा इसलिए शरीर के पिंजड़े से मुक्त होकर अनन्त में मिलने की ओर चक्राकार गति में (Circular motion) अग्रसर है। पवित्र जीवन उसका रास्ता सुगम और ध्येय निकट ले आता है। पैथोगोरस् के सिद्धान्त भारतीय दर्शन और पुनर्जन्म के सिद्धान्त से बहुत मिलते-जुलते हैं। पैथोगोरस् ने अपने शिष्यों का और सिद्धान्त के माननेवालों का एक संघ कायम किया। योरप में यह पहला धार्मिक-संघ था। पश्चिमी यूनान में ऐसे और भी संघ कायम हुये। ईसाई चर्च का यह अग्रदूत कहा जा सकता है। पैथोगोरस् और उसके संघ प्रजातन्त्र में विश्वास करते थे; जो सारी प्रकृति को ईश्वरमय देखेगा वह तो प्रजातन्त्र (democracy) का समर्थक होगा ही। अपनी मातृभूमि सेमोसा प्रायद्वीप में इन्होंने प्रजातान्त्रिक क्रान्ति की। पैथोगोरस्-संघ में भी उसके तर्कसंयुक्त सिद्धान्त के प्रति अंधविश्वास पर जोर डाला गया। कई धार्मिक रस्म (Rituals) का समावेश हो गया। पर पैथोगोरस् का यह सिद्धान्त कि नैतिक शुद्धता बौद्धिक प्रयास से ही सम्भव है संसार के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। फिलासफी (Philosophy) का अर्थ है बुद्धि से प्रेम (Love of wisdom); पैथोगोरस् की शिक्षा से ही यह शब्द निकला होगा।

यूनान के दार्शनिकों में सुकरात, (Socrates), प्लेटो और अरस्तू सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। एथेन्स के चिन्तकों के समक्ष अब ये प्रश्न उठ खड़े हुये थे — मनुष्य किस प्रकार सत्य को जान सकता है? ज्ञान क्या

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है ? ज्ञान का उपयोग क्या है ? सुचरित्र जीवन क्या है इत्यादि ? इन प्रश्नों पर स्वतन्त्र और भिन्न २ दृष्टिकोण से एथेन्स के दार्शनिक और चिन्तकों ने विचारना शुरू किया। इस प्रयास में रूढ़िता व अंध-विश्वास, सामाजिक व धार्मिक परम्परा, रीति-रिवाज सभी पर सन्देह होने लगा। प्रत्येक चीज को यथार्थता का माप था बुद्धि को सन्तुष्ट करना। तर्क के बल पर सभी चीजों की तह में ये चले जाते थे, और अलग २ परिणाम पर पहुंचे थे। इससे सूफी (Sophism) मत का विकास हुआ। ये तार्किक दार्शनिक (Sophists) कहलाते थे। ये शिक्षक का काम करते थे। व्याकरण व भाषण देने की शिक्षा देते थे। इनके संसर्ग में नवयुवक थे, और इन नवयुवकों को ये अपने सिद्धान्तों से प्रभावित करते थे। समाज का संगठन, धार्मिक सिद्धान्त व रीति-रस्म सभी मान्य आधारों पर अब संदेह होने लगा। पवित्र जीवन पर ये लोग जोर देते थे।

सुकरात (Socrates) सबसे बड़ा Sophist था। वह बुद्धि का हामी था। प्रत्येक वस्तु या विश्वास को बुद्धि की कसौटी पर जांचता था। उसका तरीका था सवाल करते जाना। साधारणतः लगातार प्रश्नोत्तर के द्वारा प्रत्येक नवयुवक के विश्वास व रूढ़ियों के प्रति आस्था को वह डोला देता था। नवयुवक सामाजिक नियमों की उपयोगिता में संदेह करने लगे। परम्परा से आते हुये धार्मिक विचार, सामाजिक संगठन, पारिवारिक सम्बन्ध की उपादेयता और औचित्य में उन्हें संदेह होने लगा। स्थिर-स्वार्थ के पोषकों ने इस हवा को विषाक्त समझा और सुकरात को एथेन्स के नवयुवकों को गुमराह करने के अपराध में कारावास मिला और अन्त में विषपान कराकर उसकी हत्या की गई। सुकरात ने मरना स्वीकार किया पर अपने विश्वास को छोड़ना उसे मंजूर नहीं था। सत्य और विश्वास की बलिवेदी पर रूढ़िवादियों और स्थिर-स्वार्थों के विरोध के कारण सुकरात अमर-शहीद हो गये। उसके ये अन्तिम वचन "मैं अपने

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रास्ते पर हूं, और तुम लोग अपने रास्ते पर, कौन उत्तम है भगवान जाने", प्रत्येक मनुष्य को अपने भविष्य के लिए सोचने को प्रेरित करता रहेगा।

प्लेटो (४२७-३४७ ई० पू०) विश्व का एक महान दार्शनिक है। और यह सुकरात का शिष्य था। भिन्न २ विचारों, भाव-नाओं की गड़बड़ी के विरुद्ध उसने विश्व-नियम के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। ईश्वर परमात्मा है और पवित्रता और गति का मूल स्रोत। विश्व और मानव ईश्वरीय ज्योति से अनुप्राणित हैं, और निष्कलुष बुद्धि विश्व-नियम की चालक है। मनुष्य का कर्त्तव्य है ज्ञानोपार्जन, तभी उसे सत्यं शिवं सुन्दरं की प्राप्ति होगी। पर यह कछ चुने आदमियों के लिए सम्भव है। साधारण मनुष्य को अपने दैनिक-जीवन में पवित्र विचार व उचित कर्म पर ध्यान देना चाहिये। 'न्याय, साहस और सहनशीलता मनुष्य के पवित्र गुण हैं। शिक्षा के माध्यम से साधारण मनुष्य पवित्र जीवन बिताने के योग्य हो सकता है। इस तरह जाति की नैतिक प्रगति होगी। सत्य और सुन्दर की प्राप्ति आदर्श राज में ही सम्भव है, और इस राज्य का संचालक दार्शनिक ही हो सकता है। इस तरह प्लेटो ने दार्शनिक-राजा का सिद्धान्त प्रति-पादित किया। उसकी महान् पुस्तक रिपब्लिक (Republic) में, इसने समाज का संचालन व नियन्त्रण के लिए शिक्षा जरूरी है और उचित शिक्षा योग्य मनुष्यों को ही मिलनी चाहिये, इन सिद्धान्तों की व्याख्या की है। योरप में सामाजिक संगठन पर इसी पुस्तक में पहली बार विचार किया गया है। प्लेटो प्रजातन्त्र पर विश्वास नहीं करता था, बल्कि शिक्षित वर्ग पर ही राज्य का भार दे डालने का पक्ष लेता था। प्लेटो के दार्शनिक और राजनीतिक विचारों ने योरोपीय दर्शन और राजनीति-विज्ञान पर गहरा प्रभाव डाला है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अरस्तू (Aristotle ३८४-३२२ ई० पू०)

यह प्लेटो का शिष्य था। सिकन्दर का गुरु था। यह तर्कशास्त्र (Logic) का पिता कहा जाता है। राजशासन के विषय में इसका मत था कि विधान के तीन मूल रूप हैं—एकतन्त्र, श्रेणीतन्त्र और प्रजातन्त्र, और तीन विकृत रूप है, निकुरंश शासन, गुटतन्त्र और जनतन्त्र (Mob-rule)। अरस्तू का यह मत था कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है, इसलिए राज का संगठन अनिवार्य है, और राज्य का विकास मनुष्य की भलाई के लिए हुआ है। अच्छा और बुरा राज्य जनता के गुणों पर निर्भर करता है। जनता जैसी होगी, वैसा ही शासक होगा। प्रत्येक विधान की अच्छाई और बुराई उसके शासक के गुण पर निर्भर करती है। यदि बुद्धिमान और भला आदमी राजा बना तो एकतन्त्र सबसे उत्तम राज-विधान है, अन्यथा बहुत ही बुरा। अरस्तू का यह मत था कि साधारण परिस्थिति में मध्यमवर्ग, पूंजीपति और जमींदारों के द्वारा शासन अति उत्तम है। मजदूरों का शासन इनके ख्याल में सबसे बुरा था। क्रान्ति का कारण था भिन्न २ वर्गों के स्वार्थों में झगड़ा। निम्नवर्ग को उच्चवर्ग के प्रति घृणा और रंज क्रान्ति को निमन्त्रण देता है। इसलिए राजा को बराबर क्रान्ति रोकने की चेष्टा करनी चाहिये।

विज्ञान

जब संसार को समझने में अन्धविश्वास और पौराणिक रहस्यों (Mythology) को छोड़ कर बुद्धि का प्रयोग होता है, तब स्वतन्त्र वातावरण में इस बौद्धिक क्रान्ति का सबसे प्रभावशाली परिणाम होता है विज्ञान का विकास। पैथोगोरस् (५८२-५०७) ने यह प्रमाणित किया कि समकोण त्रिभुज के दो भुजाओं पर के वर्ग का जोड़ कर्ण के वर्ग के बराबर होंगे। गणितशास्त्र पैथोगोरस् का सदा आभारी रहेगा। थेल्स ने ज्योमिति में सरलरेखा और बिन्दु की परिभाषाएं बताईं।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिपोक्रेटिज (Heppocrates ४३० ई० पू०) ने पहली ज्योमिति-पुस्तक लिखी। प्लेटो के नेतृत्व में ज्योमिति में काफी प्रगति हुई।

ज्योतिष, भौतिकविज्ञान, (Physics) और रसायनविज्ञान (Chemistry) में यूनानियों ने काफी प्रगति दिखाई। इन्होंने ग्रहण और उल्कापात का वैज्ञानिक आधार का पता लगाया। एनाक्सिमेन्डर का यह विचार था कि पृथ्वी शून्य में टिकी है, और उसके चारों ओर ग्रह-उपग्रह हैं। पृथ्वी गोलाकार है, यह पैथोगोरस् का ही विचार था। पृथ्वी से सूर्य और और चन्द्रमा की दूरी का अन्दाजा लगाया गया था, और एनाक्सिमेन्डर ने यह सिद्ध किया कि सूर्य चन्द्रमा से सताइस गुणा बड़ा है। इन प्राचीन वैज्ञानिकों ने दो प्रकार की गति (Motion) का पता लगाया; सीधी (linear) और चक्राकार (Circular)। प्राचीन यूनानी विद्वानों ने यह समझा था कि भूकम्प पहाड़ों के गिरने से होता है, और सूखी जमीन पहले समुद्र से आच्छादित थी। हेरोदोतस् का यह कहना था कि नदियों के द्वारा लाई हुई मिट्टी पहाड़ों की ही थी। भूगोल का ज्ञान परिमित था। एनाक्सिमेन्डर ने यूनानी संसार का पहला नक्शा बनाया था। हेकाटिअस् (Hecataeus) का विचार था कि संसार में दो महादेश हैं, योरप और एशिया। हेरोदोटस् ने अफ्रिका को तृतीय महादेश मानने के पक्ष में कई युक्तियां दी थीं। एनाक्सिगोरस् ने भिन्न २ जलवायु होने के कारण पृथ्वी को अपनी धुरी पर झुका रहना बताया। थेल्स ने पहले पहल सूर्य ग्रहण का ठीक भविष्यवाणी किया।

जीव-शास्त्र और शरीर-विज्ञान में भी यूनानियों ने काफी छान-बीन किया। मनुष्य की उत्पत्ति मछली से हुई, ऐसा एनाक्सिमेन्डर का मत था। शरीर-रचना-शास्त्र (Anatomy-treatise) की पहली पुस्तक Diogenes ने पाँचवीं शताब्दी ईसा-पूर्व में लिखी। औषधिशास्त्र (Medicine) में भी प्रगति हुई। मिश्र के स्कूलों के आधार पर यूनान में भी औषधि-विज्ञान के स्कूलों की उत्पत्ति हुई। प्रत्येक रोग के निवारण के लिए विशेष औषधि की खोज होती रही।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औषधिशास्त्र के वैज्ञानिकों में अल्कमेन (Alcmaeon) का नाम स्मरणीय है। हिप्पोक्रेटिस् औषधि-विज्ञान का पिता कहा जाता है। उसने ६०-७० कीतावें इस विषय पर लिखी है। उसका विचार था कि कफ, पित्त (काला और पीला) और रक्त के उचित अनुपात की गड़बड़ी से ही रोग की उत्पत्ति होती है, और इस का निदान है उचित अनुपात को फिर से स्थापित करना। गन्दी हवा, गन्दा और वंधा पानी रोगों के कारण समझे गए। मैलेरिया का इलाज पर अधिक ध्यान दिया गया। वर्षा का पानी उवाल कर पीना स्वास्थ्य के लिए लाभदायक बताया गया। शहर की सफाई और गन्दा पानी को निकालने का प्रवन्ध पर जोर डाला गया। रोग को हटाने में अतिरिक्त खून को निकालना, भोजन पर नियंत्रण, जुलाव इत्यादि का व्यवहार किया जाता था। एक औषधि-विशेषज्ञ का विचार था कि ज्वर रोग नहीं, वरन् रोग का एक लक्षण. मिर्गी को भूत-पशाच या दैवी-प्रकोप नहीं वरन् दिमाग का रोग समझा गया। आधुनिक चिकित्सा-शास्त्र और विज्ञान ने प्राचीन यूनानी विचारों को बहुत अंशों में मान लिया है।

विश्व को यूनान की देन

विश्व-साहित्य और कला यूनान का सर्वदा आभारी रहेंगे। यूनानी उनके मूर्तिकला और नाटक कला और साहित्य के विकास में आजतक पथ-प्रदर्शक और आदर्श के नमूने माने जाते हैं। आधुनिक चिकित्सा, ज्योतिष और गणित की उन्नति यूनानी विशेषज्ञों और वैज्ञानिकों की की खोज की नींव पर ही सम्भव हो सकी है। योरोपीय दर्शन पर प्लेटो और अरस्तू का अमिट प्रभाव है। राजनीति में इनका व्यावहारिक प्रजातन्त्र और नागरिकों का विधान व देश क प्रति अटूट प्रेम ने वर्त्तमान लोकतंत्र और राष्ट्रीयता पर अत्यन्त प्रभाव डाला है। पर्शिया पर विजय प्राप्त कर यूनान ने योरोप की सभ्यता की स्वतंत्रताश को जीवित

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्खा । सिकन्दर महान् ने योरप में विश्व-साम्राज्य और निरकुंश राजतंत्र भी ले आया। रोम का साम्राज्य बहुत अंशों में इस आदर्श का व्यावहारिक रूप ही था । सच पूछा जाय तो योरप का इतिहास और योरोपीय संस्कृति को यूनान की संस्कृति का इतिहास जाने विना समझना नामुमकिन है ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोम की सभ्यता

१

इटैली यूनान से बड़ा है। भूमध्यसागर के मध्य में स्थित रहने के कारण इटैली को भिन्न २ संस्कृतियों से सम्बन्ध होने की सुविधा मिली। क्रीट प्रायद्वीप पर जब यूनानियों का अधिकार हो गया तब प्राचीन क्रीटवासी इधर-उधर बिखर गये। एशियामाइनर और मिश्र के तट पर इनलोगों का दबाव पड़ा। कुछ उत्साही जत्थे इटैली भी पहुँच गए होंगे। इट्रस्कन (Etruscuns) लोग उत्तर इटैली पर अपना अधिकार जमा चुके थे। ये लोग यहां शायद एशिया-माइनर से आये थे। इनकी सभ्यता पूर्वीय-सभ्यताओं से प्रभावित थी। यूनानी उपनिवेशों के फैलाव को रोकने के लिए इट्रस्कन दक्षिण की ओर भी बढ़े, और नेपुल्स पर अपना सिक्का जमा लिया। इटैली के समीप के प्रायद्वीपों में और दक्षिण इटैली के कुछ भाग में यूनानी उपनिवेश व यूनानी संस्कृति प्रवेश पा चुके थे। अतः इट्रस्कन और यूनानी दो सांस्कृतिक धाराओं से इटैली प्रभावित था। रोम की सभ्यता के विकास में इस दृष्टिकोण को नहीं भूलना चाहिये। इट्रस्कनों ने इटैली का आर्थिक विकास में बहुत भाग लिया। अंगूर और गेहूं के अच्छे किस्म का प्रवेश हुआ। लोहे के हथियारों का प्रयोग मालूम हो गया। अच्छे मंदिर और योजनानुकूल नगरों का निर्माण किया गया। उनकी शक्ति दिनोंदिन बढ़ती ही गई।

इट्रस्कनों की बढ़ती शक्ति की प्रतिक्रिया में ही रोम का उदय हुआ। दो-हजारवीं सदी ईसा पूर्व में पूर्वीय आल्प्स के पहाड़ों को लांघ कर आर्यों का आगमन इटैली में हुआ। इनमें लैटिन और सेबाइन दो प्रमुख जातियां थीं। आर्यों का विस्तार इट्रस्कनों के स्वार्थ

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के विरुद्ध ही था। ७५३ ई० पू०, अलबन पहाड़ियों के अंचल में टाईबर नदी के दक्षिण कूल पर रोम की नींव दी गई। शायद सात गाँवों का संगठन कर ही रोम शहर की उत्पत्ति हुई। यहां से कई सड़कें निकलीं, जिससे कि अड़ोस-पड़ोस से रोम का संबंध स्थापित हो गया।

रोम में पहले राजतंत्र था, और सभ्यता कृषि पर आधारित थी। एक भला आदमी सफल किसान ही समझा जाता था। रोम पर इट्रस्कनों का अधिकार हो गया, और उनके राजा दुराचारी और अत्याचारी निकले। इनलोगों के राज्यकाल में सेना का सुधार हुआ, कुलीन-श्रेणी वर्ग को सेना और राज्य में विशेषाधिकार मिला। निम्नवर्ग (Plebian) को सेना में नीचा स्थान मिला। दासप्रथा और बेगारी-प्रथा का समाज में प्रवेश हुआ। श्रेणीवर्ग (Patrician) और निम्नवर्ग (Plebian) का झगड़ा, दासप्रथा का समाज का आर्थिक आधार बन जाना, रोम के इतिहास के प्रमुख कारणभूत (Leading-Motives) हैं, और इसके लिए इट्रस्कन्-युग कम उत्तरदायी नहीं है। ईसा से षष्ठी शताब्दी पूर्व में इस राज्यकुल का नाश कर दिया गया और रोम में प्रजातंत्र (Republic) स्थापित हुआ। विधान में एक राजा के स्थान में दो मैजिस्ट्रेट (Consul) बने, और प्रत्येक को सेना का नेतृत्व करने का अधिकार था। इनको सलाह देने के लिए एक सिनेट थी, और यह कुलीन-वर्ग (Patrician) की सभा थी। राज्य-शासन में इन्हीं का सर्वाधिक अधिकार था। धर्म और अलिखित कानून के संरक्षक यही थे।

२

इन अल्पसंख्यक कुलीनों का राजयन्त्र, कानून, और धर्म पर एकाधिकार बहुसंख्यक निम्नवर्ग (Plebians) नहीं सह सकता था। प्लेबिअनों को सभी प्रकार की असुविधा थी, और पेट्रिशियन उनका शोषण

CC-0. Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ही अपनी स्वार्थसिद्धि देखते थे। प्लेबिअनों ने राज्य पर अपना अधिकार प्राप्त करने के लिए आन्दोलन शुरू किया। खून-खराबी भी हुई, पर कम। पेट्रिशिअनों ने धीरे २ इनकी मांगों को मानना स्वीकार किया। यह वर्ग-युद्ध बहुत दिन तक, अढ़ाई सौ वर्ष तक चला, और इस लम्बी अवधि में इस युद्ध के कई विश्रामस्थल हैं। पर अन्त में प्लेबिअनों की ही विजय हुई। प्लेबिअनों का अमोघ अस्त्र था, युद्ध में उनकी सहायता की अनिवार्यता। जब पेट्रिशिअनों को दुश्मनों का मुकाबिला करना पड़ता तब वे बहुसंख्यक प्लेबिअन सैनिकों की मदद चाहते, और प्लेबिअन इस अवसर का लाभ उठा कर अपनी मांगों की पूर्ति चाहते। सत्ताधारी पेट्रिशिअनों को झुकना पड़ता। ट्रिब्यूनेट पद की स्थापना हुई, इस पद पर नियुक्त अफसर का काम था प्लेबिअन के हितों की रक्षा करना, गरीब किसानों को गुलामी से मुक्त करना। ४५० ई० पू० कानून का पहला संकलन हुआ (Twelve Tables) जिससे प्लेबिअन अपने अधिकार को जान सके, और पेट्रिशिअन कानून की अवज्ञा कर उनपर अत्याचार करने से वंचित हो गये। कानून को भी नर्म किया गया। प्लेबिअन की सभा को अपील सुनने का हक मिला। यदि सिनेट की स्वीकृति मिल जाय तो इस सभा के प्रस्ताव कानून बन सकते थे। प्लेबिअन और पेट्रिशिअन का विवाह सम्बन्ध कानूनी करार दिया गया। इससे आपसी कटुता का कम होना स्वाभाविक था। धीरे २ सभी मैजिस्ट्रेट के पदों पर प्लेबिअन की नियुक्ति होने लगी। सिनेट में भी इनका प्रवेश हो गया। यह विजय की अन्तिम सीढ़ी थी। प्लेबिअनों की सभा को कानून बनाने का हक मिल गया (२८७ ई० पू०)। श्रेणीवर्ग और निम्नवर्ग अब कंधे से कंधे मिलाकर रोम की उन्नति करने लगे।

३

जब कि वर्ग युद्ध चल रहा था, उसी समय रोम को दुश्मनों से लड़ना पड़ रहा था। रोम ने लैटिन-एकता स्थापित की और इट्रस्कनों

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और पहाड़ी जातियों के दोतरफा आक्रमण से रक्षा करने में समर्थ हुआ। आल्पस् पार कर गौलों (Gauls) ने इटैली पर आक्रमण किया, पर रोम के नेतृत्व में इन्हें भी पराजय मिली। पर रोम जल चुका था, उसका कोष खाली हो गया था। पर रोमनों ने अजीब पुनर्जीवन की शक्ति दिखाई और देखते देखते रोम फिर और भी शक्तिशाली और समृद्ध खड़ा हो गया। रोम की बढ़ती शक्ति का जोर पूरे इटैली पर पड़ा। रोम ने धीरे २ सारे इटैली को अपने अधिकार में कर लिया। इटैली की रीढ़ पर स्थित रोम को प्रत्येक दिशा में बढ़ने की सुविधा थी। जब कि यूनान में एथेन्स और स्पार्टा ऐसे प्रभावशाली राज्य राजनीतिक एकता नहीं स्थापित कर सके थे, इटैली में रोम ने यह कमाल कर दिखाया। भौगोलिक सुविधा ही नहीं वरन् राजशासन में अनुपम कौशल के कारण ही रोम राजनीतिक एकता स्थापित कर सका। नर्म नीति और समझौता करने के लिए बराबर तैयार रहने की नीति को अपना कर रोम ने साम्राज्य-स्थापकों के लिए पथप्रदर्शक का काम किया है। रोम विजित प्रदेशों पर स्थायी विजयी-सेना नहीं रखता था, पर वह महत्वपूर्ण स्थानों में रोमन किसान-सैनिकों का उपनिवेश स्थापित करता था। ये उपनिवेश रोम से कई बंधनों से बंधे रहते थे और रोम के हितों की रक्षा में अपना स्वार्थ समझते थे। पूरा इटैली जब रोम के अधिकार में आ गया तो रोम के नेतृत्व में संघ-राज्य की स्थापना हुई, और इस संघ के सदस्य-राज्य कई दर्जे के थे। पर सभी की आँखें रोम पर गड़ी रहती थी। इनके पारस्परिक सम्बन्ध रोम के द्वारा ही परिचालित होता था।

लगभग पचास वर्ष के लगातार युद्ध के बाद ही रोम समूचे इटैली को एक राजनीतिक-सूत्र में बांध सका था। इस लगातार लड़ाई का परिणाम रोम की आबादी और तत्कालीन आर्थिक स्थिति पर बहुत ही बुरा पड़ा। कृषि की हानि हुई। गरीब छोटे किसानों का सबकुछ

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वाहा हो गया। अन्नाभाव का सामना करना पड़ा। खेत मजदूरों की संख्या बढ़ गई, और उन्हें रोजी मिलना मुश्किल था। भाग्य से नये उपनिवेशों की स्थापना होने लगी, और इन बेरोजगार खेतहीन मजदूरों को सहारा मिला। अपनी आन्तरिक समस्याओं के समाधान की खोज में रोम को साम्राज्यवाद का पथ अपनाना पड़ा। यदि रोम साम्राज्यवादी नहीं हो जाता, यदि नये देश व उपनिवेश जीत कर राज्य-विस्तार नहीं करता तो दरिद्र व बेरोजगार जनता की क्रान्ति का शिकार बन जाता और राजनीतिक एकता नहीं टिक सकती थी। पनपने के पहले ही रोम तबाह हो जाता। साम्राज्य-विस्तार के अलावे जन-कार्य विभाग ने काफी मुस्तैदी दिखायी। सड़कें बनने लगीं, चौर-आहर का पानी निकाल कर खेती के योग्य जमीन बनाया जाने लगा, और शहर को सुन्दर भवनों से सजाया जाने लगा। लोगों को इस प्रकार रोजी मिलने लगी, राज्यशक्ति संचालन में सड़कों से बहुत सहायता मिली, और कृषि और व्यापार में उन्नति हुई। इन सड़कों से सारा इटैली आच्छादित हो गया। रोम की सेना का आवागमन, अफसरों की अदली-बदली, और सबसे महत्वपूर्ण रोम की सभ्यता का विस्तार व राष्ट्रीय एकता के विकास में इन सड़कों ने बहुत लाभ पहुँचाया। तभी तो सभी सड़कें रोम की ओर ले जाने लगीं (All Roads lead to Rome.)। सारा इटैली प्रत्येक दिशा में रोम का मुँह जोहता रहा।

४

रोम और कार्थेज

पूर्वीय भूमध्यसागर में यूनानी सभ्यता फैली हुई थी। सिकन्दर के मरने के बाद उसका साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। न यूनान में, और न एशिया या अफ्रिका में कोई यूनानी राज्य इस योग्य था कि यूनानी संसार को एक राजनीतिक सूत्र में बांधे। पर यदि राजनीतिक एकता

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अभाव था और पारस्परिक झगड़े भी होते रहते थे, सांस्कृतिक एकता तो थी ही। यूनानी भाषा, राजशासन पद्धति, कला और साहित्य को इन विजित देशों या उपनिवेशों ने दौड़ कर अपनाया। मिश्र में एलेक्जेन्ड्रिया यूनानी सभ्यता का एक केन्द्र बन गया था।

पर पश्चिम भूमध्यसागर के क्षेत्र में यूनानी संस्कृति का यह दबदबा नहीं था। उत्तरी अफ्रिका के तट पर स्थित कार्थेज, और इटैली में रोम यूनानी सभ्यता के प्रभाव से लगभग अछूते ही थे। सिसली के पूर्वीय भाग में यूनानी उपनिवेश स्थापित हुये थे। पर पश्चिम सिसली पर कार्थेज का अधिकार था। कार्थेजवासी एशियामाइनर तटस्थित फिनिशिअनों से सम्बन्ध रखते थे। इनकी सभ्यता एशियाई सभ्यता थी। व्यापार में कार्थेज-प्रतिभा का खूब विकास हुआ था। अफ्रिका में लिबियनों पर इन्होंने अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। दक्षिण स्पेन भी उनकी प्रभुता के क्षेत्र में था। उनका विस्तृत-साम्राज्य जलशक्ति पर आधारित था। उनकी यह इच्छा बराबर रही कि पूरे सिसली पर उनका अधिकार हो जाय। व्यापार की दृष्टि से सिसली की स्थिति महत्वपूर्ण है। पूर्वीय भूमध्यसागर पहुंचने का यह अच्छा द्वार था। उनके प्रथम प्रयास यूनानियों के विरोध के कारण असफल रहे। पर यूनानी बराबर आपस में ही झगड़ते रहे। यही कार्थेज के लिए सुअवसर था। सिसली के अधिक भाग पर कार्थेज का अधिकार हो गया, सिर्फ उत्तर-पूर्व कोने पर सेराकूश (Seracuse) बचा रहा। सेराकुस का राजा हाइरो (Hiero) ने मेस्साना पर आक्रमण किया। मेस्साना उत्तर-पूर्व के आखिरी कोने पर स्थिति था। मेस्साना के एक दल ने कार्थेज से मदद मांगी (२६६ ई० पू०)। पर मेस्साना के दूसरे दल ने रोम से सहायता की याचना की। यही प्रथम प्यूनिक-युद्ध, कार्थेज-रोम की लड़ाई का कारण है। रोम की बढ़ती शक्ति कार्थेज को घातक मालूम हो रही थी, और रोम की आर्थिक

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिस्थिति उसे साम्राज्य विस्तार के लिए प्रेरित कर रही थी। सिसली रोम और कार्थेज के मध्य में है। इसी अखाड़े पर इनका दंगल होना स्वाभाविक था।

यह लड़ाई कई वर्षों तक चली। कार्थेज को अपने समुद्री बेड़े पर नाज़ था। रोम को तो इसका वस्तुतः अभाव था। पर जल्दी में अनुभवहीन रोमनों ने जो मामूली जंगी जहाज बनाये उसके द्वारा उन्होंने अनुभवी कार्थेज के जहाजियों के दांत खट्टे कर दिये। रोम का महान् सेनापति रेगूलस् (Regulus) ने अफ्रिका पर आक्रमण कर दिया। कार्थेज नगर स्वयं आपद्ग्रस्त था। पर रेगूलस् की हार हो गई, और वह पकड़ा गया। लड़ाई चलती रही, रोम का जहाजी बेड़ा बर्बाद हो गया। पर रोम का उत्साह नहीं मिटा, और सिसली पर उसका अधिकार बना रहा। अन्त में २४१ ई० पू० सन्धि हुई जिसके अनुसार कार्थेज ने सिसली पर से अपना दावा उठा लिया और रोम को करीब ७० लाख रुपये हर्जाना देना मञ्जूर किया।

पर यह सन्धि क्षणिक थी। कार्थेज और रोम के बीच अन्तिम फैसला होना बाकी था। कार्थेज का अधिकारी हैमिल्कार रोम से युद्ध की पुनरावृति चाहता था। स्पेन में कार्थेज ने पुनः शक्ति स्थापित करने की चेष्टा की। मार्सेलि (Marseilles) में यूनानी उपनिवेश बहुत दिनों से था, और यहां के व्यापारियों को रोम से मित्रता थी। कार्थेज ने मार्सेलि पर अपना अधिकार जमाना चाहा। अन्त में मार्सेलि और कार्थेज की सीमा निर्धारित की गई। पर जब हैन्निबाल कार्थेज का स्वामी हुआ तो बात बिगड़ने लगी। रोम भी कार्थेज का स्पेन में घुस आना पसन्द नहीं करता था। रोम ने एक स्वतन्त्र नगर सगुन्तुम (Saguntum) से मित्रता की। सगुन्तुम कार्थेज के प्रभाव-क्षेत्र में था। हैन्निबाल ने आक्रमण कर इस शहर पर कब्जा कर लिया। रोम ने कार्थेज से हैन्निबाल का आत्मसमर्पण की मांग की। परिणाम था कार्थेज-रोम की दूसरी लड़ाई का आरम्भ (२१८ ई० पू०)।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैन्निवाल ने इटली पर सीधा आक्रमण कर रोम पर अधिकार करने की योजना बनाई। मुट्ठी भर वेतन भोगी सैनिकों से वह रोम की देशभक्त और बड़ी सेना को चुनौती देने जा रहा था। हैन्निवाल संसार के प्रसिद्ध सेनानायकों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। यह लड़ाई बहुत वर्षों तक चली। पहले रोम की हार हुई और रोम पर हैन्निवाल का धावा की आशंका बहुत बढ़ी। पर रोम बच गया। १४ वर्ष तक हैन्निवाल इटैली में डटा रहा। पर अन्तिम विजय उसे न मिली। रोम ने आत्मविश्वास और स्फूर्ति नहीं छोड़ी। रोम की सेना स्पेन में सफलतापूर्वक डटी रही और हैन्निवाल को घर से मदद मिलना दूभर हो गया। इधर रोम को सिपिओ (Scipio) के ऐसा योग्य सेनापति मिल गया। सिपिओ ने अफ्रिका पर आक्रमण किया और जामा (Zama) की लड़ाई (२०२ ई० पू०) में कार्थेज को बुरी तरह हार हुई। हैन्निवाल ने अपने देशवासियों को सन्धि करने की सलाह दी। कार्थेज ने करीब २० करोड़ रुपया पच्चास किश्त में हर्जाना देना स्वीकार किया। उसका जहाज़ो-बेड़ा जला दिया गया; उसने विजित देशों पर अपना दावा त्याग गया। युद्ध और सन्धि करने का अधिकार-वैदेशिक नीति—रोम की सरकार के अधिकार में आ गया। सच पूछो तो कार्थेज रोम का आसामी बन गया। हैन्निवाल ने कार्थेज की निस्वार्थ सेवा की, और एक सच्चे देशभक्त बन कर कार्थेज में राजनीतिक और आर्थिक सुधार किया। कार्थेज फिर उठ खड़ा होने लगा, पर रोम की आंखें इस ओर से हटी नहीं थी। हैन्निवल का आक्रमण भूला नहीं था, और कार्थेज का भय बना था। इसलिए प्रसिद्ध वक्ता कैटो (Cato) सिनेट में अपने सभी भाषणों का अन्त "कार्थेज को नेस्तनाबूद कर ही देना चाहिये" (Carthage must be despoyed) इसी वाक्य से करता था। अन्त में

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्थेज को न्यूमिडियनों के विरूद्ध युद्ध करना पड़ा और रोम ने इस अवसर का फायदा उठाया। कार्थेज पर सन्धि तोड़ने का आरोप लगाया गया और रोम-कार्थेज की तीसरी लड़ाई शुरू हो गई। तीन वर्ष तक लड़ाई चलती रही और १४६ ई० पू० में कार्थेज को बिल्कुल बर्बाद कर दिया गया। कार्थेज अब रोम साम्राज्य का एक प्रांत बन गया और इस प्रांत का नाम अफ्रिका हो गया।

रोम और कार्थेज का युद्ध का परिणाम बहुत महत्वपूर्ण हैं। दूसरी प्यूनिक लड़ाई संसार के सभी लड़ाइयों में सदैव के लिए सबसे महत्वपूर्ण समझी जाती है। अभीतक रोम ने इटैली को अपने अधिकार में किया था, और इटैलियन जातियों से उसने मित्रता का व्यवहार रखा था। मित्रता के कई दर्जे थे। पर रोम इटैलियनों को दोस्त बनाने की फिक्र में था। पर सिसली पर जब अधिकार हो गया, तब रोम ने दूसरा ही रूप दिखाया। सिसली को मित्र-राष्ट्र न मानकर विजित-प्रदेश, और सिसलीनिवासियों को विजित-प्रजा समझा गया। सिसली का आर्थिक शोषण राजनीतिक बन्धन के द्वारा ही सम्भव हुआ। इटैली में अंगूर की लताएं व जैतून के पेड़ फैल रहे थे। अन्न-उपजाऊ जमीन की कमी हो रही थी। व्यापार की दृष्टि से शराब और तेल की उन्नति रोकी नहीं जा सकती थी। पर अन्न की कमी को दूर करना जरूरी था। इसलिए सिसली रोम के लिए अन्न का भण्डार बन गया। यहां से अन्न लूट कर या कर के रूप में इटैली ले आया जाता। इससे इटैली में उपजे गेहूं का दाम कम हो गया, और यहां किसानों की समस्या विकट हो गई। सिसली से कर-वसूली के निरीक्षण के लिए रोम से मैजिस्ट्रेट (Quaestor) भेजे जाने लगे। विजित प्रदेशों का मैजिस्ट्रेटों द्वारा शासन शुरू हो गया। रोम की साम्राज्य-वृद्धि की तृष्णा तीव्रतर होती गई। जामा के युद्ध में विजय के बाद रोम अभिमानी हो गया, और कमजोर राष्ट्रों और विजित प्रदेशों से उसका व्यवहार उद्दण्डता और स्वार्थपरता से पूर्ण हो

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने लगा। दुनिया रोम का आदर नहीं, वरन् भय करने लगी। रोम परतन्त्रता की बेड़ी पहनाने वाला बन गया।

रोम के इस स्वभाव-परिवर्तन का प्रभाव इटैली पर भी पड़ा। जब लगभग सारा इटैली हैन्निबाल के पैर के नीचे पड़ा था, रोम ने अदम्य उत्साह और आत्मविश्वास से अपने को ही नहीं वरन् सारे इटैली को बचा लिया। अब इटैली के राज्य रोम के मित्र नहीं, वरन् आसामी बन गये। इटैली रोम का विजित प्रदेश ही रह गया। दुनियां रोम और इटैली को अब एक समझने लगी।

रोम के उच्चवर्ग की सभा—सिनेट का प्रभाव राजशासन पर और भी दृढ़ हो गया। वैदेशिकनीति, युद्ध और शान्ति करने का अधिकार, और विजित प्रदेशों का शासन प्रबन्ध का भार सिनेट पर था। प्यूनिक-युद्ध में सिनेट ने सफल नेतृत्व किया था। लोकसभा विधान की दृष्टि में प्रभुत्व की अधिकारी थी, पर वस्तुतः सिनेट कर्ताधर्त्ता बन गया था। इस तरह उच्चवर्गों का राजशासन पर अधिकार हो गया और इसका फायदा उन्हें आर्थिक क्षेत्र में मिला। गरीब किसान युद्ध में संलग्न थे, और उनके खेत अमीरों के पास चले गये। कुछ अमीरों की मुट्ठी में धन का संचय हो गया, गरीब और भी गरीब हो गये। मुट्ठी भर धनी लोग सिनेट के सदस्य थे और इस तरह राजनीतिक-यंत्र का अपने हित में व्यवहार करते थे। विजित प्रदेशों का शोषण करने वाले बहुत जल्दी धनी बन गये, और इस तरह ठीकेदारों का (प्रान्तों में कर या अन्न की वसूली करने का ठीका लेने वाले) एक नया शोषक-वर्ग पैदा हो गया। पीछे चलकर सिनेट के गुटतन्त्र का इस वर्ग ने विरोध करना शुरू किया।

इस युद्ध का एक और परिणाम था रोम का यूनानी सभ्यता से प्रत्यक्ष संसर्ग होना। सिसली में यूनानी उपनिवेश स्थापित थे—उनके साथ रोम का सम्बन्ध हो गया। दूसरी प्यूनिक-लड़ाई में यूनानी राज्यों से भी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्ध हो गया। इस तरह रोम यूनानी सभ्यता के संसर्ग में आ गया। पर यह यूनानी-सभ्यता पेरिक्लिस्-युग की परिपक्व रचनात्मक सभ्यता नहीं थी। इस समय समय के फेर या परिस्थितियों के कारण यूनानी सभ्यता अवनति पर थी। बनावटी हाव-भाव, नकल, कीमती फैशन, और सामाजिक कुरीतियां ही स समय की यूनानी सभ्यता के प्रमुख अंग बन गये थे। रोम ने इस सभ्यता को दौड़कर अपनाया। यूनानी कला, साहित्य नाटक या कविता और दर्शन की तुलना में रोमन अपने को असभ्य समझते थे। यूनानी ड्रामा, सुखान्त या दुखान्त, का अनुवाद होने लगा। अमीर इन नाटकों के अभिनय के लिए साधन जुटाने लगे। यूनानी स्वच्छन्दता और अनुशासनहीनता रोमनों को प्रभावित करने लगी। रोमनों का चरित्र इस प्रभाव के परिणाम स्वरूप बदलने लगा। नैतिक आदर्शों का पतन हो गया; कठोर नियमों की अवहेलना होने लगी, समाज के बंधन ढीले पड़ गये।

५

जिस समय रोम में यूनानी आचार-विचार फैल रहे थे, उसी समय रोम का राजनीतिक व सैनिक प्रभाव यूनानी संसार पर स्थापित हो रहा था। एड्रियाटिक-समुद्र में डाकुओं का उत्पात रोम ने बन्द कर दिया था, इससे यूनानी राज्य, एथेन्स प्रभृति सभी, बहुत कृतज्ञ थे, और उनने रोम को यूनानी राष्ट्रीय खेल-कूद में निमंत्रण दिया था। इस समय रोम यूनानी-संसार पर अपना प्रभुत्व जमाने को नहीं सोच रहा था। पर परिस्थितियां ऐसी उपस्थित होती रहीं कि रोम को अपनी इज्जत और अपनी स्वार्थ की रक्षा के लिए यूनानी शक्तियों का नाश करना पड़ा। मैसिडोन का राजा ने कार्थेज की दूसरा प्यूनिक युद्ध में मदद दिया था। पर एथेन्स और स्पार्टा की मदद से रोम ने फिलिप को बुरी तरह हराया। मैसिडोन का राज्य रोम ने नहीं हड़पा। पर रोम को सिरिया का यूनानी सम्राट एन्टिओकस और मिश्र का यूनानी राजा टौलमी के झगड़ों में

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फंसना पड़ा। एन्टिओकस् पश्चिम की ओर बढ़ रहा था और मिश्र पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहता था। रोम ने अन्टिओकस् की बढ़ती शक्ति को अपने लिए खतरनाक समझा। युद्ध में एन्टिओकस् की हार हुई (१९० ई० पू०)। मैसिडोन इसी समय स्वतन्त्र यूनानी-राज्यों को अपने अधिकार में लाने की योजना को कार्यान्वित कर रहा था। रोम ने यूनान के राज्यों की स्वतन्त्रता के पक्ष में मैसिडोन का विरोध किया, और उसकी हार हुई। पर रोम ने मेसिडोन की स्वतंत्रता का अपहरण नहीं किया और यूनान के राज्य स्वतन्त्र रह गये। पर रोम का प्रभुत्व तो किसी न किसी न किसी रूप में रहा ही, और धीरे २ यूनान रोम के साम्राज्य का एक भाग बन गया। मैसिडोन रोम का एक प्रान्त बन गया। कौरिन्थ ने रोम की प्रभुता के विरुद्ध विद्रोह किया और इसे बुरी तरह कुचला गया। सभी यूनानी राज्यों के लिए यह एक उदाहरण बन गया।

यदि पूर्व में यूनान रोमन सामाज्य के अन्तर्गत आ गया, तो पश्चिम में स्पेन रोम के अधिकार में हो चुका था। स्पेन में कई वर्षों तक विद्रोह की आग भड़कती रही, पर १३३ ई० पू०, स्पेन ठण्ढा पड़ गया।

अब पूरे भूमध्यसागर क्षेत्र में रोम का साम्राज्य विस्तृत था। रोम ने इस विस्तृत साम्राज्य को भीषण लड़ाइयों के बाद और काफी खर्च कर के प्राप्त किया था। अब रोम के सेनापति, मैजिस्ट्रेट और गर्वनर इन प्रान्तों के शोषण में ही अपनी स्वार्थसिद्धि समझने लगे। धनी रोम में बाहर से पैसा आने लगा। बड़े २ भव्य मकान बने, सड़कें बनीं, अमीर के लड़के एथेन्स जाकर शिक्षा प्राप्त करने लगे, और यूनानी फैशन और साहित्य की नकल होने लगी।

६

रोम का साम्राज्य विस्तार से जो अतिरिक्त धन की वृद्धि हुई, उसका उचित वितरण नहीं हुआ। सिनेट रोम की शक्ति का प्रतीक

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था, और सिनेट में उच्चश्रेणी के लोगों का बोलबाला था। इन अमीरों के गुट की आर्थिक उन्नति आसमान चूम गई और गरीब गरीब ही होते गये। अफ्रिका, स्पेन और यूनान की लम्बी लड़ाइयों में रोम के साधारण किसान भर्ती किए गये थे। इस ओर बहुत रहने के कारण उनकी खेती गिरने लगी। बड़े २ धनी जमींदार खेती बढ़ा रहे थे और अपने बड़े चकलों की खेती गुलामों के द्वारा सस्ते दाम में करा रहे थे। युद्ध में पकड़े हुये सिपाही, या असहाय किसान अपनी छोटी टुकड़ी को गिरवीं रख कर या बेचकर जमीदारों की गुलामी करने को बाध्य थे। जब रोम के सिपाही लड़ाई के मैदान से वापस लौटे तो उन्होंने देखा कि उनकी खेती अब लाभप्रद नहीं थी। कम खेत रख कर भला वे किस तरह जमींदारों की प्रतिद्वन्द्विता का मुकाबिला कर सकते थे। उन्हें अन्त में खेत से भी हाथ धोना पड़ा। इस तरह बेकारों की संख्या बढ़ गई, और सब रोम शहर में जमा होने लगे। सिनेट ने इस भयंकर स्थिति का अंदाजा लगाया। भूखे और बेकार क्रान्ति न कर बैठें इसलिए उन्हें सरकार की ओर से अन्न की भीख मिलने लगी। मर्ज घटने के बजाय बढ़ता ही गया। रोम में बेकारी की सख्या दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ने लगी। स्थिति बिगड़ने का एक ओर कारण था। इटली में अब सिसली, सार्डिनिया और मिश्र से अन्न से लदे जहाज पहुंचने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि घर के उपजे अन्न की कीमत कम हो गई। बाहर से सस्ते अनाज के आयात से ऐसा होना स्वाभाविक था। अन्त में खेती करना ही आर्थिक दृष्टि से नुकसानदेह हो गया। अब गरीब और साधारण किसान को खेती या कृषि-उद्योग को छोड़ना पड़ा या वह गुलाम हो गया। वह रोम में जाकर अपना वोट बेचता, थियेटर-सर्कस देखकर समय काटता, और राज्य से मिले अन्न की भीख पर गुजर कर अपनी प्रतिष्ठा, आत्म-विश्वास और उत्तरदायित्व को तिलाञ्जली देदेता। रोम में यह अनुत्तर-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दायी जमायत (Mob) की राजनीतिक शक्ति बहुत बढ़ गई, और प्रत्येक दुस्साहसी रोमन नेता इस वर्ग को खरीदने की कोशिश करता, और राज शासन पर अधिकार जमा कर अपने गुट की स्वार्थसिद्धि में लग जाता। विरोधी नेताओं ने अपने को जनता का नेता समझा कर जनता को खूब बरगलाया, और रोम की राजनीति अस्थिर हो गई।

ग्रैकाई-बन्धुओं (Tiberius and Caius Grachus) ने परिस्थिति को देखा, और रोम की शक्ति का ह्रास का वास्तविक कारण समझा। इन्होंने भूमि-प्रथामें सुधार किया। अधिक से अधिक कितना जमीन एक आदमी रख सकता है इसका निश्चय किया गया, और इस तरह जो जमीन बच गई उसे भूमिहीनों के बीच नामनेहादी कर के बदले बांट दिया गया। पर सिनेट भला इस सिद्धांत को किस तरह ईमानदारी से बरत सकता था। उसने रोम की अनुत्तरदायी और पाशविक जनता को उभाड़ा और दोनों बन्धुओं की हत्या उनलोगों के द्वारा हुई जिनके हित के लिए ग्रैकाई-बन्धु ने सिनेट से विरोध मोल लिया था। कायस् ग्रैकस का यह प्रस्ताव कि सभी स्वतंत्र लैटिन किसानों को नागरिकता के पूरे अधिकार दिये जायँ और सभी इटैलियनों को कोमिशिया (Comitia) में वोट देने का हक मिले रोम की जनता को नामंजूर था, विशेषकर जब उनकी स्वार्थी भावनाओं को सिनेट ने उभाड़ा। कायस् ने गरीब रोमनों के हित में ही रोम में अन्न के गोला की स्थापना की जहां से ये गरीब सस्ते मूल्य में अन्न खरीद सकें। इससे इनमें स्वाभिमान व आत्मप्रतिष्ठा का पुनः उदय होता। पर इस सुधार को भी ग़लत समझा गया। कायस् ने यह नियम बनाया कि शासन में भाग लेने के लिए नागरिकों को वेतन मिले। पर इस सुधार का यह फल हुआ कि ये कंगाल नागरिक और भी पतित हो गये। व्यसनों में डूबे हुये ये नागरिक क्षणिक स्वार्थ के लिए अपने हितकारी कायस् के भी खून के प्यासे हो गये।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७

रोम में अब सैनिकवाद का बोलबाला था। लड़ाई बराबर होती रही, और दुस्साहसी सेनापतियों ने अपने स्वार्थ के लिए खून-खराबी मचाया। उत्साही और स्वार्थी पुरुष अब राजनीतिक क्षेत्र में सेना के बल पर हावी हो गये। इनमें कायस् मैरिअस् का नाम उल्लेखनीय है। मैरिअस् निम्नकुल का था, पर उसकी आकांक्षा बढ़ी-चढ़ी थी। उसने जुगारथा नामक विद्रोही सेनापति को हराया और उसे बन्दी बना कर रोम ले आया। उसकी सेना अवेतनभोगी-नागरिकों की नहीं, वरन् वेतनभोगी और स्थायी थी। यह सेना राष्ट्रीय और प्रजातान्त्रिक आदर्शों से प्रभावित नहीं थीं, वरन् मैरिअस् के इशारे पर चलनेवाली थी। इस तरह वेतनभोगी व्यवसायी सेना का रोम में आरम्भ हुआ। यह सेना किसी भी ऐसे दुस्साहसी मनुष्य की स्वार्थ-साधना में तत्पर रहती जो कि उसे सन्तुष्ट रख सके। रोम की राजनीति अब दुस्साहसी वीर पुरुषों और उनकी निजी सेनाओं का अड्डा बन गई। मैरिअस् और सुल्ला (Sulla) में लड़ाई छिड़ी। सुल्ला सिनेट का नुमाइन्दा था, मैरिअस् एसेम्बली का। इन दोनों वीरों ने एक के बाद दूसरे पर विजय प्राप्त की और दोनों बार एक दूसरे के हिमायतियों को बुरी तरह कुचला गया। पर इसी बीच पौम्पे (Pompey) और क्रेसस् (Crassus) रंगमंच पर आये। पौम्पे ने कालासागर तटवर्ती राजा मिथिरिडेटिज (Mithridates) पर विजय प्राप्त किया। इससे उसकी शान और इज्जत बहुत बढ़ गई। रोम में गुलामों का विद्रोह हो गया था, और उसे मारकस क्रेसस् (Marcus Cressus) ने सैन्य बल से कुचल दिया। पौम्पे को स्पेन के विद्रोह को दबाने का भी श्रेय मिला। पौम्पे ने रोम लौट कर अपनी सेना का विघटन कर दिया, पर इसका बुरा परिणाम पड़ा। सिनेट को सिर्फ सैन्यबल से भय था, और अब पौम्पे की बात अनसुनी होने लगी। इससे यह सिद्ध हो गया कि सेना के बल पर ही

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिनेट को वश में किया जा सकता है। पौम्पे, क्रेसस और जुलिअस सीज़र (Julius Caesar) ने मिलकर अपनी योजना को कार्यान्वित करने की ठानी (६० ई० पू०)। सीज़र कौन्सल (Consul) बन गया। पौम्पे की पूर्वीय व्यवस्था मान ली गई, और क्रैसस् सेना का अधिनायक बन गया। क्रैसस् पार्थियनों से युद्ध करते मर गया। सीज़र ने गौल प्रदेश (फ्रांस) पर विजय प्राप्त की। दुनिया के सैनिक-विजय में सीज़र का गौल (Gaul) पर विजय एक महत्वपूर्ण कृति समझा जाता है। उसने इन लड़ाइयों का विवरण भी लिखा है, जिसके आधार पर उसे एक सफल लेखक माना जाता है। फ्रांस से सीज़र ब्रिटेन (Britain) में पहुँच गया, और तभी पहले-पहल यहां के लोगों की जानकारी रोमनों को हुई।

सीज़र की बढ़ती शक्ति से सिनेट को स्वाभाविक भय हुआ। सीज़र ने यह समझ लिया कि उसकी शक्ति का स्रोत उसकी सेना है, इसलिए उसने अपनी सेना का विघटन करना नामंजूर किया। पौम्पे के सेनापतित्व में सिनेट ने सीज़र का सामना किया। पर सीज़र संसार का अति प्रमुख सेनापतियों में एक था, और फर्सलुस (Pharsalus) के मैदान पौम्पे की हार हुई, और वह मिश्र भाग गया। वहां उसकी हत्या हो गई। सीज़र मिश्र पहुंचा और वहां की रानी किल्योपेट्रा के यौवन और सौन्दर्य से कुछ समय तक विमोहित रहा।

फर्सलुस की लड़ाई (४८ ई० पू०) के बाद रोम का प्रजातन्त्र (Republic) का वस्तुतः अन्त हो गया। सीज़र आजीवन डिक्टेटर बन गया, और दस वर्ष के लिए कौन्सल्। सिनेट को ही इन निश्चयों को वैधानिक रूप देना पड़ा। रोम का साम्राज्य अब एक आदमी के द्वारा शासित था। वह आदमी था जुलियस सीज़र। उसकी पूजा होने लगी। उसमें देवत्व है ऐसा समझा जाने लगा। पर पार-स्परिक द्वेष और सीज़र के अभिमान के कारण उसकी हत्या की गई

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र २२

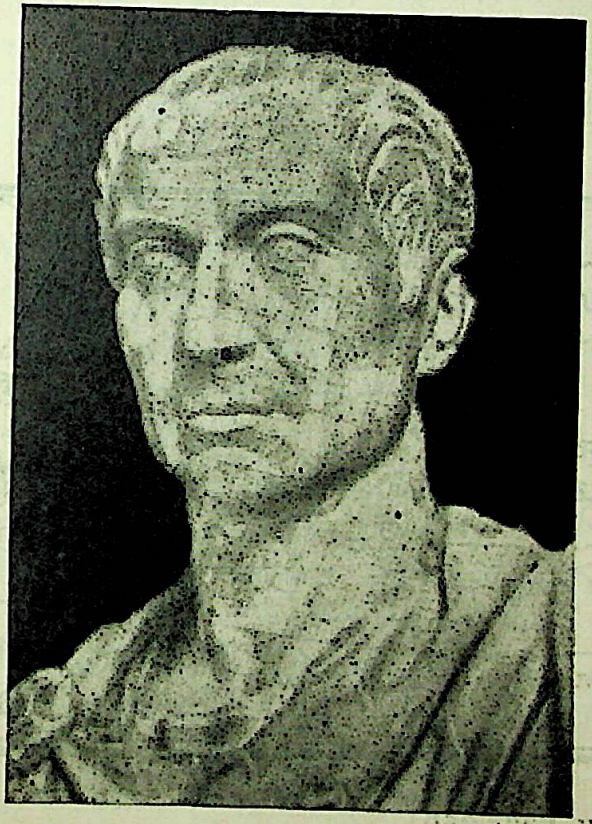

(पृ० २५८) जूलिअस् सीज़र

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Facing Page 258)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४४ ई०पू०)। पर इससे प्रजातन्त्र पुनर्जीवित नहीं हो पाया। साम्राज्य लिप्सा और सैन्यवाद ने रोम के प्रजातन्त्र का अन्त बहुत पहले कर दिया था। अब तो सैन्यबल पर निरकुंश शासन स्थापित हो चुका था। सीज़र का भतीजा ऑक्टेभिअस् (Octavius) और मार्क एन्टनी (Mark Antony) में साम्राज्य के लिए लड़ाई हुई। पर क्ल्योपेट्रा के प्रेम में मार्क एन्टनी सब कुछ गंवा बैठा। आक्टेभिअस् की विजय हुई (Battle of Actium 31 B.C.)। एन्टनी ने आत्महत्या की।

८

सिनेट ऑक्टेभिअस् के बिना राजशासन चलाने में असमर्थ थी। इसलिए ऑक्टेभिअस् जब अपनी शक्ति को सिनेट के अधीन करने को हर समय तैयार था, तब उसकी शक्ति प्रति वर्ष बढ़ाई गई और उसकी इज्जत भी बढ़ी। २७ ई० पू० उसे प्रमुख नागरिक (Princeps) की उपाधि मिली। अब रोमन राजतन्त्र का आरम्भ हो गया। ऑक्टेभिअस् सीज़र प्रथम इम्पेरेटर (Imperator) हो गया। इसी शब्द से सम्राट् (Emperor) शब्द निकला है। आक्टेभिअस् सीज़र सम्राट् औगस्टस् हो गया। रोमन साम्राज्य बहुत वर्षों तक चला। सम्राट् क्लाउडिअस् ने दक्षिण ब्रिटेन को रोमन साम्राज्य में मिला लिया। रोमन सम्राट् नरो (५४-६८ ई०) के समय रोम में आग लगी। आग इसीने भड़काई थी। मारकस् अउरेलिअस् (Marcus Auerelius) बड़ा ही पवित्र और चरित्रवान् सम्राट् हो गया है। कठिन परिस्थिति में भी इसने साम्राज्य में शान्ति कायम रक्खी। अच्छे मैजिस्ट्रेटों की नियुक्ति की गई, नयी सड़कें बनीं, और राष्ट्रीय व्यय को कम किया गया। वह स्वयं कड़ी मेहनत करता था, और राज्य उसके लिए ऐश का नहीं वरन् कर्त्तव्य करने का क्षेत्र था। उसका जीवन सादा और चरित्र पवित्र था। उसकी आत्मा शुद्ध थी, और प्रजा की भलाई करना ही उसका धर्म था। १८० ई० में उसकी मृत्यु हुई, और रोम के दुर्दिन शुरू हो गये।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गृह-युद्ध और अल्पकालीन राजाओं का अनियन्त्रित शासन ने साम्राज्य को कमजोर कर दिया था। साम्राज्य को पूर्व से खतरा अधिक था। व्यापार की विशेष सुविधा भी यहीं थी। रोम में सैन्यवाद की परम्परा सम्राटों को बराबर भयभीत रखती थी। इन्हीं सब कारणों से सम्राट् कान्स्टेन्टाइन (Constantine) ने रोम की राजधानी नये शहर Constantinople ले गया। यह शहर बैजान्टिअन के पुराने दुर्ग पर स्थित था, काला-सागर का द्वार था और अन्न का भण्डार क्रिमिया के समीप था। कमजोर सम्राटों के लिए रोमन साम्राज्य उनके बूते के बाहर की चीज हो गई, और सम्राट् थिओडोसिअस् ने साम्राज्य को दो भागों में—पूर्वी और पश्चिम—अपने दो पुत्रों में बांट दिया। एक की राजधानी मिलान (Milan) और दूसरे की राजधानी कान्स्टेन्टिनेप्ल थी। रोम का महत्व कम हो गया।

९

रोम का पतन

इस ओर जब घर में ही सर्वनाश के बीज उग रहे थे, रोम को भयंकर बाहरी दुश्मनों से सामना करना पड़ा। मध्य एशिया के बर्बर हूण चीन के साम्राज्य पर धावा बोल रहे थे। इनकी संख्या अत्याधिक थी, और ताकत का क्या पूछना। सभ्य समाज के लिए ये राहू सिद्ध हुये। इनसे अपने देश की सुरक्षा के लिए चीनी सम्राटों ने 'बड़ी दीवाल' (The Great Wall) बनवायी, जो कि संसार की अद्भुत चीजों में एक मानी जाती है। जब हूण दक्षिण-पूर्व में रोके गये, तो उन्होंने पश्चिम की ओर अपना रूख पलटा। हूणों के इस भ्रमण से कई बसी-जातियां उखड़ गईं और पूर्व की ओर नयी जमीन और नये देश की खोज में निकलीं। पीठ पर हूण तैनात थे। इस प्रकार कई जातियों का देशान्तर यात्रा शुरू हो गई, और साथ और स्थिर

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाजों को इन वज्जारों का सामना करना पड़ा। हूणों की एक शाखा योरप पहुँच गई, और ट्यूटोनिक या जर्मन जातियाँ उत्तर से दक्षिण की ओर भागने को वाध्य हो गई। रोमन-साम्राज्य को ट्यूटोनिक जातियों के आक्रमण के कई धक्के सहने पड़े। कुछ जर्मन इटैली में आकर नौकरी या व्यापार करने लगे। इनके फैशन का अनुकरण करना इटैलिअनों ने शुरू किया और रोमन सम्राट् को इस पर प्रतिबन्ध भी लगाना पड़ा। सबसे भयंकर आक्रमण गौथों (Goths) का अलारिक् (Alaric) के नेतृत्व में हुआ। अलारिक् ने एक से अधिक वार इटैली और रोम पर आक्रमण किया। साम्राज्य को लूटा-खसोटा, और इसकी शक्ति जर्जर कर दिया। एक वार तो काफी रकम के वाद अलारिक् ने रोम का घेरा उठाया। पर सम्राट् ओनोरिअस् (Honorius) की अदूरदर्शिता और स्वार्थपरता के कारण रोम पर दूसरी बार अलारिक् ने घेरा डाला। इस बार भी रोम वच गया। उसने रोम की गद्दी पर एक यूनानी अट्टालुस को गद्दी पर बैठाया। पर यह निकम्मा निकला और अलारिक् ने रोम पर तीसरी बार घेरा डाल दिया। इस बार रोम वर्बाद हो गया। नागरिकों की हत्या की गई, भव्य भवनों को खण्डहर बना दिया गया, कला की कृतियों को चकनाचूर कर दिया गया, और ६ दिन तक रोम में शैतान का नृत्य होता रहा।

यह महान् संकट अभी टला भी नहीं था कि अट्टिला के नेतृत्व में हूणों ने रोमन साम्राज्य पर आक्रमण कर दिया। रोम वच गया क्योंकि रोम के विशौप (पादरी) ने अट्टिला को दैवी अभिशाप का भय दे दिया। अट्टिला के हमले के बाद वान्डलों (Vandals) ने कार्थेज से रोम पर चढ़ाई कर दी (४५५ ई०)। रोम को खूब लूटा गया। रोमन साम्राज्य का अन्त अब निकट था। ४७६ ई० में पश्चिम रोमन साम्राज्य का अन्त हो गया। पूर्वी साम्राज्य नाममात्र के लिए १४५३ ई० तक सांस लेता रहा।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोमन साम्राज्य का विस्तार बहुत अधिक हो गया था। इसकी रक्षा और स्थिति के लिए सफल और कुशल सम्राट्, और बड़ी सेना की जरूरत थी। पर रोमन सम्राट् अधिकतर व्यसनी और अदूरदर्शी थे। बड़ी सेना रखने के लिए काफी खर्च की जरूरत थी। सेना में राष्ट्रीयता का अभाव था। असभ्य और बर्बरों को सेना में भर्ती किया जाने लगा। इन्हें भला रोम की सभ्यता और साम्राज्य से क्या नेह था। इन्हीं जातियों के आक्रमण से रोम का पतन हो गया। रोम की सबसे आवश्यक शक्ति सैन्यबल-ही पर अब भरोसा नहीं रखा जा सकता था। सेना पर अत्याधिक खर्च के लिए नागरिक और प्रजाओं से अधिक से अधिक कर वसूला जाने लगा। प्रजा सरकारी कर के वसूलने वालों से परेशान थी। उसके लिए तो बर्बर आक्रमणकारी और क्रूर हृदयहीन कर-वसूली के ठीकेदार या कर्मचारी दोनों एक समान थे। जब विस्तृत-साम्राज्य में अब रोम शान्ति नहीं स्थापित रख सका तब रोमन-साम्राज्य की ऐतिहासिक उपयोगिता कहां रही। इसका पतन स्वाभाविक था। अलारिक् और अट्टिला ने इस ऐतिहासिक पटाक्षेप को नाटकीय रूप दिया; ये रोमन-साम्राज्य का पतन के कारण नहीं वरन् चिह्न और यन्त्र बने।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोम की सभ्यता की विशेषताएँ

रोम एक अदना-सा नगर-राज्य से विश्वसाम्राज्य का केन्द्र बन गया। विश्व विशेषकर योरप के इतिहास और संस्कृति पर रोम की अमिट छाप पड़ी। इसलिए रोम की संस्कृति की मुख्य विशेषताओं को समझना आवश्यक है।

शासन विधान

रोम का शासन और विधान का ऐतिहासिक विकास पर ध्यान देना चाहिये। विधान की रूपरेखा जिस ढंग से बदलती रही या जिन परिस्थितियों से गुज़रती रही उससे हमें रोमनों की चरित्र विशेषता और प्रतिभा का ज्ञान होता है। रोम का प्रजातन्त्र (Republic) का विकास समाज में विरोधी आर्थिक हितों या समूहों के पारस्परिक संघर्ष का परिणाम था। धनी और निर्धन प्रत्येक समाज में होते हैं। रोम के विधान में यह विशेषता थी कि धनी नागरिकों को ही राजशासन में भाग लेने का अधिकार था। यह सिद्धान्त बराबर लागू रहा। पर लक्ष्मी चंचला होती है। एक ही वर्ग बराबर धनी नहीं रहता है। धनोपार्जन की विधि में परिवर्तन होता रहता है, धन का रूप बदला करता है, इसलिए कालक्रम से आर्थिक विकास व क्रान्तियां होती हैं, और समाज में अमीर और गरीब स्थान बदलते हैं। रोम के इतिहास में भी समाज में आर्थिक परिवर्तन होते गये, और इसका प्रभाव विधान पर भी पड़ा। पुराने धनीवर्ग को नये प्रभावशाली वर्ग का सामना करना पड़ा। रोम के इतिहास की यह विशेषता है कि इस संघर्ष काल में जिसमें कितने परिवर्तन हुये विधान की परम्परा और उसके मुख्य अंग कायम रहे, पर नये आर्थिक हितों को समुचित प्रतिनिधित्व मिलता रहा। प्राचीन परम्परा और नये विचार व आर्थिक वर्गों का सामंजस्य बराबर होता रहा। इसलिए रोम का राजनीतिक विकास की कड़ियां

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कभी टूटी नहीं। अविच्छिन्नता ही रोम का वैधानिक इतिहास की विशेषता है। विध्वंसात्मक क्रान्तियों के पनपने के पहले ही सत्ताधारियों ने निज-स्वार्थों और प्रगतिशील आर्थिक शक्तियों में समझौता कर राजशासन में बराबर सुधार लाया।

रोमनों की प्रथम सभा Comitia Curiata थी। इसमें सभी परिवारों के प्रतिनिधि थे। मैजिस्ट्रेटों की बहाली की स्वीकृति करना, निर्वासित और मृत्युदण्ड प्राप्त नागरिकों की अपील सुनना, और कुछ धार्मिक त्यौहारों का आयोजन करना इस सभा का कर्त्तव्य था। पर धीरे-धीरे इस सभा का महत्व कमता गया। उच्चवर्ग के पैट्रिशिअनों और निम्नवर्ग के प्लेबिअनों में वर्ग-संघर्ष बहुत दिनों तक चला। इस काल में दो नयी सभाओं की उत्पत्ति हुई (क) Comitia Centuriata (ख) Comitia Tributa. पहली सभा सैन्यबल पर आश्रित थी। नागरिकों को सैनिक कर्त्तव्य के आधार पर विभाजित किया गया था। प्रत्येक नागरिक को स्वयं ही सामरिक सामग्रियों को जुटाना पड़ता था। इसलिए पांच भागों में बँटे हुए ये नागरिक आर्थिक आधार पर ही स्थित ही थे। अत्यन्त धनीवर्ग के दो श्रेणियों की ही इस सभा में बहुमत थी। अल्पजनों का ही बोलबाला था। किसी भी राज्य की सत्ता उसी वर्ग के अधीन रहती है जिसका सेना पर अधिकार रहता है। रोम में सेना पर अधिकार अति-उच्चवर्गों का ही था।

प्लेबिअनों का इस सभा में कुछ नहीं चल सकती थी, उनके आन्दोलन के कारण यद्यपि पहली सभा के विधान में कुछ विशेष परिवर्तन नहीं किया गया, एक दूसरी सभा Comitia Tributa, जातियों की सभा का जन्म हुआ। इस सभा में प्लेबिअन और पैट्रिशिअन दोनों का प्रतिनिधित्व था। जाति न कि धन इस सभा का आधार था। कालक्रम से पैट्रिशिअनों की संख्या कम होती गई। उनकी जातियों का ह्रास होता गया और प्लेबिअनों की उन्नति होती गई। वंश व शुद्धरक्त पर महत्व

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देने के कारण और वैवाहिक नियम अति संकुचित रखने के कारण ही पैट्रिशिअनों का ह्रास होने लगा। समाज में कृषि के अलावे धनोपार्जन के नये रास्ते खुल गये। व्यापार व लेन-देन के आधार पर नयी समृद्ध जातियों का विकास हुआ, जिन्हें पैट्रिशिअन हेय दृष्टि से देखते थे, और इसलिए इन लोगों ने प्लेबिअनों की संख्या और आर्थिक स्थिति को दृढ़ किया। इसलिए प्लेबिअनों ने धीरे २ Comitia Tributa पर अपना एकाधिपत्य स्थापित कर लिया, और इस सभा का अधिकार और महत्व की वृद्धि होती रही।

रोम में भिन्न २ मैजिस्ट्रेट राजकार्य चलाने के लिए नियुक्त थे। जब स्वेच्छाचारी राजतन्त्र का अन्त करके प्रजातन्त्र की स्थापना हुई, तब राजा के स्थान पर दो कौन्सल (Consul) का चुनाव हुआ। इनका चुनाव Comitia Centuriata में होता था। युद्धभूमि पर इनका अधिकार असीमित था। नगर राजशासन में इनका कार्यक्षेत्र सीमित था। एक कौन्सल दूसरे कौन्सल के निर्णय को रद्द कर सकता था। स्वेच्छाचारी अधिनायकत्व या एकतन्त्र न कायम हो सके इसलिए यह नियम बनाया गया था। व्यावहारिक जगत् में इन कौन्सलों ने आपस में अपना कार्यक्षेत्र अलग-अलग कर लिया था। कौन्सल पहले पैट्रिशिअन वर्ग के ही होते थे।

वर्ग-संघर्ष का परिणाम था ट्रिब्यूनेट नामक एक पद की स्थापना। ट्रिब्यूनों (Tribune) का कर्त्तव्य था पैट्रिशिअनों से पीड़ित प्लेबिअनों की रक्षा करना। पर इस पद का महत्व बढ़ता गया, किसी भी अन्य मैजिस्ट्रेट की आज्ञा को ट्रिब्यून रद्द कर सकता था, भूमिप्रथा में सुधार ला सकता था और अपना विशेषाधिकार का प्रयोग कर शासन को ठप्प बना सकता था। जनता का हितरक्षक होते हुये भी ट्रिब्यूनों को सत्ताधारी गुट अपने २ स्वार्थ की रक्षा के लिए मिला लेते थे। इस तरह पीछे चल कर इस पद का दुरुपयोग होने लगा, और ट्रिब्यून पीड़ित जनता का रक्षक न होकर विरोधी गुटों का कठपुतली बन गया।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नगर की व्यवस्था का भार एडाइलों (Aediles) की हाथ में था। शहर की सफाई, पानी का प्रबन्ध, अन्न का प्रबन्ध, मनोरंजन व खेलकूद की सुविधा देना, और मामूली मुकदमों को सुनना इन अफसरों का कर्त्तव्य था। पैट्रिशिअन और प्लेबिअन दोनों तपकों के लोग इस पद के अधिकारी थे।

जैसे २ रोम-साम्राज्य का शासन जटिल होता गया, और संकटकाल (Crisis) बराबर आते रहे, कई प्रकार के नये पदों की स्थापना हुई। डिक्टेटर (Dictator) ६ महीने के लिए बहाल किया जाता था। संकट काल में उसके हाथ में सभी शक्ति केन्द्रित रहती थी। सिनेट इस की नियुक्ति की सलाह देता था, और कौन्सल इस पद पर किसी व्यक्ति को नियुक्त करता था। जो कभी कौन्सल रह चुका है वही डिक्टेटर बन सकता था।

पूर्व कान्सलों में से बहुत प्रतिष्ठित और चरित्रवान् को सेन्सर (Censor) चुना जाता था। Comitia Centuriata में Censor का चुनाव होता था। सेन्सर जनगणना कराता था, क्योंकि नागरिकों की सैनिक अवस्था (Military Status) इसी आधार पर निश्चित होती थी। सिनेट के नये सदस्यों की सूची बनाना भी इसका अधिकार था। क्योंकि सिनेट रोम के शासन में अतिप्रभावशाली था इसलिए सेन्सर का सिनेट की सदस्यता पर यह अधिकार इस पद को बहुत महत्वपूर्ण बना दिया। कर लगाना या वसूलना सेन्सर का कार्य था। सेन्सर जिस नागरिक पर चाहता कर लगा देता था, और कर वसूली के लिए ठीकेदारों की नियुक्ति कर लेता था। ये ठीकेदार नागरिकों को खूब परेशान करते थे, और सरकार को सिर्फ कर से मतलब था। बड़े २ ठीकेदारों को सड़क या सार्वजनिक भवनों का निर्माण करने का अधिकार सेन्सर दे देता था। इसलिए सेन्सर को लोगों को खुशहाल बनाने का काफी मौका था, पर इस अधिकार का

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुरुपयोग कर समाज में नये-धनिकों का अन्यायपूर्ण महत्व बहुत बढ़ गया।

प्रीटर (Praetor) एक दूसरा प्रभावशाली अफसर था। प्रीटर कान्सल का सहायक था। यह विशेषकर कानूनी अफसर था। न्याय-विभाग इसके हाथ में था। पर कौन्सल इसे सीमित क्षेत्र में प्रभुत्व का अधिकार सौंप देता था, और प्रीटर इसी आधार पर रोम के विजित प्रान्तों का गवर्नर बन गया। प्रान्तों में प्रीटर की शक्ति बहुत थी—वहां उसके विरुद्ध कोई दूसरा प्रीटर नहीं था, जैसे रोम में एक के विरुद्ध दूसरा कौन्सल रहता था। अपने नियमित काल में प्रान्तों का खून चूसना और धन के बल पर रोम के राजशासन में अपना प्रभाव स्थापित करने की चेष्टा प्रत्येक महत्वाकांक्षी प्रीटरों का स्वाभाविक रवैया हो गया।

क्वेइस्टर (Quaestor) राज्य के खजांची थे।

इस तरह रोम के शासन-प्रबन्ध के लिए कई दर्जे के मैजिस्ट्रेट थे। अधिकतर नीचे से ऊपर पद तक पहुंचने में उन्नति का सिद्धान्त अमल में लाया जाता था। प्रत्येक पद के लिए अत्यल्प आयु व योग्यता निर्धारित थी। क्वेइस्टर पद पर नियुक्ति २७ वर्ष से कम आयुवाले की नहीं हो सकती थीं। इसी तरह धीरे २ उच्च पदों पर बहाली होने की योग्यता बढ़ती गई। यथार्थतः कुछ विशेष धनी व प्रभावशाली परिवारों में ही उच्च पदों पर की बहाली सीमित रही।

रोम के इतिहास में इन मैजिस्ट्रेटों का काफी बोलबाला था। पर इन मैजिस्ट्रेटों की कमजोरी यह थी कि इनके कार्य की अवधि बहुत अल्प थी। प्रतिवर्ष, दो वर्ष या इससे भी कम में अफसरों का पुनर्निर्वाचन होता था। इसलिए ये अफसर अस्थायी थे, और उन्हें राजशासन की जटिल समस्याओं को समझने के लिए न तो उचित अनुभव रहता था,

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और न समय। इस कारण रोम के इतिहास में सिनेट (Senate) का वहुत अधिक प्रभाव रहा। सिनेट स्थायी संस्था थी। एक वार चुने जाने पर सिनेट के सदस्य आजीवन सदस्य रहते थे। पहले तो पैट्रिशिअन परिवारों के मुखिया ही इस सभा के सदस्य थे, पर प्लेविअन पैट्रिशिअन संघर्ष के बाद धनी पैट्रिशिअन और प्लेविअनों के प्रतिनिधि ही इस सभा के सदस्य होने लगे। पहले सदस्यों की नियुक्ति कौन्सल करते थे, पीछे चलकर यह अधिकार सेन्सर को मिला कि वे रिक्त स्थान की पूर्ति करें और सिनेट के योग्य सदस्यों की सूची बनावें। सिनेट के सदस्य ही उच्च मैजिस्ट्रेटों के पद पर काम कर चुके थे। इस लिए इन्हें काफी अनुभवी और बुद्धिमान समझा जाता था। सिनेट की प्रतिष्ठा बहुत थी। जब जनता की प्रतिनिधि सभाएं—Comitia Tributa, Comitia Centuriata—यदाकदा ही बैठती थी, और जब मैजिस्ट्रेट अल्पकाल तक ही अपने पद पर आसीन रहते थे, तब स्थायी सिनेट का जिसके सदस्य अनुभवी, प्रौढ़ और नीतिकुशलज्ञ थे, राजशासन की बागडोर सम्हालना स्वाभाविक था।

जनसभाओं के सभी आर्थिक, अदालती व विधान सम्बन्धी (legislative) निर्णय को सिनेट की अनुमति मिलना आवश्यक था। सिनेट में ही इन प्रस्तावों पर बहस-मुहाविसा हो सकता था। सिनट कानून बरतता था और मैजिस्ट्रेटों की अवधि बढ़ा सकता था। पीछे चल कर सिनेट के प्रस्ताव के बल पर किसी भी नागरिक को प्राणदण्ड की सजा मिल सकती थी। इस निर्णय के विरूद्ध अपील नहीं था। सिनेट का यह अधिकार था कि राज्य-आय का खर्च का प्रबन्ध और सरकारी जमीन का बन्दोवस्त करे। वैदेशिक नीति पर सिनेट का काफी अधिकार था। युद्ध की घोषणा तो Comitia Centuriata करती थी, पर सिनेट को सन्धि करने का अधिकार था। जैसे २ रोम का साम्राज्य-विस्तार हुआ, विजित देशों का प्रवन्ध सिनेट के नियन्त्रण और निरक्षण में आ गया। राजधर्म की व्यवस्था भी सिनेट के ही हाथ में था।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः सिनेट की शक्ति और अधिकार बहुत विस्तृत था। प्लेबिअन-पैट्रिशिअन संघर्ष का धीरे २ प्लेबिअनों के पक्ष में निर्णय हो गया था। ऐसा सोचना स्वाभाविक था कि अब श्रेणी-तन्त्र के स्थान पर लोकतन्त्र की स्थापना हो जानी चाहिए थी। पर प्लेबिअनों की जीत के साथ-साथ ही कार्थेज-रोम का भीषण संघर्ष शुरू हो गया। रोम के लिए जीवन-मृत्यु का प्रश्न था। यह युद्ध बहुत वर्षों तक चला और इस लम्बी अवधि में भाग्य के कई उलटफेर हुए। इस युद्धकाल में स्थायी सिनेट का महत्व और शक्ति अधिक बढ़ गई। जनता सिनेट के शासन से अभ्यस्त हो गई। इस युद्ध में रोम की जीत हुई, और इस सफलता का सेहरा सिनेट के सर पर मढ़ा गया। इस युद्ध से सिनेट अधिक प्रतिष्ठित और शक्तिशाली बन गया। सिनेट ने जो शक्ति व प्रतिष्ठा हासिल किया उसे वह अन्तिम दिनों तक बचाती रही। सिनेट की शक्ति का विरोध जनतान्त्रिक शक्तियों से उतना नहीं हुआ जितना व्यक्तिगत स्वार्थों से प्रभावित महत्वाकांक्षी सेनापतियों से। इसी संघर्ष में रोम का प्रजातन्त्र और सिनेट की शक्ति का पतन हो गया।

रोम की साम्राज्यवादी नीति

रोम ने साम्राज्य-विस्तार कोई पूर्वनिर्धारित योजना के अनुसार नहीं किया। अपनी आत्मरक्षा और पड़ोसियों की मदद की पुकार से प्रभावित हो रोम को युद्ध की नीति अपनानी पड़ी और प्रत्येक युद्ध का परिणाम था रोम का उत्तरदायित्व में वृद्धि और प्रभावक्षेत्र का विस्तार। कभी गौलों (Gauls) के आक्रमण के विरुद्ध, कभी यूनानी राज्य के विरुद्ध रोम को पड़ोसियों की मदद के लिए जाना पड़ा और हरबार सफलता का यही फल निकलता कि रोम का राज्य की सीमा बढ़ती गई। इसी प्रकार रोम ने अपने को पहले तो इटली का स्वामी पाया, और फिर सारे भूमध्यसागर के क्षेत्र में अपना प्रभुत्व स्थापित किया।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इटली को एक सूत्र में बांधने में रोम ने अभूतपूर्व व्यवहारिकता और राजनीतिज्ञता दिखाई। यूनान के स्वतन्त्र नगर-राज्य के नागरिक अपने विशेष अधिकार व स्थिति पर इतना गर्व करते थे कि अपने नगर के नागरिक अधिकारों को वे किसी अन्य विजित नगर व मित्रराज्य के नागरिकों से कभी नहीं बांट सकते थे। इसलिए यूनान के प्रसिद्ध नगर-राज्य, जैसे एथेन्स और स्पार्टा ऐसे प्रभावशाली राज्य, कभी भी अपना आधिपत्य सारे यूनान पर स्थायीरूप से नहीं स्थापित कर सके। एथेन्स के विजित व मित्रराज्य के नागरिक एथेन्सवासियों के विशेषाधिकार से सर्वदा वंचित रहे और अपने को उन्हें बराबर एथेन्स के नागरिकों से हेय ही समझना पड़ता था। इसलिए एथेन्स के प्रति भक्ति व सहयोग की भावना का उनमें बराबर अभाव ही रहा। विजयी और विजित राज्यों में कभी अपनापन का भाव नहीं पनप सकता था। एथेन्स की समृद्धि को वे अपने शोषण का परिणाम समझते थे और एथेन्स के विरुद्ध खुलेआम या छिपे उनकी साज़िश होती रहती। अतः नागरिकों को दूसरे नागरिक के प्रति पृथकत्व का भाव यूनानी एकता का घातक सिद्ध हुआ।

जिस परिस्थिति में एथेन्स और स्पार्टा असफल हुए, रोम ने अपने नेतृत्व में इटली में एकता स्थापित कर लिया। इसका कारण था कि रोम ने इटली-स्थित अन्य जातियों या क्षेत्रों को अपने राजनीतिक अधिकार में लाकर भी उन्हें रोमनों के नागरिक अधिकारों से वंचित नहीं रक्खा। कुछ विजित जातियों को पूर्ण, कुछ को अधूरे नागरिक अधिकार दिये गय। इस तरह रोमन शासन व साम्राज्य में विजित क्षेत्रों की प्रजा को भाग लेने का मौका मिला। विजेता और विजितों में इस प्रकार सहयोग और एकता स्थापित हो गई। कुछ विजित नगरों में जहां वैधानिक शासन चल रहा था, वहां रोमनों ने स्वायत्त-शासन कायम कर दिया। इस तरह रोम ने इटली में सिर्फ रोम का राज्य नहीं, वरन् रोम को इटली का नेता सिद्ध किया। रोमनों के नागरिक

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकारों का इस प्रकार नियन्त्रित वितरण के आधार पर ही रोम इटली में एकता स्थापित कर सका।

पर वैधानिक सभायें या समीतियां और मैजिस्ट्रेटों का हेडक्वार्टर रोम ही था। इस कारण रोम से बहुत दूर रहने वाले नागरिकों को अपना अधिकार का प्रयोग करने में कठिनाई होती थी। फिर आर्थिक दृष्टि में नागरिकों की बढ़ती संख्या रोम के लिए हानिकारक थी। रोम ने इसलिए पीछे चलकर नागरिक-अधिकार का विस्तार बन्द कर दिया। नागरिकों की बढ़ती आवादी के भोजन व आराम की प्राप्ति के लिए रोम को विजित प्रदेशों का शोषण करने की नीति अपनानी पड़ी। वही रोम जो अपने निकटस्थित क्षेत्रों को नागरिकता का पूर्ण अधिकार दे चुका था, और कुछ अधिक दूर के क्षेत्रों को जो वैधानिक शासन प्रणाली की परम्परा से अवगत थे उन्हें कम या अधिक नागरिक अधिकार या स्वायत्त् स्वतन्त्रता देता था, वही रोम ने इटली से बाहर विजित प्रदेशों के शासन में दूसरा ही रवैया अख्तियार किया। अफ्रिका, एशिया, या पश्चिम योरप में विजित प्रदेशों को रोमन गवर्नर (Praetor) के मनमाने शासन में रखा गया। प्रीटर, रोम में, एक साल के लिए चुना जाता था, और उसे जब विजित प्रदेशों में गवर्नर बना कर भेजा जाता था तब उसकी यही नीति रहती कि इस अल्प अवधि में जितना स्वार्थसिद्धि कर सके, करे। रोमन सरकार को सिर्फ अन्न वा कर की जरूरत रहती, और इसे वसूल करने के लिए प्रीटर ठीकेदारों की बहाली करता, और ये ठिकेदार गरीब किसानों को भरपूर चूसा करते थे। रोम अंगूर की शराब व जैतून का तेल के व्यापार से बहुत लाभ उठा रहा था और अन्न की उपज कम हो रही थी। इसलिए बढ़ती जनसंख्या या नागरिक-संख्या के लिए अन्न के लिए उसे विजित प्रदेशों का शोषण करना जरूरी हो गया था।

आर्थिक शोषण, ठीकेदारों का अत्याचार और रोमन गवर्नर का निरंकुश शासन से विजित प्रान्तों में रोम के प्रति घृणा व विद्रोह की

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावना की वृद्धि होती गई। पर रोम के शासन-काल में विजित प्रदेशों को कुछ फायदा भी हुआ। अशान्ति और अराजकता के बदले अविच्छिन्न शान्ति की स्थापना हुई। नाविक-डाकुओं का खात्मा हो गया, और व्यापार की वृद्धि हुई। अच्छी २ सड़कों का निर्माण हुआ, जिससे यातायात में सुविधा हुई, सरकार को शासन करने में मदद मिली, फौज एक जगह से दूसरी जगह आसानी से जा सकती थी, और सड़कों के किनारे बाजार लग गये। रोम ने यदि साम्राज्य का आर्थिक शोषण किया, विजित प्रदेशों को लूट कर अपना खजाना भरा और आराम की सामग्रियां एकत्रित की, तब उसने संसार को सभ्य भी बनाया। अफ्रिका, फ्रांस, स्पेन और एशियामाइनर में बड़े २ नगर, विशाल भवन, और सुन्दर देवगृहों का निर्माण हुआ। रोमन स्नानागार (Baths) इंगलैण्ड में अब भी दर्शनीय है। पर रोम की सबसे अधिक महत्वपूर्ण देन थी विजित संसार में एक कानून का प्रचलन। रोमन-शान्ति का उदाहरण आनेवाली युगों के लिए बराबर स्पर्द्धा की वस्तु हो गई थी।

अपनी साम्राज्यवादी नीति के कारण रोम एक विस्तृत विश्व-साम्राज्य का संस्थापक बन गया। रोमनों की शान, आत्मप्रतिष्ठा और वैभव की अति वृद्धि हुई। नगर-राज्य रोम साम्राज्य का शोषण कर अत्यन्त समृद्ध बन गया। प्रथम सम्राट् औगस्टस् ने प्रान्तीय शासन में सुधार किया, और अब एक नियम से शासन चलने लगा। प्रान्तीय प्रजाओं का सुख और शान्ति का भी ख्याल किया जाने लगा। रोमन गर्वनरों की मनमानी पर लगाम लगाई गई। पर विजित प्रदेशों का आर्थिक शोषण तो होता ही रहा। इस धन से रोम में सुन्दर और चौड़ी सड़कों का निर्माण हुआ। बड़े २ भवन बने। रोम की वास्तुविद्या (Architecture) ने अभूतपूर्व उन्नति दिखाई। शहर सुन्दर और योजनानुकूल बनने लगे।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊँचे मकान वनाए गये। इन मकानों में सभी प्राप्य-सुविधाएं थीं; स्नानागार, ड्राइंगरूम, खाना-कमरा और आतिथ्यगृह। नेपुल्स का प्राचीन नगर पोम्प्पाइ के ध्वंशावशेष से नगर-योजना, सुन्दर भवन, चौड़ी सड़कें, और गृह-सामग्रियों का पता चला है। खाने की चीजे खूव चटपटी बनती थी। पूर्व से मसाला का आयात किया जाता था। काला-सागर से नमकीन मछली आती थी। एक हाड़ी मछली का दाम एक जोड़े वैल से अधिक था। मेहमानों की खातिर ही इतना मंहगा भोजन वनाया जाता था। नौकरों की जरूरत वढ़ गई थी। अमीरों के घरों में नौकरों की संख्या काफी थी। प्रत्येक मामूली काम के लिए एक नौकर नियुक्त था। रोम के धनी-मानी सज्जन इस प्रकार ऐश-इशरत में जीवन व्यतीत करते थे।

इसका परिणाम रोमन चरित्र पर बुरा पड़ा। नौकरों या दासों की संख्या वढ़ गई, और उनके प्रति रोमन स्वामियों का व्यवहार अत्यन्त कठोर होता था। रोमनों की क्रूर भावनाओं का खुला प्रदर्शन गुलामों के प्रति ही होता था। पहचान के लिए तपे लोहे से गुलामों को दागा जाता था। गरीब किसान अपनी जमीन को बेचकर दास वनने को बाध्य थे। युद्धबन्दियों को भी गुलाम बनाया जाता था। पूर्व-भूमध्यसागर और एजिअन क्षेत्रों से असहाय को भगाकर समुद्री-डाकू उन्हें रोमनों के हाथ बेच देते थे।

यूनानी-सभ्यता का प्रभाव

साम्राज्यविस्तार की दिशा में रोम को यूनानी सभ्यता से सम्पर्क हो गया। रोम के नागरिक चरित्रवल, कठिन मेहनत, सादा जीवन और राजनीतिक व सामाजिक अनुशासन के लिए प्रसिद्ध थे। स्वामि-भक्ति व बुजुर्गों का आदर करना उनका स्वभाव सा हो गया था। कसरत या कवायद, खेल-कूद उनके मनोरंजन थे। संक्षेप में उनका जीवन नीरस या शुष्क था। वैयक्तिक स्वतन्त्रता व ललित कलाओं

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की ओर उनका ध्यान नहीं गया था। पर रोम पर यूनानी सभ्यता का गहरा असर पड़ा।

रोमन सिपाही, सेनापति और मैजिस्ट्रेट यूनानी शहरों की सड़कों पर चलने लगे। तब रोम वापस आकर समृद्ध रोमनों ने अपने मकानों को भव्य और सुविधापूर्ण बनाना शुरू कर दिया। यूनानी सभ्यता का ही प्रभाव था कि रोम के नये मकानों में स्नानागार और पानी का कल का प्रबन्ध होने लगा। रोम की वास्तुविद्या पर यूनानी कला का बहुत प्रभाव पड़ा। मकान में आंगन और चारों ओर खम्भे पर स्थित ओसारा यूनानी प्रभाव था।

विजयी रोमन सेनापतियों ने यूनानी शहरों से हजारों यूनानी मूर्तियाँ व चित्र रोम ले आये। इन भव्य मूर्तियों और सुन्दर चित्रों से मकान सजाये गये। पूर्व के उत्तम बर्तन, असबाब, कालीन इत्यादि रोमनों के मकानों की शोभा बढ़ाने लगे। खाने-पीने में काफी खर्च किया जाने लगा। चटपटी और मसालेदार भोजन की मांग बढ़ने लगी।

रोम में पिता अपने पुत्र को शिक्षा देता था। कोई सर्वसाधारण पाठशाला नहीं थी। जब पाठशालाएं स्थापित की गईं तो शिक्षार्थियों को पढ़ने के लिए रोमन साहित्य का अभाव था। कानून की बारह धाराएँ (Twelve Tables of Law) को ही कण्ठस्थ कराया जाता था। स्कूल अधिकतर खुले मैदान में होता था, या कभी किसी नागरिक के मकान पर ही पाठशाला स्थित थी। पर यूनानी दासों ने अपनी मुक्ति-प्राप्ति के बाद रोम में स्कूलों की स्थापना करना शुरू किया। इन स्कूलों में रोमन नागरिक अपने बच्चों को भेजने लगे। कुछ घरों में यूनानी दास या भृत्य थे, और ये दास, जैसे एन्ड्रोनिअस, अपने मालिक के बच्चों को शिक्षा देने लगे। होमर के साहित्य का लैटिन भाषा में अनुवाद किया गया। इस तरह यूनानी संरक्षण व वातावरण में रोम शिक्षा-पद्धति का सूत्रपात हुआ। जब तब यूनानी शिक्षक, सार्वजनिक-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभा में भाषण देने लगे। इस तरह प्रभावशाली व्याख्यान देने की कला का ज्ञान रोमनों को होने लगा। कुछ महत्वाकांक्षी रोमन युवक एथेन्स जाकर अपनी शिक्षा को पूर्ण करता था।

यूनानी नवागतों में पोलिबिअस् (Polibius) नामक एक राजनीतिज्ञ व सुसंस्कृत युवक भी था। सिपिओं (Scipios) के परिवार में वह ले लिया गया था, और उनलोगों के साथ वह रोम की लड़ाइयों का दर्शक था। उसने यूनानी भाषा में रोम की महान् लड़ाइयों का एक वृहत् इतिहास लिखा। ऐसे सभ्य यूनानियों का रोमनों पर गहरा प्रभाव पड़ा। होमर की अमर पंक्तियां अब रोम के महापुरुषों को कण्ठस्थ थीं। यूनानी साहित्य से इतना निकट सम्पर्क में रहने का ही परिणाम था कि रोमनों में भी साहित्य-सृजन की आकांक्षा उदित हुई। लैटिन साहित्य के विकास में विदेशीय साहित्य का ही प्रभाव था। रोम में कवि और इतिहास-लेखक पैदा हुये, और होमर के महाकाव्य के आधार पर लैटिन महाकाव्य लिखे गये। प्राचीन रोम की कहानियां व रोम के महान् राजाओं का चरित्र ही इन महाकाव्यों का विषय था। यूनानी सुखान्त नाटक (Comedies) से रोमन काफी आकर्षित हुये, और इनकी नकल कर प्लाउटस् और टेरेन्स् ने कई सुखान्त नाटक लिखे।

जब साहित्य का विकास हुआ, तब पैपिरस् पर लिखित लैटिन पुस्तकों की संख्या बढ़ने लगी। रोम में पहला सार्वजनिक पुस्तकालय एक रोमन सेनापति ने मैसिडन के राजा की पुस्तकों से ही स्थापित किया था।

अतः यह स्पष्ट है कि यूनानी सभ्यता का रोमन जीवन और संस्कृति पर गहरा प्रभाव पड़ा। रोम की वास्तुविद्या, साहित्य, भोजन, व मनोरंजन सभी पहलुओं पर यूनानी रंग चढ़ा। इसलिए यह कहा जाता है कि विजेता रोम विजित यूनान का बन्दी हो गया। पर इसका परि-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

णाम बुरा भी हुआ। यूनानी प्रभाव के कारण रोमनों के जीवन में ऐश-आराम और कृत्रिम तड़क-भड़क का महत्व बहुत बढ़ गया। जिस यूनानी संस्कृति ने रोम पर इतना विस्तृत प्रभाव डाला था वह यूनानी सभ्यता एथेन्स के स्वर्णयुग की सभ्यता नहीं थी। पांचवी-चौथी शताब्दी ईसा से पूर्व की उन्नत और बुद्धिवादी सभ्यता तीसरी शताब्दी ईसा से पूर्व अपनी आत्मा खो चुकी थी। सिकन्दर के पतन के बाद और भी अवनति होती रही। अब एथेन्स नहीं, मिश्र में एलक्जेंड्रिया (Alexandria), और सिरिया में एन्टिओक् (Antioch) यूनानी संस्कृति के केन्द्र थे। यह सत्य है कि यूनानी सभ्यता को जीवित रखने में मिश्र ने काफी प्रशंसनीय काम किया। पर यह निर्विवाद है कि यूनानी सभ्यता अब पूर्वीय संस्कृतियों के अंचल में ही बच सकी। इस पर पूर्वीय ऐश-इशरत का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। यूनानी साहित्य, मूर्तिकला, और जीवन का आदर्श अब हल्का हो गया। चरित्र की पवित्रता, स्वातंत्र्य-प्रेम, बुद्धिवादी दर्शन, और क्रियात्मक कलाओं के स्थान पर हल्का साहित्य, उच्छृंखलता, ऐश-आराम की ईच्छा और स्वार्थान्ध दर्शन की उन्नति हुई। इसी पतनोन्मुख यूनानी संस्कृति से रोम का सम्पर्क हुआ। प्यासे और बुभुक्षित सीधे-साधे रोमनों के लिए यह अद्भुत और आकर्षक भण्डार था। इस सम्पर्क के कारण यदि रोम के साहित्य और कला का विकास हुआ, तो रोमन चरित्र पर इसका बुरा परिणाम पड़ना भी स्वाभाविक था।

नीरस और अनुशासित रोमन यूनानी ललित कला और हल्के साहित्य पर टूट पड़े। बड़े-बूढ़ों का आदर और अनुशासन की मान्यता वे खो बैठे, नाच-रंग और ऐश-आराम में बेतरह फँस गये। भद्दे और अश्लील नृत्य में दिलचस्पी से भाग लेने लगे। पुरुष मंहगी और चटपटे भोजन में अन्धाधुन्ध खर्च करने लगे। धनी स्त्रियां अपने शरीर को बेशकीमती आभूषणों से सजाने लगीं। इत्र, फुलेल और

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महीन वस्त्रों का व्यवहार खूब होने लगा। रोम का पैसा इन विलासी सामग्रियों को खरीदने में पूरब जाने लगा। सामाजिक और पारिवारिक परम्परा टूट गई, और उच्छृंखल जीवन का बोलबाला हो गया। तलाकों की संख्या में अत्यन्त वृद्धि हुई। रोमन पारिवारिक जीवन की पवित्रता और सादगी का लोप हो गया।

निम्नवर्ग के लोगों में यह परिवर्तन और भी अधिक स्पष्ट था। यूनानी जीवन की विलासिता से रोमन अत्यन्त आकर्षित हुये। यूनानी सभ्यता की पवित्र कलात्मक प्रवृत्तियों का न उन्हें पता था और न उसे वे पंसद कर सकते थे, इसलिए तो जब कोई रोमन यूनानी बाजा-गाना का आयोजन करता था तब रोम के नागरिक चिल्ला उठते थे कि इसे बन्द करो और मुक्केबाजी का प्रदर्शन आरम्भ करो। इसी प्रवृति का परिणाम था कि मनुष्य-पशु कुश्ती का प्रदर्शन बहुत लोकप्रिय था, और जनता को अपनी तरफ खींचने के लिए महत्वाकांक्षी नेता ऐसे प्रदर्शन व प्रदर्शनगृहों का आयोजन करते थे। जनता इस क्रूर और हृदयविदारक दृश्यों को ताली पीट २ कर देखती थी और अपनी खुशी का इज़हार करती थी। यूनानियों का शारीरिक व्यायाम रोमनों के लिए फीका पड़ता था, और इन्होंने यूनानी खेल-कूद की भावना को अपनाया, पर इसे क्रूर और रक्तांजित रूप दिया।

इस पतोन्मुख यूनानी संस्कृति के आडम्बर की नकल रोमन कर रहे थे। इस प्रवृति के विरूद्ध कैटो (Cato) ने जबरदस्त आवाज़ उठाई। रोम की पारिवारिक परम्परा की उद्धार के लिए कैटो ने काफी लिखा और कहा। प्रजातन्त्र के अन्त के बाद औग्सटस् ने राजतन्त्र का वास्तविक स्थापना किया। उसने रोमन चरित्र का पतन रोकने के लिए कानून बनाए। पूर्वकाल के रोमन के पवित्र-जीवन या आदर्शों को पुनर्जीवित करने की कोशिश की। व्याह की पवित्रता की रक्षा के लिए नये कानून बनाये। पूर्वीय देवताओं को हटाकर रोमन देवताओं की पुनर्स्थापना की गई।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर यह कहना ग़लत होगा कि औग्सटस् ने यूनानी संस्कृति का प्रभाव एकदम मिटा दिया। सच पूछा जाय तो यूनानी और रोमन संस्कृतियां का समन्वय होने लगा था। पहले झोंके में रोमन यूनानी संस्कृति की चकाचौंध और विलास में वह गये, और इस आन्दोलन के विरूद्ध कैटो ने उसी जोर से प्रत्याक्रमण किया, और अन्त में इन दो विरोधी दिशाओं की कश्मकश में रोम-यूनान संस्कृति का सम्मिश्रण हुआ। रोमन सभ्यता में यूनानी प्रवृतियां प्रवेश कर गई पर रोम ने अपना व्यक्तित्व नहीं खोया। औगस्टस् के समय में रोम में भव्य-भवन और मूर्ति संग्रहालय बने। इन सभी दिशाओं में यूनानी प्रभाव स्पष्ट था। आदर्श (models) यूनानी ही थे। उस समय स्ट्रैबो (Strabo) नामक यूनानी ही ने प्रमाणित भूगोल की रचना की। सीज़र और सिसरो लैटिन साहित्य के प्रमुख निर्माता थे, पर दोनों यूनानी भाषा और साहित्य के विद्वान थे। इनके ऐसे महापुरुषों में रोमन-चरित्र और यूनानी-संस्कृति का सम्मिश्रण था, और इसका परिणाम था कि तत्कालीन प्राचीन विश्व के सबसे सुसंस्कृत महापुरुष ये लोग ही गिने जाते हैं। सिसरो रोम-यूनान-संस्कृति का सामंजस्य का प्रतीक था, और पूर्व-रोमन साम्राज्य-युग का आदर्श सिसरोवाद (Ciceroism) ही था. औगस्टस् ने रोम में दो बड़े पुस्तकालय स्थापित किया जिनमें यूनानी और लैटिन पुस्तकों का संग्रह किया गया था। इस समन्वित संस्कृति में उत्पन्न रोमनों की विचार शक्ति चेतन हो गई। लिवि (Livy) ने रोम का आद्योपान्त इतिहास लिखा। लैटिन गद्य-शैली निर्धारित हो गई, और लैटिन कविता का अभूतपूर्व विकास हुआ। महाकवि वर्गिल (Virgil) ने पहले यूनानी कवि थियोक्रिटस् के आधार पर ही कविता लिखना शुरू किया था।

वास्तुकला और अन्य कलाएं।

प्राचीन रोम के मकान बहुत साधारण थे। मकान एक कमरे का होता था, जिसमें सोने के लिए खाट और भोजन बनाने का चूल्हा अलग २

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोने में पड़ा रहता था। धुंआ से कमरा भरा रहता, क्योंकि धूंआ निकलने के लिए चिमनी का प्रयोग का ज्ञान नहीं था। पर जब रोम के नागरिकों को यूनानी सभ्य-शहरों में भ्रमण करने का मौका मिला तो वापस जाकर उन्हें अपना मकान कष्टकर मालूम हुआ, और बड़ा और आरामदेह मकान बनाये जाने लगे। पहले सोने का कमरा बनाया गया, मकान-मालिक का आफिस कमरा भी बना। फिर खम्भों पर आश्रित ओसारों से घिरा हुआ आंगन भी मकान का नया भाग बन गया। भोजन का कमरा, पुस्तकालय, और ड्राइंग-रूम जोड़ा गया। मकान अब एकमंजिला से कई मंजिला भी बनने लगे। रोम में पहले मकान सादा रहते थे ; आभरण का सम्पूर्ण अभाव था। अब दीवालों पर चित्रकारी, पाषण-मूर्तियां और कई तरह के डिज़ाइन से मकान सुशोभित होने लगे। मकान में स्नानागार, पानी का कल और साफ शौचगृह का प्रबन्ध किया जाने लगा। प्रमुख कमरों को शीत काल में गर्म रखने का भी प्रबन्ध पाइप से गर्म हवा द्वारा किया गया।

सीज़र ने नगर निर्माण योजना में काफी दिलचस्पी लिया। भव्य सार्वजनिक-भवनों का निर्माण हुआ, और विस्तृत सड़कें बनीं जिससे यातायात में अत्यन्त सुविधा हुई। साम्राट् औगस्टस् के समय में इस दिशा में अद्भुत प्रगति हुई। पैलेटिन की पहाड़ी पर (Paletine Hill) कई मकानों को एक कर राजमहल बना। खम्भों के पंक्तियों से सज्जित अपोल्लों का एक सुन्दर मंदिर का निर्माण हुआ। इसके नीचे संगमर्मर के बने भव्य इमारत थे, और क्रयविक्रय के लिए विशाल हाल, जिसे सीजर ने बनाया था, और जो जलकर बर्बाद हो गया था, फिर उठ खड़ा हुआ। सिनेट के लिए नई इमारत बन गई, और सीज़र का मंदिर भी बनाया गया। औगस्टस् ने एक विशाल और सुन्दर नाट्यशाला (Theatre) भी बनवायी, और पहले पहल रोम में आकर्षक सार्वजनिक स्नानागार (Public Baths) बने। रोम

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की वास्तुकला में मेहराब (Arch) का प्रयोग होता था। यह पूर्व का प्रभाव था। यूनानी वास्तुविद्या में इसका अभाव था, पर रोम के कारीगरों ने मेहराब और स्तम्भों को इमारतों में प्रमुख स्थान दिया। रोम में विजयी सेनापतियों ने विजय-चिह्न के रूप में विशाल मेहराब बनवाए। विजयी सैनिक और सेनापति इन मेहराबों से होकर रोम में जुलूस के साथ निकलते थे। अभी भी ऐसे विजयी जयवृतखण्ड व स्तम्भ (Triumphal Arch) पाए जाते हैं। योरप वास्तुकला में मेहराब की ता रोम की देन है।

रोम संसार का सबसे सुन्दर और दर्शनीय नगर बन गया। रोम में पशु और मनुष्य में कुश्ती बड़ा ही सर्वप्रिय मनोरंजन था, और इसलिए वेस्पिअस् ने विशाल रंगभूमि (Ampitheatre) बनाया जिसमें पचास हजार दर्शक बैठ सकते थे। आजकल इसे Colosseum कहते हैं। अभी भी संसार के विशाल इमारतों में यह एक है। कालक्रम से शहर में कई फड़ (Forum) स्थापित हुये जिसके ईर्दगिर्द कई भव्य-भवनों का निर्माण होता गया। सम्राट् ट्राजन ने एक विशाल स्तम्भ की रचना की जिस पर उसके युद्धकाल के चित्र अंकित थे। इस समय सीमेन्ट का खूब व्यवहार होता था। सम्राट् हेड्रिअन का कब्र रोम का सबसे बड़ा कब्र है और अभी भी वर्त्तमान है।

वास्तुकला के साथ २ शिल्पकला (Sculpture) की भी प्रगति हुई। विजयी रोमन सेनापतियों ने यूनान या यूनानी (Hellenic) नगरों से बहुत सी पाषाण मूर्तियाँ उठा लाए, और इनसे रोम की शोभा बढ़ गई। औगस्टस् ने रोम की भव्य इमारतों को पाषाणमूर्तियों से सुशोभित किया, और इस दिशा में यूनानी मूर्तियां ही आदर्श थीं। पहले तो यूनानी कला की नक़ल ही अधिक की जाती थी। क्रियात्मक प्रतिभा कम थी। पर हेड्रियन और ट्राजन के समय में इन पाषाण की इमारतों या स्तम्भों पर जो चित्र खोदे जाते थे वे रोम की सर्वोत्तम कला

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के जीते जागते उदाहरण हैं। ट्राजन-स्तम्भ पर खुदे चित्र अत्यन्त आकर्षक और सजीव मालूम पड़ते हैं। पर अधिकतर पाषाण मूर्तियां प्रसिद्ध यूनानी मूर्तियां की ही नकल है। यूनानी शिल्पकला की प्रतिभा सबसे अधिक पाषाण-मूर्तियों में निखरी थी, और संसार की कलात्मक कृतियों में अद्वितीय हैं। पर इनमें कितने नष्ट हो गये थे, और रोम के शिल्पिओं के बनाये ये नकली मूर्तियाँ (Copies) हमें यूनानी कला और प्रतिभा की सम्पन्नता का आभास देती हैं।

चित्रकला की प्रगति धीमी थी। दीवालों पर रंगे चित्र ही अब उपलब्ध हैं, और ये यूनानी चित्रकला के नकल ही समझे जाते हैं। पर मनुष्य के तस्वीर खूब बनाए जाते थे, और यह पेशा लाभकारी था।

शिक्षा और साहित्य।

प्राचीन रोम में वर्णमाला का प्रचार एट्रस्कनों के समय में ही हुआ था। यूनानी वर्णमाला का प्रभाव निर्विवाद है। यूनानी भाषा का भी लैटिन भाषा पर प्रभाव पड़ा। यूनानी मुक्त गुलामों या भृत्यों की ही मदद से रोम में पाठशालाओं की स्थापना हुई और शिक्षा का प्रचार हुआ। रोम में वाक्पटुता व भाषण देने की क्षमता का राजनीतिक महत्व यूनानी परम्परा का ही असर था। रोमन साहित्य का आरम्भ होमर के महाकाव्य के लैटिन अनुवाद से ही शुरू हुआ, और रोम के विद्वान यूनानी भाषा और साहित्य के पंडित होकर ही लैटिन साहित्य का भण्डार भरने लगे। रोम के प्राचीन नाटक, इतिहास-शास्त्र यूनानी पुस्तकों के आधार पर ही लिखे गए। जुलिअस सीज़र लैटिन साहित्य के निर्माताओं में एक है। उसने लैटिन भाषा पर एक पुस्तक लिखी है। अपने युद्धों का सजीव विवरण भी लिखा है। सिसरो लैटिन गद्य का महापंडित समझा जाता है। उसके समान वक्ता रोम में कोई नहीं हुआ, और उसके सारगर्भित और उत्साहवर्द्धक भाषण साहित्य की अक्षय

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कीर्ति है। भाषण कला पर उसके लेख पठनीय हैं। कैटो (Cato) यूनानी संस्कृति का बढ़ता प्रभाव का विरोधी था, और इसके लेख और भाषण भी लैटिन साहित्य के सुन्दर रत्न हैं। लैटिन कवियों में होरेस (Horace) और वर्गिल (Virgil) विश्व प्रसिद्ध हैं। औगस्टस्-युग की सभ्यता और दैनिक जीवन का सजीव चित्र हमें होरेस के गीतिकाव्य में मिलते हैं। होरेस की संगीतमय कविताएं अमर रहेंगी, और विश्व बराबर रोम का तो क्या प्राचीन विश्व का आभारी रहेगा। वर्गिल ने तो पहले यूनानी-शैली की नकल कर इटैली का दैनिक जीवन का चित्र देना शुरू किया। पर वर्गिल की प्रतिष्ठा का असली कारण है उसकी क्रियात्मक प्रतिभा। उसने एइनिड (Aeneid) नामक एक महाकाव्य लिखा। इसमें यथार्थतः औगस्टस् युग और औगस्ट्स का प्रतिभाशाली व्यक्तित्व की प्रशंसा है। होरेस और वर्गिल राष्ट्रीय चेतना और आत्मविश्वास के प्रतीक हैं। वर्गिल का महाकाव्य अभीतक सभ्य संसार पर अपना प्रभाव अक्षुण्ण रक्खा है। औगस्टस् स्वयं ही एक सफल लेखक था। उसने अपने जीवन की कहानी अपने कब्र के सामने गड़ी कांसे की टिकियों पर लिखी है। एक महान् जीवन का वर्णन इतना प्रभावोत्पादक शैली में मिलना कठिन है। सम्राट् नेरो का मंत्री सेनेका (Seneca) के लेख लैटिन गद्य-साहित्य में विशिष्ट स्थान रखते हैं। इसी समय कई यूनानियों ने भी साहित्य के भण्डार में उचित योगदान दिया। प्लूटार्क (Plutarch) ने रोम और यूनान के महान् पुरुषों की जीवनियां यूनानी भाषा में लिखी। एरियन (Arrian) ने सिकन्दर का जीवन चरित्र के बचे विषयों का संकलन किया। स्ट्रेबो (Strabo) का भूगोल बहुत दिनों तक प्रामाणिक ग्रन्थ रहा। पोलिबिअस् (Polybius) प्रथम इतिहासकार था। लिवि (Livy) का लिखा इतिहास उल्लेखनीय है। टैसिटस् (Tacitus) भी एक सफल इतिहासकार माना जाता है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य की वृद्धि के साथ २ पुस्तकालयों की उन्नति हुई। औगस्टस् ने दो बड़े पुस्तकालयों की स्थापना की थी। लैटिन और यूनानी दोनों साहित्य का संग्रह किया गया था।

विज्ञान के क्षेत्र में रोमनों ने काफी दिलचस्पी नहीं दिखाई। औगस्टस् का मन्त्री अग्रीप्पा ने संसार का एक मापचित्र बनाया पर इसमें कोई स्केल या परिमाण निश्चित नहीं था, और अक्षांश (Latitude) और रेखांश (Longitude) का अभाव था। प्लिनी (Pliny) Naturalies Historia का लेखक था। विज्ञान की यह अनुपम पुस्तक है। जुलिअस सीज़र ने चन्द्र के आधार पर स्थित पञ्चाङ्ग के बदले सूर्य के आधार पर नया पञ्चाङ्ग लागू किया। टौलमी (Ptolemy) ने ज्योतिष विद्या पर कई लेख लिखे और उसका यह मत था (जो ग़लत है) कि सूर्य पृथ्वी के चारों ओर घूमता है।

धर्म।

आरम्भ में रोम-धर्म बहुत साधारण था। रोमन प्राकृतिक शक्तियों की पूजा करते थे, क्योंकि उनसे उन्हें एक ओर तो भय रहता था, दूसरी ओर वरदान पाने की इच्छा रहती थी। प्राचीन रोमनों का यह विश्वास था कि प्राकृतिक वस्तुओं में देवता या प्रेतात्मा का निवास रहता है; इसलिए ऐसी वस्तुओं की पूजा होती थी। प्रकृति के प्रत्येक क्षेत्र में, और मनुष्य के प्रत्येक कार्य-क्षेत्र के ऊपर एक देवता का राज था। प्रमुख देवताओं में जुपिटर (आकाश), मार्स (युद्धदेवता), वेनस् (प्रेम की देवी) इत्यादि हैं। रोमनों का यह विश्वास था कि भक्त और देवता का पारस्परिक कर्त्तव्य नियमबद्ध है। भक्त देवता की पूजा करेगा, पशु बलि देगा, और इसके बदले में देवता भक्त को वरदान देगें। इसलिए रोमनों को धर्मकर्त्तव्यों का यन्त्रवत् पालन करना ही था। उन्हें गूढ़ दर्शन या बौद्धिक कल्पना के लिए समय निकालने की ज़रूरत नहीं थी। व्यवहारी रोमनों का धर्म भी व्यावहारिक था, और इसी गुण के कारण राजनीतिक

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व कानूनी क्षेत्रों में रोमनों ने अभूतपूर्व न्यूनता दिखाई। एट्रस्कनों और यूनानियों से प्रभावित हो रोमनों ने भी भविष्य का ज्ञान प्राप्त करने के कई रहस्यवादी उपायों को अपनाया, जैसे बलि दिया हुआ भेड़ के गुर्दे का चिह्न पढ़ना। पूर्वीय संसार से निकट सम्पर्क में आने से रोमन धर्म या धार्मिक रीतिरिवाजों में काफी तबदिली हुई। रोम में मिश्र की नकल पर धार्मिक स्तम्भ खड़े किये गये। मिश्र के देवता ओसिरिस और इसिस के लिए रोम में बाग लगाए गये और उनकी मूर्तियां रखी गईं। एशियामाइनर की मातृदेवी का आदर रोम में होता था। पर्शिया का देवता मित्र (Mithras) रोमनों को मान्य था। इन सभी देवताओं की रहस्यमयी कहानियां या नाटकों का भी रोम में प्रवेश हो गया था। पूर्वीय संस्कृतियों का ही प्रभाव था कि रोम में सम्राट् की पूजा होने लगी। सम्राट् के मन्दिर बनने लगे। औगस्टस् के समय से ही सम्राट्-पूजा शुरू हुई।

अतः यह स्पष्ट है कि रोम में धार्मिक सहिष्णुता की नीति प्रचलित थी। विदेशी धर्मों, देवताओं और रीतिरिवाजों का प्रभाव रोमन जनता पर पड़ रहा था। पर रोम ने ईसाई धर्म का खुला विरोध किया। इस नीति के कुछ खास कारण थे।

दर्शन।

रोमन व्यवहारकुशल थे। अध्यात्मिक छानबीन या बौद्धिक कल्पना की ओर उनकी रुचि नहीं के ही बराबर थी। दर्शन के क्षेत्र में रोमनों ने इसलिए कोई नयी दिशा नहीं अपनाई। उनके दर्शन जीवन के कुछ नैतिक सिद्धान्त तक ही अधिकतर सीमित रहे। रोमन इस जीवन की सफलता के लिए ही परेशान रहते थे, मृत्यु के उपरान्त क्या है ऐसे विचार से रोमन प्रायः मुक्त थे। इसी जीवन की सफलता के लिए उन्हें कुछ नैतिक सिद्धान्त और सामाजिक नियमों का पालन करना आवश्यक प्रतीत होता था। जो कुछ भी दर्शन

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम की कोई चीज रोमनों में पाई जाती है वह है यूनानी स्टोइसिजिम का प्रभाव। जेनो इस दर्शन का प्रवर्त्तक माना जाता है। यूनानी चिन्तक इपिकुरस (Epicururs) का प्रभाव रोमन ल्यूक्रेटिअस् (Leucretius) पर काफी पड़ा। इस दर्शन का सिद्धान्त था कि विश्व अणुओं के आकस्मिक सम्मेलन का परिणाम है और बराबर परिवर्तनशील है। प्रत्येक चीज भौतिक पदार्थ का बना है, और मनुष्य नियति का कठपुतला है। उसका भाग्य उसके अधिकार के बाहर है। देवता भी द्रव्य पदार्थ हैं, पर मनुष्य का भाग्य-विधाता नहीं। मनुष्य का ध्येय है सुख की प्राप्ति और इसलिए देवताओं या मृत्यु का भय छोड़ देना चाहिये। देवताओं की नाराजगी एक ढकोसला है। ल्यूक्रेटिअस् ने अपनी पुस्तक में तत्कालीन विज्ञान का पूरा लाभ उठाया है, और प्राचीन काल में मनुष्य का जीवन का विकास और प्रकृति की कार्यशैली का विद्वतापूर्ण विवेचन किया है। आधुनिक सिद्धान्तों के आधार पर इन विषयों पर उसके विचार ठीक हैं।

सेनेका (Seneca) नेरो का गुरु था, और वह स्टोइक दर्शन का मतावलम्बी था। उसने कई पुस्तकें लिखी हैं। उसके विचार अति उच्च हैं। उसने यह कहा कि मंदिरों के द्वार खटखटाने की कोई आवश्यकता नहीं, पुजारियों की खुशामद करना जरूरी नहीं, स्वर्ग की ओर ध्यान लगाना बेकार है। यदि ईश्वर को ढूंढ़ना है तो अपने मन के भीतर देखो। ईश्वरत्व हममें है, ईश्वर हम से अलग नहीं है। पवित्र और साधु पुरुष ईश्वर का ही रूप है।

एपिक्टेटस् नेरो का एक गुलाम था, और सम्राट् हेड्रियन का एक मित्र। वह अत्यन्त धार्मिक विचार का मनुष्य था। उसकी शिक्षा थी कि इस संसार में ईश्वराज्ञा के अनुसार काम करते रहो, इससे अधिक सोचना निरर्थक है।

सम्राट् मार्कस् औरेलियअस् महान् चिन्तकों में एक है। वह राजकार्य व युद्ध के समय से कुछ समय निकाल कर ध्यान किया करता था,

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अपने विचारों को—To Himself नामक पुस्तक में लिपिबद्ध किया है। उसका यह विचार है कि संसार में जो कुछ पाया जाय उस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिये। उसने जीवन के नैतिक सिद्धान्तों पर जोर दिया। सहिष्णुता, पारस्परिक प्रेम, भाईचारा और स्वामिभक्ति प्रमुख गुण हैं जिनका पालन करना चाहिये।

रोम में दर्शन एक बौद्धिक सिद्धान्त नहीं हैं, वरन् दैनिकजीवन में दर्शन की उपादेयता महसूस की जाती थी।

रोम और ईसाई धर्म।

ईसाई धर्म की उत्पत्ति फिलस्तीन में हुई। इस धर्म की उत्पत्ति फिलस्तीन के प्राचीन इतिहास से गहरा सम्बन्ध रखती है। फिलस्तीन एक छोटा देश है। इसके दक्षिण में अरब की मरुभूमि, पूर्व में डेड सी (Dead Sea) और जार्डन नदी, उत्तर में गेलिली का समुद्र और फिनिशिया, और पश्चिम में भूमध्य सागर हैं। इसका प्राचीन नाम कैनान (Canaan) था। दजलाफरात् (Mesopotamia), मिश्र और क्रीट की सभ्यताओं के सम्पर्क में रहने के कारण फिलस्तीन के निवासी सभ्य बने। पर यह देश प्राकृतिक सुविधाओं से प्रायः हीन ही था। ग्रीष्म-काल में वर्षा का वस्तुतः अभाव था, पर शीतकाल में कुछ वर्षा होती थी। दक्षिण भाग तो पथरीली और मरूभूमि था, उत्तरी भाग में अन्न उपजता था। सिंचाई की सुविधा नहीं थी, और अन्न की उपज कम होती थी। पश्चिम में समुद्रतट पर कुछ अच्छे बन्दरगाह थे पर बहुत पहले ही उन पर फिनिशिअनों का कब्जा हो गया था। मिश्र और मेसोपोटेमिया के शक्तिशाली राज्यों के मध्य में स्थित रहने के कारण यह देश युद्ध-स्थल ही बना रहा।

ऐसे दरिद्र और आतिथ्य-विमुख देश में अरब मरूभूमि से अब्रहम के नेतृत्व में हेब्रूजाति फिलस्तीन में १४००–१२०० ईसा से पूर्व में आकर बस गई। यहां के निवासी केनानियनों से इन्हें लड़ना पड़ा,

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर अन्त में दोनों जातियों में मैत्री व विवाह सम्बन्ध हो गया, और दोनों मिलकर एक राष्ट्र बन गए। फिनिशिअनों से सभ्यता के चिह्न जैसे लिपि, वर्णमाला इत्यादि इन्हें मिल गये। फिर फिलस्तीन होकर पूर्व-पश्चिम के व्यापारी आया-जाया करते थे, इससे आर्थिक व सांस्कृतिक फायदा होना स्वाभाविक था।

हेब्रू इस प्रकार सभ्य हो रहे थे। अरब-मरुभूमि से बञ्जारों का आना जारी था, और आर्थिक कारणों से हेब्रुओं की नजर मिश्र की ओर दौड़ी, और वे मिश्र चले गये, पर मिश्रिओं की गुलामीं उन्हें असह्य हो गई। हज़रत मूसा (Moses) के नेतृत्व म इनलोगों ने मिश्र की गुलामी के विरुद्ध जेहाद शुरू किया और अपने प्यारे घर की ओर लौट पड़े। मूसा रास्ते में ही मर गये, पर जननायकों और उत्साही नेताओं में उनका स्थान बहुत ऊँचा है।

उस समय मिश्र अवनति-पथ पर था, और असीरिया का अभ्युदय नहीं हुआ था। इस अवसर का फायदा यहूदियों ने लिया। राजा डेविड ने फिलस्तीन का संयुक्त-राष्ट्र कायम किया। राजा साल (Saul) और उसके पुत्र डेविड ने फिलस्तीनों को हरा कर यह सफलता प्राप्त किया था। (क्रीट के नाश के बाद उसके निवासी फिलस्तीन के दक्षिण-पूर्वी तट पर बस गये थे। ये फिलस्तीन कहलाते थे और हेब्रुओं को बराबर परेशान करते रहे)। डेविड (१०००–९६० ई० पू०) ने ही जेरुसलेम (Jerusalem) को राजधानी बनाई। हेब्रुओं की आर्थिक उन्नति सोलोमन (Solomon) के राज्यकाल में हुई। जेरुसलेम में एक मन्दिर बनाया गया, और पत्थर की कई सुन्दर ईमारत बने। बेचारी जनता कर के बोझ से दब गई। इसका परिणाम यह हुआ कि राष्ट्र दो भागों में बँट गया—उत्तर में इज़रायल और दक्षिण में जुडा। इन में बराबर युद्ध होता रहा, और इज़रायल असीरिया के साम्राज्य में ७२२ ई० पू० में आ गया। ५८६ ई० पू० चाल्डियन

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्राट् नेबुचड्रेजर ने जेरुसलेम को नेस्तनाबूद कर दिया, और हेब्रु राष्ट्र का नाश हो गया। कुछ बेबिलोन ले जाये गये, कुछ मिश्र भाग गये। जय पर्शिया ने बेबिलोन के नये साम्राज्य का अन्त कर दिया, तब सम्राट् कुरुश ने इन यहूदियों को अपने देश लौटने की अनुमति दे दी। पर यहूदी राष्ट्र के सुनहले दिन नहीं लौटे।

पर यहूदी करीब साढ़े चार सौ वर्ष तक फिलस्तीन में अपना सिक्का जमाये रहे। इन वर्षों में इनके धार्मिक विचारों का विकास हुआ, और विश्व को इन्होंने इस क्षेत्र में बहुत कुछ दिया। Old Testament या बाइबिल उनकी कृति है। इसमें मनुष्य की उत्पत्ति, और प्राचीन विश्व का इतिहास है। साहित्य के क्षेत्र में बाइबिल का बहुत ही ऊँचा स्थान है, और विश्व साहित्य पर इसका गहरा प्रभाव है।

जब सम्राट् कुरुश ने यहूदियों को अपने देश लौटने और जेरुसलेम का पुनर्निर्माण करने की अनुमति दी, तो यहूदियों को उस समय अपनी ऐतिहासिक परम्परा और कथाएँ छोड़ कर कुछ नहीं था। इन्हीं का संग्रह का नाम बाइबिल पड़ा। इसका प्रभाव यहूदियों पर बहुत पड़ा। बाइबिल में, जिसका संग्रह ईसा से चार पांच सौ वर्ष पूर्व माना जा सकता है, यहूदियों ने अपने पड़ोसी जातियों से भिन्नता देखी, और अपनी विशेषता का ज्ञान पाया। इन विशेष गुणों या धार्मिक व सामाजिक भावनाओं के प्रति यहूदियों में कट्टरता आ गई, और वे अपने को दूसरी जातियों से अलग समझने लगे। इसका परिणाम था कि अत्यन्त उत्साह से वे अपने धर्म पर दृढ़ थे। इसी विश्वास पर हजारों वर्ष से पीड़ित यहूदी जीवित रहे। बाइबिल ने उनमें एकता का सूत्र लाया, और वे कितनी ही दूर रहें, एक दूसरे से अभिन्न रहते हैं। यह एक अजीब चीज है कि एक पुस्तक—एक परम्परा—इतने कालतक एक भूमिहीन राष्ट्र को बांधे रख सके।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहूदियों का प्रमुख धार्मिक सिद्धान्त था कि उनका भगवान अदृश्य है, और निराकार है। न उसकी मूर्ति बन सकती है, और न मूर्ति की पूजा मंदिर में हो सकती है। स्वच्छन्द खुले आकाश में ही भगवान की पूजा होनी चाहिये। यहूदियों का भगवान व धर्म अमर है, क्योंकि अन्य धर्मों के मंदिर तोड़कर, मूर्तियां फोड़ कर उनका अन्त किया जा सकता है, पर यहूदी धर्म का अन्त कोई नहीं कर सकता। भगवान एक है, सर्वोपरि है और सर्वशक्तिमान है। ऐकेश्वरवाद व निराकार ब्रह्म की उपासना का सिद्धान्त यहूदियों ने पश्चिम में पहले पहल प्रचलित किया। पर यहूदी यह भी विश्वास करते थे कि हेब्रू जाति इस परमेश्वर की सर्वप्रिय जाति है। भगवान ने हेब्रूजाति को स्वयं चुना है, और जेरुसलेम का पुनरुत्थान होगा और धर्म का विश्व-साम्राज्य की स्थापना का श्रेय भगवान (याहोवा) के आशीर्वाद से हेब्रुओं को ही मिलेगा और जेरुसलेम इस धर्म राज्य की राजधानी बनेगी, ये कट्टर विश्वास प्रत्येक यहूदी के हृदय में घर किए हुए हैं।

यहूदियों को यह विश्वास था कि उनका ईश्वर याहोवा असहाय का सहायक, गरीबों का मददगार है। यहूदियों में कई पैगम्बर गुजरे हैं। जब यहूदियों का कैनानाइयों (Canaanites) से सम्पर्क हुआ तब कितने यहूदी केनानाइयों के स्थानीय नगर देवता 'बाल' (Baal) की पूजा करने लगे। इस आचरण के विरूद्ध जातीय धर्म और इष्ट-देव याहोवा की प्रतिष्ठा के लिए धार्मिक नेताओं ने आवाज उठाई। इलिजा (Elijiah) ने यह बताया कि याहोवा सर्व-शक्तिमान है और वही एक ईश्वर है, और वह गरीबों का दोस्त है। उत्तर का एक राजा अहब ने अंगूर की लतों की लालच में गरीब किसान नबोथ की हत्या की थी। इलिजा ने इसे याहोबा के विरूद्ध अपराध बताया, और जनता ऐसी भड़की कि राजा और उसके परिवार का हिंसात्मक अन्त हो गया। ७५० ई० पू० के लगभग गड़ेरिया एमोस ने अपने को ईश्वर-दूत बताया। उसने याहोबा को शांतिप्रिय बताया और स्वार्थी और अत्याचारी धनिकों का विरोधी।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एमोस ने ऐश्वर्य-पूर्ण आरामतलब जीवन का खोखलापन दिखाया, और सादा और स्वच्छ दरिद्र-जीवन की महत्ता पर प्रकाश डाला। गरीबों के प्रति क्रूर-व्यवहार व उनके खेतों का ऋण के बदले अपहरण की भर्त्सना की। एमोस प्रथम समाज-सुधारक थे। ऐसे महापुरुषों को ही पैगम्बर (Prophet) कहा जाता है जिन्होंने निःस्वार्थ जीवन, बन्धुत्व और उच्च-धार्मिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। जब असीरिया का सम्राट् सेन्नाचरिब जेरुसलेम का द्वार पीट रहा था, पैगम्बर आइसा (Isaih) ने निराश यहूदियों को भविष्य का स्वर्णयुग पर विश्वास करने को कहा। उन्होंने यह कहा कि याहोवा का राज्य फिलस्तीन तक ही सीमित नहीं है, वरन् सारा विश्व ही उसका कार्यक्षेत्र है। यहूदियों की दुर्दशा और जेरुसलेम का पतन याहोवा की हार नहीं वरन् याहोवा की इच्छा है, और असीरिया को याहोवा ने निमित्त बनाया है। यहूदियों को दुराचारी जीवन स्वार्थलिप्सा व अधार्मिक आचरण के कारण याहोवा ने दण्ड देना निश्चित किया है और असीरिया 'याहोवा का दण्ड' (Rod of Punishment) है। पर उसने यहूदियों का भविष्य उज्ज्वल है और असीरिया का पतन निकट है, ऐसी भविष्यवाणी की। जब असीरिया की सेना महामारी से बर्बाद हो गई तब लोगों को आइसा पर विश्वास होने लगा। याहोवा को अब उन्होंने संसार का स्वामी समझा, और फिलस्तीन से बाहर भी उसका कार्यक्षेत्र है ऐसा माना।

इस तरह यहूदियों ने एकेश्वरवाद का सिद्धान्त अपनाया, और याहोवा सभी जातियों का स्वामी है, यह समझा। पर अभी तक उनका यह विश्वास था कि हेब्रू जाति याहोवा को सबसे प्रिय है, और भविष्य में हेब्रू ही को ईश्वर का राज्य का ऐश्वर्य इस पृथ्वी पर ही भोगने को मिलेगा।

हज़रत ईसा इसी वातावरण में पैदा हुये थे। जूडिया में उनका जन्म हुआ था और वे यहूदी जाति के थे। यहूदी पैगम्बरों के उपदेश

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का उन पर प्रभाव था, पर वे और भी आगे बढ़े। उस समय फिलस्तीन रोम के राजनीतिक प्रभाव-क्षेत्र के अन्तर्गत था। रोम में इस समय सम्राट् की पूजा का प्रचलन आरम्भ हो गया था। यहूदी इसे कभी नहीं मान सकते थे। उनके लिए तो सिर्फ याहोवा ही एक ईश्वर था। अन्य देवताओं को वे भ्रम समझते थे। इसलिए रोमन और यहूदियों में विरोधाभाव रहना स्वाभाविक था। ऐसे समय में ईसाई धर्म का प्रादुर्भाव हुआ।

ईसा (Christ) का बचपन के बारे में कुछ नहीं मालूम है। कुमारी मरिअम के गर्भ से ये पैदा हुये थे और लगभग तीस वर्ष की उम्र से इन्होंने उपदेश देना शुरू किया। यहूदी की तरह ये भी एकेश्वरवादी थे। पर इनका ईश्वर प्राणीमात्र का दयालु पिता था; पापी और पुण्यवान सब पर दया करने को आतुर था। दरिद्र, असहाय और रोगी उसको अतिप्रिय थे। ईसा का कहना था कि अमीर स्वर्ग नहीं जा सकते। त्यागी और सादा जीवन व्यतीत करनेवाले ही ईश्वर के निकट पहुंच सकते हैं। पापी यदि सच्चे हृदय से अपना पाप स्वीकार कर ले तो ईश्वर उसे क्षमा कर देंगे और वह स्वर्ग पहुंच जायगा। ईश्वर को कोई विशेष जाति अतिप्रिय नहीं है। वह पक्षपात नहीं करता है, न उसकी कोई चुनी हुई जाति है और न किसी विशेष जाति के स्वर्ण-युग का वह संस्थापक होनेवाला है। वह समूचे विश्व का स्वामी है, और प्रत्येक जाति और मनुष्य का क्षमाशील पिता है। स्वर्ग का सुख इस पृथ्वी पर नहीं भोगना है। उच्च नैतिक विचार व शुद्ध आचरण का फैसला भगवान् प्रलय के दिन करेंगे। मनुष्य के कर्मों का फल प्रलय के दिन (Doomsday) ही मिलेगा। दरिद्र, रोगी और असहाय की सेवा से ईश्वर प्रसन्न होते हैं। ईसा ने विश्वबन्धुत्व, दया, दान, क्षमा और अहिंसा का पाठ पढ़ाया। उन्होंने न किसी धर्म की निन्दा की, और न किसी देवता को हेय बताया।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभी धर्म ठीक हैं। मनुष्य को सदाचार बरतना चाहिये, इस पर जोर दिया। प्रत्याक्रमण के बदले क्षमा करना चाहिये। मनुष्य को परिवार जाति व राष्ट्र-प्रेम छोड़कर विश्वप्रेम अपनाना चाहिये। ईश्वर के प्रेम में अन्य प्रकार के प्रेम या भक्ति त्याज्य हैं।

ईसा के इन क्रान्तिकारी विचारों से यहूदियों को बहुत रंज हुआ। पहले तो उनका यह ख्याल था कि हज़रत ईसा उनके पैगम्बर हैं जो कि यहूदियों के आगामी स्वर्णयुग के वाहक होंगे। पर ईसा ने एकेश्वरवाद तो माना, पर उन्होंने यहूदियों का यह विश्वास पर-कि याहोवा ने यहूदियों के पक्ष में यह फैसला किया है, वे उसके विशेष प्रिय हैं और उनका राज्य सारे विश्व पर स्थापित होकर ही रहेगा—कुठाराघात किया। यहूदियों को परिवार में अटूट श्रद्धा थी, विश्वबन्धुत्व के रंग में परिवार की कट्टरता नहीं टिक सकती थी। यहूदियों के लिए यह सिद्धान्त भी एक दृष्टि से अमान्य था। रोमन राजप्रतिनिधि भी ईसा के इस जनतान्त्रिक सादा धर्म से अप्रसन्न थे। ईसा के सिद्धान्त में रोमन सम्राट् की पूजा असम्भव थी। इस कारण शांति का इस प्रिय दूत को, ईश्वर का पुत्र हज़रत ईसा को फांसी दी गई; और हंसते हंसते अपने हत्यारों के लिए ईश्वर से क्षमा मांगते हुये ईसा न सत्य और विश्वबन्धुत्व के लिए अपने प्राणों की आहुति दे दिया।

ईसा के आत्मबलिदान के तीस वर्षों के भीतर ही ईसाई धर्म का काफी प्रचार हो गया। पहली शताब्दी में ही भारत के पश्चिम तट पर ईसाइयों का पता चलता है। रोम में ईसाइ धर्म का प्रचार होने लगा। इस धर्म के आन्तरिक गुणों का ही यह परिणाम था। क्रिश्चीयन पादरियों और धर्मप्रचारकों का पवित्र जीवन भी इस धर्म की प्रगति में सहायक हुआ। संत पाल (St. Paul) ने इस धर्म के प्रचार में अकथनीय परिश्रम किया। उन्होंने क्रिश्चीयन धर्म की विशेषताओं या गुणों का ऐसा विश्लेषण किया कि प्रत्येक मनुष्य इस धर्म को अपने लिए लाभ-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दायक समझने लगा। इन्होंने यह कहा कि हज़रत ईसा ने अपने बलिदान से मनुष्यों के संचित पापों का प्रायश्चित किया है। संसार में लोग इस महान् त्याग का मतलब समझें और पवित्र जीवन बिता कर ईश्वर-के-राज्य के नागरिक बनने का गौरव प्राप्त करें। संत पाल ने कमजोर स्त्रीवर्ग और पीड़ित गुलामों के प्रति ईसाइ धर्म की चिन्ता प्रकट किया और इस प्रकार य लोग इस धर्म की ओर आकर्षित हुये। संत पाल ने ईसा को ईश्वर का रूप समझा और लोगों को समझाया, और मृत्यु के उपरान्त ईसा का पुनर्जीवित होने का रहस्य का महत्व बताया। संतपाल का अदम्य उत्साह से प्रेरित होकर ईसाइ धर्म-प्रचारकों ने खूब मेहनत की और इसका ही यह फल था कि ईसाइ धर्म पहली शताब्दी में ही एक शक्ति बन गया।

पर रोमन सम्राट् इस नयी शक्ति को न सह सके। यहूदियों ने रोमन सरकार को बराबर तंग किया था। उनकी कट्टरता, सिर्फ याहोवा छोड़ कर किसी अन्य धर्म या देवता की उपेक्षा और रोमन सम्राट् की पूजा का विरोध के कारण रोमन यहूदी और उनके धर्म से बराबर बिगड़े रहते थे। जब ईसाइ धर्म की उत्पत्ति हुई तो रोमनों ने इसे भी यहूदी धर्म का ही अंग समझा, और इसलिए यद्यपि रोम ने अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता की नीति अपनाई थी, ईसाई धर्म के प्रति असाहष्णुता या खुला विरोध की ही नीति अपनाई। सम्राट् नेरो ने इस धर्म को कुचलने की नीति शरू की, और संत पॉल को भी शहीद बनना पड़ा। ट्राजन ऐसा बुद्धिमान सम्राट् ने भी ईसाइयों के प्रति दमन की नीति अपनाया। पर दमन ईसाइ धर्म के लिए आग में घी का काम किया, और धर्मप्रचार बढ़ता गया। ईसाइ छिप-छिप कर धर्मविवाद किया करते थे। पत्थरों से दबे खोहों म उनके कब्र थे, और पीछे चलकर यहीं इन्होंने छिपना भी शुरू किया। गरीब, अभागे और निम्नवर्ग के लोगों ने इस धर्म को

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खुशी-खुशी अपनाया क्योंकि इसमें भाईचारा और मरणोपरान्त ईश्वर के राज्य में सुख पाने की आशा के सिद्धान्त थे। जब सम्राट् डाइक्लेशिअन (२८४-३०५ ई०) की कड़ी दमननीति के उपरान्त भी ईसाइ धर्म की उन्नति ही होती गई, तो सम्राट् कान्स्टेन्टाइन (Constantine) ने ईसाइ धर्म को राज-धर्म बना दिया और ईसाइ होकर ही मरा (३३७ ई० पू०)।

तब से रोम ईसाइ धर्म का केन्द्र बन गया। जब असभ्य-जातियों ने रोम पर आक्रमण किया तब बहुत से बर्बर इस पवित्र धम के प्रति आकर्षित हो गये। रोम का विशोप लिओं (Leo) ने हूण नेता अट्टिला से विनती कर रोम का ध्वसं बचा लिया। इससे ईसाइ धर्म और विशॉप की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई रोम के विजयी जर्मन जातियों ने ईसाई धर्म को अपनाया। संत पीटर ने रोम में चर्च स्थापित किया था। ऐसा विश्वास है कि उनके हाथ में स्वर्ग की कुंजी थी, इसलिए संत पीटर रोम के प्रथम विशॉप थे, और संत पीटर का चर्च ईसाइ धर्म का प्रतिष्ठित चर्च। इस प्रकार जब रोम का राजनीतिक विश्व-साम्राज्य टूट रहा था और बर्बर जातियों का बोलबाला था, रोम धार्मिक व अध्यात्मिक शक्तियों का केन्द्र बन गया और, ईसाइ धर्म का प्रचार-केन्द्र। अन्त में रोम के अधीन ईसाइ-साम्राज्य स्थापित होकर ही रहा। कहना मुश्किल है कि यदि रोम में ईसाइ धर्म का सिक्का इतनी जल्दी नहीं जमता तो ईसाई धर्म का क्या भविष्य होता।

रोम की विश्व का विशेष देन।

रोम लगभग पांच सौ वर्ष तक योरप और पश्चिम एशिया का सर्वेसर्वा बना रहा। रोम का प्रभाव विश्व के इतिहास के कई क्षेत्रों पर पड़ा। यदि यूनान के नगर-राज्यों ने दुनियां को वैयक्तिक स्वतंत्रता और नगरराज्य-प्रेम का पा पढ़ाया तो रोम ने अनुशासन और राजभक्ति पर विशेष जोर दिया। स्वतंत्रता बिना अनुशासन के उच्छृंखलता है,

CC-0. Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

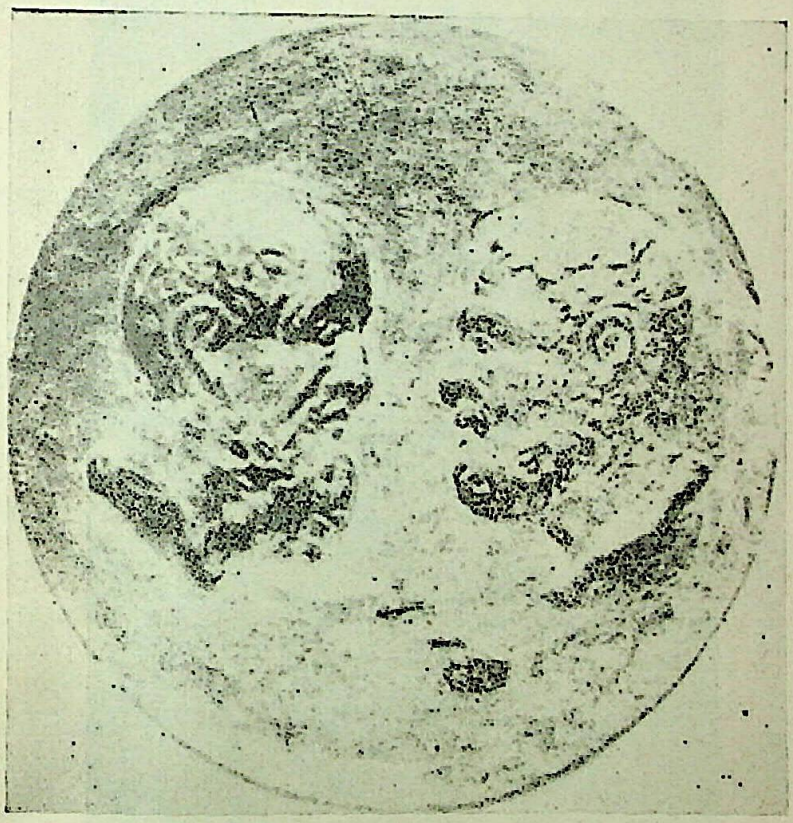

(पृ० २९३–९४) (संतपाल और पीटर)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

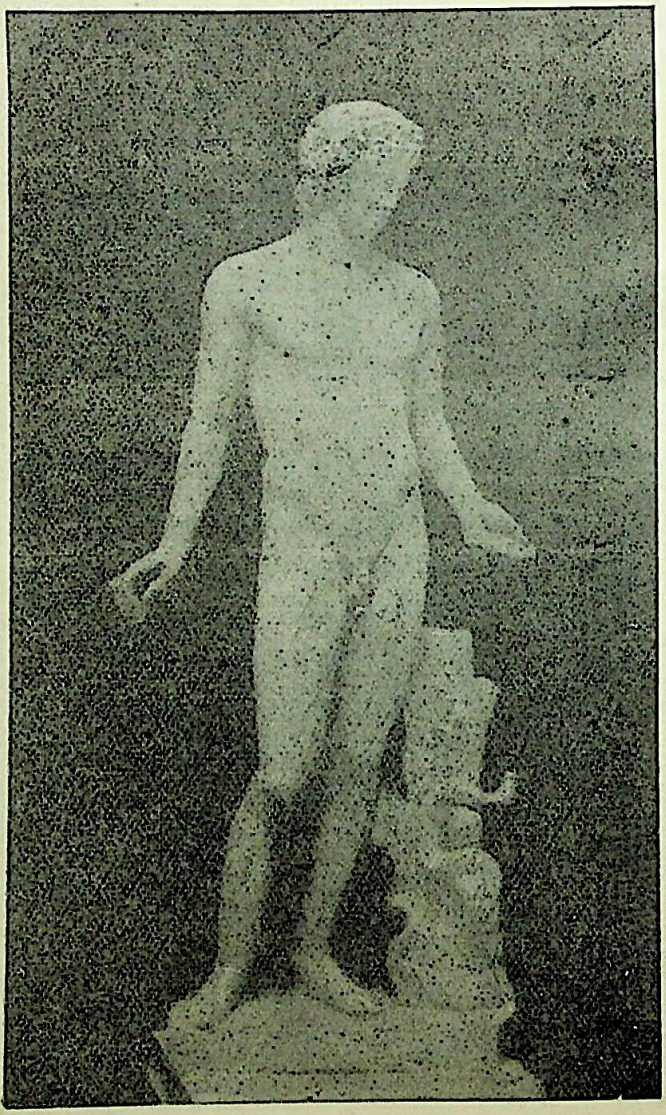

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

पृ० २८१ अपोल्लो (रोमन कला का उदाहरण)

(By Courtesy-National Museum, Rome)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अनुशासन बिना स्वतंत्रता के गुलामी है। यदि यूनान वैयक्तिक स्वतंत्रता को अधिक महत्व देकर राष्ट्रीयता और एकता स्थापित करने में असमर्थ रहा, रोम ने कठोर शासन और अनुशासन के कारण योरप की एकता प्रेम और भाईचारा पर नहीं वरन् दासता क आधार पर स्थायी बनाने की असफल चेष्टा की ।

रोम ने अपने विस्तृत साम्राज्य में वस्तुतः शान्ति बनाए रक्खी । नगर-राज्यों के पारस्परिक युद्ध (सिकन्दर के साम्राज्य के पतन के उपरान्त भूमध्यसागर के क्षेत्र में गड़-बड़ी) से लोग परेशान थे। इस अनुकूल वातावरण में रोम ने राज-नीतिक एकता और एक शासन-सूत्र में पूरे क्षेत्र को लाकर एक ऐति-हासिक आवश्यकता को पूरा किया। रोमन-शान्ति भविष्य में बुद्धिमानों के लिए एक उत्साहवर्द्धक उदाहरण व स्पृहणीय वस्तु थी। जब संसार में अशान्ति, राजनीतिक असन्तुलन की स्थिति लम्बी और विस्तृत होती तो लोग 'रोमन शान्ति' की याद करते। योरप में इतना बड़ा विस्तृत और लम्बी अवधि तक टिकने वाला पहला साम्राज्य रोम-साम्राज्य ही था। विश्व और योरप के इतिहास में इसलिए इसका स्थान सदैव सुरक्षित रहेगा।

यह सत्य है कि रोम ने कला व विज्ञान के क्षे में ऐसी प्रतिभा नहीं दिखाई जैसी यूनानियों ने और यह भी ठीक है कि रोम को अवनतोन्मुख यूनानी-सभ्यता से ही सम्पर्क हुआ। पर यह निर्विवाद है कि यूनानी संस्कृति शिल्पकला और साहित्य को जीवित रखने का श्रेय रोम ही को है। रोम ने यूनानी संस्कृति को अपनाया, और अपनी सीमाओं के अन्दर इस संस्कृति के विभिन्न पहलुओं को क्रियाशील रक्खा। यूनान के प्राचीन पाषाण मूर्तियों की नकल कर रोमन कलाकारों ने हमें यूनानी कला की सर्वोत्कृष्ट कृतियों की महत्ता के उदाहरण सुरक्षित रखा है। रोम ने पश्चिम दुनियां को सभ्य बनाया।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोम का लैटिन साहित्य जिसमें वर्गिल और होरेस ऐसे रत्न हैं नगण्य नहीं समझा जा सकता है। सीज़र और सिसरो के लेख किसी भी साहित्य की अमर कृतियां ही समझे जायँगे ।

संसार रोम का सबसे अधिक ऋणी रोमन-कानून के कारण रहेगा। प्राचीनकाल में कानून का आधार परम्परा व लौकिक आचार-विचार ही रहता था। प्राचीन यूनान में, भारत में, बेबिलोनिया या मिश्र में जब-तब जनता और शासन की सुविधा के लिए इन प्रचलित नियमों का संकलन किया जाता था जैसे—ड्रेको का संकलन, मनुस्मृति या हम्बूरावी-कोड। रोम में भी प्लेबिअनों के आन्दोलन का परिणाम हुआ कि Twelve Tables of Law की उत्पत्ति हुई। यह प्रचलित, सर्वमान्य और परम्परा से आती हुई नियमों का संकलन था। यह रोमन नागरिकों के अधिकार व कर्त्तव्यों का एक जगह इकट्ठा करना था। ३०० वर्ष तक ये कानून लागू रहे और नागरिकों के पारस्परिक झगड़ों का इसी धर्म-संहिता के आधार पर फैसला किया जाता था। पर नयी परिस्थितियां पैदा होती रहीं, और इन कानूनों का शाब्दिक अर्थ न लगाकर तर्कसंयुक्त अर्थ लगाया जाने लगा। इस तरह शब्दों को बिना बदले कानून का असली मंशा-यथार्थ भाव-की इज्जत की जाने लगी। इस तरह काम के लिए खास अफसर की जरूरत पड़ी और प्रीटर की नियुक्ति हुई कि वे रोमन नागरिकों में न्याय बरतें। पर रोमनों का विदेशियों से सम्पर्क बढ़ रहा था, और विदेशी न रोमन नागरिक थे, और न उन्हें रोमन-कानून से बाँधा जा सकता था। इसलिए रोमन और विदेशियों के पारस्परिक व्यवहार के नियम अलग थे, और इनके बीच जो कानूनी समस्याएं उठ खड़ी हुईं उसके लिए एक दूसरे प्रीटर की नियुक्ति हुई। ये न्यायकर्त्ता फैसला देने में मनुष्यता, युक्ति और न्याय का सिद्धान्त का ख्याल रखते थे, और कानून के शब्दों के शाब्दिक अर्थ में ही नहीं पड़े रहते

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। इस तरह इनके फैसले से कानून की प्रगति होती रही। इस तरह इन दो प्रकार के प्रीटरों (Praetors) के द्वारा दो प्रकार की धर्मसंहिता का विकास होता गया--(क) रोमन नागरिक-धर्म-(Roman Civil law) और राष्ट्रों का धर्म-(Law of Nations) जो रोमनों और गैररोमनों पर हावी था। दोनों प्रीटर अपने पद पर नियुक्त होने के बाद उन नियमों को प्रकाशित करते थे जिन्हें ये अपने कार्याविधि तक मुकदमों की सुनवाई में लागू करें ३। ये प्रतिवर्ष के प्रकाशित प्रीटराज्ञा कानून के भाग बन गये। इस तरह ये नियम और प्रीटरों के प्रतिदिन के फैसले रोमन कानून को प्रगतिशील बनाए रक्खा। इस तरह कानून को बराबर बदलते रहने का मौका मिलता रहा। प्रीटर की अवधि एक वर्ष की रहती थी, इसलिए प्रत्येक वर्ष पर नये प्रीटर या तो अपने पूर्वाधिकारी प्रीटर के बनाए नियमों (Edicts) को मान लेता, या उनमें कुछ सुधार लाता या नये नियमों को प्रचलित करता। इस प्रकार ये नियम बराबर गतिशील रहे, ये सब राजघोषणा (Edictal law) थी। जब ८९ ई० पू० सभी इटालियन रोमन नागरिक बना लिए गये तो रोमन कानून और अंतर्राष्ट्रीयकानून की खाई कम होगई। रोमन कानून और भी उदार हो गया। जब २१२ ई० में समूचे रोमन-संसार को रोमन-नागरिकता के अधिकार मिले, तब रोमन दीवानी कानून (Jus Civile) और अन्तर्राष्ट्रीय कानून (Jus Gentium) का भेद मिट गया, और सभी रोमन प्रजा एक ही नियमव्यवस्था या न्याय के अन्तर्गत थे।

जब रोम में सम्राट् का उदय हुआ, तो सारी सत्ता धीरे २ सम्राट् के हाथ में केन्द्रित हो गई। सिनेट का कानून बनाने का अधिकार वस्तुतः छिन ही गया। प्रीटरों की राजज्ञा (Edicts) निकालने का अधिकार लुप्त हो गया। हेड्रियन् के राज्यकाल में प्रीटरों की राजज्ञा (Edicts) का संग्रह हो गया, और उसके बाद इसकी प्रगति रुक गई

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और कुछ समय बाद सम्राट् का कानून बनाने का अधिकार (वैधानिक अधिकार) सर्वमान्य हो गया।

पर रोमन साम्राज्य में धर्म (Law) जटिल और विस्तृत हो गया था। प्रत्येक नागरिक को इनका पूरा ज्ञान रहना असम्भव था। इसलिए कुछ विशेषज्ञों ने इस विषय पर अपना पूरा समय और बुद्धि दिया और इन बुद्धिमान धर्मज्ञ विशेषज्ञों (Jurisprudents) के राय सभी मुकदमेंबाज लेने लगे। इनकी राय की कद्र होने लगी। इनके विचार को उद्धृत किया जाने लगा, और न्यायाधीशों ने भी इनका आदर करना शुरू किया। इन (Jurisprudants or jurists) का प्रभाव रोमन धर्म और धार्मिक व्यवस्था पर काफी पड़ा, और सम्राटों ने भी उलझी कानूनी गुत्थियों को सुलझाने में इन लोगों की मदद लेना शुरू किया। सम्राट् औगस्टस् ने इन्हें यह आज्ञा दी कि ये पूछे गये प्रश्नों का उत्तर दें। इस तरह कानूनी मसलों पर अपना विचार प्रकट करने के लिए इन विशेषज्ञों को राजकीय स्वीकृति मिल गयी। इनके लेख और विचार धर्म और युक्ति के अनुकूल रहते थे, और रोमन कानून के विकास में इस तरह इन लोगों ने सक्रिय भाग लिया। इनका यह प्रयास था कि धर्म (Law) जहां तक हो प्रकृति के नियम के अनुकूल रहे, और न्यायसिद्ध हो। रोमन धर्म को इस तरह मानवीयधर्म (Humane law) की ओर ले जाने में इन विचाराज्ञों का बड़ा हाथ है ।

पर अभी तक रोमन धर्म मनुष्यमात्र की सेवा करने के योग्य नहीं था क्योंकि अभी इसकी धाराएं बिखरी हुई थीं, और यह अत्यन्त विस्तृत था। इसके संकलन के लिए पहले भी प्रयास हुये। पर सम्राट् जस्टीनियन (Justinian) ने ५३३ ई० में रोमन धर्म की धर्मसंहिता प्रकाशित की। इस धर्मसंहिता में फौजी, दिवानी और कानून के अन्य भाग सम्मिलित हैं। योरप में कानून का इतना वृहत् संकलन पहले नहीं हुआ था, और इस संकलन के पीछे हजारों वर्ष का

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास था, महान् विद्वानों का अनुभव था। अब एक जगह प्रत्येक नागरिक कानून को पढ़ सकते थे। इसलिए न्याय के क्षेत्र में इस संहिता से अत्याधिक लाभ हुआ। यह धर्मसंहिता (Code) समूचे रोमन साम्राज्य पर एकसा लागू किया गया। पश्चिमी दुनियां का बहुत बड़ा हिस्सा इस प्रकार एक धर्म के सूत्र में बंध गया। इस धर्मसंहिता का प्रभाव विश्व में बहुत अधिक पड़ा। लार्ड ब्राइस (Lord Bryce) का कहना है कि "धर्मसम्बन्धी (Juris prudence) कोई भी ऐसी समस्या नहीं है जिस पर इस संहिता में विचार नहीं हुआ है, और राजनीतिक शास्त्र का ऐसा कोई भी कोना नहीं हैं जहां इसकी रोशनी नहीं पड़ी हैं"। जब रोमन-साम्राज्य-काल में यह संहिता ५ करोड़ मनुष्यों पर लागू थी, तो अभी ८० करोड़ मनुष्य ऐसी धर्म-व्यवस्थाओं में रहते हैं जिनका स्रोत रोमन धर्म-संहिता ही है।

रोमन प्रतिमा प्रधानतः व्यवहारकुशल थी। समस्या का समाधान व्यवहारिक, न कि काल्पनिक व अध्यात्मिक, आधार पर किया जाता था। इनकी व्यवहारकुशलता का प्रमाण रोमन विधान के विकास में मिलता है। जब राजतन्त्र के बाद प्रजातन्त्र की स्थापना हुई तो एक राजा के स्थान पर दो कौन्सलों की नियुक्ति की गई; इस प्रकार एकतन्त्र के अवगुणों को हटाते हुये उसके गुणों को स्थिर रखने की चेष्टा की गई। प्लेबिअन-पैट्रिशिअन संग्राम एक भीषण वर्गयुद्ध ही था, और दूसरे देशों में हिंसक क्रान्ति का कारण बन सकता था, पर रोम ने इस समस्या को सुलझाने में दूरदर्शिता और व्यवहारकुशलता दिखाई, और यह संग्राम शान्तिपूर्ण उपायों से अन्त किया गया। रोम का विधान के आधार को बिना बदले हुये प्लेबिअनों को विधान में नए अधिकार दिये गए। रोम का वैधानिक इतिहास विकासवाद का ज्वलन्त उदाहरण है। जैसे २ नयी समस्याएं उठ खड़ी हुईं, उनका व्यवहारिक समाधान ढूंढ निकाला गया; कटटरता या अपरिवर्तनशीलता को यहां स्थान

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं था। रोमन अपन नागरिक अधिकारों के प्रति भी कट्टर नहीं थे, और साम्राज्य हित या इटैली की एकता के हित में इन्होंने अपने विशेषाधिकारों को विजित इटैलिअन प्रदेशों को भी धीरे २ देने लगे। इसी प्रकार इटैली में ये एकता स्थापित कर सके। यह सच है कि पीछे चल कर यह रवैया रुक गया, पर बहुत काल के बाद पूरे रोमन साम्राज्य में एक-नागरिकता या समान नागरिक अधिकार व्याप्त हो गये। इस प्रकार असंकुणता और उदारता दिखा कर रोमन एक बड़े साम्राज्य के स्थापक बन सके, और व्यवहारकुशल सिद्ध हुये। स्थानीय परम्पराओं का रोमनों ने बहुत आदर किया, और विजित नगरों में स्वायत्त-शासन स्थापित कर वहां के नागरिकों को मित्र बनाने की कोशिश किया।

इसी गुण का एक यह परिणाम था कि रोमनों ने सुन्दर नगर-योजना बनाई। पोम्पाई का ध्वंश शहर की सुन्दर योजना का पता हमें उसकी खुदाई से मिलता है। चौड़ी सड़कें, भव्य मकान, बाग-बगीचा और केन्द्रस्थित बाजार इस शहर की विशेषता थी। पानी के कल की व्यवस्था थी। पानी निकटस्थ नहर या जमीन के अन्दर झरनों से निकाला जाता था। रोम ने साम्राज्य भर में कई शहरों का निर्माण किया, और ये शहर सभी सुविधाओं से परिपूर्ण थे। रोमन सभ्यता के फैलाने के ये केन्द्र बने, और रोमन सभ्यता फ्रांस, इंगलैण्ड स्पेन, अफ्रिका, सीरिया इत्यादि देशों में फैल गयी। रोमनों के बनाए सड़क विश्व प्रसिद्ध हैं। योरप या मध्यपूर्व में सड़कों का इतना बड़े पैमाने पर योजानानुकूल निर्माण नहीं हुआ था। सेना, व्यापारी व यात्रियों के लिए यह सुवर्ण-संयोग था। विस्तृत रोमन साम्रज्य में एकता का भाव लाने में सड़कों का बहुत बड़ा हाथ रहा है।

रोमन साम्राज्य की सैनिक व्यवस्था अच्छी थी। वृहत् राज्यकार्य चलाने के लिए नौकरशाही का संगठन किया गया। प्रतिभावान् कर्मचारी नीचे पद से ऊंचे पद तक जा सकते थे। उन्नति का मार्ग खुला था।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्य में वर्ण या वर्ग विभेद सरकारी मामलों में नहीं था। सुव्यवस्थित शासन-प्रणाली और मजबूत सेना से सुरक्षित पूरे साम्राज्य में नागरिकों को बिना किसी भेद-भाव के घूमने-घामने की आज़ादी थी। व्यापार की उन्नति खूब हुई। जालों की तरह बिछी सड़कों और समुद्रों में स्वच्छन्द विचरती हुई नावों के द्वारा व्यापारी भारत और सुदूरपूर्व प्रायद्वीपों से तिजारत करते थे। अफ्रिका, अरब, और भारत के पश्चिम तट पर रोमन उपनिवेश स्थापित हुये थे। पश्चिम योरप में पूर्वीय देशों के मसाले, रत्न-जवाहर, रेशमी कपड़े, इत्र और चन्दन का प्रचार हो गया। रोमन साम्राज्य में किमती फैशन का बोलबाला था। प्लिनी ने रोमन धन का इस अपव्यय की कठोर भर्त्सना की है।

पूर्वीय देशों के ऐश्वर्य का प्रभाव रोमनों के चरित्र पर बुरा ही हुआ। गुलामों की दशा बिगड़ती गई। अंहकार, ईर्षा और कृत्रिमता का महत्त्व रोम में बढ़ता गया। गरीब जनता में उच्छृंखलता व्यसन, और आमोद-प्रमोद की वृद्धि हुई। रोमन साम्राज्य के पतन में इस प्रवृति का बड़ा हाथ है।

पर रोमनों के स्वाभाविक चरित्र-गुण स्पृहणीय हैं। आज्ञापालन, अनुशासनव्रत, कर्त्तव्यपरायणता और उदारता रोमनों के विशेष गुण थे। इन्हीं कारणों से उनकी इतनी उन्नति हुई। अवनतोन्मुख यूनानी संस्कृति और पूर्वीय विलासी सामग्रियों के प्रभाव से उनका चरित्र का पतन हो गया। पर होरेस और वर्गिल ऐसे महान् राष्ट्र कवियों ने रोम के पुनरोत्कर्ष पर विश्वास का राग गाया, उनके चरित्रोत्थान का संदेश सुनाया और रोम का स्वर्णयुग लौटेगा ऐसा विश्वास पैदा करने की कोशिश की। औगस्टस्युग में इस ओर कदम उठाया गया। रोम के साम्राज्य का पुनर्संगठन किया और सभ्यता को निरापद फैलाने का भार स्वयं लिया। रोम इस कारण अमर है, और यह कहावत कि संसार की सभी सड़कें रोम में मिलती हैं, कुछ हद तक सत्य है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन भारतीय सभ्यता

प्राचीन सभ्यताओं में भारतीय सभ्यता का विशिष्ट स्थान है। चीन, मेसोपोटेमिया और मिश्र की समकालीन सभ्यताओं से भारतीय सभ्यता कि विशेषता यह है कि जब अन्य प्राचीन सभ्यताएं विस्मृति के गर्भ में विलीन हो गई, और उनका महत्व साधारणतः शास्त्र-सम्बन्धी ही रह गया, भारतीय सभ्यता जीती जागती है और अति प्राचीन काल से लेकर आज तक इसकी शृंखला कभी टूटी नहीं। इसलिए-प्राचीन भारतीय संस्कृति की सर्वांगपूर्ण विरासत शास्त्रीय महत्व के अलावे व्यवहारिक महत्व रखती है। वर्तमान भारतीय संस्कृति व भावनाओं को समझने के लिए प्राचीन संस्कृति का ज्ञान आवश्यक है। सदियों से गुलाम रहने के बाद आज भारत स्वतन्त्र है, और इस समय सभी क्षेत्रों में नवजीवन का संचार हो रहा है। इस समय प्राचीन भारतीय संस्कृति का ज्ञान हमें उत्साहित करेगा, पथप्रदर्शन करेगा।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि

प्राचीन भारतीय सभ्यता का विकास का उचित ज्ञान के लिए हमें उस समय की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को आधार बनाना चाहिये। धर्म, कला, समाज या दर्शन, राजनीति और अर्थशास्त्र की प्रगति या अवरुद्धता शून्य में नहीं वरन् ऐतिहासिक शक्ति और प्रभावशाली व्यक्तियों के कार्यक्षेत्र में ही सम्भव हो सकी। पर भारतवर्ष का इतिहास का उचित मूल्यांकन के लिए हमे इस देश की भौगोलिक विशेषता को भी ध्यान में रखना है। उत्तर में वर्फ से ढका हुआ हिमालम, पश्चिम में हिन्दुकुश का पहाड़ और अरब का सागर, पूर्व में बर्मा के पहाड़ और बंगाल की खाड़ी, और दक्षिण में हिन्द महासागर है। इस तरह प्रकृति ने भारत को चारो तरफ से घेर कर अलग रखा है। इसका यह परिणाम हुआ कि साधारणतः बाहरी आक्रमणों के झकझोरों के बावजूद यह बराबर अपने निश्चित पथ पर चलता रहा। पर यह समझना ग़लत होगा कि विदेशी प्रभाव से यहां की सास्कृतिक धाराएं बची रहीं। उत्तर-पश्चिम में कई घाटी (Pass) हैं, जैसे खैबर और बोलन की घाटी जिनसे होकर विदेशी जातियां भारत पर आक्रमण करती रही हैं, जैसे पर्शियन, यूनानी, बैक्ट्रियन, कुशान, हून, मौंगोल इत्यादि। इन आक्रमणों के अलावे भारत को पश्चिम-एशिया, और वहां से एसियामाइनर, मिश्र और योरप से व्यापारिक सम्बन्ध था। पूर्व में चीन और बर्मा, हिन्द-चीन, जावा-सुमात्रा इत्यादि देशों से भी घनिष्ट परिचय था। इस कारण भारतीय राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास बराबर ही समकालीन राजनीतिक, धार्मिक और प्रासंगिक आन्दोलनों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में प्रभावित रहा है, और अन्य देशों को स्वयं प्रभावित किया है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत वर्ष को विन्ध्य और सतपुरा के पहाड़ और उनसे निकली नदियां दो प्रमुख भागों में बांट देती हैं, उत्तर और दक्षि भारत। साधारणतः उत्तर भारत और दक्षिण भारत में स्वतन्त्र रूप से राजनीतिक व सांस्कृतिक विकास होता गया। पर भारत का एक भाग दूससे भाग पर भी अपना प्रभाव डालता रहा। इसलिए भारत में कई देशीय (Regional) कला का विकास होता रहा, पर राष्ट्रीय एकता और संस्कृतिके भाव बचे रहे।

सिन्धुघाटी की पूर्णविकसित नागरिक सभ्यता के पतन के बाद ऋग्वेद-कालीन सभ्यता पञ्जाब, पश्चिम संयुक्तप्रदेश, और उत्तरी राजपूताना में फैल चुकी थी। ऋग्वेद में गंगा का उल्लेख सिर्फ एक बार आया है। गंगा-प्रदेश इस समय आर्यों के क्षेत्र से बाहर था। इस समय प्रमुख आर्य जातियाँ थीं भारत, पौरव, आनव, द्रूह्यू इत्यादि। उत्तर वैदिक काल में आर्यों का विस्तार पूर्व में कोशल, मिथिला, दक्षिण में विन्ध्यपर्वत या नर्मदा तट तक, उत्तर में हिमालय व काश्मीर, और उत्तर-पश्चिम में पूर्वीय अफगानिस्तान तक हो गया था। कौरव, यादव, हैहय इत्यादि प्रसिद्ध जातियां थी। पुराणों के आधार पर यह कहा जाता है कि श्री रामचन्द्र ने आर्यों का विस्तार सुदूर दक्षिण, लंका प्रायद्वीप, तक किया। शनै शनैः सारा भारतवर्ष प्रायः आर्य हो गया, यद्यपि दक्षिण भारत में द्रविड़ जातियां बच गईं, और उत्तर भारत में छोटानागपुर व उड़िसा में भी अनार्य जातियां अभीतक पाई जाती हैं। मगध बहुत दिनों तक ब्राह्मण सभ्यता का विरोध करता रहा, इसीलिए वैदिक साहित्य में इसकी बड़ी निन्दा पाई जाती है।

पूर्व वैदिक काल में अनार्यों से लड़ाइयाँ तो होती ही थीं, आपस में भी आर्य जातियों में राज्य प्रसार के लिए युद्ध होता रहा। इस युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए क्षत्रिय राजा देवताओं के आशीर्वाद के लिए इच्छुक रहते थे, और इसलिए वे ब्राह्मण-पुरोहितों का बहुत आदर करते थे। ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ग एक दूसरे पर निर्भर करने लगे, और य दोनों सत्ताधारी वर्ग बन गये। वर्णव्यवस्था का जन्म पर आश्रित

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृ० ३०५ राजगृह के वैभारगिरि पर स्थित पिप्पला गुफा (जरासन्ध की बैठक)

(Copyright Reserved. Arch. Surv. India)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

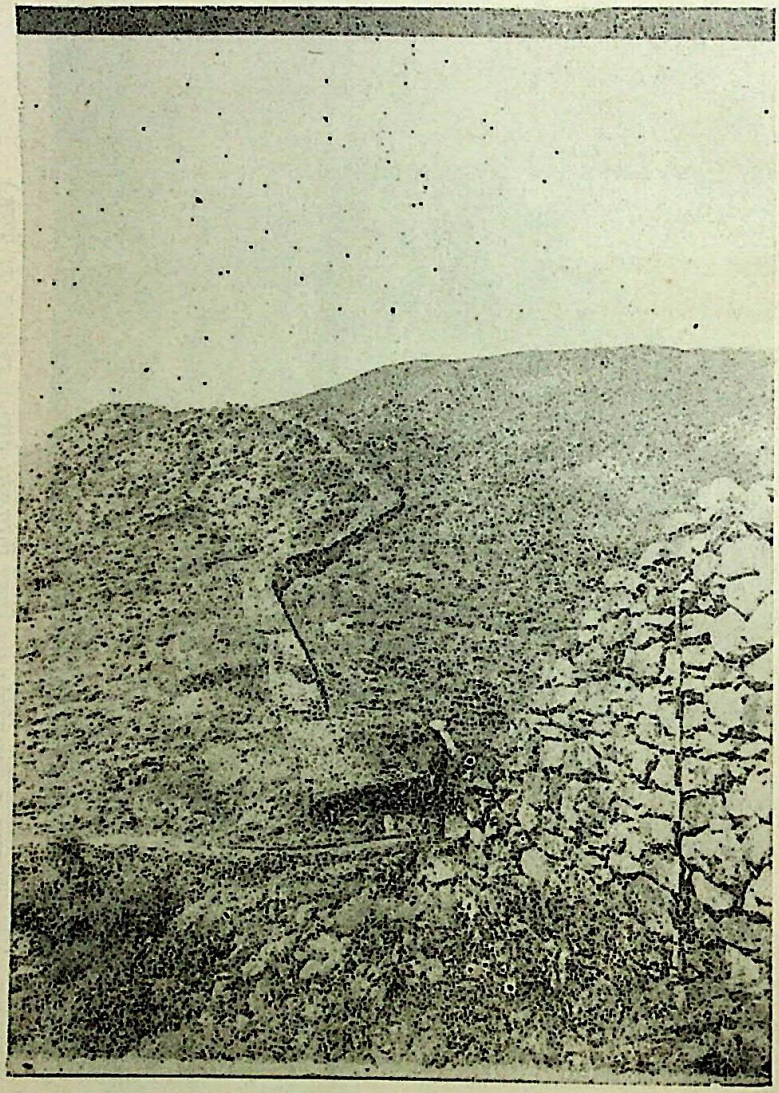

पृ० ३०५ राजगृह का वाणगंगा का दृश्य और
पहाड़ पर चट्टानों से सजी हुई प्राचीन कीलेवन्दी।

(Copyright Reserved Arch. Surv. India)
CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होना बहुत बाद की कहानी है, पर इसका आरम्भ ऋग्वेद के समय में ही देखा जा सकता है। एक मन्त्र में ब्राह्मण, राजन्, वैश्य और शूद्र की तुलनात्मक स्थिति का वर्णन है, और समाज में इनका स्थान इसी आधार पर निश्चित किया गया है।

वैदिक काल में साधारणतः राजतन्त्र की ही व्यवस्था थी, और कुछ उत्साही राजा जैसे मान्धाता चक्रवर्ती और सम्राट् बनने की आकांक्षा रखते थे, और अश्वमेध यज्ञ किये थे। पारस्परिक प्रतिद्वन्दिता का ही भीषण परिणाम महाभारत था जिसमें भारतवर्ष और पड़ोसी देश के सभी राजा एक या दूसरी ओर से डट कर लड़े, और भारत की राजनीतिक स्थिति कमजोर हो गई। देश छोटे २ कई राज्यों में बंट गया।

बौद्ध काल के आरम्भ में भारतवर्ष की यही दशा थी। सोलह प्रमुख राज्यों में भारत बंटा हुआ था। इस परिस्थिति का फायदा पड़ोसी पर्शियन् सम्राट् दरायुश ने लिया, और पंजाब और सिन्ध पर्शिया के साम्राज्य में मिल गये, वहाँ के छोटे २ प्रतिद्वन्दी राजाओं का आस्तित्व ही मिट गया। जब उत्तर-पश्चिम भारत में पर्शिया का सम्राट् दरायुश ने विदेशी प्रभाव के अन्तर्गत एकता लायी, तब उत्तर पूर्व भारत को मगध ने एकता के सूत्र में बांधा। मगध का राजा विम्बीसार ने अंग (भागलपुर-मुंगेर) को मगध में मिलाया, और काशी को दहेज में पाया। उसका पुत्र अजातशत्रु ने कोशल (काशी से पूर्व, सरयुग नदी तक), वैशाली का वृज्जीसंघ (मिथिला, उत्तर विहार) पर विजय पाई, और काशी को मगध में स्थायी रूप से मिला लिया। इसी वंश का राजा उदयन ने पाटलिपुत्र बसाया और मगध की राजधानी राजगृह से उठकर पाटलिपुत्र चली आई। मगध का राजा शिशुनाग और कालाशोक ने वत्स् (प्रयाग) और अवन्ति (मालवा) को अपने साम्राज्य में मिला लिया। महापद्मनन्द उग्रसेन ऐतिहासिक युग में प्रथम सम्राट् हुआ

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इसका साम्राज्य पश्चिम में पञ्जाब तक, पूर्व में कलिंग (दक्षिण उड़ीसा), उत्तर में हिमालय और दक्षिण में गोदावरी तट तक फैला हुआ था। महापद्मनन्द लगभग ३८८ ई० पू० गद्दी पर आया। इसके उत्तराधिकारी इतने योग्य नहीं थे। साम्राज्य की प्रजा में बेचैनी थी।

पर तब भी मगध राजा की अपार सेना और असीम प्रतिष्ठा की सूचना से ही विजयी सिकन्दर की सेना की हिम्मत टूट गई। विश्वविजय का स्वप्न देखने वाला सिकन्दर ३२७ ई० पू० पंजाब पहुंच गया था। यहां भारतीय राजाओं की पारस्परिक ईर्ष्या व अनबन का फायदा उठाकर सिकन्दर व्यास नदी तक बढ़ आया। महावीर पोरस हार चुका था, और सिकन्दर ने उसकी मित्रता प्राप्त कर ली थी। पर अपने सिपाहियों की बेतावी के कारण सिकन्दर लौट पड़ा (३२५ ई०), रास्ते में दक्षिण पञ्जाब और सिन्ध में उसे छोटी-बड़ी प्रजातन्त्र-शक्तियों का कठिन सामना करना पड़ा। मालव, क्षुद्रक ऐसे स्वतन्त्रताप्रेमी गण-राज्यों ने सिकन्दर के छक्के छुड़ा दिये।

सिकन्दर उत्तर-पश्चिम भारत की देशीय शक्तियों को कमजोर कर गया था। वीर चन्द्रगुप्त मौर्य ने यूनानियों के प्रति विरोधी प्रवृत्तियों का नेतृत्व किया। चाणक्य की मदद से नन्दराजा को मारकर मगध सम्राट् बन गया, और फिर विदेशी यवनों को मार भगाया। चन्द्रगुप्त मौर्य लगभग ३२२ ई० पू० मगध की गद्दी पर आया। समूचे उत्तर भारत को अपने अधीन कर लिया। कुछ तामल प्रमाणों के आधार पर डेक्कन और दक्षिण-भारत को भी कुछ विद्वान चन्द्रगुप्त के साम्राज्य के अन्तर्गत मानते हैं। पश्चिम में सौराष्ट्र उसके अधीन था, और सुदर्शन झील उसके समय में ही बांधा गया था। सीरिया का राजा सिकन्दर का सेनापति सेल्यूकस् ने ३०५ ई० पू० के लगभग यूनानी विजित-प्रदेशों पर फिर से अधिकार करना चाहा पर उसे चन्द्रगुप्त से हारना पड़ा। पूरा अफगानिस्तान और बेलूचिस्तान मौर्य साम्राज्य का अंग बन गया। यूनानी दूत

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेगास्थनीज चन्द्रगुप्त के दरबार में था, और उसने इस समय का विवरण लिखा है, जिसके कुछ उद्धरण अभी भी उपलब्ध हैं। चाणक्य या कौटिल्य चन्द्रगुप्त के महामंत्री थे और कौटिल्यशास्त्र से हमें मौर्य शासन-पद्धति के विषय में काफी जानकारी होती है।

सम्राट् चन्द्रगुप्त का पोता अशोक प्रियदर्शी (२७३-२३८ ई० पू०) जगत् प्रसिद्ध है। कलिंग-विजय के उपरान्त अशोक ने युद्धनीति को तिलाञ्जली दे दिया, और धर्म-प्रचार में अपना पूरा समय दिया। अशोक के शिलालेख अभी भी उसकी महत्ता, आदर्श, उच्चधार्मिक उपदेश के गवाह हैं। विश्व के इतिहास में विजय प्राप्तकर राजप्रसार की नीति छोड़कर अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति का प्रचार करनेवाला अशोक के सिवा और कोई नहीं है। इसके समय में बौद्धधर्म विश्वधर्म बन गया, और शांति, सदाचार, और लोकहित के संदेश अशोक ने एशिया, पूर्वीय योरप और उत्तरी अफ्रिका में फैलाया। अन्तर्राष्ट्रीय शांति के लिए इतना शक्तिशाली और निष्कपट राज-दूत कोई दूसरा अभीतक नहीं मिला है।

सम्राट् अशोक की मृत्यु के बाद मौर्य साम्राज्य का पतन बहुत शीघ्र हो गया। ब्राह्मण सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने १८७ ई० पू० मौर्यवंश का अन्त कर दिया, और शुंगवंश की स्थापना की। इसीके समय में यवन (डेमेट्रिअस) दत्तमित्र और मेनेन्डर का आक्रमण हुआ। मेनेन्डर तो शायद पाटलिपुत्र तक पहुँच गया था। भाग्यवश गृहयुद्ध के कारण यूनानी लौट पड़े, पर इससे मगध राज्य का पुनरुत्थान न हुआ। दक्षिण भारत (Deccan) के आन्ध्रों ने शुंगों की रही सही शक्ति का नाशकर दिया।

भारत की राजनीतिक दशा बिगड़ती गई। बैकट्रिया के यूनानियों ने पंजाब पर अपना पूरा अधिकार कर लिया था। सिन्ध भी उनके अधीन ही था। पर मध्य एशिया से इसी समय (ईसा से दूसरी शताब्दी पूर्व में) हूणों और यूएची (Yue-chi) का देशान्तर-भ्रमण शुरू हुआ, और भारत इस आन्दोलन से बच न सका। यूनानियों और पार्थियों की ताकत कुशानों

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने खत्म कर दी। कुशान यू-ए-ची जाति की एक शाखा थे। केडफिशिश प्रथम और द्वितीय ने पूर्वी अफगानिस्तान और पंजाब और काश्मीर पर अपना अधिकार जमा लिया था। इसी वंश का सबसे प्रसिद्ध राजा कनिष्क हुआ। यह ७८ ई० में गद्दी पर आया, और इसीने शक-सम्वत् चलाया। पुरुष्पुर (पेशावर के समीप) इसकी राजधानी थी। इसका राज्य पूरब में बनारस या पाटलिपुत्र तक फैला था। सिन्ध भी इसके अधीन था। यह बौद्धधर्म का पोषक था, इसने बहुत से स्तूप और चैत्य बनवाए; अफगानिस्तान और मध्यएशिया और चीन में बौद्धधर्म फैलाया। विदेशी होते हुये भी भारतीय धर्म और साहित्य का इतना बड़ा पोषक कनिष्क के समान बिरले ही गुजरे हैं।

कुशान-साम्राज्य विदेशी था। इस समय भारत में विदेशी प्रभाव खासकर रोमन या यूनानी प्रभाव भारत की कला और संस्कृति पर पड़ रहा था। राजनीतिक दासता तो प्रत्यक्ष थी। कनिष्क के बाद कुशान राजा इतने प्रिय नहीं रहे, और स्वतन्त्रता प्रेमी आर्जुनायन, यौधेय, कुनिन्द प्रभृति गणराज्यों ने पंजाब और मथुरा क्षेत्र से कुशान राज्य को उखाड़ फेंका। उत्तर भारत में कई नई शक्तियां उठ खड़ी हुईं। भारत के दिन गुप्तवंश के राजकाल में फिर लौटे। चन्द्रगुप्त प्रथम ३१९ ई० में राजगद्दी पर आया। पाटलिपुत्र गुप्त राजाओं की राजधानी थी। चन्द्रगुप्त के अभ्युदय में लिच्छवियों का बड़ा हाथ था। लिच्छवियों की राजकुमारी कुमारदेवी से उसका ब्याह हुआ था। चन्द्रगुप्त-कुमारदेवी के पुत्र समुद्रगुप्त बहुत बड़ा विजेता निकले। उन्होंने आर्यावर्त के राजाओं को हराकर उनके राज्य को अपने राज्य में मिला लिया। डेक्कन और पूर्वतटवर्ती राजाओं को भी हराया। पर दक्षिण दिग्विजय के बाद उन्होंने हारे हुये राजाओं को उनका राज्य वापस कर दिया, और उनसे अपनी अधीनता स्वीकार करा कर ही सन्तुष्ट हो गये। देशी और विदेशी पड़ोसी राज्य समुद्रगुप्त से मैत्री के लिए इच्छुक हो गये। सम्राट्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समुद्रगुप्त ने अश्वमेध यज्ञ किया। ये पराक्रमी विजेता ही नहीं वरन् विद्वान, कवि और संगीतप्रेमी थे। इनके पुत्र चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने शकों को मालवा और गुजरात से भगाकर भारत को विदेशियों के चंगुल से छुड़ाया। दान और विद्याप्रेम में इनका सानी विरले ही राजा कर सकते हैं। महाकवि कालीदास इनके दरबार के नवरत्नों में थे। विक्रमादित्य के बाद कुमारगुप्त-प्रथम राजा हुये। इनके अन्तिम दिनों में हूणों का आक्रमण हुआ। युवराज स्कन्दगुप्त ने राजवंश को बचा लिया, और हूणों को बुरी तरह हराया। हूणों ने, जिन्होंने पश्चिम में रोमन साम्राज्य को जर्जर कर नष्ट कर दिया, भारत में वीर स्कन्दगुप्त के हाथों गहरी हार खाई। स्कन्दगुप्त के बाद अन्तिम प्रसिद्ध गुप्त सम्राट् बुधगप्त हुआ जिसका राज्य बंगाल से लेकर मालवा तक विस्तृत था। बुधगुप्त के बाद (४९५ ई०) गुप्त साम्राज्य का ह्रास तेजी से होने लगा। हूणों के नेता तोरमाण और मिहिरकुल ने पञ्जाब, मालवा, मध्यभारत प्रभृति प्रदेशों पर अपना अधिकार कर लिया। गुप्तराजवंश में प्रतिद्वन्द्वी राजकुमारों में भी अनबन शुरू हो गई। कोई योग्य और जनप्रिय सम्राट् नहीं निकले। हूणों की शक्ति नरसिंहगुप्त बालादित्य और मालवा का जननेता यशोधर्मन-बिष्णुवर्धन ने (५३२ ई० पू०) नष्ट कर दिया। पर गुप्त साम्राज्य का अन्त न टल सका।

उत्तर भारत में जो एकता स्थापित थी, वह खत्म हो गई। देश में कई शक्तियां होड़ में शामिल हो गईं। सभी अपना प्रभुत्व समूचे उत्तर भारत पर स्थापित करना चाहते थे। मालवा में गुप्त, पश्चिम बंगाल (गौड़) में शशांक, मौखरी कन्नौज में और वर्धन थानेश्वर में, अपनी शक्ति बढ़ा रहे थे। इनमें टक्कर होना जरूरी थी। मालवराज देवगुप्त ने मौखरी राजा ग्रहवर्मन को मार डाला। देवगुप्त से बदला लेने के लिए ग्रहवर्मन का साला राज्यवर्धन थानेश्वर से चल पड़ा। देवगुप्त तो हार गया, पर उसका मित्र शशांक ने राज्यवर्धन को सम्भवतः कपट नीति

CC-0 In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना कर मार डाला (६०६ ई०)। इसी नाजुक समय पर थानेश्वर के गद्दी पर राज्यवर्धन का छोटा भाई हर्षवर्द्धन आया।

सम्राट् हर्षवर्द्धन एक महान् व्यक्ति थे। इस संकटकाल में इनने अद्भुत साहस और राजनीतिज्ञता दिखाई और अन्त में उत्तर भारत के बहुत बड़ा भाग पर अपना राज्य स्थापित कर लिया; पूर्वी पञ्जाब, यू० पी० मगध, बंगाल और उड़ीसा इनके राज्य के अन्तर्गत थे। सिन्ध के राजा पर भी इनने विजय प्राप्त की थी। डेक्कन की ओर बढ़ने में चालुक्य राजा पुलेकेशी द्वितीय ने इन्हें सफलतापूर्वक रोक लिया था। तब भी उत्तर भारत में अशान्ति व अराजकता के स्थान में हर्षवर्द्धन ने एक राजनीतिक सत्ता और शासन स्थापित कर लिया था। इस विस्तृत साम्राज्य में शान्तिपूर्ण शासन के कारण कला और विद्या की आशातीत प्रगति हुई। प्रसिद्ध चीनी विद्वान युआन-च्वांग इसी समय भारत आया था। उसने हर्षवर्द्धन के शासन की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। नालन्दा विश्वविद्यालय जगत् विख्यात था। दूर २ से यहां लोग विद्या पढ़ने आते थे। हर्षवर्द्धन के समय में धार्मिक सहिष्णुता की नीति बरती जाती थी। सम्राट् अपने अन्तिम काल में बौद्ध हो गये थे पर तब भी शिव और आदित्य की पूजा करते थे, और ब्राह्मणों और जैनियों को दान देते थे। शासन कार्य सुचारु रूप से चलता था, और वे स्वयं कड़ी मेहनत करते थे।

हर्षवर्द्धन के मरने के बाद (६४६ ई०) देश में फिर गड़बड़ी मच गई। करीब १०० वर्ष के बाद बंगाल-विहार में पालों ने, और कन्नौज में गुर्जर-प्रतीहारों ने देश में राजनीतिक एकता लाने का प्रयास किया। पर ये प्रयत्न टिकाऊ नहीं सिद्ध हुये, और १००० ई० से भारतवर्ष पर तुर्कों का आक्रमण होने लगा। प्राचीन हिन्दू भारत का पतन शुरू हो गया, और करीब १२०० ई० तक पूरा उत्तर-भारत मुसलमानों के आधीन हो गया।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर विन्ध्यपर्वत के दक्षिण पल्लव और चालुक्य उत्तर-भारत के इतिहास से उदासीन होकर अपना काम करते रहे। इस युग में दक्षिण में प्रशंसनीय मंदिर बने, पहाड़ों के चट्टान काट कर सुन्दर मंदिर बनाये गये। भारत की वास्तुविद्या के इतिहास में दक्षिण भारत ने काफी योगदान दिया है।

भारतीय संस्कृति के विभिन्न अंगों का विश्लेषण उपरोक्त ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रख कर ठीक २ समझा जा सकता है। जब भारत में केन्द्रीयकरण की शक्तियों का विकेन्द्रीय शक्तियों पर विजय हुआ, अर्थात् जब जब राजनीतिक एकता और शासन देश के बड़े भाग पर स्थापित हुआ तभी देश में कला और संस्कृति की ज्योति खूब फैली और चमकी। आज जब सारा भारत (पाकिस्तान छोड़कर) एक है तब सभ्यता की उन्नति की आशा स्वाभाविक है। पर हमारी सभ्यता विदेशियों की नकल न होकर भारतीय प्रतिभा व व्यक्तित्व के आधार पर हो, इसलिए प्राचीन हिन्द-सभ्यता की रूपरेखा जानना आवश्यक है।

———

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय संस्कृति की रूपरेखा

संसार के इतिहास में किसी प्राचीन संस्कृति का इतना दृढ़ और व्यापक रूप वर्त्तमानकाल में नहीं मिलता जितना कि भारतीय संस्कृति का। इसका विशेष कारण है कि भारतीय कला, धर्म और भाषा—संस्कृति के विशिष्ट अंग—का ध्येय और विषय तत्कालीन नहीं वरन् शाश्वत और अध्यात्मिक रहे हैं। हमारे कलाकार अपनी मूर्तियों में वाह्य सौन्दर्य से अधिक आन्तरिक व अध्यात्मिक भावनाओं की अभिव्यक्ति पर अधिक ध्यान देते थे। मर्मज्ञ साहित्यिक अपनी पुस्तकों में मानव-कल्याण और विश्व-सौहार्द का राग अलापते थे। महान् दार्शनिक धर्म और दर्शन का सूक्ष्म विवेचना करते थे और वैयक्तिक व स्थानीय वाद-विवाद के दलदल से दूर, मानव मात्र का क्या लक्ष्य होना चाहिये, और परिस्थिति के अनुकूल उनका क्या धर्म व नियम होना चाहिये, इन अमर-सिद्धान्तों का ही प्रतिपादन किया करते थे। इस कारण प्राचीन भारतीय सभ्यता का प्रभाव भारतीय-आत्मा पर इतना दृढ़ और परिष्कृत रूप से पड़ा है कि कितने संकट और व्यापक उलट-फेर के बावजूद भारतीय प्रतिभा और परम्परा की नींव पर हमारी सभ्यता अभी भी टिकी है। भारतीय संस्कृति का अवतक एक जीवित-शक्ति के रूप में स्थित रहने का एक कारण यह भी है कि इसकी प्रगति कभी रूद्ध नहीं हुई। अपने खास रूप को विना विकृत किये इसने अपने विशाल और उदार हृदय में अपने सम्पर्क में आई हुई सभ्यताओं को, भावनाओं को और विदेशी गुणों और जातियों को स्थान दिया। इस तरह भारतीय सभ्यता एक लीक की फकीर न बनकर बराबर अन्य सभ्यताओं से शक्ति लेती रही और इस तरह पुराने और नये, देशी और विदेशी गुणों का सामञ्जस्य होता रहा। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय सभ्यता दकियानुसी न रहकर प्रगतिशील रही, और उसका प्रभाव राष्ट्रीय

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

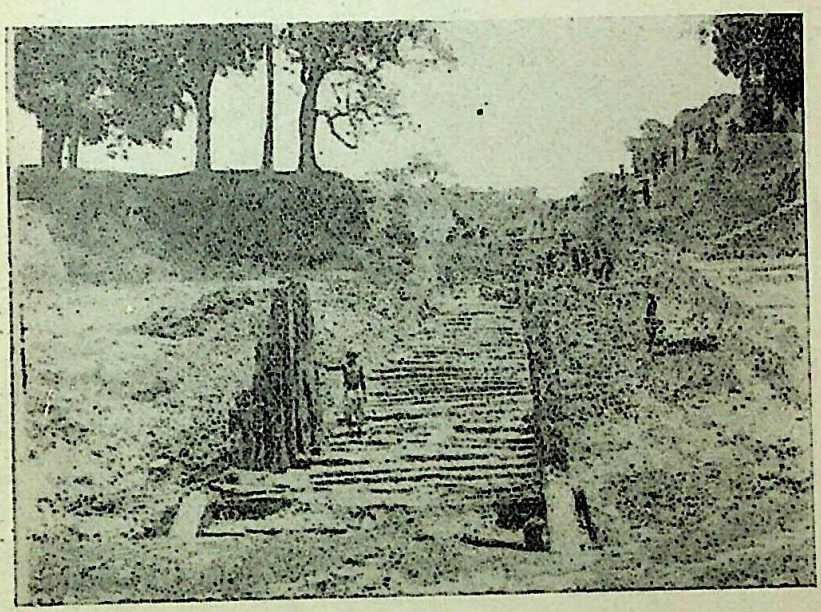

पृ० ३०७ बुलन्दीबाग (पाटलीपुत्र) का मौर्यकालीन लकड़ी के किले की भीत

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.
(Copyright Reserved. Arch. Surv. India)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चि० ३२

पृ० ३१७ नालन्दा विश्वविद्यालय के भग्नावशेष
(Copyright Reserved. Arch. Surv. India)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चि० ३३

नालन्दा का एक स्तूप

पृ० ३१८

(Copyright Reserved. Arch. Surv. India)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चि० ३४

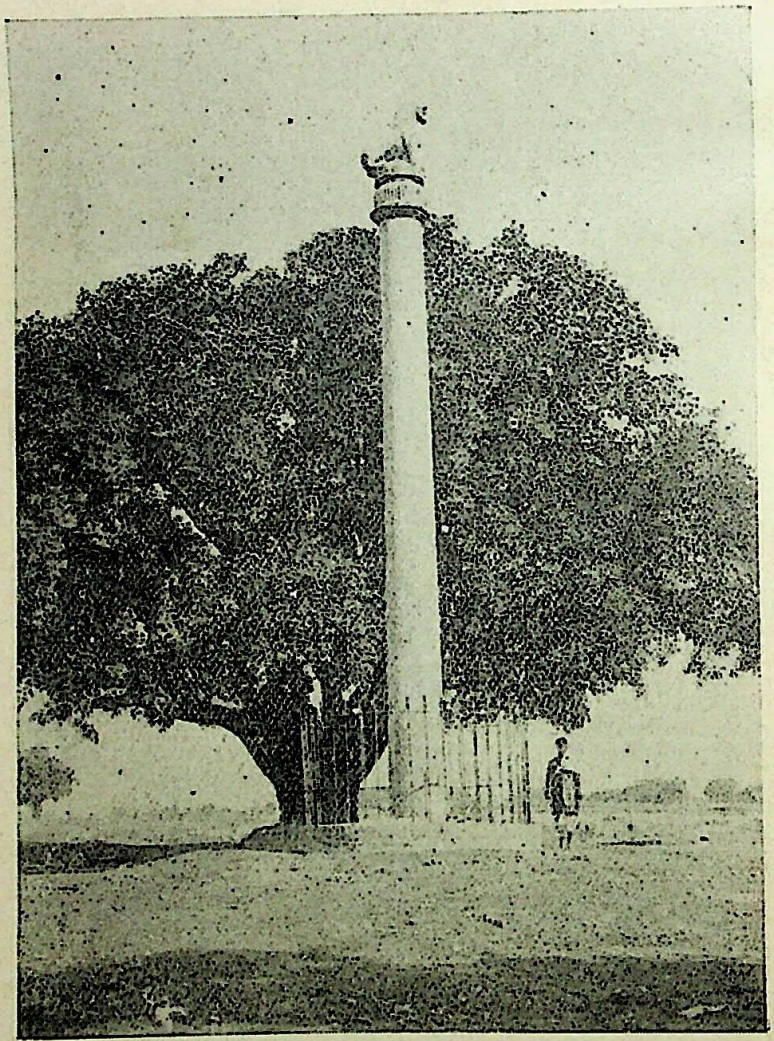

(पृ० ३३३) अशोक के समय का सिंह-शिरायुक्त शिला-स्तम्भ
(लौरिया-नन्दनगढ़ : चम्पारन)

(Copyright Reserved. Arch. Surv. India.)
CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न रहकर अन्तर्राष्ट्रीय रहा। भारतीय सभ्यता विश्व की प्रगति के साथ २ चलती रही, और इसीलिए अभीतक जीवित भी है, और एक प्रभावशाली शक्ति है, जिसका समुचित उपयोग कर भारत फिर संसार में अपना लुप्त स्थान प्राप्त कर सकता है।

भाषा और साहित्य ।

हरप्पाकालीन भाषा का ज्ञान हमें नहीं है। भारतीय भाषा का सबसे प्राचीन रूप ऋग्वैदिक भाषा है। भाषाशास्त्र के विद्वान इस भाषा को अत्यन्त परिष्कृत, ओजस्वी, ललित और विकसित समझते हैं। यह भी ध्यान रखना चाहिये कि आर्यों की सबसे प्राचीन भाषा का उदाहरण यही है। वैदिक और उत्तरवैदिक और हिन्दूकालीन साहित्य के अध्ययन से भाषा का विकास का पूरा पता चलता है। भाषा बराबर विकसित होती गई, और अन्त में पाण्डित्यपूर्ण संस्कृत (Classical Sanskrit) के रूप में अवतीर्ण हो गई। प्राकृत भाषाओं (Vernaculars) का भी, जैसे पाली और प्राकृत का, ऐतिहासिककाल में पूर्ण विकास हुआ। बौद्ध धर्म-ग्रन्थ व जातक, और मौर्यकालीन शिलालेख इसके प्रमाण हैं। भारत में लिखने की कला का ज्ञान बहुत पहले हो गया था। हरप्पाकालीन लिपि पढ़ी नहीं गई है, पर यह निर्विवाद है कि मुद्राओं पर के चिह्न लिपि-सम्बन्धित हैं।

भारत क्या समूचे आर्य-संसार का सबसे प्राचीन साहित्य वैदिक साहित्य ही है। वेद चार ह, ऋग्, यर्जु, साम, और अथर्व। इनमें देवताओं के प्रति प्रार्थना है, देवताओं की प्रशंसा है, बुरेग्रहों को भगाने के मन्त्र हैं, और यज्ञ इत्यादि कर्मों की विधियां हैं। वैदिक साहित्य काफी ऊँचे दर्जे का है। ऊषा का वर्णन बड़े ही ललित और कवित्तमय ढंग से किया गया है। इन्द्र की प्रशंसा वीरगाथा के प्रथम उदाहरण हैं। कुछ प्रेमसंगीत भी हैं। सभी मन्त्र पवित्र भावों से ओतप्रोत हैं और कविता के सभी गुणों से समृद्ध हैं। दार्शनिक भावों का

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी ऋग्वेद में समावेश है। माया और रूप का उल्लेख कई जगह आया है।

वेदों के बाद ब्राह्मण-युग आता है। ब्राह्मण-साहित्य का विषय यज्ञों और अन्य पूजाओं की विस्तृत विधियां है। यहां न दर्शन के गूढ़तत्व और न उच्च आदर्श पाये जाते हैं। कभी २ वीरों की गाथाओं का उल्लेख है जिनका ऐतिहासिक महत्व हो सकता है। यज्ञों के रहस्य व लक्षण का विवेचन आरण्यक-साहित्य में मिलता है। आरण्यक ब्राह्मण-साहित्य के अंग हैं, और अधिकतर जंगल में स्थित आश्रमों में लिखे गये होंगे। ब्राह्मण-साहित्य का सबसे प्रशंसनीय अंग है उपनिषद्। इनमें केनोपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद् व कठोपनिषद् प्रमुख हैं। ये उपनिषद् उच्च भाव व आदर्श से प्रेरित हैं और वेदान्त के सिद्धान्तों के मूल है। यज्ञों से अधिक सदाचार व कर्म पर जोर देते हैं। दार्शनिक तत्वों पर—ब्रह्म और आत्मा के सम्बन्ध पर ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों वादविवाद करते थे। राजा जनक और महर्षि याज्ञवल्क्य का उत्तरप्रत्युत्तर इसके उदाहरण हैं। संसार के सभी साहित्यों में, जो मूलसिद्धान्तों की विवेचना करते हैं और मानव के बौद्धिक विकास के प्रमाण हैं, उपनिषद्-साहित्य का सर्वोच्च स्थान है।

ब्राह्मण्-युग के बाद बौद्धयुग का आरम्भ होता है। इस समय देश छोटे २ स्वतन्त्र राज्यों या गणतन्त्रों में बँटा था। पर साहित्यिक विकास होता रहा। भगवान बुद्ध के उपदेश लोकभाषा में होते थे और उनका संकलन पहले पाली भाषा में हुआ, और ये पाली साहित्य के सबसे प्रमुख भाग हैं। प्राचीन बौद्ध साहित्य जिसमें बुद्ध के उपदेश, बौद्ध धर्म के नियम इत्यादि हैं सभी पालीभाषा में हैं, जौर इस युग में पाली साहित्य की खूब वृद्धि हुई। पर संस्कृत-साहित्य की गति भी अवरुद्ध नहीं हुई। दो महाकाव्य रामायण और महाभारत इसी युग की कृति है। वीरों की गाथाएं खूब लिखी गईं। वाल्मीकि और व्यास महाकवि हैं। वाल्मीकि जी रामायण के लेखक हैं, उन्हें आदि कवि कहा

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है। पुरुषोत्तम राम इस काव्य के नेता हैं और उनकी कहानी बड़े अच्छे ढंग से कही गई है। व्यास महाभारत के लेखक हैं। महाभारत का मुख्य विषय है कौरव पाण्डव का महायुद्ध, पर इसमें पुराने उपाख्यानों का भी वर्णन है।

मौर्य-शक युग में साहित्य के विभिन्न अंगों का विकास हुआ। राजनीति विज्ञान में कौटिल्य लिखित कौटिल्यअर्थशास्त्र का स्थान सर्वोपरि है। पातञ्जलि का महाभाष्य पाणिनि के व्याकरण की टीका ही न रहकर संस्कृत व्याकरण के अध्ययन की मूलपुस्तक है। रूद्रदामन के समय का गिरनार शिलालेख की साहित्यक शैली प्रशंनीय है। इसी युग में बौद्ध धर्मग्रन्थ पाली में लिपिबद्ध हुये। अश्वघोष का लिखा बुद्धचरित्र इसी काल का है।

गुप्तकाल तो संस्कृत साहित्य के लिए स्वर्णयुग ही समझा जाता है। सम्राट् समुद्रगुप्त स्वयं ही उच्चकोटि क कवि थे। समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के दरबार में विद्वानों का बहुत आदर होता था, और दरवार के प्रोत्साहन से साहित्य के विभिन्न शाखाओं का अभूतपूर्व विकास हुआ। हरिसेन (इलाहाबाद प्रशस्ति का लेखक) और उसका पुत्र वीरसेन, कालिदास, दीग्नाग, विशाखदत्त इत्यादि महान् विद्वान इसी युग के हैं। नाटकों में विशाखदत्त लिखित मुद्राराक्षस, कालिदास लिखित शकुन्तला उल्लेखनीय है। शकुन्तला का संसार के महान् नाटकों में ऊंचा स्थान है। काव्यसाहित्य में कालिदास का रघुवंश और प्रेमकाव्य में मेघदूत का स्थान बहुत ऊंचा है। बसुबन्धु और दीग्नाग ने बौद्ध दर्शन पर कई पुस्तकें लिखीं, जिसमें वसुबन्धु लिखित अभिधर्म-कोश सबसे प्रसिद्ध है। ज्योतिष में वराहमिहिर की बृहत्-संहिता का स्थान हमेशा सुरक्षित रहेगा।

गुप्त युग के बाद हर्ष का समय आता है। इस समय भी महाकवि बाण ने हर्षचरित और कदाम्बरी लिखकर संस्कृत के भण्डार की वृद्धि की। वाक्पतिराज ने प्राकृतभाषा में 'गौडवह' लिखा, और उत्तर-

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामचरित के लेखक भवभूति उनके समकालीन थे और यशोवर्मन के दरबारी कवि थे। ऐतिहासिक साहित्य में हर्षचरित, रामपालचरित, विक्रमांक चरित्र के अलावे काश्मीरी पंडित कल्हण लिखित राजतरंगिनी उल्लेखनीय है।

अतः प्राचीन भारतीय साहित्य का संक्षेप विवरण पढ़कर यह तो स्पष्ट हो जायगा कि संस्कृत साहित्य का भण्डार पूर्ण है। गद्य, पद्य, नाटक, ज्योतिष, दर्शन, धर्म, विज्ञान, इतिहास, जीवन-चरित्र, महाकाव्य, राजनीति शास्त्र, प्रभृति साहित्य के किसी भी अंग को लें, संस्कृत साहित्य में इन विषयों पर प्रामाणिक ढ़ंग से सुन्दर पुस्तकें मिल जांयगीं। संस्कृत साहित्य के इतना धनी साहित्य कोई नहीं है और इसके सभी अंग पूर्ण विकसित हैं। जीवन के प्रत्येक पहलू पर संस्कृत में पूरा लिखा गया है। किसी भी संस्कृति की आत्मा उसका साहित्य है। और भारतीय संस्कृति कितनी उन्नत और विकसित है इसका पता हमें संस्कृत साहित्य के अक्षय भण्डार से मिलता है। आज भी हम अपने इस प्राचीन साहित्य से हर दिशा में प्रेरणा और उत्साह पा सकते हैं। संसार के सभी विद्वान मुक्तकण्ठ से संस्कृत साहित्य की प्रशंसा करते हैं, और विश्वसभ्यता को संस्कृत का चिर ऋणी मानते हैं। हमारी संस्कृति की गरिमा संस्कृत-साहित्य की अमरता और सम्पन्नता पर आश्रित है।

शिक्षा और विज्ञान।

शिक्षा के क्षेत्र में भारत ने अतुलनीय प्रगति की। वैदिकयुग में शिक्षा का बहुत महत्व था। वाक्पटुता और विद्वत्ता के बल पर ही सभा और समितियों में सदस्य अपना प्रभाव जमा सकते थे। उपनयन संस्कार के बाद ब्रह्मचारी विद्यार्थी गुरुकुल पढ़ने जाते थे। इसे नया जन्म समझा जाता था, और गुरु पितातुल्य थे। प्राचीन भारत में विद्यार्थी गुरु के आश्रम में जाकर पढ़ते थे, और निःशुल्क शिक्षा दी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाती थी। आश्रम के सभी काम, गुरुपरिवार की सेवा और भिक्षा मांगना विद्यार्थियों का काम था। विद्यार्थियों को सदाचार, निस्वार्थ सेवा और नैतिक आदर्श का भाव हृदयंगम कराया जाता था। सिर्फ पाठ रटना ही नहीं वरन् व्यवहारिक जीवन में सफलता पाने की और उच्च सामाजिक और नैतिक सिद्धांतों का पालन करने की क्षमता ही शिक्षा का मूल ध्येय था। गुरु की इज्जत बहुत थी, और आश्रम में पहुँच कर राजा भी राजसी ठाठ छोड़ देता था। राजा दुष्यन्त महर्षि कण्व के आश्रम में पहुँचने पर रथ छोड़ पैदल चलने लगे थे। महर्षि वशिष्ठ की प्रतिष्ठा मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र कितना करते थे, यह सर्वविदित है। इन आश्रमों में ही उच्च से उच्च शिक्षा दी जाती थी। उपनिषद् ऐसे दार्शनिक ग्रन्थ, ज्योतिष, विज्ञान, चिकित्साशास्त्र, व्याकरण, इतिहास और महाकाव्य यहीं लिखे गये। पहले तो शिक्षा का माध्यम कण्ठस्थ करना ही था, पर पीछे लिखित पुस्तकों का अध्ययन होने लगा।

बौद्धयुग में हजारों मठों और विहारों की स्थापना हुई, और यहां बौद्धदर्शन और धर्म की शिक्षा दी जाने लगी। धीरे २ अन्य विषयों की भी पढ़ाई होने लगी। इस तरह बौद्धविहार शिक्षा-प्रसार के माध्यम हो गये। गुप्तकाल में नालन्दा विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। संसार में यह पहला शिक्षण और निवास-सम्बन्धी (Teaching and Residential) विश्वविद्यालय था। प्रत्येक विद्यार्थी को यहां निवास करना अनिवार्य था। चीनी यात्री युआन-च्वांग भारत में हर्ष के समय में आया था। उसने इस विश्वविद्यालय का सन्तोषप्रद विवरण दिया है। यहां १०००० विद्यार्थी निवास करते थे और १००० शिक्षक थे। इस विश्वविद्यालय में भर्ती होने के लिए परीक्षा देनी पड़ती थी। सैकड़े बीस ही पास करते थे। तब भी १०००० विद्यार्थी थे, इससे इस विद्यालय की महत्ता और लोकप्रियता सिद्ध होती है। करीब १०० श्लोकवार रोज दिये जाते थे।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यार्थियों व शिक्षकों के रहने का सुन्दर प्रबन्ध था। गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ थी जिनमें सभी सुविधाएं प्राप्त थीं। खाने-पीने के लिए मक्खन, घी, दूध, बढ़ियां चावल और गेहूँ नालन्दा के समीप के गांवों से आ जाते थे। ये गांव नालन्दा को दान दिये गये थे। वातावरण शान्त और प्राकृतिक सौंदर्य—तडाग व घने वृक्षों से भरा-पूरा था।

युयान-च्वांग ने स्वयं यहां कई वर्षों तक रह कर अध्ययन किया; कितनी किताबों की नकल की, और बहुत सी पुस्तकों की नकल लेकर चीन वापस गया। उसने नालन्दा के कुलपति शीलभद्र की विद्वत्ता की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इस विश्वविद्यालय में बौद्धदर्शन व साहित्य की ही शिक्षा नहीं वरन् वेद, वेदान्त, चिकित्साशास्त्र, तर्कशास्त्र प्रभृति विद्या की अन्य शाखाओं की शिक्षा का भी प्रबन्ध था। नालन्दा की कांसे की मूर्ति बनाने की कला स्तुत्य है। इस विश्वविद्यालय की विश्व-बन्धुत्व की भावना, और धर्म व विचार की उदारता श्लाघ्य है। तभी तो जापान, कोरिया, मध्यएशिया के विद्वान यहां पढ़ने आते थे। नालन्दा के पंडित पद्मनाभ, कुमारजीव, संघमित्र इत्यादि ने भारत की ज्योति, भारत का शांतिसंदेश चीन, तिब्बत इत्यादि देशों में फैलाया। भारत का सांस्कृतिक व धार्मिक प्रभाव दूर-दूर फैला। गुप्त सम्राटों ने इस विहार की स्थापना की थी। सम्राट् हर्षवर्धन ने भी इस पुण्य कर्म में हाथ बँटाया, और पालकाल में यही स्थिति बनी रही। यवद्वीप (जावा) का सम्राट् बलपुत्रदेव ने देवपाल की अनुमति से एक मंदिर नालन्दा में बनवाया था। नालन्दा का नाश मुसलमानों के आक्रमण के सिलसिले में हो गया। उसके भग्नावशेष अभी भी नालन्दा (बिहार-शरीफ से ६ मील दक्षिण) गांव में पाये जाते हैं। भारत सरकार के पुरातत्वविभाग ने इस स्थान की खुदाई भी की है और भव्य इमारतों का पता चलाया है, सैकड़ों कांसे व पत्थर की मूर्तियां मिली है, काफी मुहरें व ताम्रपत्र भी मिले हैं। नालन्दा विहार का नहीं वरन भारत का

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौरव है और विश्वबन्धुत्व के प्रचार में सदा प्रेरक रहेगा। हाल ही में राष्ट्रपति श्री राजेन्द्र प्रसाद ने नालन्दा में नव-नालन्द महाविद्यालय की स्थापना की है।

पालयुग में भागलपुर जिला-स्थित पाथरघाटा के समीप विक्रमशिला विश्वविद्यालय की स्थापना आठवीं या नवमीं शताब्दी में धर्मपाल या देवपाल के समय में हुई थी। यह भी शिक्षण विश्वविद्यालय था, और हजारों विद्यार्थी यहां शिक्षा प्राप्त करने आते थे, इनमें बहुत से विदेशी भी थे। विक्रमशिला के महान् पंडित 'अतिश' ने तिब्बत में जाकर भारतीय सभ्यता व धर्म का प्रचार किया, और वहीं वे मरे भी। पालयुग में वर्त्तमान विहार शरीफ में ओदन्तपुर महाविहार (विश्व-विद्यालय स्थापित था। इसी विश्वविद्यालय के आधार पर तिब्बत में महाविहारों की स्थापना हुई। यहाँ के विद्वानों ने तिब्बत प्रभृति देशों में विद्या और भारतीय संस्कृति का प्रचार किया। इस क्षेत्र में इतने विहार थे और इतनी बड़ी संख्या में बौद्ध भिक्षु व शिक्षार्थी थे इस स्थान का नाम ही विहार पड़गया। बख्तियार खिलजी ने इस विहार को नेस्तनाबूद कर दिया और सैकड़ों अहिंसा के पुजारी और शान्ति के प्रचारक बौद्ध-भिक्षु तलवार के घाट उतारे गये। पालयुग में बंगाल में भी करीब दर्जनों विश्वविद्यालय (महा विहार) थे, जिनमें जगद्वल, महास्थान इत्यादि प्रमुख हैं। पूर्व-एशिया के प्रायद्वीपों में से इन विहारों का घनिष्ट सम्बन्ध था।

शिक्षा के क्षेत्र में इन विश्वविद्यालयों ने भारत और विश्व को चिरऋणी बना लिया है।

प्राचीन काल में भारतवासी सिर्फ आत्मा और परमात्मा की खोज में ही खोए नहीं रहते थे, बल्कि विज्ञान के विभिन्न विषयों पर बराबर अनुसन्धान करते रहे, और गणित, ज्योतिष, ज्यॉमिति, चिकित्साशास्त्र और रसायनशास्त्र के भाण्डार में पर्याप्त योगदान दिया। ऋग्वेद में भी वैद्यों का उल्लेख आया है, यक्ष्मा इत्यादि रोग का पता था। रोग निदान के लिए दवाइयों के साथ साथ जप-तप, जन्तर-मन्तर पर

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Mumbai. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी विश्वास किया जाता था। कुछ मन्त्रों से यह पता चलता है कि शल्यशास्त्र (Surgery) का भी कुछ ज्ञान था। कटे हुए पैर के बदले लोहे का पैर बना कर काम चलाया जाता था। हड्डी टूटने या इसमें मोच आने पर जोड़ने की कोशिश की जाती थी। औषधियों को इतना महत्व दिया जाता था कि एक पूरा मन्त्र (Hymn) औषधियों की प्रशंसा व प्रार्थना ही है। अशोक ने औषधियों या जड़ी-बूटी की खेती पर भारत और दूरस्थित मित्र राज्यों में ध्यान दिया था। बूढ़े को जवान बनाने का—(कायाकल्प) उपाय मालूम होगा तभी तो च्यवन ऋषि फिर युवा हो सके थे। पानी में डूबे आदमी का इलाज ऋग्वेद के समय में भी होता था। आंख का इलाज में भारतीयों ने काफी उन्नति की थी। आंख की नष्ट रोशनी को फिर से लौटाने की कोशिश की जाती थी। बहते खून को रोकने के लिए बालू से भरे थैले का व्यवहार किया जाता था। शशल्यशास्त्र की उन्नति खूब हुई, और बड़े २ जख्मों को चीरा जाने लगा। आंख का ऑपरेशन भी होता था। टूटी हड्डी काट कर दूसरी हड्डी लगायी जाती थी। चिकित्साशास्त्र में चरक और शुश्रुत के नाम अमर हैं। वर्त्तमान आयुर्वेद उनके सिद्धान्त पर ही स्थित है। पर इनके पहले मगध सम्राट बिम्बिसार का निकट सम्बन्धी जीवक बड़ा प्रसिद्ध चिकित्सक था, और गन्धारदेश के राजा का रोगनिदान करने भेजा गया था। प्राचीन भारतीय चिकित्सक औषधि से अधिक उपचार पर, रोगनिदान से अधिक रोग रोकने के साधन पर जोर देते थे। सफाई का बड़ा ख्याल था। हिन्दू-धर्म व सामाजिक नियमों में स्नान, हाथ-पैर धोना, और घर-बार ठीक से लीपना इत्यादि पर जो महत्व दिया गया है उसका असल मतलब स्वास्थ्य व जनस्वास्थ्य की बेहतरी ही था। हिन्दु चिकित्सा-विज्ञान का प्रभाव विदेश पर भी पड़ा। अरब के विद्वानों ने कई पुस्तकों का अनुवाद किया। खलीफा हारूनलरशीद का इलाज भारतीय चिकित्सक मणिक्य ने किया था।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्योतिष शास्त्र में प्राचीन भारतीयों ने अद्भुत प्रतिभा दिखाई। ऋग्वेद काल ही में कुछ तारों का पता लगा लिया गया था। उत्तर वैदिक युग में तिथि, चन्द्रमा और ग्रहदशाओं का पता उन्हें था। सौर-मार्ग को २७ भागों में बाँटा गया था, जिनमें से प्रत्येक को नक्षत्र कहते थे। महान् ज्योतिषाचार्यों में आर्यभट्ट और वराहमिहिर का नाम स्तुत्य है। आर्यभट्ट (जन्म ४७६ ई०) ने यह पता लगा लिया था कि पृथ्वी गोल है, सूर्य के चारों ओर घूमती है और संसार में गुरुताकर्षण (Law of gravitation) जारी है। वराहमिहिर ने ज्योतिषशास्त्र में प्रचुर योगदान दिया, पर उन्होंने मुक्तकण्ठ से विदेशी यवन और रोमन का ऋण स्वीकार किया और कहा कि विदेशी होते हुये भी ये ऋषितुल्य पूज्य हैं। भारतीय ज्योतिष में रोमन-ज्योतिष को मान्यता मिली और रोमक-सिद्धान्त इसका प्रमाण है। ब्रह्मगुप्त (जन्म ५९८ ई० की) एक महान् ज्योतिषाचार्य हो गये हैं। उनकी प्रसिद्ध पुस्तकों का अरब विद्वानों ने अनुवाद किया, और फिर अरबों से योरोपिअनों ने पाया। दक्षिण भारत में भास्कराचार्य प्रसिद्ध हैं। उनकी पुस्तक सिद्धान्तशिरोमणि प्रामाणिक ग्रन्थ समझी जाती है। महाविद्वान अलबेरुनी ने भारत में ज्योतिष पढ़ा था।

गणित में भारतीय विद्वानों ने क्रान्तिकारी खोज की है। एक से नौ संख्या तक लिखना सभी देशों को मालूम था। पर दहाइयों के लिए भी अलग अलग अंक थे, और सैकड़ों के लिए भी। उदाहरण में रोमन अंक ले लें। इसमें दस (X) के लिए एक चिन्ह, पच्चास (L) के लिए एक, और सौ (C) के लिए एक। इस तरह बड़ी संख्याओं को लिखने में बहुत जगह भरना पड़ता था। भारतवर्ष ने शून्य का आविष्कार किया, और किसी अंक के दाहिने शून्य दे देने से उस अंक का दशगुण समझना चाहिए, यह अनुसन्धान भारतीय विद्वानों ने किया। भारतीय अंक व गणना-विधि अरबों ने सीखी, और अरबों से योरोपिअनों ने। दशमलव

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का व्यवहार भी भारत में ही शुरू हुआ। लीलावती प्रसिद्ध गणितज्ञ हुई हैं। गणित और ज्योमिति में भारत की देन अमर है, और यह देन बहुत कारगर सिद्ध हुई है। आर्यभट्ट और लीलावती का संसार सदा ऋणी रहेगा।

रसायनशास्त्र (Chemistry) के विकास में महान् विद्वान नागार्जुन ने युगान्तकारी खोज की। भारत में पारा (Mercury) का योग बनाने की विधि का ज्ञान उन्हें ही पहले पहल हुआ। अलबेरूनी, जो महमूद गजनी के साथ भारत आया था, यहां की रसायनविद्या के करिश्मे देखकर भौंचक रह जाता था। कृत्रिम सोना बनाना, लोहे में कुछ रसायन मिलाकर उसे मजबूत बनाना, रसायन के बल पर सुवर्ण बना लेना यह सब भारतीय रसायनिकों के लिए मामूली बात थी।

अतः यह स्पष्ट है कि भारत में प्राचीन काल में विज्ञान की उत्तरोत्तर वृद्धि हुई। भौतिक विद्या का विकास संसार में सुख व समृद्धि प्राप्त करने के लिए ही होता था। पर ये वैज्ञानिक विदेशों की वैज्ञानिक प्रगति से अपने को दूर नहीं रखते थे, और बराबर विदेशी ज्ञान व विज्ञान को अपनाने के लिए तैयार रहते थे, विद्वानों की कद्र करते थे, देशी हों या विदेशी। इसी आदान-प्रदान के कारण ही इस दिशा में प्रगति होती रही। जब भारतीयों ने अपने ज्ञान-कपाट दूसरों के लिए बन्द कर लिये, और अपने आंख-कान विदेशी प्रभाव के लिए मूंद लिए तभी प्रगति रुद्ध हो गई। अलबेरुनी कहता है कि भारतीय विद्वान या वैज्ञानिक यह समझते हैं कि उन्हें किसीसे कुछ नहीं सीखना है; और वे अभिमानी हो गये हैं, अपने ज्ञान को दूसरे से एकदम छिपाकर रखते हैं, और विदेशियों को सन्देह और विरोध के भाव से देखते हैं। यह विचार ज्ञान-विज्ञान की प्रगति के लिए आत्मघातक सिद्ध हुआ। तभी तो मध्ययुग से लेकर १९वीं शताब्दी तक भारत ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में कूपमण्डूक बना रहा। इसका बुरा फल राजनीतिक और बौद्धिक क्षेत्रों में पड़ा।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म

हरप्पावासी मातृदेवी और शिव (?) की पूजा करते थे। वे शायद मूर्तिपूजक थे। लिंग और योनि की पूजा होती थी, वृक्षों व कतिपय जानवरों का भी धार्मिक महत्व था। पर पूर्व-वैदिक काल में आर्य लोग देवता की मूर्ति की पूजा नहीं करते थे। प्रमुख प्राकृतिक शक्तियों की, जैसे आकाश (द्युः), पृथ्वी, मेघ और बिजली (इन्द्र), उषा, वायु और तूफान (मरुत) की पूजा होती थी। वरुण, अग्नि, सोम और इन्द्र प्रमुख देवता थे। वरुण धर्मप्रवर्तक व सृष्टि के नियम (ऋत) का पोषक था। प्रत्येक आर्यगृह में यज्ञाग्नि प्रज्वलित रहती थी। कोई भी यज्ञ बिना अग्नि के नहीं हो सकता था। 'सोम' एक पौधे को कहते थे जिसे पीसकर सोमरस बनाया जाता, और इसके पीने से शक्ति मिलती। सोम पीकर ही इन्द्र असुरों पर विजय प्राप्त कर सके थे। सोमरस दैवी पेय था, और सोमयज्ञ वैदिक यज्ञों में महान् था। इन्द्र शौर्य-वीर्य का देवता था। लड़ाई में देवताओं का नेता था और आर्यों का मददगार। इन्द्र की बहादुरी की कहानियाँ खासकर वृत्र का संहार मशहूर है। युद्ध में विजय प्राप्ति के लिए इन्द्र की प्रार्थना की जाती थी। वर्षा के लिए भी इन्द्र की ही पूजा की जाती थी, क्योंकि इन्द्र मेघ-देव था। अपने कार्यों में इन्द्र को मारुतों (Maruts) से काफी सहायता मिलती थी। पूर्व वैदिक काल में भी यज्ञ होते थे, और पुरोहित भी थे। पर उत्तर वैदिककाल में और ब्राह्मणयुग में यज्ञों और पूजाओं का महत्व बहुत बढ़ गया। गर्भ में आने से लेकर मरने तक मनुष्य का जीवन यज्ञों से परिपूर्ण था। यज्ञों की विधि पर बहुत ध्यान दिया जाता, और इस तरह धर्म के बाहरी रूप न कि तत्व पर महत्व दिया जाने लगा। ब्राह्मण-पुरोहितों की शक्ति बढ़ गई। यज्ञों में पशुबलि साधारण बात हो गई। नीचे तपके के लोग झाड़-फूंक, जन्तर-मन्तर पर बहुत विश्वास करते थे। बीमारी या बुरे दिन प्रेतों का अभिशाप समझे जाते थे, और इनकी शान्ति के लिए तपतप मनौती, ओझा-डाइन की मदद की जरूरत समझी जाती थी।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यज्ञों की असाधारण जनप्रियता और यथार्थ में धर्म की अवहेलना, और जीवों का संहार के विरूद्ध आवाजें उठने लगी। उपनिषदों में आत्मा और परमात्मा का ऐक्य, और कर्म की प्रधानता के सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये। सदाचार व सत्कर्म पर हिंसात्मक यज्ञों से अधिक महत्व दिया गया। उपनिषदों के महान् बौद्धिक विचारों की भीत्ति पर ही, बाद में, वेदान्त और अन्य दर्शन की उत्पत्ति हुई।

पर ब्राह्मणधर्म के विरूद्ध सबसे मुख्य आवाज महावीर और गौतम बुद्ध ने उठाई। इन्होंने ब्राह्मण धर्म की निन्दा की। पशुबलि की भर्त्सना की और पुनर्जन्म और कर्म-फल के सिद्धान्त का प्रचार किया। इन्होंने सदाचार अहिंसा इत्यादि को ही मोक्ष प्राप्ति का उपाय बताया। जीव की शान्ति मुक्ति में ही है, जन्म मरण के फन्दे से बचने में ही है, और इस ध्येय की प्राप्ति के लिए ब्राह्मण धर्म अयोग्य है, ऐसा विचार बौद्धों व जैनों का है। गौतम बुद्ध के समय में ही बौद्धधर्म राजाओं की मदद से और जनसाधारण के उत्साह से बिहार व कोशल प्रभृति देश में फैल चुका था। अशोक, कनिष्क और हर्ष के समय में यह धर्म खूब फैला, और भारत में ही नहीं वरन् अफगानिस्तान, तिब्बत, चीन, कोरिया, मध्य एशिया और मध्य-पूर्व देशों में बौद्धधर्म फैला, और पूर्व-योरप में भी अशोक के अमर उपदेश गये। पर गौतमबुद्ध व अशोक के समय का पवित्र और सीधा धर्म पीछे चल कर जटिल और अलंकृत हो गया। इस धर्म में भी देवताओं की कई पीढ़ियां बन गईं। गौतम बुद्ध भगवान समझे जाने लगे, मूर्ति-पूजा होने लगी, और पूजा व धर्माचरण में रीतिरस्म और विधियों की प्रधानता हो गई। बौद्ध विहारों में अनैतिकता का प्रवेश हो गया था। मठों में ऐश्वर्य और कामदेव का प्रभाव छाने लगा। इसके अलावे हिन्दू-धर्म में भी कई शाखाएं निकली जिनमें वैष्णव पंथ प्रधान है। पशुबलि का विरोध और "अहिंसा परमोधर्मः" का सिद्धान्त यहां भी मान्य हो गया। शंकराचार्य ऐसे महान् विद्वान ने बौद्धधर्म का खोखलापन दिखला दिया। बौद्धधर्म में जो विशेषता थी, जो गुण थे

CC-0 In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे हिन्दूधर्म ने अपना लिया और गौतमबुद्ध को विष्णु का एक अवतार समझा। अतः बौद्धधर्म का ह्रास हो गया। राजाओं की मदद भी नहीं ही मिलने लगी। परिणाम यह हुआ कि भारत में ही जन्मा और फूलाफला बौद्धधर्म भारत से निर्वासित हो गया।

जैनधर्म भारत से बाहर नहीं गया। आज भी राजपूताना, सौराष्ट्र और बम्बई प्रान्त में जैन लाखों की संख्या में पाये जाते हैं।

हिन्दू-धर्म में भक्ति-सम्प्रदाय का प्रभाव बढ़ गया। जन-साधारण वेदान्त के गूढ़ सिद्धान्त, ज्ञान और कर्म मार्गों से अधिक भक्तिपंथ की ओर आकर्षित हुए। भक्तिपंथ का बीज वेद में भी पाया जाता है। वरुण अपने भक्तों के पापों को हरता था, और उनके कष्टों का निवारण करता था। इस तरह भक्त और देवता में सामीप्य का भाव था। भक्ति मार्ग का यही आधार है। भागवत धर्म में विष्णु की उपासना का प्रचार बहुत हुआ। श्रीमद्भागवतगीता भक्ति-योग, ज्ञान मार्ग की अनुपम पुस्तक है। भागवत-धर्म इतना जन-प्रिय, आकर्षक या सुलभ था कि होल्योडोरस नामक यूनानी दूत ने भी इस धर्म को अपनाया और ईसा से दूसरी शताब्दी पूर्व में उसने विदिसा (पूर्व मालवा) में भगवान वासुदेव के सम्मान में एक गरुड़ध्वज की स्थापना की। हिन्दूधर्म ने भारत में ही विदेशियों को आकर्षित नहीं किया बल्कि भारत से बाहर जावा-सुमात्रा व चम्पा इत्यादि भारतीय उपनिवेशों में भी राम, शिव, गणेश इत्यादि देवताओं की पूजा होती थी—रामलीला और रासलीला का आयोजन होता था। गुप्त सम्राट् अधिकतर विष्णु उपासक (परमभागवत) थे, उनका राजचिह्न गरुड़ था। उनके समय में विष्णु के कई मंदिर बने। शिव की भी पूजा सर्वप्रिय थी। दक्षिण भारत में शिवलिंग की पूजा व लिंगायतपंथ का प्रचार काफी था। सूर्य, दुर्गा, चण्डी और महादेवी के भिन्न-भिन्न रूपों की पूजा की जाती थी, और इनके सम्मान में विशाल और भव्य मंदिर बने।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन भारतवर्ष में इस तरह कई धर्म व भिन्न २ पंथों का प्रचार बराबर होता रहा। पर धार्मिक असहिष्णुता ने कभी जोर नहीं पकड़ा। विद्वानों व धर्ममहारथियों में शास्त्रार्थ होता था, अपने धर्म का प्रचार के लिए खूब जोश रहता था, पर कटुता का अभाव था। राजा किसी भी धर्म का अनुयायी हो पर वह कभी भी अन्य धर्मों की कुचलने की नीति नहीं अपनाता था। सम्राट् अशोक बौद्ध थे, पर उन्होंने धर्म-सहिष्णुता की नीति अपनाई, और अन्य धर्मों के आदर में ही वे अपने धर्म का सम्मान देखते थे। उनके उपदेश आज भी विशेष महत्व रखते हैं—"जो कोई भी अपने धर्म का आदर करता है, और इसी लक्ष्य से अन्य धर्मों का अनादर करता है, वह वास्तव में अपने धर्म पर गहरी चोट करता है; भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बियों में समवाय का भाव रहना चाहिये, और एक दूसरे के विचार व धर्म सिद्धान्त को सुनना चाहिये।... इसी प्रकार विभिन्न धर्मों के सार की वृद्धि होगी।" धर्म समन्वय ही भारत का आदर्श रहा है। सम्प्रदायवाद भारत के आदर्श के विपरीत है।

समाज।

भारतीय समाज का आधार परिवार था। संयुक्तपरिवार नियम था। परिवार का कर्ता का यह उत्तरदायित्व था कि परिवार के सभी सदस्य अपने कर्त्तव्यों का पालन करें। गृहपति को परिवार में एकता और सौहार्दभाव बनाए रखना था। इस कारण गृहपति को अधिकार भी असीम ही था। ऋज्राश्व को उसके पिता ने अंधा बना डाला था, और सुन्हेस्प को उसके पिता ने यज्ञ में बलि होने के लिए बेच डाला था। ऋग्वेद के समय के पिता के ये असीम अधिकार बहुत हद तक पीछे भी कायम रहे। पर अधिकार के साथ साथ कर्त्तव्य पर भी ध्यान दिया जाता था। कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार जो अभिभावक अपने मां-बाप, छोटे भाई-बहन, कुमारी व विधवा लड़कियों का उचित प्रबन्ध किए बिना

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गृहत्यागी बनकर किसी भिक्षुसंघ में सम्मिलित होता था उसे राजदंड भुगतना पड़ता था।

किसी भी सभ्यता की उन्नत व गिरी अवस्था का मापदण्ड है उसके समाज में स्त्रियों का स्थान। प्राचीन भारत में नारियों का सम्मान होता था। ऋग्वैदिक काल में पुत्र की कामना स्वाभाविक थी पर पुत्री का जन्म अभिशाप नहीं समझा जाता था। परिवार में कन्या का लाड़-प्यार होता था और गृहकार्यों में वह हाथ बँटाती थी। स्त्रियों की शिक्षा पर कोई रुकावट नहीं थीं। गुरुकुल में लड़के-लड़कियां सभी रहते थे। सभा-समिति में स्त्रियां भी भाग लेती थीं। घोषा, लोपमुद्रा ऐसी विदुषी स्त्रियों ने वेद की ऋचाएं की रचना की। गार्गी महान् विदुषी थी। कन्याओं के लिए व्याह साधारण नियम था पर आजन्म कुमारी रह कर विद्याध्ययन करना कुछ स्त्रियों का लक्ष्य रहता था। विवाह युवा होने पर ही होता था। कुछ वैदिक मन्त्र प्रेमगीत हैं। विवाह होने पर नारी गृहस्वामिनी थी। दम्पति का अर्थ स्त्री और पुरुष दोनों होता है। स्त्री और पुरुष गृह के संयुक्त-स्वामी थे। पहले विधवा व्याह की प्रथा थी। सती प्रथा मिट चुकी थी, और पति के मरने के बाद स्त्री साधारणतः अपने देवर से पुनर्विवाह कर लेती थी। यदि विधवा को कोई सन्तान न हो, और वह वैवाहिक बंधन में नहीं पड़ना चाहती थी तो नियोग की प्रथा—क्षणिक सम्बन्ध-का पालन कर पुत्रवती बन सकती थी। पांडु, विदुर, धृतराष्ट्र और पांचों पांडव का जन्म इसी प्रकार हुआ था।

पर स्त्रियों के अधिकार धीरे २ कम होते गये। मनुसंहिता के अनुसार स्त्री बराबर किसी पुरुष के संरक्षण में ही रहेगी—पिता, पति या पुत्र। बालविवाह का खूब प्रचार था। विवाह-विच्छेद नहीं हो सकता था। सतीप्रथा प्रचलित थी। नियोग घृणित समझा जाता था। सम्पत्ति पर स्त्रियों का अधिकार नहीं था। स्त्री पर्दा में रहती थी और सार्वजनिक कार्यों से विमुक्त

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गृहकार्य ही उसका क्षेत्र था। पर इन नियमों के विपरीत हम गुप्तकाल और उसके उपरान्त भी राज्यपरिवार की स्त्रियों को शासन-सम्बन्धी कार्यों के उत्तरदायित्व सम्हालते देखते हैं। गुप्तसाम्राज्य में महिषी का बड़ा स्थान था। कुमार-देवी और चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की स्त्री ध्रुवस्वामिनी का नाम सरकारी शिलालेखों पर मिलता है। ध्रुवस्वामिनी की मुहर भी मिली है। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की पुत्री प्रभावतीगुप्ता अपने नाबालिग पुत्रों की संरक्षिका बनकर वाकाटक राज्य का शासन वहन करती रही। हर्षवर्धन की बहन राज्यश्री उसके साथ ही दरबार में बैठती थी। यह निर्विवाद है कि प्राचीन भारत में नारी के राजनीतिक व आर्थिक अधिकार जो भी रहे हों, नारी की प्रतिष्ठा या सम्मान में कभी कमी नहीं हुई। मनुसंहिता में भी यह कहा गया है कि जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ देवता वास करते हैं।

प्राचीन विश्व में प्रत्येक सभ्यता में गुलामों या दासों का एक वर्ग रहता था। मिश्र हो या मेसोपोटेमिया, यूनान हो या रोम, दास सभ्यता के एक विशेष अंग थे। प्राचीन भारत में भी दासप्रथा प्रचलित थी। बहुत से हारे हुये या बन्दी दस्यु विजयी आर्यों के दास बन गये। जूआ में हार कर आर्य भी अस्थाई दासता स्वीकार कर लेते थे। कौटिल्य ने साफ लिखा है कि आर्य को दास नहीं बनाया जा सकता था। पर आर्थिक परवशता के कारण, या न्यायोचित दण्ड देने की अयोग्यतावश, आर्य भी अस्थायी रूप से दासवृत्ति अपना लेता था। पर यहां दासों की हालत रोम या यूनान की तुलना में बेहतर थी। उनसे गन्दी और गलित चीजों का व्यवहार जबर्दस्ती नहीं कराया जा सकता था। दासों को भी कानूनी अधिकार थे। दास कई उपायों से अपनी मुक्ति प्राप्त कर सकते थे। यूनान की तलना में भारत के दासों की बहुत अच्छी अवस्था देखकर ही

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

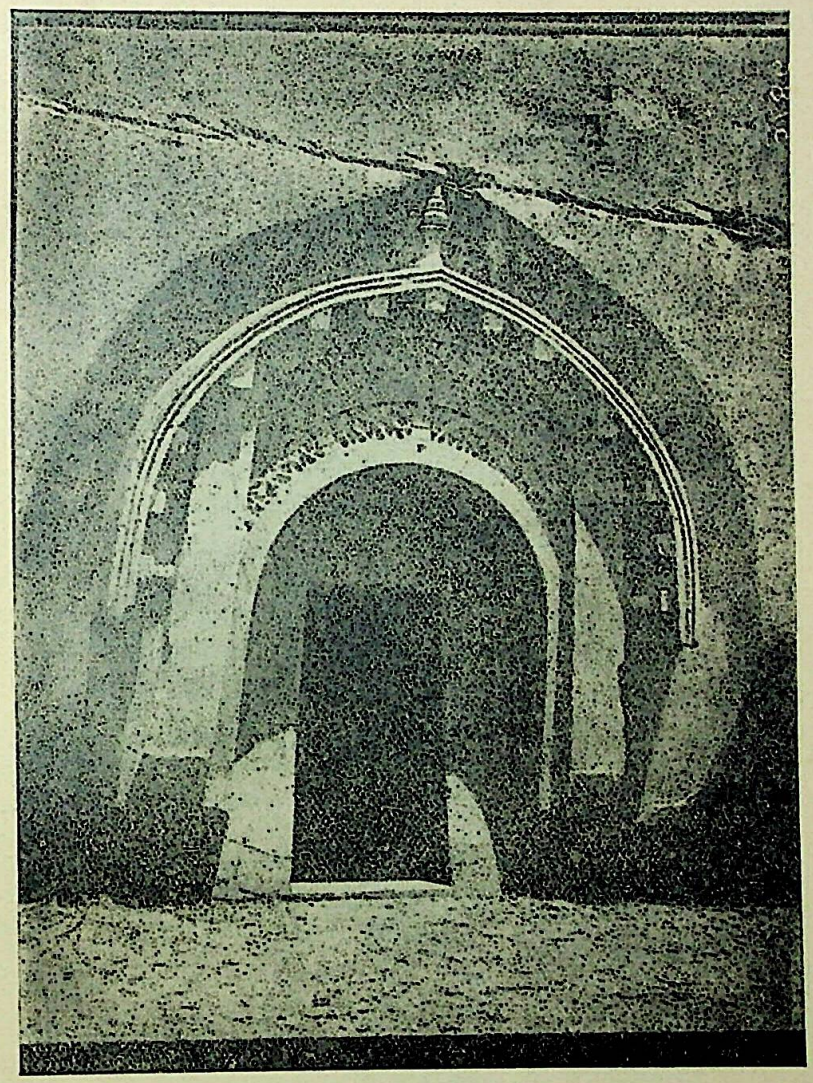

(पृ० ३३३) अशोक के समय की लोमष गुफा (बराबर)

(Copyright Reserved. Arch. Surv. India).

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

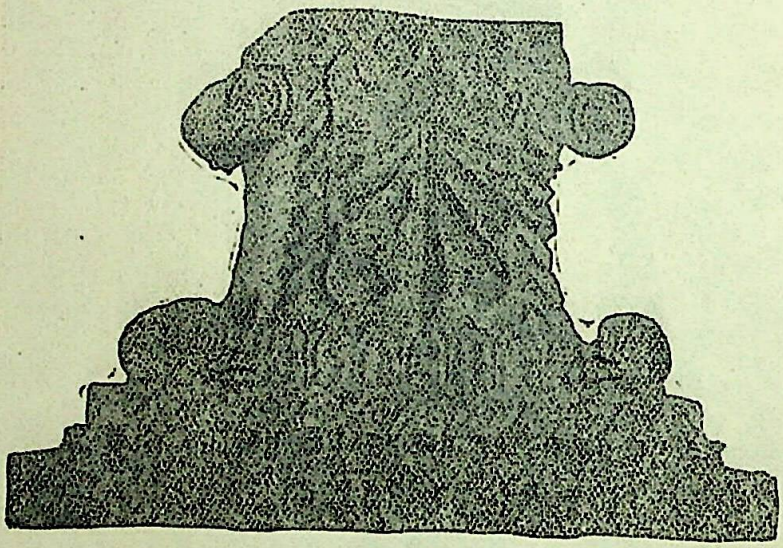

(पृ० ३३३) बुलन्दीबाग (पटना) में प्राप्त एक स्तम्भ की शिरा।
(पटना म्यूजियम के सौजन्य से)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चि० ३७

सांची स्तूप

(पृ० ३३४)

(Copyright Reserved. Arch. Surv. India).

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

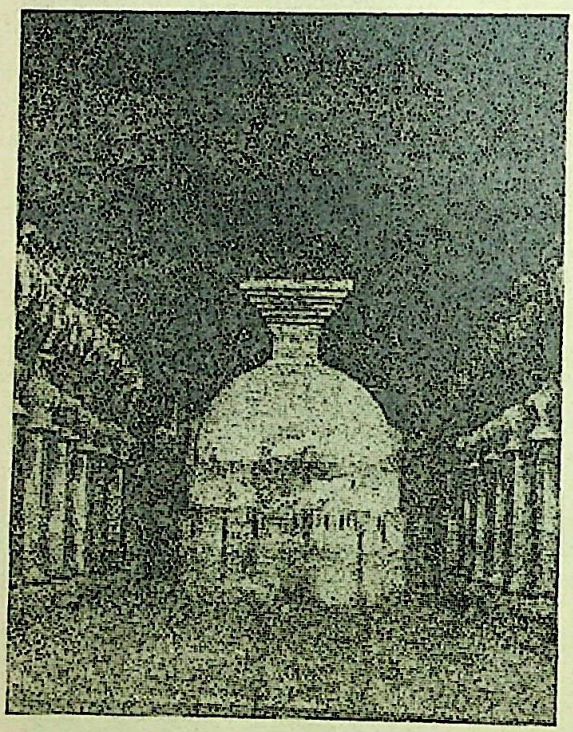

(पृ० ३३५) कार्ले का चैत्य सभा भवन

(Copyright Reserved. Arch. Surv. India)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शायद मेगास्थनीज ने यह लिखा कि यहां दास-प्रथा का व्यवहार था ही नहीं।

भारतीय समाज की सबसे विलक्षण विशेषता है वर्णाश्रमधर्म, जिसे Caste system कहा जाता है। जब आर्य भारत में आये तब उन्हें अनार्यों से युद्ध करना पड़ा। आर्य और अनार्यों में बहुत भेद था। पहला भेद था वर्ण (colour) का। आर्य श्वेतवर्ण के थे, और दास व दस्यु कृष्णवर्ण (Black or dark) के। रंगभेद के अलावे सांस्कृतिक अन्तर भी था। अनार्यों की भाषा अलग थी, उनकी नाक चपटी थी और वे पाषाण व लिंगपूजक थे। अतः आगन्तुक अल्पसंख्यक आर्यों को अपनी आत्मरक्षा के लिए, अपनी संस्कृति व नस्ल की सुरक्षा के लिए, अपने को अनार्यों से अलग रख कर, एक सामाजिक व्यवस्था का विकास करना स्वाभाविक था। भारत में आर्यों का विस्तार के युग में राजाओं और सैनिकों का महत्व न्यायतः अधिक था। इस वर्ग को राजन्य कहा जाता था,=और पीछे चलकर यह वर्ग क्षत्रियवर्ग कहलाया। पर आर्यों का यह धार्मिक विश्वास था कि उनकी जीत और उन्नति देवताओं की कृपा पर ही निर्भर है। उनका यह विचार था कि विश्व प्राकृतिक नियमों के आधार पर ही टिका है, और आर्यों की भलाई के लिए यह जरूरी है कि 'ऋत'—प्रकृति के नियम अविचल रूप से चलते रहें। इसलिए प्राकृतिक शक्तियों की उपासना आवश्यक है, और आर्यों के प्रमुख देवता प्रकृति की शक्तियों का ही नेतृत्व करते थे। इन देवताओं को प्रसन्न करने के लिए, जिससे कि 'ऋत' अविचल रहे, यज्ञ आवश्यक था। इन देवताओं का आवाहन और यज्ञों का सम्पादन ऋषि वा ब्राह्मण ही करते थे। आर्य जातियों को युद्ध में विजय देने का श्रेय जितना सैनिकों को था, उससे अधिक ही, कम नहीं, श्रेय उस जाति के पुरोहित का था जिसने अपने यजमान के लिए देवताओं की कृपा प्राप्त की थी। इसलिए वैदिकयुग में आर्य-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसारयुग में—ब्राह्मण और राजन्य वर्गों की श्रेष्ठता स्पष्ट है। पर आर्य बन्जारे नहीं थे। वे गृहवासी और कृषक थे। इसलिए जब राजा व शासक वर्ग युद्ध करता, और राजशासन का भार उठाता, और जब ब्राह्मण देवताओं की प्रार्थना करते, स्वाध्याय करते या यज्ञ कराते, जनसमुदाय कृषि और व्यापार में लगा रहता और धन का उपार्जन करता। इन्हें विश् कहते हैं, जो आगे चलकर वैश्य कहलाए। आर्यों में तीन वर्ग—ब्राह्मण्, क्षत्रिय और वैश्य—क्रमानुसार थे। विजित या बन्दी दस्यु और दास आर्यों के दास बन गये। उन्होंने आर्यधर्म और संस्कृति को अपना लिया, इसलिए ये आर्य हो गये, और आर्यों के चतुर्थ वर्ग—शूद्र—में इनका शुमार होने लगा। इस प्रकार आर्य चार वर्गों में विभक्त हो गये। समाज में यह भेद औद्योगिक या व्यावसायिक सिद्धांत पर आश्रित था। यह भी स्वाभाविक है कि पारिवारिक वातावरण में पुत्र पिता का उद्योग को अधिक अच्छी तरह चला सकता है; पिता का विशेष हुनर पुत्र को प्राप्त करने में आसानी होती है। इसलिए ये भिन्न २ सामाजिक वर्ग बहुत हद तक पैत्रिक सिद्धांत पर विकसित हुये। पर आरम्भ में एक ही परिवार के सदस्य भिन्न २ पेशों में पाए जाते थे, और कोई धन्धा किसी वर्ग के लिए जघन्य नहीं समझा जाता था। ऋग्वेद में पुत्र कवि, पिता डाक्टर और मां आटा पीसने वाली थी, ऐसा उल्लेख आया है। ऋग्वेद की एक उत्तरकालीन ऋचा से यह पता चलता है कि ब्राह्मण, राजन्य, वैश्य और शूद्र क्रमानुसार ब्रह्मा के मुख, बाँहु, पेट और पैर के सम थे। इससे समाज में इन चार वर्गों क्रमिक स्थान का पता चलता है।

धीरे २ ये चार वर्ण एक दूसरे से एकदम भिन्न हो गये। इनमें पारस्परिक विवाह, खानपान की मनाही हो गई। वर्ण व्यवस्था से एक लाभ था। समाज क भिन्न २ अंगों का सन्तुलन कायम रहता था, और समाज जानता था कि वह किससे क्या उम्मीद रख सकता है,

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और प्रत्येक नागरिक एक वर्ण का सदस्य रहने के नाते जानता था कि उसे क्या करना है, और क्या नहीं करना है। पर सामाजिक व्यवस्था पैत्रिक सिद्धांत पर आश्रित रहने के कारण जटिल हो गई। वैयक्तिक विकास की गति सीमित हो गई। व्यक्ति अपने विशेष वर्ण के अन्दर ही उन्नति कर सकता था, उसके बाहर जाना धर्म के विपरीत होता; फिर इस वर्ण-व्यवस्था के कारण समाज के बड़े भाग पर, जो कि निम्नवर्ग के थे, बराबर अत्याचार होता रहा। ब्राह्मण, और क्षत्रिय ये दोनों तो समाज के नेता रहे, और इनके अधिकार बढ़ते रहे, वैश्यों का स्थान भी धीरे २ गिरता रहा, और शूद्रों के धार्मिक और वैयक्तिक अधिकार बहुत कम थे। इनमें अस्पृश्यों की भी एक बड़ी संख्या थी। वैयक्तिक प्रतिभा नहीं वरन् वर्णव्यवस्था ही समाज में उन्नति करने का आधार था। तीन उन्नत वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, जिन्हें द्विज कहा जाता है—के सदस्यों को चार आश्रमों का पालन करना पड़ता था। ब्रह्मचर्याश्रम जिसमें उपनयन संस्कार के उपरान्त विद्याध्ययन करना था; इसके बाद नागरिक गृहस्थ-आश्रम में प्रवेश करता था; व्याह कर वह परिवार का पालन करता, गो-ब्राह्मण की सेवा करता और धन की वृद्धि करता और धर्माचरण रखता था। इसके बाद पारिवारिक झंझट से मुक्त होकर वानप्रस्थ-आश्रम में प्रवेश करता, जिसमें ईश्वर भजन ही मुख्य काम था। जीवन का आखिरी भाग सन्यास लेकर घर-बार छोड़कर तीर्थाटन और भिक्षायाचन में बिताना पड़ता। इस प्रकार आर्यजीवन सामाजिक अनुशासन पर आधारित था। अर्थ और परमार्थ दोनों निभे ऐसी व्यवस्था थी। जीवन को इन चार भागों में बांटने के पीछे बुद्धि और तर्क है।

कला।

प्राचीन भारत की सम्पन्नता सिर्फ उसके महान् दर्शन, व धनी साहित्य और धार्मिक-परम्पराओं पर ही नहीं वरन् कला के भिन्न २ रूपों

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अद्भुत विकास पर भी निर्भर करती है। जिस जाति का साहित्य इतना मधुर ललित और पूर्णविकसित हो, वह स्थूल कलाओं में भी अवश्य ही अग्रणी होगी ऐसा समझना स्वाभाविक ही है।

वास्तुकला (Architecture)।

किसी भी सभ्यता का रूप व गुण का भाव हमें उसकी वास्तुकला से मिलता है। कोई भी सभ्यजाति अपने भवनों व देवालयों के निर्माण में अपनी पूरी प्रतिभा का प्रयोग करेगी ही। प्राचीन खण्डहरों व मंदिरों और भवनों के द्वारा हम उसके बनाने वालों के भाव और कला-प्रेम का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। हरप्पा-सभ्यता में हमें अति विकसित नगर मिलते हैं। पके ईंटों के विशाल भवन मिले हैं। मोरियों व स्नानालयों का सुन्दर प्रबन्ध था। मकान रहने के लिए सुखदायक थे। पर इस काल की वास्तुकला व्यावहारिकता से प्रभावित थी। कलात्मक दृष्टि से यह उन्नत नहीं है। ध्यान में यह था कि ये भवन लाभप्रद हों न कि देखने में सुन्दर व आकर्षक हों। यही आधुनिक विचार है। जब आर्य-भारत में आये तब इस नगर-सभ्यता का अन्त निकट था। आर्य-सभ्यता नगर में केन्द्रित नहीं थी, बल्कि खेतों के बीच छोटे-छोटे गांव ही कृषक आर्यों के जीवन के केन्द्र थे। इन गावों को पशु इत्यादि से रक्षा के लिए बांस की टट्टी से घेरा जाता था और बांस का ही ऊँचा फाटक दिया जाता था। पीछे चल कर बौद्ध व हिन्दू धार्मिक भवनों के ईंट व पत्थर के बने कठघरे (Railing) या गोकुल (मन्दिरद्वार) इसी की नकल पर विकसित हुये। वैदिक काल में मकान बांस और सवई से बनाया जाता था, और आंगन के चारों या तीन ओर ओसारा रहता जिस पर कोठरियाँ बनी रहती थी। बौद्धकाल व मौर्यकाल में लकड़ी का व्यवहार बहुत होने लगा। आसपास के समृद्ध जंगलों से लकड़ी पर्याप्त मिल जाती थी। मेगास्थनीज ने लिखा है कि प्राचीन पाटलीपुत्र लकड़ी के कठघरे से घिरा था, और यहां ६४ द्वार लकड़ी के थे। कठघरे पर पांच सौ से अधिक मीनार थे, और रक्षकों के लिए यहां वहां

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र ४०

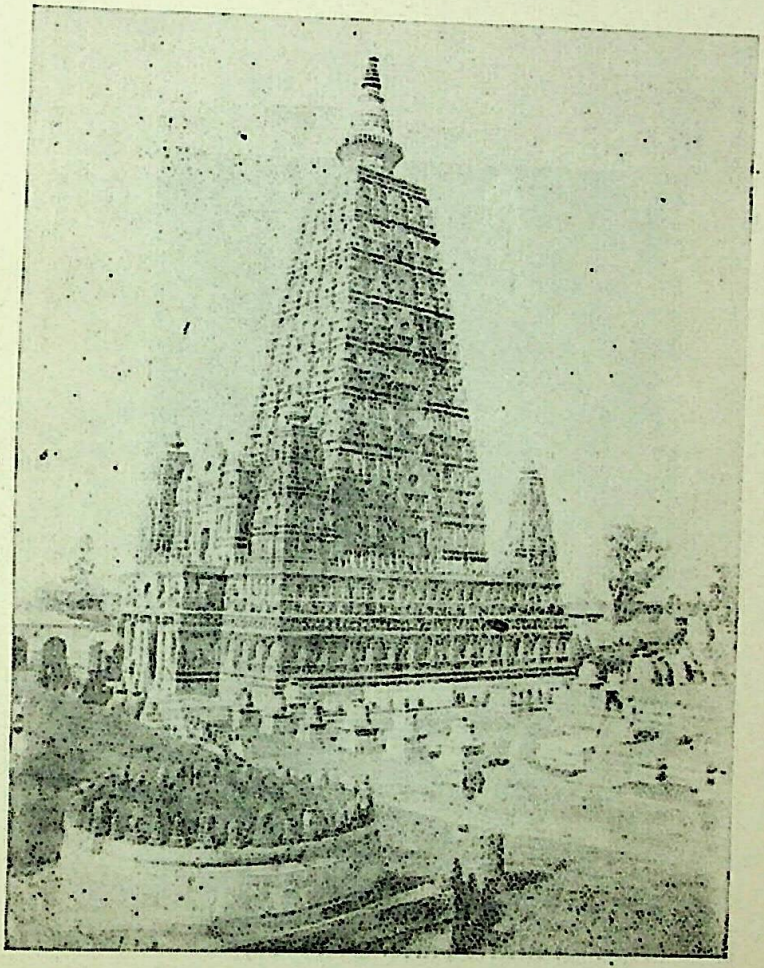

पृ० ३३६ बोध गया का मंदिर

(Copyright Reserved. Arch. Surv. India)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

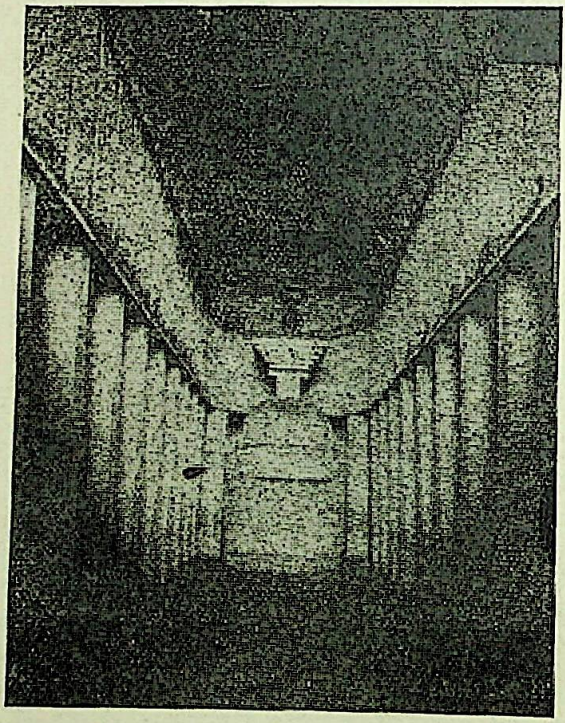

पृ० ३३५ बेड़सा चैत्यभवन (१७५ ई० पू०)
(Copyright Reserved, Arch. Surv. India)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मचान बने थे। कुम्हरार और बुलन्दीबाग की खुदाई से लकड़ी की रक्षा-पंक्ति और बहते हुये नाले को लकड़ी की पटरियों से पाटा जाना का पता चला है। राजमहल या राजदरबार में पत्थर का भी प्रयोग होता था। कुम्हरार की खुदाई से खम्भों की पंक्तियों पर आधारित एक बड़ा सभाभवन का पता चला है। कुछ लोगों की राय है कि यह ईरानी प्रभाव का परिणाम था। सम्राट् अशोक के समय में तो पत्थरों का बहुत व्यवहार होता था। पत्थरों के स्तम्भ पर लेख खुदे हैं। ये पाषाणस्तम्भ पाषाण-कला के अद्वितीय उदाहरण हैं। इन स्तम्भों की शिराओं पर पशुओं की पाषाणमूर्तियां बनाई गई थीं। मौर्यकाल की पाषाण-कला की विशेषता है दीप्तिमान चमक। इसी चमक के आधार पर हम मौर्यकाल की पाषाणमूर्तियां को पहचान लेते हैं। अशोक के राजमहल व अन्य भवन इतने आकर्षक और सुन्दर थे कि चीनी यात्री फाहियान इसे दैवी कृति ही समझता है। बराबर और नागार्जुनी पहाड़ों की गुफाओं में अशोक के समय के जोबौद्ध सभाभवन चट्टानों में खोदे गये हैं उनकी दीवाल की चमक अभी भी चकाचौंध कर देती है। बौद्ध लोग बौद्धधर्म के स्थूल प्रतीकों का आदर करते थे जैसे हाथी, सिंह, मृग, चक्र, अश्व, सिंहासन, बोधिवृक्ष इत्यादि। इसलिए इन चिह्नों की पाषाणमूर्तियां बनने लगीं और शिल्प कला की अत्याधिक उन्नति हुई। बौद्ध बुद्ध के अवशेष, या बुद्ध के प्रिय शिष्यों के अवशेष की भी पूजा करते थे, और इन्हें सुरक्षित रखने की कोशिश करते थे। भगवान् बुद्ध के फूल (Ashes), या दांत उनके शिष्यों या बौद्धधर्म के अनुयायियों में बँटे, और इन्हें सुरक्षित रखने के लिए और इन स्थानों की पूजा करने के लिए स्तूप बने। बौद्धधर्म में मठों की जरूरत अनिवार्य थी। बुद्ध ने संघ की स्थापना की थी। धर्म-प्रचार के लिए और सामूहिक प्रार्थना व पूजा के लिए या अध्ययन के लिए मठों या बड़े २ हॉल की जरूरत पड़ी, इसलिए बौद्धमठ (Monasteries) और चैत्य व हॉल भी बनाए जाने लगे। इस प्रकार वास्तु-कला का विकास बौद्धधर्म की प्रेरणा से हुआ। कहा जाता है कि सम्राट्

CC-0 In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अशोक ने ८०००० स्तूप बनवाए थे। स्तूप अंडाकार होते थे, और ऊपर में पवित्र अवशेष के रखने के लिए जगह छोड़ दी जाती थी। जब अवशेष रख दिया जाता तब खुले अंग को बन्द कर दिया जाता, और उस पर क्षत्र खड़ा कर दिया जाता था। पहले तो स्तूप ईंटों या मिट्टी के बने थे, पर पीछे चल कर पत्थर के बनने लगे। बौद्ध धार्मिक-भवनों में सांची और भारहुत के स्तूप और बोधगया के मंदिर सबसे प्रसिद्ध हैं। इन भवनों की वास्तुकला के अध्ययन से यह पता चलता है कि पत्थर के बने भवन पहले के लकड़ी की बनी इमारतों की डिजाइन की नकल ही हैं। सांची स्तूप भोपाल-राज्य में स्थित है। अशोक के समय में इसकी नींव दी गई थी। यह ईंट का बना था पर शुंगकाल में १५० ई० पू० के लगभग इसका पुनर्निर्माण आरम्भ हुआ। ईंट का स्तूप नष्ट नहीं किया गया, पर वह पत्थर के बड़े स्तूप के अन्दर रह गया। यह नवनिर्मित स्तूप ५४ फीट ऊंचा है। गुम्बज के ऊपर एक वर्गाकार कटघरा के भीतर हर्मिका है जो कि क्षत्रों का आधार है। सभी पत्थर के बने हैं। स्तूप के चारों ओर पत्थर की बनी चहारदिवारी या कटघरा है (Railing) हैं इसमें पांच बड़े द्वार हैं, जो पत्थर के स्तम्भों पर आधारित हैं। इन खड़े और पड़े स्तम्भों पर बौद्धधर्म के पवित्र चिह्न अंकित हैं और भगवान बुद्ध के जीवन की मुख्य कहानियों के चित्र बने हैं। द्वार के सबसे ऊंचे भाग पर धर्मचक्र बना है। सांची-स्तूप बड़ा ही भव्य और विशाल है, और भारतीय वास्तु-कला का गर्व। भारहूत-स्तूप का भी इसी समय पुनर्निमाण हुआ। यह सांची स्तूप से काफी छोटा है, पर इसमें पत्थर पर बहुत बारीक काम किए गये हैं, और जातक और बुद्ध के जीवन की कहानियों के सुन्दर चित्र खुदे हैं। बोधगया का मन्दिर के रेलिंग भी दर्शनीय हैं। यह वृताकार न होकर चतुर्भुजाकार है। यह गुप्त काल की कृति है।

पत्थर के बने स्तूप के अलावे पश्चिम भारत और डेक्कन् में पहाड़ों के चट्टानों को खोदकर छेनी या अन्य उपकरणों के द्वारा बड़े २ चैत्य या सभाभवन या विहार बनाये गये। ये प्राकृतिक

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुफाओं में नहीं बने थे बल्कि मनुष्य ने जीवित चट्टानों को काट-कूट कर, खोद-खादकर इतना सुन्दर विहार या चैत्य बनाया; क्रियात्मकशक्ति और कला का इतना साहसपूर्ण उदाहरण विरले ही मिलेगा। पश्चिम घाट (Western Ghats) की पहाड़ियों में नासिक के इर्दगिर्द कई ऐसे चैत्यों और विहारों का पता चला ह, जिसमें कार्ले, एलिफैन्टा और नासिक की गुफाएँ प्रमुख हैं। हैदराबाद राज्यस्थित अजन्ता की गुफाएँ तो जगत्प्रसिद्ध है। बौद्धविहार अधिकतर उजड़े स्थानों में पाए जाते है, जंगलों के बीच, या पहाड़ों में। इसका कारण था कि प्रार्थना और धर्माचरण में शान्त वातावरण सुविधाजनक था। इन विहारों में आंगन थे, जिनमें तीन या चार ओर कोठरियाँ थी, और घिरे हुए ओसारे या छत स्तम्भों पर आधारित थे। इन विहारों में भोजनगृह, रसोइखाना व सार्वजनिक पुस्तकालय या आमोदालय भी थे। ईसाइ मठों का भी यही ढाँचा था। उड़िसा में उदयगिरि और खण्डगिरि के चट्टानों मे जैन गुफायें बनायी गयी थीं। इनका समय भी ईसा से २००-१०० ई० पू० ही है। यहाँ चैत्यहाल नहीं है पर उपासकों के लिए कमरे खुदे हैं। अफगानिस्तान की पहाड़ियों के ढाल पर या चोटी पर पेशावर और रावलपिंडी के इर्द गिर्द बौद्ध विहार के चिह्न पाए जाते हैं। इन विहारों के उद्देश्य भारतीय थे पर इनकी वास्तुकला रोमन या यूनानी प्रभाव से अछूती नहीं है, जैसे स्तम्भ की शिराएं (Corinthean Capital)। तक्षशिला की खुदाई में एक भवन के अवशेष मिले हैं जिसमें यूनानी वास्तुकला का प्रभाव स्पष्ट है। यह २०० ई० पू० की चीज है। कुशानकाल में यूनानी-रोमन प्रभाव भारतीय वास्तुकला और शिल्पकला पर काफा पड़ा।

दक्षिण भारत में भी बौद्ध चैत्य या विहार बनाये गये। यहां भी जीते चट्टानों को काट कर ही विहार बनाया गया, पर स्तूपों के निर्माण में सफल प्रतिभा दिखलाई गई, और अमरावती स्तूप, कृष्णा नदी के

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दक्षिण किनारे पर, अपनी शान के लिए दर्शनीय है। इन दक्षिण स्थित स्तूपों में ऊंचे मेहराव के बावजूद उजले संगमर्मर का प्रयोग होता का, जिससे इनकी सुन्दरता खूब बढ़ जाती थी।

पत्थर के अलावे इस समय ईंट का भी प्रयोग होता था। मथुरा और गंगा-यमुना प्रदेश में ईंट के बने स्तूपों और विहारों के अवशेष मिले हैं। बोधगया का मंदिर में ईंट का प्रयोग किया गया था। भिट गांव में ईंट का बना एक भव्य मंदिर है जो पांचवीं शताब्दी में बना होगा। इसकी ऊंचाई ४० फीट है। नालन्दा के विहार, जो कई महलों के थे, ईंट के ही बने थे।

हिन्दू-मंदिर बौद्ध-स्तूप या चैत्य के बाद के ही बने मिलते हैं। जब सगुन ब्रह्म की उपासना शुरू हुई, और मूर्तिपूजा व्यापक हो गई, और शिव या विष्णु या महादेवी के भिन्न २ रूपों की पूजा होने लगी तब मंदिर बनने लगे। गुप्तकाल में कई मंदिर बने। मांडासोर में सूर्यदेव का मंदिर बहुत ऊँचा था, और उसके शिखर पर आमलक कलश स्थापित था। सांची और भमरा के हिन्दू मंदिर आनेवाले युग के नमूना बन गये। ईंट के अलावे पहाड़ी गुफायें भी खोदी गईं, और वे देवस्थान बने जैसे उदयगिरि की गुफायें। देवगढ़ के शिवमंदिर का द्वार और स्तम्भ सुन्दर चित्रों से अलंकृत है। जिस समय उत्तर-भारत में गुप्तकालीन मंदिर बनाये जा रहे थे दक्षिण में चालुक्यों के प्रोत्साहन से एक नयी शैली के मंदिर बनाए गये जिनमें एइहोड़ (Aihole) का मंदिर प्रमुख है। मंदिर का छत चौड़ा या ढालुआ है, पर इन मंदिरों की विशेषता है कि स्थापितमूर्ति के सामने हाल (मंडप) बनाया जाता था। एइहोड़ का दुर्गामंदिर बौद्धचैत्यों के नक्शा के आधार पर बना है। बादामी में चट्टानों के नीचे एक झील के नजदीक चार बड़े हाल खोदे गये हैं, ये हाल स्तम्भों पर आधारित हैं। इनमें तीन हिन्दुधर्म से सम्बन्ध रखते हैं, और एक जैनधर्म से। भारतीय वास्तुकला के

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

चि० ४४

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

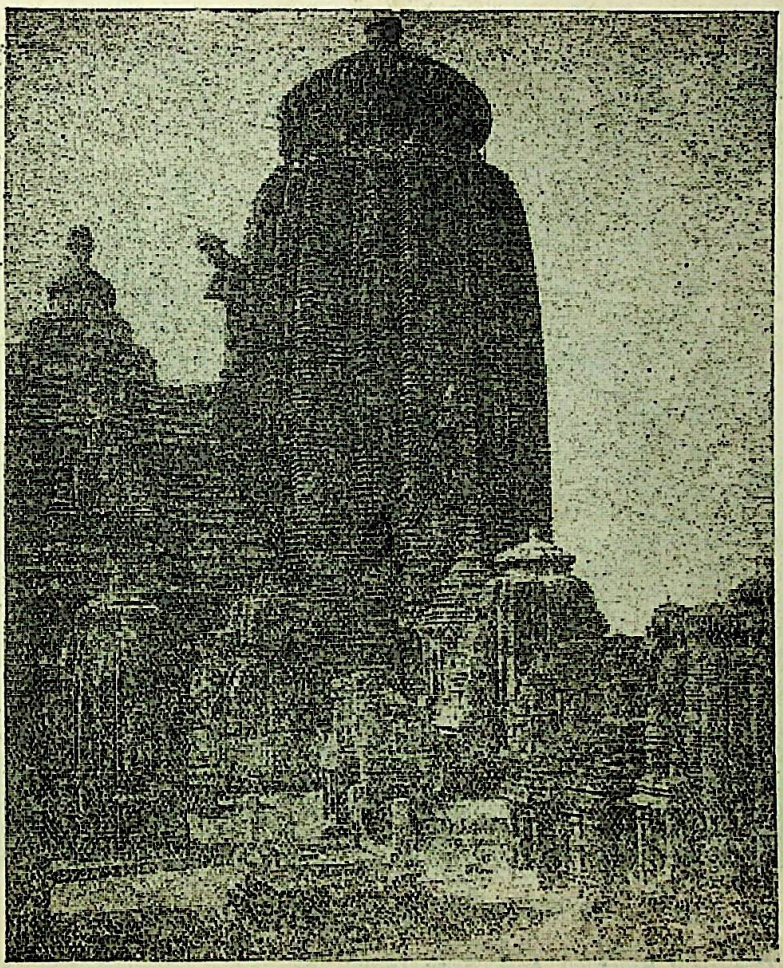

पृ० ३३७ भुवनेश्वर मंदिर

(Copyright Reserved. Arch. Surv. India)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

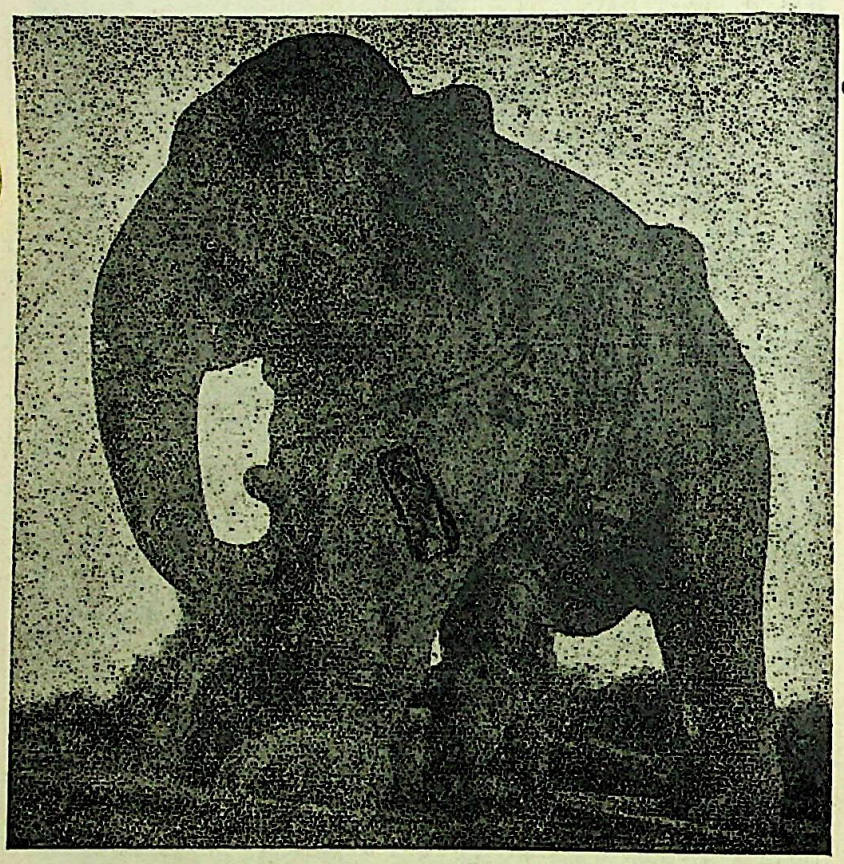

पृ० ३३७ कोणार्क का विशालकाय हाथी की मूर्ति

(Copyright Reserved. Arch. Surv. India)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

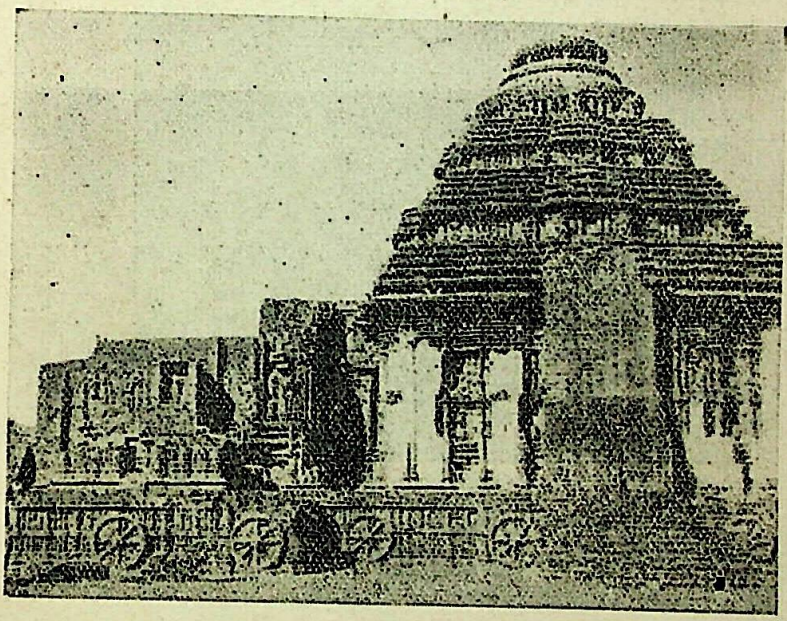

पृ० ३३७ कोणार्क का सूर्य मंदिर

(Copyright Reserved. Arch. Surv. India)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

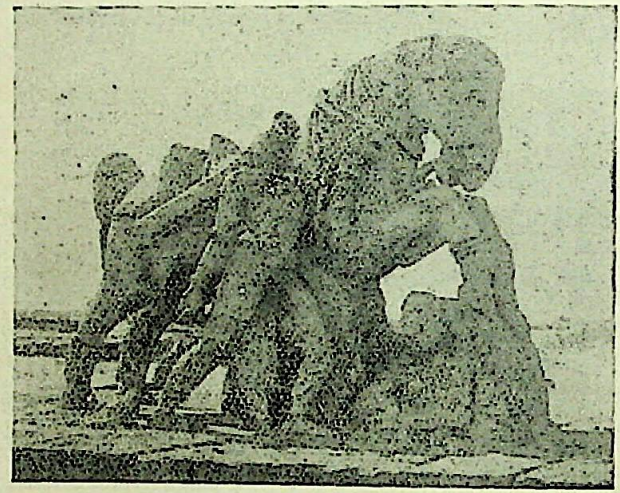

पृ० ३३७ कोणार्क। विशाल अश्व-मूर्ति

(Copyright Reserved. Arch. Surv. India)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास में ये स्तम्भाश्रित हाल और उनके गैलरी अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। आठवीं शताब्दी से मंदिर-निर्माण युग का उत्साहपूर्वक आरम्भ होता है। मंदिर के मुख्य-भाग हैं—शिखर जो कि बाहर से खूब ऊँचा मीनार की तरह मालूम होता है, और जिसकी कई श्रेणियां होती थीं, और उसमें पत्थर के बारीक काम या मूर्ति या दृश्य गढ़े जाते थे। गर्भगृह जिस में मूर्ति की प्रतिष्ठा की जाती है, और मंडप जिसे सभाभवन भी कहा जा सकता है प्रत्येक बड़े मंदिर के प्रमुख अंग होते हैं। मुख्य मंदिर के चारों ओर प्रदक्षिणपथ रहता है जिसके चारों ओर घूम कर भक्तजन देवता की मूर्ति की प्रार्थना करते हैं। वास्तुकला के दृष्टिकोण से मंदिरों को कई भागों में बांटा गया है जैसे आर्य, द्रविड़, चालुक्य व कलिंग। उड़ीसा के प्रमुख मंदिरों में जगन्नाथमंदिर, सूर्यदेव का कोर्णाक मंदिर व शिव का भुवनेश्वरमंदिर कलात्मक दृष्टिकोण से दर्शनीय है। कीर्णाक का सूर्यमंदिर का शिखर का पता नहीं है। सिर्फ जगमोहन (मंडप) अभी भी खड़ा है। इसीसे मंदिर की विशालता, शिखर की ऊँचाई और वास्तुविद्या का अद्भुत विकास का पता चलता है। समूचा मंदिर छोटे-बड़ कामुक दृश्यों से भरा है। पल्लवों के समय में (६०० ई०) में दक्षिण भारत में बड़े २ मंदिर बने। इनमें कुछ रथाकार हैं, और पत्थर के बड़े चट्टानों में गढ़े गये हैं। ये कला की दृष्टि से अद्वितीय हैं। इन रथों की कई श्रेणीयां हैं। इन मंदिरों में प्रमुख हैं भीम रथ, अर्जुन रथ व युधिष्ठिर रथ। मामलपुर नगर के ये मंदिर संसार-प्रसिद्ध हैं। पहाड़ में चट्टानों के अन्दर मंदिर खोदे गये थे, जिनमें इलोरा का कैलाशनाथ का मंदिर अपना सानी नहीं रखता। इसका समय ८ वीं सदी है। दक्षिणभाग में पल्लवों के बाद चोलों ने भी मंदिर निर्माण में अपूर्व उत्साह दिखाया। तन्जोर का मंदिर और गगाईकोन्डचोलपुरम् का मंदिर चोल-शैली के ज्वलन्त उदाहरण हैं। तंजोर का शिवमंदिर उस समय के लिए सबसे बड़ा, सबसे ऊँचा और अत्यन्त प्रभावोत्पादक मंदिर था और भारतीय वास्तुकला के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इसका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिखर १९० फीट ऊँचा है, और मंदिर की लम्बाई १८० फीट है। गंगाइकोन्डचोलपुरम् का शिव मंदिर १०२५ ई० के लगभग बनाया गया। पाण्ड्यों ने चोलों के बाद दक्षिण-भारत में द्रविड़ शैली को जीवित रक्खा। इनके समय के मंदिरों की विशेषता है मंदिर-द्वार या गोपुरम्। इन गोपुरों पर सुन्दर चित्र गढ़े गये थे।

इस प्रकार भारतवर्ष मंदिरों का देश कहा जा सकता है। इन मंदिरों के एक ही उद्देश्य थे, देवता के लिए सुन्दर और आकर्षक निवास-स्थान बनाना। राजा अपने धन और शक्ति का प्रतीक विशाल और भव्य मंदिरों को ही समझता था। इन मंदिरों के निर्माण में बहुत धन का व्यय हुआ होगा। प्राचीन मिश्र के पिरामिडों से इस दिशा में इनकी तुलना की जा सकती है। आज हम आर्थिक व जनतान्त्रिक सिद्धान्तों पर इस व्यय की आलोचना कर सकते हैं, पर भारतीय संस्कृति की सम्पन्नता, व वास्तुकला का अद्भुत विकास के ये अमर उदाहरण हैं। यदि यूनानी वास्तु-कला अपनी सुसंस्कृत पूर्णता के लिए, यदि रोमन वास्तुकला अपनी वैज्ञानिक विशेषता के लिए मान्य है तो भारतीय वास्तुकला की आध्यात्मिकता ही उसकी विशेषता है।

मूर्तिकला (Sculpture)

भारतीय मूर्तिकला का ध्येय धार्मिक या आध्यात्मिक था। शरीर का बाह्यसौन्दर्य, व परिमाण (Proportion) यूनानी-रोमन मूर्तिकला के विशिष्ट गुण हैं। पर भारतीय कलाकार तदात्मभाव से अपने इष्टदेवता का स्वर्गीय रूप पत्थर पर ढाल देता था। इसलिए प्राचीन भारतीय मूर्ति हम अपने भक्ति-भाव और शान्तवातावरण से प्रभावित करती है। हमारे सद्गुणों को जागृत करती हैं।

भारतीय मूर्तिकला का इतिहास हरप्पा-सभ्यता से आरम्भ होता है। हरप्पा, मोहन्जोदाड़ो, आमरी प्रभृति स्थानों की खुदाई से जो मूर्तियां मिली हैं उनकी कला अत्यन्त ही विकसित है। यह स्पष्ट है कि इनके कलाकार एक सुसंस्कृत परम्परा या पुराने अनुभवों से पूर्णतया

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

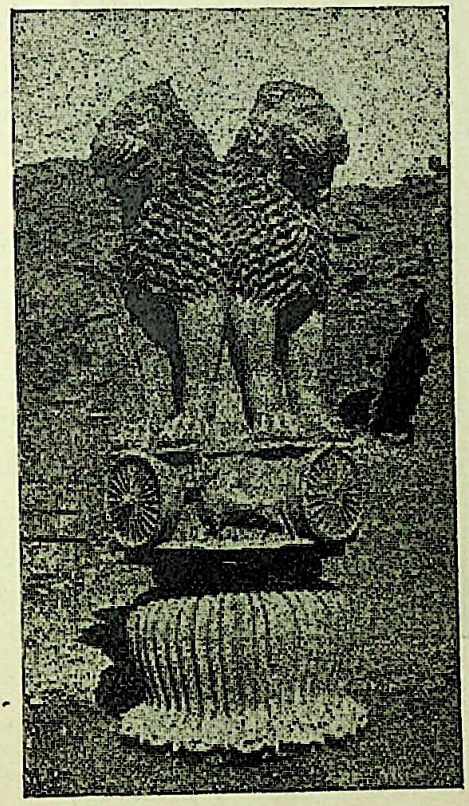

पृ० ३३९ मौर्यकालीन सिंह-शिरा (सारनाथ)

(Copyright Reserved. Arch. Surv. India)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

चि० ४६

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

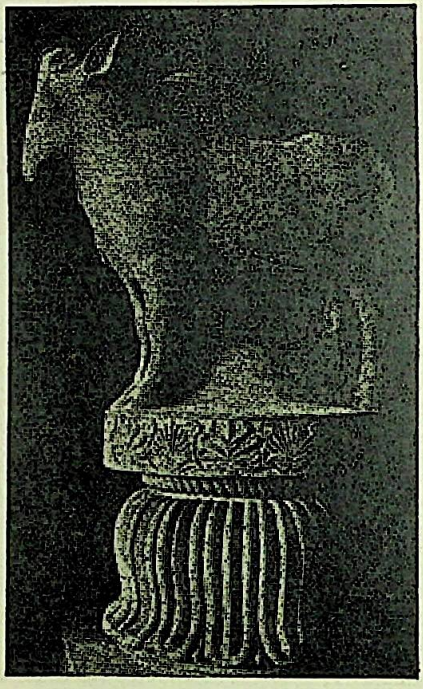

पृ० ३३९ रामपुरवा (चम्पारण) का सांढ़
(पाषाण-शिरा, अशोककालीन)
(Copyright Reserved. Arch. Surv. India)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवगत थे। हरप्पा में वलुवापत्थर के वने मस्तकहीन मनुष्य का धड़ और नतकी की कांसे की मूर्ति मूर्तिकला का विकास के स्पष्ट उदाहरण हैं। चादर ओढ़े पुरोहित की मूर्ति सुन्दर है। ये मूर्तियां क्रियारत (Active) नहीं है, पर इनके उत्तेजितभाव स्पष्ट हैं। मुहरों पर बलिष्ठ सांढ़ भी उत्तेजित और आत्म-विश्वासी मालूम पड़ता है। वृक्षों के विशेषकर अस्वस्थ वृक्ष के चित्र भी कला का पूर्व इतिहास के साक्षी हैं। मनुष्य व प्राकृतिक पशुओं के अलावे अमानवीय व दैवी या अप्राकृतिक विषयों की मूर्तियां भी 'हरप्पा-सभ्यता' में पाई गई हैं।

इस युग के वाद मूर्तिकला का करीव २००० वर्ष तक कोई उदाहरण नहीं मिलता है। ३००-२०० ई० पू० में संगतराशी के अच्छे नमूने मिलते हैं। कुशान-युग की बुद्ध या वोधिसत्व की मूर्तियां काफी पाई जाती हैं। पर भारत की ऐतिहासिक मूर्तिकला रोम या यूनान की मूर्तिकला से नहीं वरन् भारतीय प्रागैतिहासिक 'हरप्पा' की मूर्तिकला से प्रभावित है, और इनका पारस्परिक सम्बन्ध अव स्पष्ट है।

वैदिक युग में मूर्ति पूजा नहीं थी, इसलिए इस समय मूर्तिकला का विकास नहीं ही हुआ होगा क्योंकि मूर्तिकला अन्य कलाओं की भांति धार्मिक कारणों से ही प्रभावित हुई है। बौद्ध धर्म में पहले बुद्ध की मूर्ति बनाना निषेध था, पर बौद्ध चिह्नों को पवित्र समझा जाता था। अशोक ने स्तम्भों पर लेख खुदाए, कुछ स्तम्भों पर लेख नहीं ही खोदे गये। पर ये सभी स्तम्भ एक पत्थर के चट्टान से ढाले गये थे, और इनकी चमक इनकी विशेषता है। पत्थर के एक चट्टान से स्तम्भ बना लेना मामूली चीज नहीं थी, और खास कर जब इन स्तम्भों पर शिरा (Capitals) रक्खी जाती। इन शिराओं में रामपुरवा (चम्पारण) का सांढ़, नन्दनगढ़ (चम्पारण) का सिंह और सारनाथ का चतुर्मुख सिंह कला की उन्नति के निर्विवाद प्रमाण हैं। सारनाथ का सिंह-शिरा (Lion Capital) का पौलिश आश्चर्यजनक है। शान और आध्यात्मिकता में इसका सानी नहीं मिलता है, तभी तो आज यह हमारा राष्ट्र-प्रतीक है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौर्य-युग में मूर्तिकला स्तम्भशिराओं और यक्ष और यक्षी की मूर्तियों में ही विकसित हुई। पटना के समीप दीदारगंज में पाई गई चवंर लिए हुये यक्षी की मूर्ति इस युग की कला की उत्कृष्ट उदाहरण है। यक्ष के विशाल मस्तकहीन मूर्ति इस कला के विकास के प्रमाण हैं। मौर्यकाल की मिट्टी की बनी मूर्तियां सुन्दर हैं, और उस समय के शृङ्गार, हाव-भाव या सामाजिक जीवन का ज्ञान देती हैं। शुंगयुग और उसके बाद भारहुत और सांची के स्तूप के कटघरे व द्वार पर यक्षों, गंधर्वों और कमल के चित्र खोदे गये। अभी भगवान बुद्ध की मूर्ति नहीं बनाई जाती थी, पर बुद्ध की उपस्थिति वृक्ष, स्तूप, चक्र, वज्रासन, पदचिह्न से प्रकट की जाती थी। पशु व पौधे देवता के वाहन समझे जाते थे और उनके चित्र बनाये जाते थे। भारहूत और सांची के द्वार या रेलिंग पर बुद्ध के जीवन के प्रमुख दृश्य चितित्र किए गये हैं। इन मूर्ति, दृश्यों में, या वृक्ष या लताओं के चित्रण में स्वाभाविकता और सहजप्रयास साफ मालूम हो जाता है। कला की प्रौढ़ता सांची और भारहूत से स्पष्ट है। इसी युग के समकालीन हैं दक्षिण भारत के अमरावती स्तूप और रेलिंग। यहां जो मूर्तियाँ गढ़ी गई हैं या खोदी गई हैं वे सौन्दर्य और शान के लिए अद्वितीय हैं।

महायान बौद्धधर्म में बुद्ध को भगवान समझा गया और उनके नीचे कई बोधिसत्वों को रखा गया। अब बुद्ध और बोधिसत्वों की मूर्तियाँ बनने लगीं। कुछ विद्वानों का कहना है कि यह यूनानी या रोमन प्रभाव था। प्राचीनकाल में जैसे हरप्पाकाल में भी मूर्ति-पूजा रही होगी। उत्तर-पश्चिम भारत में—गान्धार-में मूर्ति-कला का खूब विकास हुआ। शरीर की बनावट, वेशभूषा यूनानी प्रभाव से अछूती नहीं रही। इस गान्धार कला के नमूने बुद्ध की कई मूर्तियां हैं, कणिष्क की मस्तकहीन मूर्ति, कणिष्क का स्मारक-बक्स (Relic Casket) प्रसिद्ध है। पर बहुत जल्दी ही भारतीय कलाकारों ने विदेशी भावों को भारतीय जामा पहना दिया। मथुरा में इस युग की कला का एक प्रमुख केन्द्र

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

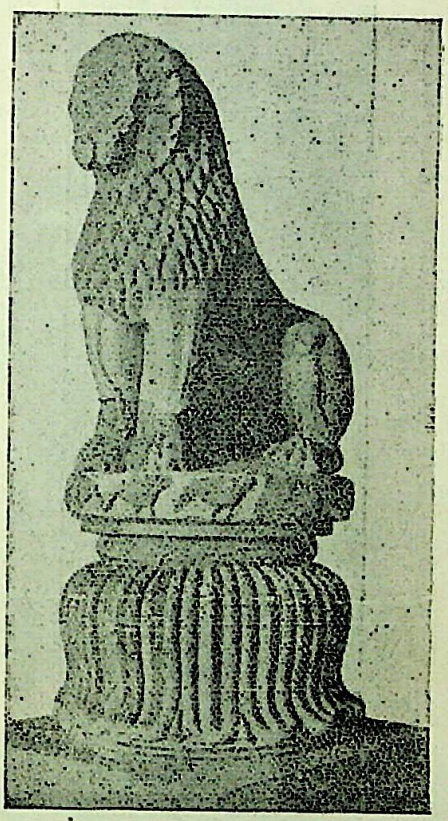

पृ० ३३९ अशोक कालीन सिंह-शिरा

(रामपुरवा, चम्पारण)

(Copyright Reserved. Arch. Surv. India)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृ० ३४० दीदारगंज
(पाटलिपुत्र) यक्षी
(पटना म्युजिअम्-के सौजन्य से)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

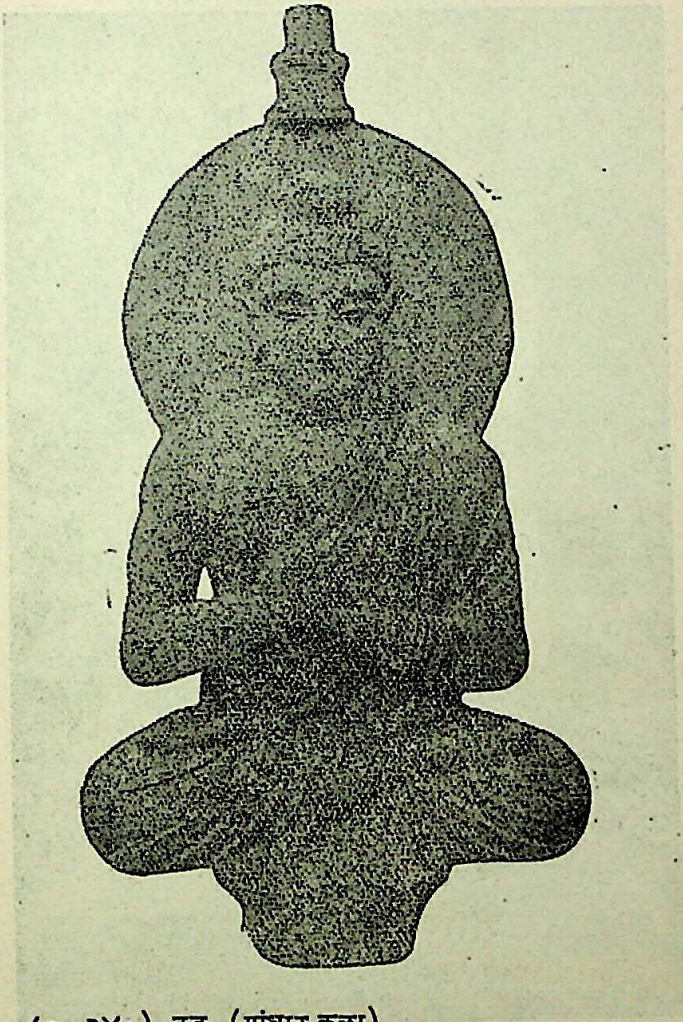

(पृ० ३४०) बुद्ध (गांधार कला)

(From a Cast)

(पटना म्यूजियम के सौजन्य से)

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चि० ६०

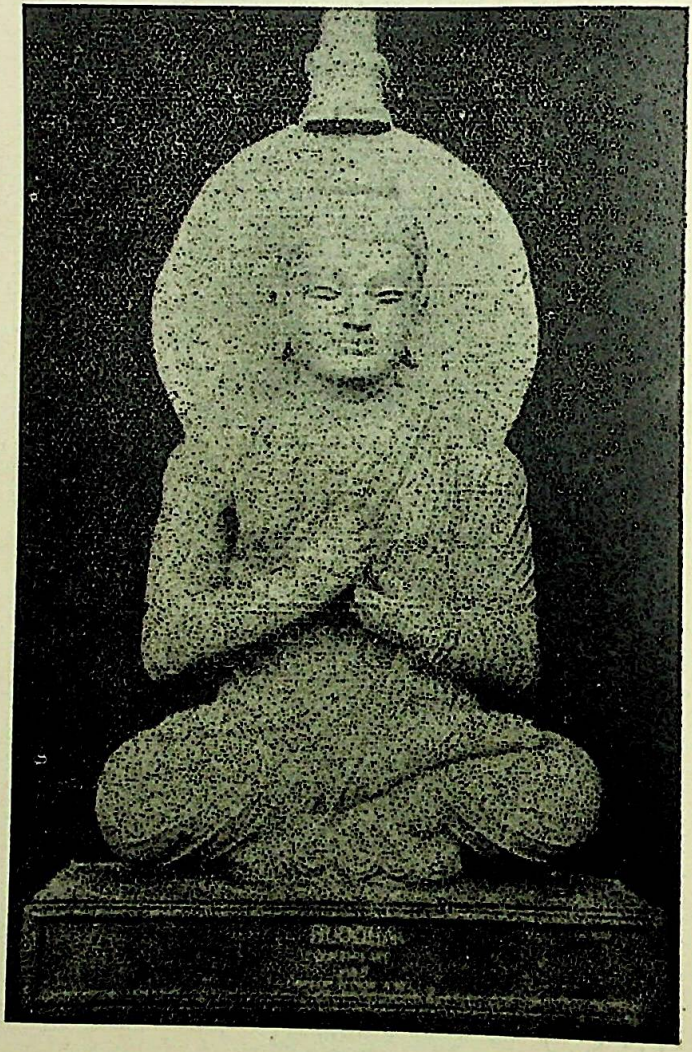

(पृ० ३४०) बुद्ध (गांधार, स्वात घाटी)

(Copyright Reserved. Arch. Surv. India)
CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

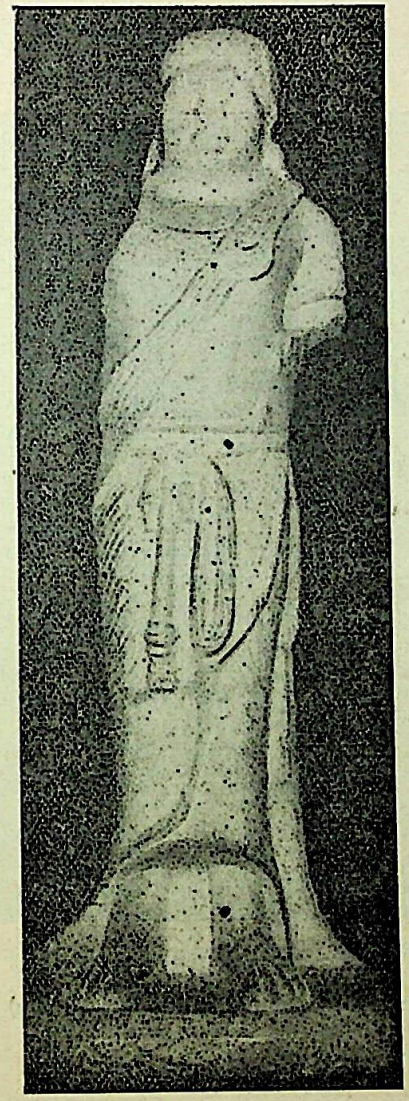

पृ० ३४० यक्ष (पटना)

(From a Cast)

(पटना म्यूजिअम् के सौजन्य से)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृ० ३४० बुद्ध (गांधार) तृतीय सदी
(Copyright Reserved. Arch. Surv. India)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

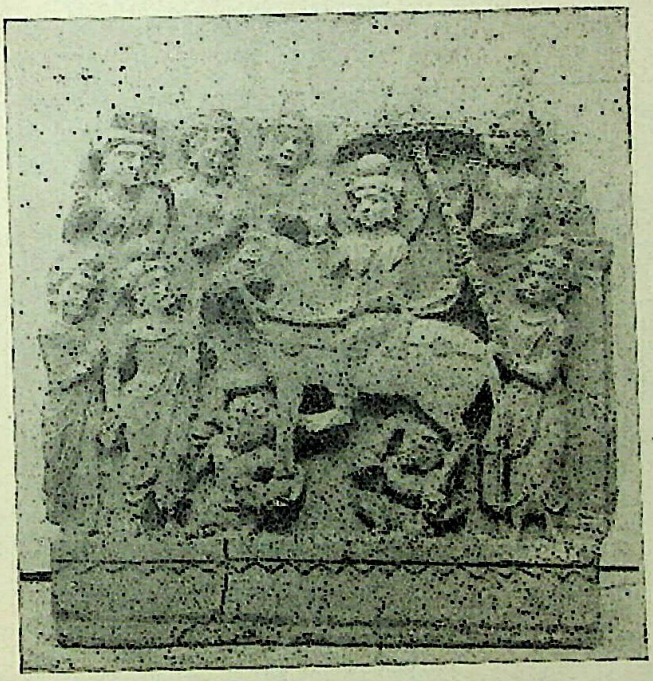

(३४०) भगवान बुद्ध का महात्याग (गांधार कला)
(Copyright Reserved. Arch. Surv. India)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चि० ६४

(पृ० ३४०) बुद्ध का परिनिर्वाण

(Copyright Reserved. Arch. Surv. India)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

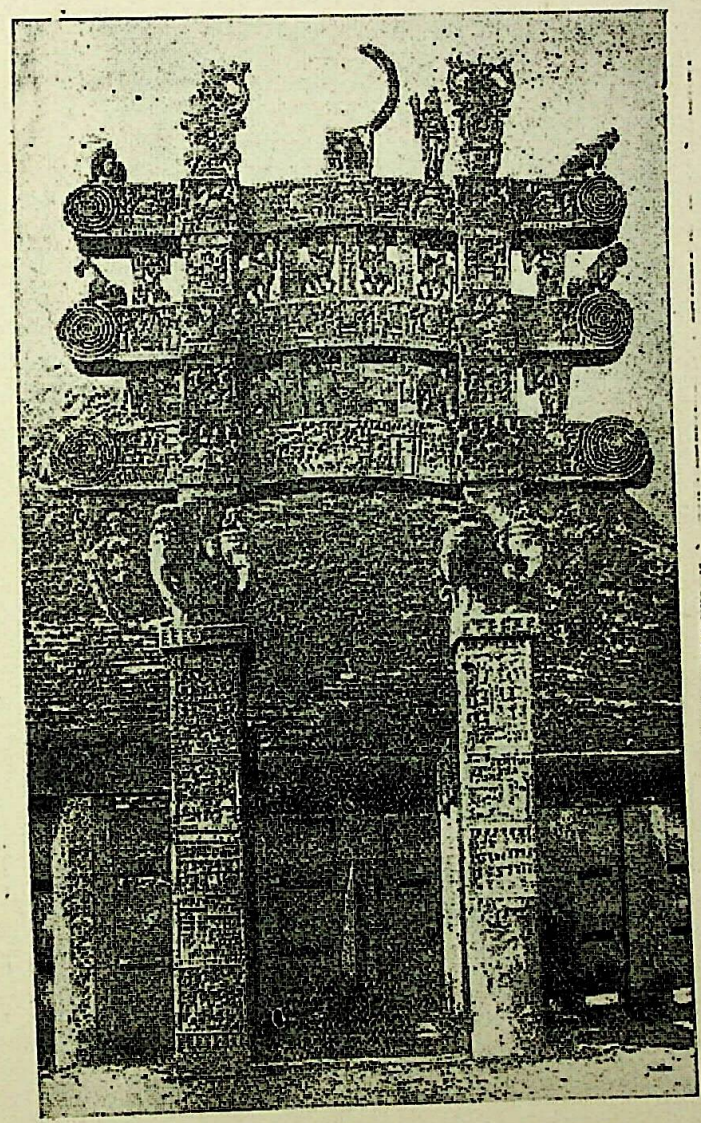

सांची स्तूप का उत्तर-तोरण

पृ० ३४०
CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.
(Copyright Reserved. Arch. Surv. India)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चि० ५२

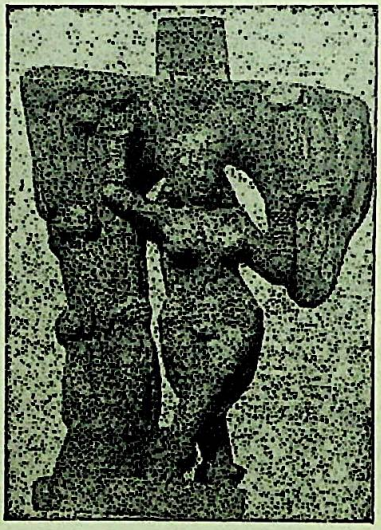

पृ० ३४० सांची : दरवाजे में स्त्री-मूर्त्ति
(Copyright Reserved, Arch. Surv. India)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

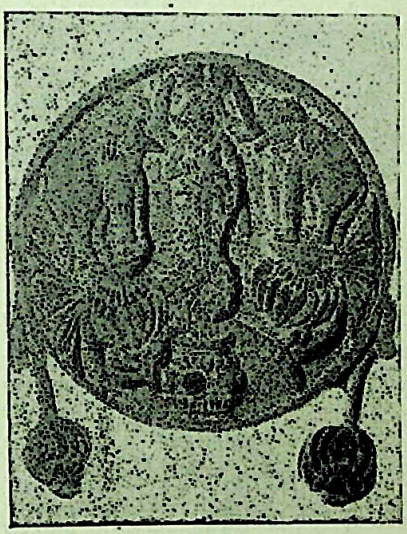

पृ० ३४० भारहूत : उपज की देवी

(Copyright Reserved. Arch. Surv. India)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चि० ५४

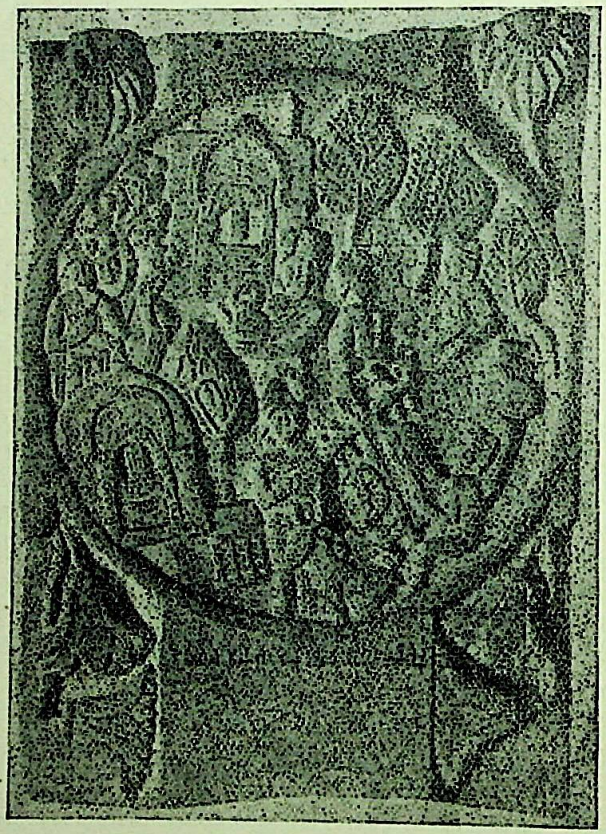

पृ० ३४० भारहूतः जेतवन विहार का उत्तोरण
(Copyright Reserved. Arch. Surv. India)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

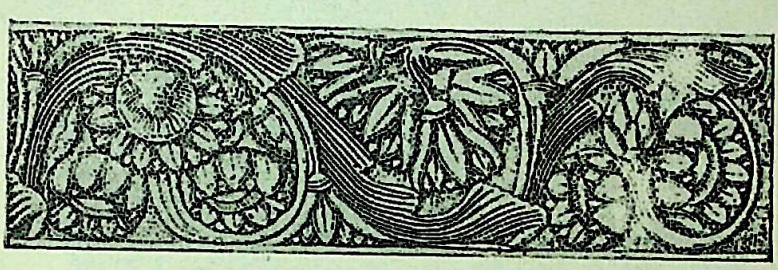

(पृ० ३४०) अमरावती के कमल और मकर

(Copyright Reserved. Arch. Surv. India)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्ध (सारनाथ) गुप्तकालीन

(पृ० ३४१) CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.
(Copyright) Reserved Arch. Surv. India)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

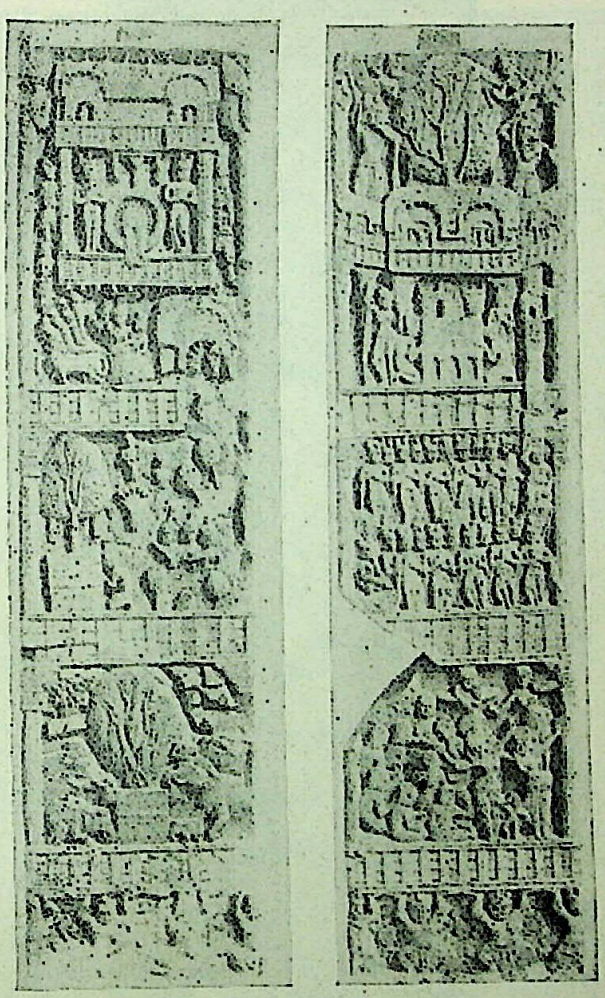

पृ० ३४० भारहूत : भगवान बुद्ध के जीवन के दृश्य
(Copyright Reserved. Arch. Surv. India)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

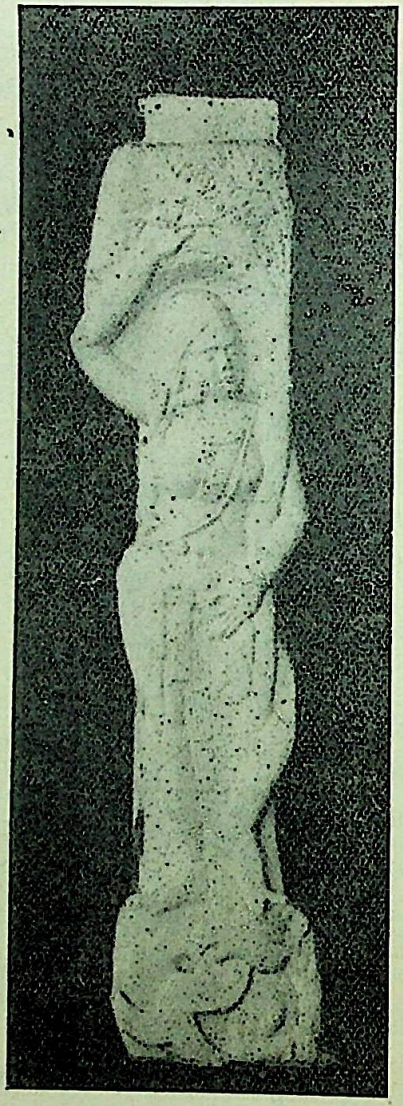

पृ० ३४१ भारहूतः चंड यक्षी
(From a Cast)
(पटना म्यूजिअम् के सौजन्य से)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

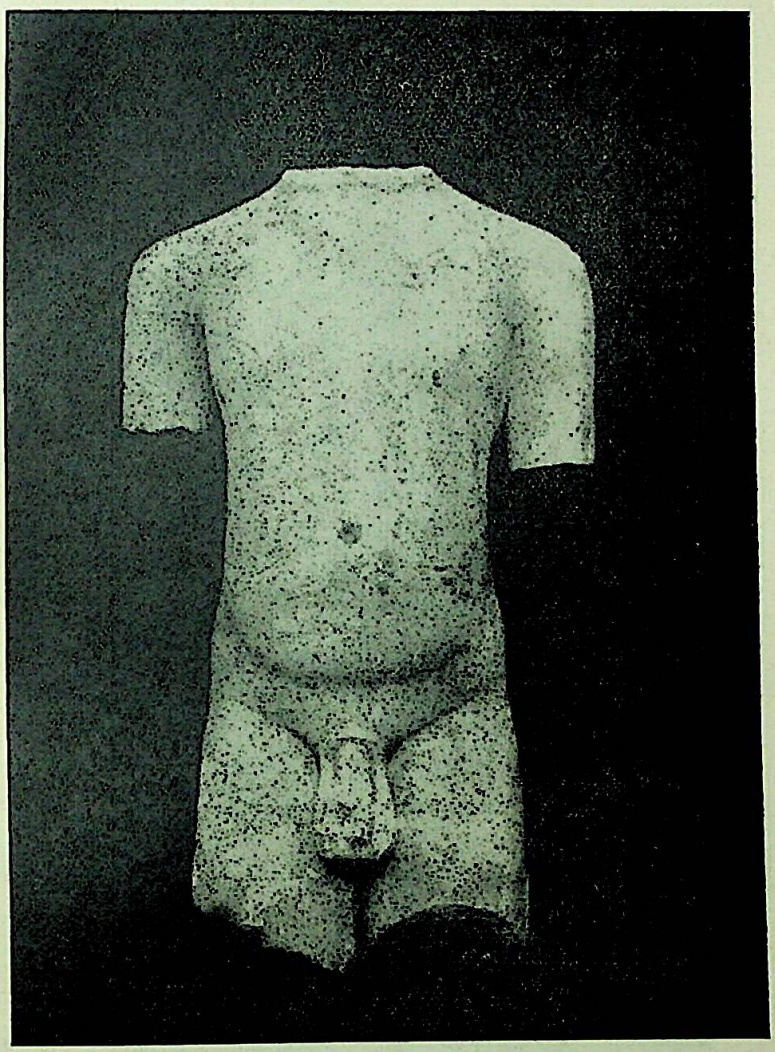

पृ० ३४० जैन तीर्थंकर का धड़ (पाषाण, मौर्यकाल)
(लोहानीपुर, पटना)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

(पटना म्यूजिअम् के सौजन्य से)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चि० ५०

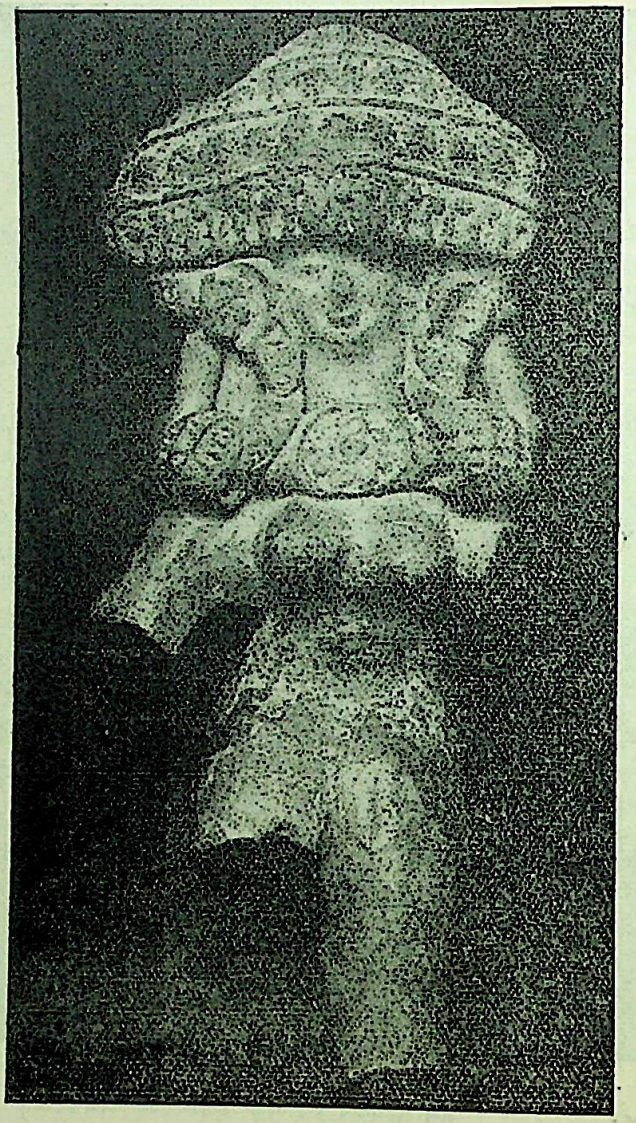

पृ० ३४० (मिट्टी की स्त्री-मूर्ति (बक्सर)
(पटना म्यूजिअम के सौजन्य से)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय-कोरिन्थियन शिरा (यूनानी प्रभाव, पेशावर जिला)
(पृ० ३४०)
(Copyright Reserved. Arch. Surv. India)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

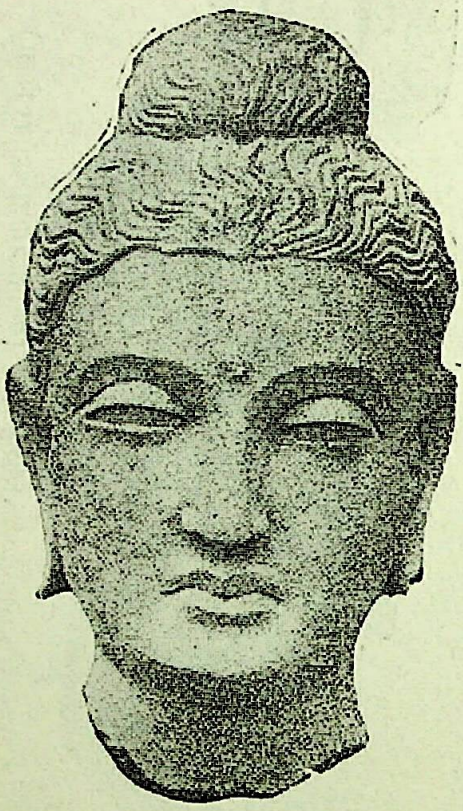

(पृ० ३४०) बुद्ध (गांधार)
(वोस्टन म्यूजिअम्)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वन गया। मथुरा के बोधिसत्व की मूर्ति एक बलिष्ट शरीर की मूर्ति है, और इसकी धारणा और शैली भारतीय है। इस समय बड़ी मूर्ति बनने लगी, कोई-कोई तो मनुष्य के कद का। कणिष्क की सिरकटी मूर्ति उल्लेखनीय है। गुप्त-युग तक आते-आते जो भी विदेशी चिह्न भारतीय मूर्ति-कला पर पाए जाते थे दूर हो गय, और भारतीयता स्वच्छन्द और मुक्त वातावरण में कला की धारणा और वाह्य स्वरूप पर छा गई। मथुरा और सारनाथ इस आन्दोलन के केन्द्र रहे। सारनाथ-परम्परा से ही विहार-बंगाल की मूर्ति-कला गुप्त और पाल-युगों में प्रभावित हुई। नालन्दा व राजगृह में पाई गई मूर्तियां इसके उदाहरण हैं। नालन्दा और गया के समीप कुर्कीहार ग्राम में अष्टधातु की बनी हिन्दू-देवता या बौद्ध-देवताओं की सैकड़ों मूर्तियां मिली हैं। कला की दृष्टि से ये मूर्तियां बहुत ही सुन्दर हैं। दक्षिण-भारत (मामल्लपुर) में पत्थरों पर सुन्दर दृश्य और उत्कृष्ट मूर्तियां गढ़ी गईं। चालुक्ययुग में बादामी में भी मूर्तिकला की एक विशिष्ट शैली का विकास हुआ।

चित्रकला।

प्राचीन भारतीय चित्रकारी का बौद्धधर्म से सम्बन्ध है। बौद्ध चित्रकार का ध्येय था कि धर्म के आदर्शों को, धर्म की पवित्रता को चित्र के द्वारा मनुष्य के हृदय पर प्रभाव डालें। इसलिए ये चित्र दर्शक के उन्नत भावों को जागृत करते हैं। प्राचीन प्रस्तर युग या नवप्रस्तर युग में भी मनुष्य चित्रकारी करता था। यह ललितकला मनुष्य के स्वाभाविक मनोरंजनों में एक है। कैमूर और विन्ध्य पहाड़ियों में इस युग की चित्रकारी पाई जाती है। ये चित्रकारी जीवन से सम्बन्ध रखते हैं। मध्यप्रदेश में रायपुर जिला में स्थित गुफाएं के मुंह पर बलुअे-पत्थर पर रेखाचित्र लाल रंग में रंगे मिले हैं। इनमें मनुष्य और पशुओं के चित्र हैं, और कुछ अनजान लिपि में लेख हैं। मृग, हाथी, खरहा के चित्र स्वाभाविक हैं और इन जानवरों को चंचल (Active) मुद्रा में चित्रित किया

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है। हिंसक गैंडा के पकड़ने का दृश्य का चित्रण स्पष्ट है। इन सब से प्राचीन प्रस्तर-युग का मनुष्य का कलाप्रेम का पता चलता है और उसकी चित्रकला का विषय स्वाभाविक और प्राकृतिक दृश्य थे इसका ज्ञान भी हमें हो जाता है। पर इस युग के बाद हजारों वर्ष तक चित्रकला का पता नहीं चलता है। ईसा की पहली शताब्दी के लाल और काले मिले-जुले रंग के चित्र रामगढ़ पहाड़ी (मध्यप्रदेश) की जोगिमारा गुफा की दीवालों पर पाए गये हैं। इस पर पशुओं और मकानों के चित्र बने हैं, जो कि उस समय की शिल्पकला की नकल है। बहुत सम्भव है कि अन्य चित्र भी इस समय बने हों पर जलवायु के कारण नष्ट हो गये हैं। प्राचीन बौद्ध और हिन्दुसाहित्य में विकसित चित्रकला का उल्लेख आया है। ब्रह्मा स्वयं इस कला के पिता कहे जाते हैं। कृष्ण भगवान का पोता अनुरूद्ध की प्रेमिका ऊषा की सखी चित्रलेखा थी जिसने देवताओं और प्रसिद्ध पुरुषों का चित्र बनाकर ऊषा को दिखलाया था। बौद्ध साहित्य में भी भगवान बुद्ध के समय से ही मानव-चित्र का उल्लेख आया है। बुद्ध के पहले भी यह कला प्रचलित थी ऐसा बौद्ध ग्रन्थों में पाया गया है। कामसूत्र का लेखक वात्सायन ने भारतीय चित्रकला के ६ अंग (षडंग) का विश्लेषण किया है; जिससे यह अनुमान लगाया जाता है। कि यह कला बहुत प्राचीन थी।

पर बौद्धयुग में यह कला अन्य कलाओं की तरह खूब निखरी। चित्रों के उद्देश्य धार्मिक व अध्यात्मिक होते थे। कला के माध्यम से ही बौद्धधर्म के उपदेश, और बुद्ध के जीवन के महत्व का प्रचार देश और विदेश में हुआ। यह माध्यम आकर्षक और सहज भी था, विशेषकर जनसाधारण या विदेशियों के लिए। भारतीय चित्र चीन, पहुंचे। जापान में भी भारतीय चित्रों के प्रभाव पाए जाते हैं।

भारतीय चित्रकला के अमर उदाहरण हैं अजन्ता (हैदराबाद राज्य) के गुफा-मंदिर की दीवालों पर के रंगे चित्र। ये चित्र अब धुंधले

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गये हैं, पर तब भी भारतीय चित्रकला की उत्कृष्ट प्रगति के ज्वलन्त प्रतीक हैं। इन चित्रों में भगवान् बुद्ध के पूर्व जीवन की घटनाओं का सुन्दर और सजीव विवरण है; बौद्धधर्म के इतिहास के ये चित्रित पृष्ठ हैं। भारहूत, सांची और अमरावती की शिल्पकला के विषयों का बहुत अंशों में ये चित्र रूपान्तर हैं। अजन्ता गुफा का सबसे प्राचीन चित्र में भी प्रौढ़ कला है। इन चित्रों का समय ईसा से पहली शताब्दी पूर्व से लेकर पाँचवी शताब्दी तक है। दृश्यों के चित्रण में उत्साह और आत्मविश्वास झलकता है। इन चित्रों का विषय और कला का प्रभाव लंका, जावा, खोटान और तिब्बत की कला व विषयों पर पड़ा। बाघ-गुफा के चित्र भी कला के दृष्टि से उत्तम हैं। गुप्त साम्राज्य में भी गुप्त सम्राटों के प्रोत्साहन से भारत और निकटस्थ देशों में चित्रकला की उन्नति हुई। फाहियान और युआनच्वाँग ने भव्य मकानों और उनके सुन्दर चित्रों का वर्णन किया है। तिब्बती इतिहासकार तारनाथ ने मगध का बिम्बिसार नामक चित्रकार का उल्लेख किया है। बिम्बिसार का समय शायद छठी शताब्दी है।

वृहत्तर भारत (Greater India)।

प्राचीन भारतीय संस्कृति का इतिहास वृहत्तर भारत के ज्ञान के बिना अधूरा रह जायगा। कुछ लोगों का यह ख्याल रहा है कि भारतीय संस्कृति भारतवर्ष तक ही सीमित रही। भारत का धर्म, कला व साहित्य भारत के बाहर, समुद्र के पार नहीं ले जाया गया और समुद्र लांघना भारतीयों के लिए अधर्म है, इत्यादि इत्यादि। पर ये संकुचित विचार बहुत बाद के हैं, जब भारतीय संस्कृति की प्रगति रुद्ध हो गई थी। भारत के प्राचीन इतिहास से यह स्पष्ट है कि भारतीय विद्या, कला व अन्य चीजों का विदेशों में निर्यात होता था, और दूसरे देशों की चीजें भारत में आती थीं। हरप्पा-सभ्यता के समय में भारत के चीज सुमेर में पाए गये हैं, और ऐसा अनुमान किया जाता है कि भारतीय

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यापारियों के मुहल्ले सुमेर के नगरों में बस गये थे। पूर्व-वैदिक साहित्य में हजारों पतवार से खेयी जाने वाली नावों का वर्णन है, और अथाह समुद्र में तूफान से आक्रान्त नाविकों का उल्लेख है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस समय में भी सामुद्रिक यात्राएं व दूरस्थित देशों से व्यापार होता था। और यह स्वाभाविक है। बौद्ध जातकों में भी सामुद्रिक यात्रा व व्यापार का उल्लेख है। धन प्राप्त करने की लालसा भारतीय व्यापारियों को पहाड़ या समुद्र पार पूर्वीय देशों से तिजारत करने को प्रेरित करती थी। ये देश बहुत धनी समझे जाते थे, तभी तो इन देशों को सुवर्णभूमि और सुवर्णद्वीप कहा जाता था। व्यापारियों के साथ साथ धर्मप्रचारक व कलाकारों का भी इन दूरस्थित देशों में प्रवेश हुआ। कुछ लोग यहां आकर बस गये अथवा अपना राज्य स्थापित कर लिया। भारतीय समाज और आचार-विचार इन देशों में फैल गया। ब्राह्मण और बौद्धधर्म का प्रचार हो गया। हिन्दू व बौद्ध मंदिर बन गये। रामायण और महाभारत की कथा लोकप्रिय हो गई। इनके आधार पर नाटक और रामलीला खेला जाने लगा। बुद्ध, कृष्ण, रावण, गणेश इत्यादि की मूर्तियां मिली हैं। भारतीय धर्म और संस्कृति इन देशों पर छा गई, और क्यों नहीं जब यहां सैकड़ों वर्ष तक भारत से आए हुये परिवारों का ही शासन रहा। भारत से दुस्साहसी क्षत्रियों का, व्यापारियों का, धर्म-प्रचारकों और कलाकारों का आगमन बराबर होता रहा। भारतीय उपनिवेश हिन्द-चीन, वर्मा, मलाया, सुमात्रा, जावा, बोर्नियो और बालि प्रायद्वीप में स्थापित हो गये। भारतीय संस्कृति व कला यहां बहुत लोकप्रिय रही। इन देशों की जनता पर भारतीयता का रंग छा गया। भारतीय प्रवासियों का इनसे बड़ा अच्छा सम्बन्ध था। दोनों घुलमिल गये, इसीलिए तो ऐसा नहीं मालूम पड़ा कि भारतीय संस्कृति इन देशों की जनता पर लादी गई, बल्कि सत्य यह है कि इस संस्कृति के गुणों से प्रभा-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वित होकर इन्होंने इसे अपनाया। भारतीय-प्रवासी इन देशों का शोषण कर भारत का आर्थिक भण्डार नहीं भरते थे। इनके लिए तो यहीं इनका घर हो गया। इसलिए इन देशों की उन्नति करना ही इन भारतीयों का ध्येय हो गया। भारतीय संस्कृति के उतार-चढ़ाव, व उसकी धाराओं का ज्ञान उन्हें आते हुये नये भारतीय जत्थों से बराबर होता रहता था। इस तरह भारतीय-प्रवासी और देशीय जनता में अद्भुत समन्वय हुआ। इन्होंने भारतीय नाम रखना शुरू किया; भारतीय धर्म व साहित्य की सेवा करने लगे, भारतीय आचार-विचार अपना लिया, और संस्कृत ही पढ़ी-लिखी जनता की भाषा बन गई। ये इतने हिलमिल गये कि प्रवासी रतीय और देशीय जनता में फर्क निकालना आसान नहीं है।

बंगाल तट पर स्थित ताम्रलिप्ति (तामलुक) बन्दरगाह से हजारों भारतीय मलाया व हिन्दचीन व पूर्वीय प्रायद्वीप जाते थे। गंजाम (गोपालपुर, उड़िसा) और मसलिपटम भी अन्य प्रमुख बन्दरगाह थे। जावा में प्रथम उपनिवेश की स्थापना ७५ ई० में हुई थी। १३२ ई० में जावा का राजा देववर्मन ने चीन सम्राट् के पास राजदूत भेजा था। सुमात्रा में प्रथम भारतीय राज्य की स्थापना श्री विजय में चतुर्थ शताब्दी में हुई थी। सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इसकी बड़ी उन्नति हुई। ६८६ ई० में बौद्ध जयनाग यहां का राजा था। इत्सिंग का कहना है कि सातवीं शताब्दी में श्री विजय बौद्धशिक्षा का केन्द्र था। राज्य का प्रसार मलयद्वीप (MalayPeninsula) तक पहुंच गया था। शिला लेखों के आधार पर यह निश्चित है कि बोर्नियों में चौथी शताब्दी में एक भारतीय राज्य की स्थापना हुई थी। यहां हिन्दू गुफा-मंदिरों के और मूर्तियों के अवशेष मिले हैं। जावा से पूरब बालि प्रायद्वीप में अभी भी हिन्दू-सभ्यता जीवित है। इन पूर्वीय प्रायद्वीपों में पाए गये शिलालेख या मूर्तियों या मंदिरों के अवशेष से यह एकदम स्पष्ट हो जाता क

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय भाषा, साहित्य, धर्म, राजनैतिक व सामाजिक विचार और संस्थाओं का इन देशों पर पूर्ण विजय प्राप्त हो चुका था। इन्द्र, विष्णु, ऐरावत का उल्लेख है, भारतीय ज्योतिष, गणित, भाव या माप का व्यवहार होता था। इन्द्र, विष्णु ब्रह्मा, शिव और गणेश की मूर्तियाँ मिली हैं। इन प्रायद्वीपों में बौद्ध व ब्राह्मण दोनों धर्म फले-फूले।

आठवीं शताब्दी में स्वतन्त्र प्रायद्वीपों के स्थान पर एक साम्राज्य की स्थापना हुई, शैलेन्द्र-साम्राज्य। मलाया, जावा सुमात्रा सभी एक साम्राज्य के आधीन थे। शैलेन्द्र सम्राटों के प्रोत्साहन से महायान बौद्धधर्म का प्रचार हुआ, और वास्तुकला व मूर्ति-कला का अभूतपूर्व विकास हुआ। बरबुदुर का विशाल मंदिर इनके प्रोत्साहन का ही परिणाम था। नागरीलिपि का यहां इसी समय प्रवेश हुआ। शैलेन्द्रों की नाविकशक्ति खूब बढ़ी चढ़ी थी। शैलेन्द्र सम्राट् बलपुत्रदेव ने ९वीं शताब्दी में देवपाल की अनुमति ले नालन्दा में एक विहार बनवाया था। शैलेन्द्रों का दक्षिण-भारत के चोलों से युद्ध हुआ और चोलों को इन प्रायद्वीपों पर विजय प्राप्त हुई। धीरे-धीरे शैलेन्द्र की शक्ति १२ वीं शताब्दी में खत्म हो गई।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

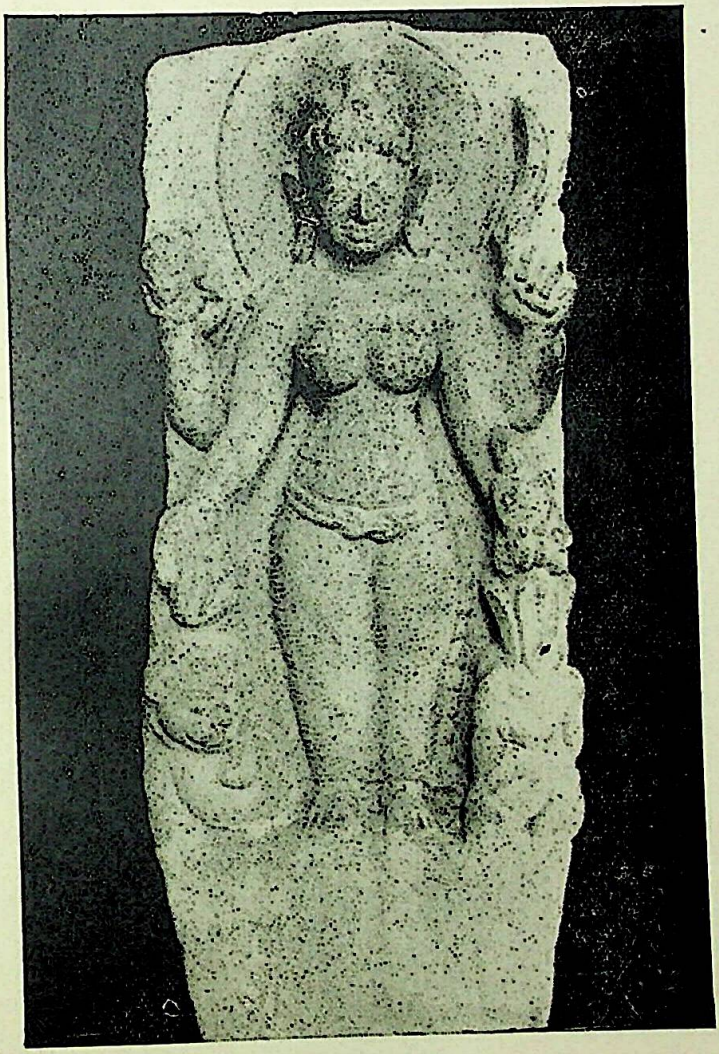

(पृ० ३४१) चंडी की गुप्तकालीन पाषाणमूर्ति (शाहाबाद)
(पटना म्यूजिअम् के सौजन्य से)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पृ ३४१) वसाड़ (वैशाली) में प्राप्त गुप्तकालीन मिट्टी की मूर्ति

(Copyright Reserved· Arch. Surv. India)
CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

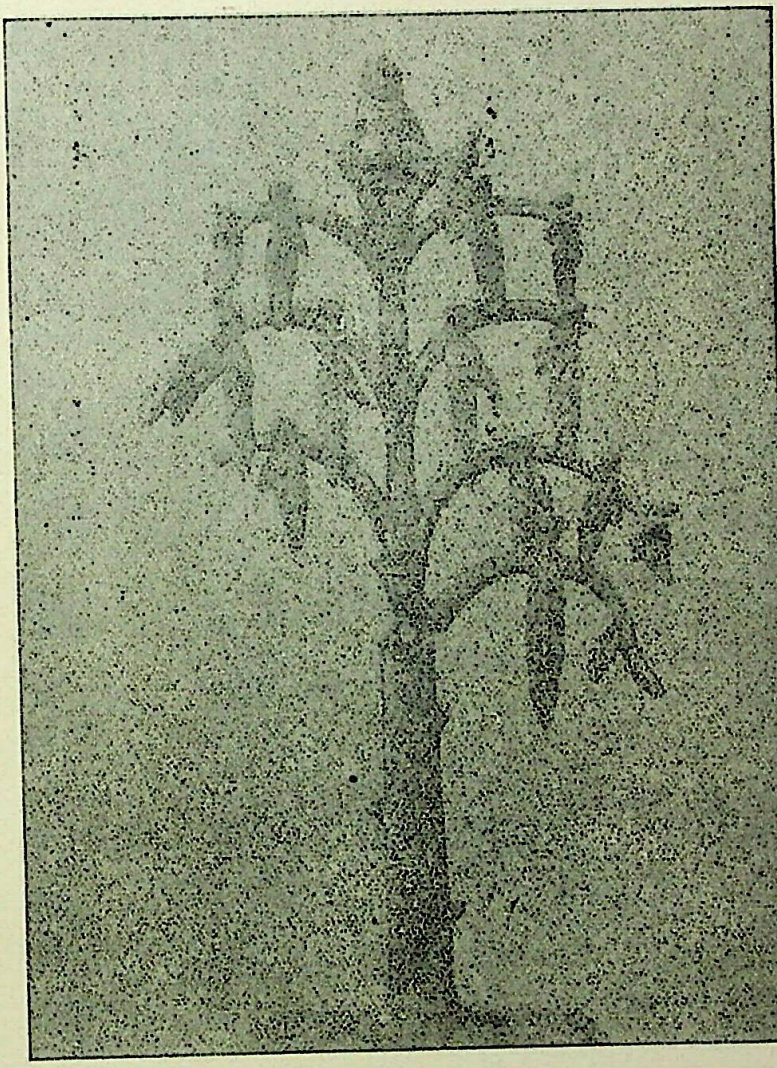

(पृ० ३४१) कांसा का कल्पवृक्ष (चौसा, शाहाबाद)
(पटना म्यूजियम् के सौजन्य से)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

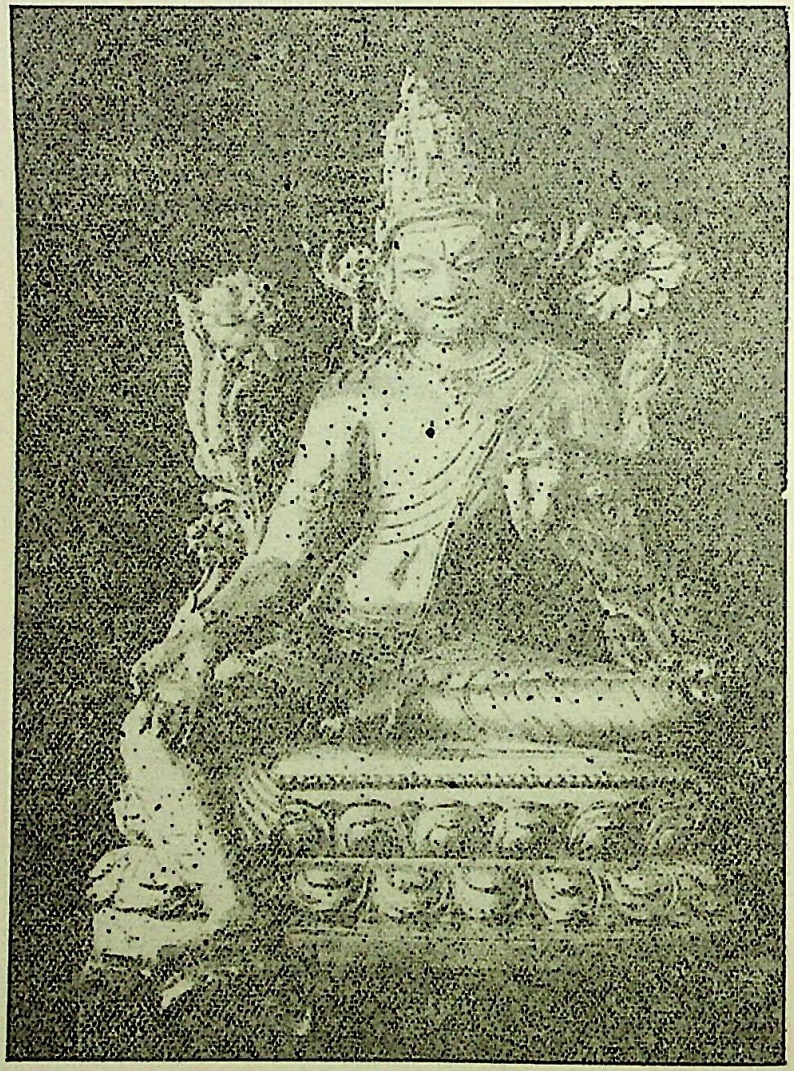

(पृ० ३४१) अवलोकितेश्वर (कुर्कीहार गया)
कांसे की मूर्ति पर सोने का पानी किया हुआ (पालयुग)
(पटना म्यूजियम् के सौजन्य से)

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पृ० ३४१) विष्णु श्रीधर (मुर्शिदावाद, मध्य ११हवीं सदी)
(नाहर संग्रह)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चि० ७४

(पृ० ३४१) सदक्षरी लोकेश्वर (कहगांव १२वीं सदी)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

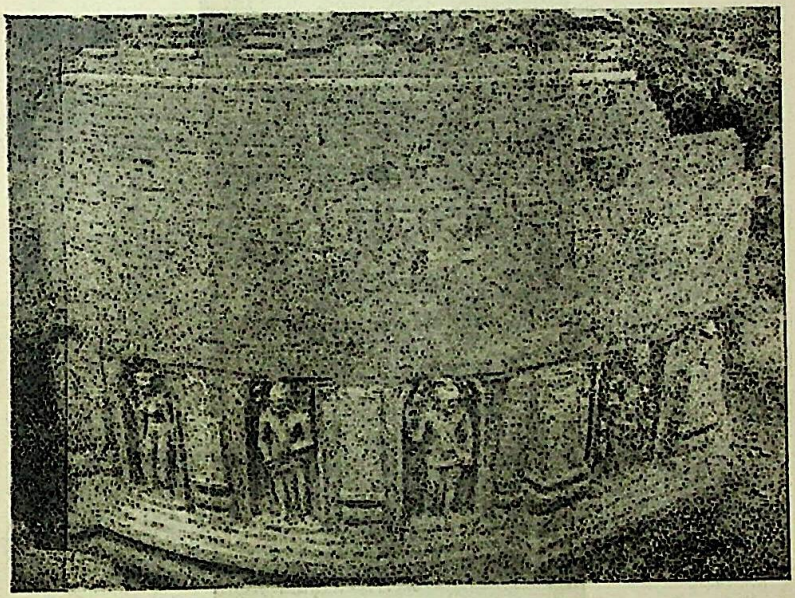

(पृ० ३४१) मनियार मठ (राजगीर) में पाई गई गुप्तकालीन मूर्तियाँ

(Copyright Reserved. Arch. Surv. India)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पृ० ३४१) गंगा (पालयुग)

(From a Cast)

(पटना म्यूजियम् के सौजन्य से)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

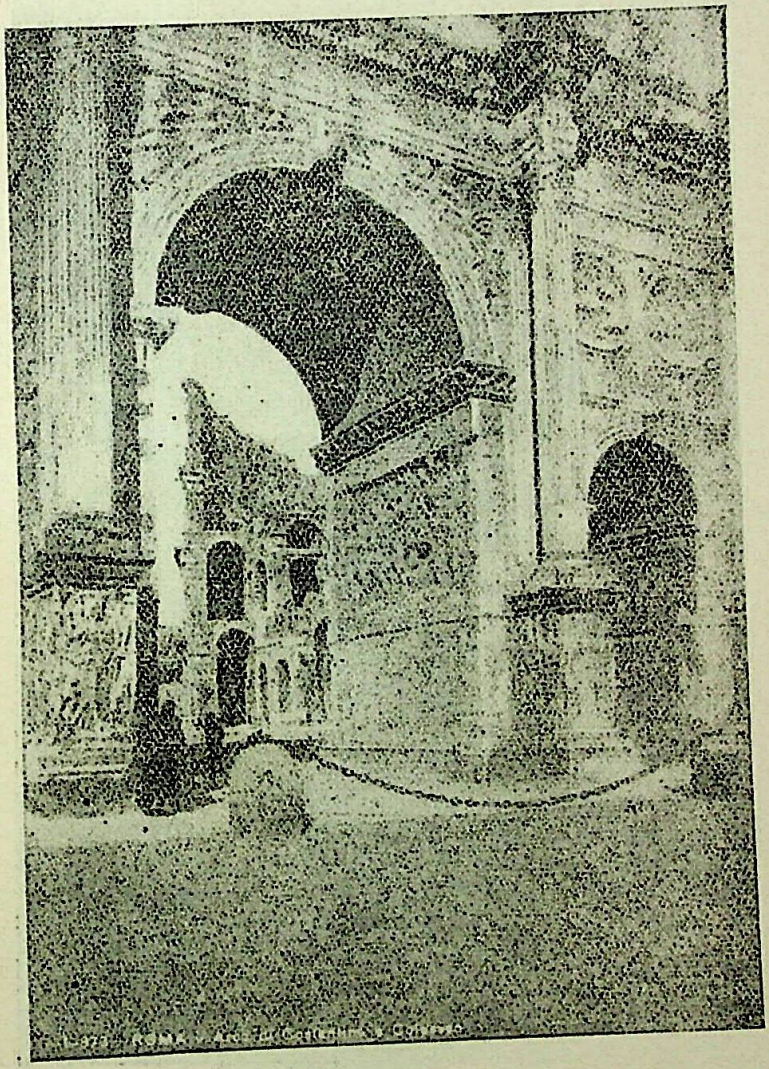

(पृ० २८०) कान्स्टेन्टाइन का जयवृत खंड

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जयवृत खंड (*Triumphal Arch : Rome*)

(पृ० २८०)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पृ० ३४२) स्त्री-मूर्ति (अजन्ता)

(Copyright Reserved. Arch. Surv. India)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

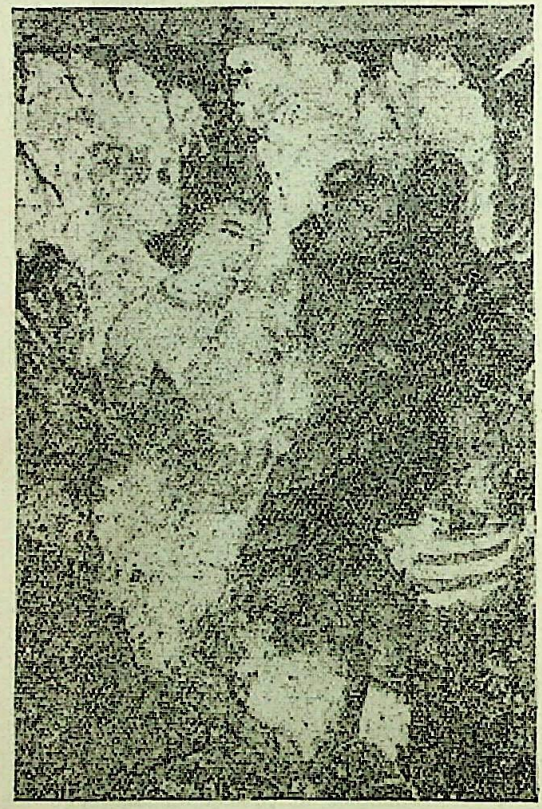

(पृ० ३४२) गन्धर्व (अजन्ता)

(Copyright Reserved. Arch. Surv. India)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

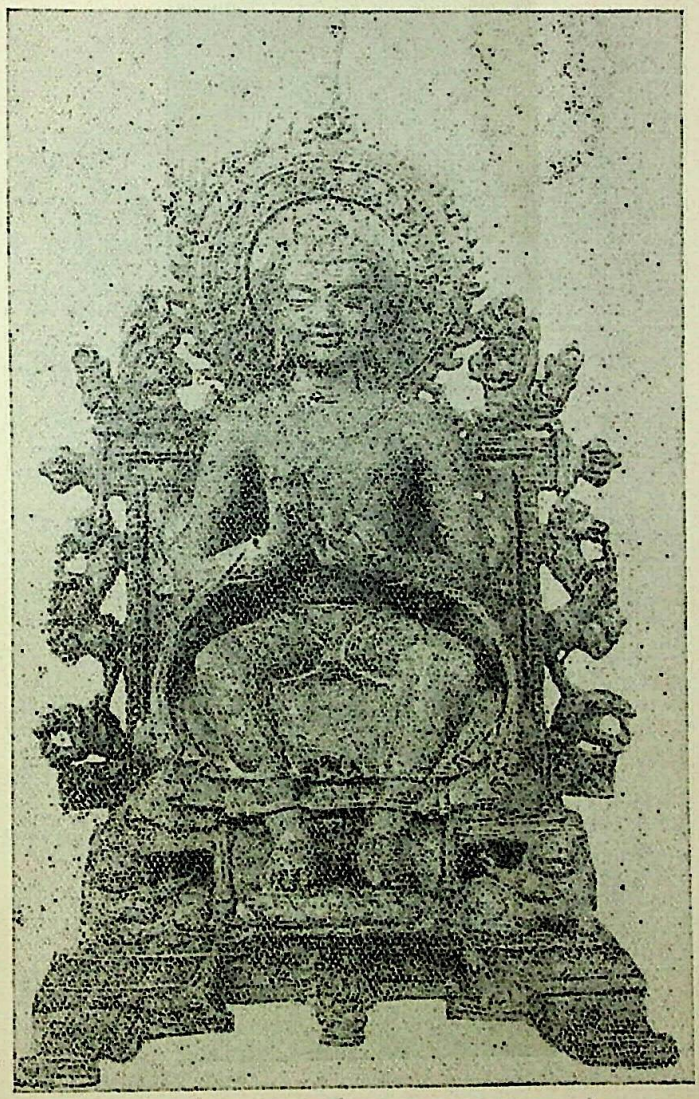

(पृ० ३४१) बुद्ध की कांसे की मूर्ति (नालन्दा)
(पटना म्यूजियम के सौजन्य से)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पृ० ३४१) बुद्ध की मूर्ति कुर्कीहार (गया)
(पटना म्यूजिअम के सौजन्य से)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पृ० ३४२) बच्चा लिए हुए एक स्त्री (अजन्ता)

(Copyright Reserved. Arch. Surv. India)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

चि० ८४
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पृ० ३४२) गंधर्व (अजन्ता, गुप्तकालीन)

(Copyright Reserved. Arch. Surv. India)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

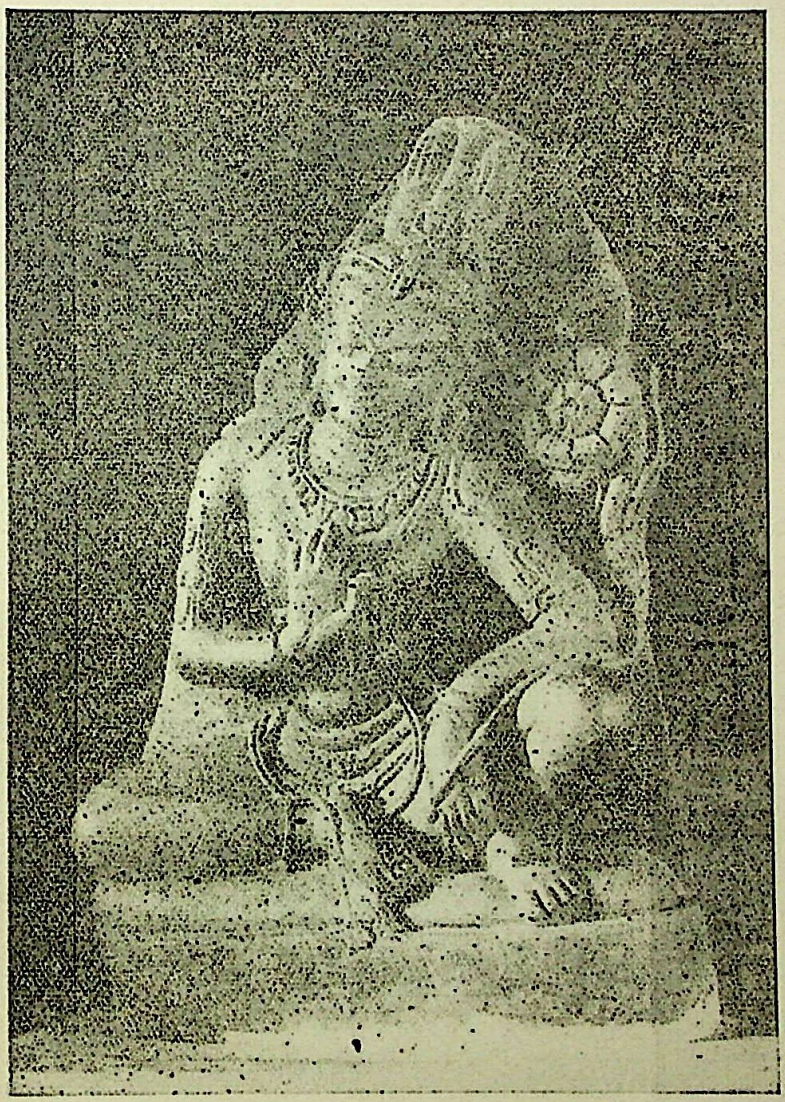

(पृ० ३४१) अवलोकितेश्वर की पाषाण मूर्ति (गया)
(पटना म्यूजियम् के सौजन्य से)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

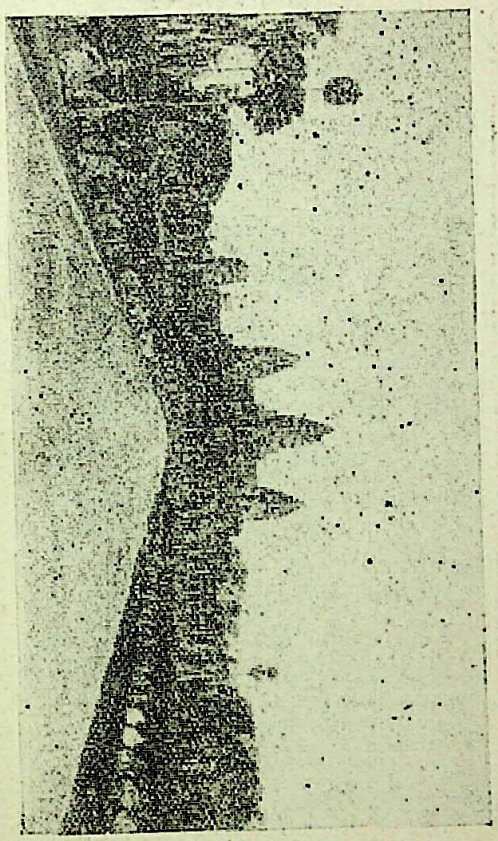

(पृ० ३५६) (कान्यकुब्ज: अंकोरवाट (बारहवीं सदी)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चि० ९१

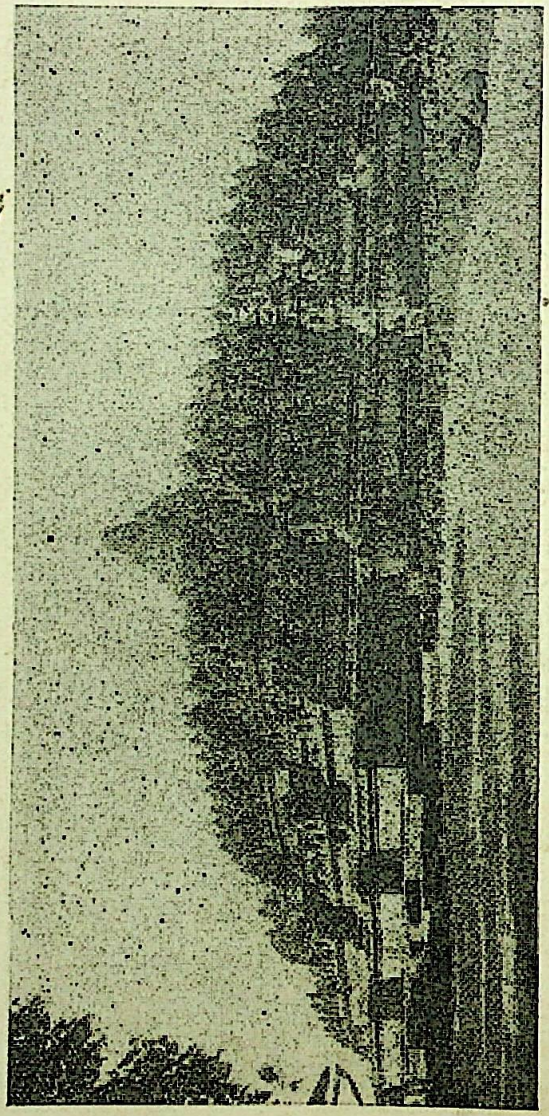

बबदुर का विशाल मन्दिर

(पृ० ३४

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहला अध्याय

इस्लाम का उदय और प्रसार

इस्लाम संसार के महान् धर्मों में एक है। इस्लाम एक धर्म ही नहीं वरन् एक सभ्यता है, जीने का एक तरीका है। इस्लाम के अभ्युदय हुए आज १३०० वर्ष से ज़्यादे हो गये; पर अब भी संसार के कोने-कोने में इस्लामी तरजीह के माननेवाले पाए जाते हैं। इसलिए विश्व-सभ्यता के इतिहास के ज्ञान के लिए इस्लाम को जानना और समझना एक ऐतिहासिक कौतूहल ही नहीं वरन् आधुनिक विश्व की समस्याओं को समझने और सुलझाने के लिए जरूरी है।

इस्लाम की उत्पत्ति अरेबिया में हुई। तुलनात्मक दृष्टि से उस समय अरेबिया एक पिछड़ा देश था, आर्थिक दृष्टि से बड़ा ही दरिद्र था। भौगोलिक दृष्टि से इसे मरुभूमि ही कहा जाता है। धार्मिक आचार-विचार भी बहुत सादे थे। मिथ्या-विश्वास का यहाँ बाहुल्य था। अरब कई जातीय गिरोह में बँटे थे। इनमें प्रतिद्वन्द्विता का भाव स्वाभाविक था। हरी जमीन और चन्द पानी के छिलकों के लिए ये गिरोहें आपस में मार-काट करती रहती थीं। एकता का वस्तुतः अभाव ही था। प्रत्येक अरब में आत्म-सम्मान और स्वतन्त्रता-प्रेम कूट-कूट कर भरा था। अपने को आज़ाद और स्वच्छन्द मानना अरबों का स्वभाव था। यह सच है कि अल्पकाल के लिए वे अपने गिरोह के नेता (Tribal chief) का नेतृत्व मानकर अपने गिरोह की हिफाजत या आर्थिक लाभ के लिए कट मरने के लिए तैयार हो जाते थे। पर अधिकतर वे अपने को किसी भी अनुशासन और संरक्षण से मुक्त ही मानते थे।

ऐसे स्वच्छन्द या आज़ाद ख्याल वाले लोगों में, ऐसे दरिद्र, शुष्क और अनुत्साही देश में हजरत मुहम्मद ने ऐसी जान फूँकी, ऐसा राग अलापा कि सारा अरेबिया कुछ ही समय में जाग गया। अरबों में एकता आत्माभिमान आत्मविश्वास, और अपने धर्म में आस्था की ऐसी लहर उठी कि योरप,

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एशिया और अफ्रिका के बड़े भाग उनके आधीन आ गये। हजरत मुहम्मद के महान् व्यक्तित्व, पवित्र ध्येय और सफल नेतृत्व का प्रमाण और क्या हो सकता है? संसार में इस्लाम का उदय और प्रसार एक युगान्तकारी घटना है। प्रायः एक भूली हुई जाति और पिछड़े हुये देश को अकस्मात् ही संसार के रंगमंच पर एक प्रधान अभिनेता के रूप में ले आना हजरत मुहम्मद ऐसी हस्ती ही की करामात हो सकता था। फिर, इस्लाम ने संसार के एक बड़े भाग पर सिर्फ राजनीतिक विजय ही नहीं प्राप्त किया, वरन् विजित प्रदेशों को काफी सांस्कृतिक दान भी दिया। इस्लाम-धर्म के झंडे के साथ-साथ सभ्यता-कला, साहित्य-का भी प्रसार होता गया। मध्ययुग में योरप और अफ्रिका में इस्लाम ने सभ्यता के कई विशेष शक्तियों को प्रोत्साहन दिया। अतः योरप, एशिया या अफ्रिका कई दिशा में इस्लाम और इसलिए हजरत मुहम्मद का ऋणी है।

मुहम्मद के पहले का अरबिया

इस्लाम के उदय के लिए अरेबिया में पृष्ठभूमि तैयार थी। आधुनिक अरब को देखकर यह समझना मुश्किल हो जाता है कि अरब किसी समय सभ्यता के दूत रहे होंगे। सभ्य जगत् के नजरों से ओट रहकर अरब अभी भी बहुत अंशों में वञ्जारों की जिन्दगी बसर करते हैं -- पर तब भी ऐतिहासिक युग में इसी दरिद्र मरुस्थल के निवासी अरबों ने सातवीं-आठवीं शताब्दि में दुनियां को अपनी शक्ति का प्रमाण दिया था और एक विशेष संस्कृति के वाहक बने थे। पर अरब दुनियां के रंगमंच पर पहले-पहल सातवीं शताब्दि में ही नहीं आये थे। इसके पूर्व भी इन्होंने विश्व-इतिहास में स्मरणीय भाग लिया था।

भूगोल और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध

इस चीज को समझने के लिए हमें अरेबिया के भूगोल पर ध्यान देना होगा। अरेबिया में सिर्फ मरुभूमि या चारागाह ही नहीं है वरन् इस देश के किनारे-२ उपजाऊ जमीन भी है। इन समुद्र तटवर्ती प्रदेशों में स्थायी आबादी बराबर रही है। दक्षिण पश्चिम में Yemen, दक्षिण में हड्रमउत (Hadra-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

maut) प्राचीनकाल में सुगन्धित धूप के लिए प्रसिद्ध, और पूर्व में पर्शिया की खाड़ी के तटवर्ती अल्-हेसा का उपजाऊ प्रदेश उल्लेखनीय है। पश्चिमतट स्थित प्रदेश उबड़-खाबड़ जमीन और पहाड़ी इलाके से परिपूर्ण हैं। यहाँ अच्छे चारागाह हैं जहाँ अरबी घोड़े चरा करते थे। पर एक बात ध्यान देने की यह है कि पूर्व, पश्चिम व दक्षिण तटवर्ती उपजाऊ हरे प्रदेश एक दूसरे से विस्तृत मरुभूमि और मध्य अरेबिआ की ऊँची चौरस-मैदान के द्वारा अलग थे। इसलिए पूर्व, पश्चिम या दक्षिण के व्यापारी और उनके कारवां इस विस्तृत शुष्क प्रदेश से होकर ही इधर से उधर जा सकते थे। प्राचीनकाल से अरब लोग भारत और रोमन साम्राज्य, मेसोपोटेमिया और मिस्र के व्यापार के दूत (agents) या कारिन्दे थे। अरेबिआ की भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि योरप, एशिआ और अफ्रिका के प्राचीन सभ्य देशों से इसका सम्बन्ध प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से बराबर रहा है। विशेषकर दक्षिण अरेबिआ का लोहबान (Frankincense) की जरूरत प्राचीन मिश्रियों को अपने मंदिरों में जलाने के लिए और शवों की सुरक्षा (Mumification) के लिए बराबर रहती थी। अरबों का अपने पड़ोसी यहूदियों से भी बहुत निकट सम्बन्ध था। यहूदी सेमेटिक थे, और बहुत सम्भव है कि इनकी जन्मभूमि अरेबिआ ही हो। हजरत मूसा एक यहूदी पैगम्बर थे, और इनकी स्त्री एक अरब थी, और याहोवा की पूजा मूसा ने इनके प्रभाव से ही अपनाया था। याहोवा अरबी देवता थे—मरुभूमि ही इनका उद्गम स्थान था। यहूदी धर्म और इनके पैगम्बरों के उपदेश का इस्लाम धर्म पर काफी प्रभाव पड़ा। प्राचीन यूनानियों का भी अरबों से सम्पर्क था। यूनानियों और रोमनों के लिए अरेबिआ एक बहुत ही अधिक धनी और समृद्ध देश था। अरबों का आज़ाद ख्याल और स्वतन्त्रता प्रेमी रहने का जिक्र इन्होंने किया है। पर प्रतापी रोमनों की यह कोशिश कि वे अरब व्यापारियों का एकाधिपत्य खत्म कर दें और अल्-यमन पर अधिकार कर लें निष्फल रही।

अल्-हजाज प्रदेश, जिसमें मक्का और मदीना स्थित है, जलवायु और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राकृतिक साधनों की दृष्टिकोण से बड़ा ही अनाकर्षक है। दक्षिण अरबों की तुलना में उत्तर अरेबिआ के निवासी बञ्जारे की जिन्दगी बसर करते थे—हरे-भरे जमीन और पानी के चस्मे के लिए गिरोहें यहाँ से वहाँ घूमती रहती थीं, और आपस में काफी मार-पीट और खून-खराबा होता था। इसलिए काफिलों (Tribes) में काफी प्रतिद्वन्द्विता रहती, और बदला लेने की तमन्ना अरबों का स्वभाव हो गया था। इन दंगों के नेता-विजयी या शहीद-अरब कविता के नायक बने। इस समय का साहित्य भावों के प्रकाश के लिए स्तुत्य है, और इस्लाम के पहले अरबों की क्या जिन्दगी थी इसका दिग्दर्शन कराता है। क़ासीदा (एक प्रकार की कविता) का खूब प्रचार हुआ। इन कविताओं में साहस, स्वामिभक्ति और आत्म-सम्मान—अरबों का खास गुणों—का उल्लेख है। इन बञ्जारों के धार्मिक विश्वास की झलक हम इन कविताओं में पाते हैं। दक्षिण अरेबिआ के सभ्य क्षेत्रों में देवताओं के मंदिर थे, विधिवत् बलि दी जाती थी। अल-हजाज के शहरी इलाकों के बासिन्दे सूर्य की किरण और पेड़-पौधों की तरक्की का पारस्परिक सम्बन्ध जान कर सूर्य की पूजा करते थे। पर बञ्जारे अरबों का धर्म बड़ा ही सादा और अविकसित अवस्था में था। पेड़, पौधा, पत्थर, कूआँ, गुफा सभी इनके लिए देव-दूत थे। सभी प्राकृतिक वस्तु दैवी शक्ति से अनुप्रेरित थे। ये लोग मूर्तियूजक थे। इनमें अंधविश्वास बहुत था। जमजम का पानी इनके लिए बहुत ही पवित्र था। चन्द्रमा की पूजा होती थी। पीछे चल कर सूर्य की भी पूजा होने लगी। इन अरबों का यह विश्वास था कि मरुभूमि में भूतों या जिन्नों का आवास था। जब कि देवता मनुष्य के शुभचिन्तक थे, जिन्न जान के गाहक और आफत लानेवाले थे, इसलिए कई प्रकार की पूजा, जन्तर-मन्तर, ओझा-डाइन के द्वारा इन जिन्नों पर कब्जा किया जा सकता था, ऐसा इनका विश्वास था। अगणित देवी-देवताओं के ऊपर अल्ला (परमेश्वर) है, ऐसा भी इनका विश्वास था। मक्का में ही काबा है। इस्लाम के अभ्युदय के पहले से ही काबा बहुत पवित्र समझा जाता था। काबा

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक घनाकर साधारण भवन था जिसमें एक काला पत्थर रखा था। इस पत्थर की पूजा होती थी। यहाँ वार्षिक धार्मिक उत्सव होते थे, और विशेष धार्मिक पूजा या यज्ञ किया जाता था। इन उत्सवों में अरब की विभिन्न जातियाँ मिलती थीं, विचारों और चीजों का आदान-प्रदान होता था। काबा के चारों ओर पवित्र क्षेत्र (हराम) समझा जाता था। पूरे अरेबिआ में काबा सबसे पवित्र स्थल था, इसलिए अल्-हिजाज़ या मक्का प्रमुख धार्मिक केन्द्र था। धार्मिक और व्यापारिक महत्त्व के साथ २ मक्का को एक और सुविधा यह थी कि कुरैशवंश, जो मक्का का नेता था, अरबों में सबसे अधिक बुद्धिमान् था। इसलिए मक्का का रहनुमा होना इस वंश के लिये स्वाभाविक था। यथ्रिब (मदीना) अल्-हिजाज़ का एक दूसरा प्रमुख शहर था। यह मक्का से ३०० मील उत्तर था। यह अल्-यमन और सीरिया के व्यापारिक-पथ पर था, हरा-भरा था, और यहाँ खजूर की खेती खूब होती थी। यहाँ यहूदी कृषक काफी मात्रा में थे। यहूदी धर्म के रीति-रस्म से अल्-हजाज़ वाकिफ था। इसाई धर्म का भी ज्ञान कुछ अरबों को था ही। कई भावुक और चिन्तनशील अरब अगणित देवी-देवताओं में विश्वास और मूर्तिपूजा की उपादेयता पर संदेह करते थे। एकैश्वरवाद का सिद्धांत, और ईश्वर पर ध्यान लगाना ही इनके लिए सच्चा धर्म था, और अरेबिआ की साधारण जनता के धर्म को यह पाखण्ड ही समझते थे। ऐसे धर्म चिन्तकों को हनीफ कहा जाता था, और मुहम्मद का हनीफों से सम्बन्ध था। एकैश्वरवाद के सिद्धांत पर धार्मिक क्रान्ति का बीज अल्-हिजाज़ में बोया जा चुका था। इसका आधार इसाई धर्म या यहूदी धर्म कहाँ तक था, कहना मुश्किल है।

पर यह स्पष्ट है कि अल्-हिजाज़ में ऐसी बहुत-सी चीजें थीं जो कि इसे अरेबिआ का पथप्रदर्शक बना सकती थीं। यहाँ यहूदियों का धर्म-विश्वास (ईश्वर एक है और उसके पैगम्बर गुजरे हैं) का ज्ञान था। कुछ इसाई भी थे। मक्का और मदीना प्रमुख शहर थे, जो व्यापारिक केन्द्र थे, और जहाँ भिन्न २ जातियाँ और उनके विचार, धर्म मिलते थे। मक्का

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अरेबिआ का प्रमुख धार्मिक स्थल था। प्रमुख उत्सवों का केन्द्र था। यह ठीक है कि यदा-कदा अरेबिआ में हलचल आते थे, रूढ़िवाद, अन्ध-विश्वास के विरुद्ध आवाजें उठती थीं, समकालीन धार्मिक व सामाजिक आन्दोलनों से अरब स्पन्दित होते थे, पर यह सब गम्भीर समुद्र में हल्के झकोरे के सिवा कुछ नहीं था। अधिकतर अरेबिआ शान्त, शुष्क, और रूढ़िवाद और अन्धविश्वासी ही रहा।

मुहम्मद का जन्म और जीवनी

इनमें आत्मविश्वास और धर्म के प्रति अटूट आस्था पैदा करना मुहम्मद की सफलता थी। ५७१ ई० में मक्का के प्रमुख कुरैश वंश में हजरत मुहम्मद का जन्म हुआ। पच्चीस वर्ष की उम्र तक मुहम्मद के जीवन में कोई असाधारण घटना नहीं घटी। मक्का से सीरिया जानेवाले कारवां के एक मामूली साझेदार यह भी थे। व्यापार कुशलता का प्रमाण इन्होंने दिया था। इनकी भोली सूरत और पवित्र जिन्दगी से एक धनी विधवा खादिजा आकर्षित हुई। पहले तो इसने मुहम्मद को अपना एक कर्मचारी बनाया, और पीछे इनसे शादी कर ली। अवस्था में १५ वर्ष बड़ी रहने पर भी खादिजा ने मुहम्मद से सच्ची मुहब्बत रक्खी, और इस वैवाहिक सम्बन्ध का प्रभाव मुहम्मद की आनेवाली जिन्दगी पर पूरा पड़ा।

धनी स्त्री से ब्याह होने के कारण मुहम्मद को आर्थिक चिन्ता से मुक्ति मिल गई। अब इनके स्वभाव में बड़ा परिवर्तन हो गया। मक्का के निकटस्थ हीरा पहाड़ की गुफा में बैठ कर ये विचार में डूबे रहते। इनके मस्तिष्क में ऐसे-ऐसे ख्याल उठते, इनके कान में ऐसी आवाजें पहुँचतीं कि ये परेशान हो जाते। अपनी स्त्री से अपनी परेशानी का जिक्र करते, और यहां इन्हें सहानुभूति, उत्साह और आत्मविश्वास मिलता। खादिजा बराबर यह समझती कि मुहम्मद एक असाधारण व्यक्ति होने जा रहे हैं, और अपने पड़ोसिये और नातेदारों के विपरीत वह मुहम्मद को बराबर बढ़ावा देती रहती, उनके उलझे विचारों को समझने और समझाने की कोशिश करती। जीवनपर्यन्त खादिजा हजरत मुहम्मद की एक वफादार

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्री ही नहीं वरन् एक सच्चा दोस्त रही। जबतक वह बची, हजरत मुहम्मद ने दूसरी शादी नहीं की।

मुहम्मद को हीरा की गुफा में ही ईश्वरीय संदेश मिला कि वे अल्ला के पैगम्बर हैं, खुदा के बताए हुये राह पर लोगों को लाना उनका कर्त्तव्य है। मुहम्मद को रह २ कर मूर्छा आती थी, और कहा जाता है कि इसी हालत में उन्हें ईश्वरीय संदेश देवदूत जैब्रिअल् की जबानी मिलते थे। इन्हीं संदेशों का संग्रह पवित्र कुरान है। हजरत मुहम्मद ने ईश्वर का हुकुम बजाना अपनी जिन्दगी का एकमात्र फर्ज समझा, और जनता में इसका प्रचार अदम्य उत्साह से करना शुरू किया। उनका कहना था कि ईश्वर एक है, वह सर्वशक्तिमान है, वह सृष्टिकर्त्ता है, और मुहम्मद उसके पैगम्बर हैं। जो ईश्वर की आज्ञा का पालन करता है, उसे स्वर्ग में सुख मिलता है, जो झूठे धर्म और विचार में लीन रहता है उसे नरक की घोर यातना सहनी पड़ती है। अल्ला की शरण में पूरी तरह चले जाने में ही मनुष्य का कल्याण है। ईश्वर के चरण में पूर्ण आत्समर्पण ही सच्चा धर्म है। यही इस्लाम है, जिसका अर्थ है पूर्ण आत्मसमर्पण।

पर मुहम्मद के उपदेश आसानी से लोगों ने नहीं अपनाया। कोई उन्हें सनकी कहते, कोई पाखंडी। इस्लाम-धर्म के प्रथम अनुयायियों में खादिजा, अबू बक्र, और अली के नाम उल्लेखनीय हैं। कूरैश के बड़े नेतागण इस धर्म की मुखालिफत करने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ थे। मुहम्मद ने मूर्तिपूजा और अनेक देवीदेवताओं पर विश्वास की धज्जी उड़ाई थी। क़ाबा इस विचार व अन्ध-विश्वास का केन्द्र था, और कूरैश लोग क़ाबा पर अपना प्रभुत्व रहनेके कारण काफी आर्थिकलाभ उठाते थे। मुहम्मद के धर्मप्रचार से उन्हें हानि होने का भय था। इसलिए इनलोगों ने खासकर इनकी उमय्यद शाखा ने मुहम्मद की खिल्ली उड़ाई, 'भला ऊंट का सवार अपने को पैगम्बर कहने लगा है', 'परले दर्जे का सिड़ी और पाखंडी है' इत्यादि-इत्यादि। पर जब हजरत मुहम्मद के धर्म को गुलाम तथा निम्न और दरिद्र वर्ग के लोग अपनाने लगे तो उच्चवर्गीय कूरैशों की नींद हराम हो गई, और अब वे मुहम्मद और

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके अनुयायियों को सताने लगे। मुहम्मद के बहुत से नये अनुयायी तंग आकर अबीसिनिया भाग गये। हजरत मुहम्मद को भी मक्का में रहकर धर्म प्रचार करना असम्भव मालूम पड़ने लगा। इसलिए जब ६२० ई० में मदीना (याथ्रिब) के कुछ व्यापारी मक्का में हजरत मुहम्मद से मिले और इनके विचारों से प्रभावित होकर इन्हें मदीना आने का न्योता दिया तो मुहम्मद ने इसमें खुदा का हाथ देखा, और ६२२ ई० में मक्कावासियों के उद्दण्ड विरोध के कारण अपनी जन्मभूमि छोड़ कर ये मदीना चले आये। इस्लाम के इतिहास में इस घटना को हिज्र कहते हैं, और यहीं से मुसलमानों का सम्वत् शुरू होता है।

मक्का से मदीना भागना

इस्लाम के इतिहास में, मुहम्मद की जिन्दगी में, हजरत मुहम्मद का मक्का छोड़कर मदीना जाना एक अहम् वाक़या है। मदीना ने मुहम्मद का स्वागत किया, और मुसलमानों की तायदाद बढ़ने लगी। पर तब भी बेफिक्र रहना मुहम्मद के लिए असम्भव रहा। मक्का वाले अभी भी मुहम्मद के पीछे पड़े थे। हजरत मुहम्मद ने इसलिए मदीने में अपनी शक्ति का संगठन किया, और आत्मरक्षा के लिए दृढ़प्रतिज्ञ रहे। अनुशासन और सैनिक योग्यता पर ध्यान दिया गया। परिस्थिति ऐसी थी कि शक्तिशाली मक्का से अपने और अपने धर्म की रक्षा के लिए मुहम्मद को शान्तिप्रिय धर्मप्रचारक न रह कर सैनिक और राजनीतिक प्रभु बनना पड़ा। अपने शहर छोड़ने का मुहम्मद को स्वाभाविक रंज था, और मक्का में फिर सफलतापूर्वक धर्मप्रचार के लिए सैनिक शक्ति और अनुशासनव्रत की आवश्यकता अकाट्य थी। इन परिस्थितियों के कारण ही मुहम्मद के जीवन और उनके उपदेश में तबदिली आई। इस आधार को भूलकर ही बहुत से विद्वान् यह समझते हैं कि मदीने पहुँच कर धर्मप्रचारक मुहम्मद एक कूट राजनीतिज्ञ, अधिकारलिप्सु और युद्धप्रिय बन गये, और इन्होंने तलवार की जोर पर ही अपने धर्म का विस्तार करने की एकमात्र नीति अपनाई।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मक्का और मदीने के बीच कई लड़ाइयाँ हुई जिनमें बद्र का युद्ध का खास महत्व है। सर्वमान्य युद्ध-विश्राम (Truce) के दिनों में ही मक्का के एक बड़े कारवाँ को सीरिया से लौटते हुये मदीनेवासी अन्सारों (मुहम्मद के हिमायती) ने बद्र में रोका, और ३०० मुसलमानों ने हजरत मुहम्मद के नेतृत्व में और धार्मिक भावना से प्रेरित होकर हजारों मक्का-नागरिकों को हराया और कारवाँ को लूट लिया। इससे अन्सारों की आर्थिक अवस्था की उन्नति हुई, और फौजी सामान भी मिला। इस समय मुहम्मद को इन चीजों की बहुत जरूरत थी। बद्र का युद्ध से मुसलमानों का साहस बढ़ा, हजरत मुहम्मद में विश्वास बढ़ा, उनके उपदेश के पीछे दैवी प्रेरणा थी ऐसा समझना इनके लिए अब स्वाभाविक था। मुसलमानों ने यह पहली बार तलवार उठाई थी, और इसमें उन्हें आशातीत सफलता मिली, इसका प्रभाव इस्लाम और उसके प्रचारकों पर काफी पड़ा। काफी अनुसंधान या अन्वेषण के पश्चात् कई विद्वानों का यह विचार है कि यह लड़ाई भी हजरत मुहम्मद की आक्रमणक नीति का प्रमाण नहीं है, वरन् आत्मरक्षा के लिए ही इन्हें तलवार का प्रयोग करना पड़ा। मक्का के सरमायेदार मुहम्मद की तरक्की नहीं सह सकते थे, मक्का-मदीना में आर्थिक संघर्ष भी था। मक्कावाले मुहम्मद और मदीने को नेस्तनाबूद करने के लिये सैनिक तैयारी कर रहे थे। उनके कारवाँ उपर से तिजारत करने सीरिया जाते थे, पर असल में फौजी सामान खरीदा जाता था। हजरत मुहम्मद्र को ऐसी खबरों का सुनगुन हुआ था, इसलिए अन्सारों ने सशस्त्र होकर जासूसी करने मदीने के पास ही छिपे थे, और जब उन्हें यह पता चला कि उनकी धारणा ठीक ही है, तब उनके लिए यही ठीक था कि वे इस कारवाँ को रोकें और मक्का की फौजी तैयारी में बाधा डालें, वरना उनका अस्तित्व ही खतरे में था। इसीका नतीजा था बद्र का युद्ध (६२४ ई०)।

बद्र का युद्ध।

इस युद्ध ने मदीनावासियों में यह धारणा स्थापित कर दिया कि उन्हें मक्का के जबाबी हमले का सामना करना पड़ेगा। अतः उन्हें अब और भी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक मुहम्मद का अधिनायकत्व मानना पड़ा, उनका नेतृत्व और उनकी सूझ पर अपनी बुद्धि को समर्पण करना बिल्कुल जरूरी और स्वाभाविक जान पड़ा। मुहम्मद भी अब सैनिक आवश्यकताओं को नजरअन्दाज नहीं कर सके, और उनका अधिनायकत्व स्थापित हो गया। वे धार्मिक नेता तो थे ही, पर परिस्थिति ने अब उनकी सैनिक योग्यता और सियासी काबलियत को अधिक आगे कर दिया। मदीनावासियों का भय और मुहम्मद की आशंका ठीक साबित हुई। मक्कावासियों ने मुसलमानों पर आक्रमण किया, उन्हें हराया, हजरत मुहम्मद भी जख्मी हो गये। पर इससे न मुहम्मद, न उनकी भक्तों की हिम्मत टूटी। मदीने की रक्षा के लिए इन्होंने चारों ओर गड्ढे खोदे। मक्का वालों ने मदीने शहर पर आक्रमण किया, और मक्कावासी मुहम्मद का उत्तम सुरक्षात्मक युद्ध-कौशल देखकर लौट गये। यह उल्लेखनीय है कि मुहम्मद को मक्का के विरोध में अधिकतर निवारक (defensive) शक्ति का ही उपयोग करना पड़ा। पर इन सफलताओं का नतीजा यही हुआ कि इस्लाम का प्रचार और भी तेजी और दृढ़ता से होने लगा। कई अरब जातियाँ (Beduins) ने डर कर या मुहम्मद का सफल व्यक्तित्व के प्रभाव में आकर इस्लाम कबूल कर लिया। मदीने में यहूदी काफी थे, और यहूदी धर्म का प्रभाव मुहम्मद पर कुछ-कुछ जरूर पड़ा था। यहूदी अब मुहम्मद और अरबों की बढ़ती शक्ति से भयभीत हो गये। उनकी आर्थिक स्थिति पर भी चोट हो सकता था। वे खजूर और बागीचों के स्वामी थे। मक्का-मदीना के युद्ध में उनकी सहानुभूति मक्का के साथ है, ऐसा संदेह मुहम्मद को हुआ, और इसी बहाने हज़ारों यहूदी मौत के घाट उतारे गये, उनके खजूर-के-बागीचे अरबों के हाथ लगे। यहूदी-धर्म का प्रभाव घटा। यहूदियों के विरुद्ध इस कठोर नीति के पीछे धार्मिक कट्टरता ही नहीं, वरन् आर्थिक और बदला लेने की भावना भी काम कर रही थी।

मक्का-हज़रत मुहम्मद की जन्मभूमि भी अब जल्दी ही मुहम्मद के कब्जे में आ गया। मुहम्मद की शक्ति बढ़ रही थी, उनका धर्म का प्रसार

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगे बढ़ रहा था। मक्का के सरमायदारों की हिम्मत पस्त थी, मक्का पर उधर मुहम्मद और अन्तारों का क्या पूछना। मुहम्मद अधिकार ने ६२८ ई० में करीब डेढ़ हजार मुसलमानों के साथ मक्का में पदार्पण किया। उन्होंने एक सन्धि की जिसके मुताबिक मुसलमान और गैरमुसलमानों के साथ एक-सा ही व्यवहार करने का वादा किया गया। मुहम्मद का यह व्यवहार अपने जानी दुश्मन—शहर के प्रति इतिहास में लामिसाल है। इसका प्रभाव भी ऐसा ही हुआ जैसा होना चाहिये था। कई प्रभावशाली व्यक्ति और गिरोहों ने मुहम्मद के धर्म को मान लिया। खालिद-इब्न-अलि वालिद और अम्-इवन अल् आस् मुसलमान हो गये, और इस्लाम के प्रचार में इनकी तलवार की करामात सर्वविदित है। ६३० ई० में मक्का पर सम्पूर्ण विजय प्राप्त हो गई। मुहम्मद ने मूर्तियों को तोड़ डाला, और सत्य की आगमन की घोषणा की। काबा इस्लाम का सबसे बड़ा तीर्थ स्थान है, यह एलान कर दिया गया, उसके चारों ओर की जमीन को हराम् या युद्ध से परे माना गया। इसके पहले मुहम्मद ने नेमाज का रुख जेरुसलेम से हटाकर काबा की तरफ कर दिया था। कई अरब जातियाँ अब मुहम्मद की शरण में आ गईं। मुहम्मद और इस्लाम अरबों की उन्नति के प्रतीक बन गये। इसाई और यहूदियों से मुहम्मद ने सन्धि कर ली। उन्हें अपने सभी अधिकार, धर्मपालन इत्यादि छोड़ दिये गये, उन्हें सिर्फ एक कर देना पड़ता था, जो जिजया कहलाता है। इस्लाम ने इसके बदले में इनकी रक्षा का जिम्मा लिया। गैरमुसलमानों के प्रति यह नीति इस्लाम और मुहम्मद की धार्मिक सहिष्णुता, नैतिक आत्मविश्वास, और व्यवहारिक बुद्धिमानी की निशानी है।

८ जून ६३२ ई० में मदीना में मुहम्मद की असामयिक और अचानक मृत्यु हो गई।

इस्लाम-धर्म की रूपरेखा :

मुहम्मद ने अपने को खुदा का पैगम्बर कहा, और उनके मुख से निकले उपदेश और नियम खुदा के हुकुम थे। इन्हीं सूराओं (Surahs)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का संकलन कुरान कहलाया। इसका पहला लिखित संकलन अबू-बक्र के संरक्षण में हुआ, और खलीफा उस्मान के समय में इसका दूसरा संशोधन हुआ। कुरान में मुसलमानों के धार्मिक रीति-रस्म के अलावे, सामाजिक नियम जैसे व्याह-शादी के नियम, समाज के विभिन्न वर्गों के पारस्परिक व्यवहार, उचित जीवन-चर्या के नियम भी हैं। अतः कुरान मुसलमानों का धार्मिक, सामाजिक और वैयक्तिक आचार-विचार की पुस्तक है, और संसार में शायद ही कोई अन्य धार्मिक पुस्तक का इतना वृहत् प्रभाव इतने दिनों तक टिक सका है।

हजरत मुहम्मद के उपदेश बहुत सीधे थे। ईश्वर एक है, मूर्तिपूजा पाखंड है, अन्य देवी-देवताएं कपोलकल्पित हैं, ऐसा मुहम्मद का विचार था। व्यभिचार या यौन-व्यसन और मद्यपान हराम कहा गया। बड़े-बूढ़ों का आदर करना, मां-बाप की आज्ञा पालन करना, और सबके प्रति न्याय बरतना इस्लाम के सिद्धान्त हैं। खुदा की मर्जी के बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता, और मनुष्य के बुरे और अच्छे कर्मों का फैसला Doomsday (क़यामत के दिन) भगवान करते हैं; अच्छे कर्म करनेवालों को स्वर्ग-सुख और अनाचारियों को नरक की यातना सहनी पड़ती है। अतः इस्लाम अपने सिद्धान्तों के आधार पर संसार के सर्वश्रेष्ठ धर्मों में एक है। गरीबों की मदद करना इस्लाम का एक प्रमुख सिद्धान्त था। प्रत्येक मुस्लिम को जकात या दरिद्रों और असहायों की सहायता के लिए एक विशेष कर देना पड़ता था। अनाथ, गुलाम और अतिथियों के प्रति कुरान बड़ी ही दयालु है। मुहम्मद ने कहा कि खुदा बराबर पैगम्बर भेजते रहे हैं, समाज और व्यक्ति के सुधार के लिये। अब्रहम, मूसा, ईसा को मुसलमान पैगम्बर मानते हैं। पर अल्ला का सबसे बड़ा और आखिरी पैगम्बर हजरत मुहम्मद है। अल्ला एक है और मुहम्मद उसके पैगम्बर हैं, इसे माननेवाला मुसलमान है। उपवास करना भी धार्मिक कर्त्तव्य था। रमजान के महीने में एक मास तक उपवास करना होता है। दिन में पांच बार मक्का की ओर मुंह कर नेमाज पढ़ना प्रत्येक मुसलमान का फर्ज है, सिर्फ शुक्रवार को सार्वजनिक

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेमाज मस्जिद में पढ़ी जाती है। नेमाज की विधि और शब्द निश्चित हैं, और इसे वारवार दुहराना मुसलमानों में एकता और अनुशासन लाता है। सार्वजनिक नेमाज के द्वारा अनुशासनहीन अरबों में भी अनुशासन आ गया, एकता का भाव मजबूत हुआ, जिसका परिणाम इस्लाम और अरबों के लिए वड़ा ही लाभदायक हुआ। काव़ा की तीर्थयात्रा मुसलमानों के लिए धार्मिक कर्त्तव्य समझा गया। संसार के हरेक कोने से गरीव-अमीर मुसलमान एक निश्चित समय पर काव़ा पहुँचते हैं। इससे मुसलमानों की धार्मिक एकता वढ़ती है। भाईचारा का सिद्धान्त मजवूत होता है। इस्लाम का सवसे प्रमुख सिद्धान्त था भाईचारा का आदर्श। प्रत्येक मुसलमान, अमीर या गरीव, उच्चकुल का या निम्नकुल का, इस्लामी मजहव और समाज में समान स्थान रखता था। यहां जाति-प्रथा (Caste-system) का स्थान नहीं था। न पुजारीवर्ग थे, और न कठिन धार्मिक विधियां जिसके फलस्वरूप साधारण धर्मावलम्वी पुजारीवर्ग के चंगुल में फंस जाते हैं। इस मुस्लिम भाईचारे के सिद्धान्त के आधार पर मुहम्मद ने अरव जातियों में पारस्परिक वैमनस्य और जातीय-भक्ति को त्याग कर राष्ट्रीय एकता और चेतना की ज्योति जलाई, जिसका परिणाम हुआ—अरवों में अदम्य उत्साह की उत्पत्ति और इस्लाम की आशातीत प्रगति। अरव जातियों में एकता का अभाव ही वड़ा भीषण दोष था। अव एक उच्च-स्तर पर, धार्मिक सतह पर, अरव एक हो गये—सव मुसलमान हो गये और धार्मिक उत्साह से प्रेरित होकर इन्होंने इस्लाम का झंडा देश-विदेश में फहराया। गरीव अरबों के लिए देश-विजय की नीति से आर्थिक लाभ भी था। धार्मिक उत्साह और आर्थिक लाभ की आशा दोनों ही इस्लाम के प्रसार और अरवों का साम्राज्यविस्तार के कारण थे।

मुहम्मद का चरित्र :

मुहम्मद का जीवन वड़ा ही सादा था। मदीना आने के बाद उनका प्रभाव खूब वढ़ा। वे सफल सेनापति और राजनीतिक नेता बन गये। उनके भक्त उनके विरुद्ध कुछ सोचने की भी कल्पना नहीं कर सकते थे।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुहम्मद का व्यवहारिक अधिनायकत्व स्पष्ट था। पर अपने साथियों के प्रति व्यवहार में मुहम्मद ने वही भाईचारा और प्रेम का सिद्धान्त रखा। धन की भी अब कमी नहीं थी और मुहम्मद चाहते तो ऐशो-इशरत से रहते। पर उन्होंने ऐसा नहीं किया। वे अभी भी कभी कपड़े सीते देखे जाते थे। नेमाज के नेता रहकर भी उनके लिए कोई विशिष्ट स्थान या ऊँचा और सज्जित प्लैटफार्म नहीं था। बहुत पीछे चलकर जरा सी ऊँची जमीन पर मुहम्मद की जगह थी। अपने वैयक्तिक जीवन में मुहम्मद ने अपनी स्त्रियों और बच्चों के प्रति प्रेम का व्यवहार रखा। यह ठीक है—उन्होंने चार शादियाँ की, और काफी उम्र में भी। पर उस समय के समाज के लिए मुहम्मद ने बड़ा आत्मबल दिखाया। अरबों में उस समय अति बहु-विवाह की प्रथा सीमा से बाहर चली गई थी। अधिक से अधिक चार शादियाँ ही करने की आज्ञा का पालन करना उस समय के नये मुसलमानों के लिए आसान नहीं था। मुहम्मद के उपदेशों में इस पर बराबर जोर दिया जाता था कि मुसलमानों को वैयक्तिक जीवन, दिनचर्या नैतिक सिद्धान्त पर आधारित हों। सभी धर्म, बौद्ध जरथुस्त्र-धर्म, इसाई धर्म, नैतिक बल को ही सभी धर्म का आधार मानते हैं।

दूसरे धर्मों के प्रति भी मुहम्मद के भाव पवित्र थे। एकैश्वरवाद के सिद्धान्त के कारण उन्होंने मूर्तिपूजा और बहुदेव-देवी पूजा का विरोध किया, पर यहूदी और इसाई धर्म का, जो एकैश्वरवाद में विश्वास रखते थे, मुहम्मद ने कभी मजाक नहीं उड़ाया, बल्कि उनके पैगम्बरों को पैगम्बर माना। काबा की पूजा को मानना इस्लाम के पूर्व-अरब-धर्म से कुछ लेना ही था। अपने जीवनकाल में मुहम्मद ने किसी भी धर्म के विरुद्ध बुरे शब्द नहीं कहे; धार्मिक मदान्धता या कट्टरता इस्लाम में पीछे आई। गैरमुसलमानों के प्रति मुहम्मद का व्यवहार नम्र रहता था। मक्का-विजय इसका स्पष्ट उदाहरण है। पर सत्य यह है कि मुहम्मद ने प्रभुत्व प्राप्त करने की लालसा नहीं दिखाई थी। उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व और पवित्र आचरण से प्रभावित होकर उनके भक्तों और हिमायतियों ने

CC-0 In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वेच्छा से अपने को उनके हाथ में समर्पण कर दिया। तत्कालीन अरबों में मुहम्मद इतना अधिक बुद्धिमान, व्यवहारिक और सचरिक थे कि अरबों को अपनी बुद्धि और शक्ति मुहम्मद के चरणों में न्योछावर करना एकदम स्वाभाविक जान पड़ा। फिर आत्मरक्षा और धर्म की रक्षा के लिए मुहम्मद को इस परिस्थिति में राजनीतिक और सैनिक शक्ति-सार्वभौम सत्ता का प्रयोग करना पड़ा। तब भी मुहम्मद कभी प्रभुता के कारण मदान्ध नहीं हुये, और अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व से वे अरबों की धर्मान्धता (Fanaticism) को उभाड़ते नहीं वरन् दबाते ही रहे।

इस्लाम का प्रसार :

मरुभूमि में स्थित पिछड़े अंधविश्वासी और फ़िरकेबाज अरबों में मुहम्मद ने एकता और नवोत्साह का ऐसा राग फूँका कि मरुभूमि अब इन आत्मविश्वासी और संगठित अरबों के कार्यक्षेत्र के लिए बड़ा ही छोटा रह गया। मुहम्मद के द्वारा प्रचारित धर्म बहुत ही सीधा और सादा था। इसलिए इसका सीधे-सादे अरबों के हृदय और मस्तिष्क पर पूरा अधिकार हो गया। अरब उत्साह के साथ इस धर्म की रक्षा और प्रचार के लिए कटिबद्ध हो गये। मुहम्मद ने अपने अनुयायियों को धर्म प्रचार के लिए आवाहन किया, मिथ्याचार, मूर्तिपूजा और अंधविश्वास की जगह पर सत्य को प्रतिष्ठित करने को कहा। इस धर्मप्रचार में लाभ ही था। धर्म का विस्तार होता था, मरने पर स्वर्गसुख की प्राप्ति होती थी, और विजय के फलस्वरूप अरबों की आर्थिक स्थिति सुधरती थी। आर्थिक और धार्मिक दोनों प्रकार के भावों से प्रेरित होकर अरब अब मरुभूमि से निकल कर संसार विजय के लिये अदम्य उत्साह और विश्वास के साथ निकल पड़े। इस बात पर ध्यान देना है कि मुहम्मद के तुरन्त पहले अरेबिआ में कई वर्षों से लगातार सूखा पड़ रहा था। बढ़ती आबादी और भूखमरी से बचने का उपाय, देश विजय ही था। अस्थायी जातीय एकता के स्थान पर धर्म के आधार पर मुहम्मद ने उनमें स्थायी एकता, दृढ़ अनुशासन और नेता में विश्वास पैदा किया। जातीय नेता (Tribal)

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के प्रति वफादारी तो रही, पर उस वफादारी के ऊपर मुहम्मद या वृहत् इस्लाम के प्रति जबरदस्त वफादारी स्थापित की गई। इन्हीं गुणों के कारण ही इस्लाम की आशातीत प्रगति हुई, अरब साम्राज्य की स्थापना हुई। धर्म की रक्षा के लिए, सत्य की प्रतिष्ठा के लिए, इस्लाम के फैलाव के लिए तलवार का सहारा लेना इस्लाम के नेताओं के लिए अस्वाभाविक नहीं था। हजरत मुहम्मद ने भी तलवार उठाई थी। गैरमुसलमानों या काफ़िरों के विरुद्ध इस्लाम के हित में धर्मयुद्ध (जेहाद) छेड़ना धर्म ही समझा गया।

हजरत मुहम्मद ने अपना वारिस नहीं चुना था। उनकी मृत्यु के बाद मुस्लिम नेताओं ने मुहम्मद के प्रथम अनुयायियों में वृद्ध अबू-बक्र-मुहम्मद के श्वसुर—को मुसलिम जगत् का रहनुमा-खलिफा चुना। खलिफा धार्मिक नेता ही नहीं वरन् राजनीतिक प्रभु भी था। अबू-बक्र को मध्य अरब की जातियों को इस्लाम के झंडे के नीचे फिर से लाना था। हजरत मुहम्मद के समय अल् हिजाज मुस्लिम हो गया था, और अरबों की मुखतलिफ जातियाँ भी इस्लाम को अपना चुकी थीं। पर हजरत मुहम्मद की मृत्यु के बाद मध्य अरेबिआ की कई क़ाबिलों ने पूरे अरेबिआ को तलवार के जोर पर इस्लाम के झंडे के नीचे ले आये। अरब जातियाँ खलीफा के मातहत एक हो गईं। देश-विदेश जीतने के पहले इस्लाम को पूरे अरेबिआ पर अपना अधिकार स्थापित करना जरूरी था। अरबों की दृष्टि अब पर्शिया और सीरिया की ओर गई। सीरिया इस समय ईसाइयों के अधीन था, और बाइजन्टाइन राज्य (रोमन साम्राज्य की पूर्वी शाखा) का एक अंग था। हजरत मुहम्मद के समय में ही मुसलमानों की एक टुकड़ी इस ओर गई थी। पर मूता की लड़ाई में उसकी हार हो गई। पर अरबों का हौसला पस्त नहीं हुआ। सीरिया के विरुद्ध अबू बक्र के समय में ही अम्रइब्न अल् अस् और अन्य सेनानायकों के मातहत सेना भेजी गई। पर इस्लामी सेना की सम्पूर्ण विजय खालिद के आने पर हुई। खालिद पर्शिया में लड़

अबू-बक्र की खिलाफत

CC-0 In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा था, पर उन्हें सीरिया में इस्लामी सेना की मदद के लिए दौड़ने का हुक्म मिला। अबू बक्र का देहान्त हो चुका था, और खालिद ने सीरिया की राजधानी दमस्कस् (Damascus) पर अधिकार कर लिया और बाइजन्टाइन की बड़ी इसाई-सेना को यारमक में परास्त किया। ६७३ ई० में जेरुसलेम पर इस्लाम का विजयी झंडा फहराया और भूमध्यसागर के कई तटवर्ती स्थानों पर मुसलमानों का अधिकार हो गया।

उमर के शासनकाल में ही सम्पूर्ण पर्शिया खिलाफत के मातहत आ गया। अबू बक्र के समय में ही खालिद ने ससानिअन साम्राज्य पर धावा बोल दिया था। पर निर्णयात्मक विजय के पहले ही खालिद को सीरिया जाना पड़ा। मुसलिम सेना की हालत पर्शिया में बिगड़ने लगी। पर उमर ने इस ओर ध्यान दिया और ६४२ ई० तक सम्पूर्ण ससानिअन साम्राज्य मिट चुका था। बेबिलोन, तेहरान, हमदान, इस्पहान सब मुस्लिम सेना के चपेट में आ गये। यूफ्रेटिज से ऑक्सस् नदी तक फैला हुआ ससानियन साम्राज्य की जगह पर अब इस्लामी झंडा फहराने लगा।

उमर की खिलाफत—पर्शिया, सीरिया

इसी समय पश्चिम में सीरिया से इस्लामी सेना मिश्र की ओर बढ़ी, और ६४२ ई० में अलेक्जेन्ड्रिया मुसलमानों के कब्जे में आ गया। मिश्र अब खिलाफत साम्राज्य का एक अंग बन गया, और अलेक्जेन्ड्रिया एक प्रमुख सांस्कृतिक केन्द्र। मिश्र से पश्चिम उत्तरी अफ्रिका भी अब बचा नहीं रहा, त्रिपोली और बर्का भी अब बाइजन्टाइन साम्राज्य के हाथ से सीरिया और मिश्र के साथ-साथ निकल गये।

सीरिया से ही एक सेना उत्तरपश्चिम की ओर बढ़कर आरमिनिया, जौर्जिया और अजरबाईजान को जीत लिया। काकेशश पर्वत तक इस्लामी सेना पहुँच गई, और कान्सटेन्टिनाप्ल पर भी कब्जा करने की कोशिश की गई। इसाई बाइजन्टाइन-राज्य का खात्मा ही होना चाहता था, और योरप पर अरबों की छाया पड़ने वाली थी। अरबों की नाविक-सेना (Fleet) ने साइप्रस और रोड्स द्वीपों पर भी कब्जा कर लिया।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खलीफा उमर को मृत्यु ६४४ ई० में हो चुकी थी, और उस्मान (उथ्मान) तीसरे खलीफा हुये। पर उनके विरुद्ध थे मुहम्मद के साथ मक्का से भागनेवाले। खलीफा की हत्या की गई और ६५६ ई० में अली खलीफा बने। अली हजरत मुहम्मद के चचेरे भाई थे और उनकी दुलारी लड़की फ़ातिमा के पति। पर कुछ लोग अली को उस्मान की हत्या का उत्तरदायी समझते थे। मुहम्मद की सबसे छोटी स्त्री आईशा भी अली के विरुद्ध हो गई। सीरिया का शासक (गवर्नर) मुआविआ ने अली के विरुद्ध विद्रोह किया। मुआविआ खलीफा बने। ६६१ ई० में मस्जिद जाते हुये अली की हत्या की गई। अली को शहीद समझा जाने लगा, अल्ला का देवदूत और सखा समझा जाने लगा। मरने के बाद अली की प्रतिष्ठा और भी बढ़ी, और उनके विचार के प्रति लोगों में सहानुभूति बढ़ी। उनके पुत्र हसन-हुसैन को काफी मदद का आश्वासन मिला। अली और उनके वंश को ही खिलाफत की गद्दी के सच्चे उत्तराधिकारी मानने वाले शिया कहलाने लगे और ये लोग मुआविआ और उसके उत्तराधिकारी अर्थात् उम्मयद वंश को खलीफा नहीं मानते हैं। हजरत अली की मृत्यु के बाद मुआविआ ने अपने को ६६१ ई० में खलीफा होने का एलान किया। पर पर्शिया ने अलिहसन को खलीफा माना। इस प्रकार मुसलमानों में पहली-बार इतनी बड़ी फूट हो गई। पर अल्हसन शांतिप्रिय थे, और मुआविया के आश्वासन पर कि उन्हें अच्छी पेन्शन मिलेगी मदीना चले गये, जहां ४५ वर्ष की उम्र में (६६९) में उनकी मृत्यु हो गई। शायद उन्हें जहर दिया गया था। शियालोग इस अपराध का दोष मुआविआ को ही देते हैं। मुआविआ ने अपने पुत्र याजिद को अपना उत्तराधिकारी चुनने की घोषणा कर दी, और तबसे खलीफा का पद वंशगत--पिता के बाद पुत्र का अधिकार—हो गया। हसन के भाई हुसैन ने याजिद को खलीफा नहीं माना, और पर्शिया के शियाओं ने इन्हें ही हसन के बाद खलीफा माना। याजिद इस विद्रोह को नहीं सह सकता था। कर्बला की मैदान में लड़ाई हुई, मुहरम्म महीने के दसवें दिन ६८० ई० में हुसैन मारे

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गये, और उनका कटा सिर याज़िद के पास दमस्कस् भेज दिया गया। हुसैन बड़ी बहादुरी से लड़े थे, और शियाओं ने इन्हें शहीद माना। कर्बला के मैदान में ही शियापंथ की असली नींव पड़ी। अब शिया फिर सुन्नी (जो उम्मयद् खलीफों को मानते हैं) से समझौता नहीं कर सकते थे, और अभी भी मुहरम्म के उस दिन शोक में बिताते हैं।

इस युद्ध का धार्मिक महत्व जो भी हो पर मुआविआ और उसके पुत्र याज़िद ने खिलाफत की एकता कायम रक्खी। उन्होंने खलीफा पद के उत्तराधिकारी चुनने का आसान तरीका निकाला—वंशगत परम्परा। इससे अब एक खलीफा के मरने पर दूसरे खलीफा के चुनने में झंझट का अवसर मिट गया। मुआविआ और याज़िद ने अपना अधिकार पूरे खिलाफत पर स्थापित कर लिया। दमस्कस् अब नयी राजधानी थी। मुआविआ ने उम्मयद् वंश की स्थापना की। इस वंश की खिलाफत में इस्लाम का प्रसार और भी अधिक हुआ।

खलिफा अब्दअल् मलिक और अल्वालिद के समय में इस्लाम का प्रसार पूर्व और उत्तर-पूर्व में बहुत हुआ। अल्-इराक, अल्-हिंजाज और अल्-यमन में खिलाफत की शक्ति फिर से दृढ़ की गई। इसमें अल्-हज्जाज नामक एक कुशल सेनापति का बड़ा हाथ था। पर्शिया को भी शान्त किया गया, पर्शिया की खाड़ी के उस पार स्थित उमान प्रदेश पर खिलाफत का राज्य दृढ़ किया गया। अल्-हज्जाज के प्रतिनिधि अब्दअल् रहमान ने अफगानिस्तान पर आक्रमण किया, और काबुल का तुर्क राजा को कर देना स्वीकार करना पड़ा (६६६-७००)। खोरासान तो पहले ही इस्लामी झंडे के नीचे आ गया था, और अब उसका गवर्नर कुतैबा वक्षु (Oxus) नदी को पार कर तूरान देश में पहुँच गया, और बल्ख, बोखारा, समरकन्द और ख्वारिजाम् (खीवा) को रौंद डाला। जक़्सार्टीज प्रदेश या फरगाना भी अब कुतैबा के अधीन था। अब इस्लाम पहले पहल मंगोल जातियों के बीच पहुँच गया। बौद्ध-धर्म के माननेवालों से भी सामना हुआ और समरकन्द, बोखारा और बल्ख के बौद्ध विहारों

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Kanpur. Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को नष्ट किया गया, और मूर्तियों को तोड़ डाला गया। यहाँ बहुत से तुर्क मुस्लिम हो गये। कुतैबा या नस्र इब्न सय्यार ने चीनी तुर्किस्तान और ताश्कन्द को ७५० ई० के लगभग इस्लामी राज्य के अधीन कर लिया। मध्य एशिया में अब इस्लाम की स्थिति दृढ़ हो गई।

इधर जब अरबों का विस्तार और इस्लाम का प्रसार उत्तर-पूर्व में महान् चीनी-साम्राज्य तक पहुँच गया, पूर्व की ओर भारत पर ध्यान गया। भारत से अरबों का व्यापार बहुत पुराना था, और अल् इराक़ और पर्शिया से व्यापारिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध प्रागैतिहासिक काल से बराबर हो रहा था। अरब जहाजी-सौदागर हिन्दमहासागर के प्रायद्वीपों से व्यापार करते थे, और अरब का सागर के तटवर्ती भारत के प्रदेशों से होकर गुजरते थे। दाहिर उस समय सिन्ध का राजा था। अरबों के जहाज, जो लंका से वापस आ रहे थे, सिन्ध के नजदीक समुद्री डाकूओं के द्वारा लूटे गये। दाहिर ने इस घटना की जिम्मेवारी से इन्कार किया, और हज्जाज ने दाहिर के विरुद्ध लड़ाई छेड़ दी। उसका असल मकसद साम्राज्य विस्तार था; वह खिलाफत का आधिपत्य दूर २ तक स्थापित करना चाहता था। अन्त में मुहम्मद-इब्न-अल्-क़ासिम के नेतृत्व में अरबों को विजय प्राप्त हुई (७१२-१३ ई०)। दाहिर मारा गया। सिन्ध और मुलतान अरब साम्राज्य के अधीन आ गये। पर अरब-साम्राज्य भारत में इससे अधिक नहीं फैल सका। अरब नेताओं की कमजोरी और भारत के देशी राज्यों का विरोध ही इस असफलता के कारण थे। पर भारत बहुत दिनों तक इस्लामी झंडे के बाहर नहीं रह सका। महमूद गजनी (१००८-१०२६) ने भारत पर कई चढ़ाइयां की। छोटे-छोटे देशी राज्यों में विभक्त भारत उसका मुकाबिला नहीं कर सका। धार्मिक उत्साह और धन की लालच से प्रभावित महमूद गजनी ने भारत के प्रमुख नगरों को लूटा और मंदिरों को तोड़ा; कन्नौज, मथुरा, इनमें प्रमुख हैं। महमूद गजनी ने अपने राज्य में पंजाब मिला लिया था। उसके बाद गजनीवंश की अवनति हो गई, पर शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी ने पंजाब को जीता, और पृथ्वीराज को

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Mumbai. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तराईन की दूसरी लड़ाई में (११९३) हराकर दिल्ली पर अधिकार कर लिया; फिर जयचन्द्र को हरा कर कन्नौज जीत लिया। उसका सेनापति कुतबुद्दीन ऐबक ने दिल्ली के इर्दगिर्द देशों को जीता और मुहम्मद इब्न् बख्तियार खिलजी ने बंगाल और बिहार को जीतकर इन्हें कुतबुद्दीन के साम्राज्य में मिला लिया (११९९–१२०१ ई०)। अल्तमश के समय में मालवा और मध्य-भारत मुसलमानों के अधीन आ गये। प्रायः समूचे उत्तर भारत मुस्लिम राज्य के अधीन था। अलाउद्दीन खिलजी ने दक्षिण भारत को भी जीत लिया। पुराने हिन्दू राज्य—देवगिरि, कांची, द्वारसमुद्र, मदुरा, वारांगल —दिल्ली के अधीन हो गये। लगभग समूचा भारतवर्ष मुस्लिम साम्राज्य के अन्तर्गत था।

इधर जब पूर्व में इस्लाम भारत में अपना पैर जमा रहा था, पश्चिम में योरप भी इस तूफान से नहीं बच सका। सीरिया से कान्स्टेन्टिनेपल् पर कई बार आक्रमण किया गया—स्थल और जलमार्ग से—, पर अन्त में अरबों को यहां निराशा ही मिली। पर अरब हताश नहीं हुये। मिश्र और त्रिपोली तो जीते जा चुके थे। बर्बरों और बाईजन्टाइन के दस्तों से अरबों को यहां लड़ना पड़ा; पर अन्त में अलजिरिया, कार्थेज इत्यादि उत्तरी अफ्रिका के तटस्थित नगरों पर अरबों का अधिकार हो गया। पश्चिम में अरब अटलान्टिक सागर तक फैल चुके थे, और यहां से जिब्राल्टर होकर दक्षिण-पश्चिम योरप की ओर बढ़े। मूसा और उसका सेनाध्यक्ष तारिक ने स्पेन विजय किया। स्पेन में विजिगौथों (Visigoths) का राज्य था, उनमें फूट का दौरदौरा था, और शासन ढीला और कमजोर था। उत्तर अफ्रिका के बर्बर बड़ी तायदाद में मुसलमान हो गये थे। उनमें नया धार्मिक-जोश था, और नये मुल्कों को जीतने और लूटने की आकांक्षा। बर्बरों के सहयोग से अरबों के जहाजी दस्ते जिब्राल्टर पहुँचे। तारीक के नाम पर ही इस पहाड़ी चट्टान का नाम जिब्राल्टर पड़ा, और यहाँ से स्पेन पर धावा बोल दिया गया। ७१२–१३

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक पूरा स्पेन अरब-बर्बर के अधिकार में आ गया। विजिगौथों के प्रमुख शहर कार्डोवा और सेवील अरबों के हाथ आ गये। कई विजिगौथ सरदारों को कैदी बना कर मूसा दमस्कस् ले गये। मूसा के पश्चात् स्पेन से अरबों पिरेनी का पहाड़ पारकर दक्षिण फ्रांस में घुस पड़े (७२० ई०)। पर चार्ल्स मार्टेल ने अरब सेनापति अब्दुल रहमान को टूरस् की लड़ाई (७३२ ई०) में हरा दिया। टूरस् का युद्ध बड़ा महत्वपूर्ण है; यद्यपि टूरस् के युद्ध के बाद भी अरब फ्रांस पर चढ़ाई करते रहे, और कई वर्षों तक दक्षिण फ्रांस के कुछ भागों पर इन्होंने अपना स्वत्व जमाये रक्खा। यह भी ठीक है कि यदि टूरस् की लड़ाई का दूसरा नतीजा भी होता तब भी कोई खास परिणाम नहीं होता, क्योंकि अरब जिब्राल्टर से हजार मील दूर थे, और इस आधार पर से योरप-विजय करना मुश्किल था। फिर किसी चीज की हद होती है। अरब ज्वारभाटा का अब जोर खतम हो रहा था, अधिक आगे बढ़ना अस्वाभाविक होता।' पर तब भी टूरस् की लड़ाई ने यर्थाथतः अरब साम्राज्य की चरमसीमा निश्चित कर दिया। इसके बाद अरबों का ह्रास होना शुरू हो गया, आगे बढ़ने के बदले पीछे ढकेले जाना ही अब बाकी रहा।

पर तब भी यह आश्चर्यजनक है कि सौ वर्ष के भीतर अरबों ने अपना साम्राज्य और इस्लाम का झंडा चीन से दक्षिण फ्रांस तक, और तीन महादेशों में फहराया। इस असाधारण सफलता के कई कारण थे। मुहम्मद के उपदेश और प्रभावशाली व्यक्तित्व ने अरबों में अपने नये धर्मके प्रति अपार उत्साह का संचार किया था। अपना धर्म का प्रचार करना, सत्य और ईश्वर की प्रतिष्ठा करना, मुहम्मद ने परम धार्मिक कर्त्तव्य बताया। धर्मयुद्ध में मरने पर स्वर्ग-सुख की प्राप्ति होती है, यह भी अरबों को युद्ध में निर्भय और उत्साही रखता था। धार्मिक उत्साह से अरबों की देश-विजय की नीति को जरूरी प्रेरणा और बहुत अंशों में सफलता मिली। पर यही एक कारण नहीं था। मुहम्मद ने अरब जातियों को धर्म के आधार पर एक किया, और जातीयता के स्थान पर अरब राष्ट्र की उत्पत्ति हुई।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

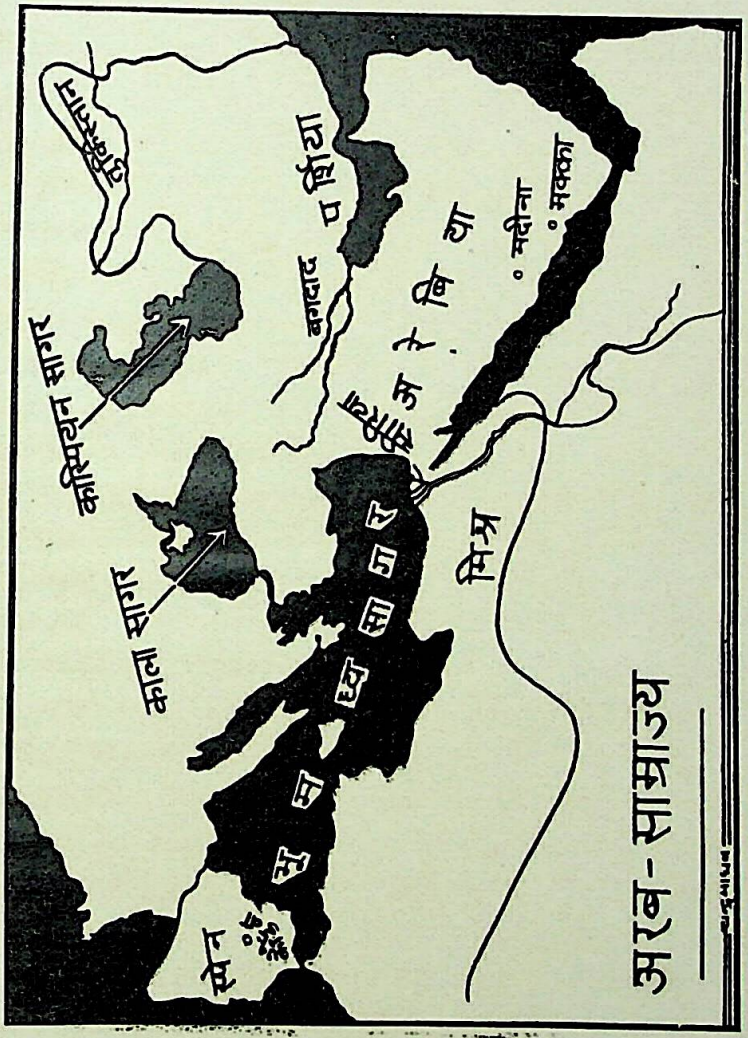

(Facing Page 22)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस राष्ट्रीय चेतना से अनुप्रेरित होकर अरबों में राष्ट्रीय मान और मर्यादा का ऐसा नशा चढ़ा कि वे दूर २ देशों पर विजय प्राप्त कर अपने राष्ट्र की उन्नति के लिए मारने-मरने के लिए तत्पर हुये। धार्मिक और राजनैतिक आधार के अलावे आर्थिक लाभ की दुश्चिन्ता भी दरिद्र अरबों को दूसरे देशों की विजय से ही मिट सकती थी। इन्हीं कारणों से अरब जी-जान लगा कर लड़ते थे, विजय और पराजय पर उनका धर्म और राष्ट्र की मर्यादा ही नहीं वरन् उनका अस्तित्व मुअस्सर था। इसीलिये तो महान् संकट के बावजूद भी जान हथेली पर रखकर लड़ना अरबों का स्वभाव हो गया था। मरने पर स्वर्ग, और विजय प्राप्त होने पर सांसारिक समृद्धि, आर्थिक दुश्चिन्ता से मुक्ति, और अपने धर्म और पैगम्बर के प्रति वफादारी से धार्मिक सन्तोष प्राप्त होगा इन सिद्धन्तों पर विश्वास करनेवाले अरबों का रास्ता रोकना किसी भी शक्ति के लिए आसान नहीं था। इस्लाम की नीति विजितों के प्रति, समकालीन स्थिति को ध्यान में रखते, उदार थी। विजित अपना धर्म व रीति-रिवाज एक 'कर' दे रक्षा कर सकते थे, धार्मिक-दमन से बच जाते थे। इसलिए इरान या बाईजन्टाइन या सिन्ध की सरकारों के विरुद्ध जनता के बहुत बड़े भाग ने अरबों का स्वागत किया। पर अरबों की युगान्तकारी विजय के पीछे] समकालीन शक्तियों की कमजोरी थी। जब अरेबिआ में नई शक्ति का उदय हुआ, उस समय समकालीन सभ्यजगत् के पुराने राज्य अपना दम तोड़ रहे थे, अवनतोन्मुख थे। फिर फूट का बोलबाला था। शासन में भ्रष्टाचार, जनता में असन्तोष, धार्मिक मदान्धता,, और अन्य धर्मावलाम्बिओं का दमन इत्यादि अवगुण इन राज्यों में, स्पेन हो या भारत, कम-वेश मौजूद थे। रोमन साम्राज्य का पूर्वी भाग बाईजन्टाइन राज्य के अन्तर्गत था। इस राज्य के शासक कमजोर थे, राज्यपरिवार में झगड़े होते रहते थे, और जनता में उत्साह का नाम नहीं था। सीरिया, एशियामाइनर, मिश्र में अरबों को रोकने में जनता ने भाग नहीं लिया—बाईजन्टाइन साम्राज्य की रक्षा के लिए उनमें उत्साह का पूर्ण अभाव था। स्पेन में भी उपर लिखित कमजोरियाँ वर्त-

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मान थी, पर्शिया भी उस समय पतनोन्मुख था। आरामतलब और आपस में लड़नेवाकु ससानिअन राजवंश और उच्चवर्ग उत्साही अरबों के सामने नहीं टिक सके। भारतवर्ष भी इस समय बुरे हालत में था। हर्षवर्द्धन के मरने के बाद उत्तर भारत में कई छोटे-बड़े स्वतन्त्र राज्य स्थापित हो गये थे, इनमें मेल नहीं वरन् द्वेष और लड़ाई थी। किसी भी संकट में, चाहे वह राष्ट्रीय या राजनैतिक हो, वे एक होकर मुकाबिला तो क्या करते, एक दूसरे के विरुद्ध विदेशी को मदद देने में नहीं हिचकिचाते थे। वर्ण-व्यवस्था (Caste System) का रूप इतना अधिक स्थिर हो गया था कि क्षत्रियवर्ग के सिवा कोई वर्ग किसी भी सार्वजनिक संकट में विदेशी से लड़ने के लिए तैयार नहीं था। राष्ट्रीय चेतना का यहाँ अभाव था। इसलिए भारत मुसलमानों के अधीन शीघ्र हो गया। अरबों की सफलता का एक कारण उनका सैनिक कौशल भी था।

उम्मयद वंश की खिलाफत में इस्लाम की अद्भुत प्रगति हुई। चीन से फ्रांस तक और अतलांतिक सागर से सिन्धु नदी तक अरब साम्राज्य विस्तृत था। पूरे राज्य में अरबी भाषा लागू की गई। कई शासन सुधार किए गये। कृषि में भी तरक्की की गई। कला के क्षेत्र में प्रगति हुई। इस समय अरब संस्कृति का सर्वांगपूर्ण विकास हुआ, और अरेबिआ प्रत्येक दृष्टिकोण से प्रगति के पथ पर था।

उम्मयद वंश का पतन

पर यह उल्लेखनीय है कि यह सब होते रहा जबकि खिलाफत में भीतरी कमजोरी और फूट आ गये थे। उत्तर और दक्षिण अरब की जातियों में कैस और यमन में बराबर विद्वेष रहा। उम्मयद खलीफों को कभी इस और कभी उस दल का सहारा लेना पड़ता था। खलीफा राष्ट्र का प्रतीक नहीं वरन एक गुट का नेता रह गया। खलीफा की गद्दी के लिए भी पैतरेबाजी होती रहती थी। किसी नियम का इमानदारी और दृढ़ता से पालन नहीं होता था। इन सब पैतरेबाजी का भी एक ही नतीजा हो सकता था—राज्य में अस्थिरता और विद्वेष को बढ़ावा देना। फिर शिया लोग उम्मयद वंश के जानी दुश्मन

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। अल् इराक में शियों का बहुमत था, और अब राष्ट्रीय और धार्मिक दोनों कारणों से उम्मयद-वंश के प्रति उनका रुख खुले विरोध का हो गया। उम्मयद वंश के कई खलीफा बड़े ऐश-इशरत से रहते थे, और सच्चे मुसलमान फकीर और उलेमा उन्हें इस्लाम के सच्चे रास्ते से गुमराह समझने लगे। जनता की आस्था कम हो गई। खिलाफत साम्राज्य के अन्तर्गत प्राचीन पर्शिया और मेसोपोटेमिया (अल्-इराक़) भी था। इनके नागरिक अत्यन्त सुसंस्कृत और प्राचीन सभ्यता के वारिस थे। ये लोग अपने से कम सभ्य अरबों के अधीन रहना नागवार समझते थे, और इनमें विद्रोह की चिनगारी जल रही थी।

इन सभी कमजोरियों से लाभ उठाने के लिए अबू-अल्-अब्बास-हजरत मुहम्मद के चाचा का परपौत्र—ने विद्रोह का झंडा खड़ा किया। खुरासान में उम्मयद शक्ति का नाश हो गया (७४९ ई०)। अब्बास का का काला झंडा उम्मयद वंश के उजले झंडे को खदेड़ता आगे बढ़ता गया। अल् इराक़ की प्रमुख शहर कूफ़ा में अब्बास खलीफा घोषित किया गया (७४९ ई०), और ७५० ई० में दमस्कस् पर भी अब्बास का अधिकार हो गया।

अब्बास-वंश (Abbasid) का राज्य स्थापित हो गया। कुछ समय बाद बगदाद, प्राचीन बेबिलोन के निकटस्थ, राजधानी चुना गया।

अब्बासी-वंश की खिलाफत

खिलाफत का रुख अब पश्चिम से पूर्व की ओर हो गया। इराक और पर्शिया का पुनरुत्थान हुआ। इरानी संस्कृति अब मुस्लिम जगत् में व्याप्त हो गई। सभ्यता के इतिहास में यह एक प्रमुख वाक़या है। इसमें सन्देह नहीं कि अरबों का प्रभुत्व अब बहुत कम था, अब नये मुसलमानों का, विजित मुसलमानों का—पर्शिया और इराक़ के मुसलमानों का—प्रभुत्व शिखर पर था। यदि उम्मयद सभ्यता अरब सभ्यता थी, तो अब्बासिद सभ्यता अन्तर्राष्ट्रीय थी, इसमें अरब, इरानी, इराक़ी और भारतीय सभ्यता ने भी हाथ बटाया, और इन सभी धाराओं का संयोग होकर एक घनी और अन्तर्राष्ट्रीय सभ्यता अब्बासी खिलाफत में पनपने

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगी। खलीफा अल्महदी और हारुनअल् रशीद और मांमू रशीद के समय में वगदाद की खूब उन्नति हुई। वगदाद सभ्यता का एक प्रमुख केन्द्र हो गया। भारतीय और इरानी संस्कृतियाँ का वगदाद में स्वागत हुआ, और समूचे मुस्लिम साम्राज्य में–मिश्र और स्पेन में, अफ्रिका और योरप में–इस्लाम ने नये ज्ञान को फैलाया। वगदाद में देशविदेश के दूत और सद्भावना मंडल आये, और यहाँ से वाहर गये। हारुनअल् रशीद और फ्रैंकों का सम्राट् चार्ल्स महान् (Chalemagne) में दूत और उपहारों को आदान-प्रदान हुआ।

पर अव्वासी खिलाफत की रौनक में भी यह नहीं छिप सकता है कि मुस्लिम साम्राज्य अव एक संगठन और एक नेता के मातहत नहीं था। अव्वासी खिलाफत के पहले वर्षों में ही स्पेन वगदाद के अंचल से वाहर हो गया, और कार्डोवा में एक नयी खिलाफत की स्थापना हुई (७५६ ई०)। इस खिलाफत का संस्थापक अव्द-अल्-रहमान (उम्मयद वंश का प्रतिनिधि) था। मोरक्को में शिया इद्रिस् इव्न अव्दुल्ला ने एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया (७८८ ई०)। ट्यूनिस् में गवर्नर अमीर इब्राहिम इस्न् अल् अहलाव ने स्वतन्त्र रूप से राज्य करना शुरू किया (८०० ई०)। यह राज्य अपनी नाविक शक्ति के वल पर भूमध्यसागर पर अपना दवदवा कायम रक्खा। इटैली, फ्रांस और सार्डिनिया के तटप्रदेशों पर छापे मारे गये। सिसली, माल्टा और सार्डिनिया पर कब्जा कर लिया गया। मुस्लिम समुद्री डाकू रोम तक पहुँच जाते थे। क्रीट तो मुसलमानों के अधिकार में था ही, और यहाँ से समुद्री डाकू एजिया प्रायद्वीपों और यूनान के तटप्रदेशों को लूटते रहते थे। मिश्र में फातमी के वंश की खिलाफत स्थापित हुई। इस वंश के खलीफा अपने को हजरत मुहम्मद की लड़की फातिमा के वंशज मानते थे। पूर्व में भी यही रवैया रहा। वगदाद के पूर्व ट्रांसओक्सिआन और पर्शिया पर सामान-वंश का राज्य स्थापित हो गया (८७४ ई०), इनकी राजधानी वोखारा थी। वोखारा और समरकन्द ने वगदाद को

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छाया में कर विद्या और संस्कृति के प्रमुख केन्द्र बन गये। तुर्कों को इस्लाम में लाने का श्रेय इसी वंश के राजाओं को है। पर इनके समय में तुर्क गुलामों की शक्ति बढ़ती गई, और वक्षु नदी के दक्षिण गजनी वंश का राज्य स्थापित हो गया। गजनी वंश का मुख्य सुलतान महमूद था (९९०-१०३० ई०)। भारत और पर्शिया के कुछ भागों को उसने गजनवी साम्राज्य में मिला लिया। अफगानिस्तान तो इस साम्राज्य का अंग था ही, गजनी राजधानी थी। खुरासान, तुखारिस्तान, ट्रांस-ओक्सिआना का कुछ दक्षिणी भाग और सिजिस्तां गजनवी साम्राज्य के अन्दर थे।

बगदाद में भी खलीफा की शक्ति कम हो रही थी। खलीफा अपने को तुर्क अंगरक्षकों से घिरा रखता था और अन्त में बुवैही (Buwayhid) वंश के अमीरों के हाथ का कठपुतला बन गया। ये शिया थे, और इनकी राजधानी शीराज थी। पर इनकी शक्ति को सल्जूक तुर्कों ने खत्म कर दिया। तुघरिल ने १०५५ ई० में बगदाद पर फौजी कब्जा कर लिया, और अब खलीफा इनके संरक्षण में आ गये। कुछ दिन बाद इन तुर्कों ने बगदाद को ही अपना केन्द्र बनाया। बाईजन्टाइन राज्य से आरमिनिया निकल गया। एशिया माइनर में तुर्की तरजीह फैलना शुरू हो गयी। सीरिया में भी इसी वंश का राज्य स्थापित हो गया। काशगर से जेरूसलेम तक, और कास्पियन सागर से कौन्स्टेन्टिनेप्ल् तक सेल्जूक साम्राज्य फैला था।

पर सेल्जूक तुर्कों की शक्ति भी फूट और जातीय द्वेष के कारण कमजोर हो गई। ११९४ में इनकी शक्ति का खात्मा हो गया। उत्तर-पूर्व में चंगेज खां के नेतृत्व में मौंगोलों ने कहर ढाया। बोखारा, समरकन्द, हेरात नेस्त-नाबूद कर दिये गये। इस्लाम पर यह गहरी चोट थी। संस्कृति पर कुठाराघात था। चंगेज खां ने चीन से लेकर एड्रियाटिक समुद्र तक आंतक फैला दिया। सचमुच में वह "ईश्वर का चाबुक" (Scourge of

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

God) था, (जैसा कि अपने को कहता था,) या शैतान का। चंगेज का पोता हूलागू ने इस्लाम पर मौंगोलों का दूसरा आक्रमण किया। खुरासान से सीरिया तक उसकी तलवार खून पीती रही। बगदाद भी नहीं बच सका! मौंगोलों का साम्राज्य का केन्द्र पर्शिया था, और वक्षु नदी से सीरिया तक और कोकेशश से हिन्दमहासागर तक विस्तृत था। हूलागू जब १२६५ में मरा तो मौंगोल रीति के अनुसार उसके साथ सुन्दर युवतियां भी गाड़ दी गईं। अन्त में ओटोमन तुर्कों ने ही इस्लाम की रक्षा का भार लिया। सुलेमान का नाम प्रसिद्ध है (१५२०–६६ ई०)।

मुस्लिम संस्कृति की रूपरेखा :

इस्लाम संस्कृति का वाहक भी बना। उम्मयद, अब्बासी, फातमी खलीफों और बुवैही और गजनी अमीरों के समय में मक्का, बसरा, कूफ़ा, बगदाद, कैरो, कार्डोबा, शिराज और गजनी बड़े साम्राज्य के केन्द्र ही नहीं वरन् संस्कृति के केन्द्र थे, और यहां ऐसी रोशनी जलाई गई जिसका प्रकाश योरप और अफ्रिका में पहुँचा। बहुत अंशों में योरप-का-ज्ञान इस्लाम का आभारी है; इसलिये इस सभ्यता की बहुमुखी प्रतिभा का कुछ ज्ञान रखना जरूरी है। इस्लामी सभ्यता अपनी कच्ची उम्र में, प्रभातयुग में, भारतीय और इरानी ऐसी पूर्णविकसित संस्कृतियों के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आ गई, और इस समय इन सभ्यताओं की जो छाप उस पर पड़ा सो इस्लाम कभी भूल नहीं सका। बड़ी उत्सुकता से इन संस्कृतियों को इसने समझा। इरान, इराक, सिन्ध और मिश्र को जीत कर अरब असीरिया-बेबिलोनिया की प्राचीन संस्कृति, इरान की सभ्यता, भारत का साहित्य ज्ञान और विज्ञान, बाईजन्टाइन की धनी सभ्यता (सीरिया और मिश्र) के वारिस हो गये। अरब साम्राज्य में मिश्री, सीरिअन, इरानी साहित्यिक, लाक-कार, वैज्ञानिक, तक्षणविद्या के विद्वान और मुस्लिम संस्कृति के रहनुमा पैदा हुये, और इन्होंने उत्सुक और शिष्ट अरब शिष्यों को शिक्षित किया। मुस्लिमों ने प्रचीन सभ्यताओं का वैभव, ज्ञान और कला को सुरक्षित ही नहीं रखा

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बल्कि इसे योरप में फैलाने में सहायक हुये। उनकी बहुत-सी देन मौलिक नहीं है, पर इससे विश्व का उनके प्रति ऋण कम नहीं होता है।

हज़रत मुहम्मद मुसलमानों के धार्मिक, सैनिक और राजनीतिक नेता थे। पर उनके उनके देहान्त के बाद अरबों ने नेता चुनना शुरू किया, जिन्हें आगे चल कर खलीफा कहा गया। इस्लामी राज्य के राजनीतिक नेता खलीफा हो गये। वे धार्मिक नेता भी रहे। अतः उनकी शक्ति बहुत थी। हज़रत मुहम्मद के बाद जो चार खलीफे आये उन्होंने बड़ा सादा जीवन बिताया। शक्ति और वैभव के बावजूद इनका जीवन पवित्र था। पर यह स्वाभाविक था कि जब साम्राज्य के विस्तार के साथ वैभव की तरक्की हुई, तब प्रभुत्वशाली खलीफा भोगविलास से अछूते नहीं रह सके। पर्शिया और सीरिया की सभ्यताएँ से भी जब सम्पर्क घनिष्ट हुआ तब ऐश-इशरत का भी खलीफों के जीवन में प्रवेश हुआ। बड़े २ महल, नाचरंग, स्वादिष्ट भोजन मद्यपान, कामुकता और नारीसंसर्ग इत्यादि व्यसन, और घुड़दौड़, पोलो (चौगान), शिकार और जूआ इत्यादि मनोरंजन खलीफों के प्रिय बन गये। अब्बासी खलीफों के समय में तो इन चीजों की अति हो गई। इसका राजनीतिक प्रभाव खिलाफत पर बुरा हुआ, पर कला और संस्कृति के भिन्न २ रूप शुष्क और फ़कीर खलीफों के समय में नहीं वरन् कलाप्रेमी खलीफों के समय में ही पनपे।

खलिफा के चरित्र और सभ्यता पर उसका प्रभाव

शासन-व्यवस्था:

जब अरब साम्राज्य में गैरअरब और गैरमुस्लिम आ गये तो शासन के कुछ नियम स्थिर करना जरूरी हो गया। खलीफा उमर ने इस ओर पहले पहल ध्यान दिया। अरब अपने को बराबर इस्लाम का सिपाही समझता था। इसलिए जब वे गैरमुल्कों पर विजय प्राप्त करते तो उन्हें छावनी में ही रहना पड़ता, कृषक होकर वे जीवन व्यतीत नहीं कर सकते थे। सैनिकों को युद्ध में प्राप्त युद्धबन्दी और चल सम्पत्ति पर ही अधि-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार था, अचल सम्पत्ति (जमीन) राष्ट्र की पूँजी थी। पीछे चलकर उन्हें जमीन पर बसने का हक मिला। उन्हें भूमिकर (खराज) देना पड़ता था। भूमि किसी खास व्यक्ति की नहीं वरन् राष्ट्र की पूँजी है, यह समाजवादी सिद्धान्त मान्य था। गैरमुसलमानों को एक कर देना पड़ता था, जो पीछे चलकर जिज्या या Poll tax कहलाया। इस कर को देने के बाद उन्हें अपने धर्म और आचार-विचार पालन करने की इजाजत थी। उनके न्यायशासन और भूमि व्यवस्था में भी छेड़छाड़ नहीं किया जाता था। वे खिलाफत के धिम्मी कहाते थे। उनकी रक्षा करना राज्य का कर्त्तव्य था। विजित प्रदेशों को व्यावहारिक आवश्यकताओं के कारण विजितों को हाथ में ही छोड़ दिया गया। यही नहीं अरबों ने अपने से सभ्य बाइजन्टाइनों, या भारतीयों की शासन पद्धति विशेष कर उनका अर्थ-शासन (Revenue Adm.) के नियम अपनाया। मुस्लिम साम्राज्य की आर्थिक और आय-कर (Revenue) नीति ऐसी रही कि मिश्र, अफ्रिका और सीरिया की आम जनता बाईजन्टाइन राज्य के युग से अधिक सुखी और समृद्ध थी। इन करों (भूमिकर और जिज्या) से राज्य की जरूरतें पूरी की जाती थीं, और जो कुछ भी बचता उमर उसे अरब नागरिकों में बाँट देते थे। इस तरह राज के लाभ में सबको बराबर हक़ था। यह साम्यवादी सिद्धान्त के अनुकूल है। जक़ात या Poor-Tax देना मुस्लिमों का एक कर्त्तव्य था। असहाय और दरिद्रों के प्रति नागरिकों का कर्त्तव्य को राजसंगठन के द्वारा कार्यान्वित करने का यह प्रयास स्तुत्य है। मुआविआ ने आमदनी का २½ फी सदी जकात का भाग निश्चित किया।

वृहत् मुस्लिम साम्राज्य प्रान्तों में विभक्त था, और ये वायसराय या अमीर के मातहत थे। राजभार और सैनिक जवाबदेही इन पर थी। पर करवसूली या दीवानी (Revenue) विभाग खलीफा के द्वारा नियुक्त अफसर के हाथ में था। न्यायविभाग मुसलमानों के लिए ही

CC-0. Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। गैरमुसलमान अपनी न्याय-व्यवस्था कायम रख सकते थे। अब्बासी खिलाफत में शासन व्यवस्था और भी विकसित हुआ, और नये विभागों की स्थापना हुई। इस समय वजीर का पद का मान बहुत बढ़ा। जैसे-जैसे खलीफा अन्दर-महल में नाच-रंग में व्यस्त रहने लगे, वजीर की शक्ति बढ़ती गई। इस पद पर पहले पहल खलीफा खालिद-इब्न-बर्मक की मन्सूर के समय में नियुक्ति हुई। बर्मक वजीरों के प्रभुत्वकाल में इरानी संस्कृति और भारतीय दर्शन और विज्ञान का खूब स्वागत हुआ। पुलिस और डाक विभाग का संगठन उल्लेखनीय है। खच्चरों, घोड़ों या ऊंटों से चिट्ठियां ढोने का इन्तजाम देश की सुविधा के अनुसार किया जाता था। डाक विभाग का यह संगठन विश्व के इतिहास में खास स्थान रखता है। इसका अनुकरण अन्य देशों में हुआ। सेना के संगठन पर भी ध्यान दिया गया था। वाईजन्टाइन की सेना-व्यवस्था ही इसका आधार था। अब्बासी खिलाफत के समय एक बड़ी और स्थायी सेना रहती थी। सैनिकों को सालाना वेतन और भत्ता मिलता था। लड़ाई के मैदान में अस्पताली सामान भी ऊंटों की पीठ पर लाद कर ले जाये जाते थे। यह आधुनिक तरीका है। खिलाफत की सेना की ताकत और योग्यता की प्रशंसा उनके दुश्मन भी करते थे। सैनिकों की संख्या काफी अधिक थी, और फूर्ती में इनका मुकाबिला मुश्किल था। इन सेना में कमजोरी तब आई जब विदेशी पेशेवर सिपाही सेना में भर्ती होने लगे—राष्ट्रीय और धार्मिक एकता का अभाव हो गया। पीछे चलकर सैनिकों और उनके अफसरों को वेतन की जगह पर जागीर दी जाने लगी। इसका भी सेना पर बुरा ही प्रभाव पड़ा। खलीफा का वैयक्तिक प्रभाव जाता रहा। अपनी रक्षा के लिए भी खलीफा अब तुर्क या खुरासानी अंगरक्षकों पर निर्भर करने लगे। खिलाफत में सियासी रद्दोबदल का एक कारण यह भी रहा। प्रान्त के गवर्नर भी अब वस्तुतः स्वतन्त्र शासक बन गये। सिर्फ कर देना ही उनका काम रहा, और कभी-कभी वह भी बन्द कर दिया जाता। उनकी मातहत में बड़ी सेना रहती थी। जनप्रिय कार्य भी मुसलमान राज्य में होते रहे। नहर, पैत, कुआं इत्यादि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खोदे गये। सड़कों पर ध्यान दिया गया। रोमन साम्राज्य की पुरानी सड़कों का जीर्णोद्धार हुआ। मिश्र में तो सिंचाई का एक खास विभाग की स्थापना की गई।

साहित्य, विज्ञान और दर्शन :

अरब जब समृद्ध इरानी, यूनानी और भारतीय साहित्य, कला और विज्ञान के सम्पर्क में आये, तो वे उत्सुक शिष्य की तरह ज्ञानपिपासुक होकर अपने विजितों के चरण में बैठकर सीखने लगे। विजयी अरबों को अपने से अधिक सभ्य विजितों के बराबर होना जरूरी था। फिर नये मुसलमान 'कुरान' और अन्य धार्मिक किंवदन्तियों पर बहस-मुहाविसा करने लगे। अपनी प्रखर और विकसित बुद्धि के आधार पर समालोचना करने लगे। कई विचारधारायें, विभिन्न भाष्य, उत्पन्न हो गये। इस तरह बौद्धिक आन्दोलन का जन्म हुआ। इसीलिये उस्मान के समय में कुरान का एक प्रामाणिक संशोधन निकाला गया। बसरा में कई विद्वत्-परिषदों की स्थापना हुई, जिनमें बौद्ध-धर्म, इस्लाम या भवितव्यता (Fatalism) पर खुल कर विवाद होता था। इस्लाम के प्रारम्भिक युग में विचारों की इतनी स्वतन्त्रता और बौद्धिक जागरण प्रशंसनीय है। अरबों का चरित्र की एक विशेषता यह थी कि वे प्रत्येक चीज को बुद्धि की कसौटी पर जाँचते थे। किंवदन्ती या अन्धविश्वास से उनका जी नहीं भरता था। वे बुद्धिजीवी थे, और प्रत्येक वक्तव्य को प्रमाण के आधार पर ही मानते थे। ज्ञानपिपासा उनकी प्रकृति थी। हजरत मुहम्मद ने भी कहा था कि ज्ञान की खोज में जो भटक रहा है वह ईश्वर की राह पर चल रहा है। ज्ञान की राह पर चलनेवालों को ईश्वर जिन्नत का मुश्किल पथ भी आसान कर देते हैं। ऐसे अरबों का जब समृद्ध साहित्य और विज्ञान से सामना हुआ, तब सब कुछ भूलकर वे अपनी ज्ञान पिपासा को मिटाने लगे। और उन्होंने जो कुछ सीखा उसे दूसरों को सीखाया। उनका बुद्धिवैभव का प्रभाव योरप पर काफी पड़ा।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुस्लिम साम्राज्य के प्रथम प्रमुख सांस्कृतिक केन्द्र बसरा और कूफा थे। यहाँ पर्शिअनों या नये मुसलमानों की आवश्यकताओं के कारण अरबी भाषा में सुधार लाना जरूरी हो गया, और भाषा विज्ञान (Philology) पर ध्यान दिया गया। अरबी व्याकरण का नया रूप दिया गया। भाषा सहज हो गई। यह याद रखने की चीज है कि अरबी भाषा में ही सांस्कृतिक और बौद्धिक निधियां एकत्रित की गईं। अरबी शब्दकोष भी अल्-खलील ने लिखा। धार्मिक परम्परा (Tradition, Hadith) को भी इकट्ठा किया। शासन-पत्रों की शैली जानबूझ कर बहुत ही नम्र और कृत्रिम बन गई। यह पर्शिया का प्रभाव था। इनकी कविता विशेषकर भावुकता और बेकरारी से ओतप्रोत इनके प्रेमसंगीत प्रशंसनीय है। योरप में अभी प्रेमसंगीत का जन्म भी नहीं हुआ था। उमर-इब्न-अबि रबिया की रुबाइयां जनसाधारण की ओठों पर थे। खलीफा का दरबार और देश के विभिन्न मस्जिद शिक्षा के केन्द्र थे।

विज्ञान के क्षेत्र में पहले पहल चिकित्सा-शास्त्र और रसायन विद्या की प्रगति उल्लेखनीय हैं। पर्शिया और यूनानी प्रभाव अरब चिकित्साशास्त्र पर स्पष्ट है। अरबों का पहला हकीम अल्-हारीथ था, जिसने पर्शिया में विद्याध्ययन किया था। खलिफा मुआविआ के दरबार में इसाई डाक्टर इब्न उथाल प्रसिद्ध था। बसरा का यहूदी डाक्टर मासरजवयूह ने एक पुरानी डाक्टरी किताब की नकल अरबी भाषा में किया। रसायन विद्या की यूनानी और कौप्टिक (मिश्र के इसाई Copt थे) पुस्तकों का भी अनुवाद हुआ। विदेशी भाषा में लिखी साहित्यिक और वैज्ञानिक पुस्तकों का अनुवाद अब्बासी खिलाफत में बड़े पैमाने पर हुआ। हारुनअल् रशीद और अल-मन्सूर की खिलाफत में बर्मक वजीरों के प्रभुत्वकाल में बगदाद बौद्धिक प्रगति का प्रतीक बन गया। पर्शियन, संस्कृत, यूनानी भाषाओं की पुस्तकों का उत्साह से अनुवाद किया गया। सूर्य सिद्धान्त, ज्योतिष की एक महान् पुस्तक, का अनुवाद मुहम्मद अल्-फजारी ने किया, और वे प्रथम मुसलमान ज्योतिषी समझे जाते हैं। इसी पुस्तक के आधार पर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगे चल कर अल् ख्वारिजी भी ने कुछ नयी बातों जोड़ीं। पर्शियन ज्योतिष-शास्त्रों का भी अनुवाद हारुनल्रशीद के पुस्तकालय का अध्यक्ष ने किया। भारतीय गणित के मुख्य सिद्धान्त-अंक लिखने का नियम (Numeral system, १,२,३,४,५,६,७,८,९,०)–अरबों ने सीखा, और इनसे योरप ने। भारत से ही दशमलव-विधि (Decimal) भी अरबों ने सीखी, और इनसे योरोपिअनों ने। साहित्य पर भारतीय प्रभाव स्पष्ट है। अरबों की पहली साहित्यिक पुस्तक है–कलीलह-इ-दिम्नह–यह कहानियों का संग्रह है, इन कहानियों के द्वारा नैतिक सिद्धान्तों की श्रेष्ठता बताई गई है। यह एक पहलवी (पर्शियन भाषा का एक रूप) पुस्तक का अनुवाद है पर इसका आदि श्रोत पंचतन्त्र है। इसी अरबी पुस्तक में संग्रहित कहानियों का अनुवाद संसार के सभी प्रमुख भाषाओं में हुआ। 'पंचतन्त्र' की कहानियां इस तरह अरबों के कारण ही देश-विदेश में जनप्रिय हुईं। बगदाद की चिकित्सा पद्धति के संस्थापक अरेमिक इसाई इब्न् बख्तिशु और उसका पुत्र जिब्रील हारन् थे। इरानी और भारतीय प्रभाव के अलावे यूनानी प्रभाव भी इस्लामी संस्कृति पर पड़ा। कई यूनानी ग्रन्थ जिनमें यूक्लिड् की रेखागणित भी थी बगदाद पहुँचीं, और इनका अनुवाद अरबी भाषा में हुआ। खलीफा अल् मामूं ने बयतुल-अल्-हिकम् की स्थापना की जो अनुवाद का एक केन्द्र, पुस्तकालय और विद्वत् परिषद् बन गया। इसी संस्था के जरिये विदेशी ग्रन्थों का अनुवाद सुचारु रूप से होना शुरू हुआ। यूक्लिड्, हिपोक्रेटिज और टालमी के ज्योमिति, चिकित्साशास्त्र और भौगोलिक शास्त्रों का अनुवाद हुआ। अरस्तू (Aristotle) और प्लेटो के दर्शन-शास्त्र का भी अनुवाद हुआ। मिश्र में बैतुलहिकम की तरह वैज्ञानिक अनुसन्धान के लिए एक दार-अल्-हिकम की स्थापना हुई (१००५ ई०)।

चिकित्सा :

इन अनुवादित पुस्तकों के द्वारा अरब विद्वानों में जिज्ञासा उत्पन्न हुई, और ये अनुवादक या नकलची ही नहीं रहे, पर इन्हें

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधार मान कर इन्होंने नयी खोज शुरू की। चिकित्सा-विज्ञान में इन्होंने अभूतपूर्व प्रगति दिखाई। संसार के पहले दवाखाना, दवा बनाने और मिलाने की कई पुस्तकें और विभिन्न विधियाँ इस्लाम जगत् में ही पहले पहल जानी गई हैं। बीमारियों के पास दवा लेकर चलनेवाले हकीमों की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। हारून् अल् रशीद के समय में वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित पहला अस्पताल खोला गया। कैरो में पहला अस्पताल ८७२ ई० में खुला। चलते-फिरते डिसपेन्सरी भी इस्लामी सल्तनत में जनप्रिय थीं। यूनानी विद्वान् गेलेन के चिकित्सा-शास्त्र का अरबी चिकित्सा-विज्ञान पर काफी प्रभाव पड़ा था। अली अल तावरी, इब्नसीन, और अल राजी, मुहम्मद अल तामिनि (मिश्र) प्रमुख हकीम थे। इन्होंने अरबी भाषा में अपनी पुस्तकें लिखी थीं। अल तावरी का फिरदवासअल्-हिकम चिकित्सा शास्त्र की प्रगति का संकलन है। राज़ी ने घाव चीरने और घाव में बत्ती डालने की विधा का इज़ाद किया। इब्नसीन की कई अधिकारी पुस्तकें मशहूर हैं। इनका लैटिन भाषा में भी अनुवाद हुआ, और योरोपीय चिकित्सा-विज्ञान को काफी प्रभावित किया। मिश्र में आँख की बीमारी पर एक किताब लिखी गई। मोतियाबिन्द को निकालने का एक तरीका इस किताब में बताया गया है। जिस समय योरप में रोगी का इलाज अंधविश्वास, झाड़-फूँक, या मिथ्या-चिकित्सक (quack) के हाथ में था अरब मुस्लिम-संसार में वैज्ञानिक ढंग से रोगी का इलाज किया जाता था, और कई तरह के आपरेशन डाक्टर लोग करते थे।

दर्शन :

अरब के दर्शन-ग्रन्थ व विचार यूनानी और भारतीय दर्शन से प्रभावित थे। अल् किन्दी, अल् फारबी और इब्न् सीन प्रमुख दार्शनिक थे। अल किन्दी का दर्शन अरस्तू और प्लेटो (आफलातूं) के विचारों पर आधारित था। वह पैथागोरस को गणित-विज्ञान का विज्ञान की आधार

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझता था। अल किन्दी अरब थे, और इनका काम अल फाराबी (तुर्क) और इब्न सीन (पर्शियन) ने पूरा किया।

ज्योतिष :

अरब ज्योतिष का आधार भारतीय ग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त और खन्डखाद्यक थे। सूर्य सिद्धान्त का अरबी अनुवाद अल् फज़ारी ने किया था। यूनानी प्रभाव भी अरब ज्योतिष के शैशवकाल में पड़ा। टौलमी (Ptolemy) का Alamagist का अनुवाद कई बार हुआ। अरब ज्योतिषी अब नक्षत्रों और ग्रहों की चाल का अध्ययन करने लगे। खलीफा अल्-मामूं ने एक observatory बगदाद में और एक दमस्कस् में स्थापित किया। इस दिशा मे कई वैज्ञानिक यन्त्रों का भी इज्जाद किया गया। पृथ्वी की परिधि (Circumference) और व्यास (Diameter) को मापा गया। ज्योतिषियों में अल् ख्वारिज़्मी और अहमद अल् फरगानी प्रमुख हैं। पूर्वी अफगानिस्तान का नागरिक अल्बीरुनि महान् विद्वान था। वह एक गणितज्ञ और ज्योतिषाचार्य था, और रसायनशास्त्र का भी पंडित था। महमूद गजनी के साथ वह भारत भी आया था, और यहां की रसायनविद्या और दर्शन से बहुत प्रभावित हुआ था। उसने अपने अनुभव अपनी पुस्तक Alberuni's India में लिखा है। उसकी कई पुस्तकें हैं जिनमें ज्योतिष-विज्ञान का प्रामाणिक इतिहास एक है। मौंगोल हुलागू ने भी अरमिनिया में उरमिया झील के समीप एक बड़ा ग्रह-निरीक्षणालय स्थापित किया। मिश्र में भी ऐसी एक संस्था अल्-हाकिम ने बनवाया। अली इब्न युनूस मिश्र में ज्योतिष का सबसे बड़ा विद्वान था (१००९ ई०)। अरबों ने ज्योतिष-विज्ञान के क्षेत्र मे विश्व को काफी ऋणी बना लिया।

गणित :

अरब गणित-विज्ञान का आधार अंक लिखने की भारतीय पद्धति और शून्य का ज्ञान और उपयोग था। अल ख्वारिज्मी का अंकगणित और

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीजगणित (हिसाब् अलजब्र) गणित के महान् ग्रन्थ हैं। योरोप के विद्वानों ने अरबों से बहुत कुछ सीखा। इस पुस्तक का लैटिन में अनुवाद हुआ, और योरप में अलजब्रा (Algebra) का ज्ञान आया। Trigonometry में Sine, cosine, tangent का ज्ञान अरबों ने ही विश्व को दिया।

रसायनविद्या :

रसायन-विज्ञान में मुसलमानों ने यूनान और भारत को अपना गुरु माना। जब कि यूनानी वैज्ञानिक कल्पना के आधार पर ही आगे बढ़ते थे, अरबों ने प्रयोग (experiments) के परिणाम के आधार पर ही आगे बढ़ना शुरू किया। रासायनिकों में जाबिर इब्न हय्यान का स्थान सर्वोच्च है। इनके नाम से लिखी बीसों पुस्तकें हैं। उन्होंने कई रसायनिक-संयोग (Chemical Compound) का पता लगाया। प्रकृति-विज्ञान और भूतत्वविज्ञान (Botany, Zoology & Mineralogy) में भी अरबों ने राहनुमा का काम किया।

भूगोल :

भूगोल में भी अरबों की रुचि थी। तीर्थयात्रा अरबों का धर्म था। प्रार्थना के समय काबा की ओर देखना जरूरी था। इसलिए दिशाज्ञान आवश्यक था। अरब तिजारती रूस, चीन इत्यादि दूर-दूर देश जा चुके थे। लोगों को इन देशों में दिलचस्पी होने लगी। इन देशों का विवरण चाव से पढ़ा जाने लगा। व्यापारियों ने इस दिशा में अग्रदूत का काम किया। सिन्दबाद जहाजी (Sindbad the Sailor) की कहानियों का आधार यही था। भूगोल शास्त्र में वैज्ञानिक रुचि बढ़ने लगी। टौलमी का 'भूगोल' (Geography) का अनुवाद हुआ। अल् ख्वारिज्मी एक महान् भौगोलिक था। इसकी पुस्तक में पृथ्वी का एक नक्शा भी था। अरबों ने इस क्षेत्र में भी भारत से काफी लिया, और दुनियां का केन्द्रबिन्दु अरीन या उज्जैन माना गया। उज्जैन

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत का ज्योतिष विज्ञान के क्षेत्र में सबसे प्रमुख नगर था। अरबों की लिखी भूगोल की पुस्तकों में इब्न खुरदाद्मि की लिखी अल्-मसालिक् व- अल् ममालिक्, और अल याकूबी की लिखी किताब-अल-बुल्दान, और याकूत की लिखी मुंजम्-अल-बुल्दान प्रमुख हैं।

इतिहास :

इतिहास पर भी पुस्तकें लिखी गईं। प्रथम तो जहालिया दिनों के बारे में किंवन्दती के आधार पर कुछ लिखा गया। फिर हजरत मुहम्मद के गाथाओं (Traditions, Hadith) का संकलन को भी इतिहास का ही रूप समझा जाना चाहिये। हजरत मुहम्मद की जीवनियां भी लिखी गईं, जिनका ऐतिहासिक महत्व है। इस्लाम के प्रथम दिनों के युद्ध और विजय के बारे में भी पुस्तकें लिखी गईं, जैसे फतह-मिश्री-व-अखबारह। इब्न दैद ने हजरत मुहम्मद और उनके साथियों और उत्तराधिकारियों की जीवनियों का एक पुस्तक में संकलन किया। इब्न शरिया का लिखा राजाओं का इतिहास और प्राचीन-इतिहास प्रारम्भिक युग में अतिप्रिय थे। इन इतिहासज्ञों में इब्न कुतैबा का नाम सर्वप्रथम आता है। उसकी पुस्तक किताब-अल-मैआरिफ (विज्ञान-कोश, Book of knowledge) उल्लेखनीय है। अल तबारी महान् ऐतिहासिकों में है। उसकी लिखी पुस्तक अखबार अल-रूसुल व-अल-मुलूक बड़ी सावधानी से लिखी गई है और इसमें सत्य की अवहेलना नहीं की गई है। दूसरा विद्वान इतिहासज्ञ अल मसूदी था, जिसने इतिहास लिखने की एक नयी विधि अपनाई; उसने घटनाओं को तारीखवार न लिख कर राजाओं, राजवंशों और राष्ट्रीय इतिहास के शीर्षकों के अन्दर लिखना शुरू किया। उसने इतिहास के क्षेत्र में अनुसंधान किया और मुस्लिम विषयों के अलावे पर्शियन रोमन और यहूदी विषयों पर भी लिखा। यह मुसलमानों का हेरोदातस कहा जाता है। ऐतिहासिक साहित्य पर ईरानी प्रभाव स्पष्ट है। इब्न खालदून

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मृत्यु १४०१) ने अलजिरिया में रहकर मुकद्दम नामक प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखा जिसमें इतिहास का रूप आधुनिक है।

साहित्य :

अब्बासी खिलाफत में साहित्य की भी उन्नति हुई। पर्शियनों ने अरबों से बराबरी दर्जा प्राप्त करने का निश्चय किया। कविता और साहित्य के विभिन्न अंगों में इन्होंने अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित करने की ठानी। अरबों ने भी यह चुनौती स्वीकार की। इसका नतीजा यह हुआ कि साहित्य के कोष में बहुत से रत्न भर गये। इस तरह अरब-साहित्य के निर्माताओं में अरब ही नहीं वरन् भिन्न-भिन्न देश के लेखक भी थे। अल जौहरी ने एक वृहत् शब्दकोष का संकलन किया। इरानी प्रभाव गद्यशैली पर पड़ा, और इस समय के लिखे 'अदब' बड़ी अलंकृत शैली में हैं। अल् हमधानी ने अपनी कविताओं को पूरे जोश-खरोश से गाना शुरू किया। मुशायरा का यही आरम्भ था। इसे मक्काम (Assembly) कहते थे। अबु अलफरज की लिखी किताब अल अघानि (Book of Songs) उल्लेखनीय है। इसी काल में संसार-प्रसिद्ध अलिफलयलां (A thousand-and-one nights) लिखा गया। इसके अनुवाद कई भाषाओं में हो गये हैं। कल्पना, आश्चर्य, प्रेम, रागरंग का इतना अच्छा सम्मिश्रण बहुत कम मिलता है। इस पुस्तक का आधार, पर्शिया की कहानियाँ (हजार अफसाना) थीं। अब्बासी खलीफा कवियों का आदर करते थे। कविता के क्षेत्र में इस समय नयी शैली अपनाई गई। सूरदास बश्शार इब्न बुर्द और अबू नुवास उल्लेख-नीय कवि हैं। मिश्र का खलीफा अल अजीज स्वयं एक अच्छा कवि था।

शिक्षा :

अरेबिआ में शिक्षा प्राप्त करने का कोई संगठित आयोजन नहीं था। उम्मयद काल में उच्च वर्ग के युवक मरुभूमि में जाकर अरबी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा का शुद्ध उच्चारण सीखते थे। पर धीरे-धीरे शिक्षा का महत्त्व समझा जाने लगा। यहाँ भी इसाई और इरानी प्रभाव पड़ा। खलीफा के दरबार में एक शिक्षक या गुरु रहने लगे। वह प्रायः इसाई या गैरमुस्लिम ही होता था। मस्जिद भी शिक्षा के केन्द्र थे। वहाँ कुरान और हदीथ की शिक्षा दी जाती था। पर यह बात ध्यान देने की है कि प्राथमिक शिक्षक (Primary teacher) की इज्जत बहुत कम थी। वह बेवकूफ ही समझा जाता था। पर ऊँचे दर्जों की शिक्षकों की इज्जत थी। शायद वे अपना संघ भी बनाते थे। उच्च शिक्षालय का प्रथम केन्द्र अल मामूं के द्वारा स्थापित बयतुल-हिकम था। निजामुलमुल्क ने निजामिया नामक एक महाविद्यालय की स्थापना की (१०६५–७ ई०)। धर्म-शिक्षा ही शिक्षाधार था। कुरान और प्राचीन कविता का अध्ययन कराया जाता था। यह संस्था सरकारी थी, और इसके शिक्षकों की नियुक्ति खलीफा के द्वारा होता था। विद्याध्ययन के अलावे चरित्र निर्माण पर भी इन महाविद्यालयों में ध्यान दिया जाता था। मुस्लिम राज्य में बग़दाद, कैरो, कार्डोवा के विश्वविद्यालय प्रमुख थे। इनकी तुलना में योरप के कालिज बहुत दिनों तक नगण्य रहे। स्पेन के विश्वविद्यालयों का प्रभाव पेरिस या आक्स्फोर्ड विश्वविद्यालय के निर्माण या रूपरेखा पर जरूर पड़ा। इन विश्वविद्यालयों के इसाई विद्यार्थियों ने ही योरप में विज्ञान और गणित का प्रचार करने में बहुत बड़ा भाग लिया। इस्लाम के शिक्षालयों में किसी को भी शिक्षा पाने का हक़ था। गुरु से वादविवाद होता था, जो शिक्षक पूछे हुये सवाल का ठीक जवाब नहीं देता था, उसे बर्खास्त कर दिया जाता था। इस प्रकार के मदरसे इराक़ और इरान में भी स्थापित हुये। मस्जिद ही पुस्तकालय और विद्यालय था। धार्मिक पुस्तकों का संग्रह मस्जिदों में होता था। धनी-मानी आदमी अपनी पुस्तकों को मस्जिद को दान दे देते थे। कैरो और बग़दाद में बड़े-बड़े पुस्तकालय थे जहाँ हजारों पुस्तकें थीं। कार्डोवा की राज-पुस्तकालय में ४००००० पुस्तकें थीं। कागज बनाना अरबों ने चीन से सीखा, और योरप ने अरबों से। इससे

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा-प्रसार में बड़ी सहायता मिली। ७६४-७६५ में बगदाद में कागज बनाने का पहला कारखाना खुला।

कला-वास्तुविद्या :

अरबों के प्राचीन भवन-निर्माण कला के अवशेष नहीं मिले हैं। मरुभूमि के निवासी बञ्जारे अरब खीमे में ही रहते थे। इन घनाकार (Cube) खीमे की ही तरह काबा का मस्जिद भी था। मकान कच्चे ईंटों के बने थे। मुहम्मद का मस्जिद चारों तरफ दीवाल से घिरी खुली जगह में थी। पीछे चल कर धूप से बचने के लिए मकान की छतों को बढ़ा कर पूरा मैदान छत से ढक दिया गया। ताड़ के खम्भे के बने छत थे। और मिम्बर (Pulpil) भी ताड़ का जड़ का ही बना था। पर जब अरबों ने सीरिया और फिलस्तीन के गिर्जों या मंदिरों को देखा तब वे आश्चर्य-चकित हो गये। उन्हें भी अपनी मस्जिद के निर्माण मे कला का उपयोग करने की लालसा हुई। इसलिये इस्लामी वास्तुविद्या पर हम विदेशी प्रभाव पाते हैं। वास्तुविद्या का उपयोग मस्जिदों में ही किया जाता था। मस्जिद का मिहराब इसाई बेदी (Altar) से प्रभावित है। गुम्बज भी सीरिया से ही लिया गया। उमय्यद काल का दमस्कस् का मस्जिद का गुम्बज (Minaret) सेन्ट-जौन के गिर्जा का निरीक्षण-मीनार (Watch-tower) का नकल था। बसरा मस्जिद में पत्थर का मीनार दिया गया था जब मिश्र में मीनारें ईंटों की ही बनाई जाती थीं। अब्द-अल मलिक ने जेरुसलेम के पवित्र पहाड़ी पर एक सुन्दर मस्जिद बनाया। इसमें अर्धवृताकार गुम्बज (Dome) का व्यवहार हुआ। गिर्जे का गुम्बज से यह भिन्न था। यह मुस्लिम वास्तुविद्या की अनुपम देन है और सौन्दर्य में चार चाँद लगा देता है। वालिद ने जेरु-सलेम के मन्दिर को एक सुन्दर मस्जिद में परिवर्तित कर दिया। अब्बासी खिलाफत के समय में राजमहल बहुत सुन्दर बना था, जिसमें महीन काम कारनिश और खम्भों पर खूब हुआ था। सोने और चांदी के काम के कारण सौन्दर्य-वृद्धि कल्पनातीत थी। सामर का मस्जिद चतुर्भुजाकार था, इसमें कई

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिहराब-युक्त खिड़कियां थीं जिसमें भारतीय प्रभाव स्पष्ट है। इस मस्जिद की दीवाल के सटे एक मीनार खड़ा था जिसकी तुलना हम प्राचीन बेबिलोनिया का Ziggurat से कर सकते हैं। ट्यूनिस का अल कायरवां का विशाल मस्जिद कार्थेज के संगमर्मर के खम्भों से सुसज्जित उल्लेखनीय है। अहमद इब्न कूलून का बनाया मस्जिद मुसलमानों के लिए बहुत पवित्र समझा जाता है। भारत में मुस्लिम और भारतीय शैली का मिश्रण हुआ। जौनपुर का मस्जिद, ताजमहल, और दिल्ली का मोती मस्जिद हिन्दू-मुस्लिम शैली के अच्छे उदाहरण हैं। हिन्दू मंदिरों की सामग्रियों से ही तो मुस्लिम काल की इमारतें बनी थीं। कार्डोवा में खलीफा का राजमहल वर्षों में तैयार हुआ था। यह बहुत ही विशाल था, और बगदाद के राजमहल से इसकी तुलना की जा सकती है। कार्डोवा (स्पेन) स्वयं ही बड़ा सुन्दर और विस्तृत शहर था। इन नगर की शोभा और सुविधा की बगदाद से तुलना की जा सकती है। ग्रनडा में, जो पीछे चलकर राजधानी चुनी गई थी, अल-हमरा नामक संसार प्रसिद्ध किला (Castle) था। कार्डोवा का प्रसिद्ध महान्-मस्जिद एक गिर्जाघर के स्थान पर बना था। ७९३ ई० में इसका निर्माण पूरा हुआ। इसके मीनार अफ्रिका की शैली के थे। इस मस्जिद में १२९३ स्तम्भ थे। ग्रन्डा के किले में मौजेक (Mosaic) का काम बहुत हुआ था। घोड़े के नाल के आकार का मिहराब का प्रयोग पश्चिम में होने लगा। कैरो भी तक्षणकला का केन्द्र था। अजहर मस्जिद (९७२) ईंटों का बना था, इसमें नुकीले मेहराब थे, और इरानी शैली से प्रभावित था। फातमी युग के दिनों में ईंट की जगह पत्थर का व्यवहार होने लगा। लकड़ी पर बारीक काम होता था। विश्व को इस्लाम ने इस दिशा में गुम्बज, मीनार, गोलाकार मेहराब और पत्थर पर नक्काशी दिया है।

ललित-कला :

इरानी और भारतीय संस्कृति के सम्पर्क ने शुष्क अरबों में भी ललित कलाओं में प्रेम जगाया। समृद्ध खलीफा और धनी-मानी लोगों ने नाच-गाना

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को प्रोत्साहित किया। सुरा और सुन्दरी का आगमन खलीफों के दरबार और हरम में उमय्यद खलीफों के समय में हुआ। हल्के गाने जनप्रिय हो गये। कविता पाठ का खूब प्रचार हुआ। बांसुरी, तम्बूरा इत्यादि प्रमुख संगीतयन्त्र थे। लड़कियों के द्वारा गाये कोरस काफी चालू थे। पीछे चलकर मर्द संगीतज्ञ भी निकलने लगे जिनमें इब्न सूरयज, सियात, इब्राहिम अल प्रमुख हैं। संगीत समारोह (Concerts) का भी आयोजन कुलीन स्त्रियों के घर पर होता था। मक्का-मदीना गाना-बजाना के केन्द्र बन गये। खलीफा यजीद और अल वालीद ने इस कला को बहुत प्रोत्साहन दिया, वालिद स्वयं एक अच्छे गायक और संगीतज्ञ थे। अब्बासी युग में कई यूनानी संगीत-शास्त्र का अनुवाद किया गया। कई ग्रन्थ लिखे गये। इन लेखकों में अल किन्दी, अल राजी और फाराबी प्रमुख हैं। स्पेन का संगीत पर मुस्लिम प्रभाव स्पष्ट है। संगीतज्ञों में जिर्याब प्रसिद्ध है। इस समय के पद्यसंगीत (Lyrics) का प्रभाव योरप की lyrical poetry पर पड़ा।

इस्लाम में चित्रकला को प्रोत्साहन नहीं दिया गया। मुहम्मद ने मनुष्य और जानवरों की तस्वीर बनाना ईश्वर की नकल करना बताया। अरबों की स्वाभाविक रुचि भी इस ओर नहीं थी। तक्षण कला (Sculpture) का भी यही हाल था। पर जब इस्लाम के दायरे में ईरानी, इसाई, इराकी और भारतीय आ गये तो चित्रकला को अब स्थान मिला। पर चित्रकारी के विषय सिर्फ पेड़ पौधे या रेखागणित के चिह्न ही थे। मस्जिदें व मकानों के पत्थरों या ईंटों पर बारीक काम होने लगा। पीछे चलकर मनुष्य के भी चित्र बनने लगे। अल मन्सूर ने अपने भवन के गुम्बज पर एक सवार का चित्र चित्रित किया। खलीफा अल मुतसिम ने, जिसके समय में सामर का मस्जिद बना, अपने राजभवन की दीवालों पर शिकार या नृत्य के दृश्य चित्रित कराया था। सीरिया में अरबी हस्त-लिखित पुस्तकें भी सुन्दर चित्र से अलंकृत होने लगीं। पर मुस्लिम काल में सुन्दर हर्फों में लिखना (Cailiography) सचमुच में एक कला

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझी गयी। सच पूछा जाय तो प्रत्येक कारीगर अपने हाथ की बनी चीजों को सुन्दर और कलापूर्ण बनाता था। यह वह अपना धार्मिक कर्त्तव्य समझता था।

स्त्री और दासों की अवस्था :

अरब नारी की बहुत इज्जत करते थे, पर उन्हें सार्वजनिक और राजनीतिक क्षेत्र से दूर ही रखते थे। कुरान में स्त्री को पर्दे के अन्दर रहना बताया गया, बाहर निकलने पर उन्हें अपने शरीर को बुर्का से ढकना पड़ता। जब उमय्यद और अब्बासी-युग में नाचने और गानेवाली औरतों का प्रभाव बढ़ा, नारी जाति की प्रतिष्ठा कम हो गई, और उन्हें ऐश व शौक का साधन समझा जाने लगा। विदेशी स्त्रियाँ, खास कर इरानी और इराक़ी खलीफा के महल में प्रेमिका बन कर रहने लगीं। खूबसूरत दासियों का प्रभाव बढ़ गया। पारिवारिक जीवन में कटुता आ गई। इन नाचने-गाने वाली सुन्दरियों में सुकयन्हा का स्थान बहुत ऊँचा है। वह काफी पढ़ी लिखी और मजाकिया थी, और अपने गुणों और सौन्दर्य पर लोभित बड़े-बड़े उमरावों को कठपुतली की तरह अपने इशारे पर नचाती रहती थी। कुछ भले घर की औरतें अपने विशेष गुणों के बल पर राज्य पर प्रभाव रखती थीं, जैसे हारुनल्रशीद की माँ। पर यह भी सत्य है कि जैसे-जैसे ऐश-इशरत का जोर बढ़ता गया, वैसे-वैसे नारी जाति की इज्जत कमती गई, जिसका प्रमाण 'अरेबिअन नाइटस्' में मिलता है। बड़े लोग काफी संख्या में रखैल रखने लगे।

मुहम्मद के समय में ही गुलाम रखने का रिवाज था। जैसे-जैसे मुस्लिम साम्राज्य का विस्तार हुआ बहुत से कैदी व विदेशी गुलाम हो गये। ऐश्वर्य की वृद्धि के साथ-साथ दासों की संख्या भी बढ़ी। गैरमुसलमानों से ही गुलाम चुने जाते थे। इस्लाम में गुलाम कोई नहीं था—गुलाम मुसलमान बन कर अपनी मुक्ति पा जाते थे। गुलाम की खरीद-बिक्री भी होती थी। यूनानी, स्लाव, तुर्क जाति के गुलाम बहुसंख्यक थे। दास युवक और युवतियाँ व्यसनों के शिकार बने। कुछ दास-दासी बहुत

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही अधिक सुसंस्कृत थे। खलीफा के राजभवन में हजारों गुलाम रहते थे। गुलामों की आर्थिक दशा बुरी नहीं थी, और न वे सताये जाते थे।

आर्थिक दशा :

अरेबिआ दरिद्र देश था। अरबों की आर्थिक स्थिति स्पृहणीय नहीं थी। पर जब अरब एक विस्तृत साम्राज्य के स्वामी बन बैठे, उनकी आर्थिक स्थिति बेहतर हो गई। पहले साम्राज्य से जो कुछ प्राप्त होता था उसे खर्चा बाद करने के बाद बराबर २ बाँट दिया जाता था। पर पीछे चलकर यह साम्यवादी तरीका छोड़ दिया गया, और खलीफा और उसके इर्द गिर्द बड़े-बड़े अमीर-उमराव साम्राज्य के शोषित धन के अधिकारी बन गये। अरब व्यापारियों ने यहूदी और इसाईयों का स्थान लिया और बगदाद, कैरो इत्यादि व्यापार के प्रमुख केन्द्र बन गये। अरब और पर्शियन व्यापारी चीन तक पहुँच गये। रेशम का व्यापार इनके अधिकार में आ गया। भारत और पर्शिया के व्यापार के भी दूत यही थे। पश्चिम में मुस्लिम व्यापारी मोरक्को और स्पेन पहुँच गये। उत्तर में कास्पिअन समुद्री-प्रदेश से भी व्यापार हुआ। बगदाद, समरकन्द इत्यादि नगरों में बड़े-बड़े मेले लगते थे, और यहाँ संसार के भिन्न-भिन्न राष्ट्र के व्यापारी क्रय-विक्रय करते थे। मुस्लिम युग में मध्यपूर्व व्यापार में तेजी रही। मुस्लिम व्यापारी भी करोड़पति हो गये, बगदाद का सोनार इब्न अल् जस्सास इनमें एक था।

व्यापार के अलावे उद्योगों की भी उन्नति हुई। कम्बल, ऊनी और रेशमी कपड़े, सोफा और कूशन के खोल इत्यादि साम्राज्य में ही तैयार होते थे। इनकी मांग दूर-दूर देशों में थी। पर्शिया की कालीन मशहूर थे। कूफा के बने रेशमी कपड़े का बाजार गर्म था। इनके बुने सूती कपड़े अतुलनीय थे। मध्यकालीन योरप की फैशनेबुल स्त्रियाँ मुस्लिम कपड़ों का व्यवहार करती थीं। कपड़े रंगने का भी ज्ञान था। सीरिया और मिश्र की बनी छूरी, तलवार, कैंची इत्यादि का खूब प्रचार था। दासियों की बिक्री से काफी फायदा भी था। सिडौन और

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टायर में बनी सीसे की चीजें लोकप्रिय थी। लिखने का कागज का बनना समरकन्द में शुरू हो गया था। यह हुनर चीन से सीखा गया था। सुनार तरह-तरह के जेवर बनाते और बेचते थे। उनकी दूकान खूब चलती थी। कृषि पर भी ध्यान दिया जाता था। खेती वैज्ञानिक ढंग से होती थी। आवपाशी का ख्याल था। इक्षु से चीनी बनाया जाता था। कई तरह के पेड़-पौधे उगाये गये थे। खाद का भी व्यवहार ये लोग जानते थे। योरप इस क्षेत्र में इनका काफी ऋणी है। संक्षेप में मुस्लिम साम्राज्य काफी समृद्ध था। मुस्लिम युग में स्पेन योरप का सबसे समृद्ध देश था। इसकी आबादी सबसे अधिक घनी थी। हजारों जुलाहे और चर्मकार यहाँ आराम की जिन्दगी बसर करते थे। यही से कमाये हुये चमड़े (tanned leather) और उस पर नक्काशी काढ़े गये चमड़े की इंगलैण्ड और फ्रांस में काफी मांग थी। इत्र और सुगन्धित पानी, जैसे गुलाब जल इत्यादि, फूलों से तैयार किये जाते थे। दमस्कस और शिराज के पड़ोस में यह उद्योग फैला हुआ था। संसार में इत्र और सुगन्धित तेल इत्यादि का व्यवहार अरबों से ही प्रभावित हुआ।

इस्लाम की शक्ति का ह्रास :

इस्लाम जो कि चन्द शताब्दियों तक संसार पर अपना अहम् प्रभाव डाल चुका था, धीरे २ अवनतोन्मुख हो गया। इसके कई कारण थे। पर सबसे प्रमुख कारण था खिलाफत में ऐश इशरत की तरक्की। चरित्र का पतन के बाद साम्राज्य का पतन स्वाभाविक था। फिर आपसी झगड़े, फिरकेबाजी और खलीफा के पद लिये प्रतिद्वन्द्विता या कभी २ खुली लड़ाई ने इस्लाम को जीर्ण कर दिया। मौंगोल और तुर्कों के आक्रमण से इस्लाम को बड़ा धक्का लगा।

———

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा अध्याय

जागीरदारी प्रथा

(FEUDALISM)

रोमन साम्राज्य के पतन के बाद योरप में अव्यवस्था व अराजकता फैल गई। जर्मन जातियों का आक्रमण, हूनों का आक्रमण, और अन्त में उत्तर-योरोपीय डेन्स् प्रभृत जातियों के आक्रमण से सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था टूट गई, और इनके स्थान पर समाज और राज का जो संगठन हुआ उसे जागीरदारी (Feudalism) प्रथा या सामन्तशाही कहते हैं। लगातार युद्ध और आवागमन की सुविधाओं में रुकावट के कारण प्रत्येक प्रदेश में धनी और गरीब सब परेशान हो गये। बड़े-बड़े जमींदार व धनी पुरुष भी सुरक्षित नहीं थे—कानून का भय लोगों के हृदय से मिट चुका था। इसलिये बड़े-बड़े जमींदारों को भी अपनी रक्षा के लिए और युद्ध में सहायता के लिए अंगरक्षकों की आवश्यकता हुई। गरीब और निःसहाय भी अपनी रक्षा के लिए बड़े-बड़े जमींदारों की शरण में जाने लगे। इनके बीच मालिक और रैयत का सम्बन्ध हुआ। पर इन मालिकों को भी अपने से बड़े जमींदारों की शरण में ही चैन मिलता था। इस तरह कड़ियों के अन्दर कड़ियाँ से समाज बंध गया। सबसे ऊपर राजा था, उसके नीचे उसके खास रैयत (Tenants-in-chief), उनके नीचे उनके रैयत, और फिर रैयत। इस तरह समाज का प्रत्येक व्यक्ति का सम्बन्ध एक दूसरे के प्रति मालिक-रैयत का था।

जागीरदारी क्या है ?

इस व्यवस्था का आधार था भूमि पर अधिकार के नियम (Land Tenure)। सैद्धान्तिक रूप से समूचे जमीन का मालिक राजा था। पर राजा ने अपने खास बड़े-बड़े सामन्तों (Tenants-in-chief) को भूमि कुछ शर्तों पर दे रक्खी थी। इन शर्तों में मुख्य यह था कि ये लोग

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा के प्रति अपनी वफादारी (loyalty) की शपथ लेते थे। युद्ध के समय राजा की मदद के लिए दल-बल से तैयार रहते थे और शासन चलाने में उसे मदद देते थे। राज में वस्तुतः ये लोग अपने-अपने क्षेत्र में छोटे-छोटे राजा ही बन बैठे थे। इनने भी उन्हीं कारणों से अपने आसामियों को जमीन उसी तरह की शर्तों पर दिया। आसामी को प्रभु-भक्ति की शपथ लेनी पड़ती थी और अपने जागीरदार को लड़ाई के समय में सहायता देनी पड़ती थी। जागीरदारी प्रथा का मूल रूप यही था, पर भिन्न-भिन्न प्रदेशों व प्रादेशिक क्षेत्रों में कुछ-कुछ फर्क रहता था।

इसी प्रथा के आधार पर समाज का संगठन हुआ। आर्थिक व्यवस्था का यही आधार था। राज शासन में भी जागीरदारी प्रथा का ही मुख्य प्रभाव था। राजा उस समय की अस्थिर स्थिति और लगातार युद्ध या उसकी आशंका के कारण अपने राज्य में प्रत्यक्ष शासन नहीं स्थापित कर सकते थे। बड़े-बड़े जागीरदार राजा से कम प्रभाव अपने क्षेत्र में नहीं रखते थे। साधारण प्रजा दूरस्थित राजा पर अपनी रक्षा के लिए निश्चित नहीं थी। इसलिए राजा भी इसी से सन्तुष्ट थे कि उन्हें राजा मान लिया जाता था। राजा को परिस्थितिवश इन बड़े-बड़े जमींदारों को अपना प्रधान आसामी मान लेना पड़ता था, शासन को विकेन्द्रीय कर इन आसामियों को उन्होंने शासन के अधिकार दे दिया था। इस तरह राजशासन चल सका। यह व्यवस्था किसी खास दिन, या किसी राजाज्ञा से स्थापित नहीं हुई थी। यह तो तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक अवस्था की भीति पर स्वयं ही विकसित हुई। इसी कारण तो यह व्यवस्था योरप के भिन्न-भिन्न भागों में कालान्तर में विकसित हुई, और इसके रूप में भी कुछ न कुछ फर्क रहा।

उत्पत्ति के कारण

योरप में जागीरदारी प्रथा का जमाना छः सात सौ वर्ष तक रहा। इस लम्बे अरसे में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक क्षेत्र में कई आन्दोलन उठे या विचारधाराएं विकसित हुईं जिनके आधार पर ही

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवयुग का प्रभात आया। इसलिए जागीरदारी व्यवस्था का विकास और अन्त का कारण और उससे हानि या लाभ का ज्ञान विश्वसभ्यता का विद्यार्थी के लिए जरूरी है।

रोम जर्मन-जातियों के सम्पर्क में बहुत पहले आ गया था। जर्मन जातियां जूलीयस सीजर के समय में ही चरवाहे की जिन्दगी के बाद कृषक का जीवन व्यतीत कर रही थी। पर उनके साधन बड़े ही निम्न थे। अन्न की कमी बराबर परेशान करती रहती थी। इसलिये क्षुधा से मुक्ति पाने के लिए साहसी जर्मन अपने देश से बाहर निकल पड़े थे। गौल (फ्रांस) पर सीजर की विजय के उपरान्त रोमन और जर्मन सीमा एक दूसरे से अतिनिकट आ गई। बहुत से जर्मन रोमन सेना में भर्ती हो गये। ये अच्छे सैनिक थे। जर्मन परिवार गौल और जर्मनी की सीमा पर बसाये गये। कुछ जर्मन परिवार और दूरचल कर रोमन साम्राज्य के और अन्दर बस गये। ये लोग रोमन सभ्यता के सम्पर्क में आ गये, पर बहुतों ने अपनी भूमि व्यवस्था कायम रक्खी। कुछ क्षेत्रों में रोमन और जर्मन भूमिप्रथाओं का सम्मिश्रण हुआ। जबतक रोम की सामरिक और राजशासन योग्यता मजबूत रही, रोमन साम्राज्य पर जर्मन जातियों का आक्रमण नहीं हुआ, यद्यपि धीरे-धीरे जर्मन परिवार रोमन साम्राज्य में घुसे आ रहे थे। पर चतुर्थ शताब्दि में रोम की शक्ति का तीव्रता से ह्रास होने लगा। हूनों ने मध्यएशिया से निकल कर दक्षिण रूस को रौंद डाला। यहां बसी जर्मन जातियों ने अब डैनूब नदी को पार कर रोमन सीमा का उल्लंघन कर, साम्राज्य पर धावा कर दिया। जर्मन जातियों का, गौथों का आक्रमण, पाँचवीं शताब्दि में हुआ। पूर्वी रोमन साम्राज्य को वे पददलित कर चुके थे। रोम को पोप लिओ ने बचा लिया था। हूनों के बाद अन्य जर्मन जातियां पश्चिमी योरप में घुस पड़ीं। ओस्ट्रैगोथों ने इटैली, उनके पश्चात् लोम्बर्डों ने उत्तर इटैली, विजिगौथों ने स्पेन, वैन्डलों ने उत्तर अफ्रिका और फ्रैंकों ने फ्रांस पर अपना

जागीरदारी प्रथा का विकास का इतिहास

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकार कर लिया। रोमन साम्राज्य के नागरिक रोम की सरकार की असफलता और कमजोरी से इतने ऊब गये थे उन्हें जर्मनों का आक्रमण भी सुखकर प्रतीत हुआ। जर्मन राजाओं ने रोमन सम्राट् की बड़ी-बड़ी जमींदारियों पर अपना कब्जा कर लिया। भूमि पर रोमन जमींदारों का हक पैत्रिक था, इसलिये अब जर्मन राजा भी इन जमींदारियों पर अपना पैत्रिक हक समझने लगे। पर जर्मन राजाओं के कुछ प्रमुख अंगरक्षक और साथी थे (Comitatus), जो राजा के प्रति स्वामीभक्ति (Oath of Commendation) की शपथ लिये हुये थे। राजा और उसके प्रमुख भक्तों का यह सम्बन्ध वैयक्तिक था। पर जब राजा के अधिकार में बहुत सी जमीन आ गई तो युद्ध में सहायता देनेवाले इन स्वामीभक्तों को राजा ने जमीन दे दिया। पर स्वामीभक्ति की डोर से यह बंधे रहे। इस तरह जागीरदारी प्रथा का सूत्रपात हुआ—राजा और प्रमुख रैयतों में वैयक्तिक सम्बन्ध जर्मन-रीति पर आधारित था, पर राजा का भूमिपति होना और इस भूमि को अपने विश्वासपात्रों में बांट देना रोमन रीति थी।

जर्मन जातियों में फ्रैंक सबसे प्रमुख थे। इन लोगों ने समूचे फ्रांस और जर्मनी के बड़े भाग पर अपना अधिकार कर लिया। जन्मभूमि से अपना सम्बन्ध अविछिन्न रखने के कारण इनमें उत्साह और नये खून की कमी कभी नहीं हुई। यह जर्मन राज था जिसके अधीन जर्मनी भी था, जिसे रोम ने कभी नहीं जीता था, और रोमन प्रान्त फ्रांस (Gaul) भी। फ्रैंक इसाई बन गये थे, और चर्च इनका दुश्मन नहीं वरन् मददगार ही बन गया। इसलिये इस राज की खूब उन्नति हुई। रोमन और फ्रैंक में मिश्रण होता रहा। विद्वेष की भावना कम थी। कुछ फ्रैंक राजा भी बड़े योग्य थे। फ्रैंकों के मेरोविन्जियन वंश के राजकाल में जागीरदारी प्रथा की रूप-रेखा स्पष्ट होने लगी। फ्रैंक राजाओं के अधिकार में रोमन साम्राज्य की बड़ी-बड़ी जमींदारियाँ आ गईं। यह कई क्षेत्रों में फैलीं हुई थीं। फ्रैंक राजाओं ने अपने प्रिय और

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामीभक्त अंगरक्षकों को (Comitatus) अपनी विशाल जमींदारी में से खासी बड़ी जागीरें दे दीं। पर राजा के साथ इनका वैयक्तिक सम्बन्ध नहीं टूटा। राजकार्य चलाने में जो लोग राजा का हाथ बटा रहे थे, उन्हें भी जागीरें दे दी गईं। पर शासनभार से वे भी मुक्त नहीं हुये। इस तरह बड़े-बड़े राजकर्मचारी अब राजा के जागीरदार भी हो गये थे। राजा के अलावे अन्य भूमिपति भी थे। उन्होंने राज में नौकरी करने में, राजशासन में भाग लेने में फायदा देखा। इसलिये बहुतों ने अपने भूमि-अधिकार राजा को समर्पण कर दिया, और उनसे फिर वह जमीन जागीर में लेकर राजशासन में भाग लेने लगे। इस तरह राजा अपने जागीरदारों के द्वारा राजशासन चलाने लगा। विस्तृत राज में आवागमन की असुविधा और सामाजिक अव्यवस्था के कारण फ्रैंक राजाओं को भी शासन में इस व्यवस्था से मदद मिली। अपने अफसरों को राजा जागीर देने लगे। बड़े-बड़े जागीरदार राजकर्मचारी बन गये। गृहयुद्ध में इनसे राजा मदद चाहते थे, इसलिए इन्हें जागीर देते थे। इस तरह बड़े-बड़े राजकर्मचारी और राजा के जागीरदार एक ही चित्र के दो पहलू बन गये। जागीरों के साथ-साथ राजा ने जागीरदारों को कुछ क्षेत्र में स्वतन्त्र अधिकार (Immunity) भी देना शुरू किया। चर्च की मदद पाने की इच्छा से फ्रैंक राजाओं ने पहले चर्च-अधिकारियों को ही—बिशप और एब्बौट—कुछ क्षेत्र में राजाधिकारों से मुक्ति दे दिया था। अब अन्य जागीरदार भी इन 'मुक्तियों' के अधिकारी हो गये। कुछ को राजा ने इनाम के रूप में, कुछ को उनसे मदद लेने की लालच में, और कुछ राजाओं ने विवश होकर 'मुक्तियां' (Immunities) दीं, जिनमें राजकर्मचारियों को कर वसूलने, न्याय बरतने के अधिकार से मुक्ति (Immunities) मुख्य थीं। इस तरह जागीरदारों की शक्ति बढ़ती गई। राज के बड़े-बड़े ओहदे पैत्रिक सिद्धान्त पर आश्रित थे। बड़े-बड़े जागीरदारों की जागीरें भी वस्तुतः पिता से पुत्र के अधिकार में ही आती थीं। इस तरह राजा

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की शक्ति कम होती गई, और कमजोर राजाओं के समय में राज के बड़े अफसर या जागीरदार राज के सर्वेसर्वा बन गये। राज में राजाओं से अधिक शक्तिशाली राज-सामन्त ही हो रहे थे। इन्हीं कारणों से मेरोविन्जिअन राजवंश का नाश हो गया और केरोलिन्जिअन् राजवंश की स्थापना हुई। इसी समय में छोटे-छोटे स्वतन्त्र किसानों का ह्रास होने लगा। अब राजा के प्रमुख योद्धा बड़ी-बड़ी जागीरों के मालिक बन गये, और अपनी ताकत से अपनी जागीरों की सीमा बढ़ाने लगे। गृहयुद्ध भी बराबर होते रहे, और इससे राज्य में शासन ढीला ही पड़ता गया। बलवान गरीबों को सताने लगे। तब छोटे-छोटे स्वतन्त्र किसानों (yeoman) की स्थिति खतरे में पड़ गई। उनके जान-माल संकट में पड़ गये। बड़े-बड़े जागीरदारों के पारस्परिक लड़ाइयों से भी उनकी हालत खराब होती गई। कितने ऐसे स्वतन्त्र किसान अपनी भूमि से हाथ धो बैठे, और बेजमीन बन गये। किसान अपनी अल्प-जमीन की रक्षा के लिए स्वतन्त्रता खो देने को मजबूर हो गये। उन्होंने अपनी जमीन का प्रभुत्व अपने से समृद्ध जागीरदार को समर्पण कर दिया, और जागीरदार से अपनी ही जमीन अब जागीर (Benefice) के रूप में प्राप्त किया। उन्होंने अपने जमींदार को लड़ाई में मदद देना मञ्जूर किया, स्वामीभक्ति (Homage) की शपथ ली और अपने को जमींदार के शरण में दे दिया। (Commendation)? उन्हें खास २ कर भी देना था। इन सबके बदले जमींदार ने उन्हें रक्षा का आश्वासन दिया। इस तरह अब जितने जमीनवाले थे वे सब जमींदार या रैयत ही रह गये। जिनके पास जमीन नहीं थी वे गुलाम थे, या इन्हें जमींदार थोड़ी सी जमीन देता था और इसके बदले उन्हें जमींदार के खेत पर कड़ी मेहनत करनी पड़ती थी, पर जमीन पर उनका कोई अधिकार नहीं था। ऐसे लोगों को Serf या Villeins कहते थे।

फ्रैंकों के केरोलिन्जिअन वंश के राज्यकाल में जागीरदारी प्रथा को और भी प्रोत्साहन मिला। राजशासन में राजा के प्रमुख जागीरदार और उनके

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जागीरदारों से अत्याधिक सहायता ली जाने लगी। चार्ल्स महान् या शार्लमेन (Charlemagne) इसी वंश का सम्राट् था। उसने पूरे जर्मनी और इटैली के बड़े भाग पर अपना राज्य स्थापित कर लिया। फ्रांस, जर्मनी, इटैली इस साम्राज्य के अन्तर्गत थे। डैन्यूब से लेकर पिरैनिज तक, उत्तर-समुद्र से लेकर भूमध्यसागर तक चार्ल्स का साम्राज्य विस्तृत था। वास्तव में पश्चिम रोमन साम्राज्य अब जर्मनों के नेतृत्व में पुनर्स्थापित हो गया। इसे एक ऐतिहासिक विडंबना ही समझना चाहिये कि जिन बर्बर जर्मनों ने रोमन साम्राज्य का अन्त करने में भाग लिया था, उन्होंने अब रोमन साम्राज्य की पुनर्स्थापना भी की। जनसाधारण की नजर में राज को सुदृढ़ करने के लिए चार्ल्स ने सम्राट् की उपाधि और राजमुकुट रोम में रोम के पोप से प्राप्त किया। इस तरह पवित्र रोमन साम्राज्य (Holy Roman Empire) की स्थापना हुई। पोप और सम्राट् में मित्रता की नींव पड़ी।

साम्राज्य विस्तार के साथ-साथ सम्राट् की जागीर का क्षेत्र भी बहुत बढ़ा। चार्ल्स ने अपने विश्वस्त सहकर्मियों को जागीरें दीं। विस्तृत राज के प्रबन्ध करने के लिए चार्ल्स ने जागीरदारी प्रथा को और भी संगठित किया। ये जागीरें इस शर्त पर दी जाती थीं कि जागीरदार युद्ध में सैनिकों और युद्धसामानों से मदद करेगा, राजा के प्रति बफादारी की शपथ लेगा, राज-कार्य में सहायता देगा, और इसके बदले उन्हें जागीर से लाभ उठाने की छूट थी, और अपनी जागीर में न्याय बरतने और अमन-चैन कायम रखने का पूर्ण हक उन्हें प्राप्त था। कैरोलिन्जियन वंश का उत्कर्ष ही जागीरदारी प्रथा का विकास का प्रतीक था। यह परिवार साम्राज्य के कुलीन जागीरदारों के हित में ही शासन कर रहा था। राज के एक बड़े जागीरदार अन्त में इस वंश का प्रतिनिधि Pipin the Short ने ७५२ ई० में सम्राट् चाइल्डेरिक तृतीय (Childeric III) को गद्दी से उतार कर स्वयं राजगद्दी पर कब्जा कर लिया। उसी का पुत्र चार्ल्स महान् था। इस युग में राज का संगठन जागीरदारी और कुलीनता (Feudal

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

aristocracy) के आधार पर किया गया। बड़े-बड़े रईसों को जागीरें दीं गईं और राजशासन भी उनके सहयोग से ही चलता था। चार्ल्स अपने प्रमुख जागीरदारों को राजधानी में बुलाकर उनकी राय से कानून बनाता था। राजा के मन्त्रीमंडल के सदस्य भी यही लोग थे। अब राज में समाज और शासन दोनों का इस व्यवस्था के आधार पर पूर्ण संगठन हो गया। जागीरदार अपनी जमींदारी में स्वतन्त्र थे—कर वसूलते, कचहरी लगाते, कानून चलाते और चर्च के पादरी या बिशौप बहाल करते। राज अब एक नहीं, वरन् कई स्वतन्त्र टुकड़ों में बंटा था, सिर्फ प्रधान जागीरदार और भूमिपति के नाते ही राजा से इनका सम्बन्ध था। राजा के जागीरदारों ने भी अपने आसामियों (tenants) को जागीरें दी, और उन्हें भी अपने क्षेत्र में शासनाधिकार दिया गया। इन जमींदारों के महल Castle कहे जाते हैं, पत्थर के बने और सुदृढ़। जमींदारी Manor कहा जाता था, और जमींदारी कचहरी Manorial Court कही जाती थी। शार्लमैन ने अपने पास किसी भी बड़े से बड़े जागीरदार से अधिक जमीन रक्खी थी, और उसने अपनी इस वृहत् जागीर में बड़ा ही अच्छा शासन स्थापित किया था। इसलिए वह अपने प्रमुख जागीरदारों से भी ऐसी ही उम्मीद रखता था और इसके समय में जागीरदारी व्यवस्था का लाभदायक चित्र ही सामने आया। सम्राट् की प्रतिष्ठा और शक्ति बहुत अंशों तक कायम रही, क्योंकि सम्राट् के पास अभी भी सबसे अधिक और दूरस्थित प्रदेशों में स्थित जमीन थी। इसलिए प्रमुख जागीरदार और अन्य महत्वाकांक्षी पुरुष सम्राट् के अनुग्रह की प्रतीक्षा में रहते थे। फिर सम्राट् के ही अनुग्रह पर उनके विशेषाधिकार सुरक्षित थे, क्योंकि राजा को युद्धशक्ति उनसे बहुत अधिक थी, और चर्च की मैत्री के कारण सम्राट् का प्रभाव भी जनसाधारण पर स्वल्प नहीं था।

चार्ल्स महान् की मृत्यु के बाद फ्रैंक साम्राज्य पतनोन्मुख हो गया। जागीरदारी प्रथा (Feudalism) ही पतन का मुख्य कारण था। इस व्यवस्था के नियम के अनुसार सम्राट् के मरने के बाद नये सम्राट् के

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकार में सभी जागीरें, जो पहले सम्राट् ने जागीरदारों में बांटा था, सिद्धान्तः लौट जाती थीं और नये सम्राट् इन जागीरों को जिसे चाहें दे सकते थे। इस कारण बड़े-बड़े जागीरदार स्वभावतः चिन्तित हो गये। ये प्रमुख जागीरदार (Tenants-in-Chief) एक न एक राजकुमार के पक्ष में होकर अपनी स्थिति कायम रखने या और भी अधिक बेहतर करने के लिए तत्पर हो गये। राजपरिवार की आर्थिक उन्नति सम्राट् की निजी जागीर पर ही निर्भर थी। इसलिए राजकुमार सब इस वृहत् जागीर का बंटवारा के लिये इच्छुक हो गये। इन राजकुमारों को बड़े-बड़े जागीरदारों से प्रोत्साहन मिला। इसका आखिरी नतीजा यही हुआ कि साम्राज्य एक जागीर की तरह राजकुमारों में बंट गया। वर्डून की संधि (Treaty of Verdun) ८४३ में हुई जिसके अनुसार राज की जागीरें, चर्च की जमींदारियां, चर्च, प्रदेश (Country) सब लोथार और लुड्विग् में बंट गये। इस बंटवारा में न शासन की सुविधा, न प्रजा की उन्नति, न प्रजा की जाति, न प्राकृतिक सीमा का ख्याल किया गया। तास के पत्ते की तरह मनुष्य, जमीन, गिर्जाघर सब बंट गये। इसके बाद और भी कई बार इन बंटे हुये राज्यों का भी विभाजन हुआ। इसका फल यह हुआ कि सम्राट् अब राज में सबसे बड़ा जागीरदार न रहा, और न उसकी जागीर सबसे अधिक सुशासित। इन बचे हुये राज्य की जागीरों को भी कैरोलिन्जिअन राजाओं ने अपने मददगार जागीरदारों में बांट दिया। इन जागीरदारों को राजशासन के अधिकारक्षेत्र से कई मुक्तियां (Immunities) मिलीं। इस तरह साम्राज्य जिस प्रकार कई राज्यों में विभक्त हो गया, उसी प्रकार राज्य भी जागीरों में बंट गया, और बड़ी-बड़ी जागीर छोटी-छोटी जागीरों में। समूचे पश्चिम योरप में अराजकता फैल गई। डाकू और लूटेरे प्रायः रईसों के लड़कों या साहसी पादरियों या विशौपों के नेतृत्व में देहाती इलाके में उत्पात मचाने लगे। छोटे-छोटे कृषक अपना खेत गवां बैठे, और कितनों ने बड़े और प्रभावशाली जमींदारों के रैयत बन कर अपनी रक्षा की।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी अस्थिर दशा में पश्चिमी योरप को उत्तरी योरप के समुद्री डाकुओं का सामना करना पड़ा। नौवें और डेनमार्क के साहसी नाविकों ने लूट-पाट की इच्छा से फ्रांस और इंगलैंड के तटवर्ती प्रदेशों पर छापा मारना शुरू कर दिया। कुछ समय के बाद ये लोग जमायत बाँध कर देशविजय के लिए निकल पड़े। अपने बड़े-बड़े सैकड़ों पतवार से खेई जानेवाली नावों में चल कर ये लोग फ्रांस और इंगलैण्ड पर आक्रमण करने लगे। इंगलैण्ड का बहुत बड़ा भाग डेनों के अधीन चला गया। कैन्युट् बड़ा प्रतापी सम्राट् था। अल्फ्रेड् महान् डेनों के विरुद्ध खूब बहादुरी से लड़ा। फ्रांस में इन उत्तरीद्वीपवासी (Norsemen or Normans) के आंतक से लोग परेशान थे। इस तरह अराजकता और भी अधिक फैल गई। साधारण कृषक इनसे लड़ने में अपनी जान और खेत गवाँ बैठे। धनी और गरीब सभी इन आक्रमणों से तंग आ गये। किसी को कहीं रक्षा का सम्बल् नहीं मिलता था। फ्रैंक राज्य तो इस समय बिल्कुल असफल सिद्ध हुआ। जब राजा राज्य की जिम्मेदारी नहीं निभा सका, अमन-चैन नहीं कायम रख सका, तब इसकी जगह पर कोई अन्य व्यवस्था का विकास होना जरूरी था।

फ्रैंक-साम्राज्य की अवनति और नौर्मन और डेनों के विध्वंसक आक्रमण से उत्पन्न अराजकता के स्थान पर जागीर प्रथा का पूर्ण विकास हुआ। जब तक फ्रैंक-साम्राज्य मजबूत रहा तब तक इस व्यवस्था को सीमा के अन्दर रक्खा गया। इससे राजशासन में मदद लिया गया, और और यह आर्थिक संगठन का आधार रहा। पर जब साम्राज्य ढहने लगा तब जागीरदारी व्यवस्था खुल कर पनप सकी। दशवीं से बारहवीं शताब्दि का युग जागीरदारी प्रथा का सर्वाधिक विकास का युग है। शासन संगठन, आर्थिक व सामाजिक संगठन सभी का रूप (Feudal) यही हो गया। जमींदार और आसामी का रिश्ता ही एक रिश्ता रह गया। बड़े-बड़े जमींदारों को रक्षादल या फौज की जरूरत थी, और बेजमीनवाले उनको अपना स्वामी मान लेते थे, और बदले में उन्हें युद्ध

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में सैनिक-सहायता देनी पड़ती थी। मालिक उन्हें जागीर दे देता था। कम खेतवाले मामूली कृषक अपने मालिक को प्रचलित कर या लगातार सैनिक सहायता देने में चूकने लगे, और उनकी जागीर उनसे छीन ली गयी। तब बेचारे खेतिहर मजदूर बन गये, बेजमीन और मजबूर। उन्हें मालिक रहने के लिए घर और जीविका के लिए थोड़ी सी जमीन दे देता था, पर ये Serf या Villein अपनी स्वतन्त्रता खो बैठे थे। इस तरह इस व्यवस्था में गरीब गरीब होते गये, अमीर अमीर।

जागीरदारी व्यवस्था का संगठन

राजा को भूमिपति माना जाता था उसके बाद थे प्रमुख जागीरदार (Tenants-in-chief) जिन्हें राजा के द्वारा जागीरें मिली थीं, या राजा ने जिनकी जागीरों को मान्यता दे दी थीं। प्रमुख जागीरदार बैरन या इसाई मठों के महंथ थे। इन लोगों ने राजा को अपना स्वामी माना और प्रभुभक्ति की शपथ ली (Homage)। राजा इनकी रक्षा का जिम्मा लेता था। जागीर और रक्षा का आश्वासन के बदले राजा के इन खास जागीरदारों को युद्ध के समय राजा को एक निश्चित सुसज्जित सेना से मदद करनी पड़ती थी। कुछ विशेष मान्य कर भी अपने स्वामी को खास-खास मौकों पर देना पड़ता था, जिसे Reliefs कहा जाता है, जैसे राजा के उत्तराधिकारी के के जन्मोत्सव पर, बड़ी पुत्री के विवाह के अवसर पर, राजा को बन्दी हो जाने पर उसे दाम देकर छुड़ाने के अवसर पर। जागीरदार अपनी जागीर में वस्तुतः स्वतन्त्र था। राजा ने उसे राज-न्याय और पुलिस के हस्तक्षेप से 'मुक्तियाँ' (Immunities) दे दिया था। चर्च के मठाधीशों को ही यह विशेष न्यायाधिकार पहले दिया गया था। अपने पादरियों पर मुकदमा चलाने और दण्ड देने का अधिकार चर्च के अधीन धार्मिक कचहरियों को ही दे दिया गया। राज का अधिकार इस क्षेत्र से हटा लिया गया था। अब बैरनों ने भी इन विशेषाधिकारों को प्राप्त कर लिया। अपनी जागीरदारी में न्याय करना उनका कर्त्तव्य और अधिकार था। उनकी कचहरियाँ (Manorial Courts) ही अब जन-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधारण के लिये न्यायालय बन गये। अपनी जमींदारी में अमनचैन कायम रखना भी इनके ही जिम्मे था। इसके अलावे केन्द्र में शासन-प्रबन्ध करने के लिए, या राजा को सलाह देने के लिए भी इन्हें आमन्त्रित किया जाता था। केन्द्रीय और स्थानीय शासन अब बिल्कुल सामन्तशाही हो गया—Feudal हो गया। राजा और उसके प्रमुख जागीरदारों में जो सम्बन्ध था, जो नियम प्रचलित थे, वही कानून और नियम से Tenants-in-chief और उनके रैयतों का सम्बन्ध भी बंधा था। इन रैयतों के भी रैयत रहते, और उनके भी, और इस कड़ी की अन्तिम लड़ी Knights थे जिनके पास जमीन थी पर अपना रैयत नहीं था। अपने स्वामि के लिए सैनिक बनकर युद्ध में लड़ने के लिए इन्हें बराबर तैयार रहना पड़ता था। कुछ Knights के पास जमीन नहीं भी रहती थी, पर वे जमींदार (Baron) के परिवार के अंग समझे जाते थे। युद्धकाल में सैनिक और शान्ति के समय में बैरनों की पुलिस यही थे। पहले Knights निम्नकुल के होते थे, पर आगे चल कर कुलीन वंश के प्रतिनिधि को ही यह पद मिलता। नाइटों को गढ़ की रखवाली के लिए भी नियुक्त किया जाता था। प्रत्येक रैयत को अपने जमींदार के लिए कुछ नाइटों की सैनिक-सेवा का भार लेना पड़ता था। जागीर का क्षेत्रफल या आर्थिक स्थिति पर ही नाइटों (Knights) की संख्या निश्चित थी। ये Knights अपने स्वामि के सैनिक थे, और इस तरह प्रत्येक छोटा-बड़ा जमींदार इनके (Knights) बल पर अपना रोब-दाब जमा सकता था। सैनिक सेवा ही Knights का प्रमुख कर्त्तव्य था। समाज का सबसे निम्नवर्ग था Serfs or Villeins का। ये लोग बंधुआ या खेतिहर मजदूर थे। अपनी कोई जमीन नहीं थी, मालिक इन्हें रहने के लिए घर और थोड़ी सी जमीन दे देते थे, पर इन पर इनका स्वतन्त्र अधिकार नहीं था। इन्हें इनके बदले अपने मालिक के खेत पर कड़ी मेहनत करनी पड़ती थी, बेगारी देनी पड़ती थीं, और कई तरह के कर या भेंट भी। इन्हें सैनिक-सेवा से मुक्ति थी। मालिक के दिये खेत

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से इनका अटूट सम्बन्ध था, और ये खेत के साथ ही बेच दिये जाते या अदल-बदल कर दिये जाते थे। जिनके पास जमीन नहीं थी, वे दास थे। उनका कोई अधिकार नहीं था, और रोटी पर पल कर ये मालिक के घर में नौकर रहते थे। इस तरह समाज कई श्रेणियों में विभक्त था, और प्रत्येक श्रेणी अपने ऊपरवाले उच्च श्रेणी की सेवा करता था और उनसे रक्षा की आशा रखता था। इस तरह समाज और राजशासन एक अलिखित पर सर्वमान्य राजीनामा या Contract पर आधारित था। यदि स्वामी अपने आसामी की रक्षा में असमर्थ था, तब रैयत को अधिकार था कि इसे राजीनामा का उल्लंघन मानकर दूसरे स्वामी को चुन ले। इसी प्रकार यदि आसामी कर्त्तव्यच्युत हो जाय तो जमींदार को हक़ था कि उसे दण्ड दे या उसकी जागीर छीन कर दूसरे आसामी को दे दे। इस कारण समाज इस समय इन नियमों पर चलने में ही अपना भला देखता था, राजा, जागीरदार, या रैयत सब इस व्यवस्था के नियमों को मान कर चलने में ही कल्याण समझते, कारण परिस्थिति ऐसी थी कि प्रत्येक मनुष्य, बेजमीन या जमींदार, अपनी रक्षा के लिए व्याकुल थे, और अपने से अधिक प्रभावशाली और समृद्ध पुरुष की शरण जाने में ही अपना कल्याण समझते थे, राजा और बड़े-बड़े भूमिपति भी। इस तरह ऊपर और नीचे, दोनों ओर से ऐसी शक्तियाँ काम कर रही थीं कि नतीजा एक ही हुआ—समाज का जागीरदारी व्यवस्था के आधार पर संगठन।

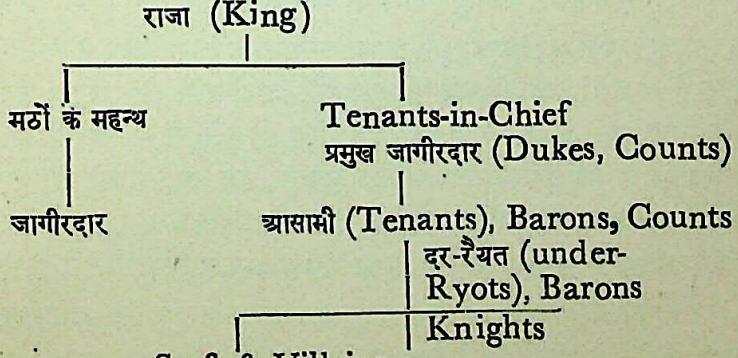

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज और राज में व्यक्ति का प्रभाव और पद जमीन पर अधिकार के नियम पर आश्रित था। राजा के प्रमुख जागीरदार समाज और शासन दोनों पर विशेष प्रभुत्व रखते थे। जिसके पास जितनी अधिक जागीर और अधिक रैयत थे वह उतना ही अधिक प्रतिष्ठित और प्रभावशाली समझा जाता था। इसलिए समाज कई भागों में विभक्त हो गया। सबसे पहला और अत्यन्त प्रभावशाली थे बड़े बड़े जमींदार, इनमें मठों के मठाधीश भी शामिल थे, जिनके पास बहुत जमीन थीं और जिसे वे रैयतों को जागीरदारी प्रथा के नियमानुसार दे दिये थे। यह वर्ग समाज का नेता, शासन-यन्त्र का संचालक, और देश का रक्षक समझा जाता था। ये लोग धनी थे। और बड़े-बड़े सुसज्जित और सुदृढ़ कोठी Castle में रहते थे। संकट के समय इनके रैयत और मजदूर यहीं शरण लेते थे। इनकी जमींदारी कचहरियों में अपराधियों का न्याय किया जाता था। इनके कर्मचारी कर वसूलते थे। नाइट् अमन-चैन रखते थे। उस समय कृषि ही धन का प्रमुख साधन था। जमींदारों में बराबर झगड़े होते रहते थे, आवागमन की सुविधा भी कम थी, इसलिए प्रत्येक जागीरदार को अपने क्षेत्र में आर्थिक स्वावलम्बन का आदर्श रखना होता था। इसलिए जमींदार सब जरूरी चीज-अन्न, खेत कृषि-यन्त्र, कपड़ा, लकड़ी के सामान—का प्रबन्ध रखता था।

दूसरा वर्ग था साधारण पादरियों का जिनका काम था ईश्वर और ईसा की प्रार्थना करते रहना। समाज कल्याण के लिए ईश्वर से विनती करते रहना। बड़े बड़े अमीर विशौप और आर्कविशोप तो वस्तुतः अब बड़े जागीरदार ही हो गये थे, और सांसारिक झंझटों में ही व्यस्त थे। बेचारे साधारण पादरियों की आर्थिक अवस्था कुछ खास अच्छी नहीं थी, विशेषकर ग्रामों में गिर्जा या मठों के रहनेवाले पादरी की। चर्च-संगठन में जागीरदारी व्यवस्था का बोलबाला था। असभ्य जर्मनजातियों ने इसाई धर्म को अपना लिया था। धर्म का प्रभाव जनता पर था ही, खास कर जब से रोम के पोप ने अटिल्ला के आक्रमण से रोम की रक्षा की थी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब चारों ओर से अशान्ति और अराजकता फैली हुई थी तब बहुत से धनी मनुष्यों ने चर्च को अपनी सम्पति दान देकर शान्ति की खोज में चर्च की शरण में आ गये थे। विजेता जर्मन राजाओं ने भी चर्च को बहुत जमीन दान में दीं। शार्लमेन् ने तो चर्च को बहुत सी जागीरें दान में दे दीं। इस तरह चर्च अब बहुत धनी हो गया, और इस धन के वास्तविक प्रबन्धक या सर्वेसर्वा पादरियों के नेता बिशौप या आर्कबिशौप हो गये। राजा के जागीरदार और उनके रैयतों ने भी अपने जिला और ग्राम के मठों को काफी जमीन दान में दे दिया। अब राजा या प्रमुख कुलीन नेता (Nobles) बिशौप, और एब्बौट का चुनाव खुद करने लगे। और चर्च के बाहर के आदमी भी इस पद को पाने लगे। इन बड़े-बड़े मठाधीशों ने भी मठ की जागीर आसामियों की प्रचलित मान्य शर्तों पर दे दिया। इस तरह चर्च में भी यह व्यवस्था कायम हो गई। जब कि मठाधीश बिशौप या एब्बौट राजसी या रईसी ठाट-बाट से रहने लगे बेचारे धर्मपरायण साधारण पुजारीवर्ग पादरी सिर्फ प्रार्थना करने के ही लिए थे। उनकी दशा Serfs या Villeins से अधिक बेहतर नहीं थी। उन्हें मठ से खाना-कपड़ा मिलता था, आराम करने की जगह मिलती थी, बदले में उन्हें पूजा इत्यादि का वस्तुतः पूरा भार उठाना पड़ता था। जनता की दृष्टि में इस वर्ग की इज्जत थी। धर्मभीरु जनता के लिए उनका जीवन आदर्श था।

तीसरा वर्ग उन अत्यन्त छोटे-२ किसान, व खेतिहर मजदूर (Serf, Villein) का था। इस वर्ग की संख्या बढ़ती ही जाती थी। छोटे-छोटे किसान या Knight भी मान्य करों को देने में या लगातार सैनिक सेवा करने से ऊब कर या लाचार होकर Serf या Villein बन गये। उनके पास अब जागीर नहीं बची थी, या जो कुछ बची उसका वह प्रबन्ध नहीं कर सकते थे, कृषि के साधन जुटाने की क्षमता उनमें अब नहीं रही। तब ये लोग बची हुई जागीर को मालिक को वापस कर खेतिहर मजदूर बन गये। उसे जमींदार के खेत पर, या घर पर बड़ी कड़ी मेहनत करनी पड़ती थी,

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और जमींदार के दिये थोड़ी सी जमीन पर वह उचित श्रम नहीं कर पाता था। इसलिए उसकी जिन्दगी वड़ी मुश्किल से कटती थी, और खेत के साथ वह भी यहां-वहां होता रहता था। पर तव भी उसकी दशा दासों से अच्छी थी। क्योंकि Serfs और Landlords का सम्वन्ध जागीरदारी व्यवस्था के नियमों से वंधा था, पर वेचारे दासों को यह सुविधा कहां। जिसके पास जमीन थी, या जिसे जमीन से कोई सम्वन्ध था उसके कर्त्तव्य और अधिकार इस सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था से निश्चित थे, पर जिसे जमीन नहीं उसका पुरसाहाल करनेवाला कोई नहीं था।

इस तरह समाज तीन वर्गों में वंटा था—उच्चवर्ग था जमींदारों या मठाधीशों का, जो धनी थे, शासक थे और समाज के नेता थे। उसके वाद पादरी या पुजारी आते थे जिनका काम था प्रार्थना करना, और सवसे नीचे, यद्यपि वहुसंख्यक, स्थान था छोटे-छोटे किसान, खेतिहर, मजदूरों व दासों का, जिनका काम था पसीने वहाकर काम करना और वरावर मुश्किल से जिन्दगी वसर करना।

जागीरदारी व्यवस्था से हानि :

नैतिक दृष्टिकोण से यह व्यवस्था अनैतिक ही थी। वहुसंख्यकों की पसीने की कमाई पर अल्पसंख्यक जागीरदार ऐश करते थे। धर्म के ठीकेदार-महंथों या विशौपों की जिन्दगी से जनसाधारण का धर्म में आस्था और कम हो गई, धर्म का सम्वन्ध हट जाने के वाद अव धर्म और अधर्म का भेदभाव ही मिट गया और पशुवल ही साधन और साध्य हो गया। इस व्यवस्था का विकास अनवरत युद्ध और अशांति से रक्षा के लिए हुआ था, जागीरदारी-युग में तो राज्य-युद्ध क्या जागीरदारों में वैयक्तिक युद्ध वरावर होता रहा। इसलिए इस युग में शान्ति नहीं रही। इस व्यवस्था के नियम ऐसे थे—कर्त्तव्य और अधिकार के वीच इतनी पतली लकीर थी—कि झगड़ा स्वाभाविक था। एक दूसरे जमींदार की जमींदारी को लूटना एक वलवती इच्छा रहती थी। राजनीतिक दृष्टिकोण से इस व्यवस्था में विकेन्द्रीयकरण हद से अधिक हो गया था। राजा का राज पर अपना अधिकार

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाममात्र का था। वह शासन में या युद्ध में अपने जागीरदारों पर ही निर्भर करता था, और ये बड़े-बड़े जागीरदार राज के हित से अधिक अपना स्वार्थ-सिद्धि में लगे रहते थे। जन साधारण को राजा से कोई सम्बन्ध नहीं था। न न्याय न युद्ध और न अमन-चैन के लिये इनकी दृष्टि राजा की ओर रहती थी। प्रत्येक आसामी के लिए उसका जमींदार ही सब कुछ था। उसकी दुनिया ही इस जागीर तक सीमित थी। न्याय-अमन-चैन या युद्ध के लिए वह अपने जमींदार पर ही आश्रित था। इसका फल यह था इस युग में राष्ट्रीय भावना का उदय नामुमकिन था। हद से हद स्थानीय प्रेम (Regionlism) ही सम्भव था। समाज को तीन भिन्न-भिन्न भाग में बंट जाना, और उनके हितों में इतना विरोध रहना किसी स्वस्थ और सुदृढ़ समाज के निर्माण में भीषण रुकावटें थीं। समाज की व्यवस्था ही अप्रजातान्त्रिक और अनैतिक सिद्धान्त पर आश्रित थी। खेतिहर मजदूर या दासों को वैयक्तिक स्वतन्त्रता नहीं थी—उनकी देह ही बिक गई थी, या मालिक के यहाँ गिरवीं रह गई थी। मानव मानव है, और उसके कुछ जन्मसिद्ध अधिकार हैं ऐसे विचार इस व्यवस्था के लिए घातक ही हो सकते थे। सच पूछा जाय तो राज और समाज में अराजकता का नाश नहीं हुआ, बल्कि अराजकता को नियमबद्ध किया गया।

जागीरदारी प्रथा से लाभ :

आधुनिक प्रगतिशील सिद्धान्तों के आधार पर हम Feudalism की कड़ी से कड़ी आलोचना कर सकते हैं। पर जिस परिस्थिति में जागीरदारी प्रथा की उत्पत्ति और उत्कर्ष हुआ उस समय इस व्यवस्था के अलावे और कोई उपाय नहीं था। रोमन साम्राज्य का पतन, जर्मन जातियों का आक्रमण, फ्रैंक-साम्राज्य की स्थापना और पतन, और उत्तर योरोपीयवासी (Nersemen) की चढ़ाई—इन सब घटनाओं ने समूचे योरोप में अशान्ति, अराजकता फैला दिया। सम्राट् या राजा शान्ति स्थापना में असफल रहे, बड़े-बड़े जमींदार भी अपने बूते पर ही अमन-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चैन नहीं रख सकते थे। आवागमन की सुविधाएँ नगण्य थीं। सरकार का मूल कर्त्तव्य है शासन करने की क्षमता, अमन-चैन कायम रखना, पर उस समय राजा को अपने राज पर शासन करना नामुमकिन था। पर सब लोग इस अराजकता से परेशान थे। ऐसी परिस्थिति में Feudalism का आविर्भाव हुआ। समाज का संगठन सर्वमान्य नियमों के अनुसार हुआ। इन नियमों के द्वारा ही समाज के विभिन्न अंगों का पारस्परिक सम्बन्ध प्रचलित था। जमींदारों (Barons) के मध्य में जो कुछ होते थे उनके लिए भी नियम भंग का बहाना लिया जाता था। खेतिहर मजदूरों के अधिकार और कर्त्तव्य भी निश्चित थे।

इस तरह व्यक्ति को कानून के अनुसार चलने की आदत पड़ी, और कानून को सर्वमान्य मानने से लोग कानून का आदर करने लगे। न्याय पर लोग बहुत जोर देते थे। न्याय का रूप, जो भी हो (यह तो प्रत्येक युग में अलग-अलग होता है) पर न्याय के (justice) के प्रति यह निष्ठा व दृढ़ता स्पृहणीय है। न्याय का आधार था कानून (Law), और उस समय के कानून के बारे में आपका जो भी ख्याल हो, ध्यान देने की बात यह है कि प्रत्येक वर्ग कानून की प्रतिष्ठा चाहता था, और जो झगड़े भी होते थे तो कानून के नियमों की आड़ में ही। राजा भी कानून के नीचे था। इस युग की यह न्यायप्रियता और कानून की सार्वभौमसत्ता में आस्था समाज के विकास में भविष्य के लिये बहुत श्रेयष्कर हुई। स्वामभीक्ति (Fidelity), राजा के प्रति वफादारी, की जो शपथ उसके प्रमुख जागीरदार लेते थे (Tenants-in-chief) उसे वे निभाते थे। आसामी या नाइट भी अपने स्वामी के प्रति वफादारी का शपथ प्राणपण से निभाते थे। मध्ययुग में बैरनों (Baron) के द्वारा राजा की हत्या, या नाइटों (Knights) के द्वारा स्वामी की हत्या का उदाहरण शायद ही मिले। अपने वचन की रक्षा करना, आत्मसम्मान के लिए मर मिटना, संकट आने पर स्वामी के लिए प्राण देने के लिए तैयार रहना, स्त्रियों का समुचित आदर और प्रतिष्ठा की रक्षा करना इस

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युग के धर्म सा हो गये थे। इन्हें हम इस युग के नैतिक सिद्धान्त कह सकते हैं। इसलिए तो इस युग को Age of Chivalry कहते हैं। नाइटों की बहादुरी और कर्त्तव्य-परायणता की कहानियां योरप के साहित्य की अमूल्यनिधियां हैं। प्रतिज्ञापालन और स्वामिभक्ति के सर्वमान्य सिद्धान्त के आधार पर ही विछृंखल समाज में स्थिरता (Stability) आई।

यह सच है कि इस व्यवस्था में समाज और शासन में कुलीनों का प्रभुत्व (Aristocracy) रहा। जमींदारी और राजनीतिक प्रभाव में घनिष्ट सम्बन्ध था। जिनके पास जितनी अधिक जमीन, जितनी बड़ी जागीर थी, समाज और राज पर उसी अनुपात से उनका प्रभाव था। इसे अप्रजातान्त्रिक भले कहा जाय, पर इससे यह निष्कर्ष जरूर निकलता है कि जो जमींदार हैं उन्हें अपना सामाजिक और राजनीतिक उत्तर-दायित्व समझना था। जमींदारों का यह कर्त्तव्य था कि वे समाज के संगठन के नियमों का पालन करें और करावें, और शासन भार सम्हालें। सम्पत्ति और समाज में प्रभाव राजशासन चलाने का अधिकार तो देता था, पर यह कर्त्तव्य भी माना जाता था। सम्पत्ति का स्वामित्व और समाज के प्रति कर्त्तव्य साथ-साथ चलते थे। इसी संयुक्त आधार पर उस युग की शांति और स्वतन्त्रता आश्रित थी। बेजमीन वालों की वैयक्तिक स्वतन्त्रता भले न हो, पर समाज के अन्य भागों की स्वतन्त्रता तो इसी सिद्धान्त पर टिकी थी। तभी तो लार्ड ऐक्टन् ने कहा है—"Medieval liberty differs from this that it depended on property"। सम्पत्ति के साथ-साथ उत्तरदायित्व और कर्त्तव्य का भार भी ढोना पड़ेगा यह सिद्धान्त निश्चय ही उल्लेखनीय है।

इसी सिलसिले में एक बात और भी ध्यान देने की है। इस युग का शासन को हम स्वेच्छाचारी और निरंकुश शासन नहीं कह सकते हैं और न एक व्यक्ति का ही। इस समय शासन का मूल सिद्धान्त था पारस्परिक उत्तरदायित्व (Mutual Responsibility)। राजा, जागीरदार,

CC-0. Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व रैयत सब एक दूसरे के प्रति उत्तरादायी थे। इसमें यदि एक ने अपना पार्ट नहीं अदा किया तो उसे अपने अधिकार से भी वंचित होना पड़ता था। इस तरह समाज का प्रत्येक अंग एक दूसरे से बंधा था; समाज और राजशासन में एक तरह की स्थिरता और सुदृढ़ता कायम हो सकी थी। सिद्धान्त यह था कि राजा के साथ वैयक्तिक सम्बन्ध है, न कि अध्यात्मिक या धार्मिक। राजा और प्रजा का सम्बन्ध एक इकरारनामा से नियमित था, जिसके अनुसार राजा और समाज के अन्य वर्गों के अधिकार और कर्त्तव्य निश्चित थे। इसलिए यदि राजा अपने कर्त्तव्यों की उपेक्षा करता था तो उसके प्रमुख जागीरदार उसके विरुद्ध विद्रोह करने का अधिकार रखते थे, और तब राजा को कानून के अधीन आना पड़ता, या राज ही छोड़ना पड़ता। यह ठीक है कि इस समय का कानून सरमायदारों (Feudal Barons) के हित में था। पर सैद्धान्तिक रूप से इस नियम का बड़ा महत्व था। राजा कानून के बाहर नहीं है, और यदि वह इसकी उपेक्षा करे तो उसके विरुद्ध विद्रोह न्यायसंगत है, और उसे जब्रदस्ती कानून के मातहत लाना है, यही विचार तो इंगलैण्ड में वैधानिक संघर्ष का आधार था, और आधुनिक वैधानिक राजतन्त्र इसी सिद्धान्त पर विकसित हुआ।

हम पहले ही बता चुके हैं कि इस व्यवस्था में खेतिहर मजदूरों की दशा अच्छी नहीं थी। पर उस समय की विकट् परिस्थिति में इन गरीबों के लिये यह व्यवस्था भी आरामदेह ही सिद्ध हुई। उस जमाने में जिसे जमीन नहीं थी, या जो अपनी बची-खुची थोड़ी सी जमीन की रक्षा करने में समर्थ नहीं था, उसके तो जान के लाले पड़े थे। अपने को जमींदार की शरण में डालकर उसे चैन मिली। फिर मालिक और खेतिहर मजदूर (Villeins or Serfs) का पारस्परिक सम्बन्ध भी सर्वमान्य कानून के बाहर नहीं था। इन Serfs or Villeins को मान्य कानूनी हक था। कर्त्तव्य के साथ-साथ अपने स्वामि के प्रति उनके अधिकार भी थे। इसलिए उनकी दशा ऐसी बुरी नहीं थी जैसा कि हम कल्पना करते हैं। जमींदारों की भी भलाई इसी में थी कि ये स्वामिभक्त बने रहें।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जागीरदारों के इस युग (Feudal Age) की खास संस्कृति है, एक सभ्यता ही हैं। इस युग के राजनैतिक और सामाजिक आदर्श, नैतिक सिद्धान्त, आचार-विचार सभी भिन्न हैं।

चर्च और जागीरदारी प्रथा :

जब से रोमन सम्राट् कान्स्टेन्टाइन ने इसाई धर्म को राजधर्म घोषित किया था तभी से चर्च की शक्ति बढ़ती गयी। जर्मन और हूनों के आक्रमण से भी चर्च के धन और प्रतिष्ठा की उन्नति हुई। ग्रेगरी (Gregory) के समय में रोम के धर्मप्रचारकों ने दूर-दूर इसाई धर्म फैलाया। सेंट् आगस्टाइन ने इंगलैण्ड को इसाई बनाया। जर्मन जातियों ने इसाई धर्म को अपनाया। इस तरह इसाई धर्म का विस्तार और प्रभाव खूब बढ़ा। बहुत से भक्तों ने अपने स्थिर और अस्थिर धन चर्च को समर्पित कर दिया। उस समय की अस्थिर अवस्था में बहुतों ने चर्च को ही एक मजबूत संगठन और आधार समझ कर अपनी जायदाद चर्च को दे दिया। जर्मन विजेताओं ने भी धर्मपरायणता के कारण और चर्च की सहायता और सहयोग पाने के लिए चर्च को बहुत सी जागीरें दान में दे दिया।

इस तरह चर्च के पास बहुत धन और सम्पत्ति का संग्रह हो गया। धन का प्रभाव पादरियों पर बुरा हो पड़ा। भोगविलास में लिप्त होकर धर्माचार की उपेक्षा होने लगी और फलतः उनमें जनसाधारण की श्रद्धा कम होने लगी। चर्च में सुधार लाने के लिए कई साधुपुरुषों ने अनवरत चेष्टा किया। चर्च का सुदृढ़ संगठन और धर्म के प्रति सच्ची लगन पैदा करना इन धर्म-नेताओं का आदर्श था। इन्हीं महापुरुषों में बेनिडिक्ट (Benedict) अग्रणी थे। सम्भ्रान्तपरिवार में जन्म लेने के बाद भी इनकी रुचि धर्म की ओर थी, और कठिन तपस्या करके इन्होंने शान्ति चाही। पर अन्त में भगवान बुद्ध की तरह इन्होंने भी सदाचार पर जोर दिया। इन्होंने मठों में रहनेवालों के लिए कुछ नियम बनाया जिनमें

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मचर्य, धन की उपेक्षा, सादा और दरिद्रों का जीवन, त्याग, कड़ी मेहनत इत्यादि सिद्धान्त उल्लेखनीय हैं। मठों का प्रबन्ध या शासन के लिए इन्होंने अपने खास सुझाव रक्खा। प्रत्येक मठ का नेता (Abbot) उस मठ के सन्यासियों (Monks) के द्वारा चुना जाता था। इसाई धर्म के सफल और कर्मठ प्रचारक बेनिडिक्ट के भक्तों में से थे। पर कालान्तर में बेनिडिक्ट् के पवित्र सिद्धान्त और मठों का प्रजातान्त्रिक संगठन मौखिक ही रह गये। समूचे इसाई जगत् पर रोम के पोप का राज था। मठों के एब्बोट या चर्चों के विशौप या आर्कविशौप रोम के पोप की स्वीकृति के बाद ही माने जाते थे।

चर्च ने भी जागीरदारी प्रथा से पूरा फायदा उठाया। पोप, आर्कविशौप, विशौप या एब्बोट को जागीरें बहुत मिलीं। शार्लमेन (Chalemagne) के समय में तो पोप और चर्च की सम्पत्ति और प्रभाव की बड़ी ही उन्नति हुई। अब धर्म के नेता राजा के जागीरदार (Tenants-in-chief) हो गये, और इन्होंने जागीरें अपने आसामियों को उन्हीं शर्तों पर दिया जिन पर अन्य जागीरदार या आसामी लेते थे। इसतरह चर्च पर सामन्तशाही का पूरा प्रभाव पड़ गया। पोप, विशौप या एब्बोट अपनी जागीरों और आसामियों में ही उलझे रहते थे; वैयक्तिक युद्ध में भी ये लोग भाग लेते थे, और ऐश-इशरत से जिन्दगी बसर करते थे। पर पोप का प्रभाव जनसाधारण पर राजा से अधिक था। अपने नीचे विशौप, आर्कविशौप इत्यादि पर भी पोप का प्रभुत्व राजा का अपने प्रमुख कर्मचारियों या जागीरदारों पर प्रभाव से अधिक था। फिर राजा से अधिक जमीन चर्च की अधीन थी। इन्हीं कारणों से राजा और चर्च में प्रतिद्वन्द्विता चली। चार्ल्स महान् ने पोप के हाथों से सम्राट् का राजमुकुट पहना था, इसलिए पोपों ने यह दावा करना शुरू किया कि सम्राट् पोप के आशीर्वाद पर निर्भर करता है। कई सम्राटों या राजाओं ने पोप की अवहेलना करना शुरू किया और विशौप, आर्कविशौप का पद अपने जागीरदारों को देने लगे। राजा चर्च की बढ़ती सम्पत्ति से भी ईर्ष्या करने लगे थे। इस तरह पोप और

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा में संघर्ष शुरू हुआ, जो सदियों तक चला। पोप को यह सुविधा की कि विरोधी राजा की धर्मभिरु-प्रजा पोप की आज्ञा को ईश्वराज्ञा समझती थी, और इस तरह पोप-विरोधी राजा को अपनी प्रजा का विद्रोह का सामना करना पड़ता था। पोप ग्रेगरी सप्तम और सम्राट् हेनरी पंचम ग्यारहवीं सदी के प्रारम्भ में लड़ पड़े, और सम्राट् को हार माननी पड़ी। चर्च को बहुत पहले ही अपने पुजारियों से सम्बन्धित अपराधों का न्याय करने का अधिकार मिल चुका था। राजशासन के न्यायाधिकार से चर्च ने मुक्ति (Immunity) पा लिया था। सच पूछा जाय तो राज के अन्दर चर्च का अपना राज था। इंगलैंड का राजा हेनरी द्वितीय टौमस् बेकेट् की लड़ाई सर्वविदित है। सम्राट् और पोप में एक तस्वीआ हुआ–Concordat of Worms 1122 A.D.–जिसके अनुसार राजा ने चर्च का एब्बोट या विशौप चुनाव का अधिकार मान लिया, पर यह चुनाव राजा के सामने होता था, और राजा से जागीर पाने के बाद ये लोग राजा के प्रति स्वामि-भक्ति का शपथ लेते थे। पर झगड़ा बंद नहीं हुआ। जर्मन सम्राट् फ्रेडरिक् प्रथम और इंगलैण्ड का राजा जौन् का पोप से संघर्ष और भी गम्भीर था।

चर्च का योरप की जनता पर बढ़ते प्रभाव का सबसे ज्वलन्त प्रमाण हैं (Crusades) धर्म-युद्ध। जेरुसलेम इसाईयों का तीर्थस्थान था। पर जब से सेलजुक तुर्कों का अधिकार इस तीर्थ पर हो गया इस तीर्थ की बेइज्जती हुई। तुर्क अरबों के विपरीत धर्म-असहिष्णु थे। जेरुसलेम का पादरी को जेल में दे दिया गया था। यह इसाई धर्म के प्रति अत्याचार का प्रतीक माना गया। जेरुसलेम से वापस आये हुये तीर्थयात्रियों ने तुर्कों के विरुद्ध विष उगलना शुरू किया, और अपने धर्म की बेइज्जती का आँखों देखा हाल बढ़ा चढ़ा कर कहना शुरू किया। इसका परिणाम यह हुआ कि सारे इसाई-योरप, में जनता में जेरुसलेम से तुर्कों के भगाने के लिए अदम्य उत्साह पैदा हो गया। पोपों के नेतृत्व में कुल नौ बार तुर्कों के विरुद्ध जेहाद या धर्मयुद्ध लड़ा गया, जिनमें चार मुख्य हैं (१०९६-९९, ११४७,

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११८८, १२०२-४), पर आखिरी फैसला इसाईयों के विरुद्ध ही रहा। पर इन धर्मयुद्धों (Crusades) का प्रभाव योरप पर बहुत पड़ा। कम से कम इस प्रश्न पर तो इसाई राज्यों और सरमायदारों में पोप के नेतृत्व में एकता का स्वप्न देखा जाने लगा। यद्यपि यह आशा पूर्ण सफल नहीं हुई पर चर्च का प्रभाव स्पष्ट हो गया। इन युद्धों में जनसाधारण ने बहुत दिल-चस्पी दिखाई, और साधारण किसान या छोटे-छोटे रैयत क्या, बड़े-बड़े जमींदार ने भी अपनी जमींदारी बेचकर इन धर्म-युद्धों में धन-जन से मदद किया। काफी लोग मारे गये। इस तरह सरमायदारों की संख्या घट गई। जागीरदारी व्यवस्था का अन्त होने में धर्मयुद्धों (Crusades) का प्रभाव कम नहीं था।

इन धर्म-युद्धों के द्वारा योरप पूर्व के घनिष्ट सम्पर्क में आया। व्यापार की बड़ी प्रगति हुई, और पूर्व की चीजें योरप के बाजार में खूब बिकने लगीं। नये शहरों का उत्थान हुआ और पुराने शहरों की उन्नति हुई। नगरों का उत्थान जागीरदारी व्यवस्था के लिये घातक सिद्ध हुआ।

पूर्व के अधिक समृद्ध सभ्य देशों की यात्रा करने का प्रभाव यह हुआ कि युरोप की रुढ़िवादी (Conservative) सभ्यता उदार भावों से अनुप्राणित हो गयी। नवयुग के आनेवाले प्रभात और जागीरदारी व्यवस्था (Feudalism) का अवसान में इन उदार भावों का प्रभाव सर्वविदित है।

चर्च ने योरप को बहुत कुछ दिया। Crusades से जो फायदा हुआ उसका उल्लेख उपर किया जा चुका है। जागीरदारी व्यवस्था में एकता का नाश हो गया था। प्रत्येक मनुष्य अपना खेत और जमींदार से सम्बन्ध ही तक अपना दृष्टिकोण सीमित रखता था। इस तरह वैयक्तिक सम्बन्ध ही सब कुछ था। कार्यक्षेत्र क्या मानसिक क्षेत्र भी संकुचित और स्थानीय परिधि में सीमित था। पर चर्च ने योरप में एकता रक्खी—भले धार्मिक क्षेत्र में ही। प्रत्येक इसाई कहीं भी हो, वह इसाई संगठन का सदस्य था, और रोम के पोप की सत्ता मानता था। जिस समय

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रीय एकता क्या प्रदेशीय एकता का नामोनिशान नहीं था, चर्च ने पोप के नेतृत्व में महादेशीय (Continental) एकता स्थापित किया। इसतरह चर्च अन्तर्राष्ट्रीय एकता का प्रतीक बन गया।

जागीरदारी व्यवस्था में जागीरदारों में निजी युद्ध (Private war) जायज था। पर इन अनवरत युद्धों से जनसाधारण तबाह थे, व्यापार और उद्योग की हानि होती थी। पर इस बुरी चीज को रोकने का कोई साधन नजर नहीं आता था। इस मौके पर चर्च ने इस बुरी आदत को नियन्त्रित किया। सप्ताह के कुछ निश्चित दिनों या त्योहारों के दिन पारस्परिक झगड़े बन्द करने की अपील की गई। अधिकतर चर्च की अपील मानी जाती थी। Truce of God या Peace of God की स्थापना कर चर्च नेयोरप की बड़ी सेवा की। युद्ध की बर्बरता कम की गई। किसानों के हित की रक्षा करने की कोशिश की गई। चर्च का प्रभाव बहुत बढ़ गया था। रोम के पोप के नेतृत्व में धर्म का 'विश्व-सरकार स्थापित करने की आशा दृढ़ हो गई थी। सचमुच में पोप एक अन्तर्राष्ट्रीय साम्राज्य का सम्राट् बन गये थे। चर्च बहुत ही धनी हो गया था। पर चर्च में ऐसे भी साधु थे जिन्हे चर्च की बाहरी तड़क-भड़क के अन्दर घुन दिखाई देता था। विलासिता, अतृप्त भौतिक आकांक्षा, और पादरियों की चरित्रहीनता से जनसाधारण का चर्च के प्रति भक्ति और प्रेम कम हो रहा था। चर्च में सुधार लाने के लिए और सांसारिक भोगविलास-से-प्रेम के विरुद्ध कई जमायतें उत्पन्न हुईं। उनमें कुछ को तो चर्च के कर्णधारों ने इसाईधर्म के विरुद्ध करार दिया, और उनका दमन करने लगे। ऐसे नास्तिकों (Heretics) या नास्तिकपंथ (Heresy) को दबाने के लिए एक धर्म न्यायालय (Holy Inquisition) की भी स्थापना की गई। इस संस्था के द्वारा रोम के पोप ने कितने बेगुनाहों और साधुपुरुषों की हत्या की।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर सन्त फ्रांसिस् (St. Francis) और संत डोमनिक (St. Dominic) को चर्च को स्थान देना पड़ा। संत फ्रांसिस् और संत डोमिनिक् ने सदाचार पर जोर दिया। जिस समय चर्च के विलास-प्रिय और धन के लोभी पादरी अपने राजसी प्रभाव की वृद्धि चाहते थे, इन सन्तों ने साधुओं या तपस्वियों (Friars) को जन सेवा में लगने का आवाहन किया। उन्हें दरिद्रता को अपना कर धर्म के पवित्र सिद्धान्तों को दरवाजे-दरवाजे जाकर भक्तों में प्रचार करने कहा। लाचार और रोगियों की सेवा इन्होंने सच्चा धर्म बताया, धन का त्याग पर जोर दिया। इन संतों के भक्तों की संख्या बढ़ी, और दो प्रभावशाली पंथों की—Dominicans and Francisans—की उत्पत्ति हुई। इन्होंने सदाचार, सादगी और त्याग का संदेश फैलाया। नगरों की गली-कुची को साफ किया, कोढ़ियों की सेवा की। इसमें कोई शक नहीं कि इन पंथों के कारण जन-साधारण को चर्च में फिर विश्वास होने लगा। चर्च की शक्ति इस तरह बढ़ी। इन साधुपुरुषों की जीवनी और उपदेश के द्वारा इस युद्धप्रिय और विलासप्रिय स्वार्थान्ध युग में चर्च ने उच्च आदर्श रक्खा।

पर चर्च की बढ़ती शक्ति और प्रभाव से सबसे बड़ी हानि यह थी कि राष्ट्रीयता व राष्ट्र-राज के विकाश में चर्च बहुत बड़ा रुकावट था। चर्च राष्ट्रीय नहीं, अन्तर्राष्ट्रीय संगठन था। इसके अनुयायी प्रत्येक देश और जाति में थे। ये सब कम या बेश विदेशी रोम के पोप की सत्ता के अधीन थे। राजा अपने देश में सार्व-भौम-सत्ता नहीं था, और प्रजा अपने देश और राजा के विरुद्ध एक अन्य संगठन-चर्च-की भी प्रजा थी। अतः राष्ट्र के विकास में चर्च का विरोध स्वाभाविक था, और जबतक चर्च की शक्ति अजेय रही, राष्ट्रीय भावना का उत्कर्ष असम्भव था।

जागीरदारी प्रथा की अवनति :

कोई भी व्यवस्था, समाज और राज का संगठन एक सा नहीं रहता। परिस्थिति के बदलने पर आदर्श और संस्थाओं में भी परिवर्तन आता है, नये

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदर्श, नयी व्यवस्था की उत्पत्ति होती है। यह प्रकृति का नियम है। जागीरदारी प्रथा का चरम उत्कर्ष दशवीं से वारहवीं सदी में हुआ। इसके वाद इस प्रथा की अवनति होने लगी।

इस अवनति के कई कारण थे। इस व्यवस्था का मूल-आधार था राजा की कमजोरी। पर जव दृढ़ और कुशल राजा उनके लिए आये तव इस व्यवस्था को अपने अधीन करने की इच्छा रखना स्वाभाविक। इंगलैण्ड में नौर्मन राजाओं ने इस व्यवस्था में राजा की शक्ति को वढ़ाया और सामन्तों का प्रभाव कम किया। विजयी विलियम (William the Conqueror 1066 A. D.) ने अपने विशेष सामन्तों को (Tenants-in-chief) को ही नहीं वरन् उनके रैयतों को भी राजा के प्रति स्वामिभक्ति की शपथ लेने को कहा। इस तरह राजा के विरुद्ध अपने जमींदारों की मदद करना भी अधार्मिक हो गया। विलियम ने अपने मित्रों और खास हिमायतियों को जागीर एक जगह न देकर, कई जगहों में टुकड़े-टुकड़े दिया, इसलिए किसी भी जागीरदार का प्रभाव विशेष क्षेत्र में जम नहीं सका। हेंनरी प्रथम और द्वितीय ने राज-सेना का संगठन किया, और अपने जागीरदारों को सैनिकों के वदले कर देने के लिए मजवूर किया। राजा अव युद्ध के लिए अपने जागीरदारों पर ही निर्भर नहीं करता था यह सच है कि सामन्तों ने राजा की इन कारवाईयों का कसकर विरोध किया, और जौन् जैसा वेवकूफ और जिद्दी राजा को हार माननी पड़ी और Magna Charter पर दस्तखत करना पड़ा (१२१५)। पर यह निर्विवाद है कि इंगलैंड में एक मजवूत राज्य स्थापित हो रहा था जिसका प्रभाव समूचे देश पर छा रहा था। सामन्तों का प्रभाव उसी अनुपात से कम होने लगा। इंगलैण्ड के उदाहरण से प्रेरित होकर फ्रांस और स्पेन में भी दृढ़ राजतन्त्र का विकास होने लगा और इन देशों में राष्ट्रीय-राज (Nation-States) कायम हो गये।

Crusades ने भी सामन्तशाही व्यवस्था को नुकसान पहुँचाया। खेतिहर मजदूर (Serfs or Villein) इन धर्मयुद्धों में सैनिक वन कर

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चले गये थे। मजदूरों की कमी हो गई। जमींदार अपनी जमींदारी बेचने लगे। सामन्तों की संख्या में भी कमी हो गई।

व्यापार की उन्नति और नगरों का विकास से जागीरदारी-व्यवस्था को घातक धक्का लगा। इस युग की आर्थिक व्यवस्था प्रत्येक जमींदारी के आर्थिक स्वावलम्बन के आधार पर स्थित थी। जरूरी चीजों को जमींदारी में ही में पैदा कर लिया जाता था, और चीजों के अदल-बदल (Bartar) से काम चल जाता था। सिक्कों का व्यवहार अनावश्यक था। पर जब व्यापार की उन्नति हुई, सिक्कों का व्यवहार बढ़ने लगा। अब जमींदार को मजदूर सिक्कों के रूप में कर देने लगे, और जमींदार के लिए शारीरिक श्रम करने से बच गये। फिर वे नगर जाकर मजदूरी करने लगे, इस तरह सर्फ या विलैन की संख्या बहुत तेजी से घटने लगी। जागीरदारी व्यवस्था की नींव ही हिल गयी।

जमींदार की कोठी या गढ़ के समीप, या नदीतीर पर या प्रधान व्यापार-मार्ग पर नगर खड़े हो गये। बाहरी उपद्रव या आक्रमण से बचने के लिए मजबूत चहारदिवारी से शहर घिरा था। यहाँ व्यापारियों का ही प्रभुत्व था। पहले तो ये शहर उन जागीरदारों के अधिकार में थे जिनकी जमीन पर ये खड़े थे। पर जब व्यापार की उन्नति हुई तो नगर धनी हो गया और जमींदार इनसे धन लेकर इन्हें आजाद करने लगा। इन आजाद नगरों में जमींदार से परेशान होकर गरीब किसान और खेतिहर-मजदूर आकर बस गये, और रोजगार करने लगे। मुसलमानों का राज्य सिसली और स्पेन में स्थापित हो चका था। उनकी फैशनेबुल और आरामदेह चीजों से योरपवाले वाकिफ हो गये, और उन चीजों की मांग यहाँ होने लगी। इन नगरों के व्यापारियों ने इस मांग को पूरा करने की ठानी, और मुस्लिमों के साथ तिजारत करने लगे। Crusades के समय से और उसके बाद भी यह व्यापार और भी बढ़ गया। भारत, इरान, पूर्वी-प्राय-द्वीप समूह इत्यादि से सामान योरप में आने लगे। सीरिया और फिलस्तीन, और इटैली के पूर्व तटवर्ती नगर-जेनोआ और वेनिस-में घनिष्ट सम्बन्ध

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ। ये शहर बड़े धनी हो गये। यहाँ के रहनेवालों का दृष्टिकोण विकसित हो गया। विश्व-भ्रमण और भौगोलिक खोज की उत्कण्ठा बढ़ी। साहित्य और कला का विकास हुआ। सांस्कृतिक सम्मिश्रण से नवीन उत्साह और आत्मविश्वास आया। जागीरदारों की कचहरी या दुर्ग का महत्व कम हो गया। धन, शिक्षा, और सांस्कृतिक क्षेत्र में नगर सामन्त-दुर्गों से बहुत आगे निकल पड़े। जागीरदारी व्यवस्था की उपादेयता ही नहीं रही। नगर नयी सभ्यता, नया उत्साह और आदर्श के रहनुमा बन गये। इन परिस्थितियों में अनवरत वैयक्तिक युद्ध से जर्जर जागीरदारी-प्रथा की अवनति स्वाभाविक थी। नया युग का उदय इन नगरों के प्रांगन में ही और सुगठित राष्ट्रों के नेतृत्व में ही हुआ।

———

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीसरा अध्याय

आधुनिक युग का आगमन

रेनेसां-धर्मसुधार-राष्ट्र-राज्य का विकास

चौदहवीं से सोलहवीं सदी राजनीतिक, सांस्कृतिक, और धार्मिक क्षेत्रों में युगान्तकारी आन्दोलनों के लिए प्रसिद्ध है। इस समय योरप में राष्ट्रीय-सार्वभौम सत्ता स्थापित हुई (National Sovereignty), धर्मसुधार हुये, नवसाहित्य की रचना हुई, भौगोलिक खोज का जमाना शुरू हुआ और सबसे अहम् रूढ़िवाद पर बुद्धिवाद की, अंधविश्वास पर तर्क की विजय हुई। इन आंदोलनों का परिणाम हुआ आधुनिकयुग का आगमन।

रेनेसां (Renaissance)

मध्ययुग का अन्त और नवयुग का उदय का आधार था योरप में बौद्धिक पुर्नजागरण, रेनेसां (Renaissance)। Renaissance का अर्थ है नया जीवन। चौदहवीं-पन्द्रहवीं सदी में योरप में प्राचीन यूनानी और रोमन साहित्य के प्रति तीव्र जिज्ञासा उत्पन्न हुई और प्राचीन यूनानी और रोमन पुस्तकों का अध्ययन और अनुवाद होने लगा। प्राचीन कला की भी पुनरावृति हुई, और इटैली के मूर्तिकलाकार, चित्रकार व वास्तुकलाविज्ञ प्राचीन शैली और विषयों को अपनी कला का आदर्श मान कर सजीव और आधुनिक कला के अग्रदूत बने। रोमन साम्राज्य के पतन के बाद जिस अंधकार युग का पदार्पण हुआ उसमें रोम या यूनान का प्राचीन साहित्य, कला और विज्ञान का ज्ञान लुप्त हो गया था। पर जब फिर इस पुनर्जागरण के युग में यूनान और रोम का साहित्य, विज्ञान और कला की प्रतिष्ठा हुई, और इसी आधार पर आधुनिक युग का अविर्भाव हुआ तब इस युग को पुनर्जीवन (Renaissance or Rebirth) का युग कहना युक्तिसंगत

रेनेसां का रूप

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही हैं। पर इस महान् आन्दोलन और उसके भिन्न-२ रूपों को सिर्फ पुरातन यूनानी-रोमन कला और साहित्य का पुनर्जन्म ही समझना असंगत है। इस युग का साहित्य, विज्ञान और कला प्रभृति विषयों में पुरातन संस्कृति की पुनरावृत्ति ही नहीं, वरन नवीनता भी है। रेनेसां-युग की विशेषताओं में निम्नलिखित मुख्य हैं:—(क) राष्ट्रीय राज्यों और राजा की सार्वभौम सत्ता का उदय; (ख) धार्मिक सुधार (ग) भौगोलिक खोज (Geographical discoveries)—अनजान समुद्रीय रास्तों या महादेशों की खोज। यूनानी संस्कृति या रोमन सभ्यता में हम इन चीजों का अभाव ही पाते हैं। अतः यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि रेनेसां ने कई दिशाओं में नया पथ-प्रदर्शन किया। उपरोक्त विषयों में रेनेसां सचमुच ही पुराने विचारों का अन्त और नये आदर्शों की स्थापना करता है। इसीलिए तो रेनेसां को आधुनिक युग का सूत्रधार समझा जाता है। प्रसिद्ध विद्वान सिमोन्ड के अनुसार "रेनेसां वह आन्दोलन है जिसके द्वारा पश्चिम के राष्ट्र मध्ययुग से निकल कर आधुनिक युग के विचार और जीवन शैली अपनाने लगे"। रेनेसां मुख्यतः बौद्धिक (Intellectual) आन्दोलन था, और इसका आधार था पुरातन यूनानी-रोमन साहित्य के प्रति पुनर्जागृत प्रेम। यूनानी दर्शन और विज्ञान की विशेषता थी, तर्क पर आधारित होना। रेनेसां ने अंधविश्वास और भक्ति को मिटा कर विवेक को, तर्क को, सिंहासनारूढ़ किया। विवेक के मापदण्ड पर मध्ययुग के आदर्श और संस्था गलत सिद्ध हुये और मानव का बन्दी मस्तिष्क आजाद और स्वस्थ हो गया। इसी स्वतन्त्र विचार और नवोत्साहके परिणाम थे धार्मिक-सुधार, नवीन कला और साहित्य की रचना, भौगोलिक खोज और राष्ट्रीयता की प्रगति।

Renaissance is the movement by which the nations of Western Europe passed from the medieval to modern modes of thought and life—Symonds.

CC-0 In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योरप में १४-१६ वीं सदी में जो बौद्धिक पुनर्जागरण हुआ और जिसका युगान्तकारी प्रभाव मानव जीवन के प्रत्येक अंग पर पड़ा, उसे रेनेसां के कारण ही रेनेसां कहा जाता है। पर रेनेसां कोई नियत तिथि या निश्चित वर्ष में नहीं शुरु हुआ, और न किसी विशेष महापुरुष के द्वारा ही इसकी उत्पत्ति हुई। रेनेसां का जड़ मध्य युग में हैं। इस युग के अन्त में ही रेनेसां के बीज उग आते हैं, जिनका चमत्कार हम १५ वीं सदी में देखते हैं।

(क) शहरों का उत्थान :

पिछले अध्याय में शहरों के उत्थान के प्रमुख कारणों को बताया जा चुका है। बाज़ार की आवश्यकता, व्यापार की उन्नति, सड़कों की सुविधा, नये २ उद्योगों की स्थापना और चीजों के अदल-बदल के स्थान में मुद्राओं का सार्वजनिक प्रचार इत्यादि कारणों से नदीतीर, व्यापार-मार्ग, समुद्रतट या सुदृढ़ जमींदारी-कोठियों के समीप शहर बस गये। पहले तो शहर जमींदार की जमींदारी में थे, और सामन्तशाही-प्रथा के बोझ से मुक्त नहीं थे। पर इन शहरों की आर्थिक स्थिति तेजी से सुधरने लगी—और योरप को समृद्ध बनाने में इनका बहुत बड़ा हाथ रहा। जमींदार ने भी कई कारणों से द्रव्य की आवश्यकता से प्रेरित होकर इन शहरों को धन के बदले 'स्वतन्त्रता' दे दिया। शहरों का वातावरण स्वभावतः स्वतन्त्र रहा है, और इन स्वतन्त्र शहरों को अब जागीरदारी व्यवस्था से मुक्ति मिली। शहर के स्वतन्त्र वातावरण में व्यापार की ही अधिक उन्नति नहीं हुई वरन् विद्या, विज्ञान और साहित्य को अत्याधिक प्रश्रय मिला। भिन्न-भिन्न राष्ट्र या देश के व्यापारियों के आवागमन से नागरिकों का दृष्टिकोण अब विस्तृत हो गया, और जिज्ञासा और तर्क ही विज्ञान और साहित्य के आधार बन गये। इन सम्पन्न नगरों के स्वतन्त्र वातावरण में ही बौद्धिक पुनर्जीवन (Renaissance) सम्भव था। मध्ययुग में यह कहावत प्रसिद्ध थी कि स्वतन्त्र हवा की तलाश में हो तो शहर को जाओ। और बात ठीक भी है, कृषिप्रधान आर्थिक

CC-0. Late Pandit Damaji Patil Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवस्था में मध्ययुग में जागीरदारों या सामान्तों का ही बोलबाला था। वे ही समाज के नेता थे, उनका जीवन-रहन-सहन ही—सामान्य लोगों का आदर्श था। वे ही समृद्ध थे और कला और विद्या के पोषक भी। पर अब एक नया वर्ग उठ खड़ा हो रहा था पर इसके पीछे कुलीनवंश की प्रतिष्ठा नहीं थी। यह वर्ग अपने श्रम और दुस्साहस से उस समय की कठिन परिस्थिति में अत्याधिक धन, व्यापार और उद्योग के ज़रिये, संग्रह कर रहा था। इसे मध्यमवर्ग (Bourgeoisie) कहा जाता है, जो अपनी पूंजी उद्योग और व्यापार में लगाकर बड़ी तेज रफ़्तार में धन इकट्ठा कर रहा था। आर्थिक क्षेत्र में सामन्तों से इनकी दशा अच्छी थी और यह वर्ग विद्या और कला का पोषक हो गया। व्यापार और उद्योग की इस प्रगतिशील युग में यह वर्ग, उच्चकुलिन वर्ग के विपरीत, विस्तृत दृष्टिकोण रखता था। इस कारण इनके प्रश्रय में रेनेसां का विकास हुआ।

(ख) व्यापार की उन्नति :

शहरों का उत्थान और व्यापार की उन्नति में अविछिन्न सम्बन्ध था। दक्षिणपश्चिम में स्पेन और दक्षिण में सिसली से होकर एशिया के माल अरबों के द्वारा योरप पहुँच रहे थे। भारत, चीन और मध्यपूर्व-एशिया के रेशमी कपड़े, मसाला, इत्र, चन्दन, कीमती पत्थर, फैशनेबुल लकड़ी के सामान और श्रंगार और अन्य विलासप्रिय सामान की मांग खुद-ब-खुद बढ़ने लगी। पहले तो बेचारे व्यापारी को एक जगह से दूसरी जगह माल ले जाने में बहुत परेशानी होती थी। सड़कें खराब थीं, लूट-पाट का डर था, और जमींदार को कई तरह के कर देने पड़ते थे। सामुद्रिय-व्यापार में जहाजी डाकुओं का भय रहता था। पर १२-१३ हवीं सदी में इस दिशा में कुछ सुधार हुये। सड़कें अच्छी की गईं, और रक्षा का प्रबन्ध बेहतर हुआ। अपने व्यापार की सामूहिक रक्षा के लिए उत्तर योरप के तटवर्ती नगर राज्यों ने हेन्सिएटिक संघ (Hanseatic League) की स्थापना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१४वीं सदी में किया। इसके पूर्व वेनिस के संरक्षण में एड्रियाटिक समुद्र के पश्चिमी तटवर्ती नगर आ गये थे। इन संघों का लक्ष्य एक ही था—जहाजी डाकुओं से रक्षा। बाहर की चीजों की बढ़ती मांग को देख कर योरप के कई शहरों में नये उद्योग खड़े हुये। पूर्व से व्यापार की प्रगति के परिणाम-स्वरूप इटैली के पूर्व-तट पर जेनोआ, पीसा और वेनिस ऐसे प्रमुख वाणिज्य-नगरों का उत्थान हुआ। व्यापार की उन्नति के साथ-२ योरप के विद्वानों और चिन्तकों में, जागीरदारी व्यवस्था पर आधारित मध्य युग की संस्कृति के विषय में, संदेह उत्पन्न हुआ।

(ग) पूर्व से सम्बन्ध :

पर रेनेसां का मुख्य कारण था योरप का पूर्व से सम्बन्ध। अरब स्पेन पर अपना अधिकार स्थापित कर चुके थे। सिसली और सार्डिनिया भी इनके प्रभाव से बाहर नहीं था। स्पेन में मुस्लिम राज्यकाल में कला और विद्या की अभूतपूर्व प्रगति हुई। बड़े-२ विश्वविद्यालय स्थापित हुये, यहां के विद्वानों का प्रवेश योरप में हुआ। अरब भारतीय, इरानी और यूनानी संस्कृति को अपना कर उस समय एक समृद्ध संस्कृति के वाहक बने हुये थे। अरस्तू की पुस्तकों का ज्ञान उन्हें था। इन्हीं अरबों के द्वारा ही योरप को अपने पुरातन विज्ञान, साहित्य और कला का फिर से पता चला। अपने से उच्च मुस्लिम संस्कृति के सम्पर्क में आने के कारण इनमें एक नयी जिज्ञासा की भावना और अपने प्राचीन साहित्य और विज्ञान का अध्ययन करने की बलवती ईच्छा पैदा हुई।

(घ) Crusades (धर्मयुद्ध) :

रेनेसां के आंदोलन को धर्मयुद्ध (Crusades) से काफी मदद मिली। इन धर्मयुद्धों में अमीर-गरीब, जमींदार-रैयत, राजा व कमीयां सबोंने भाग लिया, और सीरिया-फिलस्तीन पहुँचे। वहां इन्होंने उन्नत सभ्यता को अपनी आखों से देखा और अत्यन्त ही प्रभावित हुये। प्राचीन-यूनानी और रोमन विद्वानों की पुस्तकों का अनुवाद देखा और उन्हें योरप ले आये।

CC-0 In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन पुस्तकों को बड़े चाव से यहां विद्वानों ने पढ़ा, और इस तरह रेनेसां शुरू हुआ। इन धर्मयुद्धों के कारण सामन्तों का प्रभाव कम हो गया, उनकी संख्या कम हो गई, और उनके कमीयों का भी यही हाल हुआ। इस तरह मध्ययुग की रीढ़ ही टूटने लगी। क्रुशेड या धर्मयुद्धों का प्रत्यक्ष परिणाम था इटैली के व्यापारी-नगर वेनिस, जेनोवा इत्यादि की अत्यधिक उन्नति, और इन्हीं नगरों में तो रेनेसां पहले प्रस्फुटित हुआ।

(च) पांडित्यांदोलन :

रेनेसां की प्रथम किरणों का आभास हम मध्ययुग के पांडित्य आंदोलन (Scholasticism) में पाते हैं। चर्च के प्रश्रय में विद्यालयों की स्थापना हुई थी। इन विद्यालयों में धर्मशिक्षा और अध्यात्मविद्या को ही अधिक महत्व दिया जाता था, और विद्या चर्च के हित की रक्षा का साधन बनी थी। मध्ययुग में 'विवेक' बंदी था, और विचार-स्वतन्त्रता असहनीय। पर चर्च-विहार विद्या के केन्द्र थे। विद्या का लक्ष्य जो भी रहा हो, पर ज्ञान का दीप, भले ही बड़ी मंद गति से, इन चर्च-विहारों में जल रहा था और ११-१२हवीं सदी में एक नयी लौ लेकर यह ज्ञानदीप जल उठा। शहरों का उत्साहवर्धक वातावरण, अरब-संस्कृति से निकट सम्पर्क और चर्च के प्रोत्साहन के कारण इस समय कई विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। इस समय समाज के विभिन्न पेशों के लिए विशेषज्ञों की मांग बढ़ी और इन विश्वविद्यालयों में अध्यात्मशास्त्र और धर्मशिक्षा के अलावे विभिन्न विषयों की पढ़ाई की प्रधानता दी जाने लगी। बोलोन का विश्वविद्यालय कानूनी शिक्षा (Law), सलेर्नो चिकित्साशास्त्र और पेरिस विश्वविद्यालय धर्मशिक्षा (Theology) के लिए प्रसिद्ध थे। इसी समय इंगलैंड में ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। विश्वविद्यालय वस्तुतः अपने क्षेत्र में स्वतन्त्र थे। इन विश्वविद्यालयों में साधारणतः बौद्धिक जागृति (Intellectual Ferment) फैल रही थी यद्यपि शिक्षा का लक्ष्य था प्राचीन यूनानी या रोमन शास्त्रों की टीका या विश्लेषण करना। चिकित्सा विज्ञान हिपोक्रेटीज के सिद्धान्तों पर हूबहू आश्रित था,

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जस्टिनिअन का धर्मशास्त्र ही कानून का अध्ययन का आधार था, अरस्तू (Aristotle) के सिद्धान्त पर ही प्राकृतिक विज्ञान की शिक्षा केन्द्रित थी। इस तरह इस समय इन यूनानी या रोमन शास्त्रों के प्रति अत्यन्त आदर, अटूट श्रद्धा या अंधविश्वास था और इनका ज्ञान अरबों या यहूदियों के द्वारा इन ग्रन्थों के अरबी या ऊर्दू में अनुवादों से ही होता था। अतः इस समय अनुभव, प्रयोग, या मौलिक चिन्तन का नहीं वरन् प्राचीन विद्वानों के अनुवादित ग्रन्थों का ही अधिक मूल्य था। जब यूनानी वैज्ञानिक पद्धति का ज्ञान इन ग्रन्थों के द्वारा हुआ तब इसका प्रयोग नये अनुसन्धान, या मौलिक चिन्तन की ओर न होकर, चर्च के रुढ़िवादी विचार, अंधविश्वास और कर्मकाण्ड या पाखण्डों को तर्क और विज्ञान के आधार पर सत्य और ग्राह्य सिद्ध करने के लिए किया गया। इस समय चर्च के प्रकाण्ड पंडितों ने चर्च के विवेकहीन कर्मकाण्ड और अंधविश्वास और पौराणिक कथाओं की सत्यता पर संदेह नहीं किया, पर तर्क के आधार पर यह जानने की चेष्टा की ऐसा क्यों और कैसे है, न कि 'यह है, या नहीं'। पर इसका एक परिणाम स्पष्ट था कि अब बुद्धिवाद (Rationalism) का प्रचार था, और चर्च को भी अपने सिद्धान्तों को इसी आधार पर प्रतिष्ठित करना था। यह मानना ही पड़ेगा कि १३ वीं सदी में योरप में ज्ञान स्थिर नहीं था। विशेषकर नवयुवकों में मानसिक उत्तेजना थी, उत्साह था और दबी जबान से प्रश्न करने की लालसा। इसी बौद्धिक व्यग्रता का परिणाम था रेनेसां। अरस्तू के तर्क-सिद्धान्त को मानकर अंधविश्वास और पाखंड को बहुत दिन तक प्रश्रय नहीं दिया जा सकता था।

पिटर-अबेलार्ड १०७९–११-४२ ई०

पीटर अबेलार्ड (Peter Abelard, 1079-1142) पेरिस विश्व-विद्यालय का एक प्रकाण्ड तार्किक था, और अपने तर्क के बलपर यह बहुतों से अपनी बात मनवा लेता था। लोग सुकरात (Socrates) से इसकी तुलना करते हैं। इसने यह घोषणा की कि कोई भी धर्म-सिद्धान्त इसलिए नहीं मान्य है

CC-0. Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि उसे ईश्वर ने बनाया है, बल्कि इसलिए कि यह बुद्धि या तर्क की कसौटी पर ठीक उतरता है। बुद्धिवाद का यह प्रयोग उस समय के लिए अपनी सीमा का अतिक्रमण था। अबेलार्ड का खूब विरोध हुआ और उसे एकान्तवास करना पड़ा। पर बुद्धिवाद और धार्मिक अविवेक या रहस्यवाद (Mysticism) का यह संघर्ष आनेवाले भीषण संघर्ष का संकेत चिन्ह था। विचार-स्वातन्त्र्य और धर्माधिकारियों के संघर्षों में यह मुख्य है।

तेरहवीं सदी में पांडित्य आंदोलन ने और भी अधिक जोर पकड़ा और वैज्ञानिक और बुद्धिवादी विचारधारा का प्रभाव बढ़ा। स्पेन और अरबों के घनिष्ठ सम्पर्क के कारण ही प्राचीन यूनानी साहित्य से अधिक प्रेरणा मिली। अरस्तू का तर्कशास्त्र (Logic) ही नहीं वरन् और भी अन्य वैज्ञानिक और दार्शनिक ग्रन्थों का अध्ययन होने लगा। इसका प्रभाव चर्च के अधीनस्थ पेरिस और ऑक्सफोर्ड (इंगलैण्ड) के विश्वविद्यालयों के पंडितों पर अत्याधिक पड़ा। अलबर्ट महान् (Albert the Great 1193-1280), और उसका शिष्य टौमस् एक्यूनिस् Thomas Acquinas, 1227-1274 A. D.) का नाम उल्लेखनीय हैं। टौमस् एक्यूनिस् को ही चर्च के धर्म सिद्धान्तों को, आचार-विचारों को शृंखलाबद्ध कर उन्हें तर्क के आधार पर वैज्ञानिक रूप देने का श्रेय है। अरस्तू का तर्क और मध्ययुग का धार्मिक रहस्यवाद (Theology) को मिलाने का इन्होंने प्रयास किया। पर इन पंडितों में रोजर बेकन (Roger Bacon) का स्थान अद्वितीय है। बेकन इंगलैण्ड के रहनेवाले थे और भौतिक विज्ञान के प्रति इनकी बड़ी रुचि थी। इसी विषय की छान-बीन में इन्हें अरबी और यूनानी की पुस्तकों से सम्पर्क हुआ। इनका दृष्टिकोण वैज्ञानिक था, और किसी भी चीज का आदर या उस पर विश्वास ये तर्क और विवेक के मापदण्ड से ही करते थे। उन्हें इस कारण वर्षों जेल की हवा खानी पड़ी, पर इन्होंने अपना विचार नहीं बदला। वे किसी भी चीज की नकल करना गलत मानते थे, और इसलिए तो इन्होंने

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बार कहा था कि अरस्तू की लिखी पुस्तकों को जला डालना चाहिये क्योंकि इन अनुवादित पुस्तकों को ब्रह्मवाक्य मानकर पंडित लोग मौलिक अनुसन्धान या वैज्ञानिक प्रयोग की राह में काँटा बन रहे थे। बेकन ने तर्क से अधिक अनुभव और प्रयोग को वैज्ञानिक महत्व दिया। प्रयोग, प्रयोग, यही बेकन के लेखों में मूल मन्त्र है। इसीलिए बेकन को नवयुग की वैज्ञानिक-प्रवृत्ति का अग्रदूत माना जाता है, रेनेसां का वास्तविक पथ-प्रदर्शक। उसके विचार में विज्ञान की सम्भावनाएँ असीम थी। बेकन का विश्वास था कि वैज्ञानिक प्रयोगों के द्वारा मनुष्य समुद्र पर यन्त्रयान्त्रित यह और अन्य शक्ति से प्रेरित बड़े-बड़े जहाजों को एक आदमी की मदद से चला सकता था। सड़क पर तेज गाड़ियाँ बिना जानवरों से जुते हुये चल सकती थीं और हवा में मनुष्य ऐसी मशीनों पर चढ़ कर उड़ सकता था जिसमें पक्षियों के डैने के समान डैने रहेंगे जो हवा को चीरते रहेंगे। बेकन के विचार तीन सौ वर्ष बाद सम्भव हुये। पर उसके ये विचार अनर्गल नहीं थे यह स्पष्ट है। इस युग के पंडितों ने विवेक को अंधविश्वास से ऊँचे स्थान पर प्रतिष्ठित किया और विचार की स्वतन्त्रता का आदर्श स्थापित किया; बिना इसके रेनेसां सम्भव नहीं था। प्रोफेसर सेठ साहब फर्माते हैं—"पांडित्य-आंदोलन को यर्थाथतः विचार की स्वतन्त्रता का आन्दोलन का श्रीगणेश और प्रगति का इतिहास मानना चाहिये, और इसका सफल अन्त रेनेसां और धर्मसुधार आंदोलनों में हुआ।"

(छ) मौंगोल-साम्राज्य का प्रभाव :

चंगेज खाँ, हलाकू और कूब्ला खाँ ने एक विशाल साम्राज्य स्थापित किया था। चंगेज खाँ ने चीनी दीवाल (China wall) को भेदकर उत्तर चीन को जीत लिया था। पर्शिया और खुरासन पर विजय प्राप्त कर वह सिन्धुतट पहुँच गया था। रूस की नीपर नदी (Dnieper) तक उसका क्षेत्र था। चंगेज के उत्तराधिकारी ओघताई (मृ० १२४१) के समय में करीब आधा योरप को रौंद डाला गया था। रूस, पोलैण्ड

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हंगरी इनके चपेट में आ गये, मौस्को, कीभ, इत्यादि शहरों को जला दिया गया। ओघताई का एक उत्तराधिकारी कूब्ला खां (Kublai Khan 1259-1294) ने राज्य को और भी विस्तृत किया और उसका एक सेनापति हलाकू ने अब्बासी खिलाफत का नाश कर इरान और अरेबिआ को मौंगोल साम्राज्य में मिला लिया। कूब्ला खाँ की राजधानी वर्तमान पिकिंग (Peking) के समीप थी। कूब्ला खाँ के मरने के बाद मौंगोल साम्राज्य टूटने लगा, पर तिमूर (१३६६-१४०५) ने इस साम्राज्य को फिर से सुगठित किया। समरकन्द अब राजधानी बनी। कूब्ला खाँ या तिमूर के विस्तृत साम्राज्य में यातायात का बहुत अच्छा प्रबन्ध था। पूर्व योरप और एशिया एक दूसरे के सन्निकट आये। मौंगोल अरब-सभ्यता के वारिस थे, और केम्बलू (Cambalu), (जो कूब्ला खाँ की राजधानी थी) और समरकन्द सभ्यता के अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र बने। इनसे घनिष्ट सम्बन्ध के कारण योरप के व्यापार और बौद्धिक जागृति में उन्नति हुई। अरब, पर्शिया, भारत और चीन के ज्योतिषी, गणितज्ञ और बौद्धपंडितों से पोप के भेजे दूत, इटैली के कारीगर, और व्यापारियों की भेंट हुई। भावों और जिनिसों का आदान-प्रदान हुआ। दूर-दूर देशों का हाल जानने की उत्सुकता बढ़ी। मार्को पोलो वेनिस का नागरिक था, और उसने एशिया के दूरस्थित प्रदेशों में भ्रमण करने का दुस्साहस किया। वह भारत भी आया और चीन भी गया। उसने इस यात्रा का विवरण लिखा। लोगों को चीन और बर्मा के विषय में कौतुहल और दिलचस्पी बढ़ी। कोलम्बस् और वास्को-डिगामा प्रभृति दुस्साहसी नाविकों को मार्को पोलो से प्रेरणा मिली। मार्को पोलो इस समय के पूर्व-पश्चिम के घनिष्ट सम्बन्ध का प्रतीक है। इसका परिणाम योरप के बौद्धिक जागरण पर पड़ा।

(ज) कुन्स्तुन्तिनिया (Constantineple) का पतन :

रेनेसां की प्रगति को कुन्स्तुन्तिनिया का पतन से भी मदद मिली। मौंगोलों ने तुर्कों पर विजय प्राप्त किया था, पर मौंगोल साम्राज्य के कमजोर होने पर तुर्कों ने अपनी शक्ति को पुनः स्थापित कर लिया, और वे अब

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुन्स्तुन्तिनिया पर आक्रमण करने लगे। यह पूर्वी रोमन साम्राज्य की राजधानी थी, और पश्चिमी सभ्यता और इसाई संसार की प्रतिनिधि। अरबों ने इस पर कई आक्रमण किया था पर इस पर विजय पताका न फहरा सके थे। पर अब तुर्कों ने १४५३ ई० में मुहम्मद द्वितीय के नेतृत्व में इस नगर पर अधिकार कर लिया। योरप का द्वार अब तुर्कों के कब्जे में था, और अब वे सारे योरप को रौंद सकते थे। पर तुर्कों की महत्वाकांक्षा अधूरी रह गई। कौन्सटेन्टिनेप्ल् का पतन एक महत्वपूर्ण घटना है। तुर्क पश्चिमी संस्कृति या इसाई धर्म के कट्टर विरोधी थे। कौन्स्टेन्टिनेप्ल् से प्राचीन यूनानी-रोमन साहित्य के साथ २ उसके विद्वान भी भाग कर योरप विशेष कर इटैली चले आये। इस समय के बहुत पहले से ही प्राचीन यूनानी-रोमन विद्वानों के ग्रन्थों का अध्ययन योरप में शुरु हो गया था। योरप को अपनी प्राचीन निधियों का ज्ञान हो चुका था। पर अब इस आंदोलन को बहुत प्रगति मिली। पुरातन यूनानी साहित्य और विज्ञान को यूनानी भाषा में ही पढ़ने और पढ़ाने वाले बहुत से विद्वान आ गये। पुरातन साहित्य का पुनरोद्धार और उसके प्रति प्रेम तेजी से बढ़ने लगा। रेनेसां की प्रगति तेज हो गई।

(ञ) कागज और छापाखाना :

कागज और छापाखाना से रेनेसां का आन्दोलन को बहुत सहायता मिली। कागज बनाने का ज्ञान अरबों ने चीनियों से सीखा था, और अरबों से योरोपियनों ने। इस तरह हस्तलिखित पुस्तकों का जमाना आया, और बड़े-बड़े पुस्तकालयों में ऐसी पुस्तकों को संयोग कर रखा जाता था। पर जब छापने की कला का ज्ञान हो गया तब शिक्षा के साधन सहज हो गये। टाइप का (Types) का आविष्कार पहले-पहल चीनियों ने किया था। योरप में १३ वीं सदी से छापों का प्रयोग पाते हैं और शीघ्र ही योरप के प्रमुख शहरों में कई छापेखाने खुल गये। जौन गुटेनवर्ग (१४००-१४६८ ई०) ने अस्थिर टाइपों का आविष्कार किया, जिससे छापे के अक्षर इधर-उधर किये जा सकते थे (Moveable Types)।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस तरह के छापे पर छपी पहली पुस्तक लैटिन भाषा में लिखित बाइबिल् की एक प्रति थी (१४५४-५६ ई०)। वेनिस में छापों का एक छापाखाना अल्डस मनुटियस ने स्थापित किया। इंगलैंड में १४७७ में कैक्स्टन् ने ऐसा ही एक छापाखाना खोला। इस सदी के अन्त तक योरप के प्रमुख शहरों में कई छापाखाना स्थापित हो गये। इससे प्राचीन यूनानी और रोमन ग्रन्थों का प्रचार योरप में बहुत तेजी से हो सका। अब सर्वसाधारण तक रेनेसां का आदर्श पहुँच सका। रेनेसां एक स्थानीय आंदोलन न रह कर शीघ्र ही पूरे योरप में फैल गया।

रोम के चर्च का अधःपतन, पवित्र-रोमन-सम्राट् की कमजोरी और सुदृढ़ राज्यतन्त्रों की स्थापना से भी रेनेसां को प्रगति और उत्साह मिला।

रेनेसां का प्रसार और रूप :

इटैली रेनेसां का प्रमुख और प्रथम केन्द्र रहा, और इसके कारण स्पष्ट हैं। यूनान की अवनति के बाद यूनानी संस्कृति का पोषक और रक्षक इटैली और रोमन साम्राज्य का केन्द्र इटैली ही था। यहां प्राचीन रेनेसां यूनानी व रोमन साहित्य का पुनर्जन्म स्वाभाविक था। इटैलिअन अन्य योरोपिअन जातियों से रोमनों के अधिक निकट थे और रोमन संस्कृति से उनका सम्बन्ध एकदम छिन्न-भिन्न नहीं हुआ था। फिर प्राचीन संस्कृति (Classical Civilisation) के अवशेष सबसे अधिक इसी प्रदेश में थे। इसलिए रोमन जाति और संस्कृति के प्रति इनका प्रेम और अभिमान सर्वदा वर्तमान था। इसलिए प्राचीन को पुनर्जीवित करने की ओर इनका ध्यान सर्वप्रथम जाना स्वाभाविक था। यूनानी सभ्यता के आधार नगर-राज्य थे, और इस समय इटैली कई ऐसे स्वतन्त्र नगर-राज्यों में विभक्त था, जहां विद्या को प्रोत्साहन मिल रहा था। पूर्व से निकट सम्पर्क रेनेसां का प्रमुख कारण था, और पूर्व से पश्चिम का व्यापार में इटैली के प्रमुख नगर जेनोआ, वेनिस, और पीसा प्रमुख भाग ले रहे थे।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रूशेड या धर्म-युद्ध के समय में इटैली के पूर्वतट स्थित बन्दरगाहों ने अभूतपूर्व उन्नति की। इटैली के नगर अत्याधिक सम्पन्न थे, और यहां के पूंजीपति और धनाढ्य व्यापारियों के प्रश्रय में नागरिक सभ्यता पनप रही थी; नया जोश, आत्मविश्वास और धर्म निरपेक्ष-भावना इस प्रस्फुटित संस्कृति के प्रमुख गुण थे। प्राचीन यूनान के नगर-राज्य के समान मध्यकालीन इटैली के ये नगर सर्वांगपूर्ण विकास-राजनैतिक, कलात्मक और वैज्ञानिक-के केन्द्र थे। फ्लोरेन्स (Florence, Ferenze) ऐसा ही एक महान् नगर था जहां कला खूब विकसी, और प्रतिभावान् पुरुषों का जन्म हुआ। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि इटैली के इन शहरों में मध्ययुग की संस्कृति मिट गई थी, और नवयुग का प्रभात आ गया था। एक विद्वान लेखक का मत है कि रेनेसां मध्यकालीन इटैली के नगरों के पलनों पर ही पला (Renaissance was craddled in the cities of medieval Italy—Myers)। इटैली में भिन्न-भिन्न जातियों का अत्याधिक सम्मिश्रण हुआ था,—जैसे हून, गौथ, लौम्बर्ड, फ्रैंक, अरब, नौर्मन, जर्मन इत्यादि। इन विभिन्न जातियों और संस्कृतियों का टक्कर और सम्मिश्रण से मानसिक उत्तेजना बढ़ी। किसी भी बौद्धिक जागृति या पुनर्जागृति का एक आधार यह भी है। फिर इटैली के विश्वविद्यालयों में धर्मशिक्षा (Theology) की जगह पर कानून या चिकित्सा-विज्ञान ऐसे गैरमजहबी विषयों की प्रधानता थी। इन विश्वविद्यालयों में धर्मकट्टरता और पाखंड का प्रभाव कम था, और यहाँ के स्वतन्त्र और धर्मनिरपेक्ष (Secular) वातावरण में बौद्धिक जागरण आसानी और तेजी से पनप सका। जैसे धर्म सुधार की लहर जर्मनी से योरप में फैली, और राजनैतिक क्रान्ति के संदेश फ्रांस से योरप गये वैसे ही इटैली से रेनेसां की ज्योति योरप पहुँची।

रेनेसां का मुख्य लक्षण था यूनानी-रोमन साहित्य और कला का पुनर्जन्म। यूनानी कला और साहित्य का प्रमुख विषय था मानव या

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव की आकांक्षा और अनुभूतियां। सभी चीज़ों की सारता का मापदण्ड था मानव (Man is the measure of all things)। रेनेसां में भी मानववाद (Humanism) का आदर्श स्पष्ट है। मध्ययुग में चर्च के अत्यधिक प्रभाव के कारण अध्यात्मिकवाद या धार्मिक-रहस्यवाद ही विद्या और कला का लक्ष्य था। पर यूनानी साहित्य के पुनर्जन्म के साथ-२ मानववाद की पुनर्प्रतिष्ठा हुई। नवीन कला और साहित्य के प्रमुख विषय अध्यात्मिक व धार्मिक-रहस्यवाद नहीं वरन् मानव के दुःख सुख, सौन्दर्यप्रेम, और व्यावहारिक विज्ञान थे।

मानववाद (Humanism)

इस मानववाद ने ऐसा बौद्धिक वातावरण (Intellectual atmosphere) पैदा कर दिया जिसमें बुद्धि, जो मध्ययुग में काफी हद तक एक निश्चित दायरे में ही सीमित थी, अब स्वतन्त्र हो गई, और विद्या और ज्ञान के पट फिर वैसे ही खुल गये जैसे यूनानी-रोमन युग में।

साहित्य:

रेनेसां के अग्रदूतों में महाकवि दान्ते (Dante 1265–1321) का नाम आदर से लिया जाता है। दांते का जन्म इटैली का प्रमुख शहर फ्लोरेन्स में १२६५ ई० में हुआ था, और उन्हें वर्षों नगर-निष्कासित हो कर रहना पड़ा। उन्होंने कोम्मेडिया (Commedia) या Divine Comedy लिखी। यह विश्व-साहित्य की अमूल्य निधि है। इस महान् काव्य में मध्ययुग का जीवन का दिग्दर्शन होता है। इसमें पोप और सम्राट् पद को ईश्वर के द्वारा स्थापित समझा गया है। दान्ते अंधविश्वासी और धर्मभिरु था। पर इस महान् काव्य में उसने प्राचीन यूनानी और रोमन विद्वानों का अभिनंदन किया, और प्राचीन संस्कृति के प्रति आदर और प्रेम का भाव प्रदर्शित किया। इसने महाकवि वर्जिल की प्रशंसा की और अपनी पुस्तक में उसने यूनानी और रोमन विद्वानों के ग्रन्थों का उल्लेख किया। इस ग्रन्थ में हम दान्ते का आत्मविश्वास, स्वाभिमान, और तर्कबुद्धि पाते हैं। इन्हीं कारणों से महाकवि दान्ते को रेनेसां के आगमन का प्रतीक समझा

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है। प्राचीन यूनानी-रोमन साहित्य के प्रति विद्वानों का आदर और जिज्ञासा को बढ़ाने में दान्ते का महाकाव्य विशेष महत्व रखता है। दान्ते का महाकाव्य का आधार भले ही तत्कालीन अंधविश्वास हो, पर इस काव्य में चरित्र-चित्रण या दृश्यों का वर्णन मानव अनुभूतियों के अनुकूल ही हैं। मानववाद दान्ते से दूर नहीं था।

पेट्रार्क

पेट्रार्क रेनेसां का सच्चा प्रतिनिधि था। प्राचीन साहित्य के प्रति इसका प्रेम और आदर-भाव अतुलनीय था। इसने प्राचीन साहित्य के विशिष्ट गुणों को ही नहीं समझा, वरन् किसी भी उन्नत सभ्यता के लिए इस साहित्य को अपनाना अत्यावश्यक समझा। इसने ग्रंथों का संचय करना शुरू किया। सिसरो, प्लेटो, अरस्तू के ग्रंथों की कई हस्तलिखित प्रतियां इसके अपने पुस्तकालय में सुरक्षित थीं। इन्हें वह ध्यान से पढ़ता था, और उसके यहां दर्जनों ऐसे ज्ञानपिपासक और प्राचीन साहित्य के प्रेमी आकर अध्ययन करते थे। पेट्रार्क मध्ययुग की विचारधारा और संस्थाओं का पक्का विरोधी था। पंडित-समुदाय उसकी कटु आलोचना का निशाना था। वह बुद्धिवादी था, और यह भी कहने का साहस रखता था कि अरस्तू सबकुछ नहीं जानता था, वह भी एक मनुष्य ही था जबकि उस समय अरस्तू के वाक्य ब्रह्मवाक्य ही माने जाते थे। तर्क और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का आश्रय लेकर पेट्रार्क ने मध्यकालीन दकियानुसी विचार और शब्दों के जाल में फंसा हुआ पंडित-विचार-पद्धति पर कड़ा आघात किया। प्राचीन साहित्य की खोज और लैटिन भाषा की सेवा ही उसका कार्य-क्षेत्र नहीं था, बल्कि उसने रोम के प्राचीन खंडहरों के महत्व और उनका गौरवमय अतीत के प्रति अपना प्रेम दिखाया। पुरातत्व के प्रति प्रेम और सक्रिय आकर्षण आधुनिक युग का ही लक्षण है। मध्ययुग में प्राचीन खंडहरों या ऐतिहासिक अवशेषों के प्रति उपेक्षा थी। पेट्रार्क प्रथम महान् व्यक्ति है जिसने प्राचीन भग्नावशेषों का महत्व समझा,

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और इस तरह पुरातत्व विज्ञान का अग्रदूत कहा जा सकता है। पंद्रहवीं सदी के अन्त में क्रेवियो विओन्डो ने प्राचीन इटैली के अवशेषों पर कई पुस्तकें लिखीं जिनमें उनका (Restored Rome) पुरातत्व साहित्य का प्रथम वैज्ञानिक ग्रन्थ है।

पेट्रार्क के शिष्य बूक्काशिओं (Buccaccio) ने गुरु का काम आगे बढ़ाया, और प्राचीन ग्रन्थों की खोज जारी रक्खी। अतीत के प्रति प्रेम और आकर्षण की भावना को उसने और भी अधिक बढ़ावा दिया और प्राचीन साहित्य का ज्ञान की वृद्धि की। उसी के अनुरोध पर होमर लिखित इलिअड् और ओड्रेसी का लैटिन अनुवाद पेट्रार्क ने किया था। होमर के महाकाव्य का लैटिन भाषा में यह प्रथम अनुवाद था। इटैली के विद्वानों में यूनानी भाषा में ही लिखी पुस्तकों को पढ़ने की इच्छा बलवती हो गई, अनुवाद से अब उनका जी नहीं भरा। कुन्सतुन्तिनिया का निवासी क्रीसोलोरस् (Chrysoleras) ने चौदहवीं सदी में इटैलियनों को ग्रीक पढ़ाया, और कुन्सतुन्तिनिया के पतन के बाद ग्रीक भाषा के विद्वान काफी संख्या में इटैली भाग आये थे। इन सबों की मदद से ग्रीक भाषा का प्रचार हुआ और प्रत्येक शिक्षित इतालवी ग्रीक भाषा को बड़े उत्साह से सीखता था। पश्चिम योरप के स्कूलों और विश्वविद्यालयों में ग्रीक और ग्रीक साहित्य का अध्ययन होने लगा, इस तरह यूनानी साहित्य का पुनर्जीवन हुआ। प्राचीन पुस्तकों की हस्तलिखित प्रतियों की खोज में धार्मिक-उत्साह दिखाया गया, और चर्च के धर्मविहार या विश्व-विद्यालयों के पुस्तकालयों को विद्वानों ने छान डाला। पोग्गियो बेकियोलिनी (१३८०–१४५९) ने सिसरो, ल्यूक्रेटिस, इत्यादि की प्राचीन पुस्तकों और अन्य पुराने ग्रन्थों का पता लगाया। इस तरह रेनेसां युग के उत्साही विद्वानों ने प्राचीन साहित्य के अनमोल ग्रन्थों को नष्ट होने से बचा लिया। अब इन ग्रन्थों का, मूल भाषा में ही, अध्ययन शुरू हुआ, और रोमन-यूनानी साहित्य और कला का वास्तविक पुनर्जन्म हुआ। अब मूल भाषा में लिखित इन ग्रन्थों का का अनुवाद लैटिन, इटैलियन, और

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य राष्ट्रीय भाषाओं में होने लगा। इस तरह देशीय भाषाओं का (Vernaculars) विकास हुआ। ऐसे प्रामाणिक अनुवादों के लिए कई एकेडेमी या विद्वत्-परिषदों की स्थापना हुई जिनमें फ्लोरेन्स की (Platonic Academy) उल्लेखनीय है। इसका स्थापक मेडिसि (Medici) का बहुत आदर हुआ, और इसकी मूर्त्ति बनी और उसपर बराबर दीप जलते रखा गया। प्राचीन साहित्य और संस्कृति के प्रति आदर और पुनरोद्धार करने की उत्कन्ठा का यह ज्वलन्त उदाहरण है।

प्राचीन साहित्य और भाषा का पुनर्जन्म इटैली में ही सीमित न रहा। छापाखाना के कारण यह आन्दोलन को इटैली के बाहर फैलाने में सुविधा हुई। जर्मन नवयुवक भी ग्रीक भाषा सीखने लगे। बहुतों ने इटैली के शहरों में आकर नयी भाषा और नया साहित्य पढ़ना शुरू किया। जब जर्मन विद्वान ह्यूच्लीन ने १४८२ में इटैली आकर प्रसिद्ध इतिहासकार थुसिडाइडिस की पुस्तक का एक अंश का शुद्ध अनुवाद कर दिया तब उसके परीक्षक बोल उठे कि "हमारी निर्वासित ग्रीक (भाषा) उड़कर आल्पस् पहाड़ों के पार पहुँच गई है"। जर्मनी में ग्रीक और लैटिन भाषा का ही अध्ययन न हुआ, रोमन-यूनानी संस्कृति के प्रति ही आकर्षण नहीं पैदा हुआ बल्कि प्राचीन यहूदी और इसाई संस्कृति और साहित्य, और हेब्रू भाषा के प्रति भी नया उत्साह देखा गया।

जर्मन साहित्य

इंगलैंड के आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में ग्रीक साहित्य और भाषा की उच्च शिक्षा दी जाने लगी। लैटिन और ग्रीक पाठ्यक्रम के आवश्यक अंग बन गये। प्राचीन साहित्य के प्रति सक्रिय प्रेम और उत्साह का एक परिणाम यह हुआ कि अंगरेजी भाषा और साहित्य की अभूतपूर्व उन्नति हुई। नया उत्साह और आत्म-विश्वास का यह स्वाभाविक परिणाम था। विश्वविद्यालय और उच्चवर्ग के लोगों ने अंगरेजी साहित्य की प्रगति को प्रोत्साहन दिया। शतवर्षीय युद्ध का एक परिणाम यह हुआ कि अंगरेजों में अपनी भाषा के प्रति आदर का भाव आया, और अंग्रेजी साहित्य को बढ़ावा मिला। जौन

अंग्रेजी साहित्य

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्नवेलि और अन्य शिक्षकों ने विकलिफ और सेक्सपिअर के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

कैक्स्टन (Caxton) ने १४७७ ई० में इंगलैण्ड में छापाखाना स्थापित किया। इससे ज्ञान की वृद्धि और प्रचार में सहायता मिली। अंग्रेजी साहित्य का प्रथम महाकवि चौसर की Canterbury Tales इसी छापाखाना में छपी। चौसर की पुस्तकों से मध्ययुग का अस्त और आधुनिक युग का उषाकाल का ज्ञान होता है। चौसर अंगरेजी कविता का पिता कहा जाता है। विलिअम लैंगलैंड की कविता में गरीबों की दशा का सजीव और करुण चित्रण है। कैक्स्टन् ने कई पुस्तकों का अंग्रेजी अनुवाद किया, और उसकी अंग्रेजी जनसाधारण की बोलचाल की भाषा से भिन्न नहीं थी। इस तरह अंगरेजी भाषा को नया रूप दिया गया। आक्सफोर्ड का विद्वान् कोलेट (Colet) ने ग्रीक भाषा और साहित्य का अध्ययन बड़े उत्साह से किया, और उसके धार्मिक विचार मध्यकालीन दकियानुसी विचार के विरोधी थे। उसने शिक्षा के क्षेत्र में सुधार किया और माध्यमिक शिक्षा के स्कूल (Secondary Schools) की स्थापना की। ऐसे स्कूलों के द्वारा इंगलैंड की शिक्षा पद्धति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया। इंगलैंड के विश्वविद्यालय-आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज-में यूनानी-रोमन साहित्य का अध्ययन और अध्यापन तीव्र गति से हुआ। इरैसमस् (Erasmus) आक्सफोर्ड में ग्रीक भाषा का अध्ययन करता था और कोलेट् की विद्वता से प्रभावित था। इंगलैंड में रेनेसां-साहित्य की सबसे प्रमुख प्रतिनिधि-पुस्तक टामस मोरे की Utopia है। इसमें 'मोरे' ने आदर्श समाज की कल्पना की है। टौमस् मोरे बचपन से ही होनहार थे और इनके अभिवावक ने कहा था कि "यह लड़का बड़ा होकर एक विलक्षण पुरुष होगा" और यह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। टौमस् मोरे का प्रतिभाशील व्यक्तित्व से इरैसमस् और कौलेट् अत्यन्त प्रभावित थे। टौमस् मोरे ने अपनी पुस्तक Utopia में योरप की समस्याओं पर विचार किया है और इनका समाधान भी बताया है

रेनेसां का युग

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनमें कुछ अभी भी ग्राह्य हैं। टौमस् मोरे मानववाद का पुजारी था, उसके विचार में जनसाधारण का कल्याण ही किसी भी राज और समाज का लक्ष्य होना चाहिये। उसने मजदूरों की बुरी दशा, गरीबों की निरीहता, और शासन का रूप इत्यादि समस्याओं पर मौलिक रूप से विचार किया। उसका यह कहना था कि समाज का संगठन गरीबों को कुचलने के लिए अमीरों का षड्यन्त्र था। उसकी काल्पनिक आदर्श-दुनियां (Utopia) में वैयक्तिक स्वतन्त्रता, भाईचारा का भाव और जनसाधारण के राजनैतिक, आर्थिक, अध्यात्मिक, और बौद्धिक विकास के सिद्धान्त प्रचलित थे। शासन और कानून सर्वजनहिताय था। चरित्रनिर्माण, सार्वजनिक स्वास्थ्य और योजनानुकूल नगरों की स्थापना पर यहाँ विशेष ध्यान दिया जाता था। यहाँ अपराधियों को दण्ड देने का अभिप्राय दण्ड नहीं वरन् चरित्रसुधार था। आज भी हम टामस् मोरे के आदर्श धरातल पर नहीं उतार सके हैं। टौमस् मोरे ने विचार की स्वतन्त्रता, समाज में गरीब के प्रति न्याय, और वैयक्तिक स्वतन्त्रता के सिद्धान्तों को दृढ़ता से प्रतिपादित किया। मोरे का प्रभाव इंगलैण्ड के बौद्धिक आन्दोलनों पर काफी पड़ा, और मोरे अपने समय में इंगलैण्ड का सबसे बड़ा आदमी माना जाता था। ऐसे महापुरुष को प्राणदण्ड की सजा मिले यह इंगलैण्ड के इतिहास में एक काला धब्बा है। साम्राज्ञी एलिजाबेथ के राज्यकाल में इंगलैण्ड में, विशेषकर स्पेनिश् आर्मडा पर विजय के उपरान्त, आत्मविश्वास और नवोत्साह की लहर फैल गई, और अंगरेजी साहित्य का अभूतपूर्व विकास हुआ। अंगरेजी साहित्य का सबसे बड़ा कवि और नाट्यकार शेक्स्पिअर (Shakespeare) ने इसी समय अपने महान् नाटकों की रचना की थी, जिनमें हैमलेट, मैकबेथ प्रभृति दुखान्त नाटक सर्वोत्कृष्ट माने जाते हैं। शेक्स्पिअर नवअंगरेजी साहित्य का प्रमुख कवि भी था। मार्लो (Marlowe) एक सफल नाट्यकार था। स्पेन्सर (Spencer) की Fairy Queen अंगरेजी साहित्य की अनुपम निधि है। प्रेम, ईर्षा, घृणा, आकर्षण, इत्यादि मानव गुण और अवगुणोंका इसमें सुन्दर चित्रण है। इंगलैण्ड के राष्ट्रीय

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य को समृद्ध करनेवालों में शेक्सपिअर और स्पेन्सर का स्थान सर्वोपरि है। एलिजाबेथ के समकालीन ही प्रसिद्ध कवि और उपन्यास लेखक सर वाल्टर स्कौट थे जिनके उपन्यासों में तत्कालीन समाज का सजीव चित्रण है। मिलटन् वैयक्तिक स्वतन्त्रता के अमूल्य सिद्धान्त का उत्साही कवि है, और बेन-जौनसन व्यंग-हास्यरस का अग्रणी साहित्यिक समझा जाता है। चिन्तकों और लेखकों में फ्रांसिस बेकन का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने तर्क, अनुभव और प्रमाण पर जोर दिया। विश्वास का आधार ये ही तीन है, ऐसा इन्होंने बताया। इनके लेख अभी भी चाव से पढ़े जाते हैं।

रेनेसां के युग में फ्रांस, इटैली, स्पेन प्रभृति अन्य देशों में भी राष्ट्रीय भाषा और साहित्य का विकास हुआ। महाकवि दान्ते ने इटालवी (इटैलिअन) भाषा को अपनाया। अरिआस्तो (Ariosto) और तस्सो (Tasso) ने राष्ट्रीय साहित्य की उन्नति की। मैकियावेलि (Machiavelli) ने अपनी महान् पुस्तक "Prince" इटालवी में ही लिखा। इस पुस्तक में मेकियावेलि ने तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति को आधार मानकर राजा की शक्ति को सर्वमान्य और सर्वोपरि रक्खा है, उसके विचार में राजहित के लिए राजा नैतिक आचरण के लिए बाध्य नहीं था, स्वार्थ के लिए राजा के लिए सभी कुकर्म माफ थे झूठ, प्रपंच, कठोरता इत्यादि सभी उपायों को राजा को व्यवहार में लाना चाहिये, और जनता को दबाकर ही अपना अधिकार सुरक्षित रखना चाहिये मेकियावेलि के इस सिद्धान्त को १६-१७ हवीं सदी में सभी राजाओं ने व्यवहारिक रूप में लाने की कोशिश किया।

इतालवी साहित्य

फ्रांस में मोन्त्यें (Montaigne) ने फ्रांसिसो (French) साहित्य को विकास के पथ पर लाया। वह यथार्थ में व्यक्तिवादी था और वैयक्तिक अनुभव ही उनकी रचनाओं के विषय थे। फ्रांसिसी रेबेले (Rabelais) 1490-1553 की पुस्तक 'गर्गनतुआ और पन्ताग्रुएज' रेनेसांकी संक्षिप्त कहानी ही मानी जाती है।

फ्रांसीसी साहित्य

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ्रांस में सरवेंटिज (Cerventis) और लोप दि वेग (Lope de vega) ने स्पेनिश भाषा में रचनाएँ की। सरवेंटिज की लिखी डॉन क्यूकिस्टों (Don Quixto) रेनेसां युग के साहित्य का विश्व की उत्कृष्ट कृति समझी जाती है।

स्पेनिश्-साहित्य

चित्रकला और मूर्तिकला (Painting and Sculpture) :

कला पर भी रेनेसां का युगान्तकारी प्रभाव पड़ा। मध्यकालीन युग में कला चर्च की चेरी थी। चर्च या विहारों में चित्रकारी का प्रयोग होता था। संतों या धार्मिक दृश्यों या काल्पनिक दैवी-दृश्यों (Supernatural scenes) के चित्र से गिरजाघर या विहारों की शोभा बढ़ाई जाती थी। कलाकार कई बंदिशों से बंधा था। किस प्रकार का रंग, कितने प्रकार का रंग, चित्र का माप, चित्रित व्यक्तियों या दृश्यों की अस्वाभाविक आकृति निश्चित थे, और कलाकार को इन अगणित नियमों का पूरा पालन करना पड़ता था। इसलिए कला निर्जीव, निस्तेज और अस्वाभाविक रहती थी; कलाकार की प्रतिभा संकुचित थी। पर यूनानी रोमन साहित्य के साथ-साथ प्राचीन कला का पुनः अवतरण हुआ। यूनानी कला की प्रमुख विशेषता थी स्वाभाविकता और मानववाद। मनुष्य का शरीर और उसके भाव-भंगियों का स्वाभाविक चित्रण में ही कला की सफलता समझी जाती थी। इस कला का पुनर्जन्म इटैली में हुआ। प्राचीन कला के उदाहरणों का आदर किया जाने लगा, और उन्हीं के आदर्शों से प्रेरित होकर चर्च के अंचल से मुक्त होकर स्वतन्त्र वातावरण में कला का नया रूप निखरने लगा। इस दिशा में निकोला पिसानो (Niccola Pissano, died 1228) ने पथ-प्रदर्शक का काम किया। वह रोमनों के प्राचीन पत्थर-के-बने-ताबूत (Sarcophagi) पर खुदे दृश्य और प्राचीन बर्तनों पर चित्रित मूर्तियों से प्रभावित हुआ और इन्हें आदर्श मानकर स्वयं ऐसी मूर्तियाँ बनाने लगा। इस तरह जैसे प्राचीन साहित्यिक प्रभाव से प्रेरित होकर नवसाहित्य का

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकास हुआ, उसी प्रकार प्राचीन यूनानी-रोमन कला के प्रत्यक्ष प्रभाव से ही कला का पुनर्जन्म हुआ। कला का विषय मनुष्य और उसके भाव थे, उसका रूप स्वाभाविक था, और कलाकार अपनी प्रतिभा का विकास करने में बिल्कुल स्वतन्त्र थे, नये-प्रयोग करने में कोई रोक-टोक नहीं थी। इटैली के नगर-राज्यों के स्वेच्छाचारी शासकों ने इस नयी और सजीव कला की उन्नति में बहुत मदद दिया। फ्लोरेंस का मेडिकि परिवार इस नगर पर कई पुश्त तक (१४३४–९४) अपना अधिकार स्थापित किए रहा, और इसी वंश के प्रतिनिधि-गण कोसमो और लोरेंजो, माइकेलएन्जलो, लिओनार्डदि विंचीं प्रभृति महान कलाकारों के पोषक थे। मिलान का स्वेच्छाचारी शासक (Tyrant) गियां गलेइब्जिों वाइकोन्टि ने कलाकारों को प्रोत्साहन दिया। रोम में निकोलस पंचम रेनेसां युग की कला और साहित्य का पोषक था। एक बात ध्यान देने की है कि यद्यपि इस समय की कला यूनानी कला से प्रेरणा पाकर ही विकसित हुई, पर यह प्राचीन (Classical) कला की हूबहू नकल नहीं थी। प्राचीन आदर्श और सापेक्ष विषय भले आधार हों, पर इस समय के कलाकारों ने अपनी कला में न्यूनता और सम्पूर्णता दिखाई। इसीलिए तो यह सजीव थी और भविष्य के लिए प्रेरणा-शक्ति का काम कर सकी।

इस युग के महान् चित्रकारों में लियोनार्डदिविन्चीं (१४५२–१५१९), राफेल (१४८३–१५२०), माइकेलएन्जलो (१४७५–१५६४), और टाइटियन (Titian, १४७७–१४७६) प्रमुख हैं। इनके कई चित्र जैसे लियोनार्डदिविन्चीं का Last Supper अभी भी सर्वोत्तम चित्र समझे जाते हैं। लियोनार्डदिविन्चीं एक सफल इन्जिनीयर, शरीर-विज्ञान का विद्वान, और वैज्ञानिक था जो मशीनों के द्वारा अस्मान में उड़ना सम्भव समझता था। यह सच है कि ये महान् कलाकार अपनी कला से गिरजाघरों को ही अलंकृत करते थे। इन चित्रों के विषय अधिकतर धार्मिक महत्त्व के थे—जैसे प्रभु ईसा की जीवनी के दृश्य, महान् संतों के चित्र, ईसाधर्म से सम्बन्धित दृश्यों का चित्रण। पर उल्लेखनीय बात यह है कि

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन दृश्यों के चित्रण में पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रयोग किया गया था, और अप्राकृतिक नहीं वरन् स्वाभाविक और मानवीय चित्रण ही किया गया। कुछ समय बाद गैरइसाई विषय भी चित्रों के शीर्षक बने।

इटैली में चित्रकला का जो नया और सजीव रूप विकसित हुआ, उसका प्रभाव पूरे योरप पर फैला। रेनेसां युग की क्रियात्मक प्रतिभा के प्रतिनिधियों में फ्लैन्डर्स निवासी वैन्डायक्, डच रेम्ब्रां (Rembrandt) और रूबें (Reabeun) और स्पेनवासी वेलस्क्यूज़ ऐसे महान् चित्रकारों का स्थान अमर रहेगा। रेनेसां युग के चित्रकार अपने चित्रों में तेल का व्यवहार करते थे, मानव-शरीर की बनावट का अध्ययन करते थे, और कला में नई शैली ये लोग अपनाने लगे। चित्रकारी के यूनानी-रोमन नमूने नहीं प्राप्त हुये थे इसलिये इस कला में रेनेसां युग के कलाकारों ने विलक्षण मौलिकता दिखाई और एक नयी कला का ही जन्म दिया।

मूर्तिकला में प्राचीन आदर्शों को पुनर्जीवित किया गया। यूनानी और रोमन मूर्तियों की स्वाभाविक सुन्दरता और मानवता ने इस युग के कलाकारों को अत्यन्त ही प्रभावित किया। गिब्बर्टी (Gibberty) और माइकेल एन्जेलो प्रतिभावान् मूर्तिकार थे। गिब्बर्टी ने एक जोड़ा सुन्दर किवाड़ बनायीं जिसे फ्लोरेन्स के गिर्जाघर में लगाया गया। यह दरवाजे इतने सुन्दर थे इन्हें स्वर्ग का दरवाजा कहा गया। माइकेल एन्जेलो स्वस्थ मानवशरीर को संगमर्मर की बनी मूर्तियों में साकार कर देता था। उसकी कला में जादू था, और उसकी बनाई मूर्तियाँ अभी भी फ्लोरेन्स के गौरव हैं।

वास्तुकला

वास्तुकला या स्थापत्य (Architecture) में भी हम रोमन प्रभाव स्पष्ट पाते हैं। मध्ययुग के उत्तरार्द्ध में समृद्ध नगरों के गिरजाघरों की बनावट पर यूनानी-रोमन वास्तुविद्या का प्रभाव पड़ा। गोथिक शैली पर भी रोमन प्रभाव था।

रेनेसां ने जिस जिज्ञासा को उत्तेजित किया उसका स्वाभा-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विक परिणाम था विज्ञान की उन्नति। मध्ययुग में ही अरबों के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव के कारण योरप में वैज्ञानिक भावना घर कर रही थी। रोजर बेकन योरप में आधुनिक विज्ञान के अग्रदूत कहे जा सकते हैं। उन्होंने विज्ञान की प्रगति में अद्भुत विश्वास प्रकट किया। प्रयोग और अनुसंधान की असीम संभावनाएँ की ओर इशारा किया। उनकी ये आशाएँ बहुत दिनों के बाद पूरी हुई।

विज्ञान की प्रगति

रेनेसां ने इस वैज्ञानिक अनुसंधान और नयी खोज के आंदोलनों को स्वतन्त्र और उत्साहवर्द्धक वातावरण में फलने-फूलने का स्वर्ण अवसर दिया। चर्च का प्रभाव सुधार-आंदोलनों के कारण कम हो रहा था। व्यापारी और उद्योगपति विज्ञान के पोषक थे, और व्यापार और उद्योगों में विज्ञान की सहायता की आशा रखते थे। इन्हीं कारणों से १६-१७ हवीं सदी में विज्ञान की उन्नति हुई। कोपरनिकस ने यह सिद्ध किया कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है, और बहुत से नक्षत्र सूर्यसम ही हैं। यह विचार क्रांतिकारी था। पहले लोग यही समझते थे कि पृथ्वी विश्व (universe) का केन्द्र है, और सूर्य और सभी ग्रह स्थिर पृथ्वी के चारों ओर चक्कर काटते हैं। केप्लर ने गणित के सिद्धान्तों को स्थापित कर कोपरनिकस् के सिद्धान्त को प्रमाणित किया। गैलेलियो ने दूरबीन (Telescope) का आविष्कार किया और इस सिद्धान्त को अकाट्य सत्य प्रमाणित कर दिया। पर चर्च ने इस सिद्धान्त का विरोध किया क्योंकि इससे पृथ्वी और उस पर रहनेवाले पोप का महत्त्व कम होता था। गैलेलियो को अपने विचार वापस लेने पर बाध्य किया गया गया। चर्च के विरोध ही के कारण ब्रूनो (Bruno) को जिसने यह सिद्ध किया था कि पृथ्वी सूर्य के चारों तरफ घूमती ही नहीं वरन् आस्मान के तारे स्वयं ही सूर्य हैं, प्राणदंड की सजा मिली।

रसायन और चिकित्सा शास्त्र में भी मौलिक खोज और अनुसंधान हुये। प्राचीन विद्वान गैलेन (Galen) की गलतियां निकाली गईं, और

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शल्य-चिकित्सा में आधुनिक सुधार हुये। गणित में अरबों का ऋणी बन कर योरपियन गणितज्ञों ने दशमलव-विधि का विकास किया। ज्योमिति और ज्योतिष में मौलिक खोज की गईं। जूलियस सीजर के समय की जंत्री (Calender) में उचित सुधार हुआ। आइजेक न्यूटन (१६४२–१७२८) ने गुरुत्वाकर्षण शक्ति का पता लगाया। यह गणित और भौतिक विज्ञान का आधार बना। इन नये आविष्कारों और अनुसंधानों से आत्म-विश्वास बढ़ा। प्राचीन यूनानी और रोमन विद्वानों की पुस्तकों का अध्ययन प्रेम और आदर से होता था। पर अब इनके वाक्य ब्रह्मवाक्य नहीं समझे जाते थे। इनका अध्ययन आलोचनात्मक दृष्टिकोण से होने लगा, और ज्ञानभंडार की बराबर वृद्धि होने लगी। अभी भी वही वैज्ञानिक प्रवृति और ज्ञानपिपासा जारी है।

भौगोलिक खोजें :

रेनेसां का शक्तिसंचालक रूप की सबसे स्पष्ट अभिव्यक्ति भौगोलिक खोजें हैं। १५ हवीं और १६ हवीं सदी में अभूतपूर्व सामुद्रिक भ्रमण हुये। इसलिए इस युग को **नयी खोजों का युग (Age of Discovery)** कहा जाता है। पर वास्तव में इन दुस्साहसी भ्रमणों का लक्ष्य नये देशों की खोज नहीं थी, वरन् चीन, भारत और पूर्वी-द्वीप-समूह पहुँचने के लिए नये व्यापारिक मार्गों का पता लगाना था। पूर्व और पश्चिम दोनों दिशाओं में साहसी नाविकों ने यात्राएं कीं और सहसा नयी दुनियां पश्चिमी-गोलार्द्ध (Western Hemisphere)–का पता चला। आधुनिक इतिहास पर इस खोज का प्रबल प्रभाव पड़ा है।

कारण :

किसी भी प्रगतिशील सभ्यता में मनुष्यों में दूर-दूर देश पहुँचने की स्वाभाविक आकांक्षा रहती है। उनका विस्तृत दृष्टिकोण राज्य या राष्ट्र की भौगोलिक परिधि में सीमित नहीं रहता है। प्राचीन यूनानी और रोमन बराबर भूमध्यसागर के पश्चिम के देशों की कल्पना किया करते

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। इनका भारतवर्ष से सम्बन्ध था। सेनेका नामक रोमन ने तो पहली सदी में यह कल्पना की थी भारतवर्ष पश्चिमी मार्ग से पहुँचा जा सकता था। (रेनेसां युग में इसी आधार पर तो कई समुद्रीय यात्राएं हुईं।) पर मध्ययुग के संकुचित वातावरण में इन साहसी और प्रगतिशील ख्यालों का कला और साहित्य के साथ-२ लोप हो गया। पर जब प्राचीन यूनानी और रोमन साहित्य और कला का पुनर्जन्म हुआ, नया जीवन और नया उत्साह का फिर से संचार हुआ। साहस और आत्मविश्वास से भरे हुये योरोपियन नवयुवक दूर-२ देश-भ्रमण और समुद्रीय यात्रा करने के लिए आतुर हो गये। मार्कोपोलो के लिखित भ्रमण-विवरण पढ़ कर बहुत से लोग चीन, जापान इत्यादि अद्भुत देशों को देखने के लिए लालायित हो उठे।

(क) रेनेसां से उत्पन्न नवविश्वास और उत्साह

तत्कालीन आर्थिक समस्या ने इन स्वप्नों को चरितार्थ करने में बड़ा भाग लिया। योरप में चीनी रेशम, भारत और पूर्व द्वीपसमूह से मसाला (Spices) और बेशक़ीमती पत्थरों की मांग बहुत थी। इटैली के पूर्वतटस्थित बन्दरगाहों के ऐश्वर्य का कारण यही था कि पूर्वी भूमध्यसागर से होकर सीरिया, मेसोपोटेमिया, ईरान, भारत, व चीन इत्यादि के मार्गों के प्रमुख केन्द्र यही थे। पर जब तुर्कों ने कुन्स्तुन्तिनिया पर १४५३ ई० में अधिकार कर लिया तब पूर्व से व्यापार में बाधा उत्पन्न हो गई। तुर्कों का अधिकार पूर्वी साम्राज्य (Eastern Empire) पर ही नहीं वरन् मध्यपूर्व पर भी था, और बाल्कन-प्रदेश भी उनके प्रभावक्षेत्र में शीघ्र ही आनेवाले थे। तुर्क-अधिकारी व्यापार पर कई तरह के कर लगाते थे, और इससे व्यापारियों को बहुत मुश्किल होती थी। चीजों की कीमत बहुत बढ़ जाती थी और व्यापार में फायदा कम और नुकसान अधिक उठाना पड़ता था, और यह सब इसलिए कि व्यापार-मार्ग पर एक विरोधी शक्ति का अधिकार था। इसलिए व्यापार के हित और एशिया की चीजों की मांग की पूर्ति के लिए अब योरोपियन व्यापारियों या राज्यों को पूर्व से व्यापार करने के

(ख) कुस्तुन्तिनिया का पतन

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए दूसरा रास्ता का पता लगाना आवश्यक हो गया। आवश्यकता ही खोज की की जननी है, और समुद्री यात्राओं के द्वारा नये रास्ते और नये देशों का पता लग गया। इसमें पश्चिमी योरप के राज्यों ने बड़ा उत्साह दिखाया क्योंकि वे अब इटैली के नगर-राज्यों का पूर्ण से व्यापार पर एकाधिकार का अन्त चाहते थे।

पश्चिमी नये राज्यों का सक्रिय सहयोग

एक बात और भी ध्यान देने की है इस 'खोज' में इंगलैंड, स्पेन और पोर्तुगाल ने बड़ा हिस्सा लिया। इन राज्यों में राष्ट्रीय भावना का विकास हो रहा था। राष्ट्रीय चेतना जनता में प्रबल उत्साह, संचालनशक्ति और आत्मविश्वास का संचार करती है, और राष्ट्र की यह नयी शक्ति और उत्साह का उपयोग कर राजाओं ने दुस्साहसी यात्राओं को प्रोत्साहित किया। नाविकों की सफलता राष्ट्रीय गौरव की चीज समझी गई, और ये साहसी नाविक जनता के प्रेम और राष्ट्र के गौरव के भागी समझे जाते थे।

(ग) राष्ट्रीय भावना का प्रभाव

पर बिना विज्ञान और भौगोलिक ज्ञान के, जो कि उस समय के नाविकों को उपलब्ध था, ये दुस्साहसी यात्राएँ और खोज असम्भव ही थीं। मैरिनर्स कम्पास् (Mariner's Compass) का ज्ञान योरोपियनों को अरबों से, जो कि इसके लिए चीन के ऋणी थे, मिल चुका था। इस यन्त्र के द्वारा अनजान विस्तृत समुद्र के वक्षस्थल पर भी उन्हें दिशा का ज्ञान रहता था। किसी भी जगह का अक्षांश (Latitude) का पता लगाना उन्हें इस समय ज्ञात था। पृथ्वी गोलाकार है इसका पता था, इसी आधार पर तो पश्चिम चलकर भारत या सुदूरपूर्व पहुँचना सम्भव समझा जाता था। देशों और समुद्र के मापचित्र मिलते थे, और समुद्री-यात्रा की दिशाओं का ज्ञान था। इन्हीं सुविधाओं के कारण नाविकों को इन खतरनाक यात्राओं पर जाने का साहस हुआ। यात्रा खतरे से खाली कभी नहीं थी। उस समय की छोटी नावों में अनजान असीम समुद्र पर

(घ) विज्ञान और भौगोलिक ज्ञान की प्रगति

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महीनों भ्रमण करते रहना आसान नहीं था। खाने-पीने की सुविधा नहीं थी, और जलवायु, आँधी-तूफान का भय बराबर रहता था। सैकड़ों नाविकों की मृत्यु हुई। इसीलिए तो अपराधी और समाज के निम्न-वर्ग के ही लोग अधिकतर इन यात्राओं पर जाने के लिए तैयार रहते थे।

पुर्तगाल (Portugal) का राजकुमार हेनरी उत्तरी-पश्चिमी अफ्रिका का विधिवत् अन्वेषण करने की तैयारी में लग गया, और अपने नाविक-साथियों की मदद से केनरी प्रायद्वीप का पता लगा लिया। पन्द्रहवीं सदी के मध्य में पुर्तगाल के जहाजियों ने वर्डे का अन्तरीप (Cape Verde) और वर्डे प्रायद्वीपों का पता लगा लिया। हेनरी-स्थापित नाविक-शिक्षालय (Naval Training Centre) में शिक्षित जहाजियों ने भौगोलिक खोज में पथ-प्रदर्शक का काम किया। हेनरी ने इन जहाजियों को पादरी प्रेस्टर जॉन का साम्राज्य का पता लगाने के लिए उत्साहित किया। एक कथा प्रचलित थी कि जॉन प्रेस्टर ने सदियों पूर्व एक ईसाई साम्राज्य की स्थापना पूर्व में किया था। प्रेस्टर जॉन वास्तव में काल्पनिक व्यक्ति था, पर उस समय इसके साम्राज्य का पता लगाने के लिए पुर्तगीज नाविकों ने कई प्रयास किया। इसी तथाकथित साम्राज्य का पता लगाने के प्रयास में ही १४८६ ई० वार्थोलिमिउडिमाज वार्थोलिमिउ-डिमाज और वास्कोडिगामा अफ्रिका का दक्षिणतम स्थान पहुँच गया, जिसे **Cape of Good Hope** कहा गया। पूर्व पहुँचने का इस लम्बे रास्ते का पता लगाने का यह प्रथम सफल प्रयास था। इसी रास्ते को अपना कर १४९८ ई० में वास्कोडिगामा भारत के पश्चिम तट पर कालीकट पहुँच गया और मसालों से भरे नाव लेकर लिस्बन वापस आया। पूर्व से व्यापार करने का यह नया रास्ता पुर्तगीजों ने पता लगाया और पुर्तगाल को इससे बड़ी आर्थिक उन्नति हुई, और साम्राज्य विस्तार हुआ। जब तुर्कों का अधिकार मिश्र पर भी हो गया (१५१७ ई०) तब स्थल मार्ग से भी पूर्व से व्यापार पर आघात पहुँचा,

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और योरप के लिए अब उत्तमाशा अन्तरीप होकर ही पूर्व से व्यापार करने का एकमात्र सुगम रास्ता था। स्वेज-नहर खुलने के पहले तक इसी मार्ग से पूर्व-पश्चिम व्यापार होता रहा।

इधर जब पुर्तगीज पूरब चल कर नयी राह खोज रहे थे, स्पेन ने पश्चिमी रास्तों की खोज की। कोलम्बस् इटैली के एक नगर जेनोआ का

कोलम्बस्

नागरिक था। उसका यह विश्वास था कि आतलांतिक सागर से होकर भारत और सुदूरपूर्व पहुँचा जा सकता है। जेनोआ और पुर्तगाल ने उसे मदद देना अस्वीकार कर दिया। स्पेन का राजा फ्रेडरिक् ने कोलम्बस् को मदद देना स्वीकार कर लिया और कोलम्बस् अपनी महान् यात्रा पर चन्द दुस्साहसी साथियों के साथ अनजाने और विस्तृत अतलांतिक महासागर के वक्षस्थल पर छोटी नावों को खेने लगा। रास्ते में बड़ी-बड़ी आफतें आयीं, खाने-पीने का सामान कमने लगा, कई साथी रास्ते में ही रह गये, पर वीर कोलम्बस् अपने विश्वास पर दृढ़ रहा, और अन्त में उसे जमीन दिखाई दी। वह बहाम प्रायद्वीप पहुँच गया था, पर उसने इसे एक पूर्वी द्वीप (East Indies) समझा। यहाँ के निवासियों को लाल-भारतीय कहा (Red Indians)। असल में कोलम्बस् ने नयी दुनियां (New World) खोज लिया था (१४९२ ई०) पर उसे इसका पता नहीं था। उसे विश्वास था कि उसने चीन जाने का प्रत्यक्ष मार्ग ढूंढ़ निकाला है। कोलम्बस् की यात्रा के बाद भौगो-

इंगलैण्ड

लिक खोज के आन्दोलन में और भी अधिक सरगर्मी आई। १४९७ में जौन कैबोट् ने इंगलैंड के राजा हेनरी सप्तम के लिए न्यूफौन्डलैण्ड में लेब्रोडर पर इंगलैण्ड का झंडा गाड़ दिया। दक्षिण

केब्रल्

अन्तरीप होकर भारत पहुँचने के बदले तूफान के कारण केब्रल् दक्षिण अमेरिका के तट पर पहुँच गया, और ब्राजिल पर पुर्तगाल का दावा हो गया। १४९९–१५०० में फ्लोरेन्स

अमेरिगो

का नाविक अमेरिगो वेसपच्चि ब्राजिल गया और वापस आने पर नयी दुनिया (New World) नामक पुस्तक

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखी। इसीके नाम पर पश्चिमी गोलार्द्ध महादेशों का नाम अमेरिका पड़ा, जबकि वास्तव में इस श्रेय का अधिकारी कोलम्बस् था।

१५१३ ई० में यह पता लग गया कि पनामा भू-डमरूमध्य (Isthmus of Panama) के बाद एक और समुद्र हैं, पर तब भी यह विश्वास बहुत दिनों तक बना रहा कि 'नयी दुनियां' से भारत का रास्ता चन्द दिनों का है और पृथ्वी काफी छोटी है। इसी मिथ्याविश्वास के बल पर ही साहसी नाविकों में जलमार्ग से पृथ्वी की परिक्रमा करने की आकांक्षा बलवती रही। पुर्तगीज मेगेल्लन १५१९ ई० पृथ्वी की परिक्रमा के लिए पश्चिम की ओर निकल पड़ा। वह दक्षिण अमेरिका के दक्षिणतम कोण पहुँच गया, और इसीके नाम से वह स्थान पुकारा जाता है, और वहाँ से वह प्रशान्त महासागर पहुँच गया। रास्ते में आंधी और तूफान के पश्चात् इस महासागर में उसे शान्ति मिली, इसीलिए तो इस सागर का नाम उसने **Pacific Ocean** रक्खा। वह पश्चिम की ओर चलता ही गया और आस्ट्रेलिया के उत्तर स्थित प्रायद्वीपों से होकर फिलिपीन पहुँचा। अभाग्यवश यहाँ के आदिम निवासियों से झड़प होने के कारण उसकी हत्या हो गई, और पृथ्वी की पूर्ण-परिक्रमा करने की उसकी आशा असफल रही, पर उसके बेड़े के कुछ जहाज इस कार्य को पूरा कर सके, और लिस्बन् (पुर्तगाल की राजधानी) वापस लौट आये। मेगेल्लन की यह यात्रा बड़ी महत्व की है। अब लोगों को पृथ्वी का गोलाकार होने का स्पष्ट प्रमाण मिल गया और पृथ्वी पर अमेरिका की भौगोलिक स्थिति का ठीक पता चल गया। प्रशान्त महासागर और उसके देशों की खोज का विश्व-इतिहास पर गहरा प्रभाव पड़ा।

मेगेल्लन

पर भूपरिक्रमा करने का प्रयास मेगेल्लन के अलावे अन्य साहसी नाविकों ने भी किया। एलिजाबेथ-युग में इंगलैंड के साहसी जहाजियों को साम्राज्ञी का आशीर्वाद प्राप्त था, और इनलोगों ने दक्षिणी अमेरिका के व्यापार पर स्पेन का एकाधिकार का विरोध किया और इनके माल से लदे नावों को लूटने लगे। इन दुस्साहसी कार्यों

ड्रेक

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अलावे ड्रेक ने १५७७–८० ई० में पृथ्वी की परिक्रमा कर लिया।

अन्वेषण

उत्तरी अमेरिका में इंगलैंड और फ्रांस के नाविकों ने बड़ी दिलचस्पी दिखाई। कार्टिअर, डेविस और हड्सन के नाम उल्लेखनीय हैं।

सोलहवीं शताब्दि के अन्त तक भौगोलिक-खोज के आन्दोलन समाप्तप्राय हो गये। संसार के प्रमुख भौगोलिक लक्षणों का पता लग चुका था, यद्यपि आस्ट्रेलिया महादेश अब भी अज्ञात था। इन भौगोलिक खोजों के कई महत्वपूर्ण परिणाम हुये। व्यापार में बहुत उन्नति हुई। योरप के राष्ट्र बहुत धनी हो गये। नये देशों के कच्चे माल या खनिज पदार्थों की लूट में योरोप के राष्ट्रों ने सक्रिय भाग लिया। इन तिजारती देशों में इन नये देशों या नये व्यापार मार्ग पर अधिकार के लिए प्रतिद्वन्द्विता शुरु हुई। फ्रांस, इंगलैण्ड, स्पेन, पुर्तगाल और डचों में इस कारण तनातनी रही, और युद्ध होते रहे। भारत में पुर्तगीज, डच, अंगरेज और फ्रांसीसी व्यापार की कोठियां स्थापित करने लगे। इनकी कम्पनियां स्थापित हुई, और पूर्व के व्यापार पर अधिक से अधिक अधिकार के लिए भीषण प्रतिद्वन्द्विता शुरू हो गई। विश्व के इतिहास पर इन झगड़ों का प्रभाव स्पष्ट है। उपनिवेश स्थापना और समुद्र-पार साम्राज्य का विस्तार भी भौगोलिक खोज के ही परिणाम थे। जिस देश का नाविक, या उससे मदद पाया हुआ नाविक, किसी नये देश की खोज करता था, वहां अपने देश का या अपने स्वामी के देश का झंडा गाड़ देता था, और यह नया देश उस योरोपियन देश का उपनिवेश माना जाता था। स्पेन और पुर्तगाल के बीच उनकी अधिकार-सीमा निश्चित की गई थी। ब्राजिल पुर्तगाल का था, और बाकी दक्षिण और मध्य अमेरिका स्पेन का। इंगलैंड और फ्रांस उत्तरी अमेरिका में अपना उपनिवेश स्थापित कर रहे थे। एलिजाबेथ और जेम्स प्रथम के समय में अंगरेजों ने उत्तर अमेरिका

भौगोलिक खोजों के परिणाम

व्यापार की उन्नति

अंतर्राष्ट्रीय तनातनी और युद्ध

समुद्र-पार साम्राज्यका विस्तार

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Facing Page 106)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में कई उपनिवेश स्थापित किया। इन उपनिवेशों का शोषण करने की नीति को **Mercantile System** कहा जाता है। इस नीति के आधार पर उपनिवेश सिर्फ अपने स्वामि-देश (Mother country) के हित के साधन समझे जाते थे। यहां के कच्चे माल व खनिज पदार्थ को शासक-देश सस्ते मूल्य पर भेजे जाते थे, और शासक-देश के तैयार माल का सहज बाजार उपनिवेश था। व्यापार के नियम शासक-देश के हित के लिए ही बने थे, और अन्य देशों से व्यापार में बड़ी बाधाएँ थीं। इस नीति का परिणाम यह हुआ कि उपनिवेशों का आर्थिक ह्रास होता गया, जान बूझकर यहां उद्योगों को पनपने नहीं दिया जाता था। उनका राजनीतिक विकास रुका रहा। कुछ दिनों के बाद इन उपनिवेशों में इस शोषण नीति के विरुद्ध असन्तोष फैलने लगा, और अमेरिका की आजादी की लड़ाई इसीका परिणाम था। पर शासक-देश इस नीति से बहुत ही समृद्ध हो गये थे और उस समय किसी भी राज्य की शक्ति उसकी आर्थिक स्थिति पर निर्भर करती थी, और इसलिए उपनिवेशों का शोषण प्रत्येक शासक-देश जरूरी समझता था। यही नहीं, गुलामों का व्यापार (Slave Trade) भी बहुत बढ़ा, क्योंकि अमेरिका में सस्ते मजदूरों की आवश्यकता थी, और इस तरह यह जघन्य व्यापार से कई देशों ने खूब लाभ उठाया। व्यापार में अब बहुत धन की जरूरत थी, और अब उपनिवेश या पूर्व से व्यापार करने के लिए राजशासन-प्राप्त कम्पनियां कायम हुईं, जिनमें अमीरों ने बहुत पूंजी लगाई, और इस पूंजी के सूद में व्यापार के लाभ के भागी बने। इस तरह पूंजीवादी व्यवस्था का विकास हुआ। तैयार माल की मांग बढ़ने लगी, बाजार का क्षेत्र बढ़ गया था, इसलिए उद्योगों का भी संगठन नये सिरे से होने लगा। व्यापारी और पूंजीवादियों के उत्कर्ष के द्वारा ही मध्ययुग से निकल कर योरप आधुनिक युग में आ गया। रेनेसां,

व्यवसायी-नीति Mercantile System

गुलामों का व्यापार

पूंजीवादी व्यवस्था और मध्य-वर्ग की उन्नति

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मसुधार आंदोलन और भौगोलिक खोजें—इन सभी आंदोलनों में मध्यम-वर्ग का बड़ा हाथ था। राष्ट्रीय राजा भी इनके साथ था, और अब व्यापार और उद्योग की उन्नति वैयक्तिक व किसी विशेष वर्ग का उत्तर-दायित्व नहीं वरन् वह राष्ट्रीय उत्तरदायित्व थी। राज शासन पर इसका अधिकार था। कुटी-उद्योगों (Cottage Industries) का ह्रास हो गया, और बड़े २ कारखाने पूंजीपतियों के द्वारा स्थापित हुये, और इनमें काम करनेवाले मजदूर या पूंजीपति के कर्मचारी ही रह गये। इस तरह पूंजीवादी प्रथा का विकास होने लगा। बड़े २ बैंकों की स्थापना हुई, जिनसे व्यापार और बड़े २ उद्योगों को आर्थिक मदद दिया गया।

नगरों की उन्नति

व्यापार और उद्योगों के विकास के साथ नगरों की उन्नति होती गई, और नयी सभ्यता के केन्द्र शहर ही थे। प्रत्येक राष्ट्र व्यापार और उद्योग में एक दूसरे से बढ़ा रहना चाहता था, इसलिए आयात और निर्यात पर कई प्रकार के प्रतिबन्ध राष्ट्रीय हित या राष्ट्र के पूंजिपतियों के हित में लगे। राष्ट्रों में इस आर्थिक होड़ का परिणाम था भीषण अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध जैसे सप्तवर्षीय युद्ध (Seven years war)। भौगोलिक खोज का एक महत्त्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि

भूमध्यसागर के महत्त्व की कमी

भूमध्यसागर अब विश्व-व्यापार का केन्द्र न रहा, अब विश्व व्यापार अतलांतिक महासागर के रास्ते होने लगा, और भूमध्यसागर अब एक झील-सा ही रह गया। इटैली के नगरों का ह्रास हो गया, और इंगलैंड, फ्रांस, स्पेन, पुर्तगाल इत्यादि

अतलांतिक तटवर्ती देशों का उत्कर्ष

देशों की उन्नति होने लगी। भौगोलिक खोज के फलस्वरूप योरप के उपनिवेश सारी दुनियां में स्थापित

योरोपियन सस्कृति का प्रसार

हुए और योरोपियन संस्कृति एशिया, अमेरिका और अफ्रिका में फैलने लगी।

रेनेसां का योरप और विश्व के इतिहास पर युगान्तकारी प्रभाव पड़ा। प्राचीन साहित्य का पुनरोद्धार हुआ और संसार के भण्डार में यूनानी-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोमन-साहित्य और कला की अमूल्य निधियों, (जो लुप्त हो चुकी थीं,) को सुरक्षित रख दिया गया और आधुनिक साहित्य, विज्ञान और कला इन अमर कृतियों से बराबर प्रेरणा लेते रहे हैं। इस तरह विश्व-इतिहास की अविच्छिन्नता पुनः स्थापित हुई। रेनेसां ने योरप में सर्वव्यापी बौद्धिक और नैतिक क्रान्ति उत्पन्न कर दिया। मनुष्य और विश्व के प्रति मध्य-कालीन विचारों के स्थान में नये विचार और नये आदर्श की प्रतिष्ठा हुई। इसीलिए किसी ने कहा है कि रेनेसां या नया ज्ञान ने योरप में एक नयी संस्कृति ही फैलायी। मानववाद का सिद्धान्त का परिणाम यह था कि मनुष्य का वास्तविक स्वभाव और महत्त्व का ज्ञान हो गया। पिकी मिर-डाला ने मानव-स्वभाव की शान और मनुष्य की महानता शीर्षक से एक पुस्तक ही लिख डाली। सांसारिक जीवन की सार्थकता का बोध हो गया, और इसलिए संसार में सुख और आनन्द से जीवन बिताने की चेष्टा करना जघन्य नहीं समझा जाने लगा। भौतिकवाद का सिद्धान्त की प्रतिष्ठा हुई। वैज्ञानिक अनुसंधान और आविष्कार, या भौगोलिक खोज का लक्ष्य आध्यात्मिक उन्नति नहीं वरन् भौतिक सुख की तलाश थी। रेनेसां युग में जो वैज्ञानिक प्रगति हुई, भौगोलिक खोजें हुईं, राष्ट्रीय साहित्य का जो विकास हुआ उससे मनुष्यजाति की प्रगति में बहुत उत्साह मिला। विश्वविद्यालयों में लैटिन और ग्रीक के अलावे भिन्न २ राष्ट्रीय भाषा और साहित्य पाठ्य-क्रम के अंग बन गये। पर रेनेसां का प्रधान परिणाम था जिज्ञासा की प्रवृत्ति को उत्तेजित करना और प्रत्येक आदर्श, संस्था और सिद्धान्त को विवेक के तराजू पर तौलने की बलवती इच्छा को उत्पन्न करना। मध्ययुग में मनुष्य का स्वभाव विश्वासी था—सभी चीजों पर विशेष कर काल्पनिक धर्म कथाओं और विवेकहीन कर्मकाण्डों पर विश्वास करना स्वाभाविक चीज मानी जाती थी। पर रेनेसां ने मनुष्य का स्वभाव संदेही बना दिया। अब सभी मान्य आदर्श वा नियम और धर्मकर्म पर संदेह होने लगा। इसी सन्देह और जिज्ञासा की भावना के कारण धर्मसुधार आंदोलन अनिवार्य हो गया।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२

धर्मसुधार आंदोलन

रेनेसां का एक प्रमुख सहयोगी आंदोलन धर्मसुधार आन्दोलन था। चर्च का अधिकार अन्धविश्वास पर टिका था और ज्ञान की नयी ज्योति के सामने यह अन्धकार का पर्दा का उठना स्वाभाविक था। प्राचीन साहित्य और दर्शन के निकट सम्पर्क में आने पर विद्वानों और बुद्धिमानों का ध्यान चर्च के विवेकहीन सिद्धान्तों पर गया। अतीव बलवती जिज्ञासा की प्रवृति ने चर्च पर आघात किया। रेनेसां ने धर्मसुधार आंदोलन को सम्भव बनाया। साधारण ज्ञान और विवेक के आधार पर तत्कालीन चर्च के प्रति विश्वास, पूजा-पाठ, संगठन इत्यादि का विरोध होने लगा।

धर्मसुधार आंदोलन के कारण :

धर्म-सुधार आंदोलन के कई कारण थे। मध्ययुग में चर्च बड़ा ही धनी हो गया था, और चर्च और पोप का प्रभाव बहुत बढ़ गया था। धन और अधिकार के साथ-साथ ही चर्च में कुरीतियाँ फैल गईं। पोप, बिशौप या पादरियों का नैतिक अधःपतन हो गया। चर्च आध्यात्मवाद छोड़ कर भौतिकवाद-संसार के झगड़ों में ही लिप्त था। पोप और बिशौप ऐश पसन्द करते थे। जनसाधारण का कल्याण और धर्मप्रचार का व्रत को भुला दिया गया था। डच विद्वान इरैस्मस् ने अपनी पुस्तकों में चर्च की कुरीतियों की खिल्ली उड़ाई। उसकी पुस्तक 'Praise of Folly' का प्रत्येक भाषा में अनुवाद हुआ। चर्च के इन कुरीतियों का सुधार करने के लिए कई संतों ने प्रयास किया। संत फ्रैंसिस्, संत बेनेडिक्ट ने इस दिशा में पथप्रदर्शक का काम किया था। पर इनके सुधारों को चर्च ने दिल से नहीं अपनाया। चर्च में अनाचार, और चर्च-अधिकारियों के द्वारा स्वतन्त्र या विरोधी

चर्च का अधःपतन और महात्माओं का बलिदान (क)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचारों का दमन के कारण असन्तोष बढ़ रहा था। इंगलैण्ड में जौन विक्लीफ (John Wycliffe) ने रोमन चर्च की कुरीतियों के विरुद्ध विष उगलना शुरू कर दिया। वह कैथोलिक धर्म को पहले की तरह पवित्र बनाना चाहता था, और धर्म में जो नई आदतें और कर्मकाण्ड प्रवेश कर गये थे उनकी उपायदेता में अविश्वास करता था। उसने बाइबिल् के समय के सिद्धान्तों पर चलने का आवाहन किया; और जनसाधारण इस धर्म का सच्चा रूप स्वयं समझें इसलिए उसने बाइबिल का अंगरेजी में प्रथम अनुवाद किया। यह एक महत्वपूर्ण घटना थी। अब जनसाधारण अपने धर्म के सिद्धान्त, इतिहास और कर्मकाण्ड के लिए चर्च के पादरियों पर ही नहीं निर्भर करने लगे। यही तो धर्म-सुधार आंदोलन का आधार था। इसीलिए Wycliffe को धर्म-सुधार का प्रभात-नक्षत्र कहा जाता है (Morning-star of the Reformation)। अप्रगतिशील और स्थिर-स्वार्थवालों ने विकलिफ् का विरोध किया। विक्लिफ अपने सिद्धान्त का प्रचार जनसाधारण में करता था, उसके अनुयायी लोर्लाड (Lollards) कहलाते थे, और दरिद्रों के हित के हिमायती थे। इंगलैण्ड का प्रबल किसान-विद्रोह को उभाड़ने का श्रेय विकलिफ् को दिया गया। विक्लीफ एक खतरनाक व्यक्ति समझा गया, उसे कड़ी से कड़ी सजा मिली, और मरने पर उसकी लाश की भी दुर्गति हुई। पर विक्लिफ का प्रभाव इंगलैण्ड क्या अन्य देशों के धर्मसुधार आन्दोलन पर भी पड़ा। चर्च के अधिकारी डर गये और विक्लीफ के उपदेश धर्मविरुद्ध (Heresy) घोषित किये गये (१४१५)। पर विक्लीफ से ही इंगलैण्ड का धर्म-सुधार आंदोलन का इतिहास का आरम्भ माना जाता है।

विकलिफ १३२४-८४ ई०

विक्लीफ के सिद्धान्तों के प्रभाव से बोहेमिया (जर्मनी) का विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जौन हस् (John Huss) अत्यन्त प्रभावित हुये, और उन्होंने चर्च में सुधार लाने का आंदोलन शुरू किया। उनके कई अनुयायी भी हो गये। पर चर्च का दमनचक्र

जौन हस् (John-Huss)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन पर भी चला, और हस् को जेल में अत्यन्त कष्ट दिया गया और अन्त में जला कर मार डाला गया। उसके अनुयायियों का पंद्रह वर्ष के लगातार दमन के फलस्वरूप अन्त हो गया।

इटैली के संत सावनरोला (१४५२-१४९८) के पवित्र उपदेश और बलिदान की याद बराबर बनी रहेगी। फ्लोरेन्स के इस भिक्षु ने चर्च के अधिकारियों के अधःपतन के विरुद्ध अपनी दृढ़ आवाज़ उठायी, और सदाचार और सद्विचार के सिद्धान्तों का लगन और दृढ़विश्वास से प्रचार किया। वह उस समय की नैतिक कमजोरियाँ, और उच्छृङ्खलता का जनसाधारण पर बढ़ते प्रभाव से दुखित था। वह कला और हल्के-साहित्य का विरोधी था, और रेनेसां युग के उच्छृङ्खल, अनुशासनहीन, धर्महीन आचरणों का अन्त करना चाहता था। ऐसे पवित्र और निःस्वार्थी महात्मा को प्राणदण्ड की सजा मिली। उसका गला घोंट दिया गया। रोम के पोप ने सावनरोला के इस अन्त को उचित करार दिया।

सावनरोला
Savana-
rola

विक्लीफ, हस् और सावनरोला के बलिदान ने तत्कालीन चर्च के विरुद्ध बढ़ते असन्तोष को स्पष्ट कर दिया। हस्, सावनरोला प्रभृति महात्माओं का ध्येय कैथोलिक चर्च के विरुद्ध न थे। वे तो चर्च में सुधार लाकर उसके प्राचीन पवित्र रूप की पुनर्स्थापना चाहते थे, और मध्ययुग में आई कुरीतियों और चरित्रहीनता को हटा कर चर्च और धर्म को फिर पवित्र संदेशों के वाहक और जनता के सच्चे सेवक बनाना चाहते थे। पर चर्च के स्वार्थी और धर्मान्ध अधिकारियों ने इनकी एक न सुनी, और राजशक्ति की मदद ले इस आंदोलन का दमन करने की नीति अपनाई गई। विक्लीफ, हस्, या सावनरोला प्रभृति महापुरुषों की असफल कहानी से यह प्रत्यक्ष है कि राजशक्ति और स्थिर-स्वार्थों का एक मोर्चा था, जिसके विरुद्ध सफलता मुश्किल थी। चर्च का राज्य पर जबरदस्त प्रभाव था।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१४हवीं-१५हवीं सदी में योरप के कई देशों में जैसे इंगलैण्ड, फ्रांस या स्पेन में राष्ट्रीय राज्य (Nation State) की स्थापना हो गई।

चर्च के राजनैतिक अधिकार, और राजाओं से झगड़ा (ख)

राष्ट्रीय राजा अपने राज्य में विदेशीय शक्ति का प्रभाव नहीं बर्दास्त कर सकते थे। रोम का पोप अपना यह अधिकार समझता था कि वह भिन्न-२ देशों के प्रमुख पादरियों की नियुक्ति करे। राजा इसे अपनी सार्वभौम सत्ता की अवहेलना समझता था। चर्च का यह दावा था कि धर्म, चर्च या चर्च के कर्मचारी सम्बन्धी मामलों की सुनवाई चर्च की अदालतों में हो। व्याह, झूठी-गवाही-सम्बन्धी और धर्मपद बेचने के मुकदमें चर्च की अदालत में सुने जाते थे, और चर्च के कर्मचारियों को राजकानून से मुक्त रहने की सुविधा थी। चर्च ने कभी फौजदारी मुकदमों की भी चर्च की अदालतों में ही सुनावाई हो, ऐसा दावा भी किया था। राजा इसलिए चर्च की शक्ति कम करना चाहता था, और पोप का अन्तर्राष्ट्रीय अधिकार को खत्म करना चाहता था। चर्च के विपुल धन पर भी राजा की आँख लगी थी, जब कि राजकाज अत्यन्त जटिल विस्तृत और खर्चीला हो गया था। पोप या चर्च पश्चिम योरप पर अपने विशेष अधिकार, राज्यों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार सम्राट् कौन्स्टन्टाइन के एक कथित दानपत्र, और अन्य प्राचीन प्रमाणपत्रों पर स्थापित करते थे। कान्स्टेन्टाइन के दानपत्र के अनुसार सम्राट् कौन्स्टेन्टाइन कुष्टरोग से अच्छे होने पर उनके लिए पोप के द्वारा ईश्वर की प्रार्थना के कृतज्ञतास्वरूप पश्चिम योरप और इटैली के शासन का अधिकार पोप को दे दिया था, और रोम छोड़ कर पूर्व में नयी राजधानी बनाई थी। अन्य प्रमाण पत्रों से यह सिद्ध होता था कि पोप और चर्च जिन अधिकारों का दावा करते थे। वे उन्हें द्वितीय और तृतीय सदी में ही प्राप्त थे। पर रेनेसां युग की आलोचनात्मक दृष्टिकोण से प्रभावित होकर विद्वानों ने इन प्रमाण-पत्रों की जांच करनी शुरू की, और लाउरेन्शिअस्वल्ला (१४०६-१४५७) ने कान्स्टेन्टाइन के दानपत्र को जाली सिद्ध कर दिया। अन्य

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमाणपत्र भी जाली निकले। इससे चर्च की प्रतिष्ठा को बड़ा धक्का लगा। उनके राजनैतिक अधिकार का आधार ही नष्ट हो गया। राष्ट्रीय राजा चर्च और पोप के अधिकार के विरुद्ध था, और यह धर्मसुधार आंदोलन का एक कारण था।

व्यापारीवर्ग और चर्च (ग)

चर्च सूदखोरी को पाप समझता था। इससे व्यापारियों को बड़ी मुश्किल थी। मुद्राप्रधान अर्थव्यवस्था में कर्ज लेना और देना स्वाभाविक था, पर सूद को अधर्म करार देने के कारण इसाई इस फायदेमन्द पेशा को नहीं अपना सकते थे। इसलिए वे ऐसे धर्म में हेरफेर करना चाहते थे। चर्च विहारों की विपुल सम्पत्ति का हिस्सा उन्हें भी मिल सकता है इस आशा से भी उन्हें राजा को चर्च के विरुद्ध मदद देने में अपना स्वार्थ ही सधा।

जनसाधारण में चर्च के प्रति असन्तोष (घ)

चर्च के प्रति जनसाधारण में भी असन्तोष था। पादरियों का नैतिक अधःपतन के कारण चर्च में उनकी आस्था कम हो रही थी। चर्च कई प्रकार के कर जनसाधारण से वसूल करता था, और Tithe (दशवां हिस्सा) की वसूली काफी कड़ाई से की जाती थी। चर्च के नियमानुकूल निश्चित कर नहीं देना सबसे बड़ा पाप समझा जाता था। चर्च की जागीरों या जमींदारियों में बिशौप या उनके कर्मचारी आतंक मचाते थे। पैसा देकर पाप के दण्ड का क्षमा का प्रमाणपत्र लेना गरीब इसाईयों को धर्म-सौदा ही प्रतीत होता था।

राष्ट्रीय भाषा का विकास और छापा-खाना का महत्व (च)

रेनेसां के प्रभाव से राष्ट्रीय भाषा का विकास हुआ, और राष्ट्रीय भाषाओं में बाइबिल और अन्य प्राचीन प्रामाणिक धार्मिक सूक्तियों का अनुवाद हुआ। अब धर्म विषयों का ज्ञान के लिए लोग पोप या पादरी पर निर्भर नहीं करते थे। छापाखाना की सुविधा के कारण जनसाधारण को राष्ट्रीय भाषा में बाइबिल पढ़ने का अवसर मिला। तब चर्च के तत्कालीन मिथ्याविश्वासों का पोल खुल गया। जर्मनी में रेनेसां का रूप हेब्रू भाषा और साहित्य का पुनरोद्धार बना। मूल भाषा में

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाइबिल का अध्ययन होने लगा । इसका परिणाम था धर्मसुधार आन्दोलन ।

इस समय कई देशों में राष्ट्रीयता की भावना का उदय हुआ। चर्च एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन था और रोम का पोप सभी कैथोलिकों का नेता। इसलिए राष्ट्रीय भावना और राजा का अपने राष्ट्र में पूर्ण सत्ता चर्च के प्रभाव के प्रतिकूल ही थे। इसलिए नये राष्ट्रों के राजाओं ने धर्मसुधार आंदोलन को बढ़ावा दिया कि जिससे रोम के पोप का अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव कम हो गये । इंगलैण्ड में धर्मसुधार आंदोलन को इसी दृष्टिकोण से हेनरी अष्टम या एलिजाबेथ ने प्रोत्साहन दिया ।

राष्ट्रीयता की भावना (छ)

मध्ययुग के उत्तरार्द्ध में चर्च ही विद्या का पोषक था और इसी के संरक्षक में पंडितपंथ (Scholasticism) का अभ्युदय और विकास हुआ था। पर रेनेसां युग की वैज्ञानिक प्रवृत्ति और भौतिकवाद चर्च को असह्य थे और क्योंकि इनसे उसके प्रभाव व प्रतिष्ठा के आधार ही हिल गये। इसलिए चर्च अप्रगतिशील और रूढ़िवादी सिद्धान्तों का आश्रय बन गया, और इसने अपना प्रभाव बौद्धिक जागृति और वैज्ञानिक प्रगति को कुचलने में ही लगाया। गैलेलियो को प्राणदण्ड के भय से अपना वैज्ञानिक ज्ञान को असार मानना पड़ा। पर रेनेसां से उत्पन्न बौद्धिक जागृति और वैज्ञानिक जिज्ञासा की प्रवृति को नगरों के समृद्ध व्यापारी और उद्योगपतियों का सक्रिय सहयोग मिला। इससे रेनेसां युग के वैज्ञानिक और चिन्तकों से चर्च के विरोधी आन्दोलनों को की प्रेरणा मिली। रेनेसां का प्रमुख लक्षण था विचार-स्वतन्त्रता, जो चर्च के स्थिर-स्वार्थों के लिए यदि घातक थी, तो धर्मसुधार आन्दोलन के लिए प्रेरणा ।

(ज) चर्च और बौद्धिक जागृति

धार्मिक आन्दोलन का प्रसार और उसकी सफलता में राजाओं की मदद, जनसाधारण का सहयोग और मध्यमवर्ग की मदद ने काफी योगदान दिया। यह सुधार-आंदोलनों के इतिहास से स्पष्ट हो जाता है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रोटेस्टेन्टिज्म का जन्म और प्रसार—मार्टिन लूथर का जन्म १४८३ में हुआ। यह वित्तेनवर्ग (Wittenvarg) विश्वविद्यालय मर्टिनलूथर में आध्यात्म-दर्शन-शास्त्र का प्रोफेसर था। चर्च के विरुद्ध १४८३— उसकी सबसे बड़ी शिकायत थी **Sale of Indulgences**। ईसाइयों का यह विश्वास था कि महाप्रभु ईसा और उनके पश्चात् अनेक महात्माओं के सत्कर्मों से पुण्य का समृद्ध भण्डार मौजूद था, जिसके आधार पर पोप पापियों को पाप के दंड से मुक्त कर सकते थे। ऐसा विश्वास था कि पापी को पाप के दंड से मुक्त करने का अधिकार ईसा से संत पीटर को मिला, और उनसे रोम के पोप को। पर ईश्वरीय-दंड से मुक्ति तभी मिल सकती थी जब अपराधी अपने पाप को पोप के सामने स्वीकार कर ले, और अपना हार्दिक दुःख और पछतावा प्रकट करे। पर पोपों ने इस मुक्तिदान को एक व्यापार बना लिया था। रुपयों के द्वारा अपराधी विशेष कर जो समृद्ध थे मुक्ति खरीद लेते थे। पोप जुलिअस द्वितीय (१५०३—१३) ने सेन्ट पीटर-गिर्जाघर बनाने के लिए द्रव्य संग्रह करने का यह आसान तरीका चुना और फिर Sale of Indulgences एक साधारण चीज हो गई। पाप की स्वीकृति और हार्दिक पछतावा के बिना ही पाप के दंड से मुक्ति का अधिकार-पत्र मिलने लगा। मार्टिन लूथर ने इसे एकदम धर्मविरुद्ध बतलाया और १५१७ ई० में वित्तेनवर्ग के गिर्जाघर के दरवाजे पर उसने एक नोटिस चिपकाई जिसमें उसने इस सिद्धान्त के विरुद्ध ९७ प्रमाण पेश किया था। लूथर ने कोई नई बात नहीं की पर उसके आकर्षक और प्रतिभावान व्यक्तित्व के प्रभाव से पोप घबड़ा गया। पोप लूई-दशवां ने लूथर को धर्म से बहिष्कृत कर दिया, पर लूथर ने पछतावे के बदले खुला विद्रोह कर दिया। लूथर ने बाइबिल का जर्मन भाषा में अनुवाद किया। जनसाधारण को लूथर के विचारों ने बहुत प्रभावित किया, क्योंकि यह प्रत्येक इसाई का मोक्ष (Salvation) का प्रश्न था। जर्मनी में लूथर के विचारों को सर्वप्रिय होने के कई विशेष कारण भी थे। जर्मनी और इटैली में ऐतिहासिक शत्रुता थी, और

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिए इटैली व रोम के पोप के अधिकार के विरुद्ध असन्तोष था। यहीं जनसाधारण को बाइबिल को मूल भाषा में पढ़ने की सुविधा मिली। पहला छापाखाना यहीं स्थापित हुआ था। जर्मनी के उत्तर-प्रदेशीय राजा 'पवित्र रोमन-सम्राट्' के अधिकार से स्वतन्त्र होना चाहते थे। इसलिए इनमें बहुतों ने लूथर के सिद्धान्तों को मान्यता प्रदान किया। लूथर को शायद वही गति होती जो विक्लीफ या हस् को हुई थी यदि सैक्सोनी का राजा पोप या 'पवित्र रोमन सम्राट्' की आज्ञा पर चलता। सैक्सोनी का राजा ने लूथर को सम्राट् चार्ल्स पंचम के द्वारा बुलाई वर्मस् की सभा (Council at Worms) में जाने से रोक लिया। वर्मस् की सभा का यही फैसला हुआ कि लूथर एक विद्रोही है (Outlaw), राज-न्याय की रक्षा से निष्काशित। पर लूथर को अब राजशक्ति का सहारा मिल गया था, और वह अब एक नया चर्च ही संगठित करने में लग गया। १५२६ में सम्राट् ने एक बड़ी सभा बुलाई जिसमें वर्मस् का फैसला दुहराया गया, पर कुछ राजाओं ने इस फैसले का विरोध (Protest) किया, तभी से वे विरोधी Protestant कहलाने लगे। लूथर ने १५३० ई० में एक नया पंथ की रूपरेखा तैयार किया; सम्राट् ने लूथर के पंथ को (Creed) मान लिया। लूथर का प्रोटेस्टेन्ट चर्च राज-चर्च बन गया। इस प्रकार जर्मनी में दो धर्म हो गया, कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्ट। जर्मनी में धर्मयुद्ध का यही आरम्भ था। १५५५ ई० में औग्स्वर्ग की सन्धि के अनुसार यह फैसला हुआ कि जो धर्म राजा का होगा वही धर्म प्रजा को मानना पड़ेगा। लूथर के सैक्सोनी-चर्च का नेता राजा था, और पादरी राजकर्मचारी। चर्च पर राजा का प्रभाव स्थापित हो गया। यही सिद्धान्त इंगलैंड में भी लागू हुआ। इस तरह Sale of Indulgence के विरुद्ध आवाज उठाकर लूथर हठात् एक नया धर्म और नये चर्च का संस्थापक बन गया। पहले तो उसने ऐसा कभी नहीं सोचा था। पर राज-सहायता की प्राप्ति के लिए लूथर ने गरीबों के प्रति सहानुभूति का पहला सिद्धान्त भी छोड़ दिया।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लूथर ने पहले कहा था ईश्वर की नजर में अमीर-गरीब एक हैं। इससे शोषित किसानों को विद्रोह करने में प्रोत्साहन मिला था। पर राजाओं का सहयोग मिलते रहे इस विचार से लूथर नेकिसान विद्रोहों की निन्दा की और इन किसानों को कुचलना राजा का धर्म कहा।

ज्वींगली

लूथर के समकालीन ही ज्वींगली (Zwengli, 1484—1531) था। इसने रोम के पोप से स्वतन्त्र, चर्च की स्थापना ज्यूरीक (Zeurich) में की। यह कैथिलोक धर्म में मूर्तिपूजा का विरोधी था, और कैथोलिक कर्मकांड में अविश्वास करता था। यह धर्मशास्त्र के अनुसार ही चलना धर्म समझता था, और व्यक्तिवाद का समर्थक था। स्वीट्जरलैंड में ज्वींगली के सिद्धान्त पर आधारित चर्चों की स्थापना हुई। पर कुछ दिन बाद ये सब चर्च प्रोटेस्टेन्ट चर्चों में समा गये।

कैलविन

पर फ्रांस-निवासी कैलविन (Calvin 1509—1564) का प्रभाव और पंथ अधिक टिकाऊ रहा। उसने जिनिवा (Geneva) में अपना धर्म का प्रचार किया। कैलविन ने चर्च के सभी कर्मकांडों की निन्दा की और मनुष्य मात्र की सेवा ही धर्म का प्रमुख अंग बताया। इसने संसार के सभी मनोरंजन और राग-रागों को धर्म विरुद्ध बताया, और अपने अनुयायियों को अनवरत सेवा और प्रार्थना में समय बिताने को कहा। इसके चर्च में कोई बड़ा या छोटा नहीं था, न कोई बिशोप या पोप था। प्रजातान्त्रिक आधार पर ही उसने चर्च का संगठन किया। उसके अनुयायियों को सादा जीवन, नैतिक आचरण, किसी प्रकार के तड़क-भड़क से दूर रहने का व्रत लेना पड़ता था। कला, ललित-साहित्य इनके लिए त्याज्य थे। प्युरिटन मूर्ति-पूजा अधर्म समझते थे। प्यूरिटन चर्चों से मूर्तियां और सुन्दर चित्र निकाल कर फेंक दिये गये। अपने धर्म को फैलाने के लिये कैलविन ने एक शिक्षालय खोला जिसमें इस धर्म की शिक्षा दी जाती थी, और इसके प्रसार के लिये उत्साह का संचार होता था। यहां से शिक्षा प्राप्त कर उत्साही धर्म-प्रचारकों ने कैलविन पन्थ का प्रचार समूचे फ्रांस, स्काटलैंड हालैण्ड और बेल्जियम,

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वीट्जरलैंड, पोलैंड और हंगरी और इंगलैंड में किया। जर्मनी, नौर्वे, स्वीडेन, डेनमार्क लूथर के चलाये धर्म के अनुयायी रहे। कैलविन और ज्वींगली के धर्मविचार लूथर से अधिक उग्र थे, और रोमन चर्च और कैथोलिक धर्म के प्रति इनका विरोध और भी तीव्र था। कैलविन अन्य धर्मों का कट्टर विरोधी था, और इसने धर्मविरोधियों को जलाना उचित बताया। इसलिए इनके अनुयायियों को प्यूरिटन कहा जाने लगा क्योंकि ये अपने धर्म और आचरण में कट्टर थे, और समाज के राग-रंग से बेहद परहेज रखते थे।

इंगलैंड में धर्मसुधार

इंगलैण्ड में राजा की शक्ति दृढ़ थी और धनी व्यापारी और पूँजीपति वर्ग इसकी मदद कर रहे थे। ट्यूडर वंश के प्रतापी राजाओं को अपनी प्रजा पर और अपने राष्ट्र में स्थित चर्च पर रोम का अधिकार या प्रभाव नापसन्द था। इनके पहले ही हेनरी द्वितीय के समय से ही चर्च के गैरमजहबी विशेषाधिकार के विरुद्ध पग उठाये गये थे। इरैसमस्, टामस् मोरे प्रभृति विद्वानों ने भी चर्च की कुरीतियों को मिटाने पर जोर दिया था, यद्यपि लूथर के धर्म और चर्च के ये विरोधी थे। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने लूथर के सिद्धान्त पर 'जर्मनी' नामक क्लब में वादविवाद करने लगे थे। इसी क्लब के सदस्य थे टाइन्डे (Tyndale) जिन्होंने इंगलैण्ड को अंगरेजी में पहली बाइबिल दिया, और क्रैन्मर जिन्होंने पहली प्रार्थना-पुस्तक (Prayer Book) दिया, और लैटिमर जो धर्मसुधार आंदोलन के प्राण थे। इसलिए यहाँ धर्मसुधार आन्दोलन के लिए उचित पृष्ठभूमि तैयार थी। योरप में जर्मनी, स्वीट्जरलैण्ड, और फ्रांस के सुधारवादी आंदोलनों का भी इंगलैण्ड पर प्रभाव पड़ रहा था। ऐसे समय में जब पोप ने इंगलैण्ड के राजा हेनरी अष्टम को अपनी रानी कैथराइन को तलाक देने की धार्मिक मन्जूरी नहीं दिया, तब हेनरी को रोम का प्रभाव मिटाने का एक बहाना मिल गया। राष्ट्रीय भावना अराष्ट्रीय (विदेशी) पोप के अधिकार के औचित्य के विरुद्ध हो गयी। हेनरी और

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यापारीवर्ग की आँखें चर्च के धनी मठों पर भी गड़ी थी। अतः हेनरी ने पोप के अधिकार को अमान्य करार दिया, चर्च के मठों के धन को जब्त कर लिया और उसे अपने पिट्ठुओं में बाँटकर अपनी शक्ति मजबूत कर लिया। इंगलैण्ड का चर्च का रोम या पोप से सम्बन्ध विच्छेद हो गया, और चर्च को हेनरी को ही अपना प्रभु (Sovereign) मानना पड़ा (Act of Supremacy)। इंगलैण्ड का चर्च अब वस्तुतः राज-चर्च हो गया। हेनरी ने धर्म के सिद्धान्तों में भी हेर-फेर करने की कोशिश की। उसके पुत्र एडवर्ड षष्ठ के समय में इंगलैण्ड का धर्म प्रोटेस्टेन्ट धर्म हो गया। सभी पादरियों को नये सिद्धान्त और प्रार्थना की पुस्तक को मानने के लिये वाध्य किया गया। जो नहीं मानते थे उन्हें दण्ड मिलता था। एडवर्ड की बहन रानी मेरी (१५५३-५८) के समय में कैथोलिक धर्म और चर्च की पुनर्स्थापना की चेष्टा की गई, पर अन्त में एलिजाबेथ के समय में (१५५८-१६०३) राजचर्च की पूर्ण स्थापना हो गई—कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्ट सिद्धान्तों का समन्वय किया गया। इस चर्च को Anglican church कहा जाता है। इंगलैण्ड का यह चर्च राज से स्वीकृत और प्रतिष्ठित था, और अन्य प्रोटेस्ट्रेन्ट चर्चों से काफी भिन्न। इसी कारण कट्टर कैथोलिक और प्रोट्रेस्टेन्ट इस चर्च के विरुद्ध ही रहे और धार्मिक झगड़े चलते रहे। मेरी के समय में प्रोटेस्टेन्टों का दमन हुआ, एलिजाबेथ के समय में कैथोलिकों का, और जेम्स् और चार्ल्स के समय में प्यूरीटनों का दमन हुआ।

धर्मसुधार आन्दोलन के परिणाम

इस तरह इंगलैण्ड, फ्रांस, हौलैन्ड, स्वीट्जरलैण्ड, जर्मनी प्रभृति मुख्य योरोपियन देशों में रोमन चर्च के विरुद्ध स्वतन्त्र राष्ट्रीय चर्च स्थापित हो गये। धर्मसुधार आन्दोलन के परिणाम महत्वपूर्ण हैं। अब रोमन चर्च या रोम के पोप का अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव कई देशों से उठ ही गया, इस तरह मध्ययुग की एक प्रमुख संस्था को गहरा धक्का लगा। धर्मसुधार आंदोलन

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मा० चि० २

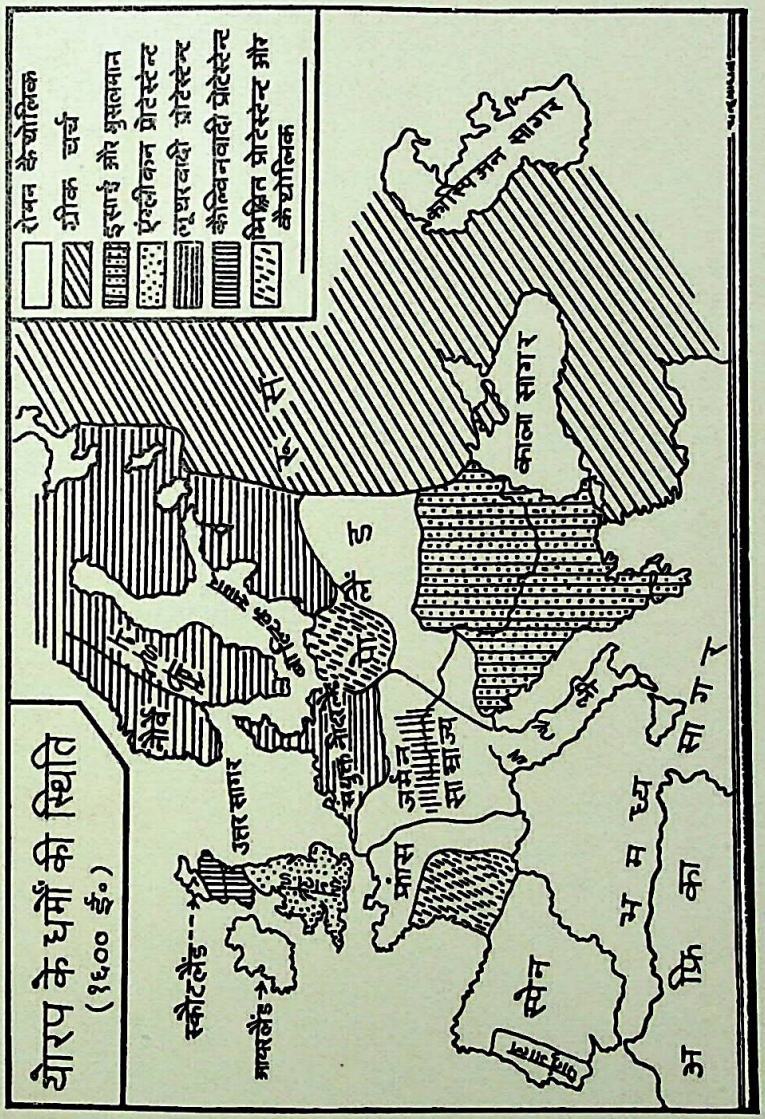

(Facing Page 120)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को राष्ट्रीय-भावना से मदद मिली थी, और धर्मसुधार आन्दोलन से राष्ट्रीय भावना को प्रगति भी मिली। राष्ट्र का अपना चर्च था जिसपर किसी विदेशी का अधिकार नहीं था। यह राष्ट्रीय भावना की सार्थकता का प्रमाण समझा गया। अन्तर्राष्ट्रीय धर्मसुधार विरोधी शक्तियां जब इन सुधार आन्दोलनों को दबाने की चेष्टा करने लगीं तब राष्ट्रीय भावना और देशभक्ति का जोर बढ़ने लगा। इस आन्दोलन को राजशक्ति से बहुत मदद मिली थी, और राजा की शक्ति बढ़ी भी। राजा का अधिकार चर्च पर भी हो गया, और इस सिद्धान्त से कि जो राजा का धर्म वही प्रजा का धर्म होगा, राजा का महत्व बहुत बढ़ गया। धर्मसुधार-विरोधी आन्दोलन का सामना करने के लिए भी धर्मसुधारकों को अपने राष्ट्र के राजा पर ही निर्भर करना पड़ा। रोम के पोप के अधिकार का नाश के साथ-२ राजा का अधिकार स्थापित हो गया, और चर्च के धनी विहारों के धन से राजकोष की वृद्धि हुई। राजा की सार्वभौमसत्ता राष्ट्र के जीवन के प्रत्येक अंग पर स्थापित हो गयी।

राष्ट्रीय-भावना की प्रगति

राजा की शक्ति की उन्नति

सुधार-विरोधी आन्दोलन :

पर धर्मसुधार आन्दोलन का एक प्रधान परिणाम था, धर्मसुधार विरोधी आन्दोलन (Counter-Reformation-Movement) का विकास और विस्तार। चर्च में आई कुरीतियों के विरुद्ध लूथर ऐसे विद्रोहियों ने ही सिर्फ आन्दोलन नहीं किया बल्कि चर्च के अन्दर ही कुछ भले आदमियों ने सुधार की आवश्यकता पर ध्यान दिलाने का प्रयत्न किया। इनका चर्च में अन्दर से ही सुधार लाना लक्ष्य था। विद्वान इरैसमस् (Erasmus 1467–1530) इस आन्दोलन का रहनुमा था। जब धर्मसुधार आन्दोलन कैथोलिक धर्म और पोप के विरुद्ध योरप में फैलने लगा, तब कैथोलिक चर्च और उसके हिमायतियों ने इसके विरुद्ध कोई ठोस कदम उठाना आवश्यक समझा। धर्मसुधार विरोधी-आन्दोलन

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का संगठन करने का श्रेय स्पेन के कुलीन वंशोत्पन्न इग्नेशिअस् लायोला (१४९२–१५६०) को है। उसने १५५४ ई० में Society of Jesus स्थापित किया, जिसके सदस्य निःस्वार्थ भाव पर दृढ़विश्वास के साथ कैथोलिक धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए देश-२ घूमते थे।

जेयूस्टों का संगठन

पोप की आज्ञा का पालन करना इनका धर्म था। ये विद्वान जेस्विट् (ईसा के सेवक) राजाओं के सलाहकार, स्कूल और कालिजों के शिक्षक, और निःस्वार्थी प्रचारक बन कर धर्म-सुधार आन्दोलन के विरुद्ध कैथोलिक धर्म की महत्ता और उपादेयता का प्रचार करने लगे। यह संघ (Society of Jesus) एक अन्तर्राष्ट्रीय संघ था क्योंकि इसके सदस्य जिस देश में हों पोप के सिवा किसी का आधिपत्य नहीं मानते थे। इन्होंने शिक्षा और जनकल्याण के कार्यों को अपनाया।

पर इस संघ के अलावे चर्च में अन्दरूनी सुधार पर भी अधिकारियों ने विचार किया। इसलिए ट्रेन्ट् की सभा (Council of Trent) बैठी (१५४५), और यह सभा १५६३ में भंग हुई। अत्याधिक बहस-मुहाविसे के बाद अन्त में अप्रगतिशील विचारों की ही विजय हुई, प्रोटेस्टेन्ट धर्म से किसी भी प्रकार का समझौता करना अस्वीकार कर दिया गया, और चर्च के श्रेणीवद्ध संगठन (hierarchy) को उचित निश्चित किया गया। पोप को ईश्वर का प्रतिनिधि माना गया, और उसका अधिकार इस सभा से सीमित नहीं था। अतः ट्रेन्ट की सभा ने कोई प्रगतिशील कदम नहीं उठाया, बल्कि कई पग पीछे ही रक्खा। अप्रगतिशील और बेकार विश्वासों और कर्मकाण्डों को नियमवद्ध कर उन्हें और भी अधिक दृढ़ करने की कोशिश की गई।

ट्रेन्ट की सभा १५४५–६३

अब इस सभा के फैसलों से मजबूत होकर और उत्साही जेस्विटों की सहायता का आश्वासन पाकर पोप ने धर्मसुधार आन्दोलनों के प्रति कड़ा और प्रत्यक्ष विरोध का रुख अख्तियार कर लिया। चर्च ने प्रत्येक देश के कैथोलिकों को प्रोटेस्टेन्ट धर्म और चर्च की अवहेलना करने की आज्ञा दी, राजाज्ञा का भी उल्लंघन करना कैथोलिकों का धर्म हो गया। जिस देश

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का राजा कैथोलिक धर्म का अनुयायी था वह अपने प्रोटेस्टेन्ट प्रजा पर धर्म के नाम पर दमनचक्र चलाना अपना कर्त्तव्य समझता था। प्रोटेस्टेन्ट और कैथोलिक राज्य एक दूसरे के स्वाभाविक दुश्मन बन गये। इस तरह योरप के कई राज्यों में गृहयुद्ध घिर गया, और अन्तर्राष्ट्रीय (Inter-State) लड़ाइयां भी शुरू हो गईं। १६—१७ हवीं सदी एक दृष्टि से धर्मयुद्ध का युग है—धर्म के नाम पर कितने निरपराधों की जान ली गई। प्रोटेस्टेन्ट भी अपने धर्म के प्रति कम कट्टर नहीं थे, और कैथोलिक धर्म के प्रति असहिष्णु थे। इस तरह धार्मिक असहिष्णुता के भीषण परिणाम आँखों के सामने आए। धर्मसुधार आंदोलन का प्रत्यक्ष परिणाम स्वतन्त्रता का प्रसार नहीं, वरन् कट्टरता की वृद्धि थी।

अन्तर्राजीय धार्मिक युद्ध और गृहयुद्ध

स्पेन का राजा फिलिप द्वितीय धर्मसुधार-विरोधी आंदोलन का सबसे बड़ा पोषक था, और प्रोटेस्टेन्ट इंगलैण्ड और डच के विरुद्ध इसकी नीति बहुत अंशों तक धार्मिक विचार से प्रभावित थी। नीदरलैण्ड (हौलैण्ड और बेल्जियम) फिलिप के अधिकार में थे। यहाँ के सात उत्तरी प्रांत कैलविनपंथ के माननेवाले प्रोटेस्टेन्ट थे। फिलिप समूचे नीदरलैण्ड पर अपना पूर्ण अधिकार स्थापित करना चाहता था। उत्तरी प्रान्त के डच लोग इसे अपना धर्म पर आक्रमण समझते थे, और उन्होंने स्पेन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया, जिसने स्वतन्त्रता-संग्राम का रूप ले लिया। स्पेन का सेनापति अल्वा का ड्यूक ने प्रोटेस्टेन्टों पर अमानुषिक अत्याचार किया और Holy Inquisition की मदद ले कितने निरपराधों की जान ली गई। यह युद्ध बहुत दिनों तक चला, फिलिप ने पूरा दमनचक्र चलाया, पर हौलैण्डवासी डटे रहे और प्रोटेस्टेन्ट इंगलैण्ड की मदद से इन्हें अन्तिम विजय प्राप्त हुई। सात उत्तरी प्रान्त का, जिनमें हौलैण्ड एक था, एक संघ स्थापित हुआ (१५७६), और यह घोषणा की गई कि किसी भी शासित जाति का यह जन्मसिद्ध अधिकार है कि

नीदरलैण्ड और धर्म सुधार-विरोधी आन्दोलन

हौलैण्ड की स्वतन्त्रता

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत्याचारी और निरंकुश शासन को उलट कर नया शासन स्थापित करे। यह घोषणा राज्यक्रान्ति के इतिहास में बड़ा महत्व रखती है। फ्रांस की राज्य क्रान्ति (१७८६) का यही आधारभूत-सिद्धान्त था। सुधार-विरोधी आन्दोलन का ही एक परिणाम हुआ डच-प्रजातन्त्र की स्थापना। पर इंगलैंड और हौलैंड का स्पेन से युद्ध चलता रहा, जिसका परिणाम यह हुआ कि स्पेन का साम्राज्य के कुछ भाग इन दोनों को मिल गया।

इंगलैंड और सुधारविरोधी आन्दोलन

इंगलैण्ड हेनरी अष्टम् और एडवर्ड षष्टम् के समय में प्रोटेस्टेन्ट हो गया था, पर मेरी ट्यूडर कैथोलिक थी, कैथोलिक धर्म की पुनर्स्थापना हुई, और प्रोटेस्टेन्टों का दमन हुआ, कितने जिन्दा जला दिये गये। पर प्रोटेस्टेन्ट धर्म का नाश नहीं हुआ। साम्राज्ञी एलिजाबेथ प्रोटेस्ट्रेन्ट धर्म की अनुयायी थी, और कैथोलिक स्पेन और स्कौटलैण्ड की रानी 'मेरी' उसकी प्रतिद्वन्दी थी। इसलिए एलिजाबेथ ने ऐंग्लीकन चर्च की स्थापना की, और कैथोलिकों का दमन किया। कैथोलिक स्कौटलैण्ड से निर्वासित और इंगलैण्ड में बन्दी रानी मेरी के पक्ष का समर्थन करते थे। पोप ने एलिजाबेथ का राजगद्दी पर बैठना अवैध करार दिया। इंगलैण्ड में एलिजाबेथ के विरुद्ध प्रचार होने लगा। रानी मेरी को राजगद्दी पर बैठने के लिए कई षड्यन्त्र रचे गये जिनमें फिलिप द्वितीय और जेस्यूटों का भी हाथ था, ऐसा विश्वास किया जाता था। पर सभी षड्यन्त्रों का भण्डाफोड़ हो गया, कैथोलिकों का दमन तीव्र हो गया, जेस्यूस्टों को इंगलैण्ड छोड़ने की आज्ञा हुई, और अभागिनी 'मेरी' को प्राणदण्ड मिला (१५८७ ई०)। अब फिलिप और सुधारविरोधी आन्दोलन के कर्णधारों के लिए इंगलैण्ड पर प्रत्यक्ष आक्रमण के सिवा कोई दूसरा चारा नहीं था। स्पेन और इंगलैण्ड व्यापार के क्षेत्र में घोर प्रतिद्वन्द्वी थे, और समुद्र-की-रानी बनने की इंगलैंड की आकांक्षा स्पेन के लिए अहितकर थी। एलिजाबेथ का हौलैंड को मदद देना भी फिलिप के लिए असहनीय था। अतः

ऐंग्लीकन चर्च की स्थापना

स्पेनिश आर्मडा

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्थिक और राजनीतिक कारणों से इंगलैण्ड और स्पेन में तनातनी बढ़ रही थी। धार्मिक कारण ने इसमें आग में घी का काम किया। फिलिप को पोप का आशीर्वाद मिला, और उसे इंगलैंड के कैथोलिकों से मदद की आशा थी। स्पेनिस जंगी बेड़ा (Spainish Armada) इंगलैंड के विरुद्ध चल पड़ा। पर रास्ते में तूफान आजाने के कारण इसका बड़ा नुकसान हुआ। उधर इंगलैंड में विदेशी आक्रमण से मुकाबिला करने के लिए अद्भुत राष्ट्रीय चेतना की लहर दौड़ गई, और अपने भेदभाव मिटाकर एक होकर वे फिलिप का सामना करने के लिए तत्पर थे। इंगलैंड के बहादुर जहाजियों ने, जिनमें ड्रेक, हाकिन्स् प्रसिद्ध हैं स्पेनिश आर्मडा को नेस्तनाबूद कर दिया। इंगलैंड की स्वतन्त्रता, चर्च और धर्म की रक्षा हो गई। इंगलैंड में अभूतपूर्व उत्साह और आत्मविश्वास छा गया जिसका परिणाम था कि

राष्ट्रीय एकता

साहित्य के क्षेत्र में अद्भुत प्रगति हुई, राष्ट्रीय भावना दृढ़ हुई, इंगलैंड समुद्र-की-रानी बनने की होड़ की पहली दौड़ जीत गई, और साम्राज्य प्रसार व उपनिवेश स्थापना के द्वारा इसके लिए खुल गये। उत्तर अमेरिका में वर्जिनिया उपनिवेश स्थापित हुआ। सुधार-विरोधी आन्दोलन

साहित्य, व्यापार और समुद्रपार साम्राज्य की उन्नति

का फल इंगलैंड के लिए अन्त में मीठा ही हुआ। पर जेम्स् के समय में प्यूरिटनों का दमन हुआ, और परेशान होकर बहुतों ने उत्तर अमेरिका भागकर वहां नये उपनिवेश स्थापित किया। अतः इंगलैंड के उत्तर-अमेरिका का साम्राज्य और संयुक्तराष्ट्र का जन्म धार्मिक कारणों से हुआ। प्यूरिटन इंगलैंड की लोकसभा में प्रबल थे, और इसलिए इन्होंने अपने धर्मविरोधी राजाओं का विरोध किया। स्टुअर्ट-काल में राजा-पार्लियामेन्ट का झगड़ा धार्मिक कारणों से प्रभावित था, और इन्हीं झगड़ों के फलस्वरूप एक राजा की जान गई, दूसरे को गद्दी छोड़नी पड़ी, और अन्त में इंगलैंड में वैधानिक उत्तरदायी-शासन या पार्लियामेन्ट की सत्ता स्थापित हो गई।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह विश्व की एक महान् घटना है, और सुधार-विरोधी आंदोलन की प्रतिक्रिया का एक परिणाम।

फ्रांस कभी प्रोटेस्टेन्टों और कैथोलिकों के गृह-युद्ध से परेशान था। फ्रांस बहुत पहले से कैथोलिक धर्म का गढ़ था। पर फ्रांस में कैलविन के अनुयायियों की संख्या बढ़ रही थी, इन्हें ह्यूगनों (Huguenots) कहा जाता था। फ्रांस के राज्य-परिवार ही इन दोनों धर्म में बँट गये थे। गृह-युद्ध स्वाभाविक था। कैथेराइन के अधिकार-काल में संत बार्थोलोमिउ (St. Bartholomeu) के स्मरणदिवस पर ह्यूगनों का कत्लेआम हुआ, जिसे सन्त बार्थोलोमिउ की हत्या कह कर याद किया जाता है। जब ह्यूगनों का नेता हेनरी राज्य का उत्तराधिकारी हो गया तो कैथोलिक घबड़ा गये और स्पेन का राजा फिलिप के द्वारा संगठित कैथोलिक संघ में शामिल हो गये। आमर्डा की हार के बाद कैथोलिक संघ कमजोर पड़ गया, और हेनरी की शक्ति दृढ़ हो गई। पर हेनरी गद्दी पर आने के बाद कैथोलिक बन गया (१५९३), और ह्यूगनों के लिए धार्मिक सहिष्णुता की नीति घोषित की (Edict of Nantes)। पर फ्रांस में धार्मिक-युद्ध का अन्त नहीं हुआ और जनता की परेशानी से फायदा उठाकर लूई चौदहवां ने सुदृढ़ निरंकुश शासन स्थापित कर लिया। इसी राजा की नीति ने फ्रांस की राज्य-क्रान्ति की पृष्ठ-भूमि तैयार कर दिया। अतः फ्रांस की राज्य-क्रान्ति भी अप्रत्यक्ष रूप से धर्मसुधार-विरोधी आन्दोलन का परिणाम समझा जा सकता है।

ह्यूगनों का दमन

पर धार्मिक-युद्धों का सबसे बुरा परिणाम जर्मनी पर पड़ा। प्रोटेस्टेन्ट चर्च की बुनियाद जर्मनी में ही पड़ी थी। जर्मनी में प्रोटेस्टेन्टों और कैथोलिकों में गृह-युद्ध छिड़ गया। १५५५ ई० में औगसवर्ग की सन्धि के अनुसार यह तय हुआ की राजा का धर्म प्रजा का धर्म होगा। अब जर्मनी के छोटे बड़े राजा अपने धर्म के अनुसार प्रजा पर बरबस धार्मिक एकता लादने लगे। पर जर्मनी के

जर्मनी की अनैक्यता

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रोटेस्टेन्टों में ही फूट हो गयी थी। लूथर और कैलविन के सिद्धांतों पर चर्चों की स्थापना हुई, और इनमें परस्पर मैत्री का भाव नहीं था। ऐसे ही समय में सुधार-विरोधी आन्दोलन ने आक्रमक नीति अपनाई और जर्मनी में जेस्विटों का प्रचार जोर पकड़ने लगा। कैलविन चर्च ने रक्षा के लिये अपने चर्चों का एक संघ (Evangelican Union) १६०८ में बनाया, और जवाब में कैथोलिकों ने कैथोलिक संघ की स्थापना १६०९ में की। अतः धार्मिक-युद्ध का वातावरण तैयार था। १६१७ ई० में विस्फोट हो गया। बोहेमिया प्रोटेस्टेन्ट था पर बोहेमिया का राजा फर्डिनेन्ड चुना गया, जो कि कट्टर कैथोलिक था। बोहेमियनों ने अपने धर्म की रक्षा के लिए सैनिक विद्रोह कर दिया (१६१८)। जर्मनी में तीससाला-युद्ध (Thirty Years' War) का यह आरम्भ था। फर्डिनेन्ड जर्मनी का सम्राट् बन गया, पर बोहेमिअनों ने फ्रेडेरिक् पेलेटिनेट को अपना राजा चुना। फ्रेडेरिक इंगलैंड का राजा जेम्स प्रथम का दामाद था, और कट्टर कैलविनपंथी था। बोहेमिया का कैथोलिक संघ फर्डिनेन्ड की मदद के लिए तैयार था। अतः बोहेमिया में गृह-युद्ध छिड़ गया, और सम्राट् की सेना बोहेमिया में घुस आई। जर्मनी में प्रोटेस्टेन्ट-धर्म पर खतरा आ गया और यह युद्ध पूरे जर्मनी में फैल गया। इस युद्ध में इंगलैंड, स्वीडेन, डेनमार्क, फ्रांस, स्पेन सबों ने भाग लिया। धार्मिक कारणों की ओट में इनका राजनीतिक स्वार्थ छिपा था। अन्त में १६४८

जर्मनी

में वेस्टफालिया की सन्धि हुई और युद्ध बन्द हो गया। पर जर्मनी अब टुकड़े २ में बँटा था; ३४३ स्वतन्त्र राज्य मान लिये गये। प्रोटेस्टेन्ट धर्म (लूथरवाद और कैलविनवाद) दोनों को मान्यता प्रदान की गई। पर राजा का धर्म को ही प्रजा का मान्य-धर्म होगा यह गलत सिद्धान्त को भी स्वीकार कर लिया गया। बोहेमिया की स्वतन्त्रता खत्म हो गई, पर १९१८ ई० में फिर चेकोस्लोवेकिया राज के नाम पर बोहेमिया स्वतन्त्र हुआ। पर जर्मनी की एकता गृह-युद्ध के

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण एकदम नष्ट हो गई, और १८७१ में ही जर्मन-राष्ट्रीय-एकता स्थापित हुई।

अतः यह स्पष्ट है कि धार्मिक सुधार आंदोलन का एक यह परिणाम हुआ कि योरप और भी अधिक टुकड़ों में बंट गया, अन्तर्राष्ट्रीय अशान्ति और लड़ाई बढ़ गई, और गृह-युद्धों का तांता बंध गया।

सुधार आन्दोलन का प्रत्यक्ष परिणाम था धार्मिक-असहिष्णुता। धर्म-सुधारकों ने वैयक्तिक स्वतन्त्रता का आदर्श को अपने सामने नहीं रक्खा। धर्म की उन्नति के लिए राजा की मदद की प्राप्ति के लिए लूथर प्रभृति नेताओं ने राजा का अधिकार को असीम बताया और व्यक्ति का राजा के विरुद्ध कोई अधिकार नहीं था, यह उनका विचार था। धार्मिक-स्वतन्त्रता का नाम भी नहीं लिया जाता था। पर अप्रत्यक्ष रूप से धर्मसुधार आंदोलन ने 'स्वतन्त्रता' की भावना को प्रगति दिया। रोमन कैथोलिक चर्च के महान् और सर्वमान्य सिद्धांतों को ग़लत बताया गया था। नये पंथों का उदय का साधारण फल यह हुआ कि धार्मिक-समस्याओं का जनता पर अधिकार कम होता गया। यदि आज एक आदर्श गलत कहा गया, तब उसके स्थान पर स्थापित नया आदर्श भी तो गलत हो सकता था। कई विचारों का एक साथ एक समय प्रचार होना धार्मिक सहिष्णुता की भावना को अन्त में जरूर हीं जागृत करता। राजा का धर्म पर अधिकार हो गया था, और राजा को स्वभावतः गैरमजहबी समस्याओं का ही अधिक ध्यान था, इसलिए राजनैतिक परिस्थितियां उसे धार्मिक असहिष्णुता का सिद्धांत को धीरे-२ छोड़ने के लिए अवश्य ही बाध्य करतीं। इंगलैंड में १६८६ में Toleration Act पास हुआ। धार्मिक असहिष्णुता कम होती गई।

३

राष्ट्रीय-भावना की प्रगति और राष्ट्रीय-राज्यों का उत्कर्ष—

रेनेसां-युग में ही योरप के भिन्न-भिन्न जातियों में राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ और इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण, राष्ट्र-राज्यों (Nation

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

State) का उत्कर्ष हुआ, नवीन राजतन्त्र (New Monarchy) इस युग का एक प्रमुख लक्षण है। नवीन-राजतन्त्र का आधारभूत् सिद्धांत यह है कि पूरे राज्य में राजा की सार्वभौम सत्ता (Sovereignty) मान्य हो, और किसी भी विदेशी शक्ति और संघ का अधिकार किसी क्षेत्र में राजा के राष्ट्र-राज्य पर न रहे।

उदय के कारण :

मध्ययुग में इस तरह का राज-संगठन असम्भव था। जागीरदारी व्यवस्था राष्ट्रीय भावना में रुकावट थी। जनसाधारण का दृष्टिकोण अपने जमींदार और उसकी कोठी तक ही सीमित था। पवित्र रोमन साम्राज्य पूरे पश्चिमी योरप की राजनीतिक एकता का प्रतीक था। यह ठीक है कि सम्राट् और साम्राज्य का अधिकार योरप में नाम का ही था, वास्तव में इनकी सत्ता हद से हद जर्मनी तक ही सीमित थी। पर राष्ट्रीय-राज्यों के उदय में और राष्ट्रीय भावना के विकास में यह अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था बाधक थी। रोमन चर्च और पोप के अन्तर्राष्ट्रीय-अधिकार भी राष्ट्रीयता के विरोधी ही थे। पर रेनेसां और धर्म-सुधार आंदोलन ने चर्च के अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव पर आघात किया। अन्धविश्वास और कर्मकांडों की निरर्थकता का प्रचार हुआ। नगरों की उन्नति और व्यापारी वर्ग की समृद्धि ने जागीरदारी व्यवस्था की खामियों को स्पष्ट कर दिया। पवित्र-रोमन-सम्राट् योरप में शान्ति और कानून-परस्ती कायम रखने में असफल सिद्ध हुये। अतः राष्ट्रीयता के विकास में जितनी रुकावटें थीं वे दूर हो रही थीं। उद्योगपति और व्यापारीवर्ग अमन-चैन चाहते थे, इसलिए सामन्तों के पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता के विरुद्ध इन्होंने राजा को अपनी शक्ति को मजबूत करने में सहयोग दिया, क्योंकि राजा पूरे देश पर शान्ति स्थापित करने की आकांक्षा रखता था। धर्म-युद्ध और अन्तर्राष्ट्रीय-युद्धों से भी, जैसे फ्रांस और इंगलैंड में

जागीरदारी प्रथा और सम्राट् की शक्ति का ह्रास

मध्यम-वर्ग का उत्कर्ष

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लम्बी अवधि तक युद्ध, और स्पेन के राजाओं का मूरों से युद्ध से, राष्ट्रीय भावना की प्रगति हुई, और राष्ट्रीय राजतन्त्र मजबूत हुआ। रेनेसां से सिर्फ पुरातन साहित्य का पुनर्जन्म ही नहीं वरन् इससे देशीय भाषाओं और साहित्य के विकास में प्रत्यक्ष प्रेरणा मिली। राष्ट्रीय भाषा और राष्ट्रीय साहित्य के विकास से राष्ट्रीय भावना की शक्ति बढ़ती गई। कई देशों में राष्ट्र-राज्यों का विकास हुआ, और राजा की सार्वभौम सत्ता अपने राष्ट्र पर स्थापित हो गई। पर कई देशों में राजनीतिक एकता तो स्थापित नहीं हो सकी क्योंकि वहां शक्तिशाली राजतन्त्र नहीं था, पर तब भी वहां राष्ट्रीयता की भावना का जन्म हो चुका था। युद्ध में बारूद और बारूद से भरे बन्दूक का व्यवहार से सामन्तों के नाईटों का प्रभाव खत्म हो गया और राजा की शक्ति बढ़ गई। जनसाधारण की संगठित पैदल सेना का प्रभाव बढ़ गया।

राष्ट्रीय भावना की प्रगति

शक्तिशाली राजतन्त्रों की स्थापना

इंगलैंड का राष्ट्रीयराज्य :

इंगलैंड में मध्ययुग में ही शक्तिशाली राजतन्त्र को स्थापना हो गई थी। चर्च और सामन्तों (Barons) ने राजा की बढ़ती शक्ति का विरोध किया था। हेनरी द्वितीय को चर्च के सामने और जौन को सामन्तों के सामने हार माननी पड़ी थी। पर इन पराजयों का प्रभाव अस्थायी था। राजा की शक्ति बढ़ती गई। व्यापारी और उद्योगपतियों का सहयोग राजा के लिए बड़ा हितकर सिद्ध हुआ, और राजशासन में सलाह के लिए नगरों के चुने प्रतिनिधियों को राजसभा में निमन्त्रित किया जाने लगा। फ्रांस और इंगलैंड का शतवर्षीय-युद्ध से भी राजा को फायदा हुआ। यद्यपि इंगलैंड का राजा का अधिकार फ्रांस की भूमि पर से (कैले को छोड़ कर) उठ गया, पर इस लम्बे युद्ध से राष्ट्रीय भावना दृढ़ हुई और राजा इस भावना का प्रतीक था। गुलाबों की लड़ाई (Wars of Roses) के कारण सामन्तों की संख्या और शक्ति कम हो गई और ट्यूडर वंश की स्थापना (१४८५ ई०) से सामन्तों को बड़ा नुकसान हुआ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ट्यूडर राजा राज्य में राजा की निर्विरोध-शक्ति स्थापित करना चाहते थे। इन्होंने जमींदारों को कई प्रकार से तंग किया, और करों से लाद दिया और मध्यमवर्गीय व्यापारियों और उद्योगपतियों को प्रोत्साहन दिया और इनसे इन्हें आर्थिक सहायता भी मिली। इंगलैंड में धर्मसुधार आंदोलन का परिणाम हुआ चर्च पर राजा का सर्वाधिक अधिकार, और विदेशी पोप का प्रभाव का अन्त। सुधार-विरोधी आंदोलन और स्पेन की नीति की प्रतिक्रिया स्वरूप राष्ट्रीय-भावना और भी विकसित हुई और राजशक्ति दृढ़ हुई। इंगलैंड में राष्ट्र राज्य दृढ़ रूप से स्थापित हो गया। भौगोलिक खोज, अंगरेजी साहित्य की अभूतपूर्व प्रगति, और स्पेनिश आर्मडा पर विजय से उत्पन्न अदम्य उत्साह और आत्मविश्वास का परिणाम था कि राष्ट्रीयता अंगरेजों की प्रमुख भावना हो गई।

फ्रांस :

वर्डून का बंटवारा (८४३ ई०) से ही फ्रांस का राज्य का अलग इतिहास आरम्भ होता है। ९८७–१३२८ ई० तक फ्रांस में एक वंश का (कपेशियन वंश) का राज्य निर्विरोध रहा, इससे फ्रांस में राजतन्त्र स्थिर और शक्तिशाली हो गया। क्रूशेडों में फ्रांस के सामन्तों की एक बड़ी संख्या बर्बाद हो गई थी। सामन्तों की शक्ति का ह्रास और राजा की शक्ति और प्रतिष्ठा की उन्नति साथ-साथ हुई। नगरों की उन्नति के साथ-साथ मध्यमवर्ग की शक्ति बढ़ रही थी, और पोप के विरुद्ध राजा ने नगर के प्रतिनिधियों को भी, मध्यमवर्ग को पहले-पहल राष्ट्रीय सभा (National Assembly) में सलाह देने के लिए आमन्त्रित किया (१३०५)। विदेशी पोप का फ्रांसिसी चर्च की आय पर अधिकार के विरुद्ध फ्रेंच जनता की राष्ट्रीय-भावना को राजा ने प्रोत्साहित किया। नाइटों का एक संगठन (Order of the Temple of the Knights) को फिलिप ने भंग कर दिया (१३०७), और इस तरह सामन्तों की संगठित शक्ति कम कर दी गई। यह संघ पोप का समर्थक था। इस संस्था का संचित धन को जब्त करने से राजा की आर्थिक स्थिति बहुत दृढ़ हो गई और

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा की शक्ति पर लोगों का विश्वास बढ़ गया। शतवर्षीय युद्ध (Hundred Years War) का फ्रांस पर गहरा प्रभाव पड़ा।

फ्रांस राष्ट्र का उदय

इंगलैंड का राजा फ्रांस के उत्तरी प्रान्तों पर अपना वंशगत अधिकार समझता था। पर जौन को फ्रांस की भूमि पर इंगलैंड का अधिकार छोड़ देने को वाध्य किया गया था। पर एडवर्ड तृतीय ने पुनः इन प्रान्तों पर दावा किया और फ्रांस का राजा चार्ल्स चतुर्थ के मरने के बाद अपनी मां की ओर से फ्रांस की राजगद्दी पर ही दावा कर दिया। इसका फल हुआ फ्रांस और इंगलैंड में युद्ध जो, करीव सौ वर्ष तक चलता रहा। फ्रांस की सेना क्रेसी के मैदान में (Battle of Crecy 1346), पोआट्र के युद्ध में (Battle of Poitiers, 1856), और अग्निकोर्ट की लड़ाई में (Battle of Agni Court) में वरावर हारती गई। इस लम्बी लड़ाई के कारण फ्रांस के सामन्तों की शक्ति का अत्यन्त ह्रास हो गया। उनकी संख्या कम हो गई, और अव लड़ाई में वख्तरवन्द नाइटों से अधिक तीर-धनुष से लड़नेवाले पैदल सिपाही ही अधिक कारगर सिद्ध हुये। अतः सामन्तों की सैनिक शक्ति का आधार ही नष्ट हो गया। बारूद से भरे वन्दूकों का व्यवहार होने लगा, और इस अस्त्र से राजा की शक्ति बढ़ गई। इंगलैंड से बराबर हार जाने के कारण फ्रांस हतोत्साह हो रहा था, इसी समय जौन आफ़ आर्क नामक एक किसान तरुणी ने फ्रांसीसियों में राष्ट्रीय-भावना और उत्साह का संचार किया। अपने को उसने दैवी संदेश का वाहक बताया और उसकी वाणी और व्यक्तित्व में इतना प्रभाव था कि फ्रांस की जनता और सेना ने दुगुने उत्साह से अंगरेजों का सामना किया और ओरलिन्स् की लड़ाई में (१४२९) में उन्हें मुंह की खानी पड़ी। जौन आफ़ आर्क अन्त में अंगरेजों के हाथ में पड़ गई, और डायन बता कर उसे जला दिया गया। पर उसने फ्रांस की अतीव सेवा की और यहाँ राष्ट्रीय-भावना जागृत किया। धीरे-२ इंगलैण्ड को फ्रांस की भूमि से हटना पड़ा। शतवर्षीय युद्ध का एक परिणाम यह था कि फ्रांस एक सुदृढ़ राज्य और सबल राष्ट्र हो

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

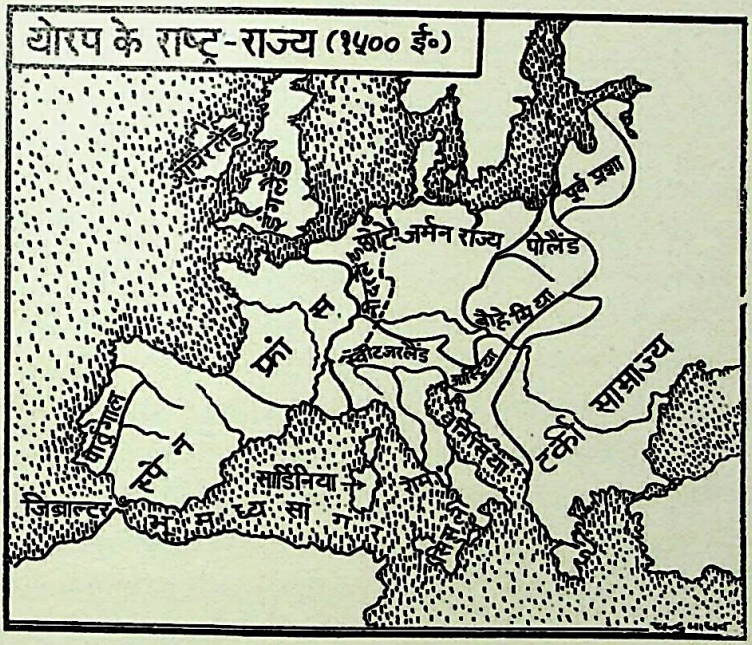

(Facing Page 132)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया। राजा की सार्वभौम शक्ति अब प्रायः स्थापित थी, और सामन्तों का प्रभाव बहुत कम रह गया था। लूई चौदहवां के युग में राजा की प्रतिष्ठा और सार्वभौम सत्ता सर्वमान्य और सर्वाधिक थी। राजा की निरंकुश शक्ति, सामन्तों का राजशासन पर प्रभाव का अन्त, मध्यमवर्ग की आर्थिक और राजनैतिक उन्नति, विद्या की प्रगति इत्यादि ने फ्रांस की राज्यक्रान्ति की पृष्ठभूमि तैयार कर दिया था।

स्पेन :

स्पेन भी इस समय एक शक्तिशाली राज्यतन्त्र और राष्ट्र बन गया था। मूरों (Moors) के विरुद्ध लड़ने में राजपरिवार ने नेतृत्व किया था, और स्पेन का मुसलमानी राज्य का अन्त हो गया (१४९२)। ग्रेनेडा के पतन से योरप में स्पेन की प्रतिष्ठा बढ़ गई, और राजा का कद्र होने लगा। इसके पूर्व ही प्रमुख इसाई राज्यों का, फर्डिनेण्ड और इसावेल की शादी के परिणाम-स्वरूप, एक संयुक्त राज्य बन गया था (१४७९ ई०)। मूरों से लम्बी लड़ाई के फलस्वरूप स्पैनिशों में राष्ट्रीय एकता का भाव उदय हुआ, और अब स्पेन का राजतन्त्र भी दृढ़ हो गया। सामन्तों की शक्ति कमजोर कर दी गई, जनसाधारण में राजा की प्रतिष्ठा बढ़ी। स्पेन का साहित्य का विकास हुआ। किड् (Cid) नामक प्रेमकाव्य मध्ययुग की अमूल्य कृतियों में गिना जाता है, और इसकी कहानियों ने स्पेन में देशभक्ति की भावना को जागृत किया। स्पेन एक प्रतापी राज्य और एक जागृत राष्ट्र था।

रूस :

रूस राज्य की नींव नवीं सदी में स्वीडन निवासी रुरिक ने डाली थी। कुछ समय बाद रूस में स्कैन्डिनेभिया की जातियाँ बिल्कुल ही स्लाव संस्कृति में मिल गयीं। धीरे-२ एक मजबूत स्लाव राज्य स्थापित हो गया था। पर ग्यारहवीं सदी के अन्त तक रूस की एकता भंग हो गई थी, और राजा

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमज़ोर पड़ गया था। तेरहवीं सदी में चंगेज और उसके उत्तराधिकारियों का रूस पर आक्रमण हुआ, और इन तार्तारों ने रूस को रौंद डाला। रूस का अंधकार-युग आरम्भ हुआ। इसी समय मौस्को का राज प्रकाश में आया, और इसका राजा इवान् (1462-1505) ने तार्तारों को रूस से निकाल भगाया। इवान महान् का पोता क्रूर इवान (Ivan the Terrible) ने रूस का प्रथम ज़ार और निरंकुश शासक की उपाधि ग्रहण की। इसने रूस में शक्तिशाली राजतन्त्र की स्थापना की, और इसके राज्य में तुर्कों से परेशान रोमन-यूनानी कला और साहित्य के विद्वानों का आदर हुआ। रूस पुरातन कला और साहित्य के सम्पर्क में आया, और एक उन्नत और शक्तिशाली राज्य बन गया।

इटली :

इटैली में राष्ट्रीय एकता का अभाव था। यहाँ पोप और सम्राट् के आपसी झगड़ों के कारण इटैली विभक्त रहा। कवि पेट्रार्क और महत्वाकांक्षी निकोल रिएन्जी ने स्वतन्त्र और संयुक्त इटैली का स्वप्न १४वीं सदी में देखा था। रोम के अतीत गौरव से प्रेरित होकर रिएन्जी ने जनता के सक्रिय सहयोग से रोम में एक नयी सरकार की स्थापना की, और इसने इटैली के प्रत्येक छोटे-बड़े राजाओं के पास दूत भेजा और उनसे रोम को राजधानी मानकर एक संयुक्त इटैली को पुनर्स्थापित करने की अपील की। पर यह स्वप्न ही रहा। उस समय राजाओं में बड़ी ईर्ष्या थी, और यह वर्ग वैमनष्य और दलबन्दी का जमाना था। रिएन्जी स्वयं हद से बाहर चला गया और घमण्ड से चूर होकर कई उपाधियों से अपने को विभूषित किया। अन्त में वह जनता का कोप का शिकार बना, और १३५४ में उसकी हत्या हुई।

इटैली संयुक्त राज्य नहीं बन सका। पर संयुक्त इटैली की भावना, देशभक्ति के उच्च भाव, और इटैली के गौरवमय अतीत के प्रति अगाध श्रद्धा के भाव हम महाकवि दान्ते (Dante) के काव्यों में पाते हैं। रेनेसां ने इटैली के प्राचीन गौरव-साहित्य और कला को पुनः प्रतिष्ठित

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया, और जनसाधारण में राष्ट्रीयता की भावना, और गौरवमय अतीत के प्रति सामूहिक श्रद्धा का विकास हुआ। इटैली की भाषा का भी विकास हुआ। इटैली के महान् कलाकारों की कृतियों से भी इटालवियों में राष्ट्रीय चेतना और गौरव के भाव जागृत हुये। इटैली भले ही संयुक्त राष्ट्र न बना, पर इटैलियन राष्ट्रीयता एक संचालक शक्ति बनी रही। साहित्यिकों, चिन्तकों और देशभक्तों के लिये संयुक्त इटैली एक स्थायी स्वप्न बना रहा—जब तक कि इटैली उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में संयुक्तराष्ट्र न बन गया। मैकियावेली ने अपनी पुस्तक (The Prince) में संयुक्त इटैली का ही आदर्श सामने रक्खा, और इसकी प्राप्ति के लिए उसके मत में एक ऐसे निरंकुश शासक की जरूरत थी जो विरोधी दलों को जिस तरह हो कुचल सके। तत्कालीन इटैली की जैसी अवस्था थी उस ख्याल से मैकियावेली को गलत नहीं कहा जा सकता है।

राजनीति में नैतिकता का अभाव

रेनेसां युग में राष्ट्रीय भावना और स्वतन्त्र राज्य का विकास हुआ। राजा की सार्वभौम सत्ता अपने राज्य पर स्थापित हुई। ऐसे ही शक्तिशाली राजतन्त्र के अधीन इंगलैंड, फ्रांस, स्पेन प्रभृति राज्यों ने आर्थिक और संस्कृति के क्षेत्र में बड़ी उन्नति की। साम्राज्य का विस्तार हुआ, व्यापार में वृद्धि हुई, विज्ञान की प्रगति हुई, भौगोलिक खोजें हुईं। पर ये स्वतन्त्र राष्ट्र-राज्य आपस में सहयोग नहीं करते थे। अपने निजी स्वार्थ से प्रेरित होकर इनमें आपस में तनातनी रही, और कई बड़े-२ युद्ध हुये। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का कोई नैतिक आधार नहीं था। मैकियावेली की पुस्तक 'The Prince' के सिद्धान्त पर ही लोग चल रहे थे। राजहित ही सर्वोच्च सिद्धान्त था। अपनी प्रजा के साथ का सम्बन्ध भी नैतिक आधार पर स्थिर नहीं था। इन राष्ट्रों में इस समय जनता का अधिकार पर ध्यान नहीं दिया जाता था। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अनैतिकता का नंगा नाच का उदाहरण है पोलैंड का विभाजन। आस्ट्रिया, प्रशिया और रूस ने अपने हित के लिए एक पूरे देश का तीन बंटवारा में सफाया

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर दिया। राष्ट्र की सार्वभौम सत्ता का सिद्धान्त (Principle of State-Sovereignty) का परिणाम रहा है अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध या तनातनी। अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की कई योजनाएँ इसी सर्वमान्य सिद्धान्त की शिला पर चूर-२ हो गई हैं। योरप की एकता इस सिद्धान्त के कारण असम्भव हो गई। आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सहयोग की समस्याओं का आरम्भ रेनेसां युग में स्थापित स्वतन्त्र राष्ट्र-राज्यों की सार्वभौम सत्ता का सिद्धान्त से ही हुआ है।

४

आधुनिक युग के लक्षण

रेनेसां, धर्मसुधार, और स्वतन्त्र सार्वभौम-सत्ता-प्राप्त राष्ट्रीय-राज्यों का विकास के परिणाम स्वरूप आधुनिक युग के विशिष्ट लक्षण १५–१६ वीं सदी में स्पष्ट हैं। आध्यात्मवाद के स्थान में भौतिकवाद ही अब मनुष्यों के जीवन की प्रेरक शक्ति हो गया। स्वर्ग के काल्पनिक सुख की चिन्ता से अधिक पृथ्वी पर सुख भोगने की इच्छा प्रबल हो गई, और इसे अधर्म नहीं समझा गया। मानववाद की प्रतिष्ठा हुई। मनुष्य के अनुभव और सौन्दर्य प्रेम की अभिव्यक्ति हुई। समाज में पूंजीवादी व्यवस्था का विकास हुआ : नगरों का उत्थान और उद्योगों की उन्नति हुई। भौगोलिक खोजों से इस दिशा में और भी प्रगति हुई। सामन्त और चर्चाधिकारियों और जनसाधारण के मध्य में एक समृद्ध, उत्साही और महत्वाकांक्षी वर्ग की उत्पत्ति हुई। यह वर्ग समाज और राजशासन में अपना उचित स्थान पाने की इच्छा करने लगा, और इसका परिणाम, आगे चलकर, योरप की सामाजिक और राजनीतिक क्रांतियां हुई। आधुनिक युग, बीसवीं सदी के पूर्वकाल तक, पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था

भौतिकवाद

मानववाद, पूंजीवाद का विकास

सामाजिक और राजनीतिक क्रान्तियां

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर ही आधारित था। इसी समय राष्ट्रीय भावना का भी उदय हुआ जिसका मुख्य रूप था राष्ट्र-राज्यों की सार्वभौम सत्ता के सिद्धान्त के आधार पर विकास। इन राष्ट्र-राज्यों के स्वार्थी और संकुचित नीति के कारण अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध या कूटनीतिक पैतरेबाजी होते रहे और हो रहे हैं। मध्ययुग में अन्तर्राष्ट्रीयता प्रधान थी, आधुनिक युग में राष्ट्रीयवाद का बोलबाला है।

राष्ट्रीय भावना और राजा की सार्वभौम राज-सत्ता

अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध और कूटनीति

अतः इस दृष्टिकोण से विचारने पर हम यह निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि योरप, राष्ट्रीय भाषाओं और राष्ट्रीय-राज्यों में, टुकड़े-टुकड़े हो गया, जिसके परिणाम दुःखद रहे हैं।

आधुनिक युग का एक प्रधान लक्षण है धर्मसहिष्णुता (Religious Toleration)। धर्मसुधार आन्दोलन और धर्मविरोधी आन्दोलन के प्रत्यक्ष परिणाम थे धार्मिक कटुता, धर्मयुद्ध, और धार्मिक दमन। पर यह उल्लेखनीय है कि धर्मसहिष्णुता का सिद्धान्त का जन्म भी इन्हीं परिस्थितियों में हुआ। धर्मयुद्धों से परेशान होकर धर्मसहिष्णुता का सिद्धान्त अपनाना प्रत्येक राष्ट्र को आवश्यक प्रतीत हुआ, क्योंकि जनता, राजा और पूंजीपति सभी शान्ति चाहते थे, इसीमें सभी का हित था। फिर जब रोमन कैथोलिक धर्म के सिद्धान्त का सफल विरोध हो सकता था, तब यह भी तो सम्भव था कि इन विरोधी धर्मों या सिद्धान्तों के विरुद्ध भी नये विचार व पंथों का प्रचार हो। जब एक बार धार्मिक आस्था डांवाडोल हो गई, तब इसका क्या भरोसा था कि नये विचार व धर्म सनातन सत्य रहेंगे। इसलिए धर्मसुधार आन्दोलन के बाद धार्मिक सहिष्णुता का सिद्धान्त का विकास स्वाभाविक था। एक से अधिक धर्म या पंथ को एक समय एक देश में रहना भी अब स्वाभाविक था। इसलिए धर्मसहिष्णुता की नीति योरोपिअन राष्ट्रों को अपनानी पड़ी। इंगलैण्ड में १६८९ में Toleration Act पास हुआ। व्यापार, उपनिवेश-स्थापना, वैज्ञानिक अनुसंधान, आर्थिक-समस्याओं में ही अब

धर्मसहिष्णुता का सिद्धान्त

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा, प्रजा और उच्चवर्ग की शक्ति और उत्साह का व्यय होने लगा। धर्म गौण हो गया। रेनेसां ने जिज्ञासा की प्रवृत्ति को उत्तेजित किया था और अंधविश्वास हटाकर विवेक को प्रतिष्ठित किया था।

विज्ञान-युग का आरम्भ

इन मूल प्रवृत्तियों की सफलता के बाद धर्मयुद्ध निरर्थक हो गया। आधुनिक युग विज्ञान का युग कहा जाता है। इस विज्ञान-का-युग का आरम्भ भी इसी समय हुआ। रेनेसां का प्रमुख परिणाम था वैज्ञानिक प्रवृत्ति को जगाना, मनुष्य में अदम्य आत्मविश्वास भरना। इसी प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति वैज्ञानिक अनुसंधान और दुस्साहसी भौगोलिक खोजों में हुई। मानव में अभी भी यही चिनगारी काम कर रही है, और विज्ञान की सम्भावनाएं कल्पना से परे हैं। सचमुच में मध्ययुग और आधुनिक युग में सबसे बड़ा फर्क है

मनोवैज्ञानिक अन्तर।

मनोवैज्ञानिक। रेनेसां ने मनुष्य में मनोवैज्ञानिक (Psychological) हेर-फेर ला दिया। मनुष्य का दृष्टिकोण ही बदल गया। तभी तो पहले के आदर्श निस्सार सिद्ध हुये और नये आदर्शों की प्रतिष्ठा हुई। एक अमेरिका लेखक ने लिखा है…"रेनेसां न एक राजनैतिक और न एक धार्मिक आन्दोलन था। यह एक अपूर्व मनस्थिति था……जीवन के प्रति मनुष्य के विचार और दृष्टिकोण ही बदल गये थे।" [1] विचार-स्वतन्त्रता रेनेसां युग की अनुपम

विचार-स्वतन्त्रता

देन है और आधुनिक मनुष्य का गौरव। रेनेसां युग के वैज्ञानिक, कलाकार, धर्मसुधारक या दार्शनिक सब अपने विचारों को व्यक्त करने का साहस रखते थे, भले उनके विचार तत्कालीन स्थिर स्वार्थों और अधिकारी वर्ग के मान्य सिद्धान्तों के विपरीत हों। इनमें बहुतों को दमन-चक्र के नीचे भी आना पड़ा। पर

---

[1] "The Renaissance was not a political or religious movement. It was a state of mind..... But their outlook on life was changed"—Hendri Willen Vandoon.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार-स्वतन्त्रता का आदर्श स्थिर रहा। अपने व्यक्तिगत अनुभवों को व्यक्त करने में अतीव आनन्द होता था। विचार-स्वतन्त्रता और वैयक्तिक सुख और आनन्द का सन्निहित सम्बन्ध स्पष्ट है?

पश्चिमी योरप सभ्यता का राहनुमा हो गया।

भौगोलिक खोजों में पश्चिमी योरप के राष्ट्रों ने महत्वपूर्व भाग लिया था, और अब योरोपीय सभ्यता का केन्द्र इटैली से हट कर पश्चिम आ गया; इंगलैंड, फ्रांस और होलैण्ड योरप और संसार के नेता बन गये। विश्व-सभ्यता के इतिहास का अध्ययन से यह पता चलता है कि सबसे पहले सभ्यता का केन्द्र पूर्व था, मेसोपोटेमिया, पंजाब, और मिश्र। इसके बाद ग्रीस, तब इटैली सभ्यता का केन्द्र हो गया। आधुनिक युग में पश्चिम इस युग का नेतृत्व ले रहा है। पर इसके बाद क्या घड़ी की सूई पूरा चक्कर काट फिर पूर्व में नहीं पहुँचेगी?

विचार-स्वतन्त्रता और मध्यमवर्ग की उन्नति का परिणाम यह हुआ कि आगे चलकर राजा का स्वेच्छाचारी शासन का विरोध होने लगा। इंगलैण्ड में वैध शासन के लिए आन्दोलन तीव्र होता गया। शक्तिशाली पूंजीवादी अब राज पर अपना अधिकार चाहते थे, स्वतन्त्रता प्रेमी अंगरेज को राजा का सर्वाधिकार नापसन्द था। अन्त में इंगलैंड में वैधानिक शासन की स्थापना हुई, रेनेसां के बिना शायद यह सम्भव न था। फ्रांस और अमेरिका में वैधानिक आंदोलन की सफलता का वातावरण नहीं था, इसलिए वहाँ क्रान्ति का रास्ता अख्तियार किया गया। विचार-स्वतन्त्रता और मध्यमवर्ग की उन्नति—रेनेसां के ही ये परिणाम-क्रान्ति के मूल कारण थे।

वैधानिक प्रगति और क्रान्ति

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौथा अध्याय
इंगलैंड में वैध और उत्तरदायी शासन का विकास

१

इंगलैंड की पार्लियामेन्टरी शासन-प्रणाली ने, जिसमें जनता के चुने हुये प्रतिनिधियों की सभा का शासन पर पूरा अधिकार है, संसार के आधुनिक इतिहास को कई दिशा में प्रभावित किया है। जिस समय योरप में स्वेच्छाचारी राजतन्त्र की सुदृढ़ स्थापना हो रही थी, उसी समय सत्रहवीं सदी में, इंगलैंड में पार्लियामेन्ट का शासन पर अधिकार का पूर्ण विकास हो गया था। इंगलैंड की शासन-व्यवस्था तत्कालीन योरप के लिए आदर्श था। इंगलैंड के अमेरिकन उपनिवेशों का विद्रोह का मकसद शुरू में यही था कि उनका भी प्रतिनिधि-शासन में स्थान रहे। फ्रांस की राज्यक्रान्ति के अग्रदूत भी इंगलैंड का वैधानिक शासन की स्थापना फ्रांस में चाहते थे। यह दूसरी चीज है कि इन दोनों क्रान्तियों का अन्त इंगलैंड की पार्लियामेन्टरी-शासन की स्थापना में नहीं हुआ। पर आरम्भ में इसी आदर्श से वे प्रेरित थे। फिर यूरोप के १८हवीं-१९वीं सदी के राष्ट्रीय और प्रजातान्त्रिक आंदोलनों का लक्ष्य वैधानिक शासन की स्थापना ही था। इटैली में तो इसी तरह का शासन स्थापित हो गया था। ब्रिटेन के दूरस्थित उपनिवेशों में भी पार्लियामेन्टरी शासन-व्यवस्था की स्थापना हुई। भारतवर्ष में भी आजादी की लड़ाई का एक लक्ष्य इसी प्रकार का उत्तरदायी शासन की स्थापना था। यह ठीक है कि देश और परिस्थिति की भिन्नता के कारण इन देशों के विधानों में ब्रिटेन की वैधानिक व्यवस्था से कुछ फर्क भी है। ब्रिटेन की पार्लिया-

इसका प्रभाव और महत्त्व

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेन्टरी शासन-व्यवस्था का विश्व-इतिहास और विशेषकर विश्व के वैधानिक इतिहास पर स्थायी प्रभाव स्पष्ट है। इसलिए इंगलैंड की पार्लियामेन्ट को पार्लियामेन्ट (लोकसभा) की मां कहा जाता है।

पार्लियामेन्टरी शासन-पद्धति इंगलैंड में अत्यन्त सफल हुई है। योरप और एशिया में इसे इतनी सफलता नहीं मिली है। इस शासन-पद्धति को बेलाग उठाकर नयी जमीन और नया वातावरण और भिन्न-२ परम्परा में स्थापित करना ही इस असफलता का कारण है। इंगलैंड में पार्लियामेन्टरी शासन-पद्धति का विकास विशेष परिस्थिति, अंगरेजों का विशिष्ट चरित्र, ब्रिटेन की भौगोलिक स्थिति, और अँगरेजों की खास ऐतिहासिक परम्परा के कारण हुआ। यह पद्धति न एक दिन स्थापित हुई न किसी एक महापुरुष ने इसे स्थापित किया। इसका विकास तो धीरे-२ हुआ।

२

पार्लियामेंट के विकास के कारण :

इंगलैंड में पार्लियामेन्ट के विकास के कई कारण हैं, जिनमें मुख्य ये हैं :—

आंग्ल-सैक्सन् युग की स्वशासन-परम्परा

(क) आंग्ल-सैक्सन् के समय में ही इंगलैंड में स्थानीय स्वशासन अत्यन्त लोकप्रिय और प्रबल था। प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त भी प्रचलित था क्योंकि हन्ड्रेडमूट के प्रतिनिधि शायरमूट की कार्यवाही में भाग लेते थे। स्वशासन और प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त की परम्परा से पार्लियामेन्ट के विकास में मदद मिली।

सामंतशाही प्रथा

(ख) जागीरदारी प्रथा या सामन्तशाही व्यवस्था (Feudalism) के मूल सिद्धांतों से भी इस दिशा में प्रगति मिली। जागीरदारी व्यवस्था का मूल आधार था कि जमींदार और रैयत, राजा और उसके प्रमुख सामन्तों के पारस्परिक अधिकार निश्चित थे, प्रत्येक पक्ष के लिए इस मान्य सीमा का उल्लंघन अनैतिक और नियमविरुद्ध था, और यदि राजा नियम का उल्लंघन करे तो उसके

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमुख सामन्तों को अपने कर्त्तव्यपालन की जवाबदेही से मुक्ति मिल जाती थी। इकरारनामा टूट जाता था। सामन्तवादी-युग में यह आवश्यक था कि राजा और उसके प्रमुख सामन्त नियमों का पालन करें। यदि राजा निश्चित कर, अवाब या नजराना उचित से अधिक वसूल करने लगे तो यह नियमविरुद्ध माना जाता था, और सामन्त राजा को नियमानुकूल रहने को वाध्य करने की चेष्टा करते थे। इस प्रकरण में यह नहीं भूलना चाहिए कि राजा के प्रमुख सामन्तों की सामूहिक सामरिक-शक्ति कम नहीं थी। सामन्तवादी-प्रथा स्वेच्छाचारी शासन की विरोधिनी थी। इस परम्परा से वैधानिक विकास का गम्भीर सम्बन्ध है। राजा कानून से परे नहीं है, और उसे कानून के मातहत रखने के लिए निश्चित उपाय रहना चाहिये। यही वैधानिक शासन-पद्धति का आधार था। इंगलैंड के वैधानिक इतिहास से यह स्पष्ट है कि राजा का मान्य नियमों का उल्लंघन करने की चेष्टा का सफल विरोध करने में प्रमुख सामन्तों ने नेतृत्व किया और एक वैधानिक परम्परा की नींव अनजान में ही डाल दिया।

सामान्य नियम

(ग) इंगलैंड में सामान्य नियम या न्याय (Common law) का प्रभाव कानून से कम अधिकार नहीं रखता था। आंग्लसैक्सन् के साधारण न्याय (Common law) का नार्मनों ने भी सम्मान किया था। ये प्रचलित नियम प्रजातान्त्रिक थे, जनसाधारण इन्हें मानते थे। इसलिए नौर्मन राजाओं ने सैक्सन् युग में जनता में प्रचलित सामान्य न्याय या आचारों (Common law) को मान लिया, और इस तरह जागीरदारी-व्यवस्था के नियम और न्याय (Common law) दोनों का इंगलैंड की वैधानिक प्रगति में भाग रहा। ट्रेवेलियन साहब का कहना है कि इंगलैंड का विधान "जागीरदारी व्यवस्था और सामान्य-न्याय का विवाह का परिणाम है"।

"Our Constitution was the child of Feudalism married to the Common Law"—Trevelyan.

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(घ) अंगरेजों की एक चरित्र-विशेषता यह है कि इनकी एक स्वाभाविक आदत है कि आपसी भेदभाव या विचारों की भिन्नता का फैसला ये तलवार या क्रान्ति से नहीं करते हैं वल्कि साथ बैठकर बहस-मुहाविसा कर एक तस्वीया पर पहुँच जाते हैं। राजा, चर्च, बड़े-२ भूमिपति, अन्य प्रभावशाली वर्गों में झगड़े होते थे, इनके विचारों और स्वार्थ में फर्क और संघर्ष भी होते थे, पर इनका फैसला अधिकतर ये लोग साथ वैठ कर करते थे, या अपने नुमायन्दे चुन लेते थे और ऐसी कमीटियों में इन झगड़ालू प्रश्नों का समाधान एक सर्वमान्य या वहुमत तस्वीया से हो जाता था, जिसका सभी वर्ग आदर करता था यद्यपि किसी एक वर्ग की ही वात नहीं ही मानी गई हो। अतः विचार-वैषम्य या स्वार्थी-प्रतिद्वन्दी हितों के प्रश्न पर साथ बैठकर धैर्यपूर्वक एक सर्वमान्य फैसला पर आने का निश्चय कर बहस करने की इस आदत से पार्लियामेन्ट का विकास में मदद मिली। प्रसिद्ध अंगरेज विद्वान ट्रेवेलिअन फर्माते हैं, "इंगलैंड की पार्लियामेन्ट का बनाने वाला कोई एक आदमी नहीं था, न साइमन, न एडवर्ड। किसी आदमी ने इसे बनाया नहीं, इसका तो विकास होता गया। कई शताब्दियों में इसका रूप निर्धारित हुआ, और यह अंगरेजों का साधारणज्ञान और सद्चरित्र का स्वाभाविक परिणाम था, जो साधारणतया निरंकुशशासकों से कमीटियां, सड़कों पर युद्ध से चुनाव, क्रान्तिकारी सभाओं से 'बहसी दूकान', अधिक पसंद करते हैं।"[1]

अंगरेजों की चरित्र विशेषता

परम्परा

(च) इंगलैंड की भौगोलिक स्थिति का भी वैधानिक विकास पर प्रभाव पड़ा है। इंगलैण्ड एक प्रायद्वीप है। यद्यपि योरप के स्थलभाग से सिर्फ २१ मील का इंगलिश चेनैल इसे अलग करता है, तव भी इस प्रायद्वीप में योरोपीय देशों की तुलना में यहां के निवासी काफी हद तक शांतिपूर्ण ढंग से अपनी घरेलू

भौगोलिक स्थिति

१ 'The English Parliament had no one man for its maker, neither Simon nor Edward. No man

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समस्याओं का समाधान ढूंढ़ सकने में समर्थ हुये। फ्रांस, जर्मनी, स्पेन इत्यादि देशों की तुलना में यहां बाहरी आक्रमण कम हुये हैं। योरप की घटनाओं का प्रभाव इंगलैण्ड पर पड़ा, पर वहाँ के गर्म राजनीतिक हेर-फेर से इसे बहुत हद तक मुक्ति ही रही। शक्तिशाली नौर्मन राजाओं ने बाहरी आक्रमणों को ही दूर नहीं रक्खा, बल्कि इंगलैंड में बैरनों में आपसी लड़ाई बन्द कर दिया। इससे जब योरप में अराजकता थी, इंगलैंड में शान्ति रही।

(छ) चर्च से युद्ध, फ्रांस से अनवरत युद्ध, स्काटलैंड से युद्ध इत्यादि में राजा को सामन्तों, नगरों के समृद्ध मध्यमवर्ग और जनसाधारण से आर्थिक मदद की आवश्यकता बराबर रही। जागीरदारी व्यवस्था के निश्चित करों से काम नहीं चल सकता था। इसलिए राजा अलग २ इनलोगों से सलाह और मदद की याचना न कर एक साथ ही बुलाकर विचार-विमर्श करना शुरू किया और इन सदस्यों को वापस लौट कर निश्चित धन वसूल कर राजकोष में भेजने को कहा। यही पार्लियामेन्ट का विकास का आधार था। इसीलिए यह कहा जा सकता है कि स्काटलैंड ने इंगलैंड को पार्लियामेन्ट दिया, और यह भी कहा जा सकता है कि पार्लियामेन्ट ने ग्रेट-ब्रिटेन की एकता सम्भव किया, क्योंकि बिना इस सभा की मदद से प्रथम तीन एडवर्ड स्काटलैंड पर विजय प्राप्त नहीं कर सकते थे।

राजा की लगातार युद्ध

३

पार्लियामेन्ट का विकास : नौर्मन-विजय के उपरान्त इंगलैंड के शासन में बड़े हेर-फेर हुये। नौर्मन विदेशी थे और उस समय का

made it, for it grew. It was the natural outcome of the commonsense and the good nature of the English people, who have usually preferred committees to dictators, elections to street-fighting and 'talking-shop' to revolutionary tribunals"—Trevelyan.

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रगति की राह पर चल सकता था। हेनरी के कुशल शासन के कारण वैधानिक सुधार सम्भव हो सके।

आपस में युद्ध बंद होना और राजा का सिर्फ जागीरदारों के नाइटों पर सेना के लिए निर्भर न होने का परिणाम यह हुआ कि नाइट (Knights) ही अब सिपाही न रहे। मध्ययुग में नाइट ही सैनिक थे, जागीरदार इनका भरणपोषण करते थे, इन्हें हथियार और बख्तर से सुसज्जित रखते थे। पर अब राजा को इन सैनिकों की आवश्यकता न रही, और जागीरदारों को भी इनकी सैनिक-योग्यता की जरूरत आपसी-युद्ध बन्द होने के कारण बहुत कम हो गई। तब नाइटों का मुख्य काम खेती-बारी देखना ग्रामीण-क्षेत्र ही रह गया। इसतरह ये लोग इंगलैण्ड के ग्रामीण-कुलीन में नाइटों बन गये, अर्थात् देहाती समाज के माननीय नेता। इनका की उन्नति देहाती इलाके में अच्छा प्रभाव था। अपने जागीर का प्रबन्ध यह बड़ी मेहनत से करते थे। इसलिये देहात में इनकी आर्थिक-स्थिति भी अच्छी थी। इन मेहनती, मजबूत, उत्साही और प्रतिष्ठित पुरुषों का महत्व राजा से छिपा नहीं रह सकता था। इसी समय नगरों में व्यापारी, कुशल कारीगर और उद्योगपति समृद्ध हो रहे थे। राजा के लिए इन दोनों वर्गों की मदद प्राप्त करना लाभदायक था, विशेषकर जब सामन्तों का प्रभाव कम हो रहा था।

रिचर्ड प्रथम (1189—1199 A. D.) स्वयं कुशल राजा नहीं था और 'क्रूसेड' में इंगलैंड से बरसों बाहर रहा। पर उसने ह्यूबर्ट बाल्टर को कैन्टरबरी का आर्कबिशौप और न्याय-विभाग का प्रमुख (Chief Justicier) नियुक्त किया था। ह्यूबर्ट बाल्टर ने नगरों को स्वशासन प्रदान किया और उन्हें निर्वाचित अफसरों के द्वारा अपना प्रबन्ध करने का अधिकार दिया। लन्दन ने अपना 'मेयर' चुनने फा अख्तियार पा लिया। ह्यूबर्ट का यह विचार था कि यदि राज की शक्ति सामन्तों के विशेषाधिकार से खतरे में होती थी, नगरों के स्वशासन की उन्नति (Municipal

नाइटों को राजशासन में अनुभव-प्राप्ति

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

growth) से राज की शक्ति बढ़ेगी। अतः अब समृद्ध नगरों को स्व-शासन के द्वारा शासन में भाग लेने का अनुभव हो गया। इन नगरों के चुने प्रतिनिधि अनुभवी और कार्यकुशल हो गये। वैधानिक विकास में इनसे बड़ी सहायता मिली। ह्यूबर्ट ने ग्रामीण-मध्यमवर्ग के प्रतिनिधि नाइटों को भी राजशासन में हाथ बँटाने को बाध्य किया। नाइट तब उत्साही कृषक थे और सरकारी अफसर नहीं थे। पर ह्यूबर्ट ने नाइटों को यह आज्ञा दी कि वे देहाती-क्षेत्र में राजशासन में सहयोग दें। इनका यह कर्त्तव्य था कि ग्रामों में राजा के न्याय और आर्थिक हितों की रक्षा करें, और बड़े २ अपराधों का विशेषकर अपमृत्यु का अन्वेषक (Coroner) बनें। ऐसे अन्वेषकों (Coroners) का चुनाव न राजा करता था और न राजा का मुख्य अफसर शेरीफ (Sheriff), पर शायर की सभा (Shire moot) में ही उस देहाती क्षेत्र के कुलीन लोग 'कोरोनर' चुन लेते थे। यह सुधार बड़ा महत्वपूर्ण है। स्वशासन में ग्राम के मध्यमवर्ग को व्यवहारिक शिक्षा मिल गई, और चुने प्रतिनिधियों के द्वारा शासन-प्रबन्ध करने का अनुभव दृढ़ हो गया। आगे चलकर यह आदत स्वाभाविक हो गई। अब देश के मध्यमवर्ग-शहरी और देहाती दोनों इलाकों का--को शासन-सम्बन्धी अनुभव हो गया, और अपने प्रतिनिधियों को चुनने की आदत भी। यही चीज जब राष्ट्रीय लोकसभा में लाई गई तब इसका महत्व का क्या कहना। ट्रेवेलियन साहब कहते हैं,--"जब इस स्थानीय कुलीनवर्ग (Local gentry) के ये स्थानीय व्यावहारिक कार्य और प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त राष्ट्रीय लोकसभा में प्रवेश पा गये तब इंगलैंड और विश्व पर इसका गम्भीर परिणाम हुआ।'[1]

---

१ "When these local activities of the smaller gentry and the idea of representation were carried up to the larger sphere of a national parliament, mighty consequences followed to England and to world"—Trevelyan.

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामाजिक संगठन जागीरदारी व्यवस्था ही कहा जा सकता है। विलियम ने इंगलैंड में जागीरदारी व्यवस्था का राजनैतिक रूप भी स्थापित किया। अब राजा के प्रमुख सामन्त (Tenants-in-chief) राजशासन के अभिन्न अंग बन गये। अपने क्षेत्र में शान्ति कायम रखना, मान्य साधारण-नियमों (Common law) को लागू करना, समय पर राजा को पूर्वनिश्चित् सिपाहियों से मदद करना इत्यादि कर्त्तव्यों के अलावे इनका एक कर्त्तव्य यह भी था कि राजा को राजशासन में सलाह-मशविरा दें। नौर्मनों की महान् सभा (The Great Council) राजा के प्रमुख सामन्तों की ही सभा थी जिसका काम था राजा को राज की समस्याओं पर सलाह देना। सामन्तवाद का यह सिद्धान्त था कि राजा को अपने सामन्तों से सलाह लेने का हक़ और कर्त्तव्य था, और सामन्त का राजा को सलाह देने का कर्त्तव्य और हक़ था—पारस्परिक हक़ और कर्त्तव्य का निश्चित रहना इस व्यवस्था का मूल सिद्धान्त था। पर जब इंगलैंड में राजाओं ने अपने सामन्तों से अलग २ नहीं वरन् एक साथ, सामूहिक रूप से, राजशासन सम्बन्धी समस्याओं पर विचार करना शुरू किया, तब इस कौन्सिल का महत्व बहुत बढ़ गया, और इसी दृष्टिकोण से नौर्मन की Great Council को पार्लियामेन्ट की जननी कहा जाता है।

नौर्मन-शासन के परिणाम

इस "बड़ी सभा" में राजा के प्रमुख सामन्त और प्रमुख कर्मचारी सम्मिलित थे। इसी सभा में राजा शासन-सम्बन्धी निर्णय लेता था और यहीं कानून भी बनाता था। विधेयक (Legislative) और प्रवर्तक (Executive) विभाग अलग नहीं हुये थे, और न अभी पार्लियामेन्ट के दो सदनों (House of Lords and House of Commons) का लक्षण वर्त्तमान था। जैसा कि ऊपर लिखा गया है पार्लियामेन्ट का विकास बहुत धीरे-२ और अस्पष्ट और अनजान में होता गया। कोई पूर्वनिश्चित योजना के आधार पर इसका विकास नहीं हो रहा था।

बड़ी सभा The Great Council

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नौर्मन राजाओं ने सामन्तों की शक्ति को कई प्रकार से कम कर दिया था। राजा के प्रमुख सामन्तों की जागीरें एक जगह नहीं, वरन् दूर-२ विस्तृत थीं। इसलिए किसी एक इलाके में कोई एक सामन्त बहुत प्रभाव नहीं रख सकता था। राजा ने अपने प्रत्यक्ष अधिकार में किसी भी एक जागीरदार से अधिक जागीर रख लिया था। हेनरी प्रथम ने यह आज्ञा निकाली कि प्रमुख जागीरदार (Tenants-in-chief) राजा को निश्चित सुसज्जित सेना (Knights) की जगह पर द्रव्य दें (Scutage) और इस धन से राजा 'राष्ट्रीय सेना' तैयार रखता था। इसलिए सामन्तों पर राजा अब सामरिक सहायता के लिए नहीं निर्भर करता था। हेनरी द्वितीय ने जागीरदारों का आपस में लड़ने का हक खत्म कर दिया। हेनरी द्वितीय ने न्याय शासन में भी महत्वपूर्ण सुधार किया। उस समय देश के स्थानीय कचहरियों में स्थानीय सामान्य-न्याय या कानून बरता जाता था। अलग-२ क्षेत्रों में भिन्न-२ नियम प्रचलित थे। फिर सामन्तों की कचहरियों में भी मुख्य मामलों की सुनवाई होती थी। स्थानीय स्वशासित कचहरियाँ सामन्ती न्यायालयों से टक्कर नहीं ले सकती थीं। हेनरी द्वितीय ने बड़ी सभा का एक अंग-राज्य न्यायालय (Curia Regis) का विकास किया, और राज्य न्यायधीश अब चलती-फिरती कचहरियों में मुकदमों की सुनवाई करते थे, और उनका न्याय का आधार था सरकारी कचहरियों के पूर्वनिर्णय। सामान्य-न्याय के नियमों को भी बहुत हद तक अपनाया गया।

सामान्य-शासन (Common-Law) का विकास

अब धीरे-२ सारे देश में एक प्रकार का कानून लागू हो गया, और सरकारी कचहरियाँ स्थानीय कचहरियाँ और सामन्ती कचहरियाँ का स्थान लेने लगीं। सामन्तों का प्रभाव कम हो गया, सारे देश में एक ही प्रकार का न्यायशासन का विकास के कारण एकता का भाव आया, और राजा की शक्ति बढ़ी। सामान्य-धर्म या नियम (Common law) का पूरे देश पर व्यापी सत्ता स्थापित होने के बाद, देश अब वैधानिक

CC-0. Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यावहारिक दृष्टि से यह चार्टर बड़ा ही महत्वपूर्ण था क्योंकि इसने अस्थायी कुरीतियों को दूर करने के लिए स्थायी उपाय निकाला। पर इस चार्टर के आदर्श अस्पष्ट थे, और साधारण आदर्शों का जिक्र नहीं ही के बराबर था। पर जो कुछ भी था उसका ऐतिहासिक महत्व बहुत था। एक अत्याचारी राजा को हराया गया, उसे कानून की सीमा के अन्दर लाया गया, और इस राष्ट्रीय आन्दोलन के नेता सामन्तगण थे। यह उस क्रम की शुरूआत थी जिसका अन्तिम परिणाम हुआ राजशक्ति का जनता के हाथों में आ जाना। किसी भी 'Freeman' को बिना कारण और बिना विधिव्रत् न्याय के जेल न हो, चार्टर के इस धारा को पीछे चलकर वैयक्तिक स्वतन्त्रता और न्याय का राज का सिद्धान्त (Rule of law) का आधार माना गया। स्टुअर्ट काल में Magna Carta से राजा के विरोधियों को बहुत बल मिला।

चार्टर का महत्व

पर जब राजा और सामन्तों में कुछ दिनों के लिए झगड़ा अस्थगित रहा, और देश का ध्यान पार्लियामेन्ट की रूपरेखा निश्चित करने में लगा रहा तब चार्टर पर ध्यान कम गया। १४हवीं-१५हवीं सदी में पार्लियामेन्ट की रूपरेखा निश्चित हुई, और उसका अधिकार बढ़ता गया। हेनरी तृतीय (१२१६-१२७२) अयोग्य राजा था। उसके समय में रोम के पोप का हस्तक्षेप बढ़ गया, विदेशियों के प्रभाव में वृद्धि हुई। जनसाधारण और साधारण पादरी करों से दबे थे। सामन्त भी विदेशी प्रभाव से क्षुब्ध थे। हेनरी अपने भाई और लड़के को सम्राट् के चुनाव और सिसली की राजगद्दी के लिए उम्मीदवार बनाया। इसका देश पर, विशेष कर सामन्तों और जनसाधारण पर, बुरा प्रभाव पड़ा। योरप की गन्दी राजनीति में इंगलैंड का व्यर्थ और अनाधिकार हस्तक्षेप से धन और प्रतिष्ठा दोनों का नाश होने का खतरा था। अन्त में राजा विरुद्ध

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विस्फोट् हो गया। लोग फिर 'चार्टर' को दुहराये जाने की मांग करने लगे। हेनरी तृतीय के विरुद्ध सामन्त ही सिर्फ नहीं थे, बल्कि देहाती क्षेत्रों के नाइट और शहरों के उत्साही व्यापारी और औद्योगिक-वर्ग भी थे। नाइटों की मांग थी कि जो अधिकार सामन्तों ने राजा से अपने लिए प्राप्त किया है वे अधिकार सामन्त भी अपने रैयतों को दें। अतः यह स्पष्ट है कि विरोधी हितों का राजा के विरोध में यह सम्मिलित आन्दोलन था। हेनरी का पुत्र एडवर्ड ने इनमें फूट डालने की चेष्टा की। बड़े २ सामन्त राजा के पक्ष में चले गये, चर्च के उच्च पदाधिकारी राजा के पक्ष में थे ही। पर ध्यान देने की यह बात है कि तब भी बहुत से सामन्त सुधारवादी दल में रह गये। साधारण पादरी भी इसी दल में थे। नाइटों का भी पूरा सहयोग था। नागरिक भी इसी ओर थे। अतः राजा के विरुद्ध यह युद्ध किसी विशेषवर्ग का युद्ध, वर्ग-युद्ध (Class war), न रह कर, इसका रूप राष्ट्रीय ही रहा, क्योंकि प्रत्येक वर्ग के प्रतिनिधियों का इसमें सहयोग था। विरोधी-दल ने साइमन के नेतृत्व में राजा की सेना को १२६४ में हराया, और १२६५ में साइमन ने एक पार्लियामेन्ट बुलाई जिसमें उसने प्रमुख सामन्तों व पादरियों को ही नहीं बुलाया, बल्कि 'शायर' से नाइटों को भी बुलाया और प्रत्येक नगरपालिका (Borough) से दो प्रतिनिधियों को आमन्त्रित किया। १२६५ की

साइमन की पार्लियामेन्ट

साइमन की पार्लियामेन्ट का विशेष महत्व है क्योंकि इसमें एक ही साथ पहले पहल नगरों के निर्वाचित प्रतिनिधि, और देहाती इलाके से 'शायर' के चुने नाइट राष्ट्रीय-सभा में आये। अब यह सामन्ती-सभा (Feudal Council) राष्ट्रीय सभा हो गई, क्योंकि अब इस सभा में प्रत्येक मान्यवर्ग के प्रतिनिधि थे। हेनरी तृतीय के राज्यकाल में भी शायर (देहाती क्षेत्र) से नाइट यदा-कदा राष्ट्रीय-सभा में बुलाये जाते थे। शायर में नाइट राजा के न्यायाधीशों और अन्य अफसरों के साथ राजशासन में भाग बहुत अरसे से ले रहे थे, इसलिए

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपर बताये हुये विचारों और संस्थाओं के विकास के कारण देश में वैधानिक भावनाएँ धीरे-२ घर कर रही थीं। इसी समय राजा जौन (११९९–१२१६) के अत्याचार के कारण एक गम्भीर समस्या उत्पन्न हो गई। राजा जौन फ्रांस से लड़ाई में नौर्मंडी हार गया था, पोप से झगड़े में भी उसे मुंह की खानी पड़ी थी, उसकी प्रतिष्ठा धूल में मिल चुकी थी। वह सामन्ती-कानून का उल्लंघन कर सामन्तों से कई प्रकार के अवैध कर वसूल करता था। इसलिये उसे बड़ी सभा में (Great Council) सामन्ती-करों से अधिक कर वसूलने के लिए सामन्तों से राय लेना चाहिये था। पर वह बिना सामन्तों की सामूहिक राय लिए, या उनकी राय के विपरीत, सामन्तों से कर वसूलता ही रहा। अन्त में सामन्तों को सिवा सशस्त्र विद्रोह का कोई चारा नहीं था। सामन्तों के पास अभी भी युद्ध के सामान और अनुभव थे। अन्त में राजा जौन को १२१५ ई० में रन्नीमिड (Runnymede) नामक स्थान पर सामन्तों के सामने घुटने टेकना पड़ा और वृहत् राज्यपत्र (Great Charter or Magna Carta) पर दस्तखत करना पड़ा। जौन ने यह प्रतिज्ञा की कि राजा कोई विशेष कर (Scutage or aid) बिना राज्य की सभा की अनुमति के नहीं लादेगा, और न कोई कृषक (Freeman) को बिना सामन्तों की कचहरियों के या देश के सामान्य न्याय के फैसले के जेल भेजा जायगा या देश-निकाला जायगा। राजा अपनी प्रतिज्ञा पर कायम रहे इसलिए २५ सामन्तों की एक कमिटी बनी जिसका यह अधिकार था कि यदि राजा प्रतिज्ञा भंग करे तो उसकी जागीर, कोठियां इत्यादि को कब्जे में कर ले, और राजा को अन्य सम्भव तरीकों से तंग करे।

बैरनों का सफल विद्रोह सामन्ती विद्रोह ही था। सामन्तों ने अपने हितों की रक्षा के लिए ही राजा का विरोध किया, और इस महान् शासन-पत्र से उन्हें ही फायदा हुआ। राजा ने निश्चित करों के अलावे गैरसामन्ती करों की वसूली का अधिकार छोड़ दिया, सामन्तों की

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभा (Great Council) का अधिकार मान लिया। सामन्ती महान् शासन न्यायालयों का प्रभाव क्षेत्र भी मान लिया गया और किसी भी स्वतन्त्र नागरिक (Freeman) की स्वतन्त्रता का मनचाहे अपहरण करना राजा ने अनाधिकार समझा। पर इस शासनपत्र का अप्रत्यक्ष प्रभाव वैधानिक इतिहास पर पड़ा। इस विद्रोह में सामन्त ही नहीं वरन् नगरों के नागरिक और साधारण किसानों का भी सहयोग था। इंगलैण्ड के चर्च का अधिकारी स्टीफेन लैंगडन् ने सक्रिय भाग लिया था। अतः यह विद्रोह इस दृष्टि से राष्ट्रीय विद्रोह कहा सकता है, यद्यपि इसका नेतृत्व राजा के प्रमुख सामन्त (Tenants-in-Chief) कर रहे थे, और इसकी सफलता से उन्हें ही सर्वाधिक लाभ हुआ। राज्य की बड़ी सभा की परिभाषा प्रमुख सामन्तों की सभा ही थी। प्रमुख सामन्तों की एक प्रतिनिधि-कमिटी ही राजा को प्रतिज्ञारूढ़ रखने के लिए नियुक्त हुई, और इसे ही प्रतिज्ञाच्युत राजा को दंड देने का अधिकार था। यह ध्यान देने की बात है कि इस विद्रोह के नेतागण 'सामान्य न्याय' का विरोध नहीं कर रहे थे, और न सामन्तों का परस्पर युद्ध करने का खोया-अधिकार को पुनः प्राप्त करने की कोशिश कर रहे थे। सामान्य न्याय, सामन्तों की सभा, और अन्य वर्गों से सहयोग के द्वारा इनलोगों ने राजा पर अंकुश रखने का प्रयत्न किया। जब सामन्तों ने यह अधिकार प्राप्त कर लिया कि राज्य में कोई विशेष कर बिना राज्य की सभा की अनुमति के नहीं लागू होगा, भले राज्य की सभा की परिभाषा सामन्तों की सभा हो, यह सिद्धान्त कि 'प्रतिनिधित्व नहीं, कर नहीं' (No Representation: No Taxation), अप्रत्यक्ष रूप से ही सही मान ली गई, और लोकसभा (Parliament) का अधिकार की नींव पड़ गई। "माना कि यह बहुत मामूली कदम था, पर यह पहला कदम था, और पहला ही कदम का महत्व स्पष्ट होता है।"[1]

The Great Charter, 1215)

१ "It was a very short step, but it was the first, and it is the first that counts"—Trevelyan.

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और नागरिक आपस में अलग बैठ कर राय-मशविरा करते थे कि राजा की आर्थिक-मांग और राज्य की अन्य समस्याओं पर उनकी क्या राय हो। राजा और बड़े-२ सामन्तों के सामने बेचारे साधारण नाइट और नागरिक घबड़ातें थे, और इसीलिये वे एक सम्मिलित राय पर चलना चाहते थे, और अपनी राय को पार्लियामेन्ट में पेश करने के लिए एक वक्ता (Speaker) चुन लेते थे। अतः नाइट और नगर के प्रतिनिधियों को अलग बैठकर राय करना ही House of Commons की अलग सदन की बुनियाद थी, यद्यपि ऐसी बैठकों का कोई कार्यविवरण नहीं रखा गया है।

इसी सिलसिले में एक बाद ध्यान देने की यह है कि नाइट तो जागीरदार वर्ग के ही थे, पर इनलोगों ने अपना हित नगर के प्रतिनिधियों के साथ बैठने और परामर्श करने में ही देखा। फिर बहुत से राजा के जागीरदार (Tenants-in-chief) इतने साधारण थे कि शायर-सभा में अपने को 'नाइट' चुना जाने का हक़ रखते थे। अतः सामन्त-बाद का भेदभाव का सिद्धान्त वस्तुतः मिट गया था, और एक छोटा सामन्त, यद्यपि वह Tenant-in-chief था, नगर के प्रतिनिधियों के साथ बैठ कर काम करता था। इस तरह वैधानिक विकास में वर्गभेद (Class distinction) कम रह गया। इंगलैण्ड की पार्लियामेन्ट से पादरीवर्ग उदासीन हो गये थे। इन लोगों ने पार्लियामेन्ट में बैठना बंद कर दिया। बड़े-२ विशौप, आर्कविशौप लार्ड्स् सभा में बैठते थे पर बड़े जमींदार होने के नाते, न कि चर्च के प्रतिनिधि बनकर। इस तरह इंगलैण्ड की राष्ट्रीय-सभा के वैधानिक विकास में यह एक विशेषता रही। योरप में भी राष्ट्रीय-सभाएँ इस समय थीं, पर यहाँ के पार्लियामेन्ट में तीन सदन थे, एक में बड़े-२ जमींदार व कुलीन वर्ग (Nobles) बैठते थे; दूसरे में पादरी वर्ग; और तीसरे में मध्यम या निम्न वर्ग के प्रतिनिधि बैठते थे। इस तरह समाज के तीन मुख्य वर्ग राजनैतिक रंगमंच पर भी वैसे ही विभक्त थे। पर इंगलैण्ड की पार्लियामेन्ट में तीन नहीं दो सदन ही रहे, और इन सदनों में किसी एक

पार्लियामेन्ट का राष्ट्रीय रूप

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ग का ही अलग-२ प्रतिनिधित्व नहीं, वरन् विभिन्न वर्गों का ही एक सदन में प्रतिनिधित्व रहा। इससे वर्ग-संघर्ष नहीं, वरन् वर्ग-सामञ्जस्य की भावना दृढ़ रही, और House of Commons को किसी एक वर्ग का प्रतिनिधित्व नहीं कर, राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने का मौका मिला। शायर के प्रतिनिधि नाइट, नगरों के प्रतिनिधि, और बड़े-२ जागीरदारों के पुत्र House of Commons में साथ बैठकर काम करते रहे। इंगलैण्ड में यह कानून था कि बड़ा लड़का ही जमींदारी का वारिस हो, इसलिए बड़े-२ जमींदार के अन्य लड़कों को मध्यमवर्ग के साथ ही काम करना अनिवार्य हो गया। वैवाहिक सम्बन्ध भी वर्ग में ही सीमित नहीं था। इन कारणों से वर्ग-भेद कम था, और राजनीतिक विकास में वर्ग-भेद का उतना अधिक प्रभाव नहीं रहा जितना कि योरप के अन्य देशों में। राष्ट्रीय भावना और House of Commons के विकास में इसका बड़ा प्रभाव पड़ा।

राजा और बैरनों का युद्ध और पार्लियामेन्ट की उन्नति

राजा और बैरनों के पारस्परिक झगड़ों से पार्लियामेन्ट और हाउस् आफ् कामन्स् की शक्ति और प्रतिष्ठा बढ़ी। एडवर्ड प्रथम और द्वितीय के समय में कभी राजा और कभी बैरन पार्लियामेन्ट की मदद के लिए या अपनी-२ विजय की स्वीकृति के लिए पार्लियामेन्ट बुलाते थे। फ्रांस और इंगलैण्ड का

शतवर्षीय युद्ध का वैधानिक परिणाम

शतवर्षीय युद्ध (The Hundred Years War) ने इंगलैण्ड में राष्ट्रीय भावना का और भी विकास हुआ। यह युद्ध सिर्फ राजा का पैत्रिक अधिकार सम्बन्धी ही नहीं, वरन् इंगलैण्ड और फ्रांस के विरोधी व्यापार-हित भी इसका कारण था। यह युद्ध एक तरह से राष्ट्रीय-युद्ध कहा जा सकता है क्योंकि पार्लियामेन्ट ने राजा को आर्थिक मदद देने में जरा भी कोताई नहीं किया और राष्ट्र के विभिन्न वर्गों ने उत्साह-पूर्वक इस युद्ध में भाग लिया। इस युद्ध में इंगलैण्ड की हार हुई, पर इंगलैण्ड में राष्ट्रीय जागृति

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्हें राजा की बड़ी सभा में बुलाना कोई क्रान्तिकारी पग नहीं समझा जाता था। पर साइमन ने नगरों के प्रतिनिधियों को पहले पहल बुलाया। साइमन विद्रोही था, और इस पार्लियामेन्ट में वही सामन्त बुलाये गये जो उसके पक्ष में थे। इस पार्लियामेन्ट को अवैध माना जा सकता है। पर इसका स्थायी महत्व यह है कि नगरों के प्रतिनिधि को पार्लियामेन्ट में बुलाने का यह प्रयोग हेनरी तृतीय के पुत्र एडवर्ड प्रथम ने अपना लिया, और बहुत शीघ्र ही यह एक मानी हुई चीज हो गई।

आज हम प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त को अपना अधिकार समझते हैं। प्रतिनिधि चुनने और प्रतिनिधियों का राष्ट्रीय-सभा में भाग लेने के अधिकार के लिये कई संघर्ष हुये हैं। पर उस समय राष्ट्रीय-सभा में प्रतिनिधि भेजना निर्वाचक क्षेत्रों को नापसन्द था, और चुने हुये प्रतिनिधि भी राष्ट्रीय-सभा में जाने से जी चुराते थे। कारण, यातायात की सुविधा नहीं थी, शायरों और नगरों को ही अपने प्रतिनिधियों का खर्च देना होता था, और इस राष्ट्रीय-सभा में अधिकतर राजा को आर्थिक मदद देना ही विचारा जाता था, और नाइट और नगर के प्रतिनिधि को अपने-अपने क्षेत्रों में जाकर राजा को आर्थिक मदद मिले, इसका प्रयास करना होता था। इसलिए इस अप्रिय कर्त्तव्य से ये लोग मुक्ति ही चाहते थे, और उस समय शहरों या शायरों की ओर से या उनके प्रतिनिधियों की ओर से ऐसे दर्खास्त पड़ते थे कि उन्हें प्रतिनिधि भेजने का हक न मिले! इंगलैण्ड का वैधानिक इतिहास में परिस्थिति के दवाव के कारण राजा को ही जनता को प्रजातान्त्रिक व्यवहार में शिक्षित करना पड़ा।

एडवर्ड प्रथम ने पार्लियामेन्ट से लाभ देखा। राजा को युद्धों में आर्थिक सहायता की आवश्यकता थी। इसमें धनी सामन्तों, समृद्ध नागरिकों, और जनप्रिय अनुभवी नाइटों का सहयोग अपेक्षित था। इन सब वर्गों के प्रतिनिधियों से इकट्ठे परामर्श करने में अत्यन्त लाभ

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता था। हेनरी तृतीय के समय में पार्लियामेन्ट की मदद से राजकाज चलाने में सुविधा हुई थी। एडवर्ड ने इसलिए इस परिपाटी को और भी दृढ़ किया। पार्लियामेन्ट के द्वारा वह जनता की शिकायतें भी जान सकता था, सलाह-मशविरा के बाद उन्हें दूर भी कर सकता था और स्थानीय सरकारी अफसरों पर कड़ी नजर रख सकता था। इसलिए एडवर्ड ने पार्लियामेन्ट बुलाने की आदत को जारी रक्खा। इन पार्लियामेन्टों में नाइट और नागरिक भी बुलाये जाते थे। राजा के प्रमुख सामन्तों और कर्मचारियों को साथ बैठ कर राज्य की समस्याओं पर विचार करने के लिए ही बुलाया जाता था। १२९५ में एडवर्ड का फ्रांस से युद्ध चल रहा था, स्काटलैण्ड के विरुद्ध युद्ध शुरू होनेवाला था, और वेल्स् (Wales) का युद्ध तुरन्त ही खत्म हुआ था। राजा इस बात का आश्वासन चाहता था कि प्रजा उसके साथ है, और इस कार्यक्रम में जो खर्च होगा उसे देने के लिए तैयार। इसलिए एडवर्ड ने १२९५ की पार्लियामेन्ट में सामन्तों और चर्च के उच्च कर्मचारियों के अलावे प्रत्येक शायर से दो नाइट और प्रत्येक नगरपालिका (Borough) से दो प्रतिनिधि बुलाया, और इससे निम्नवर्ग के पादरी (Clergy) के प्रतिनिधियों को भी बुलाया गया। अतः इस पार्लियामेन्ट में राष्ट्र के सभी प्रमुख हितों का प्रतिनिधित्व था। इस पार्लियामेन्ट को आदर्श पार्लियामेन्ट (Model Parliament) कहा जाता है, क्योंकि आनेवाले पार्लियामेन्ट में यही परिपाटी अपनाई गई, और पार्लियामेन्ट राष्ट्रीय-सभा बन गई।

आदर्श पार्लियामेन्ट

अभी तक पार्लियामेन्ट के अलग-अलग सदनों का जिक्र नहीं किया जा सकता था। इंगलैण्ड की पार्लियामेन्ट के दो सदन हैं (The House of Lords. The House of Commons)। इस दिशा में भी प्रगति अस्पष्ट रूप से और धीरे-२ हुई। राजा पार्लियामेन्ट में सभी सदस्यों से एक साथ बैठ कर परामर्श करता था। पर मध्यमवर्ग के प्रतिनिधि नाइट

पार्लियामेन्ट के दो सदन और इसका महत्व

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ट्यूडरों का शासनकाल (१४८५-१६०३) का वैधानिक महत्त्व यही है कि इन मजबूत शासकों के समय में बैरनों की शक्ति खत्म कर दी गई, और पार्लियामेन्ट को आवश्यक अनुभव प्राप्त हुआ। हेनरी सप्तम, हेनरी अष्टम, मेरी और एलिजाबेथ स्वेच्छाचारी शासक थे। वे जो चाहते थे कर सकते थे, और करते थे। हेनरी सप्तम ने विशेष न्यायालयों की स्थापना की और इनके द्वारा बैरनों की शक्ति को कुचला। हेनरी अष्टम ने रोम से सम्बन्ध तोड़ लिया, चर्म-विहारों की सम्पत्ति जब्त कर ली, इंगलैण्ड में प्रोटेस्टेन्ट धर्म लाया, अपने को चर्च का अधिपति मनवा लिया, और अमीर बैरनों से छल-छद्म उपायों के द्वारा धन बटोरा। 'मेरी' ने इंगलैण्ड को फिर कैथोलिक घोषित कर दिया, हेनरी और एडवर्ड षष्टम के समय के धार्मिक फैसलों को रद्द किया, और सैकड़ों प्रोटेस्टेन्टों को जिन्दा जला डाला। रानी एलिजाबेथ ने ऐंगलिकन चर्च की स्थापना की, रोम से सम्बन्ध फिर तोड़ा, और शासक (Sovereign) को फिर चर्च का अधिपति बनाया। उसकी वैदेशिक नीति उसी की इच्छानुकूल बरती जाती थी। ट्यूडर शासकों का निरंकुश शासन प्रत्यक्ष है। वे जब चाहते पार्लियामेन्ट बुलाते, भंग करते, और जो चाहते पार्लियामेन्ट से करवा लेते थे। मध्यमवर्ग या पार्लियामेन्ट ट्यूडर-शासकों का स्वेच्छाचारी शासन पंसद करते थे क्योंकि सभी बैरनों की गुटबन्दी के अत्याचार से पीड़ित थे, अराजकता से ऊब गये थे, शान्ति के इच्छुक थे, व्यापार और उद्योग की उन्नति चाहते थे। रेनेसां, भौगोलिक खोज, और जटिल वैदेशिक नीति में कुशल इन शासकों की सफलता पर ये लोग विश्वास करते थे। इसलिए ट्यूडरों का स्वेच्छाचारी शासन जनप्रिय यद्यपि अनियन्त्रित राजतन्त्र था। स्वेच्छाचारी शासन उस युग के लिए स्वाभाविक था। भारत में मुगलों का साम्राज्य, फ्रांस में लूई चौदहवां का राज्य, स्पेन, रूस सभी देशों में स्वेच्छाचारी और योग्य राजाओं का राज्य था, राजतन्त्र सुदृढ़ और निरंकुश था। ट्यूडर-युग भी अपवाद नहीं कहा जा सकता।

ट्यूडर युग का वैधानिक महत्व

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर ट्यूडर युग की एक विशेषता भी थी। यद्यपि ट्यूडर राजा जो चाहते कर सकते थे, पर तब भी वे बराबर ही पार्लियामेन्ट के द्वारा अपने कार्यों की स्वीकृति करा लेते थे। यदि वे चाहते तो पर्लियामेन्ट नहीं ही बुलाते, पर उन्होंने ऐसा नहीं किया और यह बड़ा ही महत्त्वपूर्ण बात है। हेनरी अष्टम और एलिजाबेथ बराबर देश की प्रमुख भावना और विचार-धारा से अपने को अवगत रखते थे। हेनरी सप्तम और उसके उत्तराधिकारियों ने स्थायी सेना और केन्द्रीय नौकरशाही पर ही निर्भर नहीं किया बल्कि इन्होंने इंगलैण्ड की प्राचीन वैधानिक संस्थाएं जैसे पार्लियामेन्ट और सामान्य-न्याय को राजशक्ति पर निग्रह का नहीं वरन् राजशक्ति का उपयोग का साधन बनाया। इससे देश में कानून व विधान के प्रति आज्ञाकारिता या भक्ति का अभ्यास हो गया और जनता और पार्लियामेन्ट को उचित अनुभव भी प्राप्त हुआ, भविष्य के लिए जिसका महत्व बहुत है। फ्रांस में वहां के स्वेच्छाचारी और कुशल राजाओं ने १६१४ से वहां की पार्लियामेन्ट (States General) को नहीं ही बुलाया। पर ट्यूडर राजाओं ने पार्लियामेन्ट को बराबर बुलाया। इंगलैण्ड में जो धार्मिक उलट-फेर हुये उसकी स्वीकृति पार्लियामेन्ट ने दी; पार्लियामेन्ट में पास कानूनों से ही पहले रोम के चर्च से सम्बन्ध विच्छेद किया गया, फिर उस सम्बन्ध को जोड़ा गया, और फिर उस सम्बन्ध को तोड़ कर ऐंगलिकन चर्च की स्थापना हुई। राजा को धन की आवश्यकता थी, और राजा किसी न किसी प्रकार से धन वसूलता रहा, पर महत्वपूर्ण बात यह है कि वह अपने इन कार्यों को भी पार्लियामेन्ट से वैध करा लेता था। अतः इसका फल यह हुआ कि पार्लियामेन्ट को राजशासन में भाग लेने का अनुभव हो गया। कुशल राजाओं के मातहत में इसे शासन-सम्बन्धी उचित शिक्षा भी मिल गई और पार्लियामेन्ट का अधिकार है कि वह राजशासन में भाग ले, इस दावा के लिए पूर्व-दृष्टान्त (Precedents) भी मिल गये। ट्यूडर-युग में राज की शक्ति बहुत बढ़ गई थी। धार्मिक और आर्थिक समस्याएं राज-समस्याएं हो गई थीं। राज का धर्म, व्यापार, सभी क्षेत्रों

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत हुई, अंगरेजी भाषा और वेशभूषा को अपनाया गया और प्रत्येक फ्रांसीसी चीज के प्रति उपेक्षा और कभी स्पष्ट विरोध का भी भाव प्रदर्शित किया गया। राष्ट्रीय चेतना की इस अपूर्व प्रगति का स्वाभाविक परिणाम था राष्ट्रीय-सभा (Parliament) का द्रुततर विकास।

एडवर्ड तृतीय के राज्यारोहण (१३२७) से लेकर हेनरी षष्ठ (१४६१) का राज्यच्युत् होने तक पार्लियामेन्ट का अधिकार बहुत बढ़ गया। पार्लियामेन्ट की रूपरेखा-दो सदनों में विभक्त होना निश्चित हो गई, और हाउस आफ् कामन्स् के आर्थिक और विधानसम्बन्धी (Legislative) अधिकार स्थापित हो गये। १३७६ में हाउस् आफ् कामन्स् ने राजा के उच्च अफसरों पर इलजाम लगाकर लार्डस् की सभा में मुकदमा चलाने का अधिकार पहले-पहल ले लिया। इसे **Impeachment** कहा जाता है, और इस उपाय से हाउस आफ् कामन्स् की नीति के प्रतिकूल चलने वाले मन्त्रियों को दण्ड दिया जा सकता था। पार्लियामेन्ट का कानून-सम्बन्धी (Legislative) अधिकार का आरम्भ १३हवीं सदी ही में हो गया था। राजा के पास व्यक्ति या किसी वर्ग के प्रार्थनापत्र पहुँचते थे जिनमें शिकायतें दूर करने के लिए निवेदन रहता था। राजा पार्लियामेन्ट में ही इन आवेदन पत्रों पर विचार करता था, और अपना निर्णय देता था। हाउस् आफ् कामन्स् से भी ऐसे प्रार्थना पत्र राजा के पास पहुँचते थे। राजा ही के नाम से ही ये आवेदन भेजे जाते थे। पार्लियामेन्ट में इन आवेदन-पत्रों पर विचार होता था, और शिकायतें दूर करने के उपाय सोचे जाते थे। राजा या उसके मंत्री या उसके न्यायाधीश ही पार्लियामेन्ट में इन आवेदन-पत्रों का फैसला सुनाते थे। हेनरी षष्टम के समय में अधिक महत्वपूर्ण प्रार्थना-पत्र हाउस् आफ् कामन्स् से एक विधेयक (Bill) के रूप में पेश होने लगे, और पार्लियामेन्ट से 'पास' होकर कानून बन जाते थे। पार्लियामेन्ट का कानून-सम्बन्धी अधिकार का

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह श्रीगणेश था, और आगे चल कर यह सिद्धान्त मान लिया गया कि प्रत्येक कानून को पार्लियामेन्ट में 'बिल' की शकल में पास होना होगा। १३९९ में रिचर्ड द्वितीय का गद्दी से उतारा जाना और हेनरी चतुर्थ का गद्दी पर बैठना एक महत्वपूर्ण घटना है। रिचर्ड एक क्रूर राजा था और उसका यह कहना था कि कानून का बनानेवाला राजा है, राजा से ऊपर कोई कानून नहीं है। उसके अत्याचारी और अयोग्य शासन का परिणाम था विद्रोह। पार्लियामेन्ट ने उसे गद्दी से उतार दिया और हेनरी चतुर्थ को राजा माना। राजा कानून से बाहर नहीं है, यह सिद्धान्त फिर दृढ़ रूप से दुहराया गया। पार्लियामेन्ट का राजगद्दी पर अधिकार भी स्पष्ट हो गया। हेनरी चतुर्थ का रिचर्ड के बाद राजगद्दी पर सर्वोत्तम अधिकार नहीं था। इसलिए उसका राजा होना इस सिद्धान्त की पुष्टि करता है कि पार्लियामेन्ट की स्वीकृति राजपद के लिए पैत्रिक अधिकार से अधिक जरूरी है। पार्लियामेन्ट की अनुमति या स्वीकृति राजा के लिए आवश्यक है, यह निष्कर्ष प्रत्यक्ष है।

अतः पार्लियामेन्ट ने पंद्रहवीं सदी के मध्य तक अपने सभी जरूरी अधिकारों को प्राप्त कर लिया था, जिसके बल पर राज्य में सार्वभौम सत्ता स्थापित हो सकती थी, और राजा एक वैधानिक राजा ही रह सकता था। पार्लियामेन्ट की रूप रेखा भी निश्चित हो चुकी थी। पर पार्लियामेन्ट का तो राजविषयों या राजा पर अधिकार हो चुका था, पर पार्लियामेन्ट स्वयं ही, कौमन्स्-सभा भी, वैरनों की दलबन्दी का अखाड़ा बनी हुई थी, और इस समय का 'पार्लियामेन्ट के द्वारा शासन' अराजकता का दूसरा नाम था। पार्लियामेन्ट को अधिकार तो प्राप्त थे पर उनका उपभोग करने की उसे शिक्षा या अनुभव नहीं था, और वैरनों की गुटबन्दी से बचने की शक्ति भी उसे नहीं थी। देश में पार्लियामेन्टरी-शासन की परिपाटी दृढ़ हो, इसलिये यह आवश्यक था कि वैरनों की शक्ति कम हो और पार्लियामेन्ट को आवश्यक अनुभव और शिक्षा मिले।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर आधिपत्य था। राजा की शक्ति के साथ-२ पार्लियामेन्ट की शक्ति बढ़ी, क्योंकि राजा बराबर पार्लियामेन्ट को अपने साथ रखता था, उसकी स्वीकृति मौखिक ही सही, अवश्य ले लेता था। इसलिए पार्लियामेन्ट ट्यूडर-शासन के कारण शक्तिशाली, अनुभवी और आत्मविश्वासी हो गई थी। सच पूछा जाय तो पार्लियामेन्ट अब सर्वयोग्य (omnicompetent) हो गई थी। वह देश में कोई भी कानून बना सकती थी। ट्यूडर युग के सुदृढ़ शासन के बाद स्वेच्छाचारी शासन की आवश्यकता भी खत्म हो गई। बैरनों की शक्ति का नाश कर दिया गया था, जिनसे आक्रान्त होकर ही देश ने राजा का स्वेच्छाचारी शासन' स्वेच्छा से मान लिया था। स्पेनिश-आर्मडा की पराजय (१५८८) के बाद किसी विदेशी आक्रमण का भय भी जाता रहा। जनता में उत्साह और आत्मविश्वास की लहर आ गई। मध्यमवर्ग अधिक समृद्ध और महत्वाकांक्षी हो गया था। यह वर्ग स्वभावतः स्वतन्त्रता-प्रेमी था, और अब यह विद्या और राजशासन में अनुभव प्राप्त कर राजनीति में सक्रिय भाग लेने के लिए तैयार हो गया था। बैरनों का डर भी खत्म हो गया था, और पार्लियामेन्ट अब अपने को यथेष्ट अनुभवी और शिक्षित समझती थी और राजशासन में अब प्रत्यक्ष भाग लेने के लिए तैयार थी। ट्यूडर काल में भी पार्लियामेन्ट एकदम गूंगी गवाह नहीं थीं। मेरी ने जब स्पेन का राजा से विवाह करना निश्चय किया तब कामन्स्-सभा ने इसके विरोध में रानी को प्रार्थनापत्र भेजा था। एडवर्ड के समय में कृषिसुधार सम्बन्धी प्रस्ताव को पार्लियामेन्ट ने नहीं पास किया था। एलिजाबेथ के अन्तिम दिनों में पार्लियामेन्ट ने कई प्रश्नों पर दबी जबान से विरोध प्रकट किया था। स्टूअर्ट-काल में अब खुला विरोध होना स्वाभाविक था। पार्लियामेन्ट में भाषण की स्वतन्त्रता और सदस्यों की वैयक्तिक स्वतन्त्रता (Freedom from arrest) का हेनरी ने आदर किया, और उसने यह कहा कि राज में राजा और पार्लियामेन्ट साथ-२ बंधे हैं "We be informed by our judges that we at no time stand so high in

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

our state royal as in the time of Parliament, when we as head and you as members are conjoined and knit together in one body-politic."

४

इस बदली हुई हालत को स्टुअर्ट राजाओं ने नही समझा। उनका सिद्धान्त था कि राजा ईश्वर का दूत है और किसी को राजा का विरोध करने का का अधिकार नहीं है (Divine Right of Kings)। योरप में उस समय स्वेच्छाचारी-शासन ही का जमाना था। लूइ चौदहवां ने कहा था कि "मैं ही राज्य हूं," "I am the State"। वहाँ की पार्लियामेन्ट यदा कदा ही बैठती थी, और १६१४ ई० के बाद से तो वह बुलाई ही नहीं गई थी। States-General इंगलैण्ड की पार्लियामेन्ट के समान शक्तिशाली भी नहीं था, और न उसने राजा को कर लगाने की स्वीकृति देने का अधिकार का भी दावा किया था। लूई चौदहवां जैसा चाहता करता था, और फ्रांस को अपने महत्वाकांक्षी युद्धों में जूझाता रहा, और देश का धन ऐश-इशरत में खर्च करता रहा। पर उसे रोकनेवाला कोई भी नहीं था। वह तो अपने को ईश्वर के सिवा किसी का उत्तरदायी नहीं समझता था। पर्शिया और रूस में भी स्वेच्छाचारी शासन काफी सफल रहा। होहेनजोर्लन वंश के राजाओं के समय में पर्शिया का उदय हुआ। फ्रेडरिक् विलियम द्वितीय ने पर्शिया की सैन्य शक्ति सुदृढ़ किया और राज्य की आय को बढ़ाया। उसका पुत्र फ्रेडरिक्-महान् प्रजा का शुभचिन्तक था। उसने देश के उद्योगों को बढ़ावा दिया, शिक्षा और विद्या को प्रोत्साहित किया, और योरोप की राजनीति में सक्रिय भाग लेकर पर्शिया राज्य की सीमा को बढ़ाया; पोलैन्ड के विभाजन में उसका हाथ था। पोलैन्ड का यही दोष था कि वह चारो तरफ लालची गृद्ध-राष्ट्रों से घिरा था, और स्वयं

योरोप में निरंकुश शासन की सर्वव्यापकता

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमजोर था। पर्शिया, रूस और आस्ट्रिया ने मिल कर इस देश को आपस में बांट लिया। पोलैण्ड फिर १९१८ में ही पुनर्जीवित हुआ। फ्रेडरिक् सचमुच में राज का सर्वेसर्वा था। राजा की शक्ति को नियंत्रित करने की हिम्मत किसी को नहीं थी। रूस में भी इसी प्रकार का प्रजाहितकारी पर निरंकुश शासन प्रचलित था। १६८९ ई० तक रूस एक पिछड़ा देश था, पर पीटर महान् जब १६८९ में गद्दी पर आया उसने देश को योरप की राजनीति में हस्तक्षेप करने के योग्य बनाने का निश्चय किया। रूस में योरप की संस्कृति लाने का श्रेय उसी को है। योरप के बड़े-२ उन्नत राष्ट्रों के कारीगर, स्थापत्यक, वैज्ञानिक और विद्वानों को उसने रूस बुलाया। रूस की नाविक-सेना का संगठन किया। अपनी नयी राजधानी संत पीटरस्वर्ग उसने पार्कों, उद्यानों इत्यादि से सुशोभित किया। उत्तर में कई बाल्टिक-प्रदेश को रूस में मिला लिया गया और दक्षिण-पश्चिम में उसकी आँख कुस्तुन्तिनिया पर लगी थी। वह वास्तविक में सफल शासक था, पर था एकदम निरंकुश। रूस की रानी कैथेराइन द्वितीय (१७६२) भी निरंकुश शासक थी, और योरोपियन संस्कृति में रंगी थी। पोलैण्ड के घृणित विभाजन में उसका भी हाथ था। आस्ट्रिया की रानी मेरिया टेरेसा और उसका पुत्र जोसेफ द्वितीय भी निरंकुश शासक थे। जोसेफ द्वितीय के विचार उच्च थे, वह अपने साम्राज्य के विभिन्न जातियों (Nationalities) को एक बनाना चाहता था, और जनता की भलाई करना चाहता था। अतः स्वेच्छाचारी शासन ही इस युग की परिपाटी थी, राजा ही सबकुछ था; प्रजा की भलाई किस चीज में है इसका निश्चय करनेवाला राजा था। राजा प्रजा का शुभचिन्तक भले ही रहा हो और इन राजाओं ने देश का भला भी किया, पर प्रजा का अधिकार कुछ नहीं था। राजा की मर्जी ही कानून था।

स्टूअर्ट राजा भी इसी सिद्धान्त पर चलनेवाले थे। उनका यह कहना था कि पार्लियामेन्ट के जो भी अधिकार हैं वे राजा के दिये

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए हैं, और राजा इन अधिकारों को वापस भी ले सकता है। राजा के पार्लियामेन्ट से विरुद्ध पार्लियामेन्ट का कोई अधिकार नहीं है। पार्लियामेन्ट झगड़ा होने के को राजशासन में हस्तक्षेप करने का कोई हक नहीं है। मुख्य कारण राजा पार्लियामेन्ट की अनुमति या स्वीकृति के आधार पर नहीं, वरन् दैवी अधिकार के बल पर राजशासन करता है। उपरोक्त विचार भले ही योरप के अन्य राष्ट्रीय-राज्यों में निर्विरोध मान्य हों, पर इंगलैण्ड में ऐसा सम्भव नहीं था। यहाँ पार्लियामेन्ट ट्यूडर राजाओं के शासन के कारण अनुभवी और शासन में भाग लेने का अधिकारी बन चुकी थी। इसलिए पार्लियामेन्ट और स्टूअर्ट राजाओं में मौलिक मतभेद था। स्टूअर्ट-वंश के राजा वही अधिकार का दावा करते थे जिसका व्यवहार ट्यूडरों ने किया था। पर फर्क यह था कि जहाँ ट्यूडर-लोग व्यावहारिक फायदा उठा कर ही सन्तुष्ट थे, स्टूअर्ट इन अधिकारों को सैद्धान्तिक आधार पर मनवाने को व्यग्र थे, खासकर जब ट्यूडर काल के पार्लियामेन्ट से पार्लियामेन्ट अब अधिक प्रौढ़ा और आत्मविश्वासी हो गई थी। स्टूअर्ट राजा जेम्स और उसका पुत्र चार्ल्स प्रथम बड़े जिद्दी स्वभाव के थे। इसलिए समझौता की आशा कम थी। जेम्स और चार्ल्स कट्टर ऐंग्लिकन थे, पर पार्लियामेन्ट में प्यूरिटनों का बहुमत था। इस धार्मिक मतभेद का प्रभाव राजनीति के क्षेत्र पर भी पड़ा। चार्ल्स स्पेन से मैत्री चाहता था, फ्रांस से भी दोस्ती करना चाहता था, पर इन दोनों देशों की धार्मिक नीति प्यूरिटनों को असहनीय थी। अतः राजा की वैदेशिक नीति के प्रश्न पर भी राजा और पार्लियामेन्ट में झड़प हो जाती थी।

उपरोक्त कारणों से राजा और पार्लियामेन्ट में झगड़ा प्रथम स्टूअर्ट राजा के समय से शुरू हुआ। जेम्स ने पार्लियामेन्ट को राज की नीति-निर्देशन में हस्तक्षेप करने के अयोग्य बताया। इसके जवाब में पार्लियामेन्ट ने १६२१ में एक प्रस्ताव पास किया जिसमें यह घोषणा की गई कि "पार्लियामेन्ट की स्वतन्त्रता और कार्यक्षेत्र इंगलैण्ड की जनता के प्राचीन मौरुसी अधिकार हैं, और राजा, राज धर्म, देश की रक्षा, कानून,

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रजा की शिकायत इत्यादि मामलों पर बहस और परामर्श करना पार्लियामेन्ट का उचित अधिकार है; और इन प्रश्नों पर विचार करने में पार्लियामेन्ट को भाषण करने की पूरी स्वतन्त्रता है, और होनी चाहिये"। दैवी सिद्धान्त के माननेवाले स्टूअर्ट राजाओं के लिए यह खुली चुनौती थी। इसका परिणाम यह हुआ कि वैधानिक युद्ध तीव्रतर होता गया। इस समय पिम्, इलिअट् और न्यायाधीश कोक ने वैयक्तिक स्वतन्त्रता और पार्लियामेन्ट के अधिकार के सिद्धान्तों के लिये राजा का विरोध का नेतृत्व किया। पार्लियामेन्ट ने चार्ल्स प्रथम के मित्र और असफल मंत्री ड्यूक औफ वकींघम पर देशद्रोह का मुकदमा (Impeachment) चलाया। चार्ल्स ने पार्लियामेन्ट को मुल्तवी कर दिया। पर जब पार्लियामेन्ट १६२८ में फिर बैठी तो उसने राजा को Petition of Right पर, जिसमें राजा के विरुद्ध शिकायतें दर्ज थीं और राजा को इन्हें दूर करने को कहा गया था, दस्तखत करने को बाध्य किया। युद्ध में अर्थाभाव के कारण राजा ने इसे मान लिया, पर कुछ समय के बाद उसे उल्लंघन करना शुरू किया। जब पार्लियामेन्ट में विरोध तीव्र होने लगा, तब १६२९ में उसने पार्लियामेन्ट को भंग कर दिया, और ११ वर्षों तक बिना पार्लियामेन्ट का ही शासन किया। ११ वर्ष का यह निरंकुशशासन (Tyranny) में बिना पार्लियामेन्ट की अनुमति से कर लगाये गये; विशेष न्यायालयों में राजा के विरोधियों को कड़ा दण्ड दिया गया; स्कॉटलैंड, जहां कि कैलविन पंथी Presbyterians का बहुमत था, चार्ल्स ने ऐंग्लिकन चर्च की स्थापना करने की ठानी, और इस काम में उसे आर्क-बिशौप लौड (Laud) प्रेरित करता था; आयरलैण्ड में वेन्टवर्थ अपनी क्रूरनीति (Policy of Thorough) के लिए बदनाम था। इन सब कारणों से चार्ल्स के विरुद्ध जनमत जोर पकड़ रहा था। स्कॉटलैंड में खुला विद्रोह हो गया। चार्ल्स को युद्ध के लिए धन की जरूरत हुई और उसे पार्लियामेन्ट बुलाना पड़ा। पार्लियामेन्ट अड़ गई कि जब तक उसकी शिकायतें दूर नहीं होंगी तब तक राजा को आर्थिक मदद नहीं

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलेगी। चार्ल्स को झुकना पड़ा। जिस पार्लियामेन्ट ने निरंकुश शासन को खत्म करना चाहा उसे Long Parliament कहते हैं, क्योंकि १६४१ से लेकर १६६० तक यह पार्लियामेन्ट कायम रही। इस पार्लियामेन्टने कई महत्वपूर्ण कानून पास किया। तीन वर्ष का अन्त के पहले राजा को पार्लियामेन्ट बुलाना होगा; विशेषन्यायालय अवैध घोषित हुये; बिना पार्लियामेन्ट की अनुमति के लगाये कर या धन इकट्ठा करने के अन्य उपाय अवैध माने गये और लौड और वेन्टवर्थ को दण्ड दिया गया। इन कानूनों के द्वारा राजा को पार्लियामेन्ट पर निर्भर रहने को वाध्य किया गया। युद्ध की परिस्थिति के कारण चार्ल्स को इन प्रस्तावों को मान कर कानून बनने देना पड़ा।

लम्बी पार्लियामेन्ट (Long Parliament) का महत्व

पर राजा और पार्लियामेन्ट में हार्दिक मेल नहीं हुआ था। सेना पर किसका अधिकार रहे इस प्रश्न पर विरोध ने उग्र रूप धारण कर लिया। अन्त में १६४८ में गृह-युद्ध छिड़ गया। धर्म के प्रश्न पर कामन्स् सभा में मतभेद उठ खड़ा हुआ और चार्ल्स ने इसका फायदा उठाया। पार्लियामेन्ट विशेषकर कामन्स्-सभा ने इस गृह-युद्ध का संचालन किया, और १६६० तक पार्लियामेन्ट के ही नाम पर शासन होता रहा। गृहयुद्ध में पार्लियामेन्ट की विजय हुई। क्रामवेल की सैनिक-योग्यता को ही इस विजय का श्रेय है। चार्ल्स प्रथम को देशद्रोह के अपराध में प्राणदण्ड की सजा मिली (३० जनवरी, १६४९)। इंगलैण्ड गणतन्त्र (Republic) घोषित हुआ। क्रामवेल के ही हाथ में वास्तविक सत्ता थी। उसने कई लिखित विधानों (Written Constitutions) का प्रयोग किया। पर अभाग्यवश किसी भी पार्लियामेन्ट से उसकी पटी नहीं। वह वराबर पार्लियामेन्ट के सहयोग से शासन करना चाहता था, पर असफल रहा। उल्लेखनीय बात यह है कि क्रामवेल न तो पार्लियामेन्ट के साथ, और न इसके बिना शासन कर सका। क्रामवेल के प्रयोग निष्फल हुये। जनसाधारण उसकी नैतिक-नीति के विरोध में थे,

गृहयुद्ध

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि प्रत्येक प्रकार के आमोद-प्रमोद पर प्रतिबंध था। उसका शासन सैनिक-शासन था, और अंगरेजों को अतिअप्रिय। गणतन्त्र, जिसमें राजा का कोई स्थान न हो, अंगरेजों की परम्परा के विपरीत था, इसलिए और भी अप्रिय।

पर क्रामवेल के वैधानिक प्रयोग असफल भले हों, पर उनका महत्व है। यह तय हो गया कि गणतन्त्र (Republic) इंगलैण्ड का वैधानिक आधार नहीं हो सकता है। सैनिक-शासन का कटु अनुभव भी भविष्य के लिए महत्वपूर्ण था। ऐसा प्रयोग फिर नहीं हुआ। क्रामवेल का पार्लियामेन्ट के सहयोग से शासन करने का अटूट प्रयास से पार्लियामेन्ट की अनिवार्यता सिद्ध हो गई। जब १६६० में चार्ल्स द्वितीय को राजा माना गया और स्टूअर्ट वंश की पुनर्स्थापना हुई, राजा के लिए इन प्रतिष्ठित सिद्धांतों को ध्यान में रखना जरूरी हो गया। इस बात को कभी भुलाया नहीं जा सकता था कि पार्लियामेन्ट ही चार्ल्स प्रथम को प्राणदण्ड दिया था, और पार्लियामेन्ट ने ही चार्ल्स द्वितीय को राजगद्दी पर बैठने के लिए आमन्त्रित किया। पार्लियामेन्ट का राजा पर अधिकार अब प्रत्यक्ष था। राजा अपनी शक्ति की खामियां (Limitations) से अवगत था, और पार्लियामेन्ट को अपनी शक्ति का पता था। चार्ल्स बराबर इसे याद रखता था कि पार्लियामेन्ट का खुला विरोध करने के ही कारण उसके पिता को राज और प्राणों से हाथ धोना पड़ा और उसे देश से निर्वासित रहना पड़ा था। पार्लियामेन्ट ने भी यह महसूस किया कि राजा जरूरी है और राजा और पार्लियामेन्ट का सम्बन्ध अविच्छिन्न है। इनमें असहयोग और विरोध का परिणाम देश के लिए बुरा होता है, विजयी कोई भी दल हो। यह हाल के इतिहास से बिल्कुल स्पष्ट था।

क्रामवेल की असफलता पर उसका महत्व

राजा की पुनर्स्थापना और इसका महत्व

चार्ल्स द्वितीय कुशल राजा था। अपनी चतुराई से वह पार्लियामेन्ट को अपने बस में रखने का प्रयास कर रहा था। पर १६८५ में उसकी मृत्यु के बाद उसका भाई जेम्स द्वितीय गद्दी पर बैठा। यह बड़ा जिद्दी स्वभाव का था, और राजा का दैवी-अधिकार का सिद्धान्त पर विश्वास

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता था। वह कैथोलिकों की मदद करना चाहता था, और फ्रांस का स्वेच्छाचारी शासक लूई चौदहवां से मैत्री-सम्बन्ध रखता था। पार्लियामेन्ट से पास कानूनों की अवज्ञा कर वह कैथोलिकों और ऐंग्लिकन-चर्च के अन्य विरोधियों को सरकारी नौकरी दे रहा था। राजा के विशेषाधिकार का दुरुपयोग कर जेम्स ने प्रथम मुक्तिपत्र की घोषणा की कि टेस्ट प्रभृति कैथोलिक विरोधी कानूनों का व्यवहार स्थगित रहेगा। इस घोषणा से चर्च और जनसाधारण सशंकित हो गये। उसने दूसरा मुक्तिपत्र की घोषणा (Second Declaration of Indulgence) को प्रत्येक चर्च में पढ़े जाने की आज्ञा दिया (१६८८)। कैन्टर्बरी का आर्कबिशौप और और अन्य बिशौप ने इसे पढ़ना नामञ्जूर कर दिया, और उन पर मुकदमा चलाया गया। ३० जून १६८८ को न्यायालय ने इन्हें निर्दोष घोषित किया। जनता की खुशी का क्या कहना। जेम्स के विरुद्ध उग्र जनमत का यह प्रत्यक्ष लक्षण था। जनता चुप थी कि जेम्स के मरने के बाद उसकी पुत्री मेरी और ऐन् रानी होगी, और ये दोनों प्रोटेस्टेन्ट थीं। पर इसी समय यह घोषणा हुई कि राजा को पुत्र उत्पन्न हुआ है। जन-साधारण में इससे बड़ा आतंक छा गया क्योंकि उन्हें विश्वास था कि जेम्स का पुत्र, जो अब राज्य का उत्तराधिकारी था, अवश्य ही बड़ा होकर जेम्स की राह पर चलेगा। अतः अब चुप बैठना अनुचित था। बिशौपों की रेहाई से उत्साहित नेताओं ने विलियम और मेरी को इंगलैण्ड का राजमुकुट पहनने का निमन्त्रण दिया। जेम्स एकदम असहाय था, और वह भाग गया (१६८८)। विलियम और मेरी इंगलैण्ड के संयुक्त-शासक हुये।

रक्तहीन-क्रान्ति १६८८

इतिहास में यह घटना 'शान्तिमयी क्रान्ति' कही जाती है। जेम्स ने पार्लियामेन्ट का निरादर किया था, और अपने को वह कानून के ऊपर समझता था। ऐसे राजा को देश और गद्दी छोड़ना पड़ा। राजगद्दी पर बैठने के पहले विलियम को पार्लियामेन्ट के अधिकार का घोषणापत्र मानना पड़ा था, (Declaration of Rights), और तभी वह

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा माना गया था। इससे यह स्पष्ट है कि राजा बनाना और मिटाना पार्लियामेन्ट का अधिकार था, और बिना पार्लियामेन्ट की शर्तों को माने राजा बनना या रहना नामुमकिन था। राजा और पार्लियामेन्ट में पार्लियामेन्ट ही वास्तविक सत्ता थी, यह अब स्पष्ट था। जब विलियम राजा हुआ तब १६८६ मई में पार्लियामेन्ट का अधिकार-घोषणा-पत्र नियमित रूप से एक विधेयक (Bill) के रूप में प्रस्तावित हुआ (Bill of Rights), और कानून बन गया। इस कानून के मुताबिक चर्च के न्यायालय या विशेष न्यायालय अवैध घोषित किये गये, बिना पार्लियामेन्ट की स्वीकृति के सेना-संगठन गैर-कानूनी हो गया; बिना पार्लियामेन्ट की अनुमति के राजा को कानून को मुअत्तिल करने (Dispensing and Suspending powers) और कर लगाने के अधिकार नहीं हैं, भाषण-की-स्वतन्त्रता पार्लियामेन्ट के सदस्यों का अधिकार है, पार्लियामेन्ट का चुनाव स्वतन्त्र हो, और न्यायशासन पक्षपातहीन और दया के आधार पर रहे; प्रोटेस्टेन्टों को अपने धर्म का व्यवहार करने में पूरी स्वतन्त्रता हो इत्यादि-२। १६८६ में धार्मिक-सहिष्णुता का कानून (Toleration Act) पास हुआ जिसके मुताबिक प्रोटेस्टेन्टों को अपने धर्माचरण के लिए जुर्माना देना बंद हो गया। Mutiny Act (सेना-कानून) के अनुसार सेना के खर्च के लिए राजा को पार्लियामेन्ट से प्रतिवर्ष स्वीकृति लेना वाध्य हो गया। पार्लियामेन्ट की सालाना बैठक जरूरी हो गयी। पार्लियामेन्ट का तीन-साला कानून (Triennial Act 1689) के अनुसार प्रत्येक तीन वर्ष के बाद नयी पालियामेन्ट का चुनाव जरूरी था। अब लम्बी पार्लियामेन्ट (Long Parliament) के अत्याचार की पुनरावृति असम्भव थी। बिना पार्लियामेन्ट के राजा के लिये शासन चलाना असम्भव था। अब चार्ल्स प्रथम का ११ वर्षीय निरंकुश शासन दुहराया नहीं जा सकता था। १७०१ के उत्तराधिकार के कानून (Act of Settlement) ने राज्य के उत्तराधिकार का नियम निश्चित किया। कोई कैथोलिक इंगलैंड का

बिल आफ् राइट्स

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा नहीं बन सकता था। रानी ऐन् के मरने के बाद राजकुमारी सोफिया की सन्तान का ही राज्य पर अधिकार घोषित हुआ, और हेनोवर वंश का प्रथम जार्ज गद्दी पर आया। पार्लियामेन्ट को राज्य के उत्तराधिकार (Order of Succession) के नियम पर पूर्ण अधिकार है, यह स्पष्ट हो गया।

अतः इस अपूर्व रक्तहीन क्रान्ति का प्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ कि राजा और पार्लियामेन्ट में मूल प्रश्न पर जो झगड़ा चला आ रहा था, उसका अन्तिम फैसला पार्लियामेन्ट के पक्ष में हुआ, और पार्लियामेन्टरी-शासन इंगलैण्ड में तभी से स्थायी रूप से स्थापित हो गया। बिना पार्लियामेन्ट के सक्रिय सहयोग के राजा शासन नहीं कर सकता था। राजा की शक्ति की अभिव्यक्ति पार्लियामेन्ट में ही होती थी। बिना पार्लियामेन्ट के राजा निरुपाय और असहाय था, पार्लियामेन्ट के साथ राजा की शक्ति अजेय थी। राजसत्ता पार्लियामेन्ट में राजा (King-in-Parliament) के पास हस्तान्तरित हो गई। जार्ज प्रथम और द्वितीय के राज्यकाल में राजा के विशेष अधिकार, (Prerogatives) जैसे मंत्रियों की नियुक्ति और बर्खास्तगी, पार्लियामेन्ट की बैठक बुलाना और भंग करना, चर्च और राज के उच्च कर्मचारियों की बहाली, इत्यादि भी अब राजा के हाथ से पार्लियामेन्ट के उत्तरदायी मंत्रियों के हाथ में आ गये। राजा के अधिकार बहुत कम हो गये और पार्लियामेन्ट के उत्तरदायी मन्त्रियों के अधिकार असीम हो गये। इसका अर्थ यह था कि पार्लियामेन्ट के अधिकार-क्षेत्र का विस्तार हो गया। पार्लियामेन्टरी-शासन में राजा का निर्दिष्ट स्थान है। सभी कार्य राजा के नाम से ही होते हैं, राजा के हस्ताक्षर के बाद ही कानून बनते हैं। वैदेशिक नीति, युद्ध या शान्ति, अफसरों की बहाली, इत्यादि कार्य राजा ही के नाम से होते हैं, पर असल में पार्लियामेन्ट के उत्तरदायी-मन्त्री ही वास्तविक कर्त्ता हैं, राजा का अधिकार मौखिक ही रह गया है। कहा जाता है कि यदि पार्लियामेन्ट में राजा का मृत्युदण्ड का भी बिल पास हो जाय

रक्तहीन-क्रान्ति का वैधानिक महत्व

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब भी वैधानिक राजा उसपर दस्तखत कर उसे कानून का रूप देने में नहीं हिचकेगा। राजा कानून और विधान के मातहत हैं। राजा का कार्यक्षेत्र विधान की परिधि में ही सीमित है। पार्लियामेन्ट के इशारे पर चलना राजा का वैधानिक कर्त्तव्य हो गया। पार्लियामेन्ट की सार्वभौम सत्ता पूर्णतया स्थापित हो गयी। कहा जाता है कि सिवा मर्द को औरत बनाना या औरत को मर्द बना देने के इंगलैंड की पार्लियामेन्ट कुछ भी कर सकती है।

पार्लियामेन्टरी शासन-पद्धति और प्रजातंत्र

पार्लियामेन्ट की सार्वभौम सत्ता (Supremacy) स्थापित होना, और प्रजातन्त्र (Democracy) स्थापित होना एक ही चीज नहीं है। प्रजातन्त्र का अर्थ है कि जनसाधारण का शासन पर अधिकार रहे, जनता के चुने प्रतिनिधि ही इस सार्वभौम सत्ता का व्यवहार करें। पर इंगलैंड की पार्लियामेन्ट उस समय जनता की पार्लियामेन्ट नहीं थी, उसके सदस्य जनसाधारण के नुमायन्दे नहीं थे। उस समय तो बड़े २ जमींदारों के गुट का ही बोलवाला था। मतदान के अधिकार भी बहुत ही संकुचित थे। चुनावक्षेत्र भी वस्तुस्थिति को ध्यान में रखकर अरसे से नहीं बदले गये थे। मध्यमवर्ग, बड़े २ नगर, और मजदूर वर्ग के प्रतिनिधि पार्लियामेन्ट में नहीं थे। पार्लियामेन्ट की जीत हुई थी पर जनता का अधिकार पार्लियामेन्ट पर नहीं था। १८ हवीं-१६ हवीं सदी में इस ओर ध्यान दिया गया। मतदान का अधिकार की मांग की गई, और १८३२, १८६७, १८८४-८५, १६१८, १६२८ के सुधार-कानूनों के द्वारा मतदान के अधिकार धीरे २ उदार होते गये, और अब इंगलैंड में बालिग मताधिकार प्रचलित है। प्रत्येक व्यस्क मर्द और औरत को वोट देने का अधिकार है। १८७२ के एक कानून के द्वारा गुप्तमतदान की व्यवस्था है, और इस प्रकार गरीब या नौकर भी स्वतन्त्रता-पूर्वक अपने मतदान का अधिकार का प्रयोग अपने स्वामि के विरुद्ध कर सकते हैं। इंगलैंड में अब पूरा प्रजातन्त्र है

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा वैधानिक प्रधान (Head) है, पार्लियामेन्ट वास्तविक और वैधानिक सर्वेसर्वा है। कामन्स्-सभा के सदस्यों का चुनाव प्रत्येक वयस्क नागरिक के द्वारा स्वतन्त्रतापूर्वक गुप्त-मतदान से होता है।

पार्लियामेन्ट के दो सदन हैं—कामन्स् सभा, और लार्ड्स् की सभा। लार्ड्स् की सभा में पैत्रिक अधिकार के आधार पर बैठनेवालों का बहुमत है। कामन्स् सभा ही जनता की प्रतिनिधि है, और इसलिए इसका महत्व लार्ड्स् की सभा से बहुत ज्यादे है। जनता की प्रतिनिधि रहने के कारण लार्ड्स् सभा ऐसी स्थायी संस्था से कामन्स्-सभा का महत्व अधिक होना स्वाभाविक है। प्रत्येक पांच वर्ष पर कम से कम (पहले सात और इसके पहले तीन वर्ष की मयाद थी) इसे जनता से प्रत्यक्ष साबका पड़ता है, नयी सभा का चुनाव होता है। समय की विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व कामन्स् सभा ही करती है। फिर १९११ के कानून के मुताबिक बजट पर कामन्स् का ही प्रभुत्व है। अर्थ-बिल कामन्स् सभा में ही पहले पेश किए जा सकते हैं, और लार्ड्स् की सभा कामन्स् से पास हुये ऐसे विधेयक पर विचार भले करे उन्हें नामञ्जूर नहीं कर सकती है। कोष पर कामन्स् सभा का अधिकार होना उसे लार्ड्स् से कई गुणा अधिक शक्तिशाली बना देता है। अन्य कानून भी यदि कामन्स सभा में तीन बार दो सेसन में पास हो जायँ, तब लार्ड्स् सभा से नामञ्जूर होने पर भी वह कानून बन जायगा। इसलिए साधारण कानून-सम्बन्धी अधिकार भी कामन्स् सभा को अधिक है। राज्यमन्त्री या मन्त्री-परिषद् स्पष्ट रूप से कामन्स् सभा के उत्तरदायी हैं, और लार्ड्स् में हार जाने पर त्यागपत्र देना उनके लिए जरूरी नहीं है, पर कामन्स् सभा में हारने पर परिस्थिति बदल जाती है। लार्ड्स् की सभा से कामन्स् सभा का अधिक प्रभाव होना एक दिन की चीज नहीं है। इस ओर भी धीरे-धीरे प्रगति हुई। गृह-युद्ध के समय, विशेषकर क्रामवेल के शासन काल में कामन्स् सभा को शासन करने का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त हो गया था,

कामन्स सभा का महत्व

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लार्ड्स् सभा तो कई वर्षों तक मृतप्राय थी। फिर राजा के मन्त्रियों को कामन्स् सभा से सहयोग प्राप्त कर शासन करने में व्यवहारिक सुविधा मालूम हुई, और इसलिए इस ओर अधिक ध्यान दिया गया। ग्लैड्स्टन ने भी कामन्स् सभा का अर्थ-विधेयक (Finance Bill) पर अधिकार-का सिद्धान्त का सफलता पूर्वक प्रतिपादन किया।

५

राजनैतिक दल (Political Parties)

पार्लियामेन्टरी शासन के प्रमुख लक्षण हैं राजनैतिक पार्टियां (दल) और मन्त्री परिषद् (Cabinet System) का विकास। इंगलैंड में राजनैतिक दल और कैबिनेट-प्रथा एक दिन नहीं स्थापित हुई, बल्कि बहुत धीरे-२, अस्पष्टतया, पर रोजमर्रे के अनुभव और दृष्टान्त के ही आधार पर इन संस्थाओं का विकास हुआ। जब तक पार्लियामेन्ट और राजा में 'सार्वभौम सत्ता का स्रोत कौन हैं' इस सिद्धान्त पर झगड़ा होता रहा उस समय तक देश में दो दल ही हो सकते थे—एक राजा का, और दूसरा पार्लियामेन्ट का। इन्हीं दो दलों में गृहयुद्ध छिड़ा था।

पार्लियामेन्ट की सार्वभौम सत्ता का स्वाभाविक परिणाम

पर जब पार्लियामेन्ट का शासन पर अधिकार निश्चित हो गया तब पार्लियामेन्ट में ही भिन्न-भिन्न विचारों के नेता खड़े हो गये। शासन अब एक आदमी (राजा) के इशारे पर नहीं चलता था, बल्कि पार्लियामेन्ट के सैंकड़ों सदस्य अब राजशासन सम्बन्धी समस्याओं पर अधिकारी तौर पर विचार करने लगे और पार्लियामेन्ट में जो निश्चय होगा वही अन्तिम फैसला होगा। इसलिए यह स्वाभाविक था कि इन समस्याओं पर और इन समस्याओं के समाधान पर पार्लियामेन्ट के सैकड़ों सदस्य स्वतन्त्रता पूर्वक विचार करें और उनमें मतभेद हो। पार्लियामेन्टरी शासन में राजनैतिक दलों का विकास इसलिए स्वाभाविक ही नहीं, वरन् जरूरी और लाभप्रद है। किसी एक दल का अधिनायकत्व इस शासन-पद्धति की आत्मा के विरुद्ध है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिए इंगलैंड की पार्लियामेन्ट में राजनैतिक दलों का विकास हुआ। यह ठीक है कि ऐसा सोच-विचार कर नहीं हुआ, बल्कि तत्कालीन व्यवहारिक-राजनीति के दबाव के फलस्वरूप ही चाहे-न-चाहे ऐसे दलों का विकास हुआ।

राजा पार्लियामेन्ट का प्रभाव और उसकी उपयोगिता समझ गया था। चार्ल्स द्वितीय धूर्त राजा था। वह राजा की शक्ति को फिर बढ़ाना चाहता था, पर पार्लियामेन्ट का खुला विरोध कर नहीं, इसका परिणाम वह आप भुगत चुका था। चार्ल्स की नीति यह थी कि पार्लियामेन्ट के ही बहुत से सदस्यों को अपनी ओर कर ले, और पार्लियामेन्ट के आपसी मतभेद से लाभ उठाये। प्रोटेस्टेन्टों को, जो ऐंग्लिकन चर्च को नहीं मानते थे, कई प्रकार के कानूनी प्रतिबन्धों का सामना करना पड़ता था। ऐंग्लिकन चर्च में उच्च ऐंग्लिकन पार्टी (High Church Party) का प्रभाव बढ़ रहा था, चर्च में कई प्रकार के रीति-रीवाज प्रवेश पा रहे थे जो इसे कैथोलिक धर्म के निकट ला रहे थे। पार्लियामेन्ट में ऐसे लोगों का बहुमत था जो High Church की पार्टी को सशंकित दृष्टि से देखते थे, और गैरऐंग्लिकन प्रोटेस्टेन्टों से इनकी सहानुभूति थी। राजा 'हाईचर्च' की मदद करता था। पर असल में चार्ल्स फ्रांस का राजा लूई से मदद पाने की इच्छा में अपने को और इंगलैंड को कैथोलिक बनाने को तैयार था। पर इस षड्यन्त्र का भण्डाफोड़ हो गया। राजा की वैदेशिक और धार्मिक नीति का एक दल ने जोर से विरोध करना शुरू किया। चार्ल्स के बाद उसका पक्का कैथोलिक भाई जेम्स द्वितीय राज्य का उत्तराधिकारी था तब पार्लियामेन्ट में इस संकट को टालने के लिए शैफ्टस्बरी ने Exclusion Bill (१६७६) पेश किया जिससे कैथोलिक जेम्स को राज्य का उत्तराधिकारी न होने दिया जाय। इस प्रश्न पर पार्लियामेन्ट में घोर विरोध शुरू हो गया। दो दल हो गये, एक दल Exclusion बिल का समर्थक था, दूसरा इसका विरोधी। एक दूसरे को ये लोग अपशब्द कहने लगे। विरोधी-दल समर्थकों को Whig

एक्सक्लजन-बिल

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कह कर गाली देता था, और समर्थक-दल विरोधी दल को, 'टोरी' कहता था। इस तरह पार्लियामेन्ट में दो दल 'विग् और टोरी' की उत्पत्ति हुई, और ये दोनों दल उन्नीसवीं सदी तक इंगलैंड की राजनीति पर छाये रहे। आगे चलकर इनका नाम लिबरल (उदारवादी) और कन्जरवेटिव (रूढ़ीवादी) पड़ा। इंगलैंड की विशेषता यह रही है कि यहां दो राजनीतिक दल ही एक बार पनप सके। कभी २ तीन दल भी रहे हैं, पर बहुत कम समय के लिए। अधिकतर दो ही राजनैतिक दलों का प्रभुत्व रहा है। इससे पार्लियामेन्टरी-शासन में सुविधा होती है, सबल सरकार की स्थापना सम्भव रही है, और जनता को भी अपने मतदान का उपयोग करने में सुविधा होती है। योरप के कई पार्लियामेंटरी सरकारें बहुदल की परिपाटी के कारण कमजोर या अस्थायी रही हैं; और इससे देश कमजोर हो जाता है, राजनीति में अस्थिरता रहती है, देश और विदेश सब जगह ऐसी सरकारों में आस्था नहीं रहती है। इंगलैंड की शासन-पद्धति की सफलता का बहुत अधिक श्रेय दो-दल की परम्परा को है। राजनैतिक, सामाजिक और विशेष कर अर्थनीति के आधार पर ही राजनैतिक पार्टियां गठित होती हैं, और चुनाव के पहले अपने २ विचारों का खुल कर प्रचार करती हैं। जिस दल का बहुमत हुआ वह अपने विचारों को देश की जनता का समर्थन-प्राप्त समझता है, और शासनकाल में उसे इस कार्यक्रम को कार्यान्वित करना होता है। विरोधी दल पार्लियामेन्ट के बाहर और अन्दर इस कार्यक्रम की खामियां का प्रचार करता है, और जनमत अपनी ओर खींचने की कोशिश में लगता है। अगले चुनाव में फिर वही नज़ारा सामने आता है। यह क्रम बराबर चल रहा है, इससे देश में राजनैतिक जागृति रहती है, और जनता को राजशासन के कर्णधारों को चुनने और उनकी नीति को प्रभावित करने का मौका मिलता है। सतत सावधान रहना ही स्वतन्त्रता की कीमत है, और प्रजातान्त्रिक

विग् और टोरी

दो-दल व्यवस्था का महत्व

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पार्लियामेन्टरी शासनपद्धति में यह और भी जरूरी है। इंगलैंड की प्रगति से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है।

पार्लियामेन्ट को जब से अपने अधिकार और शक्ति का पता चला तभी से उसकी यह बराबर कोशिश रही कि राजा के मंत्रियों को पार्लियामेन्ट के वश में कैसे रखा जाय। राजा शासन का प्रबन्ध अपने चुने हुये विश्वस्त मंत्रियों या सलाहकारों के द्वारा करता था। जनता पर जो अत्याचार होता था उसका प्रत्यक्ष जिम्मेदार मंत्री ही थे, पर मंत्री राजा के खास नुमायन्दे थे। चौदहवीं सदी में राजमंत्रियों को दण्ड देने का एक उपाय निकाला गया—Impeachment। राजमंत्रियों पर कुशासन का अभियोग कामन्स् सभा लगाता था, और इस मुकदमे की सुनवाई लार्डस् सभा में होती थी। यह एक अदालती कारवाई थी और प्रमाणित अभियोगों पर ही अभियुक्त को सजा मिलती थी। इस उपाय के द्वारा दोषी मंत्री को दण्ड दिया जा सकता था। पर यह तरीका आसान और सीधा नहीं था। यद्यपि स्टूअर्ट काल में इस उपाय का खूब प्रयोग हुआ, पर हर बार Impeachment सफल नहीं हुआ। विशिष्ट अभियोगों के आधार पर ही मुकदमा चलाया जा सकता था। लार्डस् की सभा बराबर कामन्स् का साथ नहीं भी दे सकती थी, और जनविरोधी नीति अपनाने के बावजूद अदालती तरीके से अभियोग नहीं भी प्रमाणित हो सकता था। फिर यह उपाय तो जब मन्त्री अपराध कर चुके हों तभी कारगर हो सकता था, पार्लियामेन्ट के विरोधी मंत्री को दण्ड दिया जा सकता था, पर प्रश्न यह था कि कोई ऐसा उपाय निकले कि राजमंत्री पार्लियामेन्ट का विरोध ही न कर सकें। यह तो तभी सम्भव था कि मंत्री अपने पद पर पार्लियामेन्ट की अनुमति या स्वीकृति से ही रह सकें। स्टूअर्ट-काल में राजा और पार्लियामेन्ट के झगड़ों का एक रूप यह भी था कि पार्लियामेन्ट इस झगड़े का जड़ राजा के बुरे मंत्रियों को समझती थी, और इसलिए उन्हें दण्ड देना चाहती थी, और राजा इसे

मन्त्रियों का पार्लियामेन्ट के प्रति उत्तरदायित्व

इम्पीचमेंट की परिमितता

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनाधिकार समझता था और अपने मंत्रियों को पार्लियामेन्ट के प्रभाव-क्षेत्र से बाहर मान कर पार्लियामेन्ट की अवज्ञा करता था। इन कारणों से पार्लियामेन्ट के कई नेताओं को यह स्पष्ट होने लगा कि राजा के मन्त्रियों का पार्लियामेन्ट का विश्वासपात्र रहना जरूरी है। इसी विचार को सामने रख कर Grand Remonstrance (१६४१) में यह महत्त्वपूर्ण धारा समावेश की गई:-"राजा शासन में सलाह लेने के लिए ऐसे ही विश्वासी सलाहकारों को नियुक्त करेंगे जिनमें पार्लियामेन्ट का विश्वास हो, अर्थात् जो पार्लियामेन्ट के विश्वासपात्र हों।"—इसका अर्थ यह हुआ कि मंत्री पार्लियामेन्ट के प्रति उत्तरदायी हों, और उनकी नियुक्ति का आधार यही हो कि उन्हें पार्लियामेन्ट का विश्वास प्राप्त हो। उत्तरदायीशासन या मंत्रियों का पार्लियामेन्ट के प्रति उत्तरदायी होने की आधुनिक व्यवस्था का बीज हम इस धारा में पाते हैं। गृहयुद्ध में इस सिद्धान्त को भुला दिया गया था और राजवंश की पुनर्स्थापना के समझौता का यह एक अंग नहीं था।

ग्रैन्ड रिमोन्स्ट्रेन्स (Grand-Remonstrance) १६४१

पर वस्तुस्थिति के दबाव से यह सिद्धान्त का स्वयं ही विकास हुआ, और अन्त में इसकी प्रतिष्ठा हुई। राजनैतिक दलों की उत्पत्ति और विकास से इसका घनिष्ट सम्बन्ध है। चार्ल्स द्वितीय के समय में टोरी और विग् दलों की उत्पत्ति हुई। टोरी दल का नेता डैन्बी था और विग् दल का शैफ्ट्स्बरी। इन दलों में भीषण विरोध था—प्रत्येक राजनैतिक और धार्मिक प्रश्नों पर इनके विचार भिन्न थे। अब अपने २ विचारों का प्रचार बड़े उत्साह और उतावलेपन से किया जाने लगा। पार्लियामेन्ट के लिये मेम्बर का चुनाव के समय में अपने-अपने दल के उम्मीदवारों के लिए उग्र रूप से प्रचार होने लगा। भाषणों की भरमार हुई और धन भी खूब खर्च हुआ। प्रत्येक सदस्य अपने दल और दल के नेता के प्रति अटूट विश्वास और भक्ति का भाव रखने लगा। नेता और दल के प्रति वैयक्तिक श्रद्धा और असंदिग्ध

राजनैतिक दल और उत्तरदायित्व का सिद्धान्त

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज्ञाकारिता राजनैतिक दल और कैबिनेट व्यवस्था का आधार है। चार्ल्स द्वितीय के समय में ही इस सिद्धान्त की नींव पड़ी। डैन्बी टोरी था, और इसलिए विगों ने उसके कार्यों की कटु आलोचना करना शुरू किया, और उसे Impeach भी करने की कोशिश की गई। जिन अभियोगों का वह दोषी बताया गया था, वह सब काम उसने राजाज्ञा से किया था, और चार्ल्स ने यह स्पष्ट कर दिया कि डैन्बी ने जो कुछ भी किया उसके ही कहने पर किया है। तब भी डैन्बी को Impeach किया गया। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि राजा के सभी कार्यों का उत्तरदायी मंत्री है, और मंत्री पार्लियामेन्ट में इन कार्यों के लिए दण्डित हो सकता है। मन्त्री का पार्लियामेन्ट के प्रति उत्तरदायित्व का सिद्धान्त की स्थापना में डैन्बी का Impeachment (१६७६) महत्वपूर्ण कदम है। राजनैतिक पार्टियों के विकास के बाद यह स्वाभाविक था कि जिस पार्टी का पार्लियामेन्ट में बहुमत होगा, वह पार्टी विरोधी-दल के समर्थन-प्राप्त मन्त्रियों को सहयोग नहीं देगी, तंग करेगी, और शासन मुश्किल हो जायगा। इस तरह पार्टी के प्रति स्वामि-भक्ति और मंत्री का पार्लियामेन्ट के प्रति उत्तरदायी होने के ये सिद्धान्त जब एक दूसरे के पूरक हो गये तब कैबिनट व्यवस्था का विकास हो गया।

विलियम तृतीय ने उग्र वैदेशिक नीति अपनाई। पार्लियामेन्ट की सार्वभौम सत्ता स्थापित हो चुकी थी। बिना पार्लियामेन्ट के सक्रिय सहयोग के शासन असम्भव था। प्रश्न यह था कि पार्लियामेन्ट और कार्य-कारिणी में स्थायी सहयोग किस उपाय से सम्भव है। इसी समस्या का समा-धान कैबिनेट है, जिसे कार्यकारिणी और पार्लियामेन्ट को मिलानेवाला चिह्न (- Hyphen) कहा गया है। राजा के मन्त्रियों को पार्लियामेन्ट का विश्वासपात्र होना चाहिये, यह सिद्धान्त अनुभवों के द्वारा बहुत धीरे-धीरे स्पष्ट हुआ। पार्लियामेन्ट में दो दल थे, और इसलिए पार्लियामेन्ट के प्रति उत्तरदायी होने का मतलब था पार्लियामेंट में बहुमत वाले दल के प्रति उत्तरदायी होना, अल्पमत-दल का मंत्री को पार्लियामेन्ट परेशान

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करेगी ही, डैन्बी का दृष्टांत सामने था। सन्डरलैंड की सलाह पर विलियम ने सिर्फ विग् नेताओं को ही अपने मंत्रीमंडल में लिया, और यह मंत्रीमंडल बड़ा सफल रहा। उस समय कामन्स्-सभा में विगों का बहुमत था। कामन्स्-सभा का बहुमत प्राप्त दल और उसी का मंत्रीमंडल इस महत्वपूर्ण सम्बंध का सैद्धांतिक आधार पर उस समय भले न विचार किया गया हो, पर व्यवहारिक दृष्टिकोण से इस सम्बन्ध का शासन के लिए अच्छा परिणाम हुआ। इस दृष्टांत को भुलाया नहीं जा सकता था। अपने अन्तिम दिनों में विलियम को टोरी मंत्रीमंडल बहाल करना पड़ा और विगों को छोड़ना पड़ा, क्योंकि कामन्स्-सभा टोरी नीति का समर्थन करने लगी थी। साम्राज्ञी ऐन् को अपने मंत्रीमंडल में कामन्स्-सभा का रुख देखकर मंत्रीमंडल में कई बार हेर-फेर करना पड़ा था।

विलियम और कैबिनेट व्यवस्था

अतः १७१३ ई० तक मंत्रीमंडल और कामन्ससभा में अविछिन्न सम्बन्ध का ज्ञान हो चुका था। राजा को मंत्रीमंडल बनाने या मिटाने के अधिकार से वस्तुतः हाथ धोना पड़ा था, और कामन्स्-सभा के बहुमत दल वाले ही मंत्रीमंडल का रूप निश्चित करने लगे थे। इससे शासन में सुविधा रहती थी; अपने विश्वासपात्र मन्त्रियों के द्वारा ही पार्लियामेन्ट अपनी सत्ता का व्यवहार करने लगी थी। मंत्री एक दल के हों, कामन्स-सभा के प्रति उत्तरदायी हों, और उनकी स्थिति तभी तक कायम रहे जबतक कि उनका दल का पार्लियामेन्ट में बहुमत रहे और बहुमत दलवालों का ही मंत्रीमंडल हो : ये सब सिद्धान्त कैबिनेट-व्यवस्था के प्रमुख लक्षण हैं, और इन सिद्धान्तों का, व्यावहारिक अनुभवों के आधार पर, १७१३ ई० तक काफी विकास हो गया था।

जौर्ज प्रथम और द्वितीय (१७१३-१७६०) के समय में कैबिनेट-व्यवस्था की रूप-रेखा निश्चित हो गई। अभीतक तक तो राजा मंत्रियों से सलाह लेता था, उनकी सभाओं की सदारत करता था, और प्रत्येक मन्त्री साधारणतया एक दूसरे के समान थे, राजा के सामने बराबर थे। पर जौर्ज प्रथम और द्वितीय अंग्रेजी नहीं जानते थे, और न

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इंगलैंड की राजनीति में बहुत दिलचस्पी रखते थे। इसलिये राज का काम मंत्रीमंडल के हाथ में एकदम छोड़ दिया गया। इस समय सर रौबर्ट वाल्पोल मन्त्री था, और अपने दल का नेता। वह बड़ा चतुर और प्रतिभावान् था। वह राजा की अनुपस्थिति में मंत्रीमंडल की बैठक की सदारत करने लगा। जो मंत्री इसकी नीति पर नहीं चलते थे उन्हें उसने पद से हटा दिया। वह मन्त्रियों के कार्य पर निगरानी रखने लगा, और जब उसकी नीति को पार्लियामेन्ट ने ठुकरा दिया।

रौबर्ट वाल्पोल का मंत्रीत्व और कैबिनेट व्यवस्था १७२१–१७४२

तब उसने अपने साथ पूरे मंत्रीमंडल का इस्तिफा दे दिया। वाल्पोल इंगलैंड का पहला प्रधान मंत्री (Prime Minister) कहा जाता है, यद्यपि वह स्वयं इस नाम से चिढ़ता था। इसके २१ वर्ष (१७२१-१७४२) के शासन काल में कैबिनेट-व्यवस्था के प्रमुख लक्षण स्पष्ट हो गये:—(क) संयुक्त-उत्तरदायित्व (Joint Responsibility) (ख) प्रधान मंत्री का पद, (ग) प्रधान मंत्री को अपने नीति के विरोधी मंत्रियों को हटाने का अधिकार, (घ) मंत्रीमंडल एक विचार का हो, (Homogenuity) (च) कामन्स्-सभा के प्रति उत्तरदायित्व (Responsible to the House of Commons) (छ) कैबिनेट को राजनैतिक नीति को निर्धारित और कार्यान्वित करने का कर्तव्य।

आगे चलकर कैबिनेट ही राज्य की वास्तविक कार्यकारिणी हो गई। यह देश की नीति निर्धारित करती है, पार्लियामेन्टरी शासन-पद्धति को सफल करती हो, और वैधानिक एकता की प्रतीक है। जार्ज तृतीय ने इस प्रगति के विरुद्ध संघर्ष किया (१७६०-८३ ई०)। वह राजा का मंत्रीमंडल बनाने और मिटाने का अधिकार पुनः प्राप्त करना चाहता था। पर उसका प्रयोग असफल हुआ। इससे देश का नुकसान हुआ, अशान्ति रही और इंगलैंड का उत्तरी अमेरिका का साम्राज्य खत्म हो गया। देश का विधान पर भी संकट आने का भय हुआ। अन्त में पार्लियामेन्टरी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शासन-पद्धति और कैबिनेट व्यवस्था की ही विजय रही। इस असफल प्रयोग के बाद कैबिनेट के विकास में कोई दूसरी रुकावट नहीं आई।

६

उपसंहार :

पार्लियामेन्टरी शासन-पद्धति और कैबिनेट-व्यवस्था विश्व को इंगलैंड की अमूल्य देन हैं। जिस समय फ्रांस, रूस और स्पेन में निरंकुश शासन की उपयोगिता और अनिवार्यता प्रामाणिक सत्य समझी जाती थी, उस समय इंगलैण्ड में बिना बहुत अधिक खून-खराबा के पार्लियामेन्टरी शासन-पद्धति का विकास हुआ और स्वेच्छाचारी शासन के सिद्धान्त को मिटाया गया। यह उस समय के लिये एक अद्‌भुत घटना थी और इसने पूरे योरप का ध्यान अपनी ओर खींचा। इस शासन-पद्धति की सफलता भी सिद्ध हो गई जब कि स्थापित होने के साथ ही साथ (१६८६ ई०), योरप के महायुद्धों में बड़े-२ शक्तिशाली राज्यों और उनके स्वेच्छाचारी और योग्य शासकों के विरुद्ध इंगलैंड ने सक्रिय और सफल भाग लिया। स्पेन के उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर उसे फ्रांस और स्पेन से लड़ना पड़ा (१७०२–१७१३), आष्ट्रिया के उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर फ्रांस से लड़ना पड़ा (१७४१–४८), और फिर सप्तवर्षीय युद्ध में (१७५६–६३) भी इंगलैंड फ्रांस के विरुद्ध था। इन सभी लड़ाइयों में इंगलैण्ड सफल रहा। उसके साम्राज्य का भारत और अमेरिका में वृद्धि हुई, हिन्दमहासागर स्थित कई महत्त्वपूर्ण प्रायद्वीप इसके हाथ लगे। जब हम इस सफल और उत्साही वैदेशिक नीति की तुलना स्टूअर्ट राजाओं की वैदेशिक नीति से करते हैं, तब यह स्पष्ट हो जाता है कि पार्लियामेन्टरी शासन-पद्धति की स्थापना के बाद देश में अजीब उत्साह और आत्मविश्वास छा गया, जिसका परिणाम हुआ विदेशों में इसकी इज्जत बढ़ी और दुनियां में इसका साम्राज्य बढ़ा और इसकी शक्ति अजेय सी हो गई। इन बड़े युद्धों का संचालन करना खेल नहीं था, और बहुतों को यह शंका थी कि इस कड़ी कसौटी पर यह प्रजातान्त्रिक

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शासन-पद्धति टूट जायगी। पर बात उल्टी रही। निरंकुश शासन-पद्धति के मुकाबिले में वैधानिक शासन-पद्धति अधिक मजबूत और कार्यक्षम सिद्ध हुई। शक्तिशाली फ्रांस पर इंगलैण्ड की विजय का प्रभाव योरप पर गहरा पड़ा। चर्च और राजशासन के विरुद्ध योरप में १८हवीं सदी में जो आन्दोलन उठ खड़े हुये उन्हें इंगलैण्ड की वैधानिक शासन-पद्धति से ही प्रेरणा मिली। योरप के मौलिक सुधारकों और चिन्तकों में इस शासन-पद्धति के प्रति श्रद्धा और विश्वास उत्पन्न हो गया। निरंकुश या स्वेच्छाचारी शासन की योग्यता के प्रति उन्हें संदेह होने लगा। राजनीति में अंगरेज दार्शनिकों (e.g. Locke) के विचारों को श्रद्धा से मनन किया जाने लगा। इंगलैण्ड के प्रजातांत्रिक-विचार और शासन-पद्धति का योरप में प्रचार हुआ। इंगलैण्ड का वैधानिक शासन योरप के राजनीतिज्ञों और चिन्तकों के लिए आदर्श बन गया। फ्रांस में इसी प्रकार शासन स्थापित करने का विचार फैलने लगा। मोन्तेस्कू इंगलैण्ड के ऐसा ही शासन-वैधानिक राजतन्त्र-के पक्ष में अपना लेख लिखने लगा। फ्रांस के राजाओं ने इस ओर ध्यान नहीं दिया और फ्रांस में क्रान्ति हुई, पर क्रान्ति के रहनुमा इंगलैण्ड का वैधानिक-राजतन्त्र ही की स्थापना चाहते थे। यह दूसरी बात है कि क्रांति का रुख बदल गया। इंगलैण्ड के अमेरिकास्थित उपनिवेश भी अपनी मातृभूमि की शासन-व्यवस्था से प्रभावित हो, पार्लियामेन्टरी शासनव्यवस्था उनके प्रति भी लागू हो, ऐसी मांग करने लगे। जार्ज तृतीय ने इस मांग को अनसुनी कर दिया, और स्थिति बिगड़ती गई, और अन्त में अमेरिका में स्वातन्त्रय संग्राम शुरू हो गया और संयुक्तराज्य अमेरिका का जन्म हुआ (१७७६)। अतः अमेरिका की आजादी की लड़ाई और फ्रांस की राज्य-क्रान्ति इंगलैण्ड का वैधानिक राजतन्त्र के आदर्श से प्रभावित थीं। १९हवीं-२०वीं सदी में योरप और एशिया के जनआन्दोलन इंगलैंड की वैधानिक शासन-पद्धति व वैधानिक इतिहास से कम प्रभावित नहीं रहे हैं, उनके विधानों में इंगलैंड का विधान का प्रभाव स्पष्ट है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पांचवां अध्याय

अमेरिका का स्वातन्त्र्य-संग्राम

भौगोलिक खोज और नये व्यापार-मार्ग के परिणामस्वरूप योरप के राष्ट्रों के उपनिवेश और व्यापारी कोठियां संसार में स्थापित हो गये। जिन देशों की शक्ति काफी मजबूत थी, और जो सभ्य थे, वहां योरोपियन राष्ट्रों ने व्यापारी-कोठियां स्थापित की, और उन देशों की सरकारों से व्यापारिक सुविधा प्राप्त करने की चेष्टा की गई। भारत और पूर्वी प्रायद्वीप में अंगरेज, फ्रांसीसी, डच और पुर्तगीजों ने ऐसी ही कोठियां और व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त किया था। पर अमेरिका तो 'नया संसार' ही था, और वहां के आदिमनिवासी उस समय तक सभ्यता की पहली सीढ़ी पर ही थे। योरोपियन राष्ट्रों ने इस महादेश को अपने-२ प्रभाव क्षेत्र में बांटना शुरू कर दिया। दक्षिण अमेरिका, ब्राज़िल को छोड़कर, स्पेन के अधिकार में था। उत्तरी अमेरिका में इंगलैंड और फ्रांस ने अधिक दिलचस्पी दिखाई। १४९७ में हेनरी सप्तम के प्रश्रय में केबोट (Cabot) ने अमेरिका के उत्तरी भाग पर, न्यूफौन्डलैंड पर, इंगलैंड का झंडा गाड़ दिया था। १५२४ ई० में फ्रांस की ओर से गिओवन्नि वेइज्जनों ने इन समुद्रीय प्रदेशों का भ्रमण किया था। अब इंगलैंड और फ्रांस दोनों अपने को इस महादेश का स्वामि कहने लगे। रानी एलिजाबेथ के समय में ही वर्जिनिया (Virginia) उपनिवेश की नींव रक्खी गई थी। जेम्स प्रथम की प्यूरिटन-विरोधी नीति से तंग आकर उत्साही प्यूरिटन अपनी मातृभूमि को छोड़ कर उत्तर अमेरिका चले आये, और पूर्वी तट पर कई उपनिवेशों की स्थापना हो गई। चार्ल्स प्रथम और आर्कविशौप लौड की धर्मान्ध नीति से ऊब कर भी कितने उत्साही और साहसी अंगरेज अमेरिका चले आये। पर जबकि अंगरेजों के उपनिवेश समुद्रतट के समीप ही स्थापित हुये, फ्रांसीसी उपनिवेश सेंट-लौरेन्स नदी के किनारे-२ बसे थे, इस तरह फ्रांसीसी अन्दर-अमेरिका,

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्व से पश्चिम तट तक, फैल गये थे। इस प्रकार केनाडा (Canada) फ्रांसीसी हो गया। फ्रांस और इंगलैंड में प्रतिद्वन्द्विता स्वाभाविक थी। भारतवर्ष में भी आपसी झड़प होने लगे थे। १६८८ के बाद योरप में जो युद्ध हुये उसमें इंगलैंड और फ्रांस बराबर विरोधी दलों में पाये गये। आष्ट्रिया का उत्तराधिकार का युद्ध और सप्तवर्षीय युद्ध में इंगलैंड और फ्रांस की लड़ाई योरप में ही सीमित नहीं रही, बल्कि भारत और अमेरिका में भी इनमें युद्ध छिड़ गया। फ्रांस की पराजय हुई, और भारत में फ्रांस की शक्ति वस्तुतः खत्म हो गई। डचों को हराया जा चुका था; पुर्तगीजों का पतन हो चुका था। इस तरह में भारत में अंगरेजी राज्य की नींव पड़ गई। फ्रांस का भारतीय-साम्राज्य का स्वप्न टूट गया। अमेरिका में भी कनाडा अंगरेजों के हाथ आ गया। प्रायः पूरा उत्तरी अमेरिका महादेश अब अंगरेजों के अधीन आ गया था। १७६३ की पेरिस की संधि से फ्रांस ने कनाडा की हानि मन्जूर कर लिया। पर यह मार्के की बात है कि १३ वर्ष के भीतर ही भीतर इंगलैंड को अपने उत्तरी अमेरिकन उपनिवेशों से हाथ धोना पड़ा। कनाडा की प्राप्ति के बाद ही अंगरेजी उपनिवेशों ने इंगलैंड के विरुद्ध आवाज उठाना शुरू कर दिया, और संयुक्त-राज्य अमेरिका का इतिहास का श्री गणेश हो गया।

कारण :

पर अमेरिका के स्वातन्त्र्य-संग्राम के कारण अनेक हैं। इंगलैंड के ये उपनिवेश वहां की सरकार या पार्लियामेन्ट के प्रोत्साहन के कारण नहीं स्थापित हुये थे, बल्कि इंगलैंड की सरकार की नीति से क्षुब्ध होकर ही इस अनजान और कठिन देश में साहस करके कुछ अंगरेज चले आये थे, और कड़ी मेहनत के बाद इन उपनिवेशों की स्थापना कर सके थे। इसलिए इनमें और इनकी सन्तानों में इंगलैंड के प्रति गहरी स्वामिभक्ति का भाव का अभाव था। जबकि इंगलैंड में उस समय श्रेणी-राज्य ही था (oligarchy), पार्लियामेन्ट बड़े-२ जमींदार और पूंजीपतियों की गुटबंदी का शिकार थी, अमेरिकन उपनिवेशों में प्रजातान्त्रिक सिद्धांत ही जीवन-रीति के

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधार थे। यहां न चर्च का निरंकुश शासन था, और न वर्ग-संघर्ष। सभी के पास पर्याप्त जमीन थी, और अपनी मेहनत के बल पर अपनी आर्थिक उन्नति की सम्भावनाएँ काफी थीं। चर्च का आधार प्रजातान्त्रिक था, और इसके सदस्यों को पूर्ण राजनैतिक अधिकार प्राप्त थे। यहां भिन्न-२ धर्मावलम्बियों में सहिष्णुता की भावना प्रवेश पा गई थी। इस वातावरण में पलकर इनसे परतन्त्रता की बेड़ी पहने रहना कबतक सम्भव था। फ्रांस और स्पेन के उपनिवेशों की तुलना में अमेरिका के ये उपनिवेश अपनी मातृभूमि की सरकार के प्रति कम उदार या आज्ञाकारी थे। इनकी उत्पत्ति ही राजविरोध के कारण हुई थी, और यहां वे अपना शासन स्वतन्त्र रूप से चलाते थे। पर जब मातृभूमि ने इन उपनिवेशों का महत्व समझा तब इन्हें इंगलैंड की सरकार के अधीन लाने की चेष्टा की गई। पर तब भी इन उपनिवेशों में स्वशासन की परम्परा कायम रही। इन उपनिवेशों के गवर्नरों की नियुक्ति इंगलैंड की सरकार से द्वारा होता था, और राजशासन की सुविधा के लिए उनकी कार्यकारिणी के सदस्य नामजद होते थे, पर प्रत्येक उपनिवेश में प्रतिनिधि-सभा (Representative Assembly) भी होती थी, जिसका शासन में बड़ा प्रभाव था। आन्तरिक मामलों में वस्तुतः सम्पूर्ण स्वशासन था। स्पेन, फ्रांस या हौलेण्ड के उपनिवेशों में यह शासन-व्यवस्था नहीं थी, पर अमेरिका में ये उपनिवेश अब अंगरेजों के थे, जिन्होंने अपनी मातृभूमि में प्रतिनिधि और उत्तरदायी शासन के लिए सतत संघर्ष किया था, और सफलता पाई थी। उन्हीं के खून के ये अमेरिकन भी इस सिद्धान्त को व्यावहारिक-क्षेत्र में बहुत अंशों तक लागू कर चुके थे। मेसाचुसेट्स् ने चार्ल्स द्वितीय और जेम्स द्वितीय समय में ही इंगलैंड के हस्तक्षेप के विरुद्ध आवाज उठायी थी। इंगलैंड में पार्लियामेन्टरी और उत्तरदायी शासन स्थापित हो चुका था। इंगलैंड के प्रजातान्त्रिक सिद्धांतों में पले निर्वासित अंगरेजों की सन्तान भी क्यों नहीं उत्तरदायी शासन के गुणों का स्वयं उपभोग करने की इच्छा रखतीं? क्योंकि इन्हें स्वशासन बहुत हद तक प्राप्त था, इसीलिए इनमें सम्पूर्ण स्वशासन या स्व-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तंत्रता की उपादेयता और अधिकार की माँग करने की इच्छा और भी बलवती हुई। जब जार्ज तृतीय का मंत्री ग्रैन्विल ने अमेरिकन उपनिवेशों में अधिक दिलचस्पी दिखाई तब इनलोगों ने इसे अपने अधिकार पर आघात समझा। कहा गया है कि "श्री ग्रेन्विल ने अमेरिका खोया क्योंकि वह अमेरिका से आये राज्यपत्रों को पढ़ने लगा था।" स्वशासन की परम्परा में पले इन उपनिवेशों के नागरिक पूर्ण स्वतन्त्रता से कबतक दूर रह सकते थे! इंगलैंड की औपनिवेशिक नीति (Colonial) भी उस समय उपनिवेशों के हितों की विरोधी थी। इस नीति को **Mercantalism** कहा जाता है। इसका मूल सिद्धांत था कि उपनिवेश मातृदेश को शक्तिशाली और समृद्ध बनाने के ही लिये हैं। इस नीति के कारण उपनिवेशों का शोषण होता था और उनके विकास में प्रतिबंध लगे थे। उपनिवेशों पर इंगलैंड का व्यापारिक एकाधिपत्य (Trade Monopoly) था। नेविगेशन ऐक्ट्स् के अनुसार उपनिवेश अपने कच्चे माल इंगलैंड या उपनिवेशों के जहाजों में इंगलैंड ही भेज सकते थे, और इंगलैंड के तैयार माल इन्हें खरीदना पड़ता था। इंगलैंड के व्यापार और उद्योग को इनसे हानि न पहुँचे इसलिए यहां के ऊन तो इंगलैंड भेजे जाते थे, पर यहां ऊन के बने कपड़े बनाने पर प्रतिबन्ध था, लोहे की खानों से लोहा निकाला जाता था, पर लोहा के कारखाने यहां नहीं खुल सकते थे। दूसरे देशों से व्यापार करने में भी रुकावटें थीं। रूई और तम्बाकू इंगलैंड ही भेजे जा सकते थे। तैयार माल (Manufactured Goods) इन्हें इंगलैंड से ही खरीदना था और बृटिश या औपनिवेशिक जहाजों पर ही माल मँगा या भेज सकते थे। यह सत्य है कि योरप के अन्य राष्ट्र अपने उपनिवेशों पर इससे अधिक दृढ़ प्रतिबंध लगा रहे थे, और इंगलैंड के इन उपनिवेशों के नागरिक बृटिश नागरिक माने जाने के कारण कई प्रकार के व्यावसायिक सुविधाओं का भी उपभोग करते थे। पर तब भी इन प्रतिबंधों के प्रति इनका भाव विरोध ही का था। अपनी मेहनत और साहस के बल पर समृद्ध होने वाले बड़े-बड़े किसान और उत्साही व्यापारी इन वाणिज्य-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्धी नियमों को अपने स्वार्थ के प्रतिकूल समझते थे, दासता के चिह्न समझते थे और इंगलैंड की अन्यायी शोषक-नीति के उदाहरण। प्रजातन्त्र में विश्वास करनेवाले, स्वशासन के मीठे फल चखने वाले उत्साही और आत्मविश्वासी अंगरेजों को ऐसे हानिकारक और अपमानजनक प्रतिबंध कब तक सह्य हो सकते थे। एच० जी० वेल्स् कहते हैं "अमेरिकनों पर बिना पूछे कर लगाया जाता था, और इन करो के खर्च में इनकी कहीं सुनवाई नहीं थी, इनका व्यापार-हित का इंगलैंड के हित के लिए बलिदान कर दिया जाता था, वर्जिनिया निवासियों के विरोध करने पर भी गुलामों का लाभ-दायक व्यापार बृटिश हित के लिए जारी रखा गया था। यह स्थिति अधिक दिन तक नहीं टिक सकती थी।"

उत्तर स्थित कनाडा में जब तक फ्रांस का आधिपत्य था तब तक तो ये लोग चुप रहे, क्योंकि फ्रांस का डर बना था। पर जब सप्तवर्षीय युद्ध में इंगलैंड का सेनापति उल्फे (Wolfe) ने फ्रांसीसी सेना को अब्रहम् की पहाड़ी पर हराया तब से यह डर जाता रहा। कनाडा अंग्रेजों के अधीन आ गया, और अमेरिका में फ्रांस की शक्ति खत्म हो गई। जब किसी विदेशी जाति का डर न रहा तब अमेरिका के इन उपनिवेशों ने इंगलैंड का विरोध करना शुरू किया, जिसका परिणाम हुआ संयुक्त-राज्य का उदय। इतिहासकार ग्रीन ने कहा है "अब्रहम् की पहाड़ी पर उल्फे की विजय से ही संयुक्त-राज्य का इतिहास आरम्भ होता है।" ट्रेवेलियन् साहब फर्माते हैं, "सप्तवर्षीय युद्ध के परिणामस्वरूप फ्रांसीसी झंडा का उत्तर अमेरिका से अदृश्य होने का परिणाम था प्रथम बृटिश साम्राज्य का अन्त।" अब अपनी रक्षा के लिए इंगलैंड पर निर्भर रहने की आवश्यकता अमेरिकनों को नहीं रही।

सप्तवर्षीय युद्ध में इंगलैंड को बहुत खर्च उठाना पड़ा था। कनाडा में एक बड़ी सेना रखने में भी कम खर्च की सम्भावना नहीं थी। इंगलैंड की सरकार इस खर्च की पूर्ति में उपनिवेशों से कर उठाना चाहती थी। यदि धैर्य और बुद्धि से काम लिया जाता तो स्थिति कुछ दूसरी रहती।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर उस समय जार्ज तृतीय राज कर रहा था, और वह पक्का जिद्दी था। उसकी जिद्द के कारण स्थिति बिगड़ती गई और समझौता असम्भव होता गया। प्रधान मन्त्री ग्रेन्विल ने अमेरिका में सरकारी कागजों की रजिष्ट्री पर टिकट लगाने का कानून बनाया। पर इस Stamp Act (१७६५) का अमेरिका में घोर विरोध हुआ। इन उपनिवेशों के प्रतिनिधि इंगलैंड की पार्लियामेन्ट में नहीं थे; इस कारण यह नारा लगाया गया कि इंगलैंड की पार्लियामेन्ट को अमेरिका पर कर लगाने का कोई अधिकार नहीं है, क्योंकि यह अमेरिका का प्रतिनिधित्व नहीं करती है (No Representation: No Taxation)। इंगलैंड में बड़ा पिट्ट (Pitt, the Elder) (जो सप्तवर्षीय-युद्ध में इंगलैंड की विजय के लिए उत्तरदायी था), का यह विचार था कि इंगलैंड को अमेरिका के उपनिवेशों पर कर लगाने का अधिकार नहीं था। इंगलैंड का जनमत का और अमेरिका का विरोध के कारण 'स्टाम्प ऐक्ट' वापस ले लिया पर इंगलैंड की पार्लियामेन्ट ने यह कानून पास किया कि उसे अमेरिकन उपनिवेशों पर कर लगाने का अधिकार है (Declaratory Act, 1766)। संघर्ष का सैद्धान्तिक रूप अब स्पष्ट हो गया। इंगलैंड में जार्ज तृतीय अपना वैयक्तिक शासन स्थापित कर चुका था, और अमेरिकन नीति उसकी ही निर्देशित नीति थी। इंगलैंड का प्रधान मंत्री लार्ड नार्थ उसके ईशारे पर चलता था। सभी चीजों पर से आयात कर (Import duty) तो उठा लिये गये; पर चाय पर 'कर' कायम रखा गया। अमेरिका में विरोध तीव्र होता गया। जब बोस्टन् में चाय से भरे जहाज लगे, तब इन जहाजों को जला दिया गया और चाय समुद्र में डुबा दिया गया (१७७३)।

बोस्टन् उपद्रव और संग्राम का आरम्भ

बोस्टन् बन्दरगाह के इस उपद्रव से इंगलैण्ड की सरकार को विश्वास हो गया कि अमेरिकन उपनिवेशों ने विद्रोह कर दिया है। इसके पूर्व छोटी-मोटी घटनाएं हुई थीं जिससे कि अमेरिकनों की इंगलैण्ड-विरोधी भावनाएं उग्ररूप धारण कर रहीं थी, ऐसी प्रतीत हो रही थी। कुछ बृटिश सिपाहियों पर ईंट-पत्थर फेंके गये, और इसके उत्तर में अंग्रेजों ने गोली

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलाई, और कुछ अमेरिकन मारे गये (१७७२)। इस "हत्याकाण्ड" से अमेरिकन और भी अधिक उतावले हो उठे। बोस्टन् चाय-उपद्रव इसी उग्र भावना का परिणाम था। जार्ज तृतीय ने इस घटना का फायदा उठाकर दमन-नीति अपनाई। मेसाचुसेट्स्-उपनिवेश के स्वशासन पर भारी प्रतिबंध लगाये गये। सेना के बल पर और नामजद गवर्नर के द्वारा ही राज्य करने का निश्चय किया गया (१७७४), और लोकसभा के अधिकार वस्तुतः खत्म कर दिये गये। इसके बन्दरगाह की व्यापारिक नाकाबन्दी की गई। जार्ज को अपनी इस नीति पर नाज़ था, और अपने मंत्री नार्थ को बुलाकर उसने कहा "अब पासा फेंक दिया गया है। उपनिवेशों को या तो समर्पण करना होगा या विजयी होना होगा। चार बृटिश सेना-डिविजन ही अमेरिकनों को घुटने टेकाने के लिए पर्याप्त होगा"। पर उसको नवीन राष्ट्रीय जागृति की ताकत का अन्दाज नहीं था। इस दमननीति से अमेरिकन उपनिवेशों में राष्ट्रीय संकट का ज्ञान हुआ, और फूट और स्वार्थ की जगह पर एकता की भावना का उदय हुआ। मेसाचुसेट्स् ने इन दमनकारी कानूनों की अवज्ञा करने की ठानी, और जनसाधारण अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित हो गये। फिलाडेल्फिया में चौथी सितम्बर १७७४ में एक कांग्रेस बैठी जिसमें अन्य उपनिवेशों ने अपना प्रतिनिधि भेजा। वर्जीनिया के प्रतिनिधियों में जार्ज वाशिंगटन थे। इस कांग्रेस में दमनकारी कानूनों का विरोध किया गया। समझौता की आशा कम थी, पर एकदम खत्म नहीं हुई थी। इंगलैण्ड में लार्ड चैथम ने दमनकारी कानूनों को वापस करने और करों को रद्दी करने का एक विधेयक पेश किया। उसने यह कहा, "कागज के एक टुकड़े को नष्ट कर के ही अमेरिका को पुनः प्राप्त नहीं किया जा सकता था; तुम्हें उसका भय और क्रोध का आदर करना होगा।" पर उसकी बात नहीं सुनी गई, और परिणाम हुआ अमेरिका का स्वातंत्र्य-संग्राम का आरम्भ।

फिलाडेल्फिया में बैठी संयुक्त कांग्रेस ने स्वातंत्र्य-संग्राम का आवाहन

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया; सेना-संगठन करने की आज्ञा दिया और जार्ज वाशिंगटन सेनापति चुने गये। अंग्रेजों और अमेरिकनों में लेक्सिंग्टन में पहली झड़प हुई (१७७५)। अमेरिकन राष्ट्रीय-सेना बोस्टन् के सामने पहुँच गई। अमेरिकन कांग्रेस का हौसला बढ़ गया। सभी राज्यों ने मिलकर संयुक्त-राज्य की और पूर्ण स्वतंत्रता की घोषणा की (चौथी जुलाई, १७७६)। इस घोषणापत्र के लिए टौमस् जेफ्फरसन अमर रहेगा। इसमें मानव के मूल अधिकारों का जिक्र था, जिनमें वैयक्तिक स्वतंत्रता और सुख प्राप्ति के अधिकार मुख्य हैं। इस घोषणापत्र में यह भी कहा गया कि जो राज्य जनता के इन अधिकारों को सुरक्षित नहीं रखता हो ऐसी सरकार को बदलने या उलटने का अधिकार जनता को है, और अमेरिका की जनता ने इसी सिद्धान्त के आधार पर बृटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध अपना स्वातंत्र्य-संग्राम छेड़ दिया था। यह राष्ट्रीय-संग्राम था, जनता में अपूर्व उत्साह था, दृढ़ एकता का भाव था, और सेनापति वाशिंगटन एक सफल सेनापति था। युद्ध दस वर्षों तक चलता रहा। इंगलैण्ड की सेना हार गई। १७७७ में अंग्रेज सेनापति बुर्गोइन को सारटोगा नामक स्थान पर आत्मसमर्पण करना पड़ा। इंगलैण्ड के बुरे दिन में उसके अन्य दुश्मन भी बदला लेने की धुन में इंगलैण्ड के विरुद्ध मैदान में आ गये। फ्रांस ने इसमें बड़ा भाग लिया। स्पेन उसके साथ था। रूस, हौलेन्ड, और स्वीडेन प्रभृति ने इंगलैण्ड की नाविक-शक्ति का प्रभुत्व को चुनौती दी। अतलांतिक सागर में इंगलैण्ड का प्रभुत्व कुछ समय के लिए खत्म हो गया। कार्नवालिस को यार्कटाउन नामक स्थान पर वाशिंगटन के सामने आत्म-समर्पण करने पर वाध्य होना पड़ा [अक्टूबर १७८१]। इसके बाद युद्ध वस्तुतः समाप्त हो गया और १७८३ में वर्साइ की सन्धि [Treaty of Versailles] के अनुसार संयुक्त-राज्य अमेरिका की स्वतन्त्रता मान ली गई।

अमेरिका की स्वतन्त्रता का प्रभाव इंगलैंड और बृटिश साम्राज्य पर पड़ा। जार्ज तृतीय का वैयक्तिक शासन का प्रयोग निष्फल हो गया।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह बहुत ही अप्रिय हो गया था। कैबिनेट-पद्धति फिर स्थायी तौर पर पुनर्स्थापित हो गई। इंगलैंड का प्रथम साम्राज्य का अन्त हो गया। पर इससे द्वितीय साम्राज्य का श्रीगणेश भी हो गया। फ्रांस से युद्ध का फायदा उठाकर इंगलैंड ने भारतवर्ष में अपनी शक्ति और भी दृढ़ कर लिया। वारेन हेस्टिंगस् ने मराठों की शक्ति और मैसूर के हैदर और टीपू का बढ़ते प्रभाव को रोका। इंगलैंड की साम्राज्यवादी नीति में भी युगान्तकारी परिवर्तन हुआ। यह जरूरी था, क्योंकि इंगलैंड की औपनिवेशिक नीति ही अमेरिका का स्वातन्त्र्य-संग्राम का कारण थी। प्रसिद्ध विद्वान इगर्टन साहब का कहना है—"यद्यपि यह स्पष्ट है कि १७६७ की कानूनी कार्रवाइयां ही इस विद्रोह के प्रत्यक्ष कारण थे पर यह संकटासन्न परिस्थिति जल्दी या देरी से अवश्य ही पैदा हो जाती जबतक कि इंगलैंड अपने उपनिवेशों के प्रति अपनी नीति में आमूल परिवर्तन नहीं करता।" पर इंगलैंड ने अपनी भूलको समझ लिया। इसने अब अपने उपनिवेशों में, जहां अंग्रेजों या योरोपियनों को ही गिना जाता था, स्वायत्-शासन देने की नीति अपनाई। उत्तरदायी शासन (Responsible Government) का क्रमिक विकास के कारण ही मातृदेश और उपनिवेशों का सम्बन्ध सहयोग और मैत्री के आधार पर स्थापित होने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि कनाडा, दक्षिण अफ्रिका इत्यादि उपनिवेशों में उत्तरदायी शासन स्थापित हुआ; और साम्राज्य टिका रहा। इस स्वातंत्र्य-संग्राम का सबसे प्रमुख परिणाम यह था कि संसार में संयुक्त-राज्य अमेरिका का पदार्पण हुआ। अमेरिका का विधान प्रजातान्त्रिक है, और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद अमेरिका का उद्योग और व्यापार की आशातीत उन्नति हुई है, और विश्व के रंगमंच पर अमेरिका का पार्ट और प्रभाव स्पष्ट रहा है।

स्वातन्त्र्य संग्राम के परिणाम

संयुक्त-राज्य अमेरिका की स्थापना के बाद अमेरिकन महादेश के अन्य योरोपियन उपनिवेश बहुत दिन तक गुलाम नहीं रह सकते थे। बाइस वर्ष

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाद स्पेन के अमेरिकन उपनिवेशों ने स्पेन से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। १८२२ में ब्रेजिल भी स्वतन्त्र हो गया।

अमेरिका के द्वारा मानव के मूल अधिकारों की घोषणा का बड़ा महत्व है। भविष्य में संसार के सभी जनआंदोलन और स्वातन्त्र्य-संग्राम को इस महान घोषणा से प्रेरणा मिली है। वाशिंगटन ने कहा है—"अमेरिका की क्रान्ति या युग की इस नयी रोशनी ने ऐसा मालूम पड़ता है कि योरप के प्रत्येक राष्ट्र की आंखों को खोल दिया, यह स्पष्ट हो रहा है कि समानता और स्वतन्त्रता की भावना हर जगह मजबूत होती जा रही है।" पर अमेरिका का स्वातन्त्र्य-संग्राम का एक अप्रत्यक्ष परिणाम था फ्रांस की क्रांति। इंगलैंड का घोषणापत्र (Declaration of Rights) में यह कहा गया था कि जेम्स् द्वितीय ने अपनी अन्यायपूर्ण नीति के कारण राजा और जनता का प्रथम इकरारनामा का उल्लंघन किया था, और इसलिए जनता को अब यह अधिकार था कि ऐसे शासक को बदल दे। अतः इंगलैंड की राज्यक्रान्ति राजनैतिक थी, पर अमेरिका की महत्वपूर्ण घोषणा में सामाजिक अधिकार 'जिन्दा और सुखी रहने का अधिकार'—को भी स्वाभाविक (Natural) अधिकार समझा गया था। राज्यक्रान्ति में सामाजिक आदर्श को आधारभूत बनाने का यह प्रथम दृष्टान्त था, और फ्रांस की राज्यक्रान्ति को इससे प्रेरणा मिली, और इसके नेतागण अमेरिका की इस अमूल्य देन के प्रति खुलकर कृतज्ञ थे। अपने संविधान में इन्होंने मानव के नागरिक अधिकारों को सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया, और रिपोर्ट में लिखा "हमारे देश को ही यह प्रथम श्रेय मिलना चाहिए कि इस महान् आदर्श के पौधे को लाकर इस गोलार्द्ध में पुनः रोपें। हमलोगों ने उत्तरी अमेरिका को सैनिक सहायता दिया जिससे उन्हें आजादी मिली। और उसी उत्तरी-अमेरिका ने हमें यह बताया है कि किन सिद्धान्तों पर चलकर हम अपनी स्वतन्त्रता कायम रख सकते हैं। पहले हमलोग 'नयी दुनिया' में हथकड़ी लेकर गये थे, और वहीं अब हमें इस हथकड़ी को पहने रहने की दुराशा

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से मुक्ति का उपाय बता रही है।" अमेरिका का स्वातन्त्र्य-संग्राम के बाद फ्रांस की महान् राज्यक्रान्ति अनिवार्य थी। एक कवि का कहना है कि लेक्सिंगटन के मैदान में जो गोली दागी गई उसकी आवाज संसार के चारों ओर गूंजती रही। इसे हम अत्युक्ति कह सकते हैं, चीन और जापान को इसका पता तक नहीं था। पर योरप के इतिहास पर इस संग्राम का परिणाम अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अशान्त योरप को इस घटना से बड़ा धक्का लगा, और फ्रांस में इसने ऐसी चिनगारी का काम किया कि वहां जो विस्फोट् हुआ उससे पूरा योरप महादेश, पेट्रोग्राड से लेकर मैड्रिड तक, कांप गया, और योरप की पुरानी राजव्यवस्था और कूटनीति का अन्त हो गया, और प्रजातान्त्रिक शक्तियां आगे आईं।

अमेरिका का स्वातन्त्र्य-संग्राम की सफलता के कई कारण बताये गये हैं। इंगलैंड ने पहले अमेरिकन उपनिवेशों की शक्ति का गलत अनुमान लगाया, और स्वयं श्रेष्ठमनोवृति के चक्कर में रहा। जबकि अमेरिकन उपनिवेशों में पूर्ण एकता थी, इंगलैण्ड में इस युद्ध के विषय में नेताओं में मतभेद था। बर्क और बड़ा पिट इस युद्ध का विरोध नैतिक समझाते थे। इंगलैण्ड की सेना और सेनापति अमेरिका की भौगोलिक विशेषता के विषय में अनभिज्ञ थे, इनकी इस असुविधा का फायदा राष्ट्रीय सेना लेती थी। इंगलैण्ड का राजा जौर्ज तृतीय और उसका मंत्री नार्थ जनता में अप्रिय थे, और सेना का संगठन भी उचित प्रकार नहीं हो रहा था। इंगलैण्ड को आधी दुनियां से लड़ना पड़ा, अमेरिका, फ्रांस, स्पेन, हौलेन्ड और स्वीडेन इत्यादि सभी से। इंगलैण्ड के लिए यह बहुत बड़ा भार था। पर सफलता का प्रमुख कारण थे अमेरिकनों में अदम्य उत्साह, अपने लक्ष्य की नैतिकता में उनका विश्वास, और स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए असीम त्याग करने की उनकी क्षमता। वाशिंगटन का सफल सेनापतित्व भी सफलता का एक महत्वपूर्ण कारण था।

———

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छठा अध्याय

फ्रांस की राज्यक्रान्ति

फ्रांस की राज्यक्रान्ति आधुनिक विश्व की चन्द महान् घटनाओं में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। इस क्रांति का परिणाम हुआ कि प्राचीन राज्य-व्यवस्था (Ancient Regime) उलट दी गई, और योरप का नये सिरे से संगठन हुआ; राज्य के सिद्धान्तों में आमूल परिवर्तन हुये; सामाजिक समानता का आदर्श सामन्ती व्यवस्था की असमानता के सिद्धान्त के स्थान पर सत्तारूढ़ हुआ। योरप में राष्ट्रीय भावना की अत्यन्त प्रगति हुई। योरप का आधुनिक इतिहास का आरम्भ इसी महान् क्रान्ति का श्रीगणेश से माना गया है। योरप में १९वीं सदी के प्रजातान्त्रिक आन्दोलन इसी महान् क्रान्ति से प्रेरित थे। फ्रांस की क्रान्ति में मानव-जाति के मूलाधिकारों की घोषणा कुचली हुई जातियों को सदैव प्रेरणा देती रही है, और देगी, क्योंकि इसने अन्यायी शासकों के विरोध में जनआन्दोलन को न्यायसंगत बताया।

क्रान्ति का अर्थ होता है, परम्परागत सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक आदर्शों को उखाड़ कर फेंकना और नये आदर्शों व संस्थाओं की स्थापना। ऐसी क्रान्ति हठात् नहीं होती है, बल्कि इसके कारण काफी गहरे होते हैं, और क्रान्ति के आरम्भ होने के बहुत पहले ही इसके कारण उत्पन्न होते रहते हैं, प्राचीन राज्यव्यवस्था व सामाजिक व्यवस्था के प्रति असन्तोष बढ़ता रहता है और अन्त में कई सङ्किट घटनाओं के कारण विस्फोट् हो जाता है। फ्रांस की राज्य क्रांति के कारण भी अनेक हैं, और इनमें कई तो मौलिक हैं।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ्रांस की राज्यक्रान्ति के कारण :

समाज तीन प्रमुख वर्गों में बँटा था, उच्चपादरीवर्ग, सामन्तगण, और जनसाधारणवर्ग। दोनों उच्च वर्गों को कई विशेषाधिकार प्राप्त थे।

सामाजिक विषमता

यद्यपि सामन्तवाद का राजनैतिक रूप खत्म हो गया था, पर समाज का आधार यही था। राजा की शक्ति असीम थी, बड़े-२ सामन्तों के राजनैतिक अधिकार राजा ने नाश कर दिया था। अब ये बड़े-२ सामन्त राजा के दरबार में मुसाहबी करते थे, राग-रंग में डूबे रहते थे, और अपनी जमींदारी के रेआया के लिए कोई फिक्र नहीं करते थे। पर तब भी इनके कारिन्दों के द्वारा साधारण प्रजा का शोषण होता था। यद्यपि सामन्त या बड़े-बड़े जागीरदार अब राजनैतिक व सैनिक कर्त्तव्यों से मुक्ति पा चुके थे, तब भी इनके विशेषाधिकार बरकरार थे। इन्हें राजकर देना नहीं पड़ता था, यद्यपि किसानों से अधिक से अधिक कर बड़ी कड़ाई से वसूला जाता था। चर्च भी अपने भिन्न-भिन्न करों को जबरदस्ती वसूलता था, और बड़े-बड़े पादरी अपनी जमींदारी में प्रजा का शोषण करते थे। पर वे धर्म और ईश्वर से दूर थे, और जनता की श्रद्धा खो चुके थे। इस तरह एक तरफ तो एक अल्पसंख्यक अपाहिज और बेकार वर्ग मौज कर रहा था, बहुसंख्यक कृषकवर्ग सब तरह से परेशान था। क्योंकि समृद्ध जागीरदार और चर्च कर-मुक्त थे, इसलिए राजकाज के लिये कृषकों और व्यापारीवर्ग पर ही कर लादे जाते थे। जमींदार के कारिन्दे भी जमींदारी करों को उचित से अधिक वसूली कर अपनी जेबे भर रहे थे और रैयत इन करों से दबा जा रहा था। कृषक को ही भूमि-कर देना पड़ता था और बेगारी देनी पड़ती थी। राज्य के अन्य प्रकार के प्रत्यक्ष और परोक्ष करों को देना भी उसका ही कर्त्तव्य था। नमक पर कर बहुत था, इसलिये इसका दाम एकदम बढ़ गया था। सेना में भी इन्हें जबरदस्ती भर्ती किया जाता था। जितना अधिक पैदा होता उतना ही अधिक कर वसूला जाता था, और अधिक कड़ाई से। इसलिए उत्पादन बढ़ाने की इच्छा नहीं रहती थी,

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उत्पादन दिनों-दिन कम हो रहा था। कमते उत्पादन और बढ़ते राजकर और जमींदारों के द्वारा शोषण का परिणाम था कि कृषकवर्ग बड़ी बुरी हालत में था। कृषकवर्ग के ही सहयोग से राजशासन चल रहा था, ये बहुसंख्यक भी थे। एक पाई (Cent) भी राजकोष में नहीं देने वाले अत्यन्त अल्प-संख्यक सामन्त और चर्च के उच्च अधिकारी भोग-विलास में लिप्त थे, पर कृषकों को दोनों जून रोटी मिलना भी मुश्किल था। यह एक महान् विडम्बना थी, और फ्रांस के कृषकों में ऐसे राज और अन्यायी सामाजिक व्यवस्था के प्रति घोर असन्तोष फैलना स्वाभाविक था। सामन्तों के विशेषाधिकार का जो भी आधार पहले रहा हो, पर जब अब राज और समाज के लिए उनकी उपयोगिता खत्म थी, तब इनके विशेषाधिकारों का कोई मतलब ही नहीं रहा। इतनी घोर विषमता से आक्रांत कोई भी समाज अधिक दिन तक नहीं टिक सकता है।

स्वेच्छाचारी राजतंत्र और अत्यन्त केन्द्रीयकरण

फ्रांस में लूई चौदहवां ने एक सुदृढ़ और योग्य स्वेच्छाचारी राजतन्त्र स्थापित कर लिया था। राजा की शक्ति पर अब कोई रोक नहीं थी। सामन्तों का राजनैतिक प्रभाव और राजनैतिक स्वतन्त्रता के दावे खत्म कर दिये गये थे। सामन्त अब राजा के आज्ञाकारी मुसाहिब ही रह गये थे। चर्च का भी राजनैतिक प्रभाव नहीं ही के बराबर था। राजा सब कुछ था। वह अपने मंत्रियों को बहाल करता था, बर्खास्त करता था, युद्ध और शांति का एलान करता था, प्रजा पर मनचाहा कर लगाता था। कोई राजनैतिक संस्था, जैसे इंगलैंड की पार्लियामेन्ट, राजा की नीति का विरोध करने के लिए नहीं थी। फ्रांस का States-General की बैठक १६१४ ई० के बाद नहीं बुलाई गई थी। राजा न्याय-शासन का भी सर्वेसर्वा था। राजाज्ञा ही कानून था। सेना पर राजा का पूरा अधिकार था। फ्रांस में स्थानीय स्वशासन भी नहीं था। प्रान्तों या उपप्रान्तों का शासन राजा के नियुक्त अफसर करते थे, जिन्हें Intendents कहा जाता था। मतलब यह है कि राजा के हाथों में ही शासन के सभी यन्त्र

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केन्द्रित थे। तभी तो राजा यह कहने का साहस करता था कि "मैं ही राज्य हूं" (I am the state)। पर ऐसे अनियन्त्रित और स्वेच्छाचारी राजशासन की एक बड़ी कमजोरी यह होती है समय आने पर इसे कोई योग्य और उपयोगी मित्रवर्ग से मदद पाने की आशा ही नहीं रहती है। शासन और समाज के सभी छोटे-बड़े दोषों का उत्तरदायित्व राजा पर ही डाला जाता है। फ्रांस में लोगों की दृष्टि राजा पर ही टिकी थी। सामाजिक और राजनैतिक कूरीतियों के कारण बढ़ते असन्तोष का उत्तरदायी राजा ही माना जाता था, और जब राजशासन पर आघात हुआ तब कोई वर्ग राजा को उचित सलाह और मदद देने के योग्य नहीं था। स्वेच्छाचारी शासन के कारण राजा के मुसाहिब, मन्त्री या उच्च कर्मचारी स्वतन्त्र सलाह देने या कदम उठाने के लायक नहीं रहे। इसलिये यदि राजा अयोग्य व कमजोर निकला और जन-आंदोलन उठ खड़ा हुआ तब क्रान्ति के सिवा कोई दूसरा रास्ता राजा और उसके पिट्ठुओं के लिए नामुमकिन था। पुरानी राज्यव्यवस्था (Ancient Regime) का रक्षा-दुर्ग बस एक ही था—राजा। इसलिए यदि यह दुर्ग ढह गया, तब इस प्राचीन राज्य व्यवस्था और सामाजिक व्यवस्था को बचाने वाला या शरण देने वाला और कोई नहीं था, सर्वव्यापी क्रान्ति की विजय निश्चय थी।

धर्म की कमजोरी और बदनामी

धर्म ही गरीबों और पीड़ीतों को दुख सहने की ताकत देता है। असहाय को यह विश्वास होता है कि उसके दुख के बदले में उसे परलोक में सुख और शान्ति मिलेगी। धर्म और धर्म-गुरुओं के प्रभाव के कारण जनता में विद्रोह की भावना कम हो जाती है और समकालीन सामाजिक और राजनैतिक संस्था और परम्परा के प्रति श्रद्धा या आदर का भाव बना रहता है। पर फ्रांस में इस समय चर्च बड़ा बदनाम था। चर्च के उच्च-अधिकारी और धर्म के ठीकेदारों का नैतिक पतन हो गया था। जनता का एक बड़ा समूह फ्रांस का कैथोलिक चर्च का विरोधी था। भिन्न-भिन्न पन्थों में विश्वास रखने वालों का दमन हुआ था, और ह्यूगनों के

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रति सहिष्णुता की नीति रद्द कर दी गई थी (Repeal of the Edict of Nantes)। अतः चर्च इस समय तत्कालीन परम्परा सामाजिक या राजनैतिक व्यवस्था——को जनता की कटु आलोचना या विद्रोह की भावना से बचाने में अशक्त था। चर्च के कर्मचारी अधभूखे और भूखे किसानों से दसवां भाग 'कर' (Tithe) वसूलने में बड़ी कड़ाई से पेश आते थे। चर्च गरीब और असहायों का शरण देने वाला न रहकर शोषण करने का यंत्र बन गया था। चर्च के मुट्ठी भर बड़े पादरियों के पास बहुत अधिक जमीन थी। वे आरामतलब हो गये थे। इनके विरुद्ध छोटे-छोटे पादरी भी थे, जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी।

फ्रांस की सुधरी अवस्था

पर एक युक्तिसंगत प्रश्न यह है कि फ्रांस में जैसी राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक हालत थी या जैसी पुरानी-सभ्यता या व्यवस्था वर्त्तमान थी, वही हालत पूरे योरप (इंगलैण्ड और हौलैन्ड को छोड़ कर) में फैली हुई थी। सच पूछा जाय तो फ्रांस के कृषक रूस या स्पेन के कृषकों से अच्छी अवस्था में थे; इन पर कम सामन्ती-जुल्म होते थे। खेतिहर मजदूर और कमीयों की दशा में कुछ सुधार हुआ था। स्वतन्त्र कृषकों की संख्या बढ़ गई थी। शायद इसीलिए अब ये लोग अपनी दशा में भी सुधार के लिए उतावले हो उठे। मीठा चखने वाला ही मिठाई पर टूट पड़ता है। एक विद्वान ने ठीक ही कहा है कि "फ्रांस की दशा बस इतनी ही भर अच्छी थी कि जनता यह समझ सकी कि उसकी दशा बहुत बुरी है।" और इस अस्पष्ट या मूक भावना को व्यक्त करने का काम बौद्धिक नेताओं का था। क्रान्ति फ्रांस में हुई, और पुरानी राजव्यवस्था को यहां उलट दिया गया, जबकि अन्य देशों की अधिक शोषित जनता सामाजिक अन्याय और स्वेच्छाचारी राजशासन को सहती रही। इस विडम्बना को समझने के लिए हमें तत्कालीन फ्रांस की विशेष स्थिति को ध्यान में रखना होगा।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी भी जनवादी आंदोलन, क्रान्ति जिसका प्रत्यक्ष रूप है, के पहले बौद्धिक क्रान्ति आवश्यक होती है। सामाजिक अन्याय और तत्कालीन व्यवस्था के प्रति जनता में सक्रिय असन्तोष और जागृति फैलना यदि आवश्यक है, तो पुराने आदर्शों की जगह पर नये आदर्शों की स्थापना के लिए उत्साह और आत्मविश्वास पैदा करना उतना ही जरूरी है। फ्रांस में इस समय बौद्धिक-उत्तेजना फैली हुई थी, और बड़े-२ चिन्तक और दार्शनिक अपने लेखों या भाषणों के द्वारा पुरानी संस्थाओं के प्रति जनता में घृणा और असंतोष की भावना जागृत कर रहे थे, और सदियों से कुचली जनता को अपनी शक्ति का बोध करा रहे थे, और नये आदर्श और नये समाज की स्थापना के लिए उन्हें उत्साहित कर रहे थे। फ्रांस के स्वेच्छाचारी शासकों ने शिक्षा को प्रोत्साहन दिया था, और फ्रांस में उच्च शिक्षालयों की कमी नहीं थी। यहां के विद्वान समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन और प्रगति से अवगत थे। इंगलैण्ड की वैधानिक प्रगति ने कुछ विद्वानों को अत्यन्त प्रभावित किया। 'रक्तहीन क्रान्ति' के बाद इंगलैण्ड में पार्लियामेन्टरी शासन-पद्धति निश्चित रूप से स्थापित हो गई थी। वहां वैयक्तिक-स्वतन्त्रता सुरक्षित थी, जनता के प्रतिनिधियों का शासन पर अधिकार था, न्याय-शासन कार्यकारिणी के रोजमर्रे के हस्तक्षेप से बचा था, और देश हर प्रकार से तरक्की कर रहा था। फ्रांस और इंगलैण्ड सन्निकट पड़ोसी राष्ट्र हैं, और बराबर ही एक का भाग्य दूसरे के भाग्य से जुटा रहा है। ऐसा नामुमकिन था कि इंगलैण्ड में स्थापित पार्लियामेन्टरी-शासन की सफलता फ्रांस के बुद्धिजीवियों को बिना प्रभावित किए रहती। फ्रांस की राज्यक्रान्ति का एक कारण यह था कि फ्रांस में इंगलैण्ड की शासन-पद्धति का अनुसरण करने की तमन्ना बलवती हो रही थी।

बौद्धिक-क्रान्ति

इंगलैंड की क्रान्ति और वैधानिक शासन का प्रभाव

राजनीतिशास्त्र के पंडितों ने वैधानिक शासन-पद्धति के आदर्श या आधारभूत सिद्धान्तों का विश्लेषण करना शुरू कर दिया था। महान्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बृटिश लेखक लौक (Locke) का यह विचार था कि राजा की उत्पत्ति के पहले संसार में सम्पत्ति, परिवार इत्यादि संस्थाओं के उदय के कारण लोभ, मोह, ईर्ष्या आदि अवगुणों का आगमन हुआ, और मार-काट, अशान्ति, भय और संशय का साम्राज्य छा गया। तब जनता ने आपस में एक समझौता किया जिसके अनुसार अपने वैयक्तिक और प्राकृतिक अधिकारों को छोड़ कर बाकी नागरिक अधिकारों को नव-निर्मित समाज को दे दिया। इसे सामाजिक समझौता (Social Contract) कहते हैं। समाज ने तब एक राजा चुना जो इन 'समर्पित अधिकारों' के आधार पर शासन करता है। अतः इस सिद्धान्त का अर्थ यह हुआ कि राजा के अधिकार सीमित हैं, उसे व्यक्ति के स्वाभाविक अधिकारों पर कोई हक नहीं है, और अपने सीमित अधिकारों का भी उपयोग वह तभी तक कर सकता है जब तक वह 'समझौता' का आदर करे। यदि राजा अधिकार की सीमा का उल्लंघन करता है, तब जनता का यह अधिकार है कि वह इसे 'पवित्र समझौता' का भंग होना समझे, और अपने को राजा के प्रति स्वामिभक्ति के कर्त्तव्य से मुक्त समझे। स्वेच्छाचारी निरंकुश शासक के प्रति विद्रोह को इस सिद्धान्त ने वैध और न्यायसंगत ठहराया, और वैधानिक व सीमित राजतन्त्र (Limited Monarchy) ही तब न्यायसंगत और मान्य हो सकता था। इंगलैण्ड के प्रभावशाली लेखक बर्क (Burke) के लेख भी फ्रांस के शिक्षितवर्ग को प्रभावित कर रहे थे। बर्क का कहना था कि इंगलैंड की तुलना में फ्रांस का शासन को गुलामी ही कहा जा सकता था, और क्रान्ति के सिवा योरप में स्वतन्त्रता की पुनः प्रतिष्ठा का कोई अन्य उपाय नहीं था।

लौक्क का सिद्धान्त

इंगलैण्ड की शासनपद्धति और लौक का सिद्धान्त ने फ्रांस के विद्वानों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया। फ्रांस का महान् लेखक मौन्तेस्कू ने अपनी पुस्तकों में इंगलैण्ड की शासन-पद्धति और न्याय को आदर्श माना है। मौन्तेस्कू का कहना था राजाओं के दिन

मौन्तेस्कू

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ख़द चुके हैं, और स्वेच्छाचारी शासन अनिवार्य नहीं है। उसने सरकार की शक्तियों का एक दूसरे से अलग रखने का सिद्धान्त (Separation of Powers) का प्रतिपादन किया। राज्य की कार्यकारिणी (Executive); कानून-सम्बन्धी (Legislative), और न्याय संबन्धी अधिकार के अलग-अलग क्षेत्र रहे, और एक अंग दूसरे अंग पर हावी न रहे। इस तरह जब न राजा की कार्यकारिणी और न व्यवस्थापिका-सभा (Legislature) राज्य की सार्वभौम सत्ता की एक मात्र प्रतिनिधि रहेगी, तभी वैयक्तिक स्वतन्त्रता सुरक्षित रहेगी, और राज्य की व्यवस्थापिका-सभा निरंकुश शासन स्थापित करने में असफल रहेंगी। मौन्तेस्कू का यह सिद्धान्त अक्षरशः किसी संविधान में लागू नहीं किया जा सकता था क्योंकि राज्य के ये तीनों विभाग एक दूसरे के पूरक हैं, न कि विरोधी। इंगलैण्ड के संविधान में हम इस सिद्धान्त को नहीं पाते हैं। पर मौन्तेस्कू के विचार से क्रान्ति के नेता प्रभावित हुये, और इस सिद्धांत का प्रभाव यह हुआ कि वैयक्तिक स्वतन्त्रता की सुरक्षा के लिए न्यायविभाग (Judiciary) को भरसक कार्यकारिणी और व्यवस्थापिका-सभा के हस्तक्षेप से अलग रखना एक सर्वमान्य आधुनिक सिद्धान्त माना गया है।

रूसो (Rousseau) के क्रान्तिकारी विचारों ने क्रांति का समुचित वातावरण बनाने में प्रमुख भाग लिया। रूसो लौक्क के 'सामाजिक-समझौता' के सिद्धान्त पर चलकर उससे बहुत आगे निकल गया। रूसो ने कहा कि "मनुष्य स्वतन्त्र जन्मा है, पर वह अपने को सब जगह सीकड़ों से बंधा पाता है" और मनुष्य चाहे तो वह इन प्रतिबंधों को तोड़ सकता है। उसमें इतनी शक्ति है, और उसका यह कार्य न्यायसंगत और नैतिक होगा। समाज की उत्पत्ति के पहले शान्ति और सुख का अविच्छिन्न साम्राज्य था। पर कालान्तर में परिवार और सम्पत्ति इत्यादि संस्थाओं और विचारों का उदय होने के साथ मनुष्यों में बुरे आचरणों का प्रवेश हुआ, और अन्त में परेशान होकर सब लोगों ने व्यक्तिगत रूप से अपने सभी अधिकारों को नवनिर्मित समाज को सुपुर्द

रूसो

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर दिया। इसी समाज ने राजा को शासन करने के लिए चुना। अतः समाज या साधारण जनता ही सर्वशक्तिमान है; सार्वभौम-सत्ता समाज में स्थित है और राजा उसका दूत है, सेवक है। इस विचार से जनता की सार्वभौम सत्ता का सिद्धान्त का प्रचार हुआ; राजा के अधिकारों का कोई अलग आधार नहीं रहा। जनता का यह पूर्ण अधिकार था कि वह राजा को बदल दे, राज-व्यवस्था को बदल दे, क्योंकि वह सर्वशक्तिमान थी। रूसो के प्रभावोत्पादक लेख और महत्वपूर्ण पुस्तक 'Social Contract' ने जनता में अपूर्व उत्साह और आत्मविश्वास पैदा कर दिया। सच पूछा जाय तो जनता अपने को पहचान सकी, और राजा का अत्याचारी शासन और अन्यायी-व्यवस्था को उलट देने का अपने अधिकार से अवगत हो गई। रूसो ने यह कहा कि 'जनता' (People) कभी भूल नहीं कर सकती, क्योंकि यह सभी व्यक्तियों की सामूहिक प्रतिनिधि है। व्यक्ति या वर्गविशेष कभी भूल कर सकता है, पर 'जनता' नहीं। प्रत्येक मनुष्य समान है, और स्वतन्त्र है, और 'सार्वभौम जनता' ऐसे ही मनुष्यों की सामूहिक प्रतिनिधि। इसलिये 'जनता' को अधिकार है कि जिस राज और समाज ने प्राथमिक समझौता को भंग किया है उसे वह उलट दे। पर 'जनता' का विरोध करने का न किसी को अधिकार है और न शक्ति। रूसो प्रतिनिधि-शासन (Representative Government) में नहीं, वरन् प्रत्यक्ष जनशासन में विश्वास रखता था। रूसो के वाक्य लोगों पर जादू सा असर करते थे। तत्कालीन राजव्यवस्था के विरुद्ध उसका यह खुला विरोध था, और उसके विचार एक ऐसे सिद्धान्त पर आधारित थे जो कि अत्यन्त लोकप्रिय था। राजा के प्रति आस्था और श्रद्धा का भाव का नाश करने में रूसो का बहुत बड़ा हाथ था।

वाल्तेअर वाल्तेअर (Voltaire) ने अपनी ओजस्वी लेखनी से चर्च की मदान्धता और अधार्मिकता की खिल्ली उड़ाई। उसने राजा और चर्च दोनों को जनता का विरोधी बताया। उसके

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यंगात्मक लेखों का साधारण जनता पर काफी प्रभाव पड़ा, और राज और चर्च के प्रति जनता में विद्रोह की भावना तीव्र होती गई।

इसी समय दिदिरो (Diderot) प्रभृति विद्वानों ने एक ज्ञानकोष (Encyclopaedia) प्रकाशित किया, जिसमें सभी आधुनिक विचारों और क्रान्तिकारी सिद्धान्तों का अर्थ बताया गया था, उनका विश्लेषण किया गया था। जनसाधारण अब एक जगह सभी प्रगतिशील विचारों को पढ़ सकते थे, और अपनी राज्यव्यवस्था से इनकी तुलना कर सकते थे। कुछ अर्थशास्त्रियों ने व्यापार और उद्योग पर लगे सरकारी और सामन्ती प्रतिबंधों को हटाने का प्रचार किया।

दिदिरो (Diderot)

इस बहुमुखी बौद्धिक-क्रांति से देश में अद्भुत क्रान्तिकारी वातावरण पैदा हो गया। जनता में नये विचार के प्रति दिलचस्पी बढ़ गई। स्थिर स्वार्थियों और स्थितिस्थापकों के लिए—राजा, सामन्त और चर्च के लिये—यह बड़ा संकट का समय था। ज्ञान की ज्योति के सामने तर्कहीन अन्यायी और रूढ़ीवादी विचार और संस्थाओं का अधिकार कब तक टिका रह सकता था। इन नये ओजस्वी विचारों का तत्कालीन सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था से प्रत्यक्ष सम्बन्ध था। इसलिए जनता को पथनिर्देश मिला और उसने अपनी दुर्दशा का कारण समझा, और उसे दूर करने के लिए उसे साहस और उत्साह मिला।

मध्यम वर्ग में असन्तोष

क्रान्ति सर्वदा जनवादी होती है, पर जनता को नेतृत्व की आवश्यकता रहती है। बिना दृढ़ और उत्साही नेतृत्व के व्यापक असन्तोष या तो दबा ही रह जाता है, या छोटे-मोटे विस्फोटों में जनशक्ति का अपव्यय हो जाता है। पर फ्रांस में इस समय क्रान्ति के लिए नेतृत्व भी तैयार था। योरप में फ्रांस का मध्यमवर्ग-पूंजीपति और व्यापारीवर्ग-सबसे अधिक उन्नत और बुद्धिमान था। व्यापारी और पूंजीपति काफी धनी थे। राजा अपने मंत्रियों की नियुक्ति भी इसी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ग से करता था। फ्रांस के स्थानीय प्रदेशों के प्रमुख राजकर्मचारी इसी वर्ग के थे। विद्या और वैभव दोनों क्षेत्र में यह वर्ग आगे था। पर राजा इस वर्ग पर कई प्रकार के कर लगाता था। इन्हें यह चीज बहुत खलती थी कि जब राजशासन और राजकोष उनकी मदद पर स्थित था, सामन्तगण बिना कोई रचनात्मक सहयोग के राजकर से मुक्त थे, और राजा के मुसाहिब बने थे। फ्रांस के आन्तरिक व्यापार पर कई प्रकार के प्रतिबंध लगे थे। देश में ही व्यापार स्वतन्त्र नहीं था--कई प्रकार के चुंगी और प्रतिबंधों से व्यापारी वर्ग परेशान था। इसलिए राज-शासन पर अधिकार करना इनके लिए जरूरी था। इंगलैण्ड में मध्यम-वर्ग ने काफी सफलता प्राप्त कर लिया था। वहाँ व्यापार काफी स्वतन्त्र था और व्यापारी और उद्योगपतियों ने पार्लियामेन्ट पर अपना व्यापक प्रभाव स्थापित कर लिया था। मध्यमवर्ग स्वभावतः आजाद-पसन्द होते हैं। फ्रांस का मध्यमवर्ग इंगलैण्ड के आदर्श से प्रेरणा पा रहा था, और फ्रांस में वैधानिक-राजतन्त्र की स्थापना में वे अपना और देश का कल्याण समझते थे; और इसलिए स्वेच्छाचारी शासन और सामन्तवाद के आधारहीन अवशेषों के विरुद्ध जनक्रान्ति को प्रोत्साहन और नेतृत्व देने के लिए यह वर्ग तैयार था।

अतः फ्रांस में क्रान्ति की पृष्ठभूमि तैयार थी। वातावरण उत्तेजित और क्रान्तिकारी था। अत्यन्त ही कुशल मध्यमवर्ग नेतृत्व लेने के लिए तैयार था। निरकुंश राजा और अन्यायी सामाजिक व्यवस्था के प्रति असन्तोष की आग सुलग रही थी। बड़े २ विद्वानों के लेखों ने जनता को नयी राह दिखाया, उनमें आत्मविश्वास और उत्साह का संचार किया। ऐसे समय में जब फ्रांस के राजा ने अमेरिका का स्वातन्त्र्य-संग्राम में अमेरिका के उपनिवेशों की ओर से सक्रिय भाग लेने का निश्चय किया, तब उसने यह बड़ी राजनैतिक अदूरदर्शिता दिखाई।

अमेरिका का स्वातंत्र्य-संग्राम

दूसरे की आजादी की लड़ाई में भाग लेने वाले सिपाही घर आकर अपनी आजादी के लिए आन्दोलन करने लिए स्वभावतः अधीर हो उठे।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमेरिका की स्वतन्त्रता का घोषणापत्र के मानवाधिकार के आदर्श से फ्रांसीसी अत्यन्त प्रभावित हुये। जिन आदर्शों को विजयी बनाने के लिए इन्होंने अमेरिका में अपना खून बहाया, वे अब इन आदर्शों को अपने देश और जीवन में विजयी बनाने के लिए उतावले हो गये। अमेरिका का स्वातंत्र्य-संग्राम की यर्थाथता ने फ्रांस का राजशासन और समाज के अन्याय को स्पष्ट कर दिया। अमेरिका से फ्रांस ने क्रान्ति का सिद्धान्त लिया। वहां से लौटे हुये सैनिकों में लाफायत्ति (Lafayette) ने फ्रांस आकर यह कहना शुरू किया कि राज्यशक्ति का विरोध करना सर्वोत्तम धर्म है। राजशक्ति जनशक्ति पर निर्भर करती है, और जनशक्ति ही इसका श्रोत है। लार्ड एक्टन साहब ने ठीक ही कहा है:--"इससे अधिक निश्चित कोई चीज नहीं है कि अमरीकी सिद्धान्तों ने फ्रांस को अत्यन्त गम्भीर रूप से प्रभावित किया और फ्रांस की राज्य-क्रान्ति का क्रम निर्धारित किया"।

लूई सोलहवां और मेरी एन्टोनेट का चरित्र

फ्रांस की क्रान्ति का जो रूप हुआ उसका उतरदायित्व बहुत हद तक राजा और रानी पर है। लूई सोलहवां वर्साई (Versailles) के राजमहल में मुसाहिबों के साथ राग-रंग में मस्त रहता था। प्रजा की असली हालत और बढ़ते असन्तोष का उसे ठीक-२ पता नहीं था। लूई का एक बहुत बड़ा दोष यह था कि वह अपने विचार का पक्का नहीं था, और उसकी नीति ढीली-ढाली होती थी। वह एक नीति पर नहीं चलता था, और उसकी हिचकिचाहट से देश में अस्थिरता फैल गई और लोगों को राजा पर यकीन नहीं होता था। उसका मंत्री नेकर ने एकबार कहा था "आप किसी भी आदमी को अपनी राय दे सकते हैं, पर उसे राय पर कायम रहने की शक्ति नहीं दे सकते"। राजा के विचार निंद्य नहीं थे, पर वे समय के पीछे थे। जब जनता की मांग तीव्र होती थी तब राजा झुक जाता था और उनकी पहली मांग मान लेता था, पर तब

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक अधीर जनता अपनी मांग बढ़ा देती थी। इस तरह यद्यपि राजा बराबर झुकता गया, पर वह जनता की बढ़ती मांग की पूर्ण स्वीकृति नहीं देता था। यदि प्रजा 'अ' की मांग करती, तब राजा काफी देर और हिचकिचाहट के बाद उसे मान लेता था, पर तब तक जनता की मांग 'अ + ब' हो जाती थी। जब 'अ + ब' मान लिया जाता तब तक मांग बढ़कर 'अ + ब + स' हो जाती। इस तरह राजा जनता के पीछे ही रहता। अतः एक तरफ तो राजा को बराबर आंदोलन की तीव्रता के कारण बराबर झुकते देखा गया, दूसरी ओर आन्दोलन के नेता राजा पर दबाव डाल कर ही जनता की मांगों की विजय देखते थे। इसलिए 'मांग' भी बढ़ती गई, राजा की कमजोरी भी स्पष्ट हो गई, और आन्दोलन तीव्र होता गया। यदि राजा दमन की या समझौता ही की नीति पर दृढ़ होकर चलता तो क्रांति की प्रगति का रुख दूसरा ही होता। राजा की रानी 'मेरी' बड़ी जिद्दी स्वभाव की थी— वह जनवादी विचारों का विरोध करती थी। उसकी सलाह पर चलना राजा के लिए खतरनाक हुआ। वह फ्रांस की जनता में अत्यन्त ही अप्रिय थी। क्रान्ति की चिनगारी बुझाने के बदले उसके विचार और कार्य आग में घी का काम करते थे। वह आस्ट्रिया की राजकुमारी थी, जहां स्वेच्छाचारी शासन और सामन्तगण का अत्याचार सहन करना जनता का स्वभाव सा हो गया था। मेरी एन्टोनेट फ्रांस की जनता की इस नयी भावना व नयी आशा को न खुद समझ सकी और न राजा को समझने दिया। समय की गति को नहीं पहचानना क्रान्ति को निमन्त्रण देना है।

राजकोष का दिवाला

क्रान्ति का संनिहित कारण था राजकोष का दिवालिया होना। राजा अपने दरबार में बेहिसाब खर्च करता था। रानी भी बड़ी खर्चीली स्वभाव की थी। लगातार युद्ध, विशेष कर सप्तवर्षीय युद्ध और अमेरिका का स्वातन्त्र्य-संग्राम, में फ्रांस को बुरी तरह खर्च करना पड़ा था। जनता कम उत्पादन और सामन्तों के एजेन्टों के शोषण के कारण राजकर में अत्याधिक वृद्धि नहीं सह सकती थी। टरगौट और नेकर ने कर-सम्बन्धी कुछ सुधार करने का प्रस्ताव

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्खा, और राज-व्यय में कम खर्च करने का सुझाव भी नेकर ने दिया। पर राजा की कमजोरी, रानी की जिद्द और मुसाहिबों के विरोध के कारण वे असफल रहे, और उन्हें पदच्युत होना पड़ा। पर इससे तो काम नहीं चल सकता था। धन की जरूरत थी, और कोष खाली था। सभी प्रस्ताव ठुकरा दिये गये थे। सामन्त और चर्चाधिकारी राजा को आर्थिक मदद देने के लिए तैयार नहीं थे। अतः कोई अन्य उपाय न देख कर राजा को फ्रांस का "State's General" को बुलाना पड़ा। ८ अगस्त १७८८ को एक राजघोषणा हुई कि अगले साल स्टेट्स जेनेरल की बैठक बुलाई जायगी जिसमें राष्ट्र को शासन-सम्बन्धी निर्णय करना पड़ेगा। बहुत वादविवाद के बाद यह भी तय हो गया कि तृतीय वर्ग की सभा में उतने ही सदस्य होंगे जितना कि उच्च वर्गों के दो अन्य सदनों की सम्मिलित शक्ति होगी, और तृतीय वर्ग की सभा के सदस्य जनसाधारण के द्वारा निर्वाचित होंगे। यह जनता की प्रथम विजय थी, और तृतीय सभा में तत्कालीन उग्र विचारों का प्रतिनिधित्व निश्चित था; और राज्य और समाज के प्रति दबे असन्तोष को व्यक्त करने को एक वैधानिक मंच मिल गया। पर यह भी बता दिया गया था कि सभी सदन अलग-अलग वोट करेगें। पर अब जब साधारण वर्ग (Commons) का यदि सामन्त और चर्च के उच्चाधिकारियों के बराबर प्रभाव मान लिया गया, तो वह दिन दूर नहीं हो सकता था कि साधारण वर्ग समान अधिकार की भी मांग करे। स्वतन्त्रता का आधार समता ही हो सकती थी।

स्टेट्स जेनरल को बुलाने की आज्ञा

क्रान्ति की प्रगति :

इसलिए जब ५ मई १७८९ में स्टेट्स-जेनेरल बैठी तो लूई ने सचमुच अनजाने ही सही सामाजिक और राजनैतिक क्रान्ति का द्वार खोल दिया था। तृतीयवर्ग के निर्वाचित सदस्यों को अपने निर्वाचन-क्षेत्र से आदेशपत्र (Cahiers) मिले थे। इनमें उन्हें स्वेच्छाचारी शासन और सामन्तों के विशेषाधिकारों को समाप्त करने को कहा गया था।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिए तृतीय-सभा पहले से ही राजशासन और समाज-व्यवस्था में मौलिक सुधार के लिए आमदा थी। निःशुल्क पाठशाला की, और दासता, अज्ञान और गरीबी का अन्त, की मांग की गई थी। राज्यकर की ऐसी व्यवस्था हो कि अमीर गरीब से अधिक अनुपात में कर दें, यह सुझाव भी दिया गया था। इन निर्देशक-पत्रों में राजतन्त्र का अन्त का जिक्र नहीं है। वैधानिक राजतन्त्र की स्थापना और समाज में विषमता का अन्त ही ध्येय था। प्रश्न यह था कि क्या उच्च वर्ग हवा का यह रुख देख सकेंगे।

स्टेट्स जेनरल की बैठक

इसी उत्तेजित वातावरण में १७५ घर्ष बाद फ्रांस की स्टेट्स जेनरल बैठी और स्थिति धीरे-२ सुधारवादियों के हाथों से निकल कर उग्रवादियों के पञ्जे में चली गई। तृतीय-सभा इस निश्चय पर पहुँची कि जब तक तीनों वर्ग की सभायें एक साथ नहीं बैठतीं तब तक उसके प्रस्ताव पास नहीं हो सकते क्योंकि उच्चवर्ग के सदनों के दो वोट के विरोध में साधारणवर्ग की सभा को एक ही वोट था। उच्चवर्ग के प्रतिनिधियों में पूर्ण मतैक्य नहीं था, पर साधारणवर्ग के प्रतिनिधियों में वैधानिक राजतन्त्र की स्थापना और सामन्तों के विशेषाधिकारों के अन्त के प्रश्नों पर पूर्ण एकता थी। इसलिए यदि तीनों सभायें साथ बैठतीं तो जनसाधारणवर्ग के प्रतिनिधियों के प्रस्ताव बहुमत से अवश्य पास हो जाते। इसलिए यह मांग की गई कि तीनों सदन साथ बैठें। उच्चवर्ग ने इसका विरोध किया। समझौता के सभी प्रयास असफल रहे। सामन्तवर्ग राजकर का तीसरा भाग उठाने को तैयार था पर अपने विशेषाधिकार को साधारण-सदन के साथ बैठकर खोने के लिए कतई तैयार नहीं था। अन्त में साएस (Sieys) ने तृतीय वर्ग की सभा में यह प्रस्ताव रक्खा कि अन्य दो वर्गों को साथ बैठने का नियमानुसार निमन्त्रण दिया जाय, और वे इसे स्वीकार करें या न करें तृतीय-वर्ग की यह सभा अपने को राष्ट्रीय सभा (National Assembly) घोषित करती है, और राजकर पर इसका पूर्ण अधिकार है। १७ जून १७८९ को यह प्रस्ताव अत्या-

यह राष्ट्रीय सभा बन गयी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धिक बहुमत से पास हो गया। फ्रांस का 'तृतीय' वर्ग ने पहला क्रान्तिकारी कदम उठाया। इस प्रस्ताव का अर्थ था कि तृतीय वर्ग ही राष्ट्र है, और उच्चवर्ग राष्ट्र के अनिवार्य अंग नहीं हैं।

लूई ने तृतीय वर्ग की सभा को भंग होने का आदेश दिया; इस पर इस सभा के सभी सदस्य अपना मतभेद भूल कर राजा की इस आज्ञा के विरुद्ध टेनिस खेलने के मैदान में जुट गये, और एक शपथ लिया कि जब तक वे फ्रांस के लिए एक नया संविधान नहीं बना लेंगे तब तक यह सभा भंग नहीं होगी। राष्ट्रीय-सभा अब संविधान-सभा (Constituent Assembly) बन गई। टेनिस-कोर्ट में लिया गया २० जून का यह शपथ फ्रांस की क्रान्ति की एक महत्वपूर्ण घटना है। राजा की प्रतिष्ठा घट गई, और उदारवादी सदस्यों का प्रभाव कमने लगा। सभी दल राजा के विरुद्ध एक मत हो गये।

टेनिस-कोर्ट की शपथ

इसी समय नेकर लूई से कुछ महत्वपूर्ण उदार प्रस्ताव स्वीकार कराने की कोशिश कर रहा था, पर रानी मेरी के हस्तक्षेप से यह मौका भी हाथ से निकल गया। टेनिस-कोर्ट की शपथ का समाचार मालूम होने पर प्रतिगामी शक्तियों की बन आई, और राजा ने सभी सुधारों को वापस लेने की आज्ञा दिया। नेकर ने इस्तिफा पेश कर दिया। राजा का दूत ने असेम्बली को भंग करने की राजाज्ञा सुनाई। मिराबउ जवाब दिया "यदि हमलोगों को निकालना है तो हम सिर्फ शक्ति का प्रयोग से ही निकलेंगे।" असेम्बली का सभापति बेली ने घोषणा की "यह राष्ट्र की सभा है, और यह किसी से आज्ञा नहीं लेती है।" यह खुला विरोध था। लार्ड ऐक्टन् के शब्दों में "इसी क्षण नयी व्यवस्था के लिए जगह बन गई।" पेरिस का वातावरण अशान्त हो गया, और जनसाधारण अधिक उग्र और उत्तेजित हो गये। छोटे-मोटे हिंसात्मक कार्य भी किये गये। अंत में २७ जून को राजा ने सभी वर्गों की सभाओं को एक साथ बैठने की आज्ञा दे दिया। जनता की यह महान् विजय थी, और इनके पीछे पेरिस की उग्र जनता का सहयोग था।

टेन्ट्स जेनेरल की पहली सफलता

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर राजा और प्रतिक्रियावादी दल ने सच्चे दिल से आत्मसमर्पण नहीं किया था। रानी और उसके मुसाहिब चुपचाप वर्साई में स्वामिभक्त सेना इकट्ठा कर रहे थे। इस उग्र प्रतिगामी दल का नेता डी अर्तोईस (De Artois) ने कहा कि "यदि तुम्हें आमलेट खाने की इच्छा है तो अंडे तोड़ने ही पड़ेंगे"। क्रान्ति का हिंसक रूप अब दूर नहीं था। पेरिस की जनता को राजा और रानी के बुरे इरादों का पता था, और असेम्बली भी इस खतरे से अनजान न थी। यह निश्चित था कि असेम्बली सामन्तों के आधारहीन विशेषाधिकारों को बिना खत्म किये नहीं मानेगी और राजा और उसके दरबारी राजनैतिक प्रश्न पर भले झुक जायँ, वे असेम्बली की सामाजिक नीति का जबरदस्त विरोध करेंगे इसमें कोई शक नहीं था। सम्मिलित-सभा में सामन्तवर्ग और चर्च के अधिकारी खुले दिल से तृतीय वर्ग का साथ देने को तैयार नहीं थे, वरन् उसके काम में अड़ंगा लगाने की नीति पर चल रहे थे। पर असेम्बली से अधिक राजविद्रोही पेरिस हो रहा था। असेम्बली में मिराबउ ने यह प्रस्ताव रक्खा कि यदि राजा सेना को वापस नहीं बुलावेगा तो पेरिस की गलियों में खून की नदी बहेगी (८ जूलाई, १७८९)। राजा ने सेना की तैयारी और भी मजबूत किया और ११ तारीख को मिराबउ के प्रस्ताव का नकरात्मक उत्तर भेज दिया।

पर इस दृढ़ निश्चय लेने के बाद राजा घबड़ा गया। पर तीर निकल चुका था। १४ जूलाई को पेरिस शहर के बाहर स्थित बेस्टील का किला पर उत्तेजित जनता ने कब्जा कर लिया। कैदियों को आज़ाद कर दिया गया, और जंगी सामान हाथ लगे।

बैस्टील का पतन

बैस्टील का पतन का महत्व लाक्षणिक था। बैस्टील सदियों से निरकुंश और अत्याचारी शासन का प्रतीक और यन्त्र था। जनता के द्वारा उसका पतन का अर्थ था पुरानी राज्यव्यवस्था पर जनता का प्रत्यक्ष आक्रमण और विजय। क्रान्ति को इससे प्रोत्साहन मिला—जनता में आत्मविश्वास आया, और पेरिस पर क्रान्ति की प्रगति का गहरा प्रभाव तब से स्पष्ट हो गया और बराबर बढ़ता गया। उदारवादियों

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और शान्तिप्रिय नेताओं के स्थान पर पेरिस का उग्र जनमत क्रान्ति का रहनुमा हो गया और राजतन्त्र का नाश का यही कारण था। वैस्टील के पतन से प्रतिगामी शक्तियों को स्थिति की गम्भीरता का ज्ञान हो गया। अब या तो उन्हें आत्मसमर्पण करना होगा, या युद्ध के लिए पूरी तैयारी करनी होगी। जनता की खुशी का ठिकाना! सामन्त अपने विशेषाधिकारों के लिए अति चिन्तित हो गये। वैस्टील का पतन का उदाहरण से अन्य प्रादेशिक नगरों में भी विद्रोह हो गया। गरीब अमीर के विरुद्ध, झोपड़ी सामन्तों के गढ़ के विरुद्ध खड़े हो गये। हिंसा का मार्ग अपनाया गया। मध्यमवर्ग जो कि सम्पति का विरोधी नहीं था इन हिंसक उपद्रवों को दमन करने में सफल हो गये। पर अब यह स्पष्ट था कि सामन्तों के विशेषाधिकार नहीं बच सकते थे।

अगस्त चार १७८९ को असेम्बली ने सर्वसम्मति से सामन्ती-व्यवस्था का अन्त कर दिया। सामन्तों के विशेषाधिकार का अन्त हो गया। सभी नागरिकों को राजपदों पर नियुक्ति का बराबर अधिकार है इसकी घोषणा की गई। न्याय सबके लिए एक हो गया, प्रजातान्त्रिक फ्रांस का उषाकाल आ गया। किसानों की आय ६० प्रतिशत् बढ़ गई। सामन्त-प्रतिनिधि तृतीयवर्ग के प्रतिनिधि से कम उत्साहित नहीं थे। जो अनिवार्य था उसके लिए शोक करना वृथा था। चर्च ने भी दसवां भाग का कर (Tithe) का दावा छोड़ दिया, और राज्य का चर्च सम्पत्ति और आय पर अधिकार है, यह मान लिया। सामन्तवाद का शव का जनाजा निकाला गया।

सामन्ती-व्यवस्था का अन्त (४ अगस्त)

इसके बाद संविधान सभा संविधान बनाने के काम में जुट गई। संविधान के आरम्भ में मानव-अधिकारों की घोषणा की गई थी। इसमें जीने का हक, वयक्तिक स्वतन्त्रता, सम्पत्ति रखने का अधिकार, सुरक्षा और आत्मरक्षा के अधिकार मनुष्य के प्राथमिक और स्वाभाविक अधिकार

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माने गये हैं। इनका अपहरण कोई नहीं कर सकता, और इनकी सुरक्षा के लिए ही राजशासन की स्थापना की जाती है। इन अधिकारों का समुचित व्यवहार के लिए धर्म-सहिष्णुता, प्रतिनिधित्व-शासन और प्रेस की स्वतन्त्रता जरूरी है। घोषणा में यह भी कहा गया कि प्रत्येक मनुष्य बराबर है, उसके कई अधिकार हैं, और सब पर एक ही प्रकार से कर लगाया जा सकता है। संविधान में 'मनुष्य की समता' का आदर्श सर्वोपरि रक्खा गया। सामन्ती-युग की सामाजिक विषमता और वर्गीकरण का अन्त हो गया। शोषित जनता को नया नारा मिला 'स्वतन्त्रता, समता और भाईचारा'--(Liberty, Equality and Fraternity)। फ्रांस और योरप की जनता, और आगे चलकर अन्य देशों के जनआंदोलन को इस महान् आदर्श से शक्ति और प्रेरणा मिली। संविधान का यह एक पृष्ठ नेपोलियन की महान् सेना से अधिक शक्तिशाली था। योरप में पुरानी राज्यव्यवस्था की नींव ही इस सिद्धान्त से हिल गयी। फ्रांस की क्रान्ति का स्वागत शोषित जनता ने हर जगह किया—स्वतन्त्रता और समता प्राप्त करने की उत्कृष्ट लालसा स्वाभाविक थी।

सीमित राजन्तत्र की स्थापना

संविधान के द्वारा वैधानिक राजतन्त्र की स्थापना की गई। जनता के द्वारानिर्वाचित व्यवस्थापिका-सभा का हक था, कानून बनाना, कर लगाना और मानव-अधिकारों की रखवाली करना। राजा इस सभापर निर्भर करता था, और राजशासन अपने मंत्रियों के द्वारा करता था जो कि असेम्बली के सदस्य नहीं हो सकते थे। न्यायविभाग कार्यकारिणी और व्यवस्थापिका सभा से स्वतन्त्र था मौन्तेस्क्यू का सिद्धान्त का प्रभाव स्पष्ट था। धार्मिक सहिष्णुता और विचारों को व्यक्त करने की स्वतन्त्रता प्रत्येक नागरिक को दी गई थी। राजा को विधान-सभा से पास हुये विधेयकों को अस्थायी तौर पर स्थगित (Temporary Veto) करने का अधिकार दिया गया था। अतः फ्रांस में अब वैधानिक या सीमित राजतन्त्र स्थापित था। यद्यपि इंगलैंड की तरह यहां की विधान-सभा

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के दो सदन नहीं थे और न कैबिनेट-व्यवस्था का व्यवधान ही था तब भी इस संविधान से फ्रांस ने वही पाया जो इंगलैंड को १६८८ की महान् क्रांति से मिली थी। सामन्ती व्यवस्था के अर्थहीन अवशेष नष्ट हो गये थे, और सामाजिक एकता का सिद्धान्त की प्रतिष्ठा हो गई। पर मतदान का अधिकार सिर्फ सम्पत्ति वालों को ही दिया गया, इस तरह मध्यमवर्ग ने सम्पत्ति को सर्वहारा वर्ग—नगर के मजदूर और खेतहीन मजदूर—से सुरक्षित रखने की कोशिश की। इस संविधान में मिराबउ का बड़ा हाथ था। तिरंगा झंडा राष्ट्रीय झंडा माना गया।

जब संविधान-सभा में संविधान-सम्बन्धी प्रस्तावों पर वादविवाद हो रहा था, और मध्यमवर्ग सामन्ती विशेषाधिकारों के अन्त के बाद सम्पत्ति की रक्षा और वैधानिक राजतन्त्र से सन्तुष्ट था, पेरिस की ८००००० भूखी जनता अधीर थी। उन्होंने क्रान्ति का अर्थ गरीबी का अन्त समझा था, पर उन्हें निराशा हो रही थी। अन्त में ५ अक्तूबर १७८९ को औरतों का एक वृहत् जत्था वर्साई की ओर चल पड़ा। राजा से रोटी मांगना ही प्रथम ध्येय था, यद्यपि राजा को पेरिस ले आना भी एक ध्येय था जिससे कि राजा अपने मुसाहिबों के प्रभाव से मुक्त होकर क्रान्तिकारी जनता के कब्जे में रहे। रास्ते में यह जुलूस उग्र होता गया। राजा-रानी और दरबारी सन्नाटे में थे। क्या करना चाहिये, यह नहीं सूझ रहा था। इसी समय औरतों के जलूस के पीछे लफायत्ति पेरिस के नागरिक-रक्षादल के २०००० सैनिकों के साथ वर्साई पहुँच गया। जन-साधारण उतावले हो गये। 'पेरिस' 'पेरिस' ही उनका नारा था। राज परिवार की रक्षा खतरे में थी। अन्त में अ-सहाय होकर राजा, रानी और दरबारी पेरिस चले आये (६ अक्तूबर १७८९)। पेरिस की जनता ने नारा लगाया "हम नानवाई, उसकी पत्नी और उसके लड़के को ले आये हैं।" यह व्यंग ठीक ही था क्योंकि अब पेरिस में खाद्यान्न की कमी खत्म हो गई। इस आन्दोलन में असेम्बली ने कोई हिस्सा नहीं लिया था, और पेरिस की

औरतों का जुलूस, और राजा का पेरिस चला आना

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनता और रक्तादल का प्रभाव बढ़ने का यह उदाहरण था। राजा भी उग्र क्रान्तिकारियों के कब्जे में था, और असेम्बली ने अब मूक होकर पेरिस की उत्तेजित जनता के हाथों में नेतृत्व समर्पण कर दिया। राजा और रानी के कई सलाहकार और प्रतिक्रियावादी साथी फ्रांस छोड़ कर भाग गये। ये Emigri कहलाये, और इन्होंने बाहर से फ्रांस की राजनीति को प्रभावित किया। मिराबउ उग्र क्रान्तिकारियों का विरोधी था, और राजा के द्वारा संविधान मान लेने के बाद वह राजा का समर्थक बन गया। क्रान्तिवादियों का उग्रदल, 'जैकोबिन दल', उससे रंज हो गया और वे उसे क्रान्ति का विश्वासघाती और राजा का खरीदा गुलाम समझने लगे। पर मिराबउ प्रसन्न नहीं था, और अन्त में उसका स्वास्थ्य गिरने लगा, और उसकी मृत्यु २ अप्रैल, १७९१ को हो गई। उसके बाद राज्यतन्त्र का भविष्य अंधकारमय हो गया। क्रान्ति को सीमा में रखने की शक्ति रखने वाला अब कोई नहीं रहा।

पर राजा विशेषकर रानी पेरिस में सन्तुष्ट नहीं थे, और रानी फ्रांस से भागे हुये राजभक्तों और अपने सम्बन्धी आष्ट्रिया के राज परिवार से गुप्त षड्यन्त्र कर रही थी। वह आष्ट्रिया की सेना की मदद से क्रान्ति को कुचलने पर आमदा थी। इसी समय चर्च के पुनर्संगठन के प्रश्न पर संविधान सभा में गहरा मतभेद खड़ा हुआ। चर्च के पादरियों ने टिथि (दसवां भाग कर) पर अपना दावा छोड़ दिया था और राजकर का बराबरी बोझ ढोने को तैयार थे। राजा चर्च के निम्नवर्ग के पादरियों की नियुक्ति करता था। अब जब राजा असेम्बली के अधीन आ गया था तब लोक-सभा ने इस विशेषाधिकार पर अधिकार करने की इच्छा प्रकट थी। राज्य की आर्थिक समस्या वैसी ही जटिल बनी हुई थी। चर्च के पास बहुमूल्य सम्पत्ति, अमूल्य पत्थर, काफी सोना चांदी के सामान थे। अतः बहुत वादविवाद के बाद बहुमत से पादरियों का नया विधान (Civil Constitution of the Clergy) पास हो गया। चर्च की सम्पत्ति अब राजसम्पत्ति हो गई, चर्च के

राज्य-पादरियों का नया विधान

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पादरी राजकर्मचारी हो गये, और प्रत्येक चर्च के अधिकारी को संविधान के प्रति भक्ति और आस्था की शपथ लेनी पड़ती थी, (४ जनवरी, १७९१), और चर्च का शासन का नया विधान संविधान का ही एक अंग बना दिया गया। कई बिशौपों ने शपथ लेना नामञ्जूर किया, और ऐसे बिशौपों को देशद्रोही समझा गया। देश भर में गृहयुद्ध का समा बँध गया। धार्मिक सहिष्णुता का सिद्धान्त बहुत जगह भुला दिया गया। राजा ने इस कानून पर हस्ताक्षर जरूर कर दिया था, पर वह इसके लिए बहुत अप्रसन्न था और इसे अस्थायी नियम ही समझता था।

'पादरियों के लिए यह नया विधान' का परिणाम था कि क्रान्ति की विरोधी भावना देश में फैल गई, और राजा को विदेशी मदद मांगने का मौका मिला। रानी तो षड्यन्त्र रच ही रही थीं। आष्ट्रिया की सेना को फ्रांस में घुसने के पहले राजा और रानी को उत्तेजित जनता से प्राण बचाने के लिए फ्रांस छोड़ने की सलाह दी गई। राजा और रानी चुपचाप घोड़ेगाड़ी में बैठकर भागे। पर अभाग्यवश सीमा पर ही वे पहचान लिये गये और वरेन्निज (Varennes) में पकड़ लिये गये (२१ जून, १७९१) और उत्तेजित जनता के बीच पेरिस ले आये गये। लूई की यह भूल फ्रांस का राजतन्त्र अन्त का कारण बनी। लूई अब झूठा और धोखेबाज समझा जाने लगा। राजतन्त्र का अन्त कर गणतन्त्र की स्थापना के लिए आवाज बुलन्द होने लगी। रानी बड़ी बदनाम हो गई। सेप्टेम्बर में राजा लूई ने १७०१ का संविधान पर हस्ताक्षर कर दिया।

राजा का भागना और पकड़ा जाना

पर स्थिति बिगड़ती गई। आष्ट्रिया का राजा लियोपोल्ड द्वितीय अपनी बहन मेरी एन्टोनेट के लिए चिन्तित था। फिर उसे यह डर था कि बेल्जियम, जो इस समय आष्ट्रिया के साम्राज्य के अन्तर्गत था, कहीं फ्रांस के उदाहरण से प्रभावित न हो जाय। फ्रांस की क्रान्ति ने वैधानिक राजतन्त्र की स्थापना और सामन्ती विशेषाधिकार का अन्त कर दिया था। मानव के स्वाभाविक अधिकार, मनुष्य की समानता और स्वतन्त्रता

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के सिद्धांतों की घोषणा की थी। योरप के स्वेच्छाचारी राजा और उच्च वर्ग इसे अपना खतरा समझने लगे। यह उनकी राज्य व्यवस्था और सामाजिक व आर्थिक परम्परा पर आघात था। गुस्टेवस् तृतीय ने कहा था "फ्रांस के राजा और रानी पर शायद व्यक्तिगत संकट है, पर सभी राजाओं पर जो संकट है उसका क्या पूछना।" लियोपोल्ड द्वितीय चुप रहनेवाला नहीं था, और उसने पर्शिया के साथ यह घोषणा की (Declaration of Pilnitz) कि यदि फ्रांस में राजा का समुचित आदर और पद की पुनर्स्थापना नहीं हुई तो पूरा योरप ही एक होकर फ्रांस का विरोध करेगा। अतः योरप के प्रतिगामी शक्तियों ने ही क्रान्ति को पहले चुनौती दी। क्रान्तिकारी और नेपोलियन के समय के भीषण युद्ध की जिम्मेवारी योरप के प्रतिक्रियावादी राजाओं पर ही है। फ्रांस से भागे राजभक्त (Emigres) बराबर आस्ट्रिया को फ्रांस की क्रान्ति में हस्तक्षेप करने के लिए उकसाते रहे। इनकी संख्या दिनोंदिन बढ़ती जाती थी। स्पेन, रूस और सार्डिनिया से वे फ्रांस के विरुद्ध सौदा कर रहे थे। इनकी कारवाइयों के कारण फ्रांस में लूई और भी अप्रिय होता गया हालाँकि इनमें उसका कोई हाथ नहीं था, और ये भागे हुये फ्रांसीसी लूई को नहीं बल्कि राजतन्त्र को बचाने का स्वप्न देखते थे। फ्रांस की लोकसभा में इनका फ्रांस वापस आने का प्रस्ताव पास हुआ। इनकी सम्पति जब्त हुई, और जो न आवेंगे उन्हें प्राणदण्ड की सजा का हुक्म हुआ।

योरोपीय राज्यों की बौखलाहट

फ्रांस में युद्ध के पक्ष में विचार दृढ़ हो गया। राजा और रानी एक तरफ तो संविधान के प्रति सम्मान का भाव दिखला रहे थे दूसरी ओर लियोपोल्ड को पत्र लिख रहे थे कि यह दिखलौआ है और वे अपने खोये हुये अधिकार विदेशी मदद से पुनः प्राप्त करना चाहते हैं। लियोपोल्ड भी सैनिक हस्तक्षेप के लिए तैयारी कर रहा था। अन्त में फ्रांस ने लूई के नाम पर हंगरी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की (२० अप्रैल)। रानी ने अपने भाई को फ्रान्स की सैनिक

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्रवाइयों की योजना लिख भेजा। पर्शिया और आस्ट्रिया ने फ्रांस पर आक्रमण कर दिया। २० जूलाई, १७९२, में मित्रसेना का

ब्रन्सविक् की घोषणा

सेनापति ने एक घोषणापत्र निकाला, जिसमें कहा गया था कि पेरिस और फ्रांस के सभी शहर में जहाँ राजा को ले जाया जायगा वहां सैनिक-शासन स्थापित किया जायगा। इस घोषणा का परिणाम यह हुआ कि फ्रांस के उग्रवादी नेताओं का प्रभाव दृढ़ हो गया और राजा और राजतन्त्र की बची-खुची आशा मिट गई। विदेशी प्रतिक्रियावादियों के इस अन्यायपूर्ण हस्तक्षेप से फ्रांस की जनता में अभूतपूर्व राष्ट्रीयता का भाव और अदम्य उत्साह का संचार हुआ। डान्टन् ने कहा कि पेरिस जला दिया जायगा पर दुश्मनों के हाथ में पड़ने नहीं दिया जायगा।

फ्रांस पर इस विदेशी आक्रमण का परिणाम यह हुआ कि विधान-सभा भंग हो गई, और उग्रवादियों ने कन्वेन्शन, एक विशेष लोकसभा, स्थापित किया। राजतन्त्र का अन्त हो गया, फ्रांस को गणतन्त्र घोषित किया गया। जैकोबिन (क्रान्तिकारियों का उग्रदल) के हाथ में शक्ति आ गई, और

कन्वेन्शन की स्थापना और राजतन्त्र का अन्त

राजा को कन्वेन्शन में देशद्रोह के अपराध पर प्राणदण्ड की सजा सुनाई गई। (सेप्टेम्बर १७९२), और २१ जनवरी को उसे कत्ल कर दिया गया। फ्रांस पर संकट के बादल घिर आये थे, क्रान्ति के सिद्धान्त पर ही खतरा था। कन्वेन्शन पर जैकोबिनों का प्रभाव बढ़ता गया। ये लोग किसी भी प्रकार के समझौता के विरोधी थे। उग्रवादी जैकोबिन दल ने यह निश्चय किया कि इस समय सख्ती करने से ही देश का उद्धार हो सकता है। लावेन्डी नामक प्रदेश में राजा के पक्ष में विद्रोह से भी उन्होंने यही निष्कर्ष निकाला। इस समय कोई भी उदारवादी संशक्ति दृष्टि से देखा जाने लगा। उदारवादी व सुधारवादी विचारों को कुचला गया, और देश में सम्पूर्ण एकता स्थापित करने की कोशिश की गई। एक क्रान्तिकारी विशेष-न्यायालय (Revolutionary Tribunal) की स्थापना हुई जिसमें दोषी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरिकों को शीघ्र ही सजा सुनाई जाती थी। इस न्यायालय के जज कन्वेन्शन में चुने जाते थे, और इनके फैसले की अपील नहीं थीं। जन-रक्षा की एक विशेष कमिटी (Committee of Public Safety) की स्थापना हुई जिसके हाथ में सभी शक्ति केन्द्रित थी। एक कानून के द्वारा किसी भी नागरिक की देशभक्ति के विरुद्ध कोई नागरिक अभियोग या संदेह प्रकट कर सकता था, और तब वह क्रान्तिकारी-न्यायालय में दोषी करार दिये जाने पर शूली पर लटका दिया जाता था। इस तरह फ्रांस में आतंक का राज्य (Reign of Terror) स्थापित हो गया (सेप्टेम्बर १७९३)। ईमानदार रोब्सपिअर इस आतंकवादी शासन का सूत्रधार था, जनसुरक्षा-कमिटी का सभापति था। मैरट और डान्टन् इसके सहयोगी थे। सैकड़ों देशद्रोही और निरपराध भी शूली पर लटका दिये गये, और पेरिस की जनता को इसमें बड़ी दिलचस्पी हो गई। जैकोबिनों ने इस सुअवसर का फायदा उठा कर अपने प्रतिद्वन्द्वी दल (Girondists) के सदस्यों को बुरी तरह कुचलना शुरू कर दिया।

आतंक का राज्य

आतंक का राज्य फ्रांस के इतिहास में काला धब्बा है। पर परिस्थिति ऐसी थी कि क्रान्ति के नेताओं को इसके सिवा अन्य रास्ता नहीं सूझता था। विदेशी फौज सामने थी, देश में मतभेद था, विद्रोह की संभावनाएं थीं, देश की स्वतन्त्रता और क्रान्ति के मीठे फल खतरे में थे। इस समय यदि देश में पूर्ण शान्ति, व मतैक्य न रहता, तब शक्तिशाली संगठित योरोपीय सेना का सफलतापूर्वक सामना असम्भव था। और इस समय फ्रांस की सेना ने अभूतपूर्व उत्साह दिखाया। वाल्मी नामक जगह पर मित्र सेना हटा दी गई, फ्रांस की जमीन पर से विदेशी सेना खदेड़ दी गई, और बेल्जियम और इटैली के कुछ भाग फ्रांसीसी क्रान्तिकारी सेना के अधीन आ गये थे। फ्रांस की कन्वेन्शन ने यह घोषणा की कि फ्रांस राजाओं के विरुद्ध सभी स्वातंत्र्य-संग्रामों की मदद करेगा, और समानता और भाईचारा का सिद्धान्त का प्रचार करेगा। अतः अब फ्रांस की क्रान्ति

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ्रांस में सुधार लाने का आन्दोलन ही नहीं रही, बल्कि अब अन्तर्राष्ट्रीय प्रचार का फौजी साधन बन गई। योरोप के राजतन्त्र पर यह स्पष्ट आक्रमण था। फ्रांस की क्रान्ति का अब यह उद्देश्य हो गया कि जिन आदर्शों का फ्रांस की मदद से अमेरिका में विजयी बनाया गया था उसे अब योरप का सर्वसाधारण धर्म बनाया जाय। अब ब्रिटेन भी युद्ध में आ गया था। फ्रांस की राज्यक्रान्ति का इंगलैण्ड में पहले स्वागत हुआ था। बेस्टील् का पतन पर बर्क ने प्रसन्नता प्रकट किया था। लोगों का यह विचार था कि फ्रांस की क्रान्ति का वही लक्ष्य है जो इंगलैण्ड की १६८८ की क्रान्ति का ध्येय था—स्वेच्छाचारी राजशासन का अन्त। पर राजतन्त्र का नाश, राजा की हत्या और "सेप्टेम्बर के हत्याकाण्ड" से इंगलैण्ड के नेतागण बहुत ही सशंकित हो गये और क्रान्ति के प्रति उनका रुख बदल गया। बेल्जियम और हौलैण्ड पर फ्रांसीसी सेना का अधिकार से भी इंगलैण्ड घबड़ा गया। उसे अपनी रक्षा का डर हो गया। अतः इंगलैंड भी आस्ट्रिया और प्रशा के साथ फ्रांस के विरुद्ध युद्ध में चला आया। फ्रांस के लिए यह बुरा हुआ। फ्रांस की सेना हौलैण्ड और बेल्जियम से निकल आई, और फ्रांस में विदेशी सेना घुस आई। इसी संकट के समय कन्वेन्शन में गिरोन्डिन का प्रभाव कम गया, और उग्रवादी जैकोबिन दल ने जन-सुरक्षा कमिटी का संगठन किया। रौबस्पिअर और डान्टन् ने फ्रांस और क्रान्ति की रक्षा का भार अपने सर लिया। देश में आतंक के द्वारा इन्होंने शान्ति स्थापित किया, लायोन्स् (Lyons) का विद्रोह दबाया, और फ्रांस के उत्साही जन-सेवा ने विदेशी फौज को फ्रांस से भगा दिया, हौलैण्ड और बेल्जियम को फिर अपने अधिकार में कर लिया, और फ्रांस की 'प्राकृतिक सीमा' की मांग की। इस तरह फ्रांस की क्रान्ति अब सुरक्षात्मक नहीं, वरन् आक्रमणक हो गई।

इधर फ्रांस में आंतक की अति हो रही थी। प्रत्येक नागरिक एक दूसरे पर शक करता था। फ्रांस में करीब एक महीने के लिए कैथोलिक

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म का अन्त कर दिया गया था (नवम्बर १७९३)। बुद्धि का राज्य स्थापित हुआ। असहिष्णुता का बोलबाला था। मामूली मतभेद के कारण भी कितने शूली पर चढ़ा दिये गये। कल किसकी बारी आयेगी पता न था। अस्थिर जीवन ही नियम हो गया। एक युवती ने मैरट् की हत्या कर दिया था (जुलाई १३,१७९३)। इस बढ़ते आंतक और उग्र असहिष्णुता के विरोध में कन्वेन्शन में ही एक दल पैदा हो गया। स्वयं डान्टन् इस नीति का विरोधी था, और उदार-दल की मदद करना चाहता था। अतः अब क्रान्ति के नेता ही एक दूसरे पर शक करने लगे, और क्रान्तिकारी न्यायालय का प्रयोग अब क्रान्ति के विरोधियों के लिए नहीं, वरन् क्रान्ति के समर्थकों के विरुद्ध होने लगा। उग्रवादी हेर्बट को शूली पर जब चढ़ाया गया (मार्च १७९४), पेरिस की जनता डान्टन् के विरुद्ध हो गई। रौबस्पिअर ने उसे क्रान्ति का विश्वासघाती कहा, और ५ अप्रील १७९४ को डान्टन् का कत्ल किया गया। रौबस्पियर अब सर्वेसर्वा था। पर जनता अब अपने में या उसमें विश्वास खो बैठी थी, और कन्वेन्शन के कुछ सदस्य अब रौबस्पिअर का अन्त चाहते थे क्योंकि उन्हें डर था कि उनका जीवन खतरे में था। अब क्रान्तिकारी नेताओं का यह हाल था कि कौन एक दूसरे पर पहले आक्रमण करता है। रौबस्पियर ईश्वर पर विश्वास करता था और इसने कन्वेन्शन में यह प्रस्ताव रखा कि सर्वशक्तिमान सत्ता की स्थिति मान ली जाय। इसके बिना नागरिकों की भावनाओं को काबू में नहीं रखा जा सकता है। अनैश्वरवाद की रौबस्पिअर ने निन्दा की। ८ जून १७९४ को ईश्वर के नाम पर पेरिस में एक वृहत् भोज का आयोजन हुआ। पर रौबस्पिअर अपनी शक्ति की चरम सीमा पर पहुँच चुका था। जब उसने यह कानून बनाया कि मृत्युदण्ड का फैसला क्रान्तिकारी न्यायालय में बिना गवाही लिए हुये हो, तन कन्वेन्शन का माथा ठनका। कन्वेन्शन के प्रत्येक सदस्य का प्राण अब रौबस्पिअर की मुट्ठी में था। क्रान्ति-युग का यह

आंतक का शासन का अन्त

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबसे क्रूर कानून था। रौबस्पिअर के विरुद्ध सुरक्षा-कमिटी और कन्वेन्शन ने आवाज उठायी, और २८ जून १७९४ में रौबस्पिअर का वही अन्त हुआ जो उसके इशारे पर उसके कितने साथियों का हुआ था। रौबस्पिअर को शूली पर चढ़ाया गया, और पेरिस की जनता कभी का अपने हृदय का देवता रौबस्पिअर का यह दुखद अन्त खुशी से देखती रही। आंतक का शासन का वस्तुतः अन्त हो गया। जैकोबिन दल का प्रभाव नष्ट हो गया।

डाइरेक्टरी की स्थापना

कन्वेन्शन ने एक नया संविधान बनाया (१७९५), जिसके अनुसार फ्रांस में दो सदनों की विधान-सभा बनी, और कार्यकारिणी एक 'डाइरेक्टरी' से संगठित थी, जिसके पांच सदस्य निचली सभा के द्वारा चुनी सूची में से ऊपर के सदन के द्वारा चुने जाते थे। पर इस संविधान का अर्थ था क्रान्ति का पग पीछे ले जाना और कन्वेन्शन और डाइरेक्टरी में खटपट हुई। अन्त में डाइरेक्टरी को इस विरोध को दबाने के लिए सेना पर निर्भर करना पड़ा, और नेपोलियन बोनापार्ट नामक एक सेनानायक ने पेरिस के इस विद्रोह का दमन कर दिया (अक्टूबर १७९५)। डाइरेक्टरी बच गई। नेपोलियन फ्रांस की क्रान्तिकारी सेना का नायक बना। इटैली और स्वीट्जरलैण्ड में आस्ट्रिया की सेना को इसने बराबर शिकस्त दिया। नेपोलियन ने मिश्र को भी जीत लिया और सीरिया की ओर बढ़ा। एशिया का द्वार नेपोलियन के लिए खुला था। इसी समय इंगलैंड का जंगी-बेड़ा का सेनापति नेल्सन् ने भूमध्यसागर में फ्रांसीसी बेड़ा को हराकर अंगरेजों की सामुद्रिक प्रभुता स्थापित कर दिया। नेल्सन् की इस विजय के बाद (Battle of the Nile) नेपोलियन की एशिया-विजय का स्वप्न टूट गया और, योरप से सम्बन्ध भी टूट गया। पर नेपोलियन किसी तरह फ्रांस भाग आया। योरप और मिश्र की विजय के कारण उसकी इज्जत बढ़ गई थी। डाइरेक्टरी के शासन-काल में कुरीतियाँ फैल गई थीं, और युद्ध का संचालन भी सुचारु रूप से नहीं हो रहा था। असेम्बली और डाइरेक्टरी में मतभेद रहता था, और डाइरेक्टरी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के सदस्य आपस में भी एकमत नहीं थे। जनसाधारण इस शासन से क्षुब्ध थे। अतः नेपोलियन ने इसका फायदा उठाया, और डाइरेक्टरी-शासन को विघटित कर दिया (Brumaire Revolution), नवम्बर १७९९। अब नया संविधान लागू हुआ जिसे 'Consulate' 'कौन्सुलेट' कहा जाता है। तीन कौन्सल थे, उनमें प्रमुख कौन्सल नेपोलियन था। विधान सभा के सदस्यों का चुनाव कौन्सल ही जनसाधारण के चुने सदस्यों में से करते थे, पर असल में प्रमुख (First) कौन्सल का ही अधिकार सर्वाधिक था। अतः इस प्रकार क्रान्ति, जो जनक्रान्ति के रूप में शुरु हुई, कई टेढ़े-मेढ़े रास्ते होती हुई अब ऐसी अवस्था में पहुँची कि फ्रांस में स्वेच्छाचारी वैयक्तिक और सैनिक शासन स्थापित हो गया। फ्रांस में क्रान्ति का युग खत्म हो गया। क्रान्ति के जो परिणाम उसके नेताओं ने समझा था और जिसके लिए प्रयास किया था, उसके बिल्कुल विपरीत परिणाम देखने में आये। वे राजतन्त्र का सुधार चाहते थे, पर गणतन्त्र की स्थापना कर बैठे, और फिर उन्होंने स्वेच्चाचारी सैनिक शासन के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया। वे शान्ति चाहते थे और युद्ध की नीति का त्याग, पर उन्हें युद्ध की उग्र नीति अपनानी पड़ी, और स्वतन्त्रता और समता के नाम पर योरप के विभिन्न प्रदेशों की विजय करनी पड़ी। वे आर्थिक सुधार चाहते थे पर राजकोष खाली पड़ा था। ऐसा प्रतीत होता था फ्रांस की क्रान्ति अपना लक्ष्य भूल बैठी थी, और सब सोचा-विचारा, किया-कराया मिट्टी हो गया था।

क्रान्ति के स्थायी परिणाम

पर क्रान्ति निष्फल न हुई। फ्रांस में सामन्ती युग का हमेशा के लिए अन्त हो गया। समाज और राज्य में किसी वर्गविशेष के विशेषाधिकारों का अन्त हो गया। चर्च और जागीरदारों के जुल्म बराबर के लिए खत्म हो गये। 'समता' का सिद्धान्त लोगों के दिल पर बैठ गया। प्रत्येक नागरिक का सामाजिक और राजनैतिक अधिकार बराबर हैं यह निश्चय हो गया। फ्रांस में कोई भी शासन क्यों नहीं स्थापित हो, पर किसी को क्रान्ति के इन मीठे फलों का अनादर

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने का साहस कभी नहीं हो सकता था। फिर फ्रांस की क्रान्ति का 'स्वतन्त्रता, समता और भाईचारा का नारा ने योरप की सुप्त जनता को झकझोर दिया। इन नये आदर्शों से जनती इतना प्रभावित हुई कि योरप में प्रजातान्त्रिक और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के जन-आन्दोलनों की नींव पड़ गई। पुरानी व्यवस्था की जगह पर नयी प्रगतिशील व्यवस्था की स्थापना का श्रीगणेष का श्रेय फ्रांस की क्रान्ति ही को है।

नेपोलियन बोनापार्ट

१७९९ ई० से १८१५ तक फ्रांस का इतिहास नेपोलियन की जीवनी कहा गया है, और फ्रांस का इतिहास को योरप का इतिहास माना गया है। यह सच है कि १६ वर्ष तक योरप के रंगमंच पर नेपोलियन प्रधान नायक रहा। इस अवधि में इसने जितनी जमीन जीती, जितने लोगों को मृत्यु के मुंह में डाला, यह चंगेज या तिमूर से अधिक था। नेपोलियन खूबसूरत आदमी नहीं था। वह कद का नाटा था। समय आने पर वह हद दर्जे का क्रूर हो सकता था जैसे मिश्र में इसने युद्धबन्दियों को कत्ल करने का हुक्म दिया था। विपत्ति आने पर वह अपने साथियों को छोड़ भाग निकलने में भी नहीं हिचकता था, जैसे मिश्र से चुपचाप भागना। पर तबभी इसका व्यक्तित्व प्रतिभावान् था। इसमें असीम आत्मविश्वास था। स्कूल में बराबर इसे निराशा मिली। वह तेज विद्यार्थी नहीं था। जीवन के उषाकाल में इसे बराबर दरिद्रता का सामना करना पड़ा। कौर्सिका नामक छोटे प्रायःद्वीप में जन्म (१७६९) लेकर भी नेपोलियन बराबर महत्वाकांक्षी रहा। वह अत्यन्त मेहनती था, और दृढ़ विचारवाला था। उसे ओजस्वी भाषण देने की क्षमता थी, और समय की गति को वह पहचानता था। वह अपने साथियों में अदम्य उत्साह भर सकता था, और अपने नेतृत्व में उनका विश्वास दृढ़ कर सकता था। विपरीत परिस्थिति में भी वह शान्त रहता था, और अपने लक्ष्य को नहीं भूलता था। इन्हीं गुणों के कारण नेपोलियन महापुरुष बन सका।

चरित्र

परिस्थिति ने भी उसे सहायता दिया। फ्रांस की जनता क्रान्ति के

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेताओं के प्रयोग से आजिज आ गई थी। आंतक का शासन नहीं भूला जा सकता था। स्वतन्त्रता का आदर्श से लोग तंग आ गये थे। उन्हें अब यह भय हो रहा था कि कहीं सुसंगठित शासन की अनुपस्थिति में सामाजिक एकता का भी, जिसे उन्होंने काफी कीमत देकर पायी थी, नाश न हो जाय। मध्यमवर्ग व्यापारी और उद्योगपति भी सुव्यवस्थित और सुदृढ़ शासन के लिए व्यग्र हो रहे थे। नेपोलियन ने सुदृढ़ शासन का आश्वासन दिया, सामाजिक समता की रक्षा की और फ्रांस की उत्साही राष्ट्रीय भावना को योरप-विजय के द्वारा गौरव से विभूषित किया। फ्रांस की क्रांन्ति ने जो उत्साह और आत्म-विश्वास की लहर पैदा कर दिया था उसके सहारे नेपोलियन ने योरप को कई बार रौंद डाला। फ्रांस को गौरव मिला, क्रान्तिकारी सिद्धान्त योरप में फैले, और नेपोलियन की प्रतिष्ठा चरम सीमा पर पहुँच गई। १७९९ में इसने अपने को आजीवन कौन्सल घोषित किया, और १८०४ में वह सम्राट् बन गया। रोम के पोप के हाथों से उसने मुकुट पहना, जैसे शार्लमेन ८०० ई० में सम्राट् बना था।

उत्कर्ष के कारण

फ्रांस की जनता ने नेपोलियन के इस महत्वपूर्ण काम में विरोध नहीं किया। जिस जनता ने वैधानिक राजतंत्र का लक्ष्य रख कर राजतन्त्र का अन्त और गणतन्त्र की स्थापना में सक्रिय भाग लिया था, वही जनता अब मूक होकर नेपोलियन के द्वारा प्रजातान्त्रिक गणतन्त्र का अन्त देखती रही, और लूई से अधिक स्वेच्छाचारी और सबल राजतन्त्र की स्थापना का विरोध करने का न साहस किया और न इच्छा ही प्रकट किया। क्रान्ति का चक्कर पूरा हो गया था। क्रान्ति से अधिक देश में आन्तरिक शान्ति की आवश्यकता थी। सैनिक शासन के विरुद्ध संगठित आवाज उठाना भी मुश्किल था। नेपोलियन उन्हें स्वतन्त्रता के बदले 'सुरक्षा' का आश्वासन दे रहा था। कुछ ने जैकोबिनों का जिनमें रोबस्पिअर भी एक था, यह भय कि युद्ध क्रांति का नाश कर देगा और कोई अधिनायक उत्पन्न कर देगा, सत्य सिद्ध हुआ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेपोलियन के शासनकाल में फ्रांस में कई महत्वपूर्ण सुधार हुये, जिनका आधुनिक फ्रांस पर गहरा प्रभाव है। किसी भी नागरिक को वैयक्तिक स्वतन्त्रता नसीब नहीं थी। नेपोलियन की खुली आलोचना करना निरापद नहीं था, और अपने विचारों को व्यक्त करने की स्वतन्त्रता का अभाव था। शिक्षा पर भी नेपोलियन का प्रभाव था। पर नेपोलियन को प्रतिगामी शक्ति का प्रतीक ही नहीं समझना चाहिये। वह स्वयं क्रान्ति का शिशु था। प्राचीन राज-व्यवस्था में साधारण परिवार में उत्पन्न नेपोलियन कभी भी इतना बड़ा पद पर नहीं पहुँच सकता था। उच्च व प्रभावशाली राजपद तो कुलीनों के लिए ही सुरक्षित रक्खे जाते थे। पर क्रान्ति ने इस परम्परा का नाश कर दिया था और प्रत्येक नागरिक अपनी शक्ति और योग्यता के बल पर ऊँचे से ऊँचे पद पर पहुँच सकता था। नेपोलियन का उत्कर्ष इस सिद्धान्त का ज्वलन्त उदाहरण था। नेपोलियन क्रान्ति के प्रति अकृतज्ञ नहीं था। उसने अपने शासन में इस सिद्धान्त को लागू किया कि राज्य के सभी पद योग्यता के आधार पर ही भरे जायेंगे (Career open to talents)। नेपोलियन ने फ्रांस में स्वतन्त्रता का अपसरण किया पर वह क्रान्ति का दूसरा सिद्धान्त 'समता' (Equality) का बड़ा पोषक था। उसका यह विश्वास था कि "फ्रांस की जनता 'स्वतन्त्रता' नहीं समता की इच्छुक है।" और उसने इसे कार्यान्वित किया। क्रान्ति के दिनों में बड़े-२ जागीरों को किसानों में बांट दिया गया था। नेपोलियन ने इस क्रान्तिकारी भूमि-वितरण को मान लिया और किसानों का जमीन पर अधिकार कानूनी करार दिया गया। इसतरह क्रान्ति के समर्थकों में उत्साही और मेहनती स्वतन्त्र-किसानों का स्थान सर्वप्रथम हो गया। नेपोलियन ने भिन्न-२ प्रदेशों में भिन्न-२ कानूनों के बदले एक सर्वव्यापी धर्मसंहिता बनाया जिसे Napolean's Code कहा जाता है। इस धर्मसंहिता में प्रत्येक नागरिक की समानता का सिद्धान्त मान लिया गया, और न्याय के क्षेत्र में सब बराबर थे। भूमि-व्यवस्था कानूनी मानी गई, और सम्पत्ति रखने का अधिकार मान

नेपोलियन के सुधार

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिया गया । नेपोलियन कहा करता था कि "इतिहास में वह अपने हाथों धर्मसंहिता लिये खड़ा रहेगा" (I Shall go down to history with the Code in my hand-Napolean)। पेरिस का विश्वविद्यालय और फ्रांस का बैंक की स्थापना कर नेपोलियन ने फ्रांस की शिक्षा और आर्थिक विकास में युगान्तकारी पथनिर्देश किया। धर्म के क्षेत्र में सहिष्णुता की नीति अपनाई गई और कैथोलिक चर्च और धर्म को पुनः प्रतिष्ठित किया गया। क्रान्तिकारी संविधान-सभा का चर्च-संगठन का विधान (Civil Constitution of the Clergy) को स्थायी रूप से मान लिया गया। अतः यह कहना न्यायसंगत होगा कि नेपोलियन ने क्रान्ति की महत्वपूर्ण विजय को सुरक्षित रक्खा और उन्हें कानून का अंग बनाकर स्थायी बना दिया। जागीरदारों की लुटी हुई जागीर और उनके निरर्थक विशेषाधिकारों की पुनर्स्थापना नहीं हुई। राज्य और न्याय के सामने सभी नागरिक बराबर थे। नेपोलियन के पतन के बाद भी प्रतिगामी विजयी राजतन्त्र इन्हें मिटाकर पुरानी सामाजिक विषमता को लौटा नहीं सका। इस तरह नेपोलियन क्रान्ति का पोषक सिद्ध हुआ। पेरिस आधुनिक नगर बन गया, और मिश्र और योरप की कला के अमूल्य नमूने पेरिस की शोभा बढ़ाने लगे।

नेपोलियन सैनिक था और एक अत्यन्त महान् सेनापति। फ्रांस की राज्यक्रान्ति में उसका प्रवेश एक सैनिक के नाते ही हुआ। डाइरेक्टरी के शासनकाल में ही उसने इटैली के उत्तर प्रदेशों पर विजय प्राप्त कर आस्ट्रिया की सेना को युद्धों में हराया था, और आस्ट्रिया को अक्टूबर १७९७ में कैम्पोफोरमियों की सन्धि करनी पड़ी थी, और उसे बेल्जियम पर फ्रांस का अधिकार मान लेना पड़ा था। पेरिस लौटने के बाद नेपोलियन मिश्र पर आक्रमण करने चल पड़ा और पिरामिड की लड़ाई में विजय प्राप्त कर (अगस्त १७९८) उसने मिश्र पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। वह भारत-विजय का स्वप्न देख रहा था। पर नेलसन्

नेपोलियन के युद्ध

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने फ्रेंच-बेड़ा को नष्ट कर दिया। अब फ्रांस लौटने का मार्ग ही अवरुद्ध था। नेपोलियन एशियामाइनर होकर लौट सकता था। इसलिए उसने सीरिया पर आक्रमण किया, पर तुर्की सेना ने उसे 'एकर' नामक स्थान पर परास्त किया। नेपोलियन को मिश्र वापस आना पड़ा, और फिर वह चुपचाप किसी प्रकार फ्रांस निकल भागा (अक्टूबर १७९९), और डाइरेक्टरी का अन्त करके कन्सुलेट शासन की स्थापना की।

फ्रांस जब वैधानिक प्रयोगों में व्यस्त था उसके दुश्मन एक शक्तिशाली गुट का पुनः संगठन कर रहे थे। फ्रांस के क्रान्तिकारी विचार योरप में फैल रहे थे, और योरप में फ्रांस के विजित प्रदेशों में गणतन्त्र स्थापित किये गये थे—जैसे उत्तर इटैली में सिस्अलपाइन गणतन्त्र, बेल्जियम गणतन्त्र, स्विट्जरलैण्ड का बैटेविअन गणतन्त्र, रोम का गणतन्त्र इत्यादि। इसलिए इंगलैण्ड को योरप के सबल राजाओं को पुनः नेपोलियन या फ्रांस के विरुद्ध संगठित करने में सुविधा हुई। पर इस नये सम्मिलित दल के विरुद्ध नेपोलियन ने आक्रमक नीति अपनाई। कठिन आल्पस् के हिमाच्छित पहाड़ों को पार कर नेपोलियन आस्ट्रिया पहुँचा और सम्राट् की सेना को मोरेन्जों की लड़ाई (१८००) में हरा दिया। नेपोलियन की यह विजय साहस का उत्कृष्ट उदाहरण है। अन्त में आस्ट्रिया ने फिर सन्धि कर ली। इंगलैंड और फ्रांस में भी आमीन की अस्थायी सन्धि (१८०२) हुई। १८०४ में नेपोलियन ने अपने को सम्राट् घोषित किया। तलवार के जोर पर ही वह सम्राट् बना था, और इसी जोर पर वह सम्राट् रह भी सकता था।

नेपोलियन सम्राट् बना

पर इसके पहले ही योरप से फिर युद्ध शुरू हो गया था। नेपोलियन ने भारतवर्ष में दिलचस्पी लेना शुरू कर दिया था। इंगलैण्ड इसलिये चिन्तित था। अमेरिका में भी नेपोलियन की महत्त्वाकांक्षा अंगरेजों को नापसन्द थी। आस्ट्रिया भी फ्रांस से बदला लेने को इच्छुक था। अतः इंगलैंड ने फिर नेपोलियन के विरुद्ध 'तीसरा गुट' संगठित कर लिया।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेपोलियन ने इंगलैण्ड पर आक्रमण करने की ठानी। क्योंकि इंगलैण्ड ही उसे योरप में बराबर तंग करता रहता था। पर इंगलैण्ड पर आक्रमण करने के लिए मजबूत जहाजी बेड़े की जरूरत थी, जो इंगलिश चैनल पर इंगलैण्ड का प्रभुत्व खत्म कर दे। पर नेल्सन् ने ट्राफलगार की सामुद्रिक लड़ाई (१८०५) में फ्रांसीसी बेड़ा को नष्ट कर दिया, यद्यपि वह स्वयं जख्मी होकर मर गया। नेल्सन् इंगलैण्ड का महान् राष्ट्रीय वीर था, उसने अपने देश को आक्रमण से बचा लिया। नेपोलियन का इंगलैंड पर प्रत्यक्ष आक्रमण करने की इच्छा असफल रही।

ट्राफलगार की युद्ध

पर योरप में नेपोलियन को रोकनेवाला कोई नहीं था। आस्टरलिड्ज् की मैदान में आस्ट्रिया और रूस की संयुक्त सेना को हरा कर फ्रांसीसी सेना वियेना पहुँच गई, और आस्ट्रिया को संधि करनी पड़ी (दिसम्बर १८०५)। आस्ट्रिया का राजा अब पवित्र सम्राट् (Holy Emperor) नहीं रहा। पवित्र रोमन सम्राज्य का अब निश्चित रूप से अवसान हो गया (अगस्त १८०७)। आस्ट्रिया का साम्राज्य का क्षेत्र कम हो गया। अब नेपोलियन ने फ्रांस के अधीन गणतन्त्रों को राज्यतन्त्रों में परिवर्तन कर दिया, और हौलैंड का राजा लूई बोनापार्ट बना, और नेपल्स् का राजा को पदच्युत् कर नेपोलियन क भाई जोसेफ बोनापार्ट को राजा बनाया गया। अब नेपोलियन की यह नीति हो गई कि योरप में फ्रांस के अधीन राज्यों पर अपने सगे सम्बन्धियों को राजा बनाना। इस नीति के कारण नेपोलियन सर्वसाधारण में अप्रिय होने लगा।

पवित्र रोमन सम्राज्य का अन्त

राइन् नदी तटवर्ती जर्मन राज्य-मंडल (Confederation) नेपोलियन के संरक्षण में संगठित हुआ था। प्रशा इस कारण बहुत क्षुब्ध था। प्रशा ने फ्रांस के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया। पर प्रशा की सेना जेना के मैदान में बुरी तरह पराजित हुई (अक्टूबर १८०६), और नेपोलियन बर्लिन पहुँच गया। प्रशा के राज्य का कुछ भाग लेकर वेस्ट-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फालिया राज्य की वृद्धि की गई और नेपोलियन का छोटा भाई जेरोम बोनापार्ट इस राज्य का राजा बनाया गया। फ्रीडलैण्ड के मैदान में रूस भी पराजित हुआ (जून १८०७) और टिलजिट् की सन्धि हुई। इस प्रकार नेपोलियन ने अपने 'विरोधी संगठन' को विघटित कर दिया।

पर इंगलैण्ड अभी भी मैदान में था। इंगलैण्ड नेपोलियन के विरुद्ध योरप का संगठन करता था, और इसलिए नेपोलियन ने इंगलैण्ड के विरुद्ध एक नयी योजना बनाई। इंगलैण्ड 'समुद्र की रानी' था, और ग्रेट-ब्रिटेन प्रायद्वीप पर आक्रमण सम्भव नहीं था। पर इंगलैण्ड की शक्ति व्यापार पर निर्भर करती थी, और कच्चे माल के लिए वह योरप पर कुछ हद तक निर्भर करता था और उसके तैयार माल के लिए योरप निकट और अच्छा बाज़ार था। अतः नेपोलियन ने यह निश्चय किया कि इंगलैण्ड का व्यापार यदि नष्ट कर दिया गया तो इंगलैण्ड घुटने टेक देगा। इसलिए नेपोलियन ने बर्लिन और मिलान से राजाज्ञाएं निकालीं कि उसके अधीन योरप के बन्दरगाह इंगलैण्ड और उसके उपनिवेशों के जहाजों के लिए बन्द हो गये। उदासीन और मित्र राजाओं को भी यह नीति अपनाने कहा गया। योरप और इंगलैण्ड का व्यापार निषिद्ध कर दिया गया। इंगलैण्ड ने इसका जवाब 'कौन्सिल की आज्ञाएं' (Orders-in-Council) के द्वारा दिया। अब फ्रांसीसी-साम्राज्य का व्यापार शेष दुनिया से बंद कर दिया गया। इस नये प्रकार के युद्ध को महादेशीय व्यवस्था (Continental system) कहा जाता है। इंगलैण्ड ने उदासीन राज्यों (Neutral States) को व्यापार करने की अनुमति दे दिया था। इंगलैण्ड के तैयार माल योरप में बहुत प्रिय थे। अब चीनी इत्यादि आवश्यक सामग्री का योरप में बहुत टोटा पड़ गया। अतः योरप और विशेषकर फ्रांसीसी साम्राज्य में घोर असन्तोस फैल गया था। उदासीन राज्यों के सहयोग से इंगलैंड के और बृटिश साम्राज्य के माल चोरी-चोरी फ्रांस और उसके साम्राज्य में लाए जा रहे थे।

महादेशीय-व्यवस्था और उसके परिणाम

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेपोलियन के लिये यह बड़ा महत्वपूर्ण समय था। इंगलैंड की शक्ति का नाश करने का यही एक रास्ता बचा था। इसलिए इस नीति की सफलता पर नेपोलियन का भविष्य निर्भर करता था। अतः नेपोलियन को अपने विस्तृत साम्राज्य का असन्दिग्ध सहयोग और स्वामि-भक्ति की अत्यन्त आवश्यकता थी। इसलिए नेपोलियन ने अपने सगे सम्बन्धियों को ही प्रमुख राज्यों का राजा बनाने की नीति को और भी दृढ़ किया। जिन देशों पर उसे शक था उनकी स्वतन्त्रता का अपहरण कर उन्हें उसने साम्राज्य में मिला लिया। हौलैन्ड को फ्रांस में मिला लिया गया। अपना एक सेनापति को उसने स्वीडेन का राजा बना दिया। रोम के पोप का राज इटैली के राज्य में मिला दिया गया। पुर्तगाल के रास्ते इंगलैंड का माल योरप पहुँच रहा था। नेपोलियन ने पुर्तगाल पर आक्रमण किया, और पुर्तगाल का राजा ब्राजिल भाग गया। अतः अब पूरा योरप को इंगलैंड के व्यापार से अलग कर दिया गया था। रूस, [illegible] और प्रशा नेपोलियन से सन्धि कर चुके थे। स्वीडेन नेपोलियन के प्रभाव में था। इटैली, हौलैन्ड, पुर्तगाल नेपोलियन के अधीन थे। उसने यह आज्ञा दे रक्खी थी कि जहां मिलें इंगलैंड के जहाज नष्ट कर दिये जांय, और अंग्रेजों को गिरफ्तार कर लिया जाय। मतलब यह है कि नेपोलियन इंगलैंड के विरुद्ध इस व्यापार-युद्ध को बड़ी सख्ती से संचालित कर रहा था।

स्पेन का युद्ध

स्पेन का उत्तराधिकार का प्रश्न उठ खड़ा हुआ, और नेपोलियन ने अपने भाई जोसेफ को स्पेन का राजा बना दिया, (६ जून १८०८) और नेपल्स् में उसका सेनापति राजा बना। स्पेन की जनता ने नेपोलियन का यह हस्तक्षेप अत्याधिक नापसंद किया। स्पेन में नेपोलियन के विरुद्ध राष्ट्रीय विरोध शुरू हो गया। १८०४ तक नेपोलियन के युद्ध योरप की जनता के लिए क्रान्ति के दूत माने जाते थे। योरप के शक्तिशाली और प्रतिष्ठित राजमुकुट धूलधूसरित किये गये थे। नेपोलियन 'स्वतन्त्रता, समता और बन्धुत्व की भावना'

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

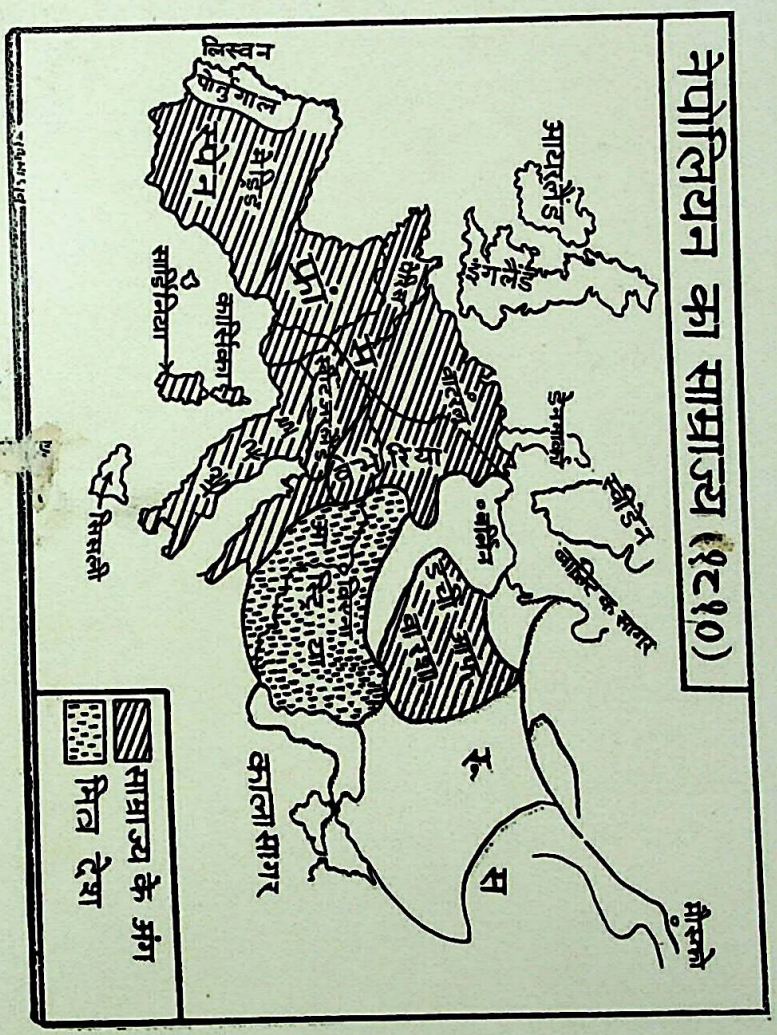

(Facing Page 230)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

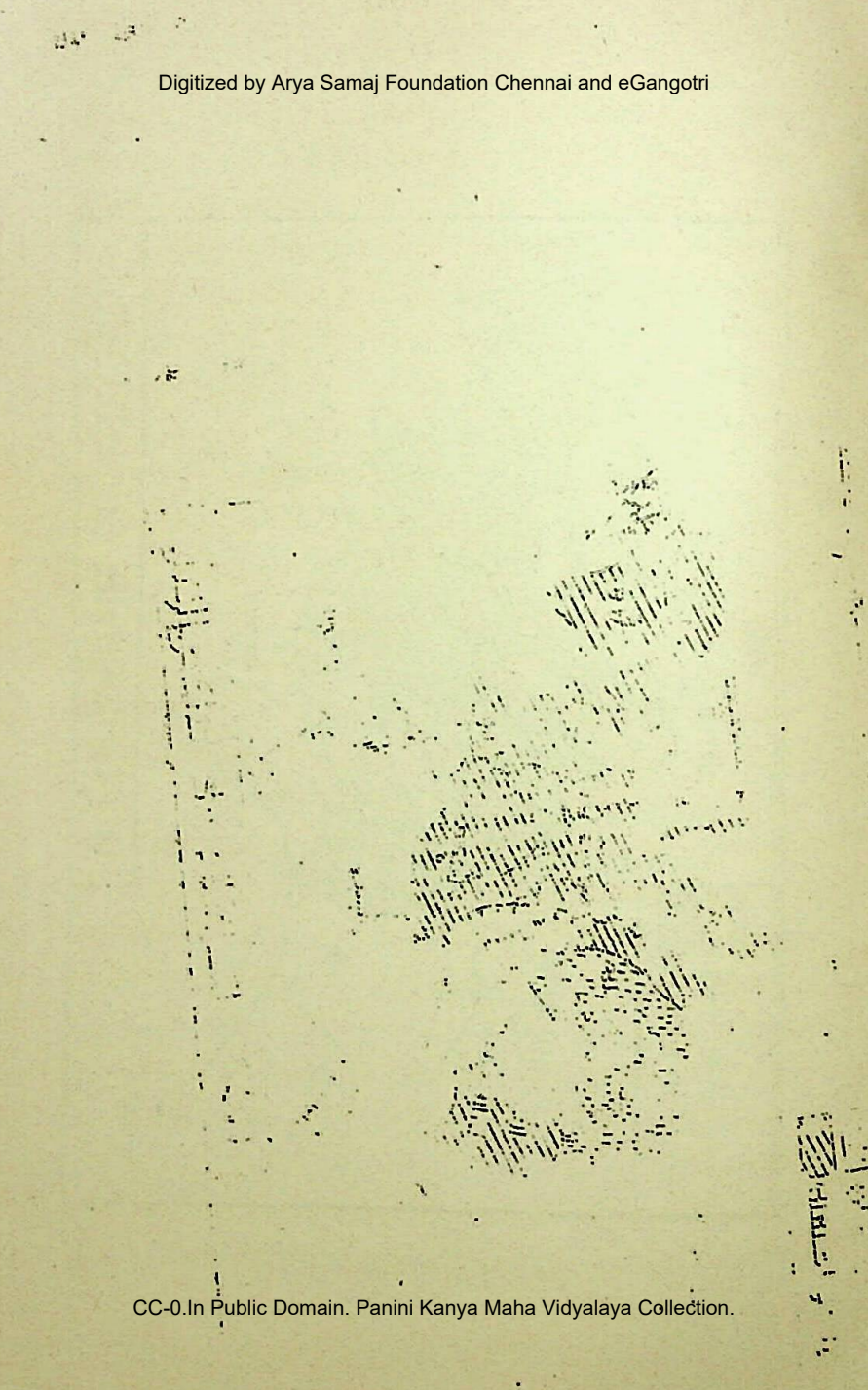

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के उच्च आदर्शों का वाहक समझा जाता था। योरप की शोषित और परतन्त्र जनता नेपोलियन की सेना का दिल से स्वागत भी करती थीं। पर जब नेपोलियन ने फ्रांस का गणतन्त्र को उलट कर सबल राज्यतन्त्र की स्थापना की, और जब फ्रांस और फ्रांसीसी साम्राज्य में स्वतन्त्रता का अन्त कर स्वेच्छाचारी आंतकवादी शासन स्थापित किया, तब नेपोलियन के प्रति श्रद्धा की जगह विद्रोह की भावना प्रबल हो गई। इस भावना का प्रत्यक्ष उदाहरण पहले स्पेन में देखा गया। पुर्तगाल में इंगलैण्ड की सेना आर्थर वेलेस्ली के अधीन घुस आई थी, और नेपोलियन का सेनापति जुनो हार गया। पुर्तगाल फ्रांस के हाथ से निकल गया। अब वेलेस्ली ने फ्रांसीसी सेना को स्पेन में उलझाये रक्खा। नेपोलियन की एक बड़ी सेना स्पेन में फंसी रही। स्पेन की जनता ने फ्रांसीसी शासन के विरुद्ध गुरिल्ला युद्ध जारी रक्खा; इंगलैण्ड की सेना परिस्थिति से फायदा उठा रही थी। बड़े २ शक्तिशाली राजाओं को बड़ी आसानी से हराने वाला नेपोलियन इस छोटे से राष्ट्र को कब्जे में नहीं कर सका। कारण यह था कि यहां उसे राजा और राजा की वैतनिक सेना से सामना नहीं था, वरन् उसे स्वतन्त्रता-प्रेमी जनता से लोहा लेना पड़ रहा था। जनवादी आन्दोलनों को सैनिक कारवाई से ही कुचल देने का निश्चय सफल नहीं होता है। स्पेन का उदाहरण ने योरप के अन्य पराधीन जाति को नेपोलियन के विरुद्ध विद्रोह करने में प्रोत्साहन दिया। 'अजेय' नेपोलियन की प्रतिष्ठा पर यह बड़ा आघात था। फ्रांस की सेना और धन का स्पेन पर कब्जा करने में व्यय होता रहा, जिसका परिणाम नेपोलियन पर बुरा पड़ा। नेपोलियन कुछ वर्ष बाद यह कहते सुना गया था" स्पेन के घाव ने मुझे बर्बाद कर दिया" (It is the Spanish ulcer that ruined me)।

रूस भी नेपोलियन की महादेशीय-व्यवस्था से सन्तुष्ट नहीं था, और नेपोलियन को रूस का जार एलेक्जेन्डर पर यकीन नहीं था। अतः

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेपोलियन ने रूस पर आक्रमण करना निश्चय किया, और बतहु बड़ी सेना (६०००००) लेकर उसने रूस पर धावा बोल दिया। रूसी सेना पीछे हटती रही, और नेपोलियन मौस्को पहुँच गया। पर रूसी जनता ने नेपोलियन को राष्ट्रीय भावना को कुचलने का पाठ पढ़ा दिया। मौस्को में आग लग गई, और नेपोलियन को कड़ाके की सर्दी में रूस से भागना पड़ा (१८१२), और मुट्ठी भर साथियों के साथ भी वह रूस से प्राण बचा कर निकल सका, यह उसका, सौभाग्य ही था।

रूस पर आक्रमण

रूस पर आक्रमण और उसकी इस पराजय का परिणाम नेपोलियन के लिए बहुत ही बुरा हुआ। नेपोलियन की प्रतिष्ठा धूल में मिल गई, और उसकी इतनी बड़ी सेना का सर्वनाश होने के कारण नेपोलियन की सैनिक-शक्ति बहुत कमजोर हो गई। स्पेन में युद्ध चल ही रहा था। इंगलैंड का सेनापति ड्यूक आफ् विलींगटन् स्पेन का राष्ट्रीय संग्राम को मदद दे रहा था, और इस प्रकार नेपोलियन के साम्राज्य में छूरा घुसेड़ चुका था। रूस में नेपोलियन की असफलता के कारण योरप के राष्ट्रीय आन्दोलनों का हौसला बढ़ गया। जनता के मुंह पर यह बात थी "असहनीय गुलामी से अपने को मुक्त करने का समय आ गया है।" आस्ट्रिया, प्रशा, इंगलैंड और स्वीडेन ने एक नया और आखिरी गुट कायम हुआ। नेपोलियन के विरुद्ध यह नया मोर्चा राजाओं का ही नहीं, वरन् जनता का भी था। नेपोलियन ने जल्दी-जल्दी एक नयी सेना जुटा लिया। ऐसी हालत में नयी सेना जुटाना नेपोलियन ऐसे साहसी और प्रतापी महापुरुष का ही काम हो सकता था, पर लिप्जिग् की लड़ाई (१८१३) में नेपोलियन हार गया। यह युद्ध 'राष्ट्रों का युद्ध' (Bat le of Nations) कहा गया है। प्रशा, रूस और आष्ट्रिया की सेना नेपोलियन के विरुद्ध थी। इनकी सेना इन देशों की राष्ट्रीय भावना का प्रतिनिधित्व कर रही थी, और यह घोषणा

तीन राष्ट्रों का युद्ध

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की गई कि यह युद्ध योरप की जनता को स्वेच्छाचारी नेपोलियन के पञ्जे से छुड़ाने के लिए हो रहा था। फ्रांस के साम्राज्य के विरुद्ध योरप के राष्ट्रों का यह संयुक्त स्वातन्त्र्य संग्राम था। नेपोलियन इस नयी और सबल राष्ट्र-शक्ति का सफल मुकाबिला करने में असमर्थ था। स्पेन में जो छोटे पैमाने पर हो रहा था, वही खेल अब योरप के विशाल रंगमंच पर होने जा रहा था। नेपोलियन यह खेल भूल चुका था, पर इसके प्रभाव से बचा न रह सका। लिप्जिग् की पराजय के बाद नेपोलियन के दिन लद गये। नेपोलियन के लाख से अधिक सैनिक काम आये।

नेपोलियन का पतन अब द्रुतगति से होने लगा। सैनिक-शक्ति ही नेपोलियन का साम्राज्य का आधार थी। जब वही स्खलित हो गई तब साम्राज्य ढह गया। हौलैन्ड और जर्मनी से फ्रांस का साम्राज्य उखड़ गया। स्पेन से वेलेस्ली (ड्यूक आफ् विलींगटन्) ने फ्रांसीसी सेना को खदेड़ भगाया (१८१३)। मित्र राष्ट्रों की सेना का पेरिस पर कब्जा हो गया (३१ मार्च १८१४)। लूई अठारहवां को फ्रांस की गद्दी पर बैठाया गया, फ्रांस का क्षेत्र कम किया गया और नेपोलियन को एल्बा टापू में निर्वासित कर दिया गया। फ्रांस की जनता इस अपमान से दुखी थी। लूई जनप्रिय शासक नहीं था, और मित्र राष्ट्रों में फूट दिखाई पड़ रही थी। महत्वाकांक्षी नेपोलियन एल्बा से भाग आया और सेना की स्वामिभक्ति और अपने आकर्षक व्यक्तित्व के बल पर वह आसानी से पुनः फ्रांस का सर्वेसर्वा बन गया (१ मार्च १८१५)। पर यह बादशाहत १०० दिनों की थी, क्योंकि वाटरलू की मैदान में ड्यूक आफ् विलींगटन ने नेपोलियन को बुरी तरह और अन्तिम शिकस्त दिया (१८ जून १८१५)। नेपोलियन की दो लाख की सेना अंग्रेजी और प्रशियन सेना के सामने न टिक सकी।

पेरिस का पतन

वाटरलू का युद्ध

नेपोलियन को सेन्ट हेलेना प्रायद्वीप में कैद रक्खा गया जहां १८२०ई० में इसकी मृत्यु हो गई। मित्रराष्ट्रों ने फ्रांस की सीमा निर्धारित किया,

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और योरप में पूर्व-क्रान्ति के समय की राज्य-व्यवस्था को पुनर्स्थापना करने की चेष्टा की। योरप में राष्ट्रीय और उदारवादी विचारों को प्रश्रय नहीं देने का निश्चय किया गया। क्रान्ति योरप के हाल के बीते दिनों का संकट का कारण मानी गई। राष्ट्रीय और उदारवादी विचार क्रान्ति के दूत समझे गये और इसलिए इनके दबे रहने में ही योरप का कल्याण समझा गया। योरप के राजतन्त्र की रक्षा के लिए चार प्रमुख विजयी राज्यों ने--इंगलैंड, आष्ट्रिया, प्रशा और रूस—एक सन्धि (Quadruple Alliance) की और आष्ट्रिया का प्रधान मंत्री मेटरनिक् योरप का चौकीदार बना। बेल्जियम और इटैली के उत्तरी भाग फिर आष्ट्रिया को मिल गये। पोलैण्ड बँट कर रूस और पर्शिया के पेट में चला गया। फ्रांस की सीमा घटा दी गई। चारों ओर गणतन्त्र का नाश हो गया; राजतन्त्र पुनर्स्थापित हुआ, राष्ट्रीय और प्रजातान्त्रिक विचारों का दमन हुआ, और स्वेच्छाचारी प्रतिगामी राज्यों का प्रभुत्व स्थापित हुआ। अतः ऐसा प्रतीत होता था कि फ्रांस की क्रान्ति और नेपोलियन तूफ़ानी जीवन व्यर्थ ही थे।

नेपोलियन का अन्त

पर यह धारणा गलत होगी। फ्रांस की राज्यक्रान्ति ने राष्ट्रीयता और सामाजिक समता का जो मन्त्र दिया था उन्हें सदा के लिए भुलाया नहीं जा सकता था। फ्रांस में व्यापार की उन्नति हुई, और शिक्षा का उत्तर-दायित्व राज ने लिया। सामाजिक और आर्थिक सुधार हुये। फ्रांस से बाहर योरप में इन विचारों का स्वागत और प्रचार हुआ। मेटरनिक् के नेतृत्व में योरप के स्थिर-स्वार्थियों और स्थितिस्थापकों को बराबर राष्ट्रीय और प्रजा-तान्त्रिक आंदोलनों से उलझते रहना पड़ा, और अन्त में इन प्रतिगामी शक्तियां घड़ी की सूई को उल्टे चलाने के इस प्रयास में असफल हो गयीं, और १९वीं सदी का इतिहास योरप के स्थिति-स्थापक राज्यप्रभुओं और फ्रांस की क्रान्ति से उत्पन्न प्रगतिशील राष्ट्रीय और उदारवादी शक्तियों का कस्मकस का इतिहास है। चाहे जितनी भी कोशिश की जाय क्रान्ति के

फ्रांस की क्रान्ति का इतिहास पर प्रभाव

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले योरप की सामाजिक स्थिति और राजव्यवस्था फिर वापस नहीं आ सकती थी, और न आई। १६वीं सदी का योरोपीय इतिहास और बीसवीं सदी में एशिया का पुनर्जागरण फ्रांस की क्रान्तिकारी नारों और आदर्शों से प्रेरित रहा। फ्रांस की क्रांति का नेतृत्व मध्यमवर्ग (Bourgeoise) ने किया था, और इस क्रान्ति से उन्हें ही अत्याधिक लाभ हुआ। नेपोलियन के धर्मसंहिता के द्वारा उनके लाभ स्थायी हो गये। राज पर उनका प्रभाव छा गया और उनके विरोधी सामन्तों की शक्ति नष्ट हो गई। शोषित जनता ने कुर्बानियां कीं, पर राज और आर्थिक व्यवस्था उनके अधिकार में नहीं आया। मजदूरों का शोषण होता रहा। सम्पत्ति पर वैयक्तिक अधिकार बना रहा। व्यापारी और पूंजीपति को व्यापार और उद्योग में पूरी छूट दी गई। पूंजीवाद फ्रांस में सुदृढ़ हो गया।

नेपोलियन विश्वविजय का स्वप्न देखता ही रह गया। योरप पर भी वह अपनी प्रभुता अपने जीवनपर्यन्त तक कायम नहीं रख सका। फ्रांस का साम्राज्य उसने ही स्थापित किया और अपने जीवनकाल में ही उसका किला ढह गया। उसके दुश्मनों ने उसके कार्य को भंग कर दिया। इटैली, जर्मनी और पोलैन्ड का नेपोलियन ने जो नया नक्शा बनाया, यहां उसनेजो नई राजव्यवस्था कायम की वे सब वियेना-कांग्रेस समझौता (Vienna Settlement 1814–16) के द्वारा नष्ट कर दिये गये। नेपोलियन का जीवन का अन्त असफल रहा। पर तब भी नेपोलियन के ऐतिहासिक महत्व की अत्युक्ति नहीं हो सकती। विश्वइतिहास के रंगमंच पर बिरले ही महापुरुष ने इतना अधिक आकर्षक और प्रभावोत्पादक पार्ट अदा किया है। नेपोलियन की सैनिक योग्यता असंदिग्ध है, विशेषकर जब यह ध्यान में रक्खा जाय कि उसकी सेना कोई शिक्षित (Trained) सेना नहीं थी, वरन् साधारण लोगों को जबरदस्ती या स्वयं खुशी से भर्ती कर संगठित की गई थी। उसकी इस सेना ने योरप के बड़े-बड़े राष्ट्रों को कई बार

नेपोलियन का ऐतिहासिक महत्व

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पराजित किया। फ्रांस को नेपोलियन ने कई बार विजय की माला पहनायी, और फ्रांस कभी इतना गौरवान्वित नहीं हुआ था, और इसी-लिए नेपोलियन के प्रति फ्रांसीसीयों की अमरश्रद्धा बनी रही, और उसका नाम का जादू का प्रभाव उन्नीसवीं सदी के मध्य में स्पष्ट पता चला जब उसका भतीजा नेपोलियन तृतीय फ्रांस का सम्राट् बन गया। नेपोलियन ने फ्रांस को अपनी धर्मसंहिता (Code), पेरिस विश्वविद्यालय और फ्रांस का बैंक देकर आधुनिक फ्रांस के निर्माताओं में अपना विशिष्ट स्थान सुरक्षित कर लिया है। सामन्ती विशेषाधिकारों का अन्त कर, कृषकों को जमीन का स्वामि बना कर, और न्याय के क्षेत्र में सामाजिक समता को कानूनी करार कर नेपोलियन ने क्रान्ति की प्रमुख विजय को सदा के लिए सुरक्षित कर दिया। पर फ्रांस में ही नहीं वरन् योरप में भी क्रान्ति का दूत नेपोलियन ही बना। नेपोलियन की क्रान्तिकारी सेना ने योरप में क्रान्ति के अमर संदेश-स्वतन्त्रता, समता और भाईचारा-फैलाया। इटैली और जर्मनी में राष्ट्रीय भावना का प्रचार हुआ। स्थिति-स्थापक शक्तियां, जैसे पवित्र रोमन साम्राज्य, का नाश कर नेपोलियन ने प्रगतिशील शक्तियों का मार्ग प्रशस्त किया। प्रतिगामी साम्राज्यवादी आष्ट्रिया को लगातार हराकर नेपोलियन ने उसे जर्जर कर दिया, और इटैली और जर्मनी का स्वातंत्र्य-संग्राम का कारण और उनकी सफलता का अप्रत्यक्ष श्रेय का भागी नेपोलियन ही है। यही नहीं, इंगलैंड में भी स्थिरस्वार्थीवर्ग क्रान्तिकारी फ्रांस और नेपोलियन के विरुद्ध लड़ाई से बहुत परेशानहाल में था। एक ओर यदि बर्क फ्रांस की क्रान्ति का उग्र रूप देख कर उसकी भर्त्सना करने लगा था (Reflections on the French Revolution), टौमसपेन की पुस्तक "Rights of Man" पर अमेरिका और फ्रांस की क्रान्ति के आदर्श का प्रभाव स्पष्ट था। इंगलैंड में भी उग्र विचारों का प्रचार होने लगा। यद्यपि सरकार ने इन्हें कुचलने की कोशिश की, पर पार्लियामेन्ट की निर्वाचन-प्रणाली में सुधार का आन्दोलन का भी जोर बढ़ता गया। यह ठीक ही कहा गया है कि

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेपोलियन ने क्रान्ति का ऐतिहासिक नियोग को पूर्ण किया। उसने योरप की जीर्ण व्यवस्था को बुरी तरह झकझोर कर ढाह दिया। उसके पतन के बाद प्रतिगामी शक्तियां भले योरप के नक्शे को फिर से बनावें और बदले या राजशक्ति-संतुलन को फिर से स्थापित करें, पर यह निश्चित था कि योरप फिर नेपोलियन-पूर्व योरप नहीं बन सकता था। नेपोलियन के प्रोत्साहन से या उसके शासन के विरोध के फलस्वरूप योरप में जो राष्ट्रीयता की भावना का उदय हुआ उसकी अवहेलना विजयी मित्र-राष्ट्रों ने यद्यपि भरसक किया, पर पुरानी व्यवस्था का जीर्णोद्धार करने में वे असफल रहे। नेपोलियन के पतन के बाद योरप में एक ओर विद्रोही उदारवाद और जागृत राष्ट्रीयता थी, दूसरी ओर प्रतिगामी शक्तियाँ, और इनके संघर्ष का ही परिणाम था एक नया और आधुनिक योरप की सृष्टि। नेपोलियन का पतन हो गया था, पर नेपोलियन ने जिन शक्तियों को बढ़ावा दिया था वे अब नेपोलियन की जगह पर प्रतिगामी शक्तियों का सामना करने को तैयार थीं। नेपोलियन ने अपने जेल-जीवन में योरप की एकता पर भी विचार किया था, और अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की योजना बनाने में लगा था। उसके स्वप्न उस समय स्वप्न ही रहे पर उसकी दूरदर्शिता का यह एक उदाहरण है। फिर, इतने दिनों तक योरप पर प्रभुत्व जमाए रखना नेपोलियन का प्रभावशाली व्यक्तित्व से ही संभव था।

नेपोलियन का पतन के कारण

नेपोलियन का पतन भी महत्वपूर्ण है क्योंकि यह स्पष्ट हो गया कि सैनिक शासन बहुत दिन तक नहीं टिक सका। जब नेपोलियन असफल रहा, तब और किसे सफलता मिल सकती है? योरप पर एक राष्ट्र या व्यक्ति का अधिकार स्वतन्त्रता को कुचल कर ही स्थापित किया जा सकता है। नेपोलियन ने अपनी शक्ति की सीमा नहीं समझा। उसकी महत्वाकांक्षाए असीम थी, और इसलिए असफलता स्वाभाविक। उसके पतन के कई कारण थे। जिसमें स्पेन पर आक्रमण, रूस पर आक्रमण

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और महादेशीय-व्यवस्था प्रमुख हैं। नेपोलियन की असफलता का मूल कारण था क्रान्ति से विमुख हो जाना। उसने राष्ट्रीय भावना को योरप में फैलाने में जाने या अनजाने बड़ा भाग लिया था। पर सम्राट् होकर वह उसी भावना को नहीं समझ सका, और उससे टकरा कर उसकी शक्ति चूर-२ हो गई। उसका शासन अन्य राष्ट्रों के लिये गुलामी का तमगा था, और जनता का शोषण का यन्त्र। महादेशीय-व्यवस्था ने उसे जनता में अत्यन्त अप्रिय बना दिया। अपनी धुन के सामने वह योरप की विशाल जनता की तफलीफ का कुछ ख्याल नहीं करता था। कहा जाता है कि बीसों राजमुकुटों को धूलधुसरित करने से नेपोलियन जितना अप्रिय नहीं हुआ था उससे बहुत अधिक अप्रिय वह इस व्यवस्था के कारण हो गया। इंगलैंड ने उसके पतन में प्रमुख भाग लिया था। इंगलैंड पर विजय न पा सकने के कारण ही नेपोलियन को योरप में शान्ति नहीं मिली। समुद्र की रानी रहने के कारण इंगलैंड पर सीधा आक्रमण सम्भव नहीं था। महादेशीय व्यवस्था भी असफल रही। नेपोलियन कहा करता था कि "मुझे ६ घंटे के लिए समुद्र पर प्रभुत्व दे दो और मैं विश्व का स्वामि बन जाऊँगा"। पर ६ घंटा क्या, ६ मिनट के लिए भी उसे यह शक्ति नहीं प्राप्त हुई। और अन्त में इंगलैंड का सेनापति ड्यूक आफ़ विलिंगटन ने ही वाटरलू की मैदान में नेपोलियन को हराकर उसके जीवन का नाटक का पटाक्षेप कर दिया। महादेशीय व्यवस्था से उत्पन्न आर्थिक हानि सह कर भी इंगलैंड नेपोलियन के विरुद्ध बराबर डटा रहा, इसका कारण यह था कि इंगलैंड व्यावसायिक क्रान्ति (Industrial Revolution) के कारण बहुत ही समृद्ध हो गया था। अतः इंगलैंड की व्यवसायिक क्रान्ति फ्रांस की क्रान्ति और नेपोलियन के उदय से कम महत्व नहीं रखती है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सातवाँ अध्याय

औद्योगिक क्रान्ति

औद्योगिक क्रान्ति का महत्व :—उन्नीसवीं-सदी में योरप में बड़ी तेजी से सामाजिक और राजनैतिक परिवर्तन हुये, और गत शताब्दी को अत्यन्त क्रियमान शताब्दी कहा जाता है। मानववाद का पुनरोदय और धर्मसुधार आंदोलन ने योरप के राष्ट्रों के जीवन को बहुत प्रभावित किया। बृटिश पार्लियामेन्टरी शासन-विधान ने इन राष्ट्रों के सामने एक संवैधानिक आदर्श रक्खा, जिसके लिए वे स्वेच्छाचारी राजशासन के विरुद्ध आंदोलन करते रहे। अमेरिका और फ्रांस की क्रान्तियों ने इन्हें ऐसे आदर्श और उत्साह से प्रेरित किया जिन्हें योरप की प्रगतिगामी शक्तियाँ रोकने में असफल रहीं पर इन उदारवादी और प्रजातान्त्रिक विचारों को भी स्थायी सफलता प्राप्त करने की शक्ति स्वयं नहीं थी। प्रतिक्रियावादी दल इन आंदोलनों को, अस्थायी तौर से ही, दवा देने में शक्य था। औद्योगिक-क्रान्ति ने प्रगतिशील दल को नयी शक्ति और नया विचार-पद्धति दिया और प्रतिक्रियावादियों व स्थितिस्थापकों का आधार को और भी जर्जर कर दिया। यह कहना असंगत न होगा कि औद्योगिक क्रांति ने फ्रांस की राज्यक्रान्ति के काम को और आगे बढ़ाया और इसके कारण राष्ट्रीयता और प्रजातन्त्र के आंदोलन उग्रतर हुये और नये विचार व समस्याएँ उत्पन्न हुईं जिनका समाधान अभी भी ढूंढ़ा जा रहा है। अतः औद्योगिक क्रान्ति का ऐतिहासिक महत्व ही नहीं, वरन् आधुनिक महत्व भी है।

अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में कई वैज्ञानिक प्रयोग हुये, और कई

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आविष्कार हुये जिनका प्रयोग कृषि और उद्योग के क्षेत्र में हुआ, और इससे क्रान्तिकारी परिवर्तन हुये, यातायात में युगान्तकारी सुधार हुये, और उत्पादन और यातायात के इन नये साधनों पर निर्भर नयी आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था का विकास हुआ। इन सभी महत्वपूर्ण परिवर्तनों को "औद्योगिक क्रान्ति" का सामूहिक नाम दिया गया है। पर यह क्रान्ति अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में खत्म नहीं हुई है। वैज्ञानिक आविष्कार हो रहे हैं, यातायात के नये साधन जुटाये जा रहे हैं, और एक मशीन के बाद उसे बेकार करनेवाला दूसरा अधिक लाभप्रद मशीन बनते जा रहे हैं।

औद्योगिक क्रान्ति किसे कहते हैं।

प्रश्न यह है कि औद्योगिक क्रान्ति पहले-पहल इंगलैंड में ही क्यों शुरू हुई। इंगलैंड में बहुत पहले से ही व्यापार और उद्योगों पर लगे बहुत से सामन्ती प्रतिबन्ध उठा लिये गये थे, और यहाँ व्यापार और उद्योगपति योरप की तुलना में स्वतन्त्र थे, और नये-२ प्रयोग और आपत्ति का सामना करने का दुस्साहस कर सकते थे। गृह-युद्ध और रक्तहीन क्रान्ति के बाद इस वर्ग का प्रभाव बढ़ गया था, और स्वतन्त्र वातावरण के स्वतन्त्र-प्रिय नागरिक या उद्योगपति को यहाँ नये प्रयोग और आविष्कार करने का अवसर था। इंगलैण्ड का साम्राज्य का विस्तार हो रहा था। अमेरिका की हानि के बाद भी भारतवर्ष, पूर्वी प्रायद्वीप, दक्षिण अफ्रिका में इंगलैंड का साम्राज्य या व्यापार फैल रहा था। इन देशों से कच्चा माल आसानी से मिल जाता था, और इंगलैंड का तैयार माल की खपत निश्चय थी। इंगलैंड अपने प्रतिद्वन्द्वी स्पेन और फ्रांस को हराकर 'समुद्र की रानी' बन चुका था, और व्यापार और उपनिवेश के क्षेत्र में सबसे आगे था। वह जितना माल तैयार कर सकता था सबकी खपत हो जाती थी। योरप भी बराबर युद्ध में व्यस्त था और इंगलैंड के तैयार माल का स्वागत करता था। अतः इंगलैंड के व्यापार और उद्योग के लिए यह स्वर्ण अवसर

पहले इंगलैंड में ही क्यों।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था, और पूँजीपति अपनी पूँजी लगाने को तैयार थे क्योंकि उन्हें अत्यधिक लाभ की आशा थी। इसलिए नये मशीन का प्रयोग और कारखानों को खड़ा करने में इनका स्वार्थ सिद्ध होता था। इंगलैंड में कोयला और लोहा पर्याप्त हैं, और यह बड़ा अच्छा संयोग था कि लोहा और कोयला की खानें निकट-निकट ही पाये गये। अतः कारखानों के लिए कोयला या लोहा को अधिक दूर ढोने की जरूरत नहीं पड़ी। इंगलैंड में नदियाँ काफी हैं, और पहाड़ी इलाकों से गुजरने के कारण छोटे-छोटे जलप्रपातों का बाहुल्य है, और इनके द्वारा जलविद्युतशक्ति की सुविधा थी। अन्त में इस समय (अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में इंगलैंड में कई छोटे बड़े वैज्ञानिक और मैकेनिक हुये जिनके आविष्कारों के बिना यह क्रान्ति असम्भव थी।

मशीनों के आविष्कार :

जब हजारों कार्यकर्त्ता उत्पादन के साधनों में सुधार करने और परिवर्त्तन लाने में व्यस्त थे तब कई महत्वपूर्ण आविष्कार स्वाभाविक परिणाम थे। ऐसे आविष्कारों का श्रेय चन्द प्रतिभावान् पुरुषों को ही नहीं, वरन सैकड़ों अनजान कार्यकर्त्ताओं को है, इनमें के (Kay) हारग्रिविज् (Hargreaves), आर्कराइट (Arkwright), क्रौम्पटन् कार्टराइट, विटनी, वाट फुल्टन और स्टीफेन्सन के नाम उल्लेखनीय हैं।

पहले पहल ध्यान सूती-कपड़े के उद्योग पर गया। 'के' ने 'फ्लाईंग-शट्टल' नामक एक मशीन इजाद किया (१७३८) जिसके द्वारा बुनकर उतना ही समय में दुगुना काम कर सकते थे। पर अभी सूत पुराने प्रकार के चर्खों (Spinning Wheel) पर ही काता जाता था। पर अब बुनकरों को अधिक सूत की जरूरत थी, और १७७० में लंकाशायर-निवासी हारग्रिविज ने 'स्पीनिंग जेनी' को बाजार में पेश किया। इस मशीन में आठ चर्खे लगे थे और इस तरह अब एक मशीन के द्वारा आठ चर्खों के बराबर सूत तैयार किया जाने लगा। बहुत जल्दी ही

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८० धागे तक एक बार ही कात सकनेवाली मशीनें बन गईं। इस प्रकार कताई का काम बहुत आगे बढ़ गया। लगभग इसी समय आर्कराइट नामक एक व्यवसायी ने 'वाटर-फ्रेम' नामक मशीन बनाई जिसमें जलशक्ति के द्वारा सूत-कातने की मशीन चलाई जा सकती थी। स्पीनिंग जेनी फ्लाईंग शट्टल और वाटर-फ्रेम का व्यवहार होने के बाद अब सूती कपड़े के कारखाने खुलने लगे क्योंकि इन कीमती मशीनों का व्यवहार मामूली बुनकर नहीं कर सकते थे। इसीलिए आर्कराइट को फैक्टरी-सिस्टम (कारखाना) का पिता कहा जाता है। उसे राजा ने 'सर' की उपाधि से विभूषित किया, और वह स्वयं करोड़पति बन गया। क्राम्पटन का 'क्राम्पटन् म्यूल' (१७७९) वाटरफ्रेम और स्पीनिंग जेनी के लक्षणों पर ही बना था, पर उनसे बेहतर था। इन आविष्कारों के कारण अब सूत कातनेवाले इतना अधिक और इतनी जल्दी से सूत कात रहे थे कि बुनकरों के लिए काम सम्भालना मुश्किल हो रहा था। पर कार्टराइट में पावर-लूम (Powerloom 1785) का आविष्कार किया। यह मशीन भी 'जलशक्ति' के द्वारा चलाया जाने लगा और अब साधारण मजदूर भी बुनाई का काम तेजी से करने लगे। इन आविष्कारों के द्वारा कपड़े बनाने के उद्योग में क्रान्तिकारी विकास हुआ। इन आविष्कारों ने मार्गप्रदर्शन किया और कपड़े बनाने की मशीनों में नये आविष्कार होते आ रहे हैं।

अभीतक मशीन आदमी चला रहे थे, वायु से चलनेवाली चक्की का व्यवहार होता था। तेजधारवाली नदियों से जलशक्ति का भी प्रयोग हो रहा था। पर नदी या वायु पर आदमी का जोर नहीं था। सभी नदियों से 'शक्ति' नहीं भी ली जा सकती थी। इसलिए कृत्रिम आहर बनाकर पानी इकट्ठा किया जाता था, पर समस्या यह थी कि किस प्रकार इस पानी को पानी की शक्ति से चलनेवाली चक्की पर जोर से गिरने दिया जाय कि 'शक्ति' उत्पन्न हो। पानी को इकट्ठा करने के लिए पम्प की जरूरत थी। पम्प के लिए बढ़ती मांग को सन्तुष्ट करने की

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धुन में ही भाँप से चलनेवाली मशीनों का आविष्कार हुआ। १७०५ ई० में न्यूकोमेन (Thames Newcomen) ने भाँप से चलने वाली इंजन बनाया था, पर यह इंजिन बड़ी ही कुरूप था। स्कटलैण्ड का नागरिक जेम्सवाट् ने इस प्रकार की इंजिन के दोषों को देखा और काफी परिश्रम के बाद भाँप से चलनेवाली मशीन का एक नमूना बनाया (१७६६)। यही मशीन सचमुच उपयोगी सिद्ध हुई और जेम्सवाट् को भाँप की इंजिन का आविष्कार करनेवाला माना गया है। यह इंजिन कोयले की भांप से चलती थी। अब भांप से चलनेवाली इंजिन का व्यवहार सूती कपड़े बनाने की मिल में होने लगा। भाप से चलनेवाली रेलगाड़ी का इजाद करनेवाजा स्टीफेन्सन है, और अब भांपशक्ति से संचालित छापाखाना भी खुलने लगे। पहले-पहल इन आविष्कारों का प्रयोग कपड़ों के उद्योग में ही किया गया, पर धीरे-धीरे सभी प्रकार के उद्योगों में—जैसे लोहा, हथियार, सूई बनाना—इनका व्यवहार होने लगा।

यातायात

इस तरह भांपशक्ति का अनुसंधान और प्रयोग से यातायात में युगान्तकारी परिवर्तन हुये। रोमन-युग के बाद इसी समय यातायात के साधनों में इतनी द्रुतगति से उन्नति हुई। १७६०–६४ में ८० कानून पास हुये जिनका प्रयोजन था नहरें बनवाना। नहरों और नदियों में भी कुछ दिन बाद भांप से चलनेवाली नावों का चलना अब दूर नहीं था। १८२० में लीवरपूल और आयरलैंड के बीच जहाज चलने लगे, और १८२५ में अतलांतिक सागर पार चलने वाले जहाज बने। इंगलैंड में जेम्स् विन्ड और टौमस टेलफोर्ड ने नहरें बनवाई और मकडम साहब ने सड़कों का सुधार किया। इसलिए घोड़ागाड़ी भी अब तेज चलने लगी। फिर रेल का भी चलना शुरु हो गया।

आविष्कार की प्रवृत्ति जो जगी सो अभी तक जागृत है, और अगणित आविष्कार हुये हैं। भांप-शक्ति की जगह पर विद्युत-शक्ति का व्यवहार

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सार्वजनिक हो गया है। अमेरिका का बेन्जिमिन फ्रैंकलिन ने विद्युत-शक्ति की खोज किया। मौर्से ने १८३७ ने पहले-पहल तार भेजने का सफल प्रयोग किया। और १८६७ में बेल् ने टेलीफोन इजाद किया। इंगलैंड में माइकेल फैराडे ने प्रथम डाइनमो-बिजली संचालित करने का यन्त्र-बना लिया। इटैली का मारकोनी ने बेतार-का-तार और रेडियो का आविष्कार किया। टेलिग्राफ, टेलीफोन; बिना-तार-के-तार, अब हमारे जीवन के अंग बन गये हैं। परिमाणु-शक्ति का भी शान्तिमय उद्योगों में व्यवहार की सम्भावना दूर नहीं है। हवा में उड़ना, जिसे बेकन ने सम्भव समझा था पर उसके बाद सदियों तक स्वप्न ही था, आज मामूली घटना है। अतः औद्योगिक क्रान्ति ने मशीन-युग लाया है।

वैज्ञानिक परम्परा

कृषि में क्रान्ति (Agrarian Revolution):

औद्योगिक क्रान्ति के पहले से ही इंगलैंड में कृषि के साधनों में परिवर्तन किये गये थे, और कृषि-व्यवस्था में भी महत्वपूर्ण तबदिली आ गई थी। इंगलैंड में अठारहवीं सदी में अन्न काफी पैदा होता था और बाहर भी भेजा जाता था। अतः विदेशी बाजार की बढ़ती मांग के कारण कृषि में क्रान्तिकारी परिवर्तन की आवश्यकता स्वाभाविक थी, और किसान अधिक अन्न उपजाने के लिए व्यग्र थे। हौलैन्ड के सम्पर्क में आने के बाद नयी चीजों की खेती, जैसे शलगम (Turnip) या कृत्रिम घास की होने लगी, और जमीन को दो वर्ष के बाद परती छोड़ने की नीति आवश्यक हो गई। अब भेड़ और गाय-बैल को पर्याप्त चारा मिलने लगा इससे पशुधन की उन्नति हुई, और अच्छी नस्ल के गाय-बैल और भेंड़ पैदा होने लगे। इससे पर्याप्त और अच्छे किस्म का पर्याप्त खाद मिलने लगा, जिससे फसल और भी बेहतर हुई। खेत को काफी गहरा जोता जाने लगा, और बैल के बदले घोड़े से खेती की जाने लगी।

अतः इन सब सुधारों का उपयुक्त फायदा उठाने के लिए मूलधन की

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यकता थी, और छोटे-२ टोपरे की खेती से बहुत फायदा नहीं हो सकता था। भेड़ों को पर्याप्त चारा मिलना जरूरी था तभी तो अच्छा ऊन और पर्याप्त मांस मिलता। इसलिए अब खेतों को घेरा जाने लगा। खेत घेरने की व्यवस्था को **Enclosure System** कहा जाता है। इन घेरों में भेंड़ पालना और भिन्न-२ प्रकार की फसलों को नये सुधार के जरिये उपजाना अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ। सर्वसाधारण के चारागाह (Commons) के लिए जो जमीन थी उसे भी इस छोर में मिलाया गया। अब छोटे-२ स्वतन्त्र किसानों की खेती इसकी तुलना में नुकसानदेह हो गई, और अन्त में अपना खेत जमींदारों के यहाँ बेचकर या गिरवीं रख कर वे मजदूर हो गये। अतः एकाएक कुछ बड़े धनवान् बड़े-बड़े जमींदार बन गये, और अपने 'घेरे' को बढ़ाने में लगे रहे, छोटे-२ स्वतन्त्र किसान मजदूर होकर नये कारखानों में काम करने के लिए व्यग्र हो गये। अतः औद्योगिक क्रान्ति की सफलता के लिए कारखानों के लिए मजदूर आसानी से मिलने लगे। कुटी-उद्योगों पर निर्भर करने वाले कारीगरों का परिवार भी संकट में पड़ गया। इन लोगों के पास थोड़ी सी जमीन रहती थी, पशु पालते थे, और छोटे-२ कुटी-उद्योगों के द्वारा तैयार माल बेचकर कुछ कमाते थे, या भाड़े पर काम करते थे। सर्वसाधारण के लिए छोड़ी हुई जमीन पर उनके अधिकारों की अब अवहेलना होने लगी, और अब इन्हें पशुपालन छोड़ना पड़ा, छोटे टोपरों में खेती बेकार थी। अतः अब ये भी अपना श्रम बेचकर मजदूरी ही करने पर बाध्य थे। कृषि के साधनों में सुधार होने के कारण अब मजदूरी पर कम खर्च होने लगा; और इसलिए मजदूरी का दर भी गिर गया, जबकि मजदूरी कर पेट पालनेवालों की संख्या बढ़ रही थी। इसलिए कारखानों के लिए मजदूर पर्याप्त और सुविधाजनक शर्तों पर मिलने लगे। कृषि में सुधार के कारण उत्पादन बढ़ गया और इससे बढ़ती आबादी को खिलाना सम्भव हो सका। इंगलैंड के कारखानों में तैयार माल की खपत के लिए देश में ही बाजार गर्म था।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः कृषि-क्रान्ति और उद्योगों के साधनों में क्रान्तिकारी परिवर्तन दोनों एक दूसरे के पूरक हैं, और दोनों ने मिलकर औद्योगिक क्रान्ति उत्पन्न कर दिया, जिसके परिणाम अत्यन्त ही महत्वपूर्ण हैं। १६वीं सदी में योरप के अन्य देशों में भी औद्योगिक क्रान्ति हुई।

उत्पादन की वृद्धि

इस क्रान्ति का एक स्पष्ट परिणाम था कि सभी क्षेत्रों में उत्पादन बहुत बढ़ गया। मशीनों के प्रयोग के कारण कोयला और लोहा के खानों से अत्यधिक कोयला और लोहा निकलने लगा, और कोयला को लोहा गलाने के काम में लगाया जाने लगा, जिसका परिणाम यह हुआ कि मध्यप्रदेश में (Midland) कारखानों का अत्यन्त विस्तार हुआ। स्पात और लोहे की चीजें बहुत बनने लगीं। ४० वर्ष में लोहा का उत्पादन चौगुना हो गया। कपड़े का उत्पादन कई शतगुणा बढ़ गया। अन्न और फल के उत्पादन में भी खूब उन्नति हुई। नयी प्रकार की चीजें बनने लगीं।

व्यापार की उन्नति

इस बढ़ते उत्पादन के साथ-२ व्यापार का भी विकास हुआ। सड़क, नहरें, नदियां और रेलगाड़ी के द्वारा पूरे देश के कोने-२ में तैयार माल आसानी से पहुँचने लगे। विदेशों से भी व्यापार में अत्यन्त तरक्की हुई। मशीनों के द्वारा अत्याधिक संख्या में तैयार माल के लिए विदेशों में, विशेषकर उपनिवेशों में खुला बाजार था। योरप में भी तैयार माल का स्वागत होता था, और वस्तुओं की बढ़ती मांग के कारण उत्पादन में और भी प्रगति हुई। इस तरह इंगलैंड 'दुनियां का कारखाना' बन गया, और यहाँ के बने माल दुनियां की बाजारों पर छा गये। फ्रांस की क्रान्ति के समय के और नेपोलियन के समय के युद्धों में इंगलैंड की सफलता का एक कारण था व्यापार और उद्योग के कारण इंगलैंड का अत्यधिक शक्तिशाली होना। इससे इंगलैंड के व्यापारियों और उद्योगपतियों को बहुत फायदा हुआ। कुछ समय बाद जर्मनी, फ्रांस हौलैन्ड और अमेरिका भी मैदान में आ गये और अपने तैयार माल के लिए बाजार ढूंढ़ने लगे।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः योरप के देशों में तैयार माल को बेचने के लिए प्रतिद्वन्द्विता शुरू हुई। एशिया और अफ्रिका के कच्चे माल पर अधिकार करना भी इनके लिये आवश्यक हो गया। इन देशों से खनिज पदार्थ, अन्न, रूई इत्यादि कच्चे माल को सस्ते खरीदना, और अपने तैयार-माल को मुनाफे के साथ इन देशों में बेचना प्रत्येक औद्योगिक देश का लक्ष्य था। अपने तैयार-माल के लिए बाजार सुरक्षित रखना और जहाँ कच्चे माल (Raw materials) मिलें उस पर अपना एकाधिपत्य स्थापित करना अब इन योरोपीय देशों के लिए जरूरी हो गया। अतः आधुनिक साम्राज्यवाद का जन्म का कारण औद्योगिक क्रान्ति ही बनी। और साम्राज्यवादी देश दुनियां को बांटने में लग गये। विज्ञान और यन्त्रविद्या में आगे रहने के कारण एशिया और अफ्रिका के देशों पर इनका आधिपत्य हो गया। पर आर्थिक प्रतिद्वन्द्विता का परिणाम अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध है। प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्ध का एक कारण साम्राज्यवादी औद्योगिक देशों की प्रतिद्वन्द्विता थी। प्रत्येक देश का पूंजीपतिवर्ग अपनी राष्ट्रीय सरकार से मदद पाने का हक़ समझता था, और इस तरह मुक्त-प्रतिद्वन्द्विता की जगह पर राष्ट्रीय पूँजीपतिवर्ग के हित में राष्ट्रीय प्रतिबन्ध लगाये जाने लगे और विदेशी व्यापार पर रोक लगे। इस नीति का स्वाभाविक परिणाम था अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध बढ़ते अनवन और औद्योगिक क्रान्ति ने राष्ट्रीय धन की वृद्धि की। व्यापार और उद्योग का यह स्वाभाविक परिणाम था। इंगलैंड, और उसके बाद जर्मनी, फ्रांस इत्यादि समृद्ध देश हो गये।

साम्राज्यवाद का प्रसार

औद्योगिक क्रान्ति का परिणाम यह हुआ कि जन-संख्या बढ़ गई। दो सौ वर्ष के भीतर योरप की जनसंख्या १७ करोड़ से बढ़ कर ५०५ करोड़ पहुँच गई। १८००-१८०५ तक योरप की जनसंख्या १८ करोड़ से बढ़ कर २६ करोड़ हो गई थी। १७५० में इंगलैण्ड की जनसंख्या ७० लाख से अधिक

जनसंख्या में वृद्धि

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं थी, पर १८०१ में यह बढ़ कर १ करोड़ १० लाख हो गई, और १० वर्ष में बीस लाख और बढ़ गई थी।

बड़े-बड़े कारखाने जहाँ खुले वहाँ शहर बस गये। गाँवों से लोग इन शहरों में जीविका कमाने के लिए ढेर-के-ढेर आने लगे। शहर किसी योजनानुसार नहीं बनाये गये थे। इन शहरों में हजारों गरीब मजदूर, मामूली दूकानदार और बड़े-बड़े पूंजीपति रहते थे। इन नये-नये घनी आबादीवाले शहरों में सार्वजनिक स्वास्थ्य, रहने की सुव्यवस्था, यातायात सुविधा इत्यादि कई समस्याएं उठ खड़ी हुईं। मजदूरों के रहने की व्यवस्था का सर्वथा अभाव था। सफाई का प्रबन्ध नहीं था। इस समय के ये शहर किसी भी सभ्यता के लिए शर्मनाक थे। आगे चलकर म्यूनिसिपेल्टी, कारपोरेशन इत्यादि स्वायत्त संस्थाओं का विकास हुआ। सरकार का भी ध्यान इस ओर गया।

शहरों का विकास

एक बात और भी ध्यान देने की है। कृषि-प्रधान प्रदेशों से हटकर आबादी अब इन नये औद्योगिक क्षेत्रों में घनी हो गई। एक ओर तो एक क्षेत्र वीरान हो रहा था, दूसरी ओर नये क्षेत्रों में आबादी जल्दी से बढ़ रही थी। यह एक विकट समस्या हो गई जिसका प्रभाव राजनीति और समाज पर पड़ा।

औद्योगिक क्रान्ति ने आर्थिक व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाया। उद्योगों में बड़ी-२ कीमती मशीनों के प्रयोग का अर्थ था कारखानों में उत्पादन व्यवस्था (Factory System) का आरम्भ। अब कोई कारीगर अपनी मामूली पूँजी के बल पर कुटी-उद्योग नहीं चला सकता था। इन कारखानों में माल सस्ता और अधिक संख्या में उत्पन्न होने लगा। इनसे स्वतन्त्र कारीगर प्रतिद्वन्द्विता करने में अयोग्य थे। इसलिए अब उत्पादन का मुख्य साधन कारखाना था। कारखानों में मजदूर काम करते

कारखानों की स्थापना (Factory System)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे, और उन्हें मजदूरी मिलती थी। कारखानों को स्थापित करने में बहुत धन खर्च होता था, और इसलिए बड़े-२ पूँजीपति अब अपनी पूँजी लगा कर कारखाना खोलने लगे। व्यापार की उन्नति के कारण इनके पास पूँजी जमा थी। इन कारखानों में तैयार माल की खपत से बहुत लाभ की आशा थी, और लाभ बहुत हुआ। ये लोग कारखाना के मालिक थे, और कारखानों में बने माल के स्वामि। अतः अब समाज में दो वर्ग प्रमुख हो गये (क) पूँजीपति, जिसने पूँजी लगाई और कारखानों के बने माल को बेचकर लाभ उठाया, (ख) मजदूर-वर्ग जो अपना श्रम का मजदूरी पाता था, इस तरह पूँजीवादी व्यवस्था का विकास हुआ। इस व्यवस्था में उत्पादन के साधनों पर चन्द पूँजीपतियों का स्वामित्व रहता है और इससे इस वर्ग का समाज और राज पर वास्तविक अधिकार रहता है। अतः औद्योगिक क्रान्ति से उत्पन्न राष्ट्रीय धन का बहुत बड़ा हिस्सा अल्पसंख्यक पूँजीपतियों को मिला, और बहुसंख्यक मजदूरों को पेट पालने भर मजदूरी भी मुश्किल से नसीब होने लगी।

पूंजीवादी-व्यवस्था

मशीनों का व्यवहार का एक प्रत्यक्ष परिणाम था बहुत से कारीगरों का बेकार हो जाना। मशीनों के द्वारा एक आदमी दो, चार, या १० आदमियों का काम उसी समय में कर लेता था, इसलिए बहुत से मजदूरों को काम नहीं मिलने लगा। मशीनों के सार्वजनिक रूप से व्यवहार होने पश्चात् कुटी-उद्योग में लगे कारीगर या छोटे-२ पैमाने पर स्वतन्त्र रूप से काम करनेवालों का काम ठप् पड़ गया, और वे बेकार हो गये, क्योंकि सब को मशीन चलाने की नौकरी नहीं मिली। इस तरह औद्योगिक क्रान्ति का एक परिणाम है बेकारी की समस्या। यह समस्या अभी भी वर्त्तमान है। उन्नीसवीं सदी में जेनरल लूड् ने यह प्रचार किया कि मशीन के कारण ही लोग बेकार हो गये हैं, और उसके अनुयायियों ने मशीन तोड़-फोड़ का आंदोलन शुरू कर दिया। इसे

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Luddite Riots कहा जाता है। इन उपद्रवों को सरकार ने कुचल दिया।

मजदूरों की बुरी दशा

जिन मजदूरों को रोजगार मिल गया था उनकी भी दशा अच्छी नहीं थी। उनके रहने-सहने का कुछ प्रबन्ध नहीं था और वे गन्दी जगहों में छोटे-२ कमरों में भरे रहते थे। उनका स्वास्थ्य गिरता जा रहा था। इसके अलावे उनकी मजदूरी भी कम थी। मालिकों को मजदूर काफी संख्या में मिलते थे, बल्कि प्रत्येक मजदूर नौकरी के लिए एक दूसरे से होड़ कर रहा था। इस कारण कारखानों के मालिक को सस्ते दर पर मजदूर मिल जाते थे। बेचारे मजदूर करते भी क्या, अपना श्रम बेचने के अलावे उनके पास अन्य क्या चारा था। पूँजीपति इस परिस्थिति का पूरा लाभ उठाते थे। वे धनवान् थे इसलिये यदि उनके शर्त पर मजदूर न मिलते तो वे कुछ दिन कारखाना बन्द रख सकते थे, पर बेचारे मजदूर को तो एक दिन काम नहीं मिलने से भूखे मरने की नौबत थी। इस कारण जिस मजदूरी पर उन्हें काम दिया जाता था वे तैयार थे, बल्कि काम करने के लिए उनमें होड़ थी, और बहुतों को तो काम नहीं ही मिलता था। पर इस अल्प आय पर परिवार का पोषण नामुमकिन था। इसलिए उनकी स्त्रियां और छोटे बच्चे भी कारखानों में काम करते थे। मालिकों को इसमें फायदा था क्योंकि बच्चों और स्त्रियों को कम तनख्वाह दिया जाता था। मासूम बच्चे और गर्भवती स्त्रियों से कड़ा काम लिया जाता था, उन्हें खानों में काम करना पड़ता था; छोटे बच्चों को जान की जोखिम उठाकर चन्द ठिकरों के लिए मिल की चिमनियां साफ करना पड़ता था। स्त्रियों और बच्चों के साथ यह अमानुषिक वर्ताव औद्योगिक क्रान्ति के प्रथम दिनों का महान् अभिशाप है। इस स्थिति के विरुद्ध आवाज उठने लगी।

मजदूर तभी अपनी बात मनवा सकते थे यदि उनमें संगठन होता। कारखानों में कसैड़ों और हजारों मजदूर एक साथ काम करते हैं, उनका

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वार्थ एक हैं, इसलिए पूंजीवादी व्यवस्था में मजदूर- संगठन आसान और स्वाभाविक है। पर उस समय की सरकार ने कानून बनाकर मजदूरों का संगठन गैरकानूनी करार दिया। मजदूरों का आन्दोलन का दमन किया गया। नेपोलियन के पतन के बाद युद्ध से लौटे हुये सैनिकों में बहुत से बेकारी के शिकार हो गये और वे आन्दोलन में भाग लेने लगे। सभाएँ होने लगीं और सुधारों की मांग की जाने लगी। भूखे रोटी मांगने लगे। सरकार की दमन-नीति के फलस्वरूप कितने मारे गये। पीटरलू का हत्याकाण्ड (Peterloo-massacre) एक दृष्टान्त है। पर दमन के साथ-२ आंसू भी पोछा गया। राबर्ट पील ने मजदूरों का संगठन वैध कर दिया (१८२४)।

मजदूर संगठन अवैध

पर इस विषम परिस्थिति ने लोगों को ध्यान पार्लियामेन्ट में सुधार की ओर आकर्षित किया। मध्यमवर्ग के कुछ भले लोग इस स्थिति से असन्तुष्ट थे, और वे पार्लियामेन्ट के द्वारा ही स्थिति का सुधार सम्भव समझने लगे और उन्होंने गृह-युद्ध को टालने का यही उपाय समझा। मजदूरों को भी आशा हुई कि पार्लियामेन्ट में उनके हितों के रक्षक काफी संख्या में रहें तो उनकी स्थिति सुधर जायगी। पार्लियामेन्ट को इस समस्या में हस्तक्षेप करना चाहिये, ऐसा ख्याल जोर पड़ने लगा। उस समय की पार्लियामेन्ट से यह सम्भव नहीं समझा जा सकता था, क्योंकि पार्लियामेन्ट पर चन्द भूमिपतियों का अधिकार था। अपने धन और प्रभाव के बल पर वे पार्लियामेन्ट के सदस्यों को अपनी जेब में रखते थे, उन्हें खरीद लेते थे या निर्वाचन क्षेत्रों को ही खरीद लेते थे। औद्योगिक क्रान्ति के कारण कई समृद्ध नगरों का विकास हुआ था, और पुराने नगर सुनसान हो गये थे, और आबादी भी एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में हट आई थी। पूर्व और दक्षिण की घनी आबादी हटकर उत्तर-पश्चिम इंगलैंड में आ गई। इस भौगोलिक सन्तुलन का तबादिला से पार्लियामेन्ट का सुधार आवश्यक हो गया। पर निर्वाचन-क्षेत्र और चुनाव के नियम पुराने ही थे। अतः पार्लियामेन्ट में सुधार का आंदोलन

पार्लियामेन्ट का सुधार

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जोर पकड़ता गया। छोटा पिट्ट के मन्त्रीत्व में ऐसे विधेयकों को पेश किया गया पर स्थिरस्वार्थों के विरोध के कारण इन्हें पास नहीं किया जा सका। पर अन्त में १८३२ में पार्लियामेन्ट में सुधार का प्रथम कानून पास किया गया, और १८३३ में शेफ्ट्स्बरी के प्रयत्न से खानों और कारखानों में सुधार का पहला कानून पास हुआ, जिसमें स्त्रियों और बच्चों की हालत में सुधार किया गया। अब यह स्पष्ट हो गया कि औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप जो सामाजिक कुरीतियां फैल गई थीं उन्हें दूर करने का पार्लियामेन्ट को अधिकार है। इसके बाद पार्लियामेन्ट खानों और कारखानों में काम करने के नियम और स्थिति को सुधार करने के लिए बराबर कानून बनाती गई।

प्रथम फैक्टरी ऐक्ट

पर मजदूरों को सन्तोष नहीं हुआ। प्रथम पार्लियामेन्ट-सुधार कानून के द्वारा मध्यमवर्ग को उचित प्रतिनिधित्व मिल गया था। पर मजदूरों को प्रतिनिधित्व नहीं मिला था। धनवानों का ही पार्लियामेन्ट पर अधिकार था। मजदूरों में यह आन्दोलन जोर पकड़ने लगा कि पार्लियामेन्ट में उनका प्रतिनिधित्व निश्चित हो। पार्लियामेन्ट के पास संस्मरणपत्र (Charter) पेश करने का आंदोलन शुरू किया गया। पार्लियामेन्ट का सालाना नया जलसा, वालिग मताधिकार, सम्पत्ति-नियम का भंग, सदस्यों को वेतन, इत्यादि मांग पेश किये गये। इस आन्दोलन को 'चार्टिस्ट' आन्दोलन कहा जाता है। १८४८ में इस आन्दोलन ने वृहत् रूप लिया। लाखों हस्ताक्षर लिए गये जिनमें कई जाली थे। यद्यपि यह आन्दोलन दबा दिया गया पर चार्टिस्टों के पार्लियामेन्ट के सुधार सम्बन्धी अधिकतर सुझाव धीरे-२ मान लिए गये। इस आन्दोलन के द्वारा पार्लियामेन्ट में सुधार का प्रश्न आगे आया, और १८६७, १८८४-८५, १६१८, १६२८ इत्यादि कानूनों के द्वारा पार्लियामेन्ट में वालिग मताधिकार स्थापित हो गया। सदस्यों को वेतन भी मिलने लगा।

चार्टिस्ट-आंदोलन

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर कितने मजदूर नेता और राजनीति शास्त्रविज्ञ क्रान्ति से उत्पन्न सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था को अन्यायी और शोषक समझते थे। उस समय व्यापार और आर्थिक क्षेत्र में एडम स्मिथ का सिद्धान्त का बोलबाला था। एडम स्मिथ ने **Wealth of Nations** नामक अपनी पुस्तक में यह बताया था कि आर्थिक क्षेत्र में पूर्ण स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए और राज का हस्तक्षेप न हो। इससे व्यापार बढ़ेगा, उद्योग को प्रोत्साहन मिलेगा, और धन की वृद्धि होगी। उत्साही और दुस्साहसी व्यापारियों और उद्योगपतियों को स्वतन्त्रता रहनी चाहिये कि वे मुक्त प्रतिद्वन्द्विता में सफल होवें। इस सिद्धान्त का आशय यह था कि पूँजीपति और मजदूर के पारस्परिक सम्बन्ध राज के हस्तक्षेप से परे हैं और मजदूरों का संगठन अवैध है। व्यापार में मुक्त प्रतिद्वन्द्विता हो। इन आर्थिक सिद्धान्तों का इंगलैंड, फ्रांस, जर्मनी और अमेरिका में आदर हुआ और व्यापार या उद्योग पर लगे प्रतिबंध और व्यापार पर एकाधिकार उठा दिये गये, और मुक्त प्रतिद्वन्द्विता स्थापित हो गई। इसका यह फल हुआ कि व्यापार और उद्योग की आशातीत प्रगति हुई, धन की वृद्धि हुई। पर इससे फायदा मुट्ठी पर उद्योगपति या पूँजीपतिवर्ग को ही पूरा मिला। बेचारे मजदूरों की हालत बुरी रही। एक तरफ तो पूँजीपति वर्ग अत्यधिक धनी हो गया था, और राज और समाज का प्रभु बन गया था, दूसरी ओर मजदूर थे, उनका कोई अधिकार नहीं था। कारखानों और खानों में काम करने की अवस्था दयनीय थी। पूंजीपति इनकी अवस्था में सुधार के विरुद्ध थे क्योंकि इससे इन्हें घाटा होता था। मजदूरों से अधिक से अधिक काम लेना और उत्पादन में कम खर्च करना ही पूंजीपतियों के हित में था। १८३३ के कानून के बाद जो सुधार हुए उससे मजदूरों की स्थिति में कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ था।

अहस्तक्षेप की नीति

अब आर्थिक-क्षेत्र में वैयक्तिक स्वतन्त्रता के इस सिद्धान्त के विरुद्ध नये

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार प्रकट होने लगे। मुक्त प्रतिद्वन्द्विता और राज में अहस्तक्षेप के सिद्धान्त का असली अभिप्राय यह था कि बेकारी के भूत से परेशान अपना श्रम बेचकर ही जीनेवाले मजदूरों को प्रभावशाली समृद्ध पूंजीपति से प्रतिद्वन्द्विता करने की स्वतन्त्रता थी। भेड़ को भेड़िया से लड़ने का अधिकार था। यह सिद्धान्त वास्तव में अन्याय का समर्थक और असहायों का अहित करनेवाला था; अल्पसंख्यक पूंजीपतिवर्ग के लिए बहुसंख्यक मजदूरों को शोषण करने का यह एक आधार था। इस अन्यायपूर्ण और दयनीय स्थिति ने कितने भावुक चिन्तकों और जनसाधारण की भलाई सोचने वाले महापुरुषों को प्रभावित किया।

आदर्शवादी समाजवादी

फ्रांसीसी चिन्तक बाबेफ (Babeufe) ने १७९४ में ही कहा था "जब मैं गरीबों को बिना कपड़े और जूतों के देखता हूं जिसको बनाने में वे स्वयं व्यस्त रहते हैं, और उन अल्पसंख्यक लोगों के विषय में सोचता हूं जो श्रम तो कुछ नहीं करते पर तब भी उन्हें किसी चीज की कमी का आभास नहीं रहता, तब मुझे विश्वास होता है कि राज्य अभी भी चन्द अमीरों का गरीबों के विरुद्ध पुराना षड्यन्त्र है; भले इसने अपना रूप बदल दिया हो।" भावुक विद्वान पुरुष इस आर्थिक विषमता से क्षुब्ध थे और नये आदर्श और नये उपायों के द्वारा इसे दूर भगाना चाहते थे।

इंगलैंड में राबर्ट ओवेन (Robert Owen, 1771–1858) ने सहयोग-समीतियाँ स्थापित किया। इन सहयोग-समीतियों में मजदूर और गरीब किसान अपनी समस्याओं का खुद हल निकालते थे; काम करने के घंटों में कमी की गई, और अपने झगड़ों का निर्णय वे स्वयं करते थे। अतः ओवेन ने मजदूरों का संगठन का व्यावहारिक फायदा दिखाया, और स्थानीय दिक्कतों को संगठन और सहयोग के बल पर हल करने का रास्ता निकाला। यह एक आदर्श समाज का नमूना था। ओवेन को इंगलैंड का समाजवाद का पिता कहा जाता है। फ्रांस में सन्त साइमन और मेरी फौरिअर ने भी पूंजीवादी व्यवस्था की बुराइयों को दूर करने के

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए नये सामाजिक संगठन और नये राज्य की स्थापना के लिए अपने विचार प्रकट किया। इन विचारकों की समाजवादी विचार-धारा ने चन्द न्यायी महानुभावों को प्रभावित किया, पर इनका सार्वजनिक प्रभाव नहीं हुआ और न कोई समाजवादी दल का संगठन हुआ। पर लूई ब्लैंक (Louis Blank, 1811–1882) नामक पेरिस के एक नागरिक ने मुक्त-प्रतिद्वन्द्विता के सिद्धान्त की कड़ी आलोचना की और इसका कहना था कि राज्य के कारखानों का मालिक समाज को बना देना चाहिये। इन कारखानों के चलाने वाले मजदूर हैं जो कि स्वयं इनका प्रबन्धक चुने और आपस में मुनाफा बांटे और स्वतन्त्ररूप से अपना काम करें। लूई ब्लैंक के सिद्धान्त क्रान्तिकारी थे, और मजदूरों के ही द्वारा कारखानों का प्रबन्ध किया जाय यह विचार (Syndicalism) का आधार ही समझा जायगा। लूई ब्लैंक ने यह घोषणा की कि प्रत्येक स्वस्थ-नागरिक को काम देना राज्य का कर्त्तव्य है, और वृद्धों और बीमारों की सहायता देना इसका धर्म है। पर यह बिना प्रजातन्त्र के असम्भव है। बालिगमताधिकार जरूरी है, यदि 'स्वतन्त्रता, समता, और विश्वबन्धुत्व' के आदर्श को पाना है। लूई ब्लैंक के सिद्धान्तों से फ्रांस की १८४८ की क्रान्ति प्रभावित हुई; और अब तार, रेल इत्यादि पर राष्ट्रीय स्वामित्व की स्थापना, और स्थानीय स्वशासित संस्थाओं का जल प्रबन्ध, नगर का यातायात, पुस्तकालय इत्यादि पर पूर्ण एकाधिपत्य के सिद्धान्त आधुनिक राज्यों के के लिए स्वाभाविक माने जाते हैं। लूई ब्लैंक ने इस दिशा में पथप्रदर्शक का काम किया है। अतः आर्थिक क्षेत्र में स्वतन्त्रता की नीति का दूषित परिणाम के कारण ही समाजवादी सिद्धान्तों का प्रचार शुरु हो गया। व्यक्ति की स्वतन्त्रता और उसके अधिकार की जगह पर समाज के अधिकार और हित को प्रतिष्ठित करने का आन्दोलन शुरू हुआ। मजदूर आन्दोलन और संगठन का श्रीगणेश हो गया।

पर इन विचारकों को काल्पनिक समाजवादी और इनके सिद्धान्त को काल्पनिक समाजवाद कहा जाता है, क्योंकि समाजवाद का न कोई निश्चित

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप बताया गया था, और न किसी ने उसकी प्राप्ति के लिए कोई ठोस उपाय बताया। उनका संकेत एक आदर्श की ओर था। बस। इसी समय कार्ल मार्क्स का इतिहास में प्रवेश होता है। मार्क्स एक यहूदी वकील का पुत्र था। उसका जन्म १८१८ में प्रशा में हुआ था। उसने विश्वविद्यालय की उच्चतम शिक्षा पाई थी। वह हेगेल से अत्यन्त प्रभावित हुआ था, और पहले प्रजातन्त्र का समर्थक था। पर अपने उदारवादी विचारों के कारण उसे तंग किया गया। पेरिस आने पर उसने मजदूरों की दशा का अध्ययन किया। उसका प्रिय मित्र एन्जिल्स् था। इन दोनों ने मिलकर १८४८ में 'साम्यवादी घोषणा' (Communist Manifesto) निकाला। १८६७ में कार्ल मार्क्स का लिखा 'कैपिटल' (Capital) का प्रथम भाग प्रकाशित हुआ। साम्यवादी घोषणा और कैपिटल का प्रभाव आधुनिक विश्व के कोने-२ पर पड़ा है, और शायद ही कोई दूसरी आधुनिक पुस्तक ने इतने अधिक मनुष्यों को इतने प्रबल रूप से प्रभावित किया है। मार्क्स ने कहा कि इतिहास वर्ग-संघर्ष की कहानी है। जिस वर्ग के अधिकार में उत्पादन के साधन होते हैं वही वर्ग राज और समाज पर अपने स्वार्थ के हित के लिए अधिकार रखता है, और इस प्रकार दूसरे वर्ग का शोषण करता है। समाज में बराबर दो ही वर्ग रहे हैं—शोषक और शोषित। औद्योगिक क्रान्ति के बाद पूंजीपति शोषकवर्ग है और मजदूर शोषित। इनमें संघर्ष स्वाभाविक है, क्योंकि इनके हित पारस्परिक विरोधी है। पूँजीवाद में अधिकाधिक पूंजी कम से कम पूंजीपतियों के हाथ में केन्द्रित हो जायगी, जबकि मजदूरों की संख्या बढ़ती जायगी। बड़े २ कारखानों में साथ काम करने के कारण मजदूरों में वर्ग-जागृति होगी और वर्ग-ऐक्य स्थापित होगा। दुनियां के मजदूरों को एक होना है क्योंकि उन्हें सीकड़ों के सिवा और कुछ नहीं खोना है। अतः मार्क्स ने एक ओर तो पूंजीवादी व्यवस्था का स्वाभाविक कमजोरी की ओर ध्यान आकर्षित किया दूसरी ओर उसने यह भी घोषणा की कि इस संघर्ष में मजदूरों

कार्लमार्क्स

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की विजय निश्चित है। पर मजदूरों को इसलिए चुप नहीं बैठना चाहिये बल्कि एक होकर जबरदस्ती पूंजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध क्रान्ति करना चाहिए, और सर्वहारा वर्ग (Prolateriate) का राज्य पर आधिपत्य स्थापित कर लेना चाहिये जिससे कि शोषक वर्ग इस यन्त्र का सर्वहारा के विरुद्ध उपयोग करने में अशक्य हों। अतः मार्क्स ने सर्वहारा दल को पूंजीवादी संगठन और व्यवस्था के विरुद्ध क्रान्ति के लिये खुला आवाहन किया। 'The proletarians have nothing to lose but their chains. They have a world to win. Working men of all countries unite'—उसके विचार में यह जरूरी था और स्वाभाविक भी। इतिहास सर्वहारा-वर्ग के पक्ष में है, और न्याय भी, क्योंकि मार्क्स के विचार से पूंजीपतियों की पूंजी मजदूरों की गाढ़ी कमाई की लूट से ही इकट्ठी की गई है। मजदूर जितना घंटा काम कर जितने मूल्य का सामान पैदा करता है, उससे बहुत कम ही उसे मजदूरी के रूप में मिलती है।

मार्क्स ने अपने सिद्धान्त को 'साम्यवाद' कहा, यह वैज्ञानिक समाजवाद था, काल्पनिक या आदर्शवादी समाजवाद (Utopian Socialism) से भिन्न। मार्क्स का विचार था कि प्रत्येक देश के मजदूरों में जागृति उत्पन्न करनी चाहिये और उनको संगठित करना चाहिए (Trade-unionism), और पार्लियामेन्ट में सुधार लाकर उनके आंदोलन को सबल करना चाहिए। अमीरों पर अधिक कर लगाने और मजदूरों के काम करने के घंटे में कमी करने, और उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार लाने के कार्यक्रम के लिए आंदोलन करना चाहिए। पर इन आंदोलनों का लक्ष्य मजदूरों की स्थिति में सुधार लाना नहीं वरन् पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध शक्ति इकट्ठा करना था। पार्लियामेन्ट में साम्यवादी मजदूर दलों का लक्ष्य है प्राप्त सुविधाओं से फायदा उठाकर पूंजीवादी व्यवस्था और पार्लियामेन्टरी राज व्यवस्था पर आक्रमण कर सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व स्थापित करना। तभी साम्यवाद की स्थापना हो सकेगी। मार्क्स के विचार से प्रभावित होकर योरप और

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एशिया में मजदूर संगठन स्थापित हुये जिनका लक्ष्य है, क्रान्ति कर साम्यवाद की स्थापना। मजदूरों का एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना मार्क्स के विचार में साम्यवाद की स्थापना के लिए जरूरी थी। अपने जीवनकाल में ही इसने प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया। मार्क्स के विचार क्रान्तिकारी थे। उसे इसलिए बहुत कष्ट झेलना पड़ा, और अन्त में निर्वासित होकर उसे इंगलैंड में ही अपने अन्तिम दिन बिताने पड़े। इसकी मृत्यु १८८३ ई० में हो गई। पर उसके सिद्धान्त पूर्णतः जीवित हैं, और विश्व के इतिहास पर इनका क्रयमान प्रभाव स्पष्ट है। योरप के सभी देशों में मार्क्सवादी समाजवादी दल स्थापित हो गये।

पर मार्क्स के अलावे अन्य चिन्तक भी औद्योगिक क्रान्ति से उत्पन्न विषम समस्या-चन्द अमीरों के विरुद्ध करोड़ों गरीबों की दयनीय दशा--का समाधान ढूंढ़ रहे थे। इनमें फ्रांस का नागरिक प्राउधों (Prau-dhon) का नाम उल्लेखनीय है। वह मार्क्स का सम-कालीन था। अपनी पुस्तक "सम्पत्ति क्या है (What is Property)" में इसने यह सिद्ध किया कि सम्पत्ति चोरी का माल है, क्योंकि यह गरीब मजदूरों का उचित श्रम की अवहेलना कर ही अर्जित की जाती है। पर जब मार्क्स वैयक्तिक सम्पत्ति की जगह पर राष्ट्रीय व समाज का अधिकार स्थापित करना चाहता था, प्राउधों का यह सिद्धान्त था कि प्रत्येक मनुष्य का अधिकार है कि सम्पत्ति का उपयोग कर उसका फायदा उठावे। प्राउधों 'अराजकता' (Anarchy) का समर्थक था, और किसी प्रकार की सार्वभौम सरकार को अत्याचारी समझता था। वह नागरिक की पूर्ण स्वतन्त्रता का समर्थक था। उसे यह विश्वास था कि मनुष्य असल में अच्छा स्वभाव का है, और पूर्ण स्वतन्त्रता से सबको फायदा होगा, और शोषण का अन्त होगा। इन अराजकतावादियों का प्रभाव फ्रांस और रूस की राजनीति पर पड़ा। टाल्सटाय को भी

प्राउधों

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अराजकतावादी ही कहा जा सकता है। महात्मा गाँधी भी कुछ हद तक इस विचार के साथ थे।

औद्योगिक क्रान्ति का एक महत्वपूर्ण परिणाम था राष्ट्रीय और प्रजातान्त्रिक आन्दोलनों की अत्याधिक प्रगति। फ्रांस में औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप पूंजीपति वर्ग की उन्नति हुई; और यह वर्ग राज पर अपना अधिकार स्थापित करने के लिए वैधानिक सुधारों की मांग करने लगा, और १८३० और १८४८ की राज्यक्रान्ति के पीछे इसी वर्ग का हाथ था, और फ्रांस में कुछ हद तक उदारवादी और वैधानिक राजशासन स्थापित हो गया और पूंजीपति व्यापार और उद्योग पर लगे प्रतिबंधों को उठाने में समर्थ हुये। आर्थिकक्षेत्र में पूर्ण स्वतन्त्रता का सिद्धान्त लागू हो गया। स्वतन्त्र-प्रिय मध्यमवर्ग बेल्जियम, जर्मनी, इटैली इत्यादि परतन्त्र देशों के राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य संग्रामों का नेता बन गया, क्योंकि स्वतन्त्र देश में उनके आर्थिक हितों का फायदा होता और विदेशी शासक जाति के आर्थिक विशेषाधिकार से मुक्ति मिलती। यहां उदारवादी या वैधानिक शासन के लिए भी आंदोलन होते रहे। अतः औद्योगिक क्रान्ति के बाद योरप में राष्ट्रीय और उदार-वादी आन्दोलन का जोर बढ़ गया। १८३० में बेल्जियम स्वतन्त्र हो गया। १८६७ तक इटैली एक और स्वतन्त्र हो गया। १८७१ तक जर्मनी एक स्वतन्त्र शक्ति बन गया। अतः १९वीं सदी में योरप में जो राष्ट्रीयता का आंदोलन चलता रहा, और सफल रहा, उसका एक प्रमुख कारण था, मध्यमवर्ग का जोर और आत्मविश्वास।

राष्ट्रीय-और प्रजा-तांत्रिक आंदोलन

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आठवां अध्याय
योरप में राष्ट्रीयता का उदय

राष्ट्रीयता के उदय के कारण :—उन्नीसवीं सदी राष्ट्रीयता का युग कहा जाता है। फ्रांस की राज्यक्रान्ति में 'स्वतन्त्रता, समता और बन्धुत्व' का नारा अपनाया गया था। स्वेच्छाचारी शासन के प्रति खुली क्रान्ति का निमन्त्रण दिया गया था। इन क्रान्तिकारी आदर्शों से अपने स्वार्थों की रक्षा के लिए योरप के स्वेच्छाचारी शासकों ने युद्ध की शरण ली। पर तब भी योरप में इन आदर्शों का प्रचार रुक नहीं सका।

फ्रांस की क्रान्ति और नेपोलियन

नेपोलियन की विजयी सेना ने योरप में फ्रांस की क्रान्तिकारी सामाजिक व्यवस्था का प्रचार किया, और शासित जातियों में अपने विदेशी शासकों के विरुद्ध स्वतन्त्रता की भावना को जागृत किया। नेपोलियन आगे चलकर स्वयं योरप का स्वेच्छाचारी शासक बन बैठा था, और योरप जातियों पर अपने स्वार्थ और फ्रांस के गौरव के लिए अत्याचार करने लगा था। पर यदि नेपोलियन ने शुरू में पोप के साम्राज्य में राष्ट्रीय आत्मसम्मान और स्वतन्त्रता की भावना का बीज बोया, तो नेपोलियन के ही अन्तिम दिनों के स्वेच्छाचारी शासन ने इस बीज को प्रस्फुटित करने का अवसर दिया। नेपोलियन के विरुद्ध जर्मनी, इटैली और स्पेन में जो आन्दोलन उठ खड़े हुये वे सभी राष्ट्रीय भावना से प्रेरित थे। नेपोलियन ने सम्राटों के विरुद्ध जिस शक्ति को जागृत किया था, वही शक्ति अब नेपोलियन के पतन का कारण बन गयी। पर नेपोलियन तो एक साधन था। फ्रांस की राज्यक्रान्ति के आदर्श फ्रांस तक ही सीमित नहीं रह सकते थे। यह ठीक ही कहा गया है कि किसी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेना का बढ़ाव रोका जा सकता है पर विचारों का प्रवाह को रोकना असम्भव है। पर क्रान्ति के दिनों के युद्ध और नेपोलियन की लड़ाइयों के कारण उपरोक्त आदर्श योरप में शीघ्र और तीव्रगति से फैल गये। जिस शक्ति ने नेपोलियन के पतन में काफी बड़ा भाग लिया, उसी शक्ति को कुचलने की चेष्टा योरप के विजयी राष्ट्रों ने मेटरनिक् के नेतृत्व में की। इटैली और जर्मनी को कई हिस्सों में बाँट दिया गया। बेल्जियम को हौलैण्ड के साथ मिला दिया गया। आष्ट्रिया का साम्राज्य पुनः प्रतिष्ठित किया गया। राष्ट्रीय और प्रजातान्त्रिक या उदारवादी विचार क्रान्ति के अग्रदूत समझे गये, और जहाँ भी ऐसे आन्दोलनों के निशान मिले वहाँ ही उन्हें कुचल दिये जाने के लिए योरोपीय राष्ट्रों ने एक संगठन भी बनाया (Concert of Europe), जिसकी मदद से ऐसे आन्दोलनों को कुचल दिया जा सकता था। पर योरप का यह संगठन और मेटरनिक् की चौकसी के बावजूद राष्ट्रीय आन्दोलन का जोर बढ़ता गया और यूनान, इटैली, जर्मनी, बाल्कनस्थित राष्ट्र उन्नीसवीं सदी के अन्त तक स्वतन्त्र राष्ट्र हो गये। इन शोषित देशों में राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य संग्राम और प्रजातान्त्रिक शासन के लिए आन्दोलन साथ-२ चलते थे। यह स्वाभाविक भी था क्योंकि राष्ट्रीय आन्दोलन का नेता मध्यमवर्ग (Bourgeoise) था जो प्रजातान्त्रिक शासन की स्थापना के द्वारा राज पर अपना अधिकार स्थापित करना चाहता था। पर कहीं-२ राष्ट्रीयता और प्रजातान्त्रिक भावनाएँ एक दूसरे की विरोधी थी, जैसे जर्मनी में।

वियेना की सन्धि और प्रतिक्रिया

(क) उन्नीसवीं सदी में योरप के प्रतिक्रियावादी संगठन (Concert of Europe) को स्पेन के दक्षिण अमेरिका स्थित उपनिवेशों का स्वातन्त्र्य संग्राम का सामना करना पड़ा। स्पेन में स्वेच्छाचारी राजतन्त्र की पुनर्स्थापना के विरुद्ध उदारवादी दल ने विद्रोह किया था। इस विद्रोह की आग स्पेन के अमेरिकन उपनिवेशों में फैल गई। यद्यपि स्पेन के विद्रोह को फ्रांस की सेना की मदद से दबा दिया गया, पर स्पेन के अमेरिकन

स्पेन के अमेरिकन उपनिवेशों की स्वतंत्रता

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपनिवेश स्वतन्त्र हो गये। योरप का राज्य-गुट यहां असफल रहा। संयुक्त-राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति मुनरों ने यह घोषणा की कि योरप के राष्ट्रों के द्वारा अमेरिका-महादेश में हस्तक्षेप संयुक्त-राज्य नहीं सहन करेगा। संयुक्त-राज्य ने उपनिवेशों की स्वतन्त्रता मान ली। इंगलैंड भी स्पेन की मदद करने को तैयार नहीं था। इंगलैंड में जनता को अपना विधान बनाने का अधिकार और वैधानिक विकास क्रान्ति के द्वारा ही प्राप्त हो चुका था। अब स्वयं इंगलैंड के लिये इस सिद्धान्त के विरुद्ध कदम उठाना न्याय-संगत नहीं था। स्पेन अपने उपनिवेशों से व्यापार पर एकाधिपत्य रखता था, जिससे इंगलैंड का वाणिज्यवर्ग असन्तुष्ट था। स्वतन्त्र उपनिवेशों से इंगलैंड व्यापार करने में स्वतन्त्र रहेगा, इस अभिप्राय से प्रेरित होकर इंगलैंड ने उपनिवेशों को नैतिक मदद दिया और उनकी स्वतन्त्रता को मान लिया। अतः कमजोर स्पेन को दबना पड़ा, और स्पेन के अमेरिकन उपनिवेश स्वतन्त्र हो गये (१८२४)। प्रतिक्रियावादी संगठन पर यह एक सफल आघात था। राष्ट्रीयता की विजय का यह उदाहरण है।

तुर्की साम्राज्य की कमजोरी

(ख) तुर्क साम्राज्य के अन्तर्गत बाल्कन्-प्रदेश था। यूनान भी तुर्की सुलतान के अधीन था। पर तुर्की साम्राज्य कमजोर हो गया था। आस्ट्रिया और रूस ऐसे शक्तिशाली राष्ट्र तुर्की साम्राज्य, विशेषकर तुर्की साम्राज्य के योरोपिय प्रदेशों, पर नजर लगाये बैठे थे। इन दोनों के पारस्परिक स्वार्थान्ध विरोधी नीति के कारण समस्या जटिल हो गई। कमजोर तुर्की साम्राज्य का विस्तृत साम्राज्य किसके कब्जे में जायगा—रूस या आस्ट्रिया के। इस समस्या में इंगलैंड की भी गहरी दिलचस्पी थी। उसे भारत का मार्ग का ख्याल सबसे पहले रहता था। कमजोर तुर्की सुलतान की जगह पर सबल रूस का कुस्तुन्तिनिया पर अधिकार इंगलैंड के लिए खतरा से खाली नहीं था। इसलिए इंगलैंड 'बीमार तुर्क' को किसी तरह जीवित रखना चाहता था। नेपोलियन के

महान् राष्ट्रों का स्वार्थ

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय से ही फ्रांस को मिस्र और सीरिया में दिलचस्पी हो गई थी, और इसलिए तुर्क-साम्राज्य सम्बन्धी समस्याओं से वह उदासीन नहीं रह सकता था। अतः इंगलैंड, फ्रांस, रूस और आस्ट्रिया तुर्की साम्राज्य की कमजोरी से उत्पन्न समस्याओं में बेतरह उलझे रहे, जिससे कि बाल्कन्-प्रदेश का राजनैतिक विकास कष्टप्रद रहा। तुर्की सल्तनत के कुशासन से समस्या और भी विकट हो गई। संस्कृति, धर्म, भाषा सभी क्षेत्रों में शासक और शासितों में आसमान जमीन का फर्क था। तुर्क अफसरों के उदण्ड व्यवहार से जनता परेशान थी। उन्हें अपने प्राचीन वैभव और गौरव की याद भी आने लगी थी। राष्ट्रीय भावना का जोर बढ़ने लगा। योरप के महान् राष्ट्रों के विरोधी हितों से भी इन राष्ट्रीय आंदोलनों को मदद मिली। योरप के उदारवादी और राष्ट्रीय आन्दोलनों को कुचलने में मेटरनिक-संचालित योरोपीय राज्य-संगठन ने कुछ हद तक एकता दिखायी थी, पर तुर्की-साम्राज्य के विरुद्ध राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य संग्रामों को दबाने की नीति पर योरप के महान् राष्ट्र उस हद तक भी एक नहीं थे। अतः तुर्की-साम्राज्य के विरुद्ध बाल्कन्-राष्ट्रों ने स्वातन्त्र्य संग्राम शुरू कर दिया, और योरप के महान् राष्ट्र इन आंदोलनों के पक्ष या विपक्ष में खड़े हो गये, और अन्त में राष्ट्रीयता की ही विजय हुई।

बाल्कन् में राष्ट्रीयता

यूनान ने स्वातन्त्र्य संग्राम छेड़ा। यूनान का प्राचीन गौरव यूनानियों को दासता के विरुद्ध प्रेरित करता रहा। फ्रांस के कुछ क्रान्तिकारी यूनान में आकर एक क्रान्तिकारी संस्था स्थापित कर चुके थे, और यूनानियों को तुर्की साम्राज्य से स्वतन्त्र होने का मन्त्र दिया था। यूनान में १८२१ में जन-आंदोलन शुरू हो गया। यूनान के इस संग्राम से और तुर्की सल्तनत के अत्याचारी प्रतिरोध से सारा योरप प्रभावित हो गया। विद्वानों और भावुकों ने इसमें प्राचीन एथेन्स का पुनरोत्थान देखा। प्रगतिशील शक्तियों ने इस स्वातन्त्र्य संग्राम का स्वागत किया। योरप की जनता में यूनान के प्रति सच्ची सहानुभूति उमड़ पड़ी।

यूनान की स्वतंत्रता

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेटरनिक् घबड़ा गया, पर वह कुछ कर नहीं सका। जनआंदोलन से प्रभावित हो इंगलैंड, फ्रांस और रूस के जंगी-बेड़ा ने तुर्की-मिस्री युद्धपोतों को नेवेरिनों की लड़ाई (Batile of Navariono) में नष्ट कर दिया (१८२७)। अन्त में १८२९ में तुर्की सुल्तान ने यूनान की स्वतन्त्रता मान लिया, और सर्विया को भी स्वशासन का अधिकार दे दिया। नया यूनान एक बहुत ही छोटा स्वतन्त्र देश था, पर तब भी इसके स्वातन्त्र्य-संग्राम की सफलता महत्वपूर्ण है। मेटरनिक् के विरोध के बावजूद राष्ट्रीय और प्रगतिशील आंदोलन सफल हो सकते हैं, इसका यह एक प्रेरणात्मक दृष्टान्त था।

(ग) बेल्जियम की स्वतंत्रता (१८३०)।

फ्रांस में अठारहवां लूई राजा बनाया गया था, बोर्बन वंश की पुनः स्थापना हुई थी। पर फ्रांस क्रान्ति का केन्द्र था। यहां उदारवादी दल राजा को वैधानिक राजा देखना चाहता था, पर प्रतिक्रियावादी दल स्वेच्छाचारी राजतन्त्र और सुदृढ़ चर्च की पुनर्स्थापना चाहता था। लूई तो किसी प्रकार बीच का रास्ता निकाल कर चलता रहा पर प्रतिक्रियावादी दल ने फ्रांस के नये राजा दशवां चार्ल्स में अपने अभिष्ट की सिद्धि देखी। चार्ल्स का शासन निरंकुश था और उसने व्यवस्थापिका सभा को अन्यायपूर्ण तरीकों से अपने वश में कर लिया। मध्यमवर्ग-पूंजीपति और व्यापारी वर्ग-वैधानिक शासन चाहते थे, जिससे कि राज्य पर उनका प्रत्यक्ष प्रभाव रहे। चार्ल्स अन्त में व्यवस्थापिका सभा से लड़ पड़ा, और १८३० की जूलाई में पेरिस में क्रान्ति हुई, लूई फिलिप राजा बना, और फ्रांस में उदार वादी शासन की स्थापना हुई। मध्यमवर्ग का राज पर प्रभुत्व हो गया।

फ्रांस की इस क्रान्ति का प्रभाव पूरे योरप पर पड़ा। बेल्जियम की स्वतन्त्रता का संग्राम भी इस क्रान्ति से प्रभावित था।

फ्रांस की ३० की क्रांति और बेल्जियम

१८१५ की वियेना की सन्धि के अनुसार बेल्जियम हौलेण्ड से मिला दिया गया था। शायद फ्रांस के पड़ोस में एक मजबूत देश रहे यही अभिप्राय था। हौलेण्ड ने नेपोलियन के विरुद्ध

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काफी मदद दिया था, यह शायद इसी का इनाम था। पर यह निर्णय राष्ट्रीयता के घोर विरुद्ध में किया गया था। वेल्जियम निवासी की भाषा भिन्न थी, और डचों से इनका पुराना अनवन था। डच सरकार ने डच भाषा, कानून, और डच अफसर इन पर लादना शुरु किया। वेल्जियनों की जागृत राष्ट्रीयता इसे कब तक सहन करती। फ्रांस की सफल राज्य-क्रान्ति (१८३०) से इसे प्रोत्साहन मिला। वेल्जियम में राष्ट्रीय संग्राम छिड़ गया। राष्ट्रीय-रक्षा-दल की स्थापना हुई, अप्रिय मन्त्रियों पर आक्रमण होने लगा, और अक्टूबर १८३० में स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी गई। इंगलैंड ने इसका समर्थन किया। लूई फिलिप इसका विरोध कैसे करता, जबकि उसकी शक्ति स्वयं ही क्रान्ति पर आधारित थी। इंगलैंड और फ्रांस की सामरिक मदद के बाद वेल्जियम से डचों को निकल भागने के सिवा कोई अन्य चारा नहीं था। वेल्जियम अब स्वतन्त्र राज था, और यहां वैधानिक राजतन्त्र स्थापित हुआ। राष्ट्रीयता की यह दूसरी शानदार विजय थी।

(घ) स्वतन्त्र और संयुक्त इटैली-राष्ट्र की स्थापना

इटैली रोमन साम्राज्य के पतन के बाद ही कई राज्यों में बँटा रहा। मध्ययुग के उत्तरार्द्ध में इटैली में अपने प्राचीन गौरव और साहित्य के प्रति पुनर्जागृति हुई, जिसका परिणाम था योरप में पुनर्जागरण और बौद्धिक विकास। महाकवि दान्ते और प्रसिद्ध विद्वान् मैकियावेलि ने संयुक्त इटैली का आदर्श सामने रक्खा। पर इटैली में राजनैतिक एकता नहीं स्थापित हुई, और आस्ट्रिया, फ्रांस और स्पेन के राजवंश अपने सगे-सम्बन्धियों को इटैली के भिन्न-२ राज्यों पर स्थापित करने की नीति का अनुसरण कर रहे थे। इटैलियन परतन्त्र थे, और मजबूत पड़ोसियों के अत्याचार से पीड़ित। रोम का पोप भी प्रतिगामी शक्तियों का समर्थक और जन-जागृति का विरोधी था।

पर फ्रांस की राज्यक्रान्ति ने पुरानी व्यवस्था को झकझोर दिया।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'स्वतन्त्रता और समता' के नारे से शोषित इटैलियन अत्यन्त प्रभावित हुये। नेपोलियन ने उन्हें आस्ट्रिया की गुलामी के विरुद्ध विद्रोह करने का आवाहन किया। इटैलियनों ने नेपोलियन को स्वतन्त्रता का दूत समझा। इटैली में राष्ट्रीय चेतना का आगमन हुआ। नेपोलियन ने इटैली को स्वतन्त्रता नहीं दिया, पर यहाँ स्वतन्त्रता की भावना को भड़काया। नेपोलियन ने पूरे इटैली में एक राजशासन और एक तरह का प्रगतिशील कानून को लागू किया। इसने इटैली के दर्जनों स्वतन्त्र राज्यों की जगह पर तीन या चार राज्य स्थापित किया। इन सबका परिणाम यह हुआ कि इटैली में राष्ट्रीयता और एकता की भावना मजबूत हो गई। संयुक्त इटैली-राष्ट्र के निर्माण में नेपोलियन का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष भाग है।

फ्रांस की राज्यक्रांति और नेपोलियन

पर नेपोलियन के पतन के बाद प्रतिक्रियावादी विजयी राष्ट्रों ने ऐसी नीति अपनाई मानों फ्रांस की क्रान्ति और नेपोलियन नाम की कोई चीज कभी थी ही नहीं। वियेना की काँग्रेस के निर्णय के अनुसार इटैली को छोटे-२ टुकड़ों में (१५) बाँट दिया गया। उत्तर इटैली आस्ट्रिया के राज्य में मिला दिया गया। लोम्बार्डी और वेनिस तो आस्ट्रिया के अंग बन गये, और मध्य इटैली के कई छोटे राज्यों पर आस्ट्रिया के हैब्सबर्ग राजवंश के प्रतिनिधियों का राज्य स्थापित हो गया। इन राज्यों में बिल्कुल निरंकुश शासन था। यहाँ जनता का सहयोग प्राप्त करने की न इच्छा थी और न नीति। इटैली सचमुच एक भौगोलिक तथ्य सा ही बच गया था, इसकी राजनैतिक स्थिति को एकदम जान बूझकर मिटा दिया गया था। राष्ट्रीय भावना की इतनी स्पष्ट और नंगी अवहेलना का कोई दूसरा दृष्टान्त नहीं मिलता है। आस्ट्रिया का इटैली पर वास्तविक अधिकार की स्थापना ही इस निर्णय का एक महत्वपूर्ण परिणाम था।

वियेना की संधि और इटैली

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आस्ट्रिया के साम्राज्य के अन्तर्गत जर्मन और इटैलियन प्रभृति जातियाँ थीं, इसलिए राष्ट्रीयता का आन्दोलन आस्ट्रिया के साम्राज्य के लिए घातक था। और उदारवादी व वैधानिक-शासन के लिए इन आन्दोलनों का परिणाम यही होता क्योंकि प्रजा-तान्त्रिक शासन में राष्ट्रीयता को प्रोत्साहन मिलता। इसलिए आस्ट्रिया की यह नीति थी कि साम्राज्य में इन प्रगतिशील आन्दोलन को कतई प्रश्रय नहीं दिया जाय, और जहाँ कहीं भी इनका आभास मिले दमन-चक्र चलाया जाय। आस्ट्रिया का प्रधान मंत्री मेटर-निक् यह भी जानता था कि योरप के किसी भाग में यदि राष्ट्रीय और उदारवादी राजनैतिक आन्दोलन सफल हुये तब इसकी प्रतिक्रिया आस्ट्रिया की प्रजा पर पड़ेगी और ऐसे आन्दोलन यहाँ भी उठ खड़े होंगे और आस्ट्रिया का साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो जायगा। इसलिए मेटरनिक् ने सभी महान् राष्ट्रों को 'क्रान्ति का भूत' का भय दिखला कर Concert of Europe तरह की एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का निर्माण किया, जिसका काम था योरप में जहाँ भी जनआंदोलन हों उसे बरबस दबा देना। अतः आस्ट्रिया के साम्राज्य और योरप में मेटरनिक् ने जनआन्दोलन को दबाये रखने की नीति का संचालन किया।

आस्ट्रिया की दमन-नीति

इटैली में पुलिस-राज्य कायम था। वैयक्तिक स्वतन्त्रता का पूर्णतः अभाव था। बड़े-२ पद आस्ट्रिया-निवासी के लिए सुरक्षित थे, और साधारण जनता को अविश्वास की दृष्टि से देखा जाता था। ऊपर से समूचे इटैली में प्रतिक्रियावाद का बोलवाला था, पर अन्दर ही अन्दर राष्ट्रीयता की आग जल रही थी। पढ़े-लिखे और व्यवसायी इटैलियन इस अन्यायपूर्ण स्थिति से असन्तुष्ट थे, और उन्हें इटैली के प्राचीन गौरव की याद थी। अतः इटैली में गुप्त समितियाँ स्थापित हुईं, जैसे कारबोनारि, जिनमें नवयुवकों ने प्रमुख भाग लिया था, और वे आस्ट्रिया के स्वेच्छाचारी शासन के विरुद्ध गुप्त साजिश कर रहे थे। नेप्लस् और पिडमौन्ट में विद्रोह हुये (१८२०-२१)

कारबोनारि

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और राजशासन में जनता को सक्रिय भाग मिले ऐसी मांग की गई। पर आस्ट्रिया की मदद और योरप के संगठन (Concert of Europe) की अनुमति से इन आन्दोलनों को कुचल दिया गया और दमन की नीति और भी कट्टरतापूर्वक बरती गई। पर असन्तोष की लहर अन्दर-अन्दर फैलती रही। दमन की नीति से जनआंदोलन को दबा भले दिया जाय पर उसे हमेशा के लिए खत्म नहीं किया जा सकता है। असन्तोष और उदारवादी विचार उपयुक्त समय पर फिर अपना सर उठाते हैं। इटैली में फ्रांस की १८३० की सफल राज्यक्रान्ति से प्रभावित हो फिर जनआंदोलन शुरू हो गये। मध्य इटैली स्थित पोप के अधीन राज्यों में और हैब्सबर्ग राजाओं के इलाके में विद्रोह हुआ। इनको कुचलने में यहाँ के शाशक स्वयं अयोग्य थे, पर फिर आस्ट्रिया की सेना ने प्रतिक्रियावादी या और स्थिर-स्वार्थों की मदद की, और जनआंदोलनों को पाशविक बल से दबा दिया।

पर इन सफलताओं से भी यह स्पष्ट था कि इटैली में राष्ट्रीय और प्रगतिशील भावनाएँ नष्ट नहीं हुई थीं, यद्यपि इनकी सफलता में सबसे बड़ा रोड़ा आस्ट्रिया था। मैजिनी से अपने लेखों के द्वारा इटैली में राष्ट्रीय भावना को जागृत और दृढ़ रक्खा। अपने ओजस्वी लेखों के कारण उसे देश-निकाला की सजा हुई। पर मैजिनी ने अपना लक्ष्य नहीं छोड़ा। उसने 'नवयुवक इटैली' (Young Italy) नामक एक शक्तिशाली दल का संगठन किया। इस दल के सदस्य स्वतन्त्र और अखण्ड इटैली के आदर्श के मतवाले थे, और सर्वसाधारण में इस आदर्श का प्रचार करने के लिए सबकुछ त्याग करने को तैयार थे। मैजिनी राजतन्त्र का विरोधी था। अखण्ड और गणतन्त्र इटैली उसका लक्ष्य था। यह ठीक है कि इटैली का स्वातन्त्र्य-संग्राम मैजिनी के बताये लक्ष्य पर नहीं पहुँचा, पर इटैली का स्वातन्त्र्य-संग्राम पर मैजिनी का गहरा प्रभाव है। उसने स्वतन्त्र और अखण्ड इटैली का अपना स्वप्न को सर्वसाधारण का स्वप्न बना दिया, और इटैली की जनता

मैजिनी और नवयवक इटैली

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में मनोवैज्ञानिक परिवर्तन ला दिया। हतोत्साह और निष्क्रीय इटैलियनों में इसने अखण्ड और स्वतन्त्र इटैली के लिए उत्साह पैदा कर दिया, और यह मधुर स्वप्न यथार्थ हो सकता है, ऐसा विश्वास इनके दिल में मैजिनी लेखों के द्वारा हो गया। मैजिनी सचमुच में स्वतन्त्र इटैली का अध्यात्मिक पिता है।

मैजिनी के ओजस्वी लेख और 'नवयुवक इटैली' के उत्साहपूर्ण प्रचार के कारण इटैली का राष्ट्रीय आन्दोलन अब चन्द विद्वानों, देशभक्तों और मध्यमवर्ग का भार नहीं वरन् जनसाधारण का प्राण बन गया। इसी समय रोम का नया पोप नवां पायस (Pious IX) प्रजावत्सल शासक था और धर्मपरायण इटैलियन इसे अखण्ड-इटैली के आन्दोलन का नेता समझने लगे। सार्डिनिया का राजा चार्ल्स अलबर्ट ने भी अपने राज्य में प्रजातान्त्रिक विधान लागू किया (१८४८)।

अतः इटैली की जनता में आशा और उत्साह की लहर दौड़ रही थी। इसी समय फ्रांस में १८४८ की क्रान्ति हुई। फ्रांस में राज्यतन्त्र को अन्त कर एक गणतन्त्र स्थापित हुआ। नेपोलियन तृतीय राष्ट्रपति हुआ, और व्यवस्थापिका सभा के अधिकार बढ़ाये गये। फ्रांस की क्रांति का प्रभाव सारे योरप पर पड़ा। मेटरनिक् ने कहा था कि जब फ्रांस को जुकाम होता है तब सारा योरप छींकने लगता है। जर्मनी और इटैली में भी क्रान्तियाँ हुईं। मेटरनिक् स्वयं इस तूफान का शिकार हो गया और वियेना छोड़ कर लन्दन भाग गया (१८४८)। मैजिनी इटैली लौट आया था, और इसके उग्र विचार के भय के कारण पोप उदारवादी से जबरदस्त प्रतिक्रियावादी बन गया था, क्योंकि मैजिनी के विचार पोप के विचार में अधार्मिक थे, अराजकता उत्पन्न करनेवाले थे। मैजिनी ने पोप का शासन का अन्त कर दिया और उसके साम्राज्य में गणतन्त्र घोषित कर दिया। लोम्बार्डी और वेनिस में उग्र राष्ट्रवादी आंदोलन शुरू हो गये। सार्डिनीया का राजा

१८४८-९ की क्रान्ति

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आस्ट्रिया के विरुद्ध इस मुक्ति-संग्राम की मदद के लिए चल पड़ा। पर अन्त में फिर प्रतिक्रियावादियों का पलरा भारी रहा। आस्ट्रिया ने प्रगतिशील आन्दोलनों को दबा दिया और उसकी सेना ने सार्डिनिया की सेना को हरा दिया। आस्ट्रिया का राज्य फिर उत्तर इटैली पर स्थापित हो गया। रोम का गणतन्त्र का अन्त हो गया। पोप की शक्ति फिर स्थापित हो गई, और अब वह अखण्ड इटैली के आंदोलन का पक्का विरोधी बन गया।

अतः १८४८–४९ की क्रान्ति भी असफल हो गई और १८५० तक प्रतिक्रियावाद का प्रभुत्व मध्य योरप पर फिर स्थापित हो गया। पर इटैली की इस असफलता से नेताओं ने कुछ सीख भी लिया। अब यह प्रत्यक्ष था कि मैजिनी के आदर्शवादी उग्र राजनैतिक सिद्धान्त के आधार पर इटैली की एकता और स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त की जा सकती थी। यह भी अब साँफ था कि सार्डिनिया का प्रगतिशील राजतन्त्र ही इस आन्दोलन का नेतृत्व करने में समर्थ था। यह भी अब स्पष्ट हो गया कि आस्ट्रिया ही स्वतन्त्र और अखण्ड इटैली की स्थापना में सबसे बड़ा रोड़ा था, और बिना किसी शक्तिशाली विदेशी राज्य की मदद के आस्ट्रिया को इटैली से निकाल भगाना दुश्कर था। सार्डिनिया को भी राजनैतिक और सामरिक दृष्टिकोण से अधिक मजबूत बनाना आवश्यक था।

क्रान्ति की असफलता और इसके परिणाम

सार्डिनिया का राजा विक्टर इमान्नुएल द्वितीय और उसका प्रधान मंत्री कैवूर (Cavour) ने स्थिति को ठीक समझा। कैवूर ने सार्डिनिया में उत्तरदायी शासन स्थापित किया, सार्डिनिया की आर्थिक स्थिति सुधारा और सेना को मजबूत किया, अब वह विदेशी सहायता के लिए इच्छुक था। क्रीमिया की लड़ाई शुरू हुई थी। इस युद्ध में इंगलैंड और फ्रांस एक तरफ थे, और रूस दूसरी ओर। कैवूर ने इटैली को इस युद्ध में घसीट लिया। इससे इटैली की समस्या को वह योरोपीय समस्या का रूप दे सका, और

कैवूर

क्रीमिया की लड़ाई

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आस्ट्रिया का कुशासन का भंडा फोड़ सका। उसे इंगलैंड और फ्रांस की सहानुभूति प्राप्त हुई। फ्रांस का सम्राट् नेपोलियन तृतीय अपने देश में जनप्रिय होना चाहता था। वह महत्वाकांक्षी भी था। वह प्रगतिशील आन्दोलनों का समर्थक कहलाना चाहता था, पर अपनी स्वार्थ-सिद्धि भी चाहता था। कैवूर भी नेपोलियन को मदद पाने के लिए सिद्धान्त व न्याय का त्याग करने के लिए तैयार था। कैवूर कहा करता था कि जो कुछ उसने अपने देश के लिए किया यदि वह अपने लिए करता तो वह कितना बुरा आदमी बन जाता। प्लोम्बए (Plombiris) में (१८५८ जूलाई) नेपोलियन सार्डिनिया को आस्ट्रिया के विरुद्ध मदद देने के लिए तैयार हुआ, और कैवूर ने नीस और सवाय फ्रांस को समर्पण करना मान लिया। आस्ट्रिया और इटैली में युद्ध छिड़ गया और फ्रांसीसी सेना की मदद से आस्ट्रिया की सेना को लोम्बार्डी से खदेड़ दिया गया (१८५९)। आस्ट्रिया की हार से इटैली के अन्य राज्य प्रोत्साहित हुये, और मध्य इटैली के हैब्सवर्ग वंश के राजाओं को निकाल भगाया गया, पोप के राज्य के कुछ भाग पर से पोप का भी शासन उठ गया, और उत्तर-मध्य इटैली के राज्य सार्डिनिया में मिल जाने को व्यग्र हो गये, और कैवूर ने इन्हें मिला लिया। इटैली की राष्ट्रीयता की इतनी अधिक सफलता का अन्दाज नेपोलियन ने नहीं लगाया था। अखण्ड और स्वतन्त्र इटैली फ्रांस के पड़ोस में एक शक्तिशाली राष्ट्र हो जाता। नेपोलियन स्वयं ही इस समय प्रशा की ओर से खतरे में था। अतः वह अब सन्धि चाहता था। उसने आस्ट्रिया के साथ सन्धि कर ली जिसके अनुसार लोम्बार्डी सार्डिनिया के, और वेनिस आस्ट्रिया के साथ मिला रहा। नेपोलियन ने इटैली की राष्ट्रीय एकता के आन्दोलन को धोखा दिया। पर करना क्या था। सार्डिनिया को यह सन्धि माननी पड़ी। कैवूर ने अपने पद से इस्तीफा दे दिया। पर कैवूर ने अपनी कूटनीति के द्वारा इटैली की राजनैतिक एकता

नेपोलियन तृतीय

आस्ट्रिया से लड़ाई

नेपोलियन का विश्वासघात

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत हद तक स्थापित कर लिया था। सार्डिनिया राज्य में इटैली मिल गया, पर सार्डिनिया ने इटैली का ही हित अपने सामने रक्खा।

पर इटैली की एकता नेपोलियन तृतीय के आसरे ही नहीं रुकी रही। जिस समय उत्तर इटैली में एकता का आन्दोलन जोर पकड़ रहा था, गैरीबाल्डी नामक एक महान् देशभक्त और वीर दक्षिण इटैली में सिसली के जनआन्दोलन व क्रान्ति की सहायता के लिए १००० लाल कुर्त्तेवाले स्वयं सैनिकों की सेना लेकर चल पड़ा। इतिहास में गैरीबाल्डी का यह दुस्साहस एक अत्यन्त उत्साहवर्द्धक घटना है। कैवूर ने भी गुप्त रूप से गैरीबाल्डी को प्रोत्साहित किया, यद्यपि सीसली का राज्य सार्डिनिया से मैत्री-सम्बन्ध रखता था। सिसली के क्रान्तिकारियों ने गैरीबाल्डी का स्वागत किया, और गैरीबाल्डी सिसली प्रायद्वीपों का एकमात्र स्वामि बन गया। नेपुल्स पर भी इसका अधिकार हो गया (१८६०)। गैरीबाल्डी चाहता तो वह इन राज्यों का सर्वेसर्वा बन सकता था। वह मैजिनी का अनुयायी था, और गणतन्त्र (Republic) में विश्वास करता था। पर गैरीबाल्डी ने स्पृहनीय त्याग दिखाया। देश का हित उसके लिए सबसे प्रधान था। उसने यह समझ लिया कि इटैली की एकता और उन्नति वैधानिक राजतन्त्र में ही इस समय सम्भव थी। इसलिए गैरीबाल्डी ने सीसली और नेपुल्स को सार्डिनिया के राज्य में मिला देना मञ्जूर किया और यह महापुरुष स्वयं अपना काम खत्म समझ इतिहास के रंगमंच पर से हट गया।

गैरीबाल्डी

अब वेनिस और रोम स्वतन्त्र-इटैली से अलग थे। आस्ट्रिया और प्रशा के युद्ध में प्रशा को इटैली की सहानुभूति और कमसे कम उदासीनता (Neutrality) की जरूरत पड़ी, और इसके बदले में वेनिस को अपने राज्य में मिला लेने का मौका सार्डिनिया को मिल गया। प्रशा और फ्रांस की लड़ाई में फ्रांस की पराजय के कारण फ्रांसीसी सेना रोम से हट गयी, और रोम का राज्य १८७० में सार्डिनिया में मिला लिया गया।

आस्ट्रिया-प्रशा युद्ध

फ्रांस-प्रशा युद्ध

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

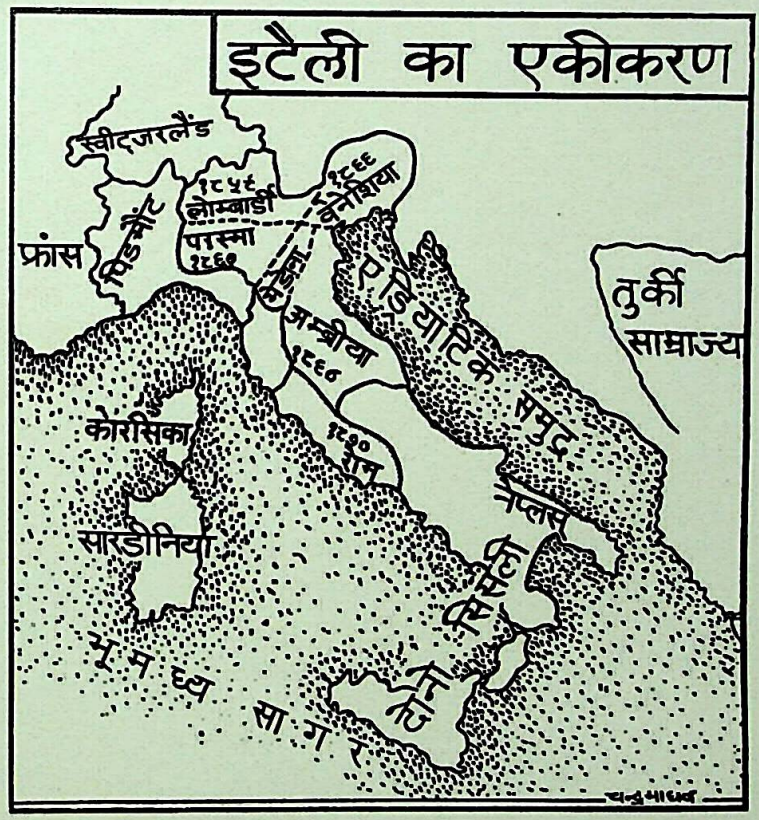

(Facing Page 272)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः १८७० तक इटैली की एकता, नीस और सेवोय छोड़कर, पूर्ण हो गई। इटैली की एकता और स्वतन्त्रता सार्डिनिया के वैधानिक राज्यतन्त्र के प्रश्रय में सफल हुई। इटैली की एकता और स्वातन्त्र्य संग्राम की सफलता का कुछ श्रेय क्रान्तिकारी भावनाओं का दूत महान् नेपोलियन को है। मैजिनी के ओतप्रोत ओजस्वी लेखों ने इटैली की एकता की भावना को जनसाधारण के हृदय में बैठा दिया था। विक्टर इमान्नुएल द्वितीय, कैवूर की कूटनीति और गैरबाल्डी की तलवार ने इस भावना को मूर्तरूप दिया, और स्वतन्त्र और अखण्ड इटैली सम्भव हो सका। १९वीं सदी में राष्ट्रीय भावना की यह एक महान् विजय है।

(ङ) जर्मनी का एकीकरण

जर्मनी छोटे-२ राज्यों में बँटा था। इनमें परस्पर बराबर युद्ध होते थे। जर्मनी में ही धर्मसुधार आन्दोलन शुरू हुआ था, और धार्मिक युद्ध भी यहाँ होते रहे। जर्मनी के सैकड़ों राज्यों में प्रशा भी एक था। जर्मनी पर आस्ट्रिया का महत्वपूर्ण प्रभुत्व था। नेपोलियन के साथ ही जर्मनी में क्रान्तिकारी आदर्शों का प्रवेश हुआ। नेपोलियन के अधीन जर्मनी के कई राज्यों का एक उत्तर-जर्मन संघ बना, जहाँ प्रगतिशील न्यायशासन और सामाजिक व्यवस्था लागू हुये। जर्मनी के छोटे-२ राज्यों की संख्या में कमी हुई। ३०० से अधिक राज्यों की जगह पर १५ राज्य बच गये थे। नेपोलियन के स्वेच्छाचारी शासन के विरुद्ध जर्मनी में राष्ट्रीय भावना दृढ़ हो गई। हेगेल प्रभृति विद्वानों ने जर्मनी की महत्ता का प्रचार किया। प्रशा का राजा विद्या का पोषक था। अतः जेना की लड़ाई में प्रशा की जो मिट्टीपलीद हुई थी उसकी प्रतिक्रिया थी उग्रविरोधी भावना की उत्पत्ति। लिप्जिग् की लड़ाई में प्रशा के नेतृत्व में जो जर्मन सेना नेपोलियन के विरुद्ध खड़ी थी वह राष्ट्रीय भावना और नवोत्साह से प्रेरित थी। उसका रूप ही बदल गया था। राष्ट्रों के इस युद्ध में नेपोलियन की हार निश्चित

नेपोलियन और जर्मनी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। इस विजय के उपरान्त पूरे जर्मनी में उत्साह छा गया और भविष्य के प्रति आशा हुई।

पर वियेना कांग्रेस के नेताओं ने इस 'नयी जर्मनी' को नहीं समझा और न समझना चाहा। इनका एक ही ध्येय था कि जर्मनी छिन्न-भिन्न रहे और यहाँ उदार और राष्ट्रीय विचार प्रवेश न पा सकें। आस्ट्रिया का प्रभाव जर्मनी पर बढ़ गया। जर्मनी का नया संघ (Diet) का सभापति आस्ट्रिया था, और आस्ट्रिया का हित था जर्मनी को विभाजित और अप्रगतिशील रखना। जर्मनी के छोटे-२ राज्यों के राजा प्रशा से जलते थे। आस्ट्रिया के नेतृत्व में जर्मनी में क्रूर और प्रतिक्रियावादी शासन स्थापित हुआ। पर जर्मनी में राष्ट्रीय एकता और प्रजातान्त्रिक शासन की आकांक्षा मिटी नहीं थी। क्रान्तियुग और नेपोलियन के समय के युद्धों से जो उदार विचार जागृत हुये थे उनका नाश नहीं हुआ था। यहाँ का मध्यमवर्ग भी राजशासन पर अधिकार चाहता था। देशभक्त एकता और स्वतन्त्रता के लिए व्यग्र थे। विश्वविद्यालय इस राष्ट्रीय और प्रजातान्त्रिक जागृति के केन्द्र थे। नवयुवक-विद्यार्थी गुप्त संगठन के द्वारा इन प्रगतिशील या क्रान्तिकारी विचारों का प्रचार कर रहे थे। मेटरनिक् की जबरदस्त चौकीदारी के बावजूद असन्तोष की लहर और विद्रोही भावना तीव्र होती गई। १८१७ में कहीं-२ जन-आन्दोलन प्रत्यक्ष हो गया और जीर्ण राजव्यवस्था के प्रति विरोध प्रदर्शित किया गया और कुछ प्रतिक्रियावादियों की हत्या भी हुई। मेटरनिक् ने इसे खतरे की घंटी समझा और वह घोर दमन पर उतर आया। उसके नेतृत्व में कार्ल्सवाद के निर्देश (Carlsbad Decrees 1819) निकाले गये जिनके अनुसार जर्मनी में वैयक्तिक स्वतन्त्रता का पूरा अपसरण हुआ—न भाषण की स्वतन्त्रता थी, न लिखने की। विश्वविद्यालयों के अध्यापक और विद्यार्थियों पर कड़ी निगाह रखी गई। प्रेस पर प्रतिबन्ध लगाया गया।

वियेना की संधि और जर्मनी

आस्ट्रिया का प्रभाव

कार्ल्सवाद के निर्देश

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर असन्तोष और विद्रोह की आग भीतर ही भीतर जलती रही। दमन की नीति बहुत हद तक सफल रही, और १८४८ तक कोई वृहत् विस्फोट् नहीं हुआ।

जर्मनी में औद्योगिक क्रान्ति शुरू हो गई थी। पर जर्मनी के तैयार माल की तुलना में इंगलैंड के माल ही जर्मनी में सस्ते दर पर मिल जाते थे। समृद्ध और अत्यन्त विकसित वृटिश उद्योगों से जर्मनी के उद्योगपति व व्यापारी सफल प्रतिद्वन्द्विता नहीं कर सकते थे। जर्मनी सैकड़ों छोटे-बड़े राज्यों में बँटा था, और प्रत्येक राज्य निर्यात और आयात कर लगाता था। इसलिए जर्मन व्यापारियों को व्यापार करने में कठिनाई होती थी, और पूरा मुनाफा नहीं होता था और चीजों का दाम बढ़ जाता था। इस कारण जर्मनी के उद्योग उन्नति नहीं कर रहे थे। अतः जर्मनी के उद्योगपति और व्यापारी पूरे जर्मनी में मुक्त व्यापार चाहते थे और इसलिए कम से कम आर्थिक क्षेत्र में एकता चाहते थे। प्रशा ने जौल्वेरिन (Zollverein) नामक एक व्यापारिक संगठन स्थापित किया, जिसके सदस्य-राज्यों में आपस में मुक्त-व्यापार होने लगा। इससे उद्योग का विकास हुआ, व्यापार बढ़ा और धन की वृद्धि हुई। इस सीमित एकता का इतना अच्छा फल मिला कि पूर्ण राष्ट्रीय एकता स्थापित करने के आंदोलन को इससे बहुत बल मिला। जर्मनी में औद्योगिक क्रान्ति का परिणाम था जर्मनी का एकीकरण। प्रशा ने आर्थिक एकता का नेतृत्व किया था। प्रशा ही राजनीतिक एकता का नेता भी हो सकता था, ऐसा सोचना स्वाभाविक था।

औद्योगिक क्रान्ति का प्रभाव

जौलवेरिन Zoll-verein

अतः मेटरनिक् की दमन-नीति के बावजूद जर्मनी में प्रजातन्त्र और राष्ट्रीय एकता की भावनाओं का प्रसार हो रहा था। मध्यमवर्ग इसमें अपना हित देखता था—व्यापार और उद्योग की उन्नति निश्चय थी। विश्वविद्यालयों के अध्यापक और विद्यार्थी देशभक्ति और प्रजातान्त्रिक भावनाओं से बराबर उत्प्रेरित थे। व्यापार और यातायात विशेष-कर रेलगाड़ी के विस्तार से देश एक हो रहा था। प्रशा ऐसे सबल

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्य के द्वारा समर्थन की भी आशा थी। प्रशा का मजदूर वर्ग अपनी बुरी हालत को सुधारने के लिए किसी भी प्रगतिशील आंदोलन का समर्थन करने के लिए तैयार था। इसलिए जब १८४८ फरवरी में फ्रांस में क्रान्ति हुई तो उसका प्रभाव असंतुष्ट जर्मनी पर पड़ा। जर्मनी के प्रायः सभी राज्यों में जन-आंदोलन हो गया, और स्वतन्त्र प्रेस, वैधानिक राजशासन और जर्मनी एक हो ऐसी मांगें रक्खी गईं। कमजोर राजाओं को झुकना पड़ा। कुछ ने गद्दी छोड़ दिया, कहीं नये संविधान की घोषणा हुई। कहीं-कहीं राज्यतन्त्र ही उठा दिया गया। प्रशा में भी आंदोलन ने उग्र रूप धारण किया और राजा को उदार मन्त्री-मंडल बनाना पड़ा, और जर्मनी का एकीकरण के लिए प्रतिज्ञा करनी पड़ी। फ्रैंकफोर्ट में ३१ मार्च को जर्मन राज्यों के प्रतिनिधियों की एक राष्ट्रीय सभा बैठी, जिसका लक्ष्य था एक संयुक्त जर्मन-राज्य का विधान बनाना। इस सभा में विश्वविद्यालयों के अध्यापकों और दार्शनिकों का बड़ा प्रभाव था। राज्य के मूल सिद्धान्तों पर ही खूब वादविवाद होने लगा, और किसी फैसला पर आना नामुमकिन हो गया। तब इस संविधान सभा ने अपनी असफलता मान ली, और प्रशा के राजा फ्रेडेरिक् विलियम् को संयुक्त जर्मनी का वैधानिक सम्राट् बनने का निमन्त्रण दिया और वैयक्तिक स्वतन्त्रता, प्रेस की स्वतन्त्रता और उत्तरदायी मंत्रीमंडल के सिद्धान्तों की घोषणा की। पर इस राष्ट्रीय सभा में घोर मतभेद का परिणाम यह हुआ कि जनआंदोलन के द्वारा प्रजातान्त्रिक संयुक्त जर्मनी का आदर्श कमजोर पड़ गया, और १८५० ई० तक आस्ट्रिया की पुनः-स्थापित प्रतिक्रियावादी राजशासन की मदद से जर्मनी में फिर पुरानी राजव्यवस्था कायम हो गई। १८४८ की क्रान्ति अपने लक्ष्य पर पहुँचने में असफल रही। आस्ट्रिया का प्रभुत्व पहले सा ही फिर स्थापित हो गया। उत्तर जर्मन-संघ आस्ट्रिया के संरक्षण में ही रहा, और प्रशा इस संघ पर अपना अधिकार जमाने की चेष्टा में विफल रहा।

४८ की क्रान्ति

फ्रैंकफोर्ट की राष्ट्रीय सभा की असफलता

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर इस असफल क्रान्ति के कुछ महत्वपूर्ण परिणाम हुए। यह स्पष्ट हो गया कि जन-आंदोलन के आधार पर जर्मनी का एकीकरण सन्निकट नहीं था। आस्ट्रिया को बिना पराजित किए जर्मनी एक नहीं हो सकता था, और प्रशा छोड़कर कोई दूसरा राज्य आस्ट्रिया का सामना नहीं कर सकता था, यह भी साफ था प्रशा राज्य के नेतृत्व में ही जर्मनी का एकीकरण सम्भव था।

प्रशा का नेतृत्व और बिस्मार्क

प्रशा का प्रधान मन्त्री बिस्मार्क ने वस्तुस्थिति को ठीक-ठीक समझा। वह जमींदार कुल का था, और उदारवादी या प्रजातान्त्रिक विचारों का घोर विरोधी था। जन आंदोलन या विधान पर उसकी जरा भी आस्था नहीं थी। उसका कहना था कि आज के बड़े-बड़े प्रश्नों का हल पार्लियामेन्ट में बहस-मुहाविसा के द्वारा नहीं होता है, वरन् उनका हल सामरिक शक्ति और युद्ध के आधार पर ही किया जा सकता है। (Great Questions of the day are not decided in the debates of the Parliament, but by 'Blood and Iron'.)। उसने प्रशा की सैन्य शक्ति को अत्यधिक मजबूत बनाना अपना प्रथम कर्तव्य समझा। मोल्टके और रूम (Moltke, Room) ने इस क्षेत्र में अभूतपूर्व सुधार किया। प्रशा का राजा फ्रेड्रिक् विलियम् प्रथम इन्हें पूरा सहयोग दे रहा था। उसका एक गुण यह था कि वह बराबर योग्य पुरुषों को उत्तरदायित्व के पद पर नियुक्त करता था। बिस्मार्क ने सेना की उन्नति के लिए और अधिक खर्च करना निश्चय किया। प्रशा की व्यवस्थापिका सभा ने इसका विरोध किया, और बजट को नहीं पास किया। इस विरोध का फायदा उठाकर बिस्मार्क ने राजा को विधान सभा की अवहेलना करने की सलाह दी। अब बिना पार्लियामेन्ट और बजट के बिस्मार्क शासन करने लगा।

बिस्मार्क को अब अपनी नीति पर चलने की पूरी आजादी थी। बिस्मार्क जर्मन राष्ट्रीयता का समर्थक था। उसका यह विश्वास था कि

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्तिशाली प्रशा के राजतन्त्र के नेतृत्व में ही जर्मनी का एकीकरण सम्भव था, और इसलिए आस्ट्रिया का प्रभाव जर्मनी से हटाना आवश्यक था। बिस्मार्क ने यह समझ लिया कि आस्ट्रिया से युद्ध होगा, और इसलिए प्रशा को अन्य राष्ट्रों से मैत्री संबंध रखना होगा। विस्मार्क पक्का कूटनीतिज्ञ था। पोलेन्ड के विद्रोह को दबाने में रूस के प्रति इसने सहानुभूति दिखाई और इस प्रकार रूस की कृतज्ञता प्राप्त कर लिया। इंगलैंड राष्ट्रीय विचारों का तो समर्थक था ही। फ्रांस के सम्राट् नेपोलियन तृतीय को भी बिस्मार्क ने चालाकी से मिला लिया। नेपोलियन अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाना चाहता था, और बिस्मार्क के वादाओं को मान कर प्रशा के प्रति सहानुभूति की नीति बरतना उसने मञ्जूर कर लिया। वेनिस का लोभ देकर इटैली की मदद पाना आसान था। इस प्रकार बिस्मार्क ने अन्तर्राष्ट्रीय नेत्र में आस्ट्रिया को एकदम अकेला कर दिया। अब वह आस्ट्रिया से लड़ने के लिए कोई अच्छा बहाना ढूंढ़ने लगा। डेनमार्क के जर्मन प्रदेशों के शासन के प्रबन्ध के प्रश्न पर आस्ट्रिया और प्रशा में अन्त में झगड़ा हो गया और इनमें युद्ध शुरू हो गया। प्रशा की नवसंगठित सेना ने कुछ ही हफ्तों की लड़ाई में आस्ट्रिया को बुरी तरह पराजित किया। सेडोवा (१८६६) की लड़ाई में आस्ट्रिया हार गया। आस्ट्रिया का प्रभाव जर्मनी से उठ गया, और उत्तर जर्मन संघ (North German Confederation), जिस पर आस्ट्रिया का प्रभाव था, तोड़ दिया गया। जर्मनी पर प्रशा का नेतृत्व मान लिया गया। आस्ट्रिया के प्रति प्रशा ने उदार नीति दिखाई जिसका निकट में ही जर्मनी के लिए अच्छा परिणाम हुआ।

बिस्मार्क की कूटनीति

सेडोवा की लड़ाई

प्रशा के नेतृत्व में एक दूसरे उत्तर जर्मन संघ की स्थापना हुई। प्रशा इस संघ की कार्यकारिणी का स्थायी सभापति था और संघ की विदेशी नीति का संचालन प्रशा के अधिकार में था। सेना पर भी प्रशा ही का एकाधिपत्य था। प्रत्येक

आस्ट्रिया-प्रशा युद्ध के परिणाम

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

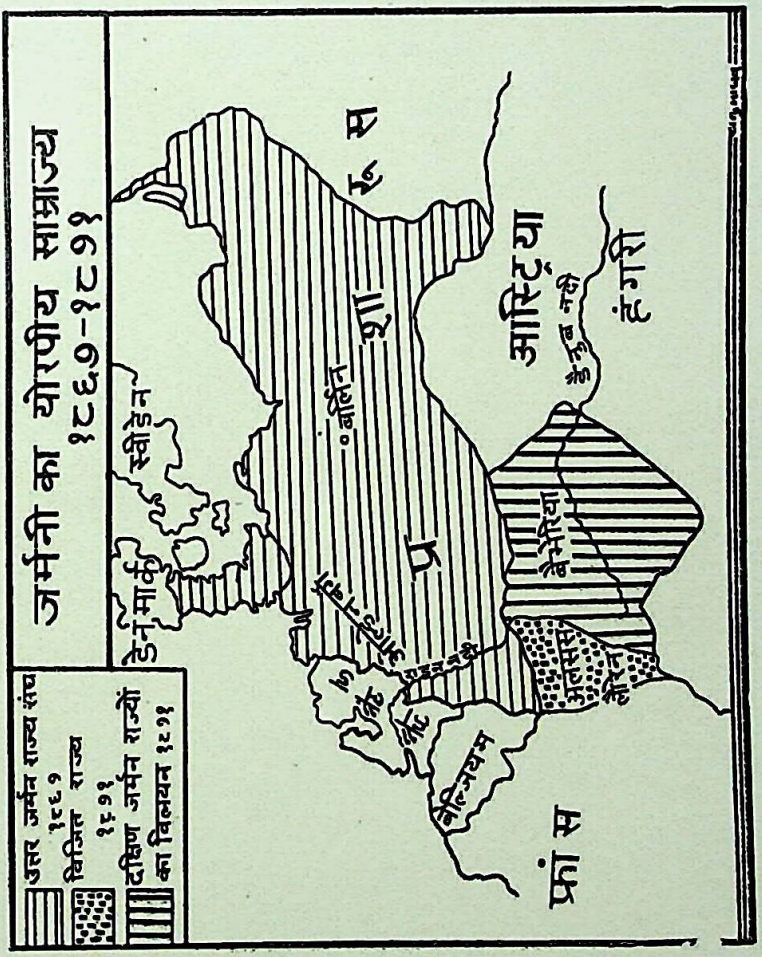

(Facing Page 278)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

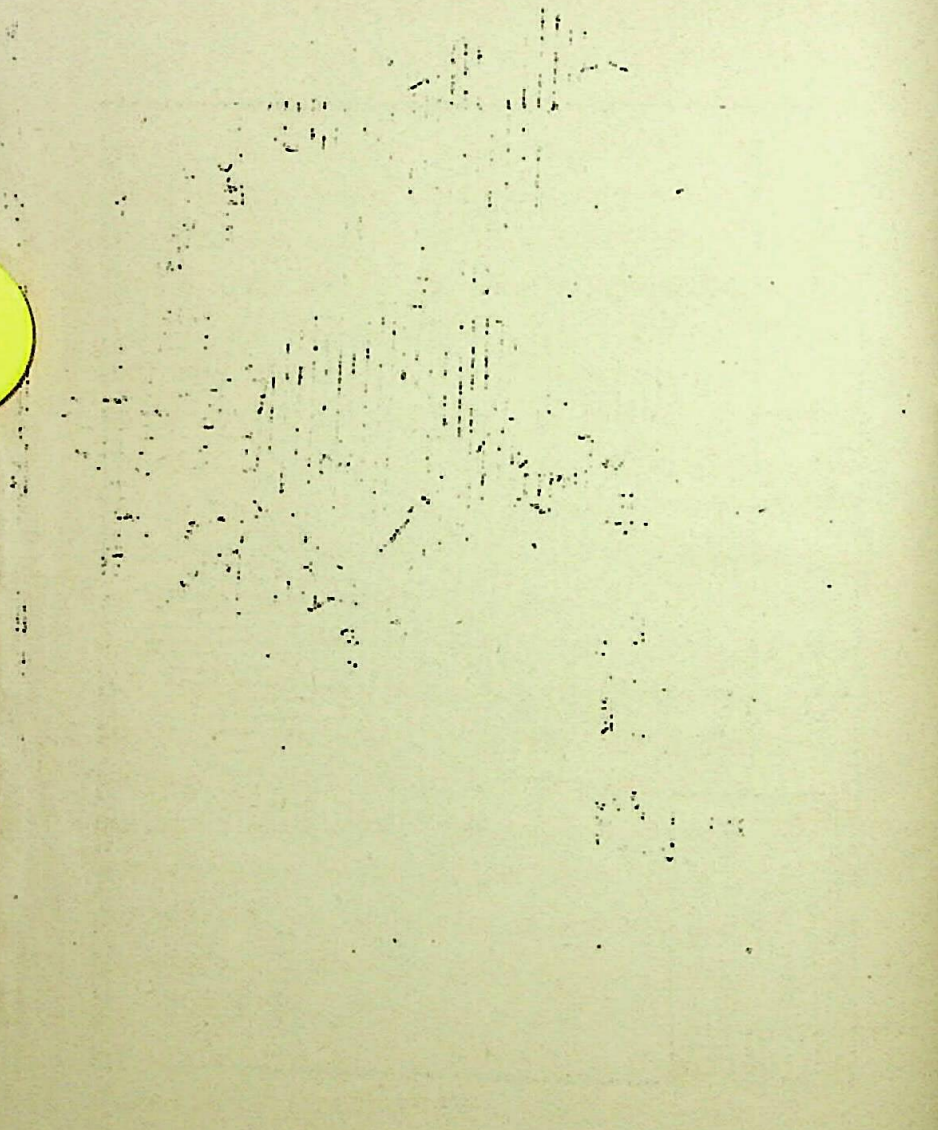

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदस्य को अपनी सेना का संगठन प्रशा का सैनिक संगठन के अनुसार करना पड़ता था। अतः राइन नदी के उत्तर स्थित सभी जर्मन राज्य अब प्रशा के प्रभाव-क्षेत्र में आ गये। प्रशा ने डेनमार्क के अधीन जो जर्मन प्रदेश थे उन्हें भी अपने राज्य में मिला लिया, और उसे अब कील नामक प्रसिद्ध बन्दरगाह मिल गया। हनोवर, फ्रैंकफोर्ट इत्यादि छोटे राज्य भी प्रशा में मिला लिये गये। अतः अब प्रशा राज्य पोलेण्ड और बाल्टिक सागर से लेकर फ्रांस की सीमा तक फैल गया। जर्मनी और जर्मनों का दो-तिहाई भाग प्रशा के अधीन थे।

अब जर्मनी के दक्षिण भाग में स्थित बैवेरिया प्रभृति जर्मन राज्य बचे थे, जो प्रशा से ईर्ष्या करते थे। बिस्मार्क ने इन्हें एकता के भले परिणाम के प्रति आकर्षित किया। उन्हें आर्थिकसंगठन (Zollverein) में सम्मिलित होने का निमन्त्रण दिया गया, और उनके साथ रक्षात्मक सन्धियां की गईं। इस प्रकार धीरे-२ और चतुराई से प्रशा-राज्य से बाहर के ये जर्मन राज्य भी प्रशा और जर्मनी की एकता की ओर बढ़े आ रहे थे।

इसी बीच फ्रांस और जर्मनी का सम्बन्ध कटुतर होता गया। प्रशा की बढ़ती शक्ति से फ्रांस घबड़ा गया। आस्ट्रिया ऐसे बड़े राज्य को प्रशा ने इतनी शीघ्रता से हरा दिया था कि योरप विशेष कर फ्रांस अचम्भे में आ गया। फ्रांस को प्रशा-आस्ट्रिया युद्ध से कोई फायदा नहीं हुआ, बल्कि उसे नुकसान ही हुआ।

फ्रांस-प्रशा युद्ध

योरप में प्रशा का उदय फ्रांस की प्रतिष्ठा के लिए बुरा था। फ्रांस अब बिस्मार्क से आस्ट्रिया-प्रशा युद्ध में मदद देने के बदले में राज्यविस्तार की मांग करने लगा। नेपोलियन के लिए प्रजा में अपनी प्रतिष्ठा के लिए कुछ प्राप्त करना जरूरी था। मैक्सिको में इसकी बड़ी सेना और काफी धन फंसा था, इसलिये प्रशा से वह युद्ध नहीं करना चाहता था। वह सन्धि के द्वारा ही अपना हित साधना चाहता था। वह बिस्मार्क से कभी पैलेटिनेट, कभी लक्जेमबर्ग और कभी बेल्जियम मांगने लगा। बिस्मार्क

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे बराबर टालता रहा, पर प्रासांगिक देशों को नेपोलियन की मांगों के विषय में बता दिया। इसलिए नेपोलियन योरप में अकेला रह गया। इंगलैण्ड, बैवेरिया इत्यादि सब नेपोलियन से विमुख हो गये। इटैली और आस्ट्रिया रंज थे ही। जर्मनी ने आस्ट्रिया को अपनी उदार नीति के कारण दोस्त बना लिया था। अतः अब नेपोलियन को योरप में कोई दोस्त नहीं था, और प्रशा के प्रति सहानुभूति की भावना चारों ओर थी। स्पेन के उत्तराधिकार के प्रश्न को बहाना बना कर बिस्मार्क ने फ्रांस को युद्ध घोषित करने को वाध्य किया। १८७० जुलाई में प्रशा-फ्रांस की लड़ाई शुरू हुई और फ्रांस सेडान के मैदान में बुरी तरह हार गया (सेप्टेम्बर १८७०), और नेपोलियन कैदी बन गया। पेरिस में नवनिर्मित गणतन्त्र की सरकार ने युद्ध जारी रक्खा, पर जनवरी १८७१ में पेरिस ने आत्म-समर्पण कर दिया। वर्साई के राजमहल में जर्मन साम्राज्य की घोषणा की गई, और प्रशा का राजा जर्मनी का सम्राट् बना। जर्मनी में फ्रांस के अधीनस्थ अलसस्-लोरेन प्रदेश मिला लिये गये। फ्रांस इस अपमान को कभी भी नहीं भूला और प्रथम विश्वयुद्ध का यह एक कारण हो गया। फ्रांस-प्रशायुद्ध का एक परिणाम यह हुआ कि जर्मनी का एकीकरण पूर्ण हो गया। दक्षिण जर्मन राज्य अब प्रशा के साम्राज्य में मिल गये। जर्मन साम्राज्य का संविधान संघीय था, इस संघ में प्रशा का प्रभुत्व निश्चित था। अब योरप में प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी सबसे शक्तिशाली राष्ट्र था। जर्मन अब एक संयुक्त राष्ट्र था। राष्ट्रीय भावना की यह एक महत्त्वपूर्ण विजय थी। १८७१-१८९० तक बिस्मार्क की नीति यही रही कि प्रशा के नेतृत्व में संगठित जर्मनी का आस्तित्व और प्रभुता निष्कंटक रहे। अब संयुक्त और शक्तिशाली जर्मनी योरप और विश्व की राजनीति में सक्रिय दिलचस्पी लेने लगा, जिसके परिणाम योरप और विश्व के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हुये।

सेडान की लड़ाई

जर्मनी का एकीकरण

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(च) बाल्कन् में राष्ट्रीय आंदोलन की प्रगति:—

बाल्कन् प्रदेश पर तुर्की सुलतान का अधिकार था। तुर्की शासन के विरुद्ध इस प्रदेश में बसनेवाली योरोपीय जातियों ने स्वातन्त्र्य संग्राम शुरू कर दिया। रूस आस्ट्रिया, इंगलैंड और फ्रांस के विरोधी स्वार्थों के कारण इन आंदोलनों की प्रगति में हेर-फेर होते रहे। १८२९ में ग्रीस स्वतन्त्र हो गया था। सर्बिया में १८०४ और १८१५ में तुर्की सल्तनत के विरुद्ध राष्ट्रीय आंदोलन हुआ, और १८३० में तुर्की सल्तनत को सर्बिया का स्वशासन का अधिकार मान लेना पड़ा। मोन्टेनेग्रो १७९९ में ही स्वतन्त्र हो गया था। तुर्की सुलतान ने १८२९ की संधि के अनुसार रूस के संरक्षण में मोल्डाविया और वालाचियन प्रदेश (जो मिल कर रुमानिया बन गये) के स्वशासन के अधिकार को बाजाप्ता तौर से मान लिया।

सर्बिया और यूनान की स्वतन्त्रता

रूस बाल्कन् स्थित परतन्त्र राष्ट्रों के सामने उनका मित्र होने का दावा कर रहा था, और साम्राज्य की कमजोरी और बाल्कन् प्रदेश के राष्ट्रीय आंदोलन से अपना साम्राज्यवादी हित सिद्ध करना चाहता था। ये छोटे-२ बाल्कन् राज्य शक्तिशाली रूस के प्रभाव-क्षेत्र में चले जायँगे इस आशंका से आस्ट्रिया परेशान था। आस्ट्रिया के इटैलियन और जर्मन प्रदेश हाथ से निकल गये थे, और अब बाल्कन् की ओर ही उसका राज्य विस्तार हो सकता था। इसलिए बाल्कन् के राष्ट्रीय आंदोलनों ने रूस और आस्ट्रिया को बेतरह उलझाये रक्खा, और इनके पारस्परिक सम्बन्ध और भी कटु और विरोधी हो गये। प्रथम विश्वयुद्ध का यह एक प्रमुख कारण बन गया। योरप के महान् राष्ट्रों की नीति तुर्की और बाल्कन् के राष्ट्रीय आंदोलनों के प्रति अपने २ स्वार्थ के कारण बदलती रही। रूस टर्की का दोस्त बन गया, और क्रीमिया की लड़ाई में रूस और टर्की एक ओर थे, इंगलैण्ड और फ्रांस और आस्ट्रिया दूसरी ओर। पेरिस की संधि (१८५६) के अनुसार मोल्डाविया और वालचिया को रूस के संरक्षण से हटाकर पूर्ण स्वतन्त्र कर दिया गया

रुमानिया का उदय

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और १८६२ में ये दोनों प्रदेश मिल कर नवीन रुमानिया राष्ट्र बन गये।

तुर्की शासन के बढ़ते कुशासन और राष्ट्रीय भावना की प्रगति के कारण बोस्निया, हर्जिगोवेनिया और बलगेरिया में १८७५-७६ में सार्वजनिक विद्रोह हो गया। तुर्की सल्तनत ने इन विद्रोहों को, विशेष कर बलगेरिया के विद्रोह को, दबाने में हद दर्जे की बर्बरता दिखाई, जिससे ईसाई राज्यों को बहुत सदमा पहुँचा; और रूस, इंगलैंड और फ्रांस में टर्की के विरुद्ध सार्वजनिक विरोध की भावना फैल गई। इंगलैंड के मशहूर नेता ग्लैडस्टन् ने टर्की को बोरिया-बस्ता के साथ योरप से निकाल देने की नीति अपनाने की राय दी। रूस ने टर्की पर आक्रमण कर दिया और तुर्की सुल्ता को एक अपमानजनक सन्धि (San Stephano) माननी पड़ी, विद्रोही राष्ट्रों की स्वतन्त्रता माननी पड़ी। इस सन्धि से रूस की शक्ति बढ़ गई। पर रूस की शक्ति की तरक्की से इंगलैंड और आस्ट्रिया घबड़ा गये। योरोपीय युद्ध की सम्भावना बढ़ गई। अन्त में बिस्मार्क के सभापतित्व में बर्लिन की सन्धि (१८७८) हुई जिसके अनुसार सर्विया, मोन्टेनिग्रो और रुमैनिया की पूर्ण स्वतन्त्रता मान ली गई। बोस्निया और हर्जिगोवेनिया आस्ट्रिया के संरक्षण में दे दिये गये। अपनी स्वार्थ-सिद्धि में योरप के महान् राष्ट्रों ने बाल्कन् राष्ट्रों के राष्ट्रीय महत्वाकांक्षा पर रोक लगा दिया।

बर्लिन की संधि और सर्विया, मोंटेनिग्रो और रुमनिया की स्वतंत्रता

पर राष्ट्रीय भावना को बहुत दिनों तक दबाना असम्भव था, और बर्लिन की सन्धि में हेर-फेर करना पड़ा। बलगेरिया ने अपने क्षेत्र में बलगरों के प्रदेश पूर्वी रुमालिया को अपने में मिला लिया (१८८५), और १९०२ में बलगेरिया ने अपनी पूर्ण स्वाधीनता घोषित कर दिया और सुलतान का प्रभुत्व उठा दिया। मेसिडोनिया से भी तुर्की राज्य उठ गया। अलबेनिया में स्वशासन की स्थापना हुई। इस तरह राष्ट्रीयता का आन्दोलन का परिणाम यह हुआ कि टर्की का योरोपीय साम्राज्य वस्तुतः खत्म हो गया (१९१३) और छोटे-

बलगेरिया की स्वतंत्रता

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटे राष्ट्र बाल्कन् में स्थापित हो गये। पर इन राष्ट्रों की महत्वाकांक्षा का अन्त नहीं हुआ था और एक दूसरे के प्रति इनकी कटुता बढ़ रही थी। सर्विया यह चाहता था कि बोस्निया, हर्जिगोवेनिया, मोन्टेनिग्रो इत्यादि सर्व (Serb) प्रदेशों को एक 'वृहत् सर्विया' में मिला लिया जाय। राष्ट्रीय भावना का यह स्वाभाविक तकाज़ा था। आस्ट्रिया ने १९०८ में बोस्निया हर्जिगोवेनिया को अपने राज्य में पूर्णतः मिला लिया था। अतः आस्ट्रिया-साम्राज्य सर्ब-राष्ट्रीयता का प्रमुख शत्रु माना जाने लगा। सर्विया बाल्कन में अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहता था इसलिए बलगेरिया से शत्रुता का भाव रखता था। बलगेरिया मेसिडोनिया पर आंखें लगाये था क्योंकि यहां उसी जाति के लोग काफी तायदाद में थे। बाल्कन् राष्ट्रों ने मिलकर टर्कों को मेसिडोनिया की स्वतन्त्रता मानने के लिये बाध्य किया था (१९१३), पर अब इनमें ही टर्की के योरोपीय साम्राज्य के बँटवारे के प्रश्न पर युद्ध हुआ। बलगेरिया द्वितीय बाल्कन् युद्ध में हार गया, और मेसिडोनिया का बँटवारा हो गया। राष्ट्रीय प्रतिद्वन्द्विता बाल्कन् में और तीव्र हो गई। आस्ट्रिया सर्विया की बढ़ती शक्ति और वृहत् सर्विया के आदर्श से भयभीत हो गया था। रूस भी बाल्कन्-राजनीति में अत्यन्त दिलचस्पी लेता था, और आस्ट्रिया का विरोधी था। अतः बाल्कन्-राष्ट्रों की अतृप्त आकांक्षा और महान् राष्ट्रों के स्वार्थ के कारण प्रथम विश्वयुद्ध का आरम्भ बाल्कन् में ही हुआ जब आष्ट्रिया का युवराज सेराजेभो में एक सर्ब के द्वारा मार डाला गया (१९१४)।

आस्ट्रिया राष्ट्रीयता का शत्रु

मेसिडोनिया की स्वतंत्रता

बाल्कन्-राष्ट्रों की प्रतिद्वंद्विता

राष्ट्रीय आंदोलन का यह एक भीषण परिणाम था। पर राष्ट्रीय भावना की अवहेलना करने से ही स्थिति बिगड़ी। प्रथम विश्वयुद्ध के समय में प्रेसिडेन्ट विल्सन् ने सभी राष्ट्रों को आत्मनिर्णय का अधिकार देने का आश्वासन दिया। युद्ध के खत्म होने के पहले ही आस्ट्रिया-हंगरी का बहुजातीय

प्रथम विश्व-युद्ध और राष्ट्रीयता की विजय

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। राष्ट्रीय सिद्धान्त के आधार पर पोलेण्ड आस्ट्रिया, हंगरी, चेकोस्लावेकिया युगोस्लाविया प्रभृति राष्ट्रों का निर्माण हुआ। वर्साइ की सन्धि (१९१९) में इस स्थिति को मान लिया गया।

अल्पसंख्यक जातियों का प्रश्न और द्वितीय विश्वयुद्ध (१९३९-४५)

योरप में राष्ट्रीय भावना अब वस्तुतः पूर्ण विजयी थी। पर तब भी कुछ ख़ामियां रह गई थीं। बहुत से जर्मन चेकोस्लावेकिया की राज्यसीमा में थे, और कुछ जर्मन प्रदेश पोलेण्ड की सीमा में थे। अतः अल्पसंख्यक जातियों का प्रश्न योरप को परेशान करता रहा। हिट्लर ने इस राष्ट्रीय असंतोष को बहुत उभाड़ा, और द्वितीय महायुद्ध के विस्फोट् में योरप की राष्ट्रीय भावना का कम प्रभाव नहीं था।

राष्ट्रीयता की भावना को सीमा-बद्ध रखना

सच पूछा जाय तो भौगोलिक और रक्तात्मक दृष्टिकोण से प्रत्येक राष्ट्र की सीमा में अन्य जातियों का रहना अवश्यम्भावी है। राष्ट्रीय भावना का अतिक्रमण शांति और एकता की जगह पर अशान्ति और अनैक्य ले आता है। राष्ट्रीय भावना को उचित सीमा में रखना, अल्पसंख्यक जातियों के प्रति सहानुभूति की नीति बरतना, और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान एक शक्तिशाली विश्वसनीय अन्तर्राष्ट्रीय संगठन में करना जरूरी है।

राष्ट्रीयता और प्रजा-तन्त्रवाद

राष्ट्रीय और प्रजातान्त्रिक आंदोलन का नेता मध्यमवर्ग था, जो राष्ट्र की एकता और प्रजातान्त्रिक शासन की स्थापना के द्वारा उद्योग और व्यापार की उन्नति चाहता था। १९वीं सदी के अधिकांश राष्ट्रीय-एकता के आन्दोलनों का लक्ष्य प्रजातान्त्रिक शासन की स्थापना ही था। राष्ट्रीय-प्रजातान्त्रिक शासन ही इस युग की प्रमुख विशेषता थी। बृटिश संविधान ही आदर्श था। फ्रांस में १८४९ और १८७१ के संविधानों के द्वारा उत्तरदायी पार्लियामेन्टरी प्रजातन्त्र की स्थापना की गई थी। संयुक्त इटैली का शासन भी पार्लियामेन्टरी ही था। जर्मनी में एकता की भावना प्रजातन्त्र की भावना से अधिक शक्तिशाली थी। इसलिए जर्मन साम्राज्य के संविधान

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में सबल राज्यतन्त्र ही को प्रधानता दी गई थी; विधान सभाओं का अधिकार सीमित था। बाल्कन् प्रदेश के नये राष्ट्रों में भी वैधानिक शासन की स्थापना की गई थी। प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद पार्लियामेन्टरी शासनपद्धति योरप के अत्यधिक भाग पर स्थापित हो गया। पर यदि योरप में राष्ट्रीयता की भावना प्रबल और स्थायी रही, पूर्वी और मध्ययोरप में पार्लियामेंन्टरी शासन या प्रजातान्त्रिक संविधान स्थायी न रहा, कारण यह था कि यहां वह परम्परा और वातावरण नहीं था जो इंगलैंड में था, और जब इंगलैंड में ही इस प्रकार का शासन सदियों में विकसित हुआ था, इसे बाल्कन्, जर्मनी, या इटैली में एकबार ही अपने विकसित रूप में स्थापित किया गया। इसलिए यहाँ प्रजातन्त्र सफल नहीं हुआ, यद्यपि राष्ट्रीयता एक महती शक्ति हो गई।

जिनदेशों में प्रजातान्त्रिक शासन नहीं भी स्थापित हुआ था वहाँ भी मध्यमवर्ग की आर्थिक शक्ति बहुत बढ़ गई थी। व्यापार और उद्योग की उन्नति करना प्रत्येक राष्ट्र की सरकार की देशभक्ति का चिह्न समझा जाता था। इसलिए नवनिर्मित राष्ट्रों ने इस ओर ध्यान दिया। व्यापार की उन्नति के लिए उपनिवेश स्थापित करना जरूरी हो गया क्योंकि अन्य महान् राष्ट्र अपने-२ उपनिवेश स्थापित कर चुके थे। राष्ट्र की प्रतिष्ठा और शक्ति का मापदंड था उसका साम्राज्य का विस्तार। अतः राष्ट्रीय आन्दोलन की सफलता के साथ-२ साम्राज्यवाद की लहर तेजी से फैल गई। नये साम्राज्यवादी राष्ट्र मैदान में आये।

साम्राज्यवाद

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवाँ अध्याय
नवीन साम्राज्यवाद और
प्रथम विश्वयुद्ध

१५वीं सदी से लेकर अठारहवीं सदी तक व्यापारी राष्ट्रों ने विश्व के भिन्न-भिन्न भागों में अपने-२ उपनिवेश स्थापित किया था। इंगलैंड उत्तरी अमेरिका और भारतवर्ष में, स्पेन दक्षिण अमेरिका में, पोर्तुगाल भारत और ब्राजिल में, हौलैंड पूर्वीय द्वीपसमूह में, फ्रांस भारत और अमेरिका में अपने उपनिवेश या व्यापार के केन्द्र स्थापित कर चुके थे। उपनिवेश-स्थापना का लक्ष्य था नये और वीरान प्रदेशों में अपनी राजनैतिक प्रभुता स्थापित करना और अपने स्वदेश के हित में इन उपनिवेशों का शोषण करना। उपनिवेशों के धन को लूटना, वहां के कच्चे माल पर एकाधिपत्य रखना, और मातृभूमि के तैयार माल का वहां पर खपत कराना ही इस नीति का उद्देश्य था। पर अमेरिका की स्वतन्त्रता, का मुक्त-व्यापार और आर्थिक क्षेत्र में पूर्ण स्वतन्त्रता के सिद्धान्तों (Laisser faire) का परिणाम यह हुआ कि उपनिवेशों की स्थापना जरूरी नहीं समझा जाने लगा, मुक्त-व्यापार और स्वच्छन्द प्रतिद्वन्द्विता में ही राष्ट्र के उद्योग और व्यापार का कल्याण माना जाने लगा। फिर १७८९ से १८७० तक योरप क्रान्ति और राष्ट्रीय आन्दोलनों में इतना अधिक व्यस्त रहा कि उपनिवेश-स्थापना के लिए न समय था और न प्रवृत्ति।

उपनिवेशों के प्रति उदासीनता (१७५०–१८५०)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में योरप का नक्शा राष्ट्रीय सिद्धान्त के आधार पर वस्तुतः तैयार हो चुका था, और अब योरप के महान् राष्ट्र फिर साम्राज्यवाद की ओर बढ़े-२ पग उठाने लगे। इस नवीन साम्राज्यवाद में उपनिवेशों का शोषण की नीति ने नया रूप लिया। इस साम्राज्यवाद का आधार पूँजीवाद था। वीरान देशों में उपनिवेशों की स्थापना और उपनिवेशोंसे सोना-चांदी खसोटना ही नवीन साम्राज्यवाद का ध्येय नहीं था। पर अपने उद्योगों को चालू रखने के लिए कच्चा माल, अपने तैयार माल के लिए बाजार, और पूँजीपतियों को उपनिवेशों में अपनी पूँजी लगाकर अत्यधिक मुनाफा कमाने का अवसर देने के लिए उपनिवेशों की स्थापना और अपना-अपना प्रभाव क्षेत्र का विस्तार करना इस साम्राज्यवाद के प्रमुख लक्षणथे व्यावसायिक साम्राज्यवाद की तरह पूँजीवादी साम्राज्यवाद का भी मुख्य लक्ष्य था उपनिवेशों का शोषण। पर शोषण यह नीति अत्यन्त धूर्त और संगठित थी।

नवीन साम्राज्यवाद का रूप

साम्राज्यवाद के प्रसार के कारण :

नवीन साम्राज्यवाद के विकास कई कारण थे, जिनमें सबसे मुख्य है औद्योगिक क्रान्ति। अब बहुत बड़ी संख्या में तैयार माल की बिक्री के लिए निश्चित बाजार की जरूरत पड़ी। मुक्त-व्यापार की नीति से इंगलैंड को फायदा था। इंगलैंड में यह क्रान्ति पहले-पहल शुरू हुई थी, और पूरे योरप के राजनैतिक उथल-पुथल ने इंगलैंड को योरप और विश्व के बाजार पर वस्तुतः एकाधिपत्य दे दिया था। जब १९वीं सदी के उत्तरार्द्ध मे योरप के राष्ट्रों में औद्योगिक क्रान्तिके परिणाम प्रत्यक्ष हुये तब इन देशोंके उद्योगपति और व्यापारीइंगलैण्ड की अतिविकसित यन्त्रकला और सर्वोत्तम तैयार माल से प्रतिद्वन्द्विता करने में अशक्य थे और इसलिए राष्ट्रीय उद्योगों को विशेष सुविधामिले ऐसा आंदोलन करने लगे। इस वर्ग का राष्ट्रीय-सरकार पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव था, और राष्ट्र के व्यापार और उद्योग को विदेशी उद्योगों से मुक्त प्रतिद्वन्द्विता से बचाने

औद्योगिक क्रान्ति

राष्ट्रीय उद्योग और व्यापार की मांग

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए विदेशी माल पर आयात कर लगाये जाने लगे और राष्ट्रीय सरकार और जनता इसे देशभक्ति का चिह्न समझने लगीं। अतः राष्ट्रीय अर्थनीति का प्रचार हो गया। राष्ट्रीय उद्योगों को प्रोत्साहन देना प्रत्येक सरकार और जनता अपना कर्त्तव्य समझने लगी। इसी सिद्धान्त का एक अगला कदम था प्रत्येक राष्ट्र को अपने उपनिवेश स्थापित करना। इन उपनिवेशों में 'मातृभूमि' का व्यापार सुरक्षित रखने की नीति बरती जाती थी, और अन्य देशों के व्यापार पर प्रतिबंध लगाये जाते थे। अतः राष्ट्रीय उद्योग और व्यापार को विदेशी प्रतिद्वन्द्विता से सुरक्षित रखने और उनका समुचित विकास करने के लिए साम्राज्यवादी नीति अपनाया जाने लगा।

औद्योगिक विकास के कारणअत्याधिक तैयार मालों को बेचने के लिए निश्चित बाजार और उद्योगों को चालू रखने के लिए कच्चे माल जैसे कोयला, रूई इत्यादि की जरूरत पड़ी। पर योरप के सभी राष्ट्र यही चाहते थे, और इसलिए प्रत्येक राष्ट्र दुनियां के भिन्न-भिन्न भागों पर अपना एकाधिपत्य चाहता था। बाजार और कच्चे माल के लिए होड़ का परिणाम था साम्राज्यवाद।

उपनिवेशों से व्यापार करना ही साम्राज्यवाद का प्रमुख लक्ष्य नहीं था। विशेषज्ञों ने यह दिखाया है कि जर्मनी का कनाडा और फ्रांस से व्यापार अपने उपनिवेशों से व्यापार से बहुत अधिक था; इंगलैंड का व्यापार कनाडा से अधिक अर्जेन्टिना से था। और राष्ट्रीय धन की वृद्धि भी उपनिवेशों से बहुत नहीं थी, क्योंकि उपनिवेशों की विजय करने में, उनकी रक्षा करने में, और उनका शासन-प्रबन्ध करने में ही राज का बहुत धन और जन का व्यय होता था। पूंजीपति वर्ग ने उपनिवेश-स्थापना या साम्राज्य प्रसार की नीति को राष्ट्रीय कर्त्तव्य का रूप दे दिया, और जन-साधारण से मिले राज्यकर की मदद से स्थापित इन उपनिवेशों से राष्ट्रीय हित से अधिक पूंजीपतियों ने अपना वैयक्तिक और वर्गहित साधा।

पूंजी लगाने की आवश्यकता

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण कुछ पूञ्जीपतियों के पास अत्याधिक पूंजी जमा हो गई थी; और इस पूञ्जी को पिछड़े देशों की खानों और खेतों में लगाकर ये लोग आशा से अधिक मुनाफा कमाने लगे, और प्रत्येक राज्य के लिए तब अपने देश के पूञ्जीपतियों के हितों की रक्षा के लिए कटिबद्ध रहना स्वाभाविक था। अतः पिछड़े देशों में पूंजी लगाकर मुनाफा कमाने वाले पूंजीपति साम्राज्य-वाद के अग्रदूत बने। मिश्र में बृटिश राज्य की दिलचस्पी अपने देश के पूंजीपतियों के स्वार्थ की सुरक्षा करने की इच्छा से ही शुरू हुई। जर्मन-पूंजीपति मैक्नस्मन के आर्थिक स्वार्थ के कारण ही जर्मन राज्य मोरक्को की ओर आकृष्ट हुआ था।

बढ़ती जनसंख्या

औद्योगिक क्रान्ति का एक परिणाम यह हुआ कि आबादी बढ़ गई। जर्मनी, फ्रांस और इटैली की आबादी बड़ी तेज रफ्तार से बढ़ रही थी। बढ़ती जनसंख्या के लिए प्रत्येक राष्ट्र उपनिवेशों की खोज करने लगे, क्योंकि मातृभूमि के अधीन इन नयी जगहों में देशान्तर-वास करनेवाले पूर्ववत् संस्कृति और वातावरण स्थापित कर आनन्द से रह सकते थे। पर यह बात ध्यान देने की है कि जलवायु और वस्तुस्थिति की भिन्नता के कारण योरोपीयन लोग हर जगह हमेशे के लिए नहीं रह सकते थे, और जर्मनी के देशान्तरवासी अपने उपनिवेशों से अधिक अमेरिका में वास करने लगे थे, और इंगलैंड से बहुत से अंगरेज संयुक्त-राज्य अमेरिका बराबर जा रहे थे। अतः जनसंख्या की वृद्धि के कारण उपनिवेश-स्थापना की आवश्यकता का प्रचार एक बहाना ही था।

यातायात में उन्नति

यातायात में अभूतपूर्व उन्नति हुई थी। रेल, जहाज और तार इत्यादि के कारण दूर-२ देशों पर प्रभाव स्थापित रखना उन्नत राष्ट्रों के लिए सहज सम्भाव्य था।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाजों के लिए विश्राम स्थल

व्यापार और समुद्रपार-उपनिवेशों की सुरक्षा के लिए जहाजों को जगह-जगह कोयला-पानी लेने के लिए बन्दरगाहों की जरूरत पड़ी, और ऐसे बन्दरगाहों पर प्रत्येक राष्ट्र को अपना सुरक्षित प्रभुत्व रखना आवश्यक हो गया। इंगलैंड ने डचों को युद्ध में परास्त कर १८१५ की वियेना की सन्धि के अनुसार Cape of Good Hope और Ceylon इसी विचार से प्राप्त किया था।

फ्रांस की राज्य क्रान्ति

फ्रांस की राज्यक्रान्ति ने भी साम्राज्यवाद के आंदोलन को बढ़ावा दिया। इस क्रान्ति के फलस्वरूप योरप में उग्र राष्ट्रीयता की भावना का प्रसार हुआ, और प्रत्येक पुराने राष्ट्र और नवनिर्मित राष्ट्रीय-राज्य में जैसे जर्मनी या, इटैली में, अद्भुत उत्साह और आत्मविश्वास छा गया। प्रत्येक राष्ट्र अपना गौरव बढ़ाना चाहता था। जनता भी राष्ट्रीय अभिमान की भावना से प्रेरित थी। उपनिवेश-स्थापना इस राष्ट्रीय भावना की व्यावहारिक अभिव्यक्ति मानी गई। पूँजीपतिवर्ग ने

राष्ट्रीय भावना

देश में इस भावना को बहुत उभाड़ा। इसलिए साम्राज्य-प्रसार देशभक्ति का लक्षण माना गया। राष्ट्र की प्रतिष्ठा और शक्ति का मापदण्ड था उसका साम्राज्य और व्यापार का प्रसार। इसलिए प्रत्येक राज्य साम्राज्यवादी नीति अपनाना अपना मुख्य कर्त्तव्य समझता था। यह दृढ़ विश्वास था कि उपनिवेशों के कारण देश मजबूत और धनी बनेगा, उद्योगों का विकास होगा, मजदूरों को रोजी मिलेगी, राष्ट्रीय सम्पत्ति की वृद्धि के कारण जीवन-स्तर उठेगा, राष्ट्र की जनता सुखी और उन्नत होगी, विद्या और विज्ञान की प्रगति होगी और आराम के साधन सुलभ होंगे। यह दूसरी बात है कि इन साम्राज्यवादी राष्ट्रों के बहुसंख्यक नागरिकों के लिए ये सब आशाएँ स्वप्न ही रह गयीं, पर पूञ्जीपतिवर्ग ने साम्राज्यवाद का जो रंगीन नक्शा का प्रचार किया उसके कारण जनता और राजशासन दोनों ही ने साम्राज्यवाद की नीति को बड़े हौसले से अपनाया।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ्रांस की क्रान्ति से सबसे अधिक फायदा मध्यमवर्ग ने उठाया था। योरप के अन्य भागों में जितने प्रजातान्त्रिक और राष्ट्रीय आंदोलन चल रहे थे इनमें भी इसी वर्ग का मुख्य हाथ था। प्रजातान्त्रिक संविधान के जरिये यह वर्ग राजशासन पर अपना अधिकार स्थापित कर लेता था। जहां पार्लियामेन्टरी शासन नहीं भी स्थापित हुआ वहां भी राष्ट्रीय एकता के आंदोलन का नेतृत्व करने वाला यह वर्ग राज पर बुद्धि और धन के जोर पर अपना प्रभाव स्थापित कर चुका था। इस वर्ग का स्वार्थ साम्राज्य-विस्तार में था। इसलिए राष्ट्रीय और प्रजातान्त्रिक राज्यों की स्थापना के बाद साम्राज्यवाद का प्रसार युक्तिसंगत था।

मध्यमवर्ग का राज्य पर अधिकार

साम्राज्यवाद के प्रसार में नैतिक विचारों ने भी प्रगति दी। योरप की आधुनिक यन्त्रचालित सभ्यता एशिया और अफ्रिका की सभ्यताओं से भिन्न थी। योरप के कुछ व्यक्ति सचमुच में इस उच्च भावना से प्रेरित थे कि उनकी सभ्यता अत्यन्त विकसित और अच्छी है, और दुनियां की अन्य जातियां असभ्य हैं। अतः योरप के श्वेतवर्णों का यह नैतिक कर्त्तव्य है कि वे दुनियां की अन्य जातियों को इस उच्च सभ्यता के अंचल में लावें। इससे असभ्य जातियों और पिछड़े हुये देशों का ही कल्याण होगा और योरोपीय राष्ट्रों की साम्राज्यवादी नीति के ही द्वारा दुनियां के कोने-२ में सभ्यता की किरणें पहुँच सकेगी यह दलील भी थोथी है। योरोपीय सभ्यता से भी कई दिशाओं में उच्च और समृद्ध सभ्यता भारत और चीन की थी। फिर साम्राज्यवाद के ही द्वारा आधुनिक योरोपीय सभ्यता एशिया और योरप पहुँच सकती थी, यह एक गलत धारणा है। इंगलैंड ने योरप पर विजय प्राप्त कर वहां औद्योगिक क्रान्ति से उत्पन्न यन्त्रकलात्मक सभ्यता (Technological Civilisation) नहीं स्थापित किया था। कालान्तर में आर्थिक और सांस्कृतिक सम्पर्क के बाद यह सभ्यता एशिया और योरप में स्वतन्त्र रूप से फैलती ही। पर यथार्थ में यह 'नैतिक आधार' एक

नैतिक आधार

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनैतिक कार्य पर पर्दा डालने का साधन बन गया। अपनी यन्त्रकला और विज्ञान से फायदा उठाकर योरोपीय राष्ट्रप्रभु पिछड़े देशों का शोषण करना चाहते थे।

इसाई-पादरी दुनियां को इसाई बनाना चाहते थे। कुछ भले इसाई पादरी और प्रचारक दुनियां का कल्याण इसाई धर्म में ही है ऐसा विश्वास करते थे। अतः एशिया के गैरक्रिस्तानों को इसाई बनाने के लिए वे अनजान देशों में चल पड़े। यहां इन्होंने दया, धर्म और ईमानदारी का पाठ पढ़ाया, स्कूल खोला और गरीबों को मदद भी दिया। पर कभी-२ ये धर्मान्ध हो जाते थे, और अनुदारता भी दिखाते थे। इससे असन्तोष और झगड़ा होने का डर था और इनके प्राण खतरे में हो जाते थे। अपने पादरियों और प्रचारकों की रक्षा करना प्रत्येक राष्ट्र अपना कर्त्तव्य समझने लगा, और इसलिए ऐसे देशों पर अपना अधिकार स्थापित करना धर्म समझा गया। अतः धर्म के झंडे के साथ-साथ साम्राज्यवाद का झंडा भी चला। यदि सच पूछा जाय तो धर्म-प्रचार भी एक बहाना ही था। जहां इसाई-पादरी धर्म, न्याय सदाचार और प्रभु ईसा का चरित्र का प्रचार कर रहे थे, वहीं साम्राज्यवादी देशों के राजकर्मचारी अत्याचार और अन्याय के बल पर शासन कर रहे थे। अतः यह धारणा गलत है कि साम्राज्यवाद के कारण इसाई धर्म फैला। पर साम्राज्यवाद को फैलाने का यह एक अच्छा बहाना था। दक्षिण-पश्चिम अफ्रिका में जर्मन उपनिवेशों की स्थापना का आरम्भ जर्मन मिशनरियों की रक्षा के निमित्त ही हुआ। दो जर्मन इसाई-प्रचारकों की हत्या के कारण ही जर्मनी ने चीन में किउ-चाउ पर अधिकार कर लिया।

इसाई धर्म का प्रचार

साम्राज्यप्रसार में कुछ उत्साही और दुस्साहसी यात्रियों ने भी हाथ बंटाया। उन्होंने नये-२ देशों का पता लगाया, और जिस देश का नागरिक कोई नया क्षेत्र का सबसे पहले पता लगाता था वहां वह अपने देश का झंडा गाड़ देता था, और वह

नये अन्वेशकऔर दुस्साहसी पुरुष

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रदेश उस राष्ट्र के साम्राज्य का अंग बन जाता था। अफ्रिका महादेश के विभिन्न भाग पर इसी प्रकार प्रकार बेल्जियम प्रभृति राष्ट्रों का आधिपत्य स्थापित हुआ।

उपरोक्त उद्देश्यों और कारणों से प्रेरित हो योरप के राष्ट्र संसार के भिन्न-भिन्न भागों में अपने-अपने उपनिवेश स्थापित करने लगे।

अफ्रिका महादेश की विस्तृत भूमि पर इनका ध्यान गया। यहां के गरीब और भोले हबशियों को दास बनाकर बेचना एक अच्छा व्यापार था।

अफ्रिका का बँटवारा

अफ्रिका के पश्चिमी-तट पर योरोपीय राष्ट्रों ने अपने-२ उपनिवेश स्थापित कर लिया। १८५० तक दासों का व्यापार निषिद्ध हो गया। तब अन्दर-अफ्रिका की खोज और इसाई धर्म का प्रचार के उत्साह के कारण अफ्रिका में उपनिवेश स्थापित हो गये। अलजिरिया पर फ्रांस का अधिकार १८३० में स्थापित हो गया और यह फ्रांस का एक प्रान्त बना लिया गया (१८४८)। बिस्मार्क भी फ्रांस की उपनिवेश-स्थापना की नीति को प्रोत्साहित करता था जिससे फ्रांस अलसेस्-लोरेन की हानि भूल जाय। फ्रांस की आंख उत्तर-अफ्रिका तटस्थित ट्यूनिसिया पर भी पड़ी और १८८१ में यह प्रदेश भी फ्रांस के अधीन हो गया। इटैली को बड़ी निराशा हुई क्योंकि ट्यूनिसिया पर उसकी नजर पहले थी। अब उत्तर-पश्चिम अफ्रिका की विस्तृत भूमि फ्रांस के अधीन हो गयी। मोरक्को भी फ्रांस के प्रभावक्षेत्र में आ गया था। मेडागास्कर प्रायद्वीप पर भी फ्रांस का अधिकार था (१८१२)। इटैली के हाथ लिबिया, इरीट्रिया और अबिसीनिया के पूर्व समुद्री-तटस्थित सोमालिलैण्ड लगे। अबिसीनिया पर अधिकार करने में इटैली असफल रहा और इटैली की सेना को अबिसीनिया की सेना से हार खानी पड़ी। जर्मनी ने भी दक्षिण-पश्चिम पूर्व और मध्य अफ्रिका के बड़े भाग पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। पोर्तुगाल ने भी पूर्व और पश्चिम तटस्थित उपनिवेशों को आधार बना कर अन्दर-अफ्रिका के कुछ भागों पर अपना प्रभाव फैला लिया। स्पेन का छोटा-सा उपनिवेश उत्तर-पश्चिम तटस्थित रीओ-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डेओरा था। योरप का छोटा-सा देश बेल्जियम अपने क्षेत्रफल से कई गुणा अधिक जमीन पर, मध्य अफ्रिका में कांगो नदी का इलाका पर, अधिकार स्थापित कर चुका था। इंगलैंड ने भी अफ्रिका में दिलचस्पी दिखाई। उत्तमाशा अन्तरीप स्थित केपकालोनी डचों से अंगरेजोंने ले लिया (१८१५)। फिर नेटाल पर भी अंगरेजों का अधिकार हो गया। डच किसानों ने अब ट्रान्सवाल और ओरेन्ज फ्री स्टेट नामक उपनिवेश, नेटाल के उत्तर-पश्चिम, स्थापित किया। पर सोने की खानों की लालच में अंगरेज इन उपनिवेशों में काफ़ी संख्या में पहुँच गये। अंगरेजों और डच किसानों (Boers) में युद्ध हुआ और अंगरेज विजयी हुये। दक्षिण अफ्रिका व दक्षिण-पूर्व अफ्रिका अंगरेजों के हाथ में आ गया। मध्य अफ्रिका की खोज स्काट् लिविंगस्टन और आंग्ल अमेरिकन स्टेन्ली ने किया था (१८५३–१९०२), और इंगलैंड का अधिकार मध्य अफ्रिका के अधिकांश भाग पर हो गया। सेसिल रौडस् नामक अंगरेज साम्राज्यवादी की यह महत्वाकांक्षा थी कि केपकालिनी से लेकर भूमध्यसागर तट तक लगातार बृटिश साम्राज्य स्थापित हो जाय। उसने अफ्रिका में बृटिश साम्राज्य का खूब विकास किया, और उसी के नाम पर आज रोडेशिया प्रदेश है जो अभी भी बृटिश साम्राज्य के अन्दर है। केनेया और उगन्डा बृटिश उपनिवेश हो गये। अफ्रिका के उत्तर-पूर्व तटस्थित मिश्र और उसके दक्षिण सूडान में इंगलैंड की दिलचस्पी बढ़ गई, फ्रांस नेपोलियन के समय से ही मिश्र की ओर आकृष्ट था। एक फ्रांसीसी इन्जिनीयर ने स्वेज नहर खोदने की योजना बनाई थी। पर मिश्र का खदीव (Khediva) आर्थिक संकट में था, और इंगलैंड का प्रधान मन्त्री डिजरैली ने स्वेज नहर-कम्पनी के अधिकांश शेयरों को खरीद लिया, और इस प्रकार स्वेज नहर पर इंगलैंड का अधिकार अब निश्चित हो गया। व्यापारिक और सामरिक दृष्टिकोण से स्वेज नहर पर प्रभुत्व रखना इंगलैंड के लिये अपने भारतीय साम्राज्य की सुरक्षा के लिये जरूरी था। इसलिए मिश्र को अपने प्रभाव-क्षेत्र में लाना इंगलैंड की नीति थी। इसका सुअवसर भी मिल

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया। मिश्र का सुल्तान (खदीव) दिवालिया हो चुका था, और इंगलैंड और फ्रांस का बड़ा कर्जदार बन गया था। मिश्र की हालत बिगड़ रही थी और सेना ने अरबी पाशा के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया। इंगलैंड ने खदीव की मदद करने की नीति अपनाई, और विद्रोह को दबा दिया (१८८२)। इसका परिणाम यह हुआ कि मिश्र इंगलैंड के संरक्षण में आ गया, इसका शासन वस्तुतः अंगरेजों के अधिकार में था। क्रोमर ने मिश्री सेना और कृषि का सुचारु रूप से पुनर्संगठन किया। सूडान पर मिश्र का अधिकार था। पर सूडान में 'महदी' नामक एक धार्मिक नेता, जो अपने को पैगम्बर कहता था, के नेतृत्व में मिश्र के विरुद्ध विद्रोह हुआ। मिश्र में अंगरेजों की बढ़ती शक्ति के विरुद्ध सूडान में राष्ट्रीय भावना और धार्मिक कट्टरता की भावना उग्र हुई। अंगरेज सेनापति गार्डन इस आंदोलन को दबाने में असफल रहा और खार्टूम की लड़ाई में वह मारा गया (१८८५)। किचनर ने अन्त में सूडान को जीत लिया (१८९८)। मिश्र में बृटिश पूँजी का आगमन हुआ, और रूई की उपज बढ़ी, और इससे इंगलैंड के उद्योग को फायदा हुआ; और भारतवर्ष पहुँचने का सीधा और जल्दी का रास्ता अंगरेजों के अधीन आ गया। मिश्र से फ्रांस का प्रभाव उठ गया। अरबीपाशा के विद्रोह को दबाने में अंगरेजों का साथ न देकर फ्रांस मिश्र के शासक की कृतज्ञता प्राप्त करने का मौका चूक गया। मिश्र में असफल होकर फ्रांस सूडान की ओर आकृष्ट हुआ। इंगलैंड और मिश्र सूडान को किसी अन्य विदेशी शक्ति के प्रभाव क्षेत्र में नहीं देख सकते थे। नील-नदी की भूमि की एकता का प्रश्न लेकर सूडान को अधिकार में लाने के लिए आंग्ल-मिश्री सरकार व्यग्र थीं। फ्रांस भी अपना निश्चय पक्का कर चुका था। इंगलैण्ड और फ्रांस में युद्ध की सम्भावना बढ़ी। पर अन्त में फ्रांसीसी सेना फैशोडा के मैदान से हट गई और १८९८ तक सूडान पर आंग्ल-मिश्र की संयुक्त-सत्ता स्थापित हो गई। सूडान का शोषण बृटिश पूञ्जी के द्वारा होने लगा। १९०४ की सन्धि के अनुसार इंगलैण्ड ने मोरक्को पर फ्रांस का अधिकार मान लिया।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार अफ्रिका का महादेश योरोपीय राष्ट्रों में बँट गया, और यह बँटवारा प्रायः शान्तिपूर्वक और पारस्परिक समझौता से हुआ। अबिसीनिया और कुछ अन्य अत्यन्त छोटे क्षेत्र ही स्वतन्त्र बचे रहे। इस महादेश के बँटवारे में अफ्रिका की जनता की राय लेने की कतई कोशिश नहीं की गई। यह और भी आश्चर्यजनक चीज है कि इस जनमत की सम्पूर्ण अवहेलना करने में योरप के ऐसे राष्ट्र उत्तर-दायी थे जिनकी स्थिति और जन्म ही उदारवादी और राष्ट्रीय भावनाओं के आधार पर हुआ था।

आस्ट्रेलिया

आस्ट्रेलिया महादेश का पता डचों ने सतरहवीं सदी में लगाया था, पर वृटिश नाविक कप्तान कूक् ने इसके तटवर्ती प्रदेशों की छान-बीन की (१७४०–१७७६)। और इंगलैण्ड भीषण अपराधों के सजा पाये कैदियों को यहां निर्वासित करने लगा। फिर आस्ट्रेलिया के विस्तृत मैदान भेड़ पालने के लिए बड़े उपयुक्त थे, और इस प्रकार ऊन की उपज यहां बहुत हो सकती थी, और इंगलैण्ड के कारखाने ऊनी कपड़े अब बहुत अधिक तायदाद में तैयार कर सकते थे। अतः कालान्तर में आस्ट्रेलिया में न्यू साउथ वेल्स्, वेस्टर्न आस्ट्रेलिया, साउथ आस्ट्रेलिया, विक्टोरिया और क्वीन्सलैण्ड प्रभृति वृटिश उपनिवेश स्थापित हो गये। आस्ट्रेलिया के दक्षिण में स्थित टास्मेनिया प्रायद्वीप भी इंगलैण्ड के अधिकार में आ गया था। अतः सम्पूर्ण आस्ट्रेलिया महादेश पर यूनिअन जैक् (इंगलैंड का झंडा) फहरने लगा। कैप्टन कूक् १७६८ ई० में न्यूज़ीलैण्ड पहुँचा था। अंग्रेज व्यापारी और मिशिनरी यहां आने लगे, और १८३६ में न्यूज़ीलैण्ड में एक बाजाप्ता उपनिवेश स्थापना के लिए इंगलैण्ड में एक कम्पनी का संगठन किया गया। यहां के आदिवासी माओरि जातियों से १८६० ई० तक संघर्ष होता रहा। अन्त में न्यूज़ीलैण्ड वृटिश साम्राज्य का एक अंग बन गया।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमेरिका में कनाडा बृटिश था। फ्रांस का अधिकार १७६३ के पेरिस की सन्धि के बाद खत्म हो चुका था। पर पूर्वीतटस्थित इंगलैण्ड के

अमेरिकन महादेश

उपनिवेशों ने बृटेन को पराजित कर अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त कर लिया था, और संयुक्त-राज्य अमेरिका स्थापित हो गया था। धीरे २ इस राज्य ने पूरे उत्तर अमेरिका महादेश को, कनाडा छोड़ कर, अपने अधिकार में कर लिया। औद्योगिक क्रान्ति यहां भी १६वीं सदी के पूर्वार्द्ध में शुरू हुई, और बहुत जल्दी अमेरिकन पूञ्जीपति अत्यन्त समृद्ध हो गये और अधिक से अधिक पूंजी लगाकर नफा कमाने को आतुर हो गये। मध्य अमेरिका-मेक्सिको-में स्पेन और फ्रांस का प्रभाव यहां के स्वतन्त्रता आंदोलन के कारण नष्ट हो गया। दक्षिण अमेरिका के राष्ट्रों पर भी अमरिकी पूञ्जीवाद का ही आधिपत्य था। स्पेन और पुर्तगाल के दक्षिण अमेरिका के उपनिवेश स्वतन्त्र हो चुके थे। संयुक्त-राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति मुनरो ने एक महत्वपूर्ण घोषणा की कि योरप के राष्ट्र अमेरिकन राजनीति में हस्तक्षेप न करें, इसका फल यह हुआ कि संयुक्तराज्य अमेरिका का राजनैतिक और आर्थिक प्रभाव दक्षिण अमेरिका के राष्ट्रों पर स्थापित हो गया। अमरिकी पूञ्जीपति अपनी पूंजी दक्षिण अमेरिका के पिछड़े क्षेत्रों में लगाने लगे। अमेरिका की सरकार को इस पूंजी और अपने पूञ्जीपतियों की रक्षा के लिए यहां के राजनैतिक मामलों में दखल देना पड़ा, जैसे १६१३–१४ में मेक्सिको इत्यादि देशों में अमन-चैन स्थापित करने के लिए अमेरिका के सैनिक और जंगीबेड़े भेजे गये। पनामा में संयुक्तराज्य की सरकार ने कौलम्बिया की सरकार को विद्रोह को दबाने से रोक दिया, और पनामा का नया प्रजातन्त्र संयुक्तराज्य के संरक्षण में स्थापित हो गया। अब संयुक्तराज्य को पनामा का नहर बनाने में पूरी सुविधा हुई। इस नहर के जरिये अटलांटिक से प्रशान्त सागर जाने का नजदीक रास्ता मिल गया। संसार के व्यापार की प्रगति हुई और अमेरिका को युद्ध सें सुदूरपूर्व सेना भेजने में भी आसानी हुई।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्य अमेरिका अब अमरिकी पूंजीवाद के लिए पूर्ण रूप से खुल गया ।

भारत भी साम्राज्यवादी बृटेन के अधिकार में आ गया था। अंगरेजों ने अपने प्रतिद्वन्द्वी फ्रांसीसी और डचों को क्रमसे १७६३ में वन्दीवास की लड़ाई में और १७५६ में विदारा की लड़ाई में पराजित कर भारतीय साम्राज्य उनके स्वप्न को चूर-चूर कर दिया था। फ्रांस का अब सिर्फ पांडिचेरी, चन्द्रनगर प्रभृति छोटे २ तटस्थित नगरों पर अधिकार था, पोर्तुगाल गोआ डामन प्रभृति पश्चिम तटस्थित नगरों पर अपना अधिकार बचाये रख सका था। बाकी देश इंगलैण्ड के अधीन था। क्लाइव वारेन हेस्टिंगस् और वेलस्ली, अपनी चतुर नीति और भारत की अनैक्यता के कारण भारत का बृटिश साम्राज्य स्थापित कर सके थे। लार्ड हार्डिग और डलहौसी ने इस साम्राज्य की सीमा और भी बढ़ाई। १८५७ ई० तक पूरा भारतवर्ष अंगरेजों के आधिपत्य में था। मराठा, सिख, मैसूर के सुल्तान इत्यादि सब देशी शक्तियां कुचल दी गई थीं। १८५७ का संग्राम भी दबा दिया गया था।

भारत और मध्यपूर्व

भारतवर्ष पर इंगलैण्ड का आधिपत्य निष्कंटक हो इसलिए भारत के पड़ोसी राज्यों पर भी इंगलैण्ड की नजर रही। बर्मा, नेपाल, भूटान बृटिश साम्राज्य के प्रभाव से बचे न रहे। रूस भी पूर्व की ओर प्रसार करने का इच्छुक था। अफगानिस्तान और पर्शिया में रूसी और बृटिश हितों का मुकाबिला था। रूस का भूत बृटिश प्रधानमंत्री पामर्स्टन को बेतरह परेशान करता था। बृटिश सरकार को दो बार अफगानों से युद्ध करना पड़ा। रूस से युद्ध की आशंका निकटतर आ गई थी। अन्त में १९०७ में समझौता हो गया जिसके अर्न्तगत इंगलैण्ड और रूस के प्रभाव क्षेत्र की अपनी अपनी सीमा निर्धारित की गई। पर्शिया वस्तुतः दोनों के प्रभाव क्षेत्र में बंट गया, और अफगानिस्तान की विदेशी नीति अंगरेजों के अधीन

अफगानिस्तान और पर्शिया

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे यह मान ली गई। भारत की उत्तरपश्चिम सीमा सुरक्षित हो गई। पर्शिया में रूसी पूंजी का प्रभाव बढ़ गया। यहां की तेल की खानों के लिए अंगरेज और रूसी दोनों लालायित थे। अन्त में १६०७ के समझौते के अनुसार पर्शिया की खाड़ी में रूस ने इंगलैण्ड का विशेष हित मान लिया, और दक्षिण पर्शिया इंगलैण्ड और उत्तर पर्शिया रूस के प्रभाव क्षेत्र में आ गये।

दक्षिण-पूर्व एशिया

डचों ने दक्षिणपूर्व एशिया में पहले पहल दिलचस्पी दिखाई थी। यहां के प्रायद्वीप समूहों में मसाला, ईख, रबर, टीन इत्यादि, मिलते थे। इसलिए साम्राज्यवादी राष्ट्रों का ध्यान इस ओर गया। बृटिश भारत का व्यापार इन प्रायद्वीपों से होता था। मलय लोग के समुद्री डाका से और यहां समुचित उत्पादन न होने से बड़ी हानि होती थी। अतः समुद्री डाकूओं को नाश करने के लिए और मलय के टीन और रबर से आकृष्ट हो इंगलैण्ड ने मलय देश को अपने अधीन कर लिया और एक संघीय मलय-राज्य की स्थापना की (१८९५)। सींगापुर अब एक मुख्य व्यापारी नाविक स्थल हो गया। लंका अंगरेज़ों के हाथ में १८१५ में ही आ गया और बर्मा १८८५ में इंगलैण्ड के भारतीय साम्राज्य का अंग बन गया। डचों ने सुमात्रा, जावा प्रभृति प्रायद्वीपों पर अपना अधिकार रखा। फ्रांस का साम्राज्य भारतीय-चीन (Indo-China) में स्थापित हो गया। काम्बोडिया (१८६३), कोचिन-चीन (१८६७) और अन्नाम १८६२ फ्रांसीसी साम्राज्य के अंग बन गये थे। प्रशान्तमहासागर स्थित प्रायद्वीपों पर भी साम्राज्यवादी राष्ट्रों की गृद्ध दृष्टि पड़ी। जर्मनी ने कई प्रायद्वीपों पर, जिनमें समोआ न्यूगिनी के कुछ भाग भी सम्मिलित थे, अधिकार कर लिया। बृटेन ने न्यूगिनी के बाकी भाग और अन्य प्रायद्वीपों पर अपना अधिकार कर लिया। आस्ट्रेलिया की रक्षा के लिए यह आवश्यक समझा

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया। संयुक्त-राज्य अमेरिका भी इस लूट में भाग लेने के लिए मैदान में आ गया। हवाई, (१८९८) समोआ (१८९९) के कुछ भाग, और १८९८ में फिलीपीन पर अमेरिका का झंडा फहरने लगा। इस्ट और वेष्ट इन्डीज में अमेरिका का प्रभाव स्थापित हो गया।

सुदूरपूर्वचीन और जापान :

योरप में पूर्वी योरप की ओर बढ़ने का रूस का प्रयास इंगलैंड और आस्ट्रिया के विरोध के कारण विफल रहा। बर्लिन की सन्धि (१८७८) ने रूस को अब पूर्व की ओर बढ़ने को बाध्य किया। पश्चिम में रोके जाने पर पूर्व की ओर बढ़ने की यह नीति रूस की राजनीति की स्थायी विशेषता रही है। इसलिए रूस एशिया की ओर बढ़ने लगा। रूस और चीन की सीमा सैकड़ों मील तक एक दूसरे से सटी हुई थी, और रूस का लक्ष्य था प्रशान्त महासागर के तट तक अपना प्रभाव स्थापित करना। रूस प्रशान्त महासागर के तट तक अपना प्रभाव फैला चुका था (१८५८), और मन्चूरिया पर उसकी आंखें लगी थीं। अन्त में चीन को रूस के पक्ष में सीमा निर्धारित करनी पड़ी, और रूस को वह विस्तृत तट-प्रदेश मिला जिसमें व्लाडिवोस्टक् का मशहूर बन्दरगाह भी शामिल था। जापान के विरुद्ध चीन की मदद के बदले रूस को लियोतुन्ग प्रदेश और पोर्टआर्थर का इजारा मिला (१८९५)। रूस को साइबेरिया से मन्चूरिया होकर व्लाडिवोस्टक् तक जाने वाली ट्रान्स्साई-बेरिअन्-रेलवे बनाने की अनुमति मिल गई। मन्चूरिया वस्तुतः रूस के प्रभावक्षेत्र में आ गया। फ्रांस और जर्मनी को भी चीनी भूमि मिली। रूस चीन पर स्थल भाग से होकर अपने प्रभाव का विस्तार कर रहा था, अन्य योरोपीय राष्ट्र स्वभावतः समुद्र के रास्ते चीन में प्रवेश करना चाहते थे। चीन एक अत्यन्त प्राचीन देश है जिसकी प्राचीन संस्कृति अत्यन्त समृद्ध थी। मगर इस समय चीन आधुनिक

चीन

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान और औद्योगिक क्रान्ति से एकदम अनभिज्ञ था, और चीनी अपने को इतना अधिक सभ्य समझते थे कि योरोपीय सभ्यता का स्पर्श तक करना अपमान समझते थे। इसलिए चीन में योरोपीय राष्ट्रों को बरबस ही घुसना पड़ा। चीन बहुत बड़ा देश है, और संसार में सबसे अधिक जनसंख्या इसी देश की है। इसलिए चीन के बाज़ार पर अधिकार रखने की इच्छा साम्राज्यवादी राष्ट्रों के लिए स्वाभाविक थी। भारत और चीन का सम्बन्ध बहुत पुराना था, और भारत का चीन से व्यापार भी होता था। उन्नीसवीं सदी में चीन में भारत की अफीम की मांग बहुत थी, और चुकछिप कर इस्ट इंडिया कम्पनी इस व्यापार से अत्याधिक मुनाफा उठा रही थी। चीन की सरकार ने इस व्यापार पर रोक लगा दिया, और भारत की बृटिश सरकार ने व्यापार करने के अधिकार की दलील देकर सेना भेज दिया। चीन 'दो अफीम के लिए युद्ध' (Opium Wars) (१८४०–४२) में पराजित हुआ, और चीन को अपने बन्दरगाहों को योरप के व्यापार के लिए खोलना पड़ा (१८५६–६०)। हौंगकौंग प्रायद्वीप अंग-रेजों के हाथ में आ गया। यह अभी तक सूदूरपूर्व में बृटिश व्यापार का मुख्य केन्द्र है। दक्षिण चीन के अन्य बन्दरगाहों से भी व्यापार करने की सुविधा मिली। इंगलैंड की देखादेखी अन्य योरोपीय राष्ट्र जैसे फ्रांस और जर्मनी भी चीन से व्यापार करने की सुविधा की मांग करने लगे और उन्हें सफलता मिली। संयुक्त-राज्य अमेरिका ने भी मुक्त-व्यापार के सिद्धान्त के आधार पर चीन में व्यापार करने का अधिकार प्राप्त कर लिया। पीछे चलकर अन्दर-चीन में योरोपीय और अमरीकी व्यापारी और मिशिनरियों को अपना काम करने की अनुमति मिल गई। चीन में योरोपीय और अमेरिकन राजदूतावास खुल गये। दो जर्मन पादरी की हत्या का बहाना लेकर जर्मनी ने चीन के बन्दरगाह किउ चाउ पर अधिकार कर लिया। योरोपीय उपनिवेशों या बन्दरगाहों में योरोपीय कचहरियों की सत्ता मान ली

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गई थी। इस तरह इन क्षेत्रों में विशेषाधिकार की प्राप्ति हुई। चीन योरोपीय और अमरिकी साम्राज्यवाद के शिकंजे में फंस गया और देश के कुछ मुख्य भाग से उसे हाथ धोना पड़ा। फ्रांस ने दक्षिण चीन पर प्रभाव स्थापित कर लिया था। जर्मनी शान्टुन्ग प्रान्त, रूस मन्चूरिया और लाङ्ग-तुङ्ग, वृटेन यांग्तसी नदी के कांठे को अपने-२ प्रभाव-क्षेत्र में ला चुके थे। जापान भी वृद्ध चीन पर आंख लगाए था। कोरिया का प्रश्न लेकर चीन-जापान युद्ध हुआ जिसमें चीन हार गया (१८९५), और जापान को चीन में व्यापार के विशेषाधिकार प्राप्त हुये और निकटस्थ प्रायद्वीप जापानी साम्राज्य के अंग वन गये। योरोपीय साम्राज्यवादी देश जैसे रूस, फ्रांस और जर्मनी जापान की बढ़ती शक्ति से घवड़ा गये। अपने क्षेत्र में इस नये प्रतिद्वन्द्वी के प्रति इनकी यह नीति स्वाभाविक थी। अपनी इस जापान-विरोधी नीति के कारण इन राष्ट्रों ने चीन को कृतज्ञ बना लिया, और इसके बदले अन्य कई विशेषाधिकार प्राप्त कर लिये। अन्नाम और इन्डोचीन पर से चीन का मौखिक स्वामित्व फ्रांस के पक्ष में त्याग दिया गया। रूस की बढ़ती शक्ति से आतंकित हो इंगलैंड ने १९०२ में जापान से मित्रता की सन्धि की। १९०५ में जापान ने रूस को हरा दिया। रूस को मन्चूरिया और पोर्टआर्थर छोड़ना पड़ा। कोरिया जापान के प्रभावक्षेत्र में है, यह रूस ने मान लिया।

जापान

जापान भी पश्चिमी राष्ट्रों के लिए वरवस खुल चुका था क्योंकि १६३६ में जापानी सरकार ने पश्चिमी व्यापारी और धर्म प्रचारकों को जापान में प्रवेश करना निषिद्ध कर दिया था। पर १८५३ में अमेरिकन सेनापति पेरी ने युद्धपोतों के बल पर जापानी सरकार को पश्चिमी व्यापारी-जहाजों के लिए अपने बन्दरगाह को खुला रखने को वाध्य किया। इस प्रकार पश्चिमी सभ्यता और व्यापार जापान में प्रवेश पा गये। पर जापान ने इससे शिक्षा ली, और और अपने को उन्हीं साधनों से परिपूर्ण करने की नीति अपनाई

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनके द्वारा ही उसे अपमानित होना पड़ा था, और चन्द वर्षों में ही आधुनिक विज्ञान और औद्योगिक क्रान्ति के बल पर जापान एक औद्योगिक और साम्राज्यवादी राष्ट्र बन गया, और इस तरह पश्चिमी साम्राज्यवादी राष्ट्रों का एक प्रतिद्वन्द्वी एशिया में भी उठ खड़ा हुआ।

साम्राज्यवाद की सफलता के कारण

इस प्रकार प्रायः सम्पूर्ण विश्व योरप और अमेरिका के साम्राज्यवादी राष्ट्रों के प्रभावक्षेत्र में बंट गया। एशिया, अफ्रिका या आस्ट्रेलिया के देश आधुनिक विज्ञान और यन्त्रविद्या से अनभिज्ञ रहने के कारण इन साम्राज्यवादी राष्ट्रों का सामना करने में एकदम असफल रहे। प्राचीन और मध्ययुग में भारत, चीन, दक्षिणपूर्व एशिया, मिश्र, प्रभृति देश शक्तिशाली और अत्यन्त सभ्य थे। पर दुर्भाग्यवश भारत, चीन या मिश्र आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति से एकदम अनभिज्ञ रहे, और इस ओर इनने कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई। यहां की सभ्यता जीर्ण हो गई थी, और लोग अप्रगतिशील हो गये थे। सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था सामन्तवाद के आधार पर स्थित था। युद्ध के नियम और साधन पुराने ही थे। इसी समय योरप में विज्ञान की प्रगति हुई, नये-नये आविष्कार हुये, औद्योगिक क्रान्ति हुई, और जनता में उत्साह आया। इन नये सामरिक और यातायात के साधनों के द्वारा इन योरोपीय राष्ट्रों को प्राचीन देशों पर अधिकार स्थापित करने में आसानी हुई। अफ्रिका और आस्ट्रेलिया के अत्याधिक भाग में तो उस समय आदिम सभ्यता ही फैली हुई थी, भला वे आधुनिक योरोपीय राष्ट्रों का सामना कैसे कर सकते थे।

साम्राज्यवाद के परिणाम —

नवीन साम्राज्यवाद की प्रगति के कई महत्वपूर्ण परिणाम हुये। पिछड़े हुये देशों पर निरंकुश शासन की स्थापना हुई, और इनका भरपूर शोषण हुआ। यह उल्लेखनीय है कि जिन राष्ट्रों ने अपने यहां वैधानिक शासन स्थापित किया था, योरप में क्रान्ति और प्रगतिशील विचारों का समर्थन किया था

निरंकुश शासन

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने भी जैसे इंगलैंड और फ्रांस ने अपने उपनिवेशों पर स्वेच्छाचारी और अप्रिय शासन-व्यवस्था स्थापित किया। कुछ समय बाद इंगलैंड ने एक नयी नीति का अनुसरण किया। जिन उपनिवेशों में श्वेतवर्ण के लोग थे वहां धीरे-धीरे स्वशासन की सुविधा दी जाने लगी, और कनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रिका और न्यूजी-लैण्ड में स्वशासित डोमिनिअनों का विकास हुआ, पर भारत प्रभृति देशों में स्वेच्छाचारी शासन ही स्थापित रहा। साम्राज्यवादी नीति का आदर्श जो भी रहा हो पर इसका प्रत्यक्ष परिणाम था शासित देशों का आर्थिक, सामाजिक और नैतिक अधःपतन; गरीबी और अशिक्षा बढ़ती गई, और आत्माभिमान का नाश होता गया। संसार के इतने अधिक मनुष्यों का यह आर्थिक शोषण और सर्वव्यापी अधःपतन दुनियां के लिए अच्छा नहीं है।

अंग्रेजी उपनिवेशों में स्वशासन

साम्राज्यवादी राष्ट्रों ने पिछड़े देशों की राष्ट्रीयता का अपसरण किया था। इटैली और जर्मनी ऐसे राष्ट्र जिनकी स्थिति ही राष्ट्रीयता के सिद्धान्त पर कायम हुई थी, वे ही अब अन्य-अन्य कमजोर जातियों पर विदेशी शासन स्थापित करने की नीति पर चल रहे थे। शासित देशों में विदेशी अफसर, विदेशी पूञ्जी और विदेशी भाषा का प्रभुत्व स्थापित हुआ, और राष्ट्रीय भावना की उत्पत्ति ही न हो ऐसी कोशिश की गई। इन पिछड़े देशों की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था सामन्तवाद पर ही आधारित थी, और इसलिए विजयी राष्ट्रों को राष्ट्रीयता का सामना नहीं करना पड़ा था। पर पूञ्जीवादी-साम्राज्यवाद का एक प्रत्यक्ष परिणाम हुआ पराधीन देशों में राष्ट्रीयता का उदय। पूरे देश के साधनों का अधिक से अधिक और शीघ्र से शीघ्र शोषण हो सके इसलिए प्रभु-राष्ट्रों को यातायात की आधुनिक सुविधाओं का प्रसार करना पड़ा। रेल, तार, डाक इत्यादि की व्यवस्था हुई, और उन्हें पूरे देश पर एक संगठित और केन्द्रीय शासन स्थापित करना पड़ा।

राष्ट्रीयता का उदय

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदेशी शासन को चलाने के लिए देशीय कर्मचारियों की जरूरत पड़ी, स्कूल और कालिज खुले जिनमें योरोपीय भाषा में पढ़ाई शुरू हुई। अतः अब योरोपीय साहित्य विशेषकर राजनैतिक साहित्य और योरप का इतिहास का ज्ञान पढ़े-लिखे बाबूओं को हो गया। योरप के राष्ट्रीय और प्रजातान्त्रिक भावनाओं का प्रभाव इन पर पड़ा। राजनैतिक या शासन की एकता ने भी इन देशों के नागरिकों में राष्ट्रीयता की भावना को जगाया। तेज यातायात की सुविधा ने भी एकता और राष्ट्रीयता को प्रोत्साहित किया। छोटे-मोटे कारखाने भी खुलने लगे जिनमें कि रोजमर्रे काम आनेवाले कल-पूर्जे बनने लगे। इस तरह स्वदेशी पूँजीपति वर्ग की उत्पत्ति हुई। युद्ध के समय में प्रत्येक उपनिवेश को शासक-देश की ओर देखना न पड़े इसलिए भी यहां कल-कारखाना खोलना शासकों के लिए जरूरी माना गया। इस प्रकार औद्योगिक क्रान्ति का सूत्रपात हुआ, और इसका वही परिणाम हुआ जैसा अन्य देशों में हुआ था। पूँजीपति अपने उद्योग की रक्षा और उन्नति के लिए शासन पर अधिकार रखना चाहने लगे। आधुनिक शिक्षा प्राप्त पढ़े-लिखों का समुदाय भी शासन में अपना हिस्सा अधिक से अधिक मांगने लगा। क्योंकि शासन विदेशी था, इसलिए इन सभी आन्दोलनों का स्वरूप राष्ट्रीय हो गया। अतः पराधीन देशों में स्वतन्त्रता का आंदोलन साम्राज्यवाद के विरोधाभास का परिणाम था।

साम्राज्यवादी युद्ध

साम्राज्यवादी राष्ट्रों ने संसार को आपस में बांट लिया था। पर उनकी तृष्णा की सीमा नहीं थी, और सुविधाप्राप्त भूमि सीमित थी। अतः इन राष्ट्रों में कटु प्रतिद्वन्द्विता थी। इंगलैण्ड और फ्रांस का साम्राज्य अत्यन्त विस्तृत था। जर्मनी और इटैली इस मैदान में पीछे आये थे, और इसलिए इंगलैण्ड और फ्रांस के विस्तृत साम्राज्यों के सामने उनका साम्राज्य बहुत छोटा था। इंगलैण्ड भी नये प्रतिद्वन्द्वियों के कारण संशंकित था।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इंगलैण्ड और फ्रांस में भी मिश्र और सूडान लेकर झगड़ा हो गया था। जर्मनी अपना प्रभाव सन्निकट पूर्व और मध्यपूर्व में फैलाना चाहा था। टर्की का सुल्तान कमजोर था, और शासन में भ्रष्टाचार फैला था। तुर्की सुल्तान को मदद देने का बहाना बना कर जर्मनी अपना राजनैतिक प्रभाव उसपर स्थापित कर चुका था, और बर्लिन से लेकर बगदाद तक की रेलवे की योजना बन गई थी। इससे इंगलैण्ड और रूस को बहुत डर हो गया। इंगलैण्ड को भारत की चिन्ता थी, फिर फारस को इंगलैण्ड और रूस ने अपने-२ प्रभावक्षेत्र में बांट लिया था। मध्यपूर्व में जर्मनी का प्रवेश इन्हें असह्य था। सुदूर पूर्व में भी जर्मनी ने समोआ और न्यूगिनीके कुछ भागों पर अधिकार कर के इंगलैण्ड और उस के उपनिवेश आस्ट्रेलिया को बहुत डरा दिया था। फ्रांस और जापान भी सुदूरपूर्व और दक्षिण-पूर्व के विस्तृत बाजार और कच्चे माल के आढ़तों में जर्मनी का प्रवेश अहितकर समझते थे। दक्षिणपूर्व योरोप में रूस और आस्ट्रिया कट्टर दुश्मन थे। रूस और आस्ट्रिया दोनों बाल्कन् प्रदेश को अपने-२ प्रभावक्षेत्र में रखना चाहते थे। बर्लिन की सन्धि में बिस्मार्क ने आस्ट्रिया के पक्ष में दलाल बन कर ऊस की महत्वाकांक्षा को बहुत घटी पहुँचाई थी, और रूस इसे भूला नहीं था। रूस का यह सतत प्रयत्न था कि टर्की के सुल्तान पर उसका प्रभाव रहे पर अब जर्मनी का प्रभाव इस ओर बढ़ रहा था, यह भी रूस को बहुत नापसन्द था। अफगानिस्तान और फारस का प्रश्न लेकर इंगलैण्ड और रूस में अनबन थी। जर्मनी मोरक्को और अलजिरिया पर ध्यान देने लगा, जिसे फ्रांस अपना प्रभावक्षेत्र समझता था।

परस्परिक अनबन

अतः यह स्पष्ट है कि साम्राज्यवादी राष्ट्र अपने साम्राज्य का प्रसार करने में एक दूसरे के रास्ते में आ रहे थे। इनके पारस्परिक सम्बन्ध अत्यन्त कटुतर हो रहे थे। जर्मनी एक बृहत् जंगी बेड़ा बनाने में लग गया, इससे इंगलैंड बहुत डर गया। इंगलैंड का साम्राज्य विश्व के कोने-२ में फैला हुआ

विरोधी गुटों का निर्माण

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। उसकी समृद्धि सामुद्रिक व्यापार पर ही आश्रित थी। यदि कोई राष्ट्र इंगलैंड का 'जहाज की रानी' का पद छिन लेता है तब इंगलैंड की समृद्धि ही क्या, स्वतन्त्रता भी खतरे में पड़ जा सकती थी। जर्मनी योरप का सबसे शक्तिशाली राष्ट्र था, उसकी स्थल-सेना सबसे अधिक उन्नत और संगठित थी। यदि अब उसका जहाजी बेड़ा भी अत्यन्त शक्तिशाली बन गया तो जर्मनी संसार का स्वामि बन जा सकता था। जर्मनी के सम्राट् कैसर ने यह समझ लिया था कि जर्मनी के व्यापार और साम्राज्य विस्तार के लिए अत्याधिक मजबूत जंगी-बेड़ा जरूरी है। बिना इसके जर्मनी को संसार में अपना उचित स्थान (A place in the sun) नहीं मिल सकता था। अतः जर्मनी की इस नीति से इंगलैंड को बहुत परेशानी हुई, और इंगलैंड अब जर्मनी के विरुद्ध विश्वसनीय साथियों की तलाश करने लगा। रूस भी जर्मनी के विरुद्ध दोस्त की खोज में था। इस प्रकार अपने-२ साम्राज्यवादी स्वार्थों के कारण विश्व दो गुटों में बंट गया। क्योंकि अब योरप के प्रत्येक महान् राष्ट्रों का हित योरप के बाहर भी था, इसलिए योरोपीय युद्ध का विश्व-युद्ध में परिवर्तित होना स्वाभाविक था। जर्मनी और इटैली की नीति से आशंकित हो इंगलैंड और फ्रांस ने १६०४ में अपने सभी झगड़ों का समझौता कर लिया, और आपस में एक सन्धि कर ली। आस्ट्रिया और जर्मनी १८७६ से ही सन्धि के सूत्र में बंधे थे। जर्मनी और आस्ट्रिया की नीति से अप्रसन्न होकर रूस भी इंगलैंड से समझौता करने के लिए तैयार था, और १६०७ में रूस और इंगलैंड में सन्धि हुई जिससे रूस ने अफगानिस्तान पर अपना इरादा छोड़ दिया, और फारस (पर्शिया) पर रूस का प्रभाव इंगलैंड ने मान लिया। जापान से इंगलैंड ने १६०२ में मित्रता कर ली थी, जिससे इस क्षेत्र में भी उसे एक मित्र मिल गया। १६०५ की लड़ाई में रूस जापान से हार गया था, इसलिए सुदूरपूर्व की ओर उसकी नीति अभी ढिली पड़ गई थी।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार साम्राज्यवाद का एक परिणाम संसार का बंटवारा ही नहीं हुआ, वरन् साम्राज्यवादी देश भी अलग-२ विरोधी गुटों में बंट गये। एक ओर थे जर्मनी, आस्ट्रिया और टर्की, दूसरी ओर थे फ्रांस, इंगलैंड, रूस और जापान। आपस में तनातनी बढ़ती गई। अपने गुट के सदस्यों की किसी भी नीति का उसके गुट के सभी सदस्य समर्थन करने को तैयार थे। विस्फोट् की देरी थी। १६१४ में सेराजेभो नामक स्थान पर फर्डिनेण्ड आर्कड्यूक् आफ् आस्ट्रिया को गोली लगी, और प्रथम विश्वयुद्ध आरम्भ हो गया। इस युद्ध का एक प्रमुख कारण था साम्राज्यवाद।

प्रथम विश्व-युद्ध

१६१८ में प्रथम विश्वयुद्ध का अन्त हो गया और जर्मनी, आस्ट्रिया, रूस और टर्की के साम्राज्यों का अन्त हुआ। योरप में कई नये राष्ट्रीय राज्य स्थापित हुये; फ्रांस और इंगलैंड के साम्राज्य का विस्तार बढ़ा। एशिया में नयी जागृति पैदा हुई। रूस में क्रान्ति हुई। संसार के आधुनिक इतिहास में रूस की क्रान्ति एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना है।

परिणाम

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दसवां अध्याय

रूस की क्रान्ति और प्रगति

१९१७ में रूस में साम्यवादी क्रान्ति हुई, और इसके बाद रूस में समाजवाद की स्थापना की ओर तीव्रगति से प्रगति हुई। रूस ऐसे पिछड़े और कृषि-प्रधान देश में साम्यवादी क्रान्ति का होना एक आश्चर्यजनक घटना है। कार्लमार्क्स के अनुसार अत्यन्त विकसित पूञ्जीवादी व्यवस्था में ही समाजवादी क्रान्ति की वस्तुस्थिति पैदा होती है। पर संसार में पहले पहल रूस ऐसे अविकसित देश में ही क्रान्ति हुई, और सफल क्रान्ति हुई। यहां ऐसी विशेष परिस्थितियां थीं जिससे साम्यवादी क्रान्ति सम्भव हो सकी। रूस की यह क्रान्ति संसार की सभी क्रान्तियों में अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है।

क्रांति के कारण :

जिस समय इंगलैण्ड और उसके पश्चात् पश्चिमी राष्ट्र सामन्ती व्यवस्था का अन्त कर औद्योगिक राष्ट्र बन चुके थे, रूस इस दौड़ में बहुत पीछे था। यहां की आर्थिक व्यवस्था मूलतः कृषि-प्रधान थी, खेती पुराने ढंग से होती थी और बड़े-२ जमींदार किसानों और मजदूरों का अत्यन्त शोषण करते थे। १८६१ तक खेती बंधुआ मजदूरों (Serfs) के ही द्वारा कराई जाती थी। जब कि यह व्यवस्था इंगलैण्ड में ४०० वर्ष पहले, और योरप में सैकड़ों वर्ष पहले उठा दी गई थी, रूस में १८६१ में ही इस प्रथा को गैरकानूनी ठहराया गया, और बंधुआ मजदूर को स्वतन्त्रता मिली। रूस में सिर्फ एक लाख परिवार उपजाऊ जमीन के नब्बे प्रतिशत जमीन के

भूमि का प्रश्न

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालिक थे। बहुसंख्यक किसानों और मजदूरों को बहुत कम जमीन थी, बहुतों को तो कुछ नहीं। बड़े-२ जमींदारों की जमीन पर ये लोग काम करते थे, और जमींदार इन्हें बहुत तरह से तंग करता था। १८६१ में भूमिहीन मजदूरों को वैयक्तिक स्वतन्त्रता मिली और सरकार ने, जमींदारों से जमीन खरीद कर उसे ग्राम पंचायत—'मिर' के हवाले कर दिया, और अब पंचायत ने किसानों में जमीन बांट दिया। पर किसानों को इस जमीन के लिए सालाना कुछ निश्चित किश्त अदा करनी थी। इसका वास्तविक अर्थ यह हुआ कि इन्हें जमीन का मूल्य देना था, यद्यपि किश्तों में। इसके अलावे इन्हें कई प्रकार के कर देना पड़ता था, 'मिर' के कठिन नियमों का भी पालन करना पड़ता था, और ये लोग राजा के कर्मचारी और पुलिस की धांधलियों के भी शिकार थे। इन कारणों से गरीब किसान या तो अपनी जमीन बेच कर खेतिहर मजदूर बन गये, या शहर में जाकर कारखानों में कम मजदूरी पर भी काम करने के लिए बाध्य हो गये। देशी और विदेशी मिल-मालिकों को अब सस्ते दर पर अगणित मजदूर मिलने लगे। जमींदारों का जुल्म भी खत्म नहीं हुआ था। जमीदारों की बेगारी भी उन्हें करनी पड़ती थी। इस तरह जमींदार, सरकारी अफसर, और 'मिर' के अत्याचार के कारण किसान खेती में उत्साह नहीं दिखा सकते थे, और इसलिए उत्पादन घटता गया, अकाल जब-तब पड़ता रहा। कृषि बहुत ही पिछड़ी हुई दशा में थी। अत्याधिक ग्रामीण जनता अत्यन्त ही दरिद्र और असन्तुष्ट थी। जनसंख्या में वृद्धि हो रही थी, और जमीन का बँटवारा होते-२ प्रत्येक किसान परिवार के हिस्से की भूमि का क्षेत्रफल कम होता जा रहा था। इस कृषि व्यवस्था में गरीब और भी गरीब होते गये और अमीर किसान और जमींदार अधिक से अधिक जमीन के मालिक बन बैठे। गरीब किसान और मजदूर राज को ही इस अन्यायपूर्ण स्थिति का स्थापक समझते थे और भूमि का बराबर-२ बंटवारा हो और जमींदारी-प्रथा का नाश हो, यही उनका लक्ष्य था। किसी ने १८६५ में ठीक ही कहा था कि

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"बिना भूमि के स्वतन्त्रता असम्भव है।" रूस की लोकसभा में जब देश की गम्भीर स्थिति पर बहस हो रही थी तब एक सदस्य ने कहा था "तुम कितना ही बहस क्यों न करो, जमीन पर दूसरी दुनिया नहीं उतार सकते, और इसलिए भूमिहीनों को जमीन नहीं दे सकते"। जमीन की भूख और तत्कालीन कृषि-व्यवस्था का अन्यायपूर्ण रूप ने रूस के देहातों में असंतोष का बीजरोपण कर दिया था। लेनिन के अनुसार १९०३ में १५ लाख समृद्ध किसान परिवार आधे उपजाऊ जमीन के मालिक थे, जबकि सारे रूस में १ करोड़ किसान परिवार थे। इससे भूमि का अन्यायपूर्ण वितरण स्पष्ट है।

ग्रामों की दयनीय अवस्था में सुधार के लिए रूस का औद्योगीकरण आवश्यक था। रूस में १९वीं शताब्दि के उत्तरार्द्ध में उद्योगों का विकास हुआ। रेलवे लाइन देश में बिछ गई, कोयला और लोहा की खानों का पता लगाया गया। बड़े-२ कारखाने खुल गये। १८८९ और १८९७ के बीच में लोहा का उत्पादन चार गुणा बढ़ गया, और फ्रांस से अधिक लोहा रूस में मिलने लगा। कपड़ों की मिलें भी खुल गईं। १९०६–७ तक तीस लाख मजदूर बड़े-२ कारखानों में काम कर रहे थे। इस तरह रूस में औद्योगीकरण तीव्र गति से हो रहा था। इसके लिए अधिक से अधिक पूञ्जी की आवश्यकता थी। बड़े-२ जमींदार पूञ्जी लगा रहे थे।

औद्योगीकरण के परिणाम

देशी पूञ्जीपतिवर्ग का विकास हो रहा था। पर यह वर्ग कमजोर था, संख्या और शक्ति में न्यून। देश में स्वेच्छाचारी शासन स्थापित था। अपने हित की रक्षा के लिए पूञ्जीपति वर्ग रूस के सम्राट्-जार-पर ही आश्रित था। पूञ्जीवाद रूस में बहुत देर के बाद आया, और सामन्तवाद के अन्त के साथ-साथ ही इसका विकास नहीं हुआ, जैसा कि इंगलैंड और अन्य पश्चिमी राष्ट्रों में हुआ था। रूस में सामन्तवाद कायम था,

कमजोर मध्यम वर्ग

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वेच्छाचारी राजशासन था, और मध्यम वर्ग का विकास इतनी तेजी से और अचानक हो रहा था कि यह वर्ग कमजोर और अनुभवहीन था। यदि मध्यम वर्ग सबल रहता तो रूस की क्रान्ति भी फ्रांस की क्रान्ति की तरह मध्यम वर्ग की सत्ता स्थापित कर खत्म हो जाती, या इंगलैंड के ऐसा यहां वैधानिक प्रजातान्त्रिक शासन का विकास सम्भव हो सकता। पर रूस का मध्यम वर्ग जारशाही के विरुद्ध नेतृत्व करने में समर्थ नहीं था, और जनता ने उसे जारशाही का समर्थक के ही रूप में देखा।

विदेशी पूञ्जी

रूस में जिस तेजी से औद्योगीकरण हो रहा था उसके लिए देश में पर्याप्त पूञ्जी नहीं थी। राज्य-आय भी पूरी नहीं पड़ती थी। अतः विदेशी पूञ्जी का ही सहारा लेना पड़ा। और विदेशी पूञ्जीपति पिछड़े देश में पूञ्जी लगाकर अत्यन्त अधिक मुनाफा खाने के लिए आतुर थे। रूस का मंत्री विट्टे (Witte १६०२–१६०३) औद्योगीकरण का प्रबल समर्थक था, और इसने विदेशी पूञ्जी का स्वागत करने की नीति अपनाई। फ्रांस और जर्मनी ने इस ओर अधिक ध्यान दिया। इनकी पूञ्जी रूस के बड़े-२ उद्योगों में लगी हुई थी। रूसी मजदूरों का पूरा शोषण होता था। अपनी पूंजी की रक्षा के लिए रूस की राजनीति पर भी विदेशी राज्यों को प्रभाव रखना आवश्यक प्रतीत हुआ। रूस के स्वेच्छाचारी शासक-जार की मदद करना इनके हित में था। रूस की सरकार औद्योगीकरण के लिए या राज खर्च चलाने के लिए विदेशी सरकारों से कर्ज लेने के लिए तैयार थी। कभी-२ तो ऐसी मदद उसे ऐसे मौके पर मिल जाती थी कि जार अपने प्रगतिवादी कदम को लौटा लेने में समर्थ हो जाता था। १६०५ में फ्रांस ने रूस के जार को एक बहुत बड़ी रक्म कर्ज देकर जार को रूस की लोक सभा-ड्यूमा-की उपेक्षा करने में प्रोत्साहित किया।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूस में पूञ्जीवाद बहुत पीछे आया, पर जब आया तब अत्यन्त विकसित या प्रौढ़ रूप में, यहां पूञ्जीवाद का स्वाभाविक विकास नहीं हुआ। छोटे-२ कारखानों के बाद अत्यन्त संगठित और वृहत् कारखाना स्थापित नहीं हुआ बल्कि शुरू से ही वृहत् कारखानों और बैंकों की स्थापना हुई। जिस विकास में इंगलैंड को दो सौ वर्ष लगे थे, और योरप को सौ वर्ष, वह रूस में १५ वर्ष के भीतर ही हो गया। इसलिए पूञ्जीवाद की उत्पत्ति और विकास से इंगलैंड और पश्चिमी राष्ट्रों को जितनी समस्याओं का क्रम से सामना करना पड़ा थ और उन्हें सुलझाने के लिये जितना समय मिला था, रूस में ये सभी समस्याएं एक साथ वृहत् रूप में सामने आ गईं और उन्हें समझने और सुलझाने का समय भी यहां कम मिला। सामन्तवाद की अवनति, पूञ्जीवाद की उत्पत्ति और और अत्याधिक विकास से उत्पन्न सभी आर्थिक और सामाजिक समस्याओं का एक साथ उठ खड़ा होना रूस की परिस्थिति की एक महत्वपूर्ण विशेषता है।

औद्योगीकरण का अति विकसित रूप

कारखानों में काम करने वाले मजदूरों की दशा दयनीय थी। उन्हें बहुत कम मजदूरी मिलती थी और कम मजदूरी पर काम करने के लिए मजदूरों की बड़ी तायदाद तैयार रहती थी। शहरों में रहने का प्रबन्ध भी बड़ा बुरा था। तंग और गंदी गलियों में छोटे कमरों में मजदूर परिवारों को दिन काटना पड़ता था। स्वास्थ्य और सफाई की सुविधा नहीं ही थी। कारखानों में भी इनकी रक्षा का प्रबन्ध नहीं था। प्रतिदिन यहां कुछ न कुछ दुर्घटना होती रहती, और मजदूर की जान जाती या विकलांग होकर वह बेकार हो जाता। काम करने के घंटे भी बहुत अधिक थे। विट्टे ने स्थिति में सुधार लाने का प्रयास किया, दुर्घटनाओं के विरुद्ध बीमा का नियम बनाया। पर विट्टे को १९०३ में बर्खास्त कर दिया गया, और प्रतिक्रियावादियों ने मजदूरों

मिल-मजदूरों की दशा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की स्थिति में सुधार की नीति को क्रान्ति का निमन्त्रण समझ कर ठुकरा दिया। मजदूरों का असन्तोष बढ़ता गया।

पूंजीवाद में मजदूरों के संगठन की सम्भावना रहती है, और वर्ग-ऐक्य व चेतना उत्पन्न होती है। कारखानों में बहुत से मजदूर एक साथ काम करते हैं और एक ही प्रकार की जिन्दगी बसर करते हैं। इनके हित और आशाएँ एक-सी रहती हैं। पूंजीपति व पूंजीवाद के विरुद्ध इनकी शिकायतें समान रहती हैं। मजदूरों के श्रम के बिना उत्पादन नहीं हो सकता था, इसलिए मजदूर संगठित होकर अपनी शर्तें मनवा ले सकते थे। रूस में पूञ्जीवाद का अत्यन्त विकसित रूप था, इसलिए यहां बड़े-बड़े कारखानों में अत्याधिक संख्या में मजदूर काम करते थे, बनिस्पत कि छोटे-२ कारखानों के अल्प-संख्यक मजदूर। इसलिए मजदूरों का संगठन आसान और बृहत्रूप का हो सका।

मजदूरों के संगठन की सुविधा

इस प्रकार मिल-मजदूर और गरीब किसान तत्कालीन आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था से असन्तुष्ट थे। रूस का जार और उसके राज्यकर्मचारी स्थिति को और भी गम्भीर बना रहे थे। जार स्वेच्छाचारी शासक था, और राज्य के उच्च अफसर उसके इशारे पर चलते थे। निकोलस् द्वितीय परिस्थिति को समझने में एकदम असमर्थ था, और अपने सलाहकारों को चुनने में बराबर ग़लती करता था। वह विचार का पक्का नहीं था। वह न जल्दी किसी निश्चय पर आता था, और न अपने निश्चय पर अधिक देर तक टिकता था। इस कारण उसकी नीति कभी बड़ी कठोर, और कभी उदार मालूम पड़ती थी; और उसके उच्च अफसर इस नीति-परिवर्तन से परेशान रहते थे। कमजोर और आरामपसन्द जार अपनी जर्मन स्त्री जारीना की मुट्ठी में था। जारीना निहायत जिद्दी और प्रतिक्रियावादी स्त्री थी, और जार के पश्चैती अधिकारों को एकदम सुरक्षित रखना चाहती

जार का चरित्र

ज़ारीना का चरित्र

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। जनता की आशाओं की उसे जरा भी परवाह नहीं थी, और उनके आंदोलनों को कुचलने के लिए वह जार को बराबर प्रेरित करती रही। स्थिति का मूल्यांकण करना उसके लिए असम्भव था।

रास्पुटिन्

जारीना का अन्तरंग मित्र था रास्पुटिन्। रास्पुटिन् अत्यन्त ही दुराचारी था। पर उसका प्रभाव जारीना पर अत्याधिक था। वह जारीना के दिल और दिमाग पर ऐन्द्रजालिक प्रभाव जमाये हुये था। जारीना उसे ईश्वर का दूत समझती, उसके कार्यों की तुलना प्रभु ईसा से करती थी। रास्पुटिन् की ही बात पर राजनीति चलने लगी और बड़े-२ अफसरों की बर्खास्तगी या बहाली होने लगी। रास्पुटिन् पहले सिरे का व्यभिचारी और भ्रष्टाचारी था, और शराब पीकर मस्त रहता था। जार जारीना की सलाह पर रास्पुटिन् की बात मानते रहा। रास्पुटिन् के विरुद्ध दरबार में भी साजिश होने लगी। राजपरिवार के सदस्य भी इसके कारनामों से तंग आ गये। जार का शासन बिल्कुल अयुक्तिसंगत हो गया। जनता पर अत्याचार की वृद्धि हुई। अन्त में रास्पुटिन्

रास्पुटिन की हत्या का अर्थ

की हत्या की गई। पर इस हत्या से यह सिद्ध हो गया कि राजपरिवार और समृद्ध उच्चवर्ग को भी षड्यन्त्र का आधार लेकर ही राजशासन में तबदिली करने को वाध्य होना पड़ा। जब राजा और रानी, और उनके अन्तरंग साथी ही जनता के हितों की खुली अवहेलना कर रहे थे तब उनके अफसरों

भ्रष्ट नौकरशाही

का क्या कहना। राज्य के बड़े-बड़े अफसर भ्रष्टाचार में डूबे थे, और जनता पर कई प्रकार से अत्याचार कर रहे थे। सर्वसाधारण का तो जार से प्रत्यक्ष सम्पर्क का सौभाग्य बिरले ही मिलता था, पर जार के कर्मचारियों की धांधली और भ्रष्टाचार से वे त्रस्त थे। एक कहावत प्रचलित की—ईश्वर स्वर्ग में है, और जार बहुत दूर। अफसर भी खुशामद और घूस के बस पर ही तरक्की पाते थे। इस तरह नौकरशाही-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो किसी भी शासन का मुख्य संचालक अंग है—एकदम अयोग्य और भ्रष्ट थी।

रूस के साम्राज्य में पोल, फिन, लिथूनिअनस्, मौंगोल और अन्य राष्ट्रीय जातियां थीं। रूस की सरकार ने अपने पूरे साम्राज्य में रूसीकरण (Russification) की नीति अपनाई। रूसी भाषा और रूसी संस्थाओं को जबरदस्ती गैर-रूसी प्रजाओं या क्षेत्रों पर लादा जाने लगा। साम्राज्य में गैर-रूसी राष्ट्रीय भावनाओं का दमन किया गया। रूसी राष्ट्रीय महत्वाकांक्षा को बढ़ावा दिया गया, और स्लाव जाति को सभ्यता का नेता समझा गया, और रूस स्लाव जाति का अगुआ था। इसलिए रूस ने एशिया और बाल्कन् की ओर प्रसार की नीति अपनाई। इस आक्रमक साम्राज्यवादी नीति के द्वारा रूस का ज़ार और उसके सलाहकार ने जनता का ध्यान देश की गम्भीर समस्याओं से हटा कर विदेशी नीति पर केन्द्रित करना चाहा। पर यह चाल भी असफल रही। रूस की इस रूसीकरण की नीति से रूसी साम्राज्य के अन्य राष्ट्रीय जातियों में राष्ट्रीय भावना का जोर बढ़ता गया और ज़ार और उसके शासन के प्रति असन्तोष और भी अधिक उग्र होता गया। पोलैन्ड का विद्रोह (१८६३) को कठोरतापूर्वक दबाया गया था, पर असन्तोष की आग भड़कती रही। बाल्टिक् प्रदेशों में रूसी भाषा ही राजभाषा घोषित हुई। जर्मन स्थानों का नाम रूसी पड़ा, और स्टेशन के साइनबोर्ड रूसी भाषा में ही लिखे गये। रूसी भाषा के सिवा अन्य भाषा में कोई मौलिक रचना नहीं छापी जा सकती थी। लूथरवादी चर्च का निर्माण स्वतन्त्रतापूर्वक नहीं हो सकता था। बेचारे यहूदियों पर तो बहुत अत्याचार हुये। जमीन खरीदने और बेचने के उनके अधिकार पर रोक लगाई गई। स्कूलों और विश्वविद्यालयों में उनकी भर्ती पर प्रतिबन्ध लगे। इनके विरुद्ध खुला आक्रमण या साजिश को प्रोत्साहित किया गया। अलेक्जेन्डर और निकोलस्

साम्राज्य में रूसीकरण की नीति

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय की इस नीति से साम्राज्य के अन्तर्गत गैर-रूसी जातियों को ज़ार और उसके शासन से अत्यन्त ही असन्तुष्ट रक्खा गया। क्रान्तिकारी दलोंने जनसाधारण के सामने रूस की इस साम्राज्यवादी नीति का भन्डाफोड़ कर दिया।

राजनैतिक-दल दमन के बावजूद जनता में प्रचार करते रहे। रूस का शासन निरंकुश था, और यहां शान्तिमय और वैधानिक आंदोलनों की परम्परा का बिल्कुल अभाव था। यह सच है कि रूस में एक दल था जो वैधानिक प्रगति में विश्वास रखता था, और रूस में वैधानिक प्रजातन्त्रवाद का विकास चाहता था। पर यह दल बहुत ही कमज़ोर था, और ज़ार के अचानक नीति-परिवर्तन से वैधानिक प्रगति में जनता का विश्वास कम था। इस दल की आर्थिक नीति भी जनता के हित में नहीं थी। निरंकुश और भ्रष्ट शासन के विरुद्ध हिंसा और क्रान्ति का ही रास्ता साफ मालूम पड़ता था। 'निहिलिस्ट' स्वेच्छाचारी राजतन्त्र का अन्त और प्रजातन्त्र के, निश्चित विकास में अत्यन्त विश्वास रखते थे। राज्य के दमनकारी कानूनों के कारण उन्हें गुप्त रूप से अपने विचारों का प्रचार करना पड़ा। बहुतों को पकड़ कर साइबेरिया भेज दिया गया। बुकानिन और और उसके अनुयायी 'अराजकतावादी' (Anarchists) थे। राज-संगठन का अस्तित्व ही मिटा देना इनका लक्ष्य था। इन क्रान्तिकारी विचारों का प्रचार करने में उन्हें गुप्त संगठन का सहारा लेना पड़ा, और हिंसात्मक उपायों से ही वे अपना लक्ष्य पर पहुंचना सम्भव समझते थे।

वैधानिक परम्परा का अभाव

निहिलिस्ट दल

राजशासन की क्रूरता और धांधली से परेशान होकर कुछ उत्साही नवजवान ऊँचे-२ अफसरों की हत्या करके ही राज्य को उलटना सम्भव समझने लगे। इन क्रान्तिकारियों (Terrorists) ने एक गुप्त केन्द्र की स्थापना की, और रूस के बड़े-२ अफसरों की हत्या की साजिश की जाने लगी। तीन

आतंकवादी-दल

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष के अन्दर ६ उच्च अफसर और ६ सरकारी जासूस को मार डाला गया। सरकार का भी इनके प्रति बहुत कड़ा रुख था। दर्जनों मार डाले गये, और हजारों नवजवानों को शक पर ही साइबेरिया भेज दिया गया। जार की सरकार ने आतंक का साम्राज्य और भी बढ़ा दिया। पर क्रान्तिकारियों का हौसला कम नहीं हुआ, और १८८१ में जार एलेक्जेन्डर द्वितीय की ही हत्या हो गई। रूस के किसानों की दयनीय अवस्था से कुछ पढ़े-लिखे नवयुवक जमींदार और अन्य आदर्शवादी साहसी युवक अत्यन्त चिन्तित थे। इनलोगों ने देहातों में जाकर किसानों के बीच रहकर उग्र विचारों का प्रचार करना शुरू किया। इन लोगों का यह सिद्धान्त था कि रूस की आत्मा देहात में है और किसानों के ही नेतृत्व में सामाजिक या राजनैतिक क्रान्ति हो सकती है। इनके दल का नाम नार्डोनिक दल था। इस विचार से लेनिन और अन्य मार्क्सवादी नेता सहमत नहीं थे।

समाजवादी क्रान्तिकारी पार्टी (Socialist Revolutionery Party) का रूस के देहाती इलाके में काफी प्रभाव था। इस दल के सदस्यों के ख्याल में रूस में समाजवादी क्रान्ति की सफलता ग्रामों के ही द्वारा हो सकती थी। औद्योगीकरण के बाद भी रूस कृषिप्रधान देश था, और यहां छोटे-छोटे किसानों और खेतिहर मजदूरों की दशा अत्यन्त गिरी थी। इसलिए समाजवादी-क्रान्तिकारी जारशाही का अन्त और न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था की स्थापना के लिए रूस की ग्रामीण जनता को ही क्रान्ति का अग्रदूत समझते थे, और भूमि समस्या को ही सबसे अधिक महत्व देते थे। इस दल के कार्यक्रम से गरीब किसान और खेतिहर मजदूर काफी प्रभावित थे। यह पार्टी मार्क्स् के विचारों से बहुत ही प्रभावित थी।

समाजवादी क्रांतिकारी पार्टी

ऐसे तो रूस में कार्लमार्क्स् के सिद्धान्तों का प्रवेश हो चुका था। यहां पूंजीवाद का विकास के साथ-२ जिन समाजवादी विचारों का

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकास हुआ वे इंगलैंड और फ्रांस के काल्पनिक समाजवाद के या रोजमर्रे की कठिनाइयों को हटाने के लिए मजदूर-संघ के आर्थिक सिद्धान्तों के आधार पर नहीं, वरन् मार्क्स् के क्रान्तिकारी और वैज्ञानिक समाजवाद पर आश्रित थे। मार्क्स् ने यह बतलाया था कि पूंजीवाद का अन्त और समाजवाद की स्थापना निश्चित है, पर समाजवाद की स्थापना के लिए मजदूरों को एक होना पड़ेगा, और राज पर अपना अधिकार जबरदस्ती करना पड़ेगा। सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व पूंजीवाद के समर्थकों का नाश करने के लिए और समाजवाद की नींव रखने के लिए जरूरी है। अतः एक ओर तो मार्क्स् ने मजदूरों को उनकी विजय का विश्वास दिला कर उत्साहित किया और दूसरी ओर इस विजय के लिए संगठित संघर्ष करना भी आवश्यक बताया, और यह संघर्ष मजदूर-संघ का आर्थिक संघर्ष नहीं वरन् राज पर बरबस अधिकार करने के लिए राजनैतिक संघर्ष था। यह वर्ग-युद्ध का आखिरी पग था। रूस में मार्क्सवादी दल का संगठन उन्नीसवीं सदी के अन्त में हो गया। इस दल का नाम था समाजवादी-जनवादी दल (Social Democratic Party)। मिल-मजदूर ही इस दल की रीढ़ माने गये। इस दल के विचार में बड़े-बड़े मिलों में एक साथ काम करने वाले और एक सी तकलीफ झेलने वाले मजदूरों में ही क्रान्ति का नेतृत्व करने की असाधारण क्षमता थी। मजदूरों का संगठन ही इस पार्टी का कार्यक्रम था। लेनिन इसी पार्टी का सदस्य था। लेनिन ने यह समझाया कि बिना गरीब किसान के सक्रिय सहयोग से सर्वहारावर्ग की क्रान्ति सफल नहीं हो सकती थी। इसलिए जमींदारी प्रथा का नाश और भूमि का समुचित बँटवारा भी इस समाजवादी दल का एक मुख्य कार्यक्रम था, जिसका प्रचार चुक-छिप कर देहात-देहात में होने लगा।

कार्लमार्क्स् के सिद्धान्तों का प्रभाव

समाजवादी-जनवादी दल

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाजवादी-क्रन्तिकारी पार्टी और समाजवादी-जनवादी पार्टी के प्रचार और संगठन के कारण मिलों में हड़तालों की और गरीब किसानों के विद्रोहों की संख्या में तेजी से वृद्धि होती गई। १९०५ में पूरे देश भर में करीब १५ लाख मजदूर थे, और इतनी कम संख्या में रह कर भी मिल-मजदूरों ने प्रति वर्ष बड़ी तायदाद में हड़तालों में भाग लिया। १९०३ में ८७०००, १९०४ में २५०००० और १९०५ में तो सब मिलाकर १८ लाख मजदूरों ने हड़तालों में भाग लिया। इससे देश का राजनैतिक तापमान कितनी जल्दी से चढ़ रहा था स्पष्ट हो जाता है। उद्योगपति और उदारवादी शिक्षितवर्ग जार से वैधानिक सुधार की मांग करने लगे। स्थानीय स्वशासित संस्थायों (Zemstov) ने अपनी-२ रिपोर्टों में वैयक्तिक स्वतन्त्रता, प्रेस की स्वतन्त्रता, और राष्ट्र की प्रतिनिधि-सभा का सुझाव दिया। पर जार और उसके प्रतिक्रियावादी सलाहकार प्लेवे ने इसे अनसुनी कर दिया, और विट्टे बर्खास्त कर दिया गया (१९०३)।

हड़ताल और किसान विद्रोह की भरमार

पर इसी समय रूस-जापान युद्ध छिड़ गया। इस साम्राज्यवादी युद्ध के द्वारा रूस की सरकार ने जनता का ध्यान अपनी गृह-समस्याओं से हटाना चाहा होगा। पर परिणाम उल्टा हुआ। क्रान्ति का गला घोटने के बदले इस युद्ध ने क्रान्ति को और निकट लाया। युद्ध में रूस की करारी हार हुई। ज़ार और उसके शासन की कमजोरी और अयोग्यता सिद्ध हो गई। देश में असन्तोष बढ़ गया, और क्रान्तिकारियों का उत्साह भी बढ़ गया। जापान की विजय रूस के लिए राष्ट्रीय अपमान था। क्रान्तिकारियों ने जनता में यह विचार सफलतापूर्वक फैलाया। जार के विरुद्ध क्रान्ति का वातावरण तैयार था।

रूस और जापान का युद्ध

पूंजीवादी व्यवस्था से मजदूर परेशान थे, जमींदारों से किसान त्रस्त थे, और जार के स्वेच्छाचारी और भ्रष्ट शासन में किसी को कुछ भी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकार नहीं था। ऐसे असन्तुष्ट वातावरण में रूस-जापान युद्ध ने आग में घी का काम किया। दिसम्बर १६०४ में बाकू में मजदूरों की संगठित हड़ताल हुई। यह उग्रतर आन्दोलन के लिए इशारा था। १६०५ की जनवरी में पिटर्सबर्ग में एक आम हड़ताल हो गई, और यह तय हुआ कि मजदूरों का एक जलूस ज़ार के राजभवन में जाकर उन्हें एक निवेदन पत्र दें जिसमें मजदूरों की दयनीय अवस्था, और उनकी सहनशक्ति की सीमा का उल्लेख रहे। २२ जनवरी १६०५ में करीब डेढ़ लाख मजदूर इकट्ठे हुये, सपरिवार ज़ार के शीत-महल (Winter Palace) की ओर चल पड़े। पर ज़ार ने इस जुलूस पर गोली चलाने का हुक्म दिया, और इस 'खूनी रविवार' के दिन सैकड़ों गोली के शिकार हुये। ज़ार ने मजदूरों पर गोली चलाई थी, मजदूर भी अब ज़ार के विरुद्ध यही नीति अपनाने को सोचने लगे।

रक्तरंजित रविवार (१६०५)

जनवरी के इस गोलीकाण्ड के फलस्वरूप सारे देश में हड़ताल और किसानों के विद्रोह होने लगे। ज़ार के चाचा की हत्या की गई, और कई उच्च अफसर भी मौत के घाट उतारे गये। इन हड़तालों और किसान विद्रोहों का उद्देश्य तत्कालीन आर्थिक बुराईयों का सुधार नहीं वरन्, एक सार्वजनिक क्रान्ति के द्वारा ज़ार का शासन उलट देना था। ज़ार भी दमन की नीति पर आमदा था। ज़ार ने दमन के साथ २ कुछ सुधार का भी आश्वासन दिया। एक प्रतिनिधि ड्यूमा (लोकसभा) बुलाई जायगी ऐसी घोषणा हुई। पर इस पहली ड्यूमा को कानून बनाने का अधिकार नहीं था। लेनिन के अनुयायियों ने इस ड्यूमा का बहिष्कार करने का निश्चय किया और राजनैतिक हड़ताल की नीति को और भी सार्वजनिक बनाने का भी निश्चय किया। मजदूरों और किसानों के आन्दोलनों के अलावे सेना में भी अब विद्रोह की सम्भावना हो गई। काला-सागर तटस्थित रूसी जंगी-बेड़ा का जंगी जहाज पोटेंकिन के जहाजियों

जहाजी बेड़ा का विद्रोह

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने विद्रोह कर दिया (जून १९०५)। यह विद्रोह सख्ती से कुचल दिया गया, पर अक्टूबर में सारे देश में एक साथ सार्वजनिक राजनैतिक हड़तालें होने लगीं। इसी समय पिटर्सबर्ग के मिल-मजदूरों ने अपने संघर्ष का संचालन करने के लिए प्रतिनिधि-सोवियतों (Soviets) की स्थापना की। आगे बाद में ऐसे सोवियत देश भर में फैल गये, और इन्होंने क्रान्ति के संचालन और सफल अन्त में बड़ा भाग लिया, और नवीन रूस का राजनैतिक संगठन भी इसी आदर्श पर स्थापित किया गया। देश में व्यापक आंदोलन ने आखिर ज़ार को झुकाया और अक्टूबर ३० को ज़ार ने नयी घोषणा की। इस घोषणा के अनुसार नागरिकों को वैयक्तिक स्वतन्त्रता, मूल नागरिक अधिकार, धर्मपालन की स्वतन्त्रता, भाषण और सभा करने के अधिकार, एक नयी व्यवस्थापिका प्रतिनिधि-ड्यूमा का चुनाव और प्रत्येक वर्ग को मताधिकार मिलने का आश्वासन दिया गया। बिना ड्यूमा की स्वीकृति के कोई कानून नहीं बन सकता था। इस घोषणा के कारण और ज़ार की दमन-नीति के कारण उग्रवादी क्रान्तिकारियों का सशस्त्र विद्रोह का प्रयास असफल रहा।

पिटर्सबर्ग की सोवियत।

अक्टूबर की घोषणा।

राजनैतिक दलों में भी शासन के विरुद्ध एकमत नहीं रहा। उदारवादी दल दो दल में बंट गये थे। एक दल अक्टूबर की घोषणा से सन्तुष्ट था, और जारशाही का अन्त नहीं वरन् उस पर ड्यूमा का कुछ प्रभाव रहे ऐसा चाहता था। इन्हे 'अक्टूबरिष्ट' कहा जाता था। दूसरा दल रूस में जनता की सार्वभौम सत्ता का सिद्धान्त का समर्थन करता था, और उसकी मांग थी कि ड्यूमा की पहली सभा एक पूर्ण प्रजातान्त्रिक संविधान बनाने में लग जाय। इस दल को कैडेट (Cadet) पार्टी कहा जाता था। मार्क्सवादी सामाजिक-जनवादी मजदूर दल (Social-Democratic Labour Party) में भी घोर मतभेद था। इस दल के द्वितीय कांग्रेस (१९०३) में ही पार्टी के

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संगठन और नियम पर दो दल हो गये। लेनिन और उसके अनुयायी बौल्शेविक कहलाए, क्योंकि इस में इनका बहुमत था, और अल्पमत वाले मेन्शेविक कहलाये। पार्टी का संगटन और क्रान्ति के रूप इत्यादि प्रश्नों पर इनमें मौलिक मतभेद था।

ब्लैक-हन्ड्रेड्स (Black-Hundreds)

राजनैतिक दलों में अनैक्यता से जार ने फायदा उठाया, और और वह अब फिर अपने सुधारों को वापस लेकर प्रतिक्रिया की नीति पर चलने में उत्साहित हुआ। रूस में बड़े २ जमींदार, प्रतिक्रियावादी सैनिक अफसर इत्यादि ने मिल कर एक 'रूसी जनता का संघ' (Union of Russian People) स्थापित किया जिसका लक्ष्य था नये सुधारों

सुधारों का अन्त

का अन्त, और जार के स्वेच्छाचारी शासन की रक्षा। इस संघ ने आंतकवाद का रास्ता अपनाया और क्रान्तिकारियों और प्रगतिशील नेताओं की हत्या की जाने लगी। इन काली करतूतों के उत्तरदायीयों को "ब्लैक हन्ड्रेडस्" कहा जाता था। जार ने इनके दवाव में आकर ड्यूमा की शक्ति को

द्वितीय ड्यूमा का भंग।

कम करने की राजाज्ञा निकाली (मार्च १९०६), प्रगतिशील विट्टे को वर्खास्त कर प्रतिक्रियावादी स्टोलिपिन् प्रधान मन्त्री बनाया गया। प्रथम ड्यूमा भंग कर दी गई। और वैधानिक शासन स्थापित करने का 'कैडेट दल' का प्रयास असफल रहा। द्वितीय ड्यूमा में विरोधी दल का बहुमत रहा, और ड्यूमा और मिनिस्टरी में गहरा मतभेद हुआ। जमींदारी प्रथा का अन्त और मन्त्रियों को ड्यूमा के प्रति उत्तरदायी बनने की मांग की गई। समाजवादी प्रतिनिधि मन्त्रीमंडल के कट्टर विरोधी थे। प्रधान मंत्री ने ड्यूमा से इनको गिरफ्तार करने की अनुमति मांगी जो नहीं दी गई, और द्वितीय ड्यूमा भी भंग कर दी गई (१९०७)। निर्वाचन के नियमों में जार ने हेर फेर किया जिससे कि स्थिति-स्थापकों (Conservative) और प्रतिक्रियावादियों का बहुमत नयी ड्यूमा में निश्चित था। जार ने

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३० अक्टूबर के घोषणापत्र का स्वयं उल्लंघन किया। ड्यूमा के अधिकारों में और भी कमी की गयी। मंत्रीमंडल को स्थाई कानून बनाने का अधिकार मिला और सेना और जंगीबेड़ा और वैदेशिक नीति पर जार का एकाधिपत्य की घोषणा की गई। पिछलग्गू ड्यूमा से खुश होकर जार की सरकार दमन की नीति पर दृढ़ रही। क्रान्तिकारी आतंकवादियों ने स्टोलिपिन् की हत्या कर दिया (१९११)। चौथी ड्यूमा १९१२ में बैठी, और तीसरी की तरह इसमें भी स्थितिस्थापकों का ही बहुमत था।

यद्यपि १९०५ की क्रान्ति असफल रही थी, और प्रतिक्रियावादी दल का जोर रहा, पर भीतर हीभीतर जारशाही के विरुद्ध आग सुलग रही थी। बौल्शेविकों ने मिल-मजदूरों के संगठनों पर अपना प्रभाव बढ़ा लिया था। समाजवादी-क्रान्तिकारी दल देहातों में क्रान्ति का प्रचार कर रहा था। इसी समय प्रथम विश्वयुद्ध आरम्भ हुआ (१९१४) और रूस इंगलैंड और फ्रांस के साथ जर्मनी के विरुद्ध मैदान में कूद पड़ा। पहले तो युद्ध के पक्ष में रूस में जनमत था। इस युद्ध के द्वारा स्लावों की राष्ट्रीय महत्वाकांक्षा पूरी होगी ऐसा विश्वास उन्हें दिलाया गया था। पर युद्ध रूस के विरुद्ध ही जा रहा था। युद्ध का संचालन बुरी तरह हो रहा था। मोर्चे पर सिपाहियों को न पर्याप्त रसद और न अच्छे शस्त्र मिल रहे थे, पर पूंजीपति लोग युद्ध सामग्री का ठीका लेकर बहुत नफा कमा रहे थे। बौल्शेविक युद्ध के विरुद्ध थे। वे इसे साम्राज्यवादी युद्ध समझते थे, और साम्ययादी क्रान्ति के द्वारा सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व तुरन्त स्थापित करना चाहते थे। मेन्शेविक पार्टी मध्यमवर्ग को वैधानिक शासन स्थापित करने देना चाहते थे। उनके विचार में समाजवाद के विकास में समय लगेगा। पर बौल्शेविक अपने उग्र विचारों का प्रचार मिल-मजदूरों और किसानों में बड़े जोश से कर रहे थे। कानूनी और गैरकानूनी दोनों उपायों से

प्रथम-विश्वयुद्ध

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बौल्शेविक अपने मत का प्रचार करते रहे। ड्यूमा में इनके सदस्य राजशासन और नीति की कड़ी आलोचना करते थे। और जनता से इन्होंने खुला सम्पर्क बनाये रक्खा। चुक-छिप कर जब्त अखबारों को छापने और बांटने का काम भी होता रहा। रूस की सरकार के द्वारा युद्ध के अयोग्य संचालन से किसान, मजदूर और सिपाहियों में असंतोष बहुत बढ़ रहा था। मजदूरों की हड़तालों और किसानों के विद्रोहों की संख्या बढ़ गई। मध्यमवर्ग भी युद्ध की स्थिति से भयभीत हो गया। विश्वासपात्र ड्यूमा की रचनात्मक आलोचना भी जार और उसके मंत्रियों को असह्य थी। जार देश की सच्ची स्थिति से एकदम अनभिज्ञ था, और वह स्वयं सेना का सर्वोच्च सेनानायक बन गया। अब युद्ध में पराजय का प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व जार पर ही पड़ा। सेना के साधारण सिपाही आपस में यह कहने लगे कि हमलोगों का तो पैर कटेगा और साम्राज्यवादियों को देश मिलेगा। पराधीन राष्ट्रों में भी बेचैनी बढ़ रही थी।

क्रान्ति का आरम्भ।

जार ने ११ मार्च १६१७ को आज्ञा निकाली कि ड्यूमा के सदस्य अपने २ घर जांय और पेट्रोग्राड के हड़ताली मजदूर अपने काम पर वापस जांय। आंदोलन बंद हो। जार के इस जारशाही हुक्म से स्थिति और भी बिगड़ गई, और क्रान्ति हो गई। पेट्रोग्राड के मजदूर हड़ताल पर डटे रहे, और कौसेक घुड़सवारों ने मजदूरों की भीड़ पर गोली नहीं चलाई। सारे देश में हड़ताल और विद्रोह होने लगे। सेना में भी विद्रोह हो गया। सेना के साधारण सैनिक मजदूरों के साथ मिल गये। सेना का क्रान्ति का पक्ष लेना क्रान्ति की सफलता का प्रमुख कारण था। जार की रेलगाड़ी ग़लत रास्ते ले जायी गई, और निकोलस् ने अपनी विवशता देख ली। १५ मार्च १६१७ को निकोलस् ने राज्यगद्दी छोड़ देने की घोषणा की, और अपने भाई माइकेल को अपना उत्तराधिकारी बनाया। पर

अस्थाई सरकार की स्थापना

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस वंश का प्रतिनिधि राजगद्दी पर बैठा रहे यह अब सम्भव नहीं था। राजतन्त्र का अन्त हो गया और एक अस्थाई सरकार (Provisional Government) जेनरल लूवो की नेतृत्व में गठित हुई। इस सरकार में वैधानिक प्रजातान्त्रिक पार्टी (Cadet-Constitutional Party) के कई सदस्य थे। केरेन्स्की, जो स्वयं समाजवादी-क्रान्तिकारी पार्टी क एक प्रमुख सदस्य और पेट्रोग्राड् सोवियत् का प्रतिनिधि था, एक मंत्री था। यह सरकार मध्यमवर्गीय सरकार थी। राजनैतिक अधिकारों की घोषणा हुई, नागरिकों को वैयक्तिक स्वतन्त्रता मिली, फिन्लेन्ड और पोलैन्ड ऐसे पराधीन राष्ट्रों को अपना भविष्य चुनने का आश्वासन मिला। राजनैतिक बंदियों को मुक्ति मिली, देशनिकालों को देश लौट आने की अनुमति मिली। वालिगमताधिकार से निर्वाचित एक संविधान सभा बुलाने की प्रतिज्ञा की गई। जनता से युद्ध में जोश से मदद देने की अपील की गई।

जनता में असन्तोष

अतः रूस की यह अस्थाई सरकार प्रजातान्त्रिक शासन स्थापित करना चाहती थी। इस सरकार से पूंजीपति व मध्यम वर्ग को फायदा था। पर रूस की जनता राजनैतिक क्रान्ति से अधिक सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति की भूखी थी। पर इस सरकार ने मजदूरों और गरीब किसानों की समस्याओं का समाधान नहीं किया। पूंजीवादी और जमींदारी व्यवस्था पर आघात नहीं किया गया। युद्ध को जारी रखने की भी नीति साधारण जनता को नापसन्द थी। मार्च की क्रान्ति में ही देश भर में मजदूरों, किसानों, और सैनिकों ने अपने २ सोवियत स्थापित कर लिया था। ये सोवियत ही अब क्रान्तिकारियों की शक्ति के केन्द्र थे। प्रजातान्त्रिक आधार पर गठित इन सोवियतों की ही बात इनके सदस्य मानते थे। जर्मन जासूस भी रूस को युद्ध से निकल आना चाहिए ऐसा प्रचार कर रहे थे। पराधीन राष्ट्र भी साम्राज्यवादी रूस के इस युद्ध से अपना

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ फायदा नहीं देखते थे। अतः अस्थाई सरकार का विरोध होने लगा, और देश में इसके अलावे सोवियतों की पटरी (Parallel) सरकार थी। इसी समय जर्मनी ने एक बंदगाड़ी में लेनिन को स्वीट्जरलैंड से रूस भेज दिया। (३ अप्रिल १९१७)। बौल्शेविकों की सफलता और अस्थाई सरकार का पतन का श्रेय लेनिन को बहुत है। लेनिन का यह नारा था "अस्थाई सरकार से बिल्कुल असहयोग"। पराधीन राष्ट्रों ने भी अपनी राष्ट्रीय सभाओं में स्वतन्त्रता की घोषणा की। मई १९१७ में अस्थाई सरकार का पुर्नसंगठन हुआ। कई प्रतिक्रियावादी मन्त्रियों को इस्तिफा देना पड़ा। नये मंत्रीमंडल में केरेन्सकी सबसे प्रमुख था। केरेन्सी युद्ध का सफल अन्त चाहता था, और रूस में प्रजातान्त्रिक शासन और आर्थिक सुधार लाना चाहता था। पर उसे वैधानिक दल के सदस्यों से सहयोग नहीं मिलता था, क्योंकि अब ये लोग क्रान्ति से डर गये थे, और प्रतिक्रियानीति के द्वारा ही उग्र समाजवादी आंदोलन से अपने हितों की रक्षा कर सकते थे। केरेन्सकी इसलिए बड़ा दयनीय अवस्था में था। युद्ध में भी वह सफलता नहीं प्राप्त कर सका। रूसी सेना जर्मनी से पराजित हुई। केरेन्स्की का प्रभाव और प्रतिष्ठा का प्रायः अन्त हो गया था। सचमुच में वह अब अकेला रह गया था।

सोवियतों का विरोध।

केरेन्सकी का मंत्रीमंडल।

बौल्शेविकों ने अपना प्रचार उग्र रूप से जारी रक्खा, और शहरों की कई सोवियतों में उनका अजेय प्रभाव स्थापित हो गया।

६ नवम्बर १९१७ को बौल्शेविकों ने हिंसक क्रान्ति शुरू कर दी। पैट्रोग्राड् पर उनका अधिकार हो गया। ७ नवम्बर को रेलवे स्टेशन, डाकखाना, तारघर, राज्यबैंक इत्यादि पर क्रान्तिकारियों का अधिकार हो गया। अस्थाई सरकार के सभी सदस्य गिरफ्तार कर लिए गए। लेनिन स्वयं ही इस क्रान्ति का संचालन कर रहा था। केरेन्स्की भाग गया। बौल्शेविकों का

नवम्बर की क्रान्ति (नवम्बर १९१७)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधिपत्य रूस के शासन पर हो गया। इस क्रान्ति में, अस्थाई सरकार के उलटने में, कम से कम रक्त बहा। दो दर्जन से अधिक आदमी नहीं मारे गये। राज्य की सार्वभौम सत्ता सोवियतों की दूसरी राष्ट्रीय-सभा में केन्द्रित हो गई, साम्यदादी रूस की पहली सरकार की स्थापना हुई। इस मन्त्रीमंडल का नाम Council of People's Commissars था और लेनिन इसका सभापति था। सिर्फ बौल्शेविक ही इसके सदस्य थे।

बौल्शेविकों का एक प्रमुख नारा था 'युद्ध बन्द हो'। जनसाधारण शान्ति के लिए उतावले हो रहे थे। लेनिन भी युद्ध बन्द होने के बाद ही देश में क्रान्तिकारी उलटफेर कर सकता था। इसलिए

युद्ध का अन्त

८ नवम्बर को ही यह घोषणा की गई कि रूस से लड़ने वाले देश युद्ध स्थगित कर दें, और पूर्ण शान्ति की स्थापना हो। लेनिन ने अन्त में जर्मनी की कड़ी शर्तों को मान लिया, और ब्रेस्टलिटोभ्स्क् की सन्धि (२३ फरवरी १९१८) के अनुसार लैट्विया, इस्टोनिया, पोलैन्ड जर्मनी के हाथ में चले गए, और यूक्रेन् पर जर्मन प्रभुत्व स्थापित हो गया। रूस ने जर्मनी को हर्जाना में एक बड़ी रकम भी देना मंजूर कर लिया। लेनिन ने इस सन्धि को 'एक दुखदाई सन्धि' बताया, पर उसके विचार में कोई अन्य चारा नहीं था।

लेनिन ने किसी भी शर्त पर युद्ध अन्त करने की नीति इस कारण अपनाई थी कि उसे रूस में सामन्तवादी और पूंजीवादी व्यवस्था का अन्त कर समाजवाद की ओर प्रगति करने में सफलता मिले, और अब

जमींदारी प्रथा का अन्त, और भूमि का बंटवारा

राज्य पर सर्वहारावर्ग की तानाशाही स्थापित हो गई। जमींदारों, राजपरिवार के सदस्यों, और मठों की जमीन बिना हर्जाना दिये हुये छिन ली गई और किसानों में जोतने के लिए बांट दी गई। जमींदारों को

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगान देने से किसानों को मुक्ति मिली। भूमि पर राज्य का स्वामित्व की घोषणा की गई। राज्य-बैंक का राष्ट्रीयकरण हुआ। अन्य बड़े-बड़े उद्योगों पर भी सार्वजनिक स्वामित्व स्थापित हो गया।

बैंक का राष्ट्रीयकरण

बौल्शेविकों को अपने कार्यक्रम को कार्यान्वित करने में विरोध भी मिला। पर लेनिन ने सभी विद्रोहों को बुरी तरह कुचल दिया, और क्रान्तिविरोधी संगठनों और अखबारों को गैरकानूनी करार दिया। बौल्शेविकों का अधिनायकत्व स्थापित हो गया, और प्रजातान्त्रिक पद्धति को जरा भी प्रश्रय नहीं मिला। मिल, कारखाना; रेल, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, तिजारती बेड़ा इत्यादि का राष्ट्रीयकरण हो गया। बौल्शेविक सरकार किसानों को कम दाम पर गल्ला बेचने को बाध्य करने लगी। खुशहाल किसानों ने इस नीति का खुला विरोध किया। गल्ला बेचना बन्द कर दिया। शहरों में अन्न की कमी हो गई, और रोटी के लिए दंगे होने लगे। सोवियत सरकार के विरुद्ध आंदोलन उग्र होता गया। मजदूरों में कठोरतापूर्वक अनुशासन की स्थापना और मजदूरी के दर में कार्य के अनुसार अत्यन्त फर्क रखने के कारण भी असन्तोष भड़काया जा सकता था। लेनिन ने दृढ़तापूर्वक इन आंदोलनों को दबाया। गरीब किसानों को खुशहाल किसानों के विरुद्ध संगठित किया गया, और इस प्रकार रूस के देहाती इलाकों में भी बौल्शेविक प्रभाव स्थापित कर लिया गया।

बौल्शेविकों का अधिनायकत्व की स्थापना

लेनिन की दृढ़ और कठोर नीति को समझने के लिए हमें क्रान्तिकारी रूस पर विदेशी आक्रमणों को समझना होगा। लेनिन ने जर्मनी से अपमानजनक सन्धि भी कर लिया था क्योंकि वह युद्ध नहीं शान्ति चाहता था। पर नवीन रूस को विदेशी आक्रमणोंका सामना करना पड़ा। साम्यवादी रूस ने विदेशी ऋण को रद्द कर दिया था। फ्रांस और इंगलैंड के बड़े-

सोवियत-रूस पर विदेशी आक्रमण

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े पूंजीपति अपनी पूंजी गवाँ बैठे। ऋण का इस प्रकार रद्द कर देना इन देशों की नज़र में निहायत ही अन्यायपूर्ण था। रूस इंगलैंड और फ्रांस का मित्र था और अब बिना उनकी राय के जर्मनी से सन्धि करके रूस ने मित्र राष्ट्रों की नज़र में घोर विश्वासघात का काम किया था। रूस की साम्यवादी-क्रान्ति पूँजीवादी राष्ट्रों के लिए एक चुनौती थी। उन्हें यह भय होने लगा कि कहीं उनके देशों में भी मजदूरों में ऐसी ही हिंसक और सामाजिक क्रान्ति न हो जाय। लेनिन के नेतृत्व में सोवियत राष्ट्रीय-कांग्रेस में ८ नवम्बर को एक प्रस्ताव पास हुआ था जिसमें इंगलैंड और फ्रांस और जर्मनी के जागृत मजदूरवर्ग को शोषित जनता का शोषण का अन्त करने के लिए आवाहन किया गया था। रूस में इस समय बौल्शेविक सरकार की नींव दृढ़ नहीं हुई थी और देहाती इलाको में असन्तोष और विद्रोह फैला हुआ था, और नेताओं में भी नीति पर एक मत नहीं था। इन्हीं सब कारणों से विदेशी राष्ट्रों ने रूस में हस्तक्षेप करने की नीति अपनाई। इंगलैंड, फ्रांस, पोलैण्ड, जापान और अमेरिका की सेनाएं सोवियत रूस में घुस आईं। रूस के प्रतिक्रियावादी दलों ने उन्हें सहायता दी। सोवियत रूस पर यह एक भयंकर आघात था। पर लेनिन ने 'मातृभूमि खतरे में है' इस नारे के आधार पर विदेशियों का सामना करने के लिए राष्ट्रीय भावना को जागृत किया। ट्राट्स्की ने रूस की लाल-सेना को संगठित और सबल बनाने में अपूर्व उत्साह और योग्यता दिखायी। विदेशी आक्रमण के साथ-साथ गृहयुद्ध का भी सामना करना पड़ा। पर लेनिन और ट्राट्स्की के नेतृत्व में विदेशी और घरेलू दुश्मनों को मुंह की खानी पड़ी। जनवरी १९२० में इटैली फ्रांस और ग्रेट बृटेन ने रूस की नाकाबन्दी उठा ली। पोलों का युक्रेन पर आक्रमण भी अंत में असफल हो गया, और २० अक्टूबर १९२० में रीगा की सन्धि हो पई। पोलैंड ने नीपर नदी के पश्चिम तटस्थित यूक्रेन और वाइलोरूस पर का अपना दावा छोड़ दिया। गृहयुद्ध में भी सोवियत सरकार विजयी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही। क्रीमिया, जौर्जिया, आर्मिनिया, अजरबाइजान प्रभृति प्रदेशों पर सोवियत् रूस की सत्ता स्थापित हो गई। जापान को छोड़कर अन्य राष्ट्र १९२० के अन्त तक ही रूस से हट गये। सोवियत रूस की स्वतन्त्रता बच गई, और समाजवाद की स्थापना के लिए देश को समय मिला। शक्तिशाली विदेशी राष्ट्रों के विरुद्ध सोवियत रूस की यह सफलता वास्तव में अद्भुत है।

पर इस युद्ध का एक परिणाम यह हुआ कि रूस में युद्धकालीन-साम्यवाद की स्थापना हुई। गृहयुद्ध और विदेशी आक्रमणों का सामना करने के लिए सोवियत सरकार को दृढ़ नीति अपनाना पड़ा। सारे देश को युद्धस्तर पर ले आना था। उद्योग और कृषि को व्यक्ति की मनमानी पर छोड़ना खतरनाक था। इसलिए बड़े-बड़े उद्योगों के अलावे मध्यम और छोटे-२ उद्योगों का भी राष्ट्रीयकरण किया गया जिससे कि उत्पादन सरकार के हाथ में रहे, और सेना को समुचित रसद मिल जाय। गल्ला की तिजारत पर सरकार का एकाधिपत्य स्थापित हुआ, और किसानों को अपनी जरूरत से फाजिल गल्ला सरकार को सरकारी दाम पर बेचना पड़ा। सभी नागरिकों को काम करने के लिए वाध्य किया गया जिससे कि मजदूर मोर्चे पर जा सकें, और उद्योग और कृषि का काम ठप् न पड़ जाय।

युद्धकालीन साम्यवाद

'युद्धकालीन साम्यवाद' का परिणाम सोवियत रूस की आर्थिक स्थिति पर बुरा हुआ। विदेशी आक्रमण और गृहयुद्ध के कारण उद्योगों की हालत बदतर हो गई थी। सरकार को ही अब उद्योगों को चलाना था पर सरकार की सारी शक्ति बाहरी और भीतरी दुश्मनों का सामना करने में लग गई। सरकारी अफसरों को उद्योगों का अनुभव भी नहीं था। बड़े-बड़े उद्योगों में जार के समय से भी बहुत कम उत्पादन हुआ। कई मिल और फैक्टरी बन्द थे। यातायात की बुरी दशा थी। सूती कपड़ों का भी अभाव था। साम्य-वादी रूस की कृषि-नीति से कृषक अत्यन्त क्षुब्ध थे। गल्ला मनमानी

और उसके बुरे परि-णाम

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कीमत पर छिन लिया जायगा इसलिए कृषि में उत्साह दिखाने की प्रवृत्ति ही मिट गई। फल यह हुआ कि अन्न का उत्पादन बहुत कम हो गया। गल्ले के व्यापार पर सरकार का एकाधिपत्य से भी जनसाधारण-उत्पादक और भोक्ता-परेशान थे। १६२० में अन्न का उत्पादन ज़ार के जमाने का आधा था। अतः देश में चारों ओर दरिद्रता और असन्तोष फैल रहा था। पर लेनिन एक महापुरुष था। उसने समझा कि साम्यवाद जरूरत से अधिक ज्यादे आगे चला गया था और देश के आर्थिक विकास में ही साम्यवादी सरकार का कल्याण है। इसलिए उसने नयी-आर्थिक नीति (New Economic Policy—Nep) चलाई। किसानों से गल्ला वसूलने की नीति छोड़ दी गई, और इसके बदले उनसे अन्न के रूप में निश्चित और आसान कर लेने की नीति अपनाई गई। गल्ले का तिजारत भी अब व्यापारियों के हाथ में छोड़ दिया गया और किसानों को फाजिल गल्ला जिसे चाहें उसे और जिस दर पर चाहें उस दर पर बेचने का अधिकार मिल गया। छोटे-मोटे उद्योग भी अब साधारण पूँजीपति खोल सकते थे। अतः पूँजीवाद की, अब कुछ अंश में ही सही, पुनर्स्थापना हुई। पर लेनिन का यह विचार था कि कभी-कभी मोर्चे पर से पीछे हटने में ही अन्तिम लक्ष्य नजदीक आता है। लेनिन ने अपनी इस नीति के द्वारा साम्यवादी-दल और समाजवाद का भविष्य बचा लिया। १६२२ में अन्न उत्पादन बढ़ा, उद्योगों में भी तरक्की हुई और रेलवे की दशा सुधरी। लेनिन की नीति सफल रही। नवम्बर १६२२ में लेनिन ने कहा था कि 'NEP Russia will become Socialist Russia'. लेनिन ने पूँजीवाद से समझौता कर समाजवाद का लक्ष्य नहीं छोड़ा था। पर वह शीघ्र ही बहुत बीमार हो गया, और २१ जनवरी १६२४ को उसकी मृत्यु हो गई।

'नेप' (Nep)

संसार के महापुरुषों में लेनिन का स्थान सुरक्षित है। उसने रूस

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में पहले पहल साम्यवादी क्रान्ति किया और समाजवाद की रूपरेखा निर्धारित किया। पिछड़े रूस में साम्यवादी क्रान्ति होगी पहले ऐसा सोचना मूर्खता होती। पर यह लेनिन की कुशाग्रबुद्धि और संचालनशक्ति का परिणाम था कि रूस में यह क्रान्ति सफल हो सकी। लेनिन मार्क्स का अनुयायी था, पर उसके विचार और कार्य किसी पुस्तक पर आधारित नहीं वरन् वस्तुस्थिति पर आधारित थे। उसने रूस में सदियों से स्थापित निरंकुश राजतन्त्र और अन्यायी सामाजिक व्यवस्था को उखाड़ फेंका। उसने रूस का अभ्युदय संभव किया, और महान राष्ट्रों के आक्रमण से नवजात-शिशु सा सोवियत रूस की रक्षा की। वह वर्त्तमान रूस का पिता है, और शोषित मानव में नवोत्साह पैदा करने वाला है।

लेनिन का महत्व

लेनिन की मृत्यु के बाद स्तालिन और ट्राट्स्की में नेतृत्व के लिए होड़ हो गयी, और अन्त में स्तालिन अपने कौशल और संचालन शक्ति के द्वारा लेनिन का उत्तराधिकारी बन गया। वह साम्यवादी दल का प्रधान मन्त्री था। ट्राट्स्की का यह विचार था कि रूस में साम्यवाद कभी भी स्थायी नहीं हो सकता जब तक कि समूचे संसार में साम्यवादी क्रान्ति के फलस्वरूप सर्वहारावर्ग का अधिनायकत्व नहीं स्थापित हो जाय। ट्राट्स्की के विचार में पूँजीवादी विश्व साम्यवादी रूस के प्रति षडयन्त्र रचता रहेगा। इसलिए सोवियत रूस को संसार के सभी देशों में साम्यवादी क्रान्ति करने में नेतृत्व करना चाहिए। स्तालिन का मत था कि पहले रूस में साम्यवाद को पुरी तरह स्थापित कर लेना चाहिए, और उसके बाद रूस के उदाहरण से विश्व में साम्यवाद को प्रोत्साहन मिलेगा। पर अभी रूस को अपने घर का ही ख्याल करना चाहिए, और विश्व में सक्रिय और तत्काल साम्यवादी क्रान्ति करने के प्रयास रूस के साम्यवाद के लिए अभी घातक होगा। ट्राट्स्की इसे विश्व साम्यवाद के प्रति गद्दारी समझता था। स्तालिन ने ट्राट्स्की और उसने अनुयायियों को सोवियत की साम्यवादी दल से

स्तालिन-ट्राट्स्की संघर्ष

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकाल दिया (नवम्बर १६२७), और कितने साम्यवादी-क्रान्ति के नेताओं और लेनिन के अनुयायियों को प्राणदण्ड मिला। ट्राट्स्की को, जिसने लाल सेना (Red Army) का अद्भुत संचालन और उसका निर्माण किया था, देश छोड़कर विदेशों में भटकना पड़ा, और अन्त में उसकी हत्या हो गई।

स्तालिन का शासन काल १९२४—

स्तालिन के राज्यकाल में प्रत्येक दिशा में सोवियत रूस की अभूतपूर्व प्रगति हुई है। रूस आज शक्तिशाली और समृद्ध राष्ट्र है। संसार के महान् राष्ट्रों में संयुक्त-राष्ट्रसंघ अमेरिका और सोवियत् रूस सबसे आगे हैं। रूस की इस प्रगति का समुचित मूल्यांकण करने के लिए हमें यह याद रखना चाहिये कि सोवियत रूस को भीषण गृहयुद्ध, विदेशी आक्रमण और संसार के बड़े भाग का विरोध का सामना भी करना पड़ा है।

लेनिन ने पथ-प्रदर्शक का काम किया था और अपने अन्तिम दिनों में वह इस निश्चय पर पहुँचा था कि रूस में समाजवाद की स्थापना सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व और किसानों के सक्रिय सहयोग से ही सम्भव था। देश का भविष्य बिजलीकरण पर ही निर्भर करता है, ऐसा लेनिन का बिश्वास था। कृषि की उन्नति और देश का औद्योगीकरण लेनिन का ध्येय था। स्तालिन ने लेनिन के लक्ष्य को पूरा करने की दृढ़ नीति अपनाई।

'नेप' की नीति से रूस में कृषि और उद्योग की स्थिति सम्हल गई थी। स्तालिन का यह विश्वास था कि बिना उद्योगों के विकास के देश की दरिद्रता नहीं मिट सकती थी। छोटे बड़े और मंझोले उद्योग ही नही वरन् बड़े २ उद्योगों का विकास करना था। इसलिए पूञ्जी की जरूरत थी। बड़े २ पूंजीपतियों का नाश हो गया था। पिछड़े देशों की लूट-खसोट की साम्राज्यवादी नीति लेनिन ने त्याग ही दिया था। अमीर विदेशी-पूञ्जीपति और राज्य समाजवादी रूस को कर्ज भी नहीं दे सकते थे। अतः रूस में औद्योगीकरण सोवियत की अति सीमित साधनाओं पर निर्भर करता

रूस का समाजवादी औद्योगीकरण

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। 'नेप' के अनुसार छोटे २ उद्योग वैयक्तिक पूंजीपति के हाथ में थे। स्तालिन ने यह निश्चय किया कि रूस का औद्योगीकरण का बहुत बड़ा श्रेय समाजवादी सरकार को मिले और देश के आर्थिक जीवन में पूंजीपतियों का प्रभाव कम होता जाय। इसका मतलब यह हुआ कि राज्य को देश की बजट पर पूरा अधिकार हो, और उसके सभी साधनों का लेखा जोखा उसके पास रहे, और इसी के अनुसार निश्चित योजना बनाकर काम किया जाय। समाजवादी आर्थिक व्यवस्था में 'योजना' का बहुत बड़ा स्थान है। स्तालिन ने १९२८ से पंचवर्षीय योजनाएं शुरु किया। औद्योगीकरण की अभूतपूर्व उन्नति हुई। रूस में बड़े २ सरकारी कारखाने खुले। मोटर, लोहा, स्पात शस्त्रास्त्र इत्यादि मूल उद्योगों का विकास हुआ। बड़ी २ नदियों को बांध कर जलविद्युत् शक्ति निकाली गई। रूस इस प्रकार देश की प्रधान आवश्यकताओं की पूर्ति करने में बहुत हद तक सफल रहा। उपभोक्ताओं की जरूरी चीजों का भी उत्पादन बढ़ा। उद्योगों का विकास समाजवादी सिद्धान्तों पर होता रहा।

रूस का औद्योगीकरण जितनी तीव्र गति से और जिस परिमाण से हुआ वह इतिहास में बेमिसाल है। १९२३ तक पिछड़ा हुआ कृषि-प्रधान देश आज संसार का प्रथम नहीं तो द्वितीय औद्योगिक देश है। इसका श्रेय स्तालिन और उसकी पांचसाला योजनाएं को हैं। (१९२८-३३, १९३४-१९३९, १९४५-५०, ५०-५५)। समाजवादी औद्योगीकरण की यह तेज रफ्तार जनसाधारण के लिए पहले अत्यन्त कष्टप्रद रही। मजदूर को कड़ी से कड़ी मेहनत करनी पड़ी। कर का अनुपात भी बढ़ाया गया। अन्न के उत्पादन पर सरकार का दबाव बढ़ा। जनसाधारण का जीवन-स्तर ऊपर उठने के बदले गिरने ही लगा। स्तालिन ने औद्योगिक विकास की प्रगति को अत्यन्त तीव्र रक्खा। यह जबरदस्ती ही सम्भव था, और स्तालिन ने जनता की तत्कालीन कठिनाईयों पर ध्यान न देकर भविष्य की ओर आशाप्रद

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टि रक्खी। स्तालिन समाजवादी औद्योगिक विकास की तेज रफ्तार से उत्पन्न असन्तोष और पीड़ा से अवगत था। पर रफतार कम करना और पीछे कदम रखना पराजय की निशानी है। स्तालिन इसके के लिए तैयार न था। क्योंकि इसका अर्थ था पीछे पीठ करना जो मुश्किल था। समाजवादी रूस पूंजीवादी और अत्यन्त औद्योगिक राष्ट्रों से घिरा था। इसलिए उद्योगों का तीव्र विकास और आधुनिक अस्त्रशस्त्र का निर्माण रूस के लिए जीवन-मरन का प्रश्न था। जिस किसी ने स्तालित की इस नीति का विरोध किया या इसके प्रति शंका प्रकट किया उसे स्तालिन ने कुचल दिया। 'नेप' के अनुसार पूंजीवाद से जो समझौता हुआ था, वह अब खत्म हो गया। देश के सभी उद्योग अब राष्ट्रीय उद्योग थे। औद्योगिक क्षेत्र से अब वैयक्तिक पूंजीपति का वस्तुतः नाश हो गया, और राज्य का एकाधिपत्य हो गया।

नवीन कृषि-व्यवस्था

कृषि-उत्पादन को भी समाजवाद के सिद्धान्त पर संगठित किया गया। 'नेप' के अनुसार किसानों को गल्ला बेचने की स्वतन्त्रा थी। जिस रफ्तार से उद्योगों का विकास हो रहा था, और मजदूरों की संख्या बढ़ रही थी, अन्न और कच्चे माल के उत्पादन में तरक्की जरूरी थी। पर बड़े किसान छोटे २ किसानों का शोषण कर रहे थे। कृषि के साधन भी दकियानुसी थे। और अब वैज्ञानिक आधार पर खेती करना उत्पादन की वृद्धि के लिए जरूरी था, पर इसलिए छोटे २ टोपरों की जगह पर विस्तृत भूमि पर खेती करना जरूरी था। इसलिए छोटे-छोटे टोपरों को एक में मिलाकर सामूहिक खेती करना निश्चय किया गया, और उत्पादन या उसका नफा उन किसानों में निश्चित अनुपात में बाँटा गया। गल्ला का उत्पादन और बिक्री सरकार के अधिकार में रहना जरूरी था जिससे कि नगरों की बढ़ती आबादी को उचित मूल्य और मात्रा में अन्न मिल सके, और अतिरिक्त अन्न बाहर भेज कर विदेशी मुद्रा

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह निश्चय किया कि बड़े २ किसानों को खत्म कर दिया जाय, और सरकारी फार्मों में वैज्ञानिक ढंग से खेती कर किसानों को आधुनिक ढंग से खेती करने के लिए उत्साह और साधन का प्रबन्ध किया जा सके। सामूहिक खेती के लिए किसानों में प्रचार किया गया और अन्य प्रकार के दबाव भी डाला गया। बड़े २ किसान (Kulak-कुलक) ने सामूहिक खेती का विरोध किया, और अपना गल्ला जला देना उन्हें सरकारी खेती या सामूहिक खेती के संगठन में सम्मिलित होकर अपनी आर्थिक स्वतन्त्रता खो देने से अधिक श्रेयकर प्रतीत हुआ। इन्होंने आपस में मिलकर यह तय किया कि सरकार को अपना गल्ला न दें। पर स्तालिन के अनुयायियों ने गरीब किसानों को अमीर किसानों के विरुद्ध उभाड़ा। असहयोगी कुलकों का अन्न जब्त कर लिया जाता था, और उसका चौथाई हिस्सा गरीब किसानों को दे दिया जाता था। आतंक, सरकारी दबाव, जासूस और प्रचार के बल पर कुलकों की हस्ती मिटा दी गई। बड़े २ ट्रैक्टरों और अन्य यन्त्रों के व्यवहार से अनभिज्ञ पर उनके लाभ से अवगत रूस के किसान सामूहिक खेती को अपनाने में बाध्य हो गये। इन सामूहिक-फार्मों को सरकार यन्त्र और अनुभवी अफसरों की सेवा की सुविधा देती थी। अतः प्रचार और सरकारी दबाव का नतीजा यह हुआ कि देश की खेती काफी अंश में सामूहिक खेती हो गई। १९३४ के आरम्भ तक देश की ७० फी सदी खेत सामूहिक-कृषि के अन्तर्गत थे, और यहां अन्न का ९० फी सदी उत्पादन होता था। इन पर सरकार का अधिकार रहा, और अत्यन्त आधुनिक वैज्ञानिक ढंग पर खेती हो सकी। उत्पादन बहुत बढ़ गया। पर उत्पादन और बिक्री पर सरकार का वस्तुतः पूर्ण अधिकार हो गया, वैयक्तिक किसानों की स्वतन्त्रता मिट सी गई। स्तालिन की इस नीति का विरोध भी हुआ। पर उन्हें राजनीतिक दुश्मन मान कर स्तालिन ने दृढ़ता पूर्वक कुचल दिया। साम्यवादी दल ने इस नीति की घोषणा की कि उत्पादन के

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृषि सम्बन्धी साधनों का ही समूहीकरण (Callectivisation) होगा, मवेशी, मुर्गी, अण्डा, और मकान का नहीं। इस प्रकार आधुनिक समूहीकरण और कार्यकर्त्ताओं के अनावश्यक उत्साह के विरुद्ध बढ़ते असन्तोष को कम करने की कोशिश की गई। द्वितीय पांचसाला योजना के अनुसार रूस की कृषि बिल्कुल यंत्रचालित हो गई।

इस प्रकार उद्योग और कृषि की अद्भुत प्रगति हुई, और उस समय जब कि पूंजीवादी देश १९२९ से ३३ तक आर्थिक संकट (Economic crisis) में पड़े थे। उत्पादन की वृद्धि में मजदूरों और व्यवहारिक ज्ञान के विशेषज्ञों को बहुत प्रोत्साहन दिया जाता था। अपने २ कारखानों और खनिज-खानों में प्रत्येक मजदूर अधिक से अधिक उत्पादन करने की होड़ में लगा रहता था, और रेकार्ड तोड़ने वालों को सरकार और पार्टी की ओर से बहुत सम्मान मिलता था। वह राष्ट्रीय वीर बन जाता। काम करने की योग्यता और वास्तविक उत्पादन के आधार पर ही मजदूरी मिलती थी। इसलिए उत्पादन बढ़ाओ की होड़ से देश का फायदा तो होता ही, पर मजदूरों की मजदूरीभी बढ़ती। मजदूर आधुनिक साधन और यन्त्र-कौशल पर पूरी तरह हावी होने के लिए व्यग्र हो उठे। स्टाख्नोभ नामक एक मजदूर कोयला की खान से अधिकाधिक कोयला निकालने में बाजी मार ले गया। उसके नाम से ही उत्पादन के प्रत्येक क्षेत्र में इसी प्रकार के आन्दोलन (Stakhnev movement) शुरू हो गये। स्टालिन ने इसे समाजवादी प्रेरणा (Emulation) बताया।

स्टाख्नोभ आन्दोलन

रूस में शिक्षा विशेष कर औद्योगिक शिक्षा का भी खूब विस्तार हुआ है। यन्त्रचालित कृषि और आधुनिक पेचीले मशीनों का उपयुक्त व्यवहार निरक्षर किसानों और मजदूरों से सम्भव नहीं था। पहले के मध्यमवर्गीय शिक्षितों और विशेषज्ञों पर साम्यवादी दल को विश्वास नहीं था। इसलिए साम्यवादी मजदूरों और नवयुवकों को उच्चतम शिक्षा और व्यवहारिक ज्ञान देना

शिक्षा व समाजिक और प्रगति

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जरूरी हो गया। बड़े २ विद्यालय खुले जिसमें कि साम्यवादी नवयुवकों को आधुनिक विज्ञान, यन्त्रविद्या, और व्यवहारिक योग्यता की शिक्षा मिली, और रूस आज विज्ञान और यन्त्रविद्या के क्षेत्र में बहुत ही आगे है। एटम-बम रूस बना चुका है यह सर्वविदित है। कला को भी प्रोत्साहन दिया गया है। रूस के बड़े २ लेखकों का अध्ययन उत्साह से किया जाता है। विदेशी विद्वानों का भी आदर होता है। रामायण, महाभारत का रूसी भाषा में अनुवाद हुआ है। शेक्सपीअर, कालिदास और प्रेमचन्द लोकप्रिय हैं। संगीत और रंगमंच भी अत्यन्त ही जनप्रिय हैं। रूस में जितने रंगमंच हैं उतना किसी भी देश में नहीं। यहां के नृत्य और ओपेरा विश्वप्रसिद्ध हैं। उच्च से उच्च शिक्षा में सहशिक्षा का सिद्धान्त माना गया है। शिशु-शिक्षा का सुन्दर प्रबन्ध है। माँ छोटे २ बच्चों को सरकारी शिशुकेन्द्र में छोड़ कर काम पर चली जाती हैं। यहां इन्हें मुफ्त में दूध, और खेलने के समान मिलते हैं। स्कूल के विद्यार्थिओं को छुट्टी मनाने के लिए स्वास्थ्यप्रद स्थान निर्धारित किए गये हैं, जहां उनके लिये मनोविनोद इत्यादि का प्रबन्ध सरकार की ओर से है। गर्भवती स्त्रियों और जच्चाओं के लिए सरकार की ओर से अच्छा प्रबन्ध हैं। हजारों मातृकेन्द्र हैं। मजदूर-स्त्रियों को सवेतन छुट्टी मिलती है। उन्हें विशेष खाने-पीने की सुविधा दी जाती है। रूस में सरकार बचपन से ही नागरिकों के स्वास्थ्य का ध्यान रखती है। अस्तपतालों की भरमार हैं। सार्वजनिक स्वास्थ्य का अच्छा प्रबन्ध है। इलाज प्रायः मुफ्त ही होता है। जारशाही रूस में स्त्रियों का शोषण होता था और उनका क्षेत्र गृह तक ही सीमित था। पर रूस में आज स्त्रियों को बराबर अधिकार और मौका है। स्त्रियां सैनिक हैं, प्रोफेसर हैं, इन्जिनिअर और वैज्ञानिक भी हैं। वे ट्रेक्टर चलाती हैं, और पूर्ण स्वतन्त्र हैं। तलाक का कानून पहले बहुत ढीला था, पर अब कठिन बना दिया गया है, और रूस में परिवार के बंधन टूट नहीं गये हैं। आर्थिक परतन्त्रता से मुक्त होकर स्त्रियां अब वास्तविक प्रेम के बल पर ही घर की स्वामिनी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनी रहती हैं।

शासनपद्धति—

रूस की क्रान्ति 'सभी शक्ति मजदूरों को' इसी नारे पर की गई थी। रूस में क्रान्ति के बाद मजदूरों का अधिनायकत्व स्थापित किया गया था। समाजवाद की स्थापना के लिए और पूंजीवाद का नाश करने के लिए मार्क्स का यह नक्शा जरूरी माना गया था। पर वास्तव में यह बौल्शेविक पार्टी का का अधिनायकत्व था, क्योंकि इसी पार्टी के नेतृत्व में रूस में सफल क्रान्ति हुई थी। लेनिन ने पार्लियामेन्टरी शासन-पद्धति को ठुकरा दिया, और इसलिए रूस में सिर्फ साम्यवादी दल के सिवा किसी अन्य दल का वैधानिक विकास असम्भव था। क्रान्ति की सफलता के बाद बौल्शेविक पार्टी को संविधान की आवश्यकता पड़ी। लेनिन ने संविधान सभा को बुलाने से इन्कार कर दिया और रूसी 'लोकसभा' को भंग कर दिया।

१९१७ का संविधान की रूपरेखा

रूसी क्रान्ति का आधार था मजदूरों के द्वारा स्वयं स्थापित और निर्वाचित सोवियत। लेनिन नयी शासनपद्धति में सोवियतों की अवहेलना नहीं कर सकता था क्योंकि देश में सोवियतों की ही बात मानी जा रही थी। उसके विचार में अब संविधान सभा का बुलाना अप्रगतिशील कदम होता। अतः रूस के सोवियतों का एक संघ (Union of Socialist Soviets of Russia) की स्थापना हुई। कुछ समय बाद जौर्जिया, व्यालोरूस भी इस संघ में सम्मिलित किये गये। सोवियत संघ में एशिया और योरप के अविकसित और विकसित जातियां थीं। केन्द्रीय विधानमंडल में दो सभाए थीं, एक जिसे हम लोकसभा (Lower House) कहें उसमें देशभर केनागरिकों का प्रतिनिधित्व था, और दूसरीसभा थी परिषद् (Council of States) जिसमें प्रत्येक राज्य को, बड़ा हो या छोटा, बराबर २प्रतिनिधि भेजने का अधिकार था। अतः सोवियत् संघ में रूसी सोवियत् संघ ही नहीं, वरन् कौकेशश्-पार सोवियत् संघ, युक्रेन का सोवियत् संघ, वाइलोरूसी सोवियत् ,उज्बेक् , तुर्कमान् और ताजिक सोवियत् संघ भी सम्मिलित हैं।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संविधान में प्रत्येक सदस्य-राज्य को सोवियत् संघ से निकल जाने का अधिकार है। पर अभी तक इसका व्यवहार नहीं हुआ है। संविधान में नागरिकों के सर्वमान्य साधारण मूल अधिकारों का समावेश था। पर इसमें एक विशेषता यह थी कि प्रत्येक नागरिक को काम मिलने का अधिकार था। अतः बेकारी का भय जाता रहा। पर यह संविधान प्रजातान्त्रिक नहीं था। रूस के सभी वयस्क नागरिकों को मतदान देने का अधिकार नहीं था। पूंजीपति और उनके समर्थक जार परिवार या उच्च कर्मचारियों को इस अधिकार से वंचित रखा गया, क्योंकि इन पर साम्यवादी दल को अविश्वास था। चुनाव भी प्रत्यक्ष नहीं था। ऊपर नीचे तक सोवियतों की लाइन थी, और नीचे की सोवियत से चुनाकर प्रतिनिधि उपर सोवियतों के प्रतिनिधि और वे उच्च सोवियतों के प्रतिनिधि चुनते थे। इसी प्रकार अन्त में केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के प्रतिनिधि चुने जाते थे। इस तरह संविधान का रूप पिरामिडनुमा था। देश में साम्यवादी दल के सिवा अन्य राजनैतिक दल का उदय असम्भव था। प्रचार के सभी साधन साम्यवादी दल के हाथ में था। रूस में इस प्रकार साम्यवादी दल का अधिनायकत्व स्थापित हो गया। पूंजीवाद के समर्थकों का नाश, क्रान्ति की रक्षा और साम्यवाद की स्थापना के लिए साम्यवादी दल के नेतृत्व में सर्वहारावर्ग का अधिनायकत्व साम्यवाद की सफल स्थापना की एक आवश्यक कड़ी था।

१९३६ तक सोवियत संघ में पूंजीवाद और उसके समर्थकों का वस्तुतः नाश हो गया था। विदेशी आक्रमण का भी भय नहीं था। साम्यवादी दल के विरोधियों का खात्मा कर दिया गया था। स्तालिन ने इसलिए १९३६ का नया संविधान लागू किया। यह संविधान लेनिन के स्थापित संविधान के मूल सिद्धान्तों से विपरीत नहीं था। पर इस में प्रजातान्त्रिक संविधानों के कई मुख्य अंगों का समावेश था। मतदान का अधिकार अब सभी वालिग नागरिकों को था, और सभी उच्चतम सभा (Supreme Council)

१९३६ का नये संविधान की विशेषता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के दोनों सदनों का चुनाव अप्रत्यक्ष नहीं वरन् प्रत्यक्ष था। ३००००० की आवादी पर एक प्रतिनिधि का निर्वाचन रूसी संघ की राज्यसभा (Soviet of the Union) के लिए होता था, पर राष्ट्रीय सभा (Soviet of Nationalities) में प्रत्येक संघ-सदस्य को वरावर सदस्य भेजने का अधिकार था। सदस्य-संघ को स्वशासन की स्वतन्त्रता थी, और संघसे निकल आने का उनकाअधिकार माना गयाथा। उच्चतम सोवियत को कानून वनाने, बजट पास करने, राष्ट्रीय योजनाओं की स्वीकृति देने का अधिकार है। यह पूरे राष्ट्र की प्रतिनिधि है, और जनता की सार्वभौमसत्ता की प्रतीक है। सर्वोच्च न्यायालय के जजों को नियुक्त करती है, सरकारी वकील को वहाल करती है, और सोवियत संघ के अन्य सरकारी संस्थाओं पर निगरानी रखती है। उच्चतम सोवियत (Supreme Soviet) के दोनों सदनों की संयुक्त-सभाद्वारा निर्वाचित एक कमिटी है जिसे Presidium कहा जाता है, जो कि उच्चतम सोवियत की कार्यकारिणी समीति है। यह सुप्रिम सोवियत की वैठक वुलाती है, चुनाव करने का प्रवन्ध करती है, सन्धि मंजूर करती है। पर देश की सर्वोच्च कार्यकारिणी और शासन प्रवन्ध करनेवाली सभा को (Council of Peoples Commissars) मन्त्रीपरिषद कहते हैं। इसका चुनाव सर्वोच्च सोवियत की संयुक्त वैठक में होता है। मन्त्रीपरिषद सोवियत कानूनों को वरतती है, और राज्य का शासन प्रवन्ध चलाती है, शान्ति कायम रखना, जनता का हितो की रक्षा करना इनका काम है। संघ के सदस्य-राज्य और स्वशासित-प्रदेशों में भी इसी प्रकार का विधान प्रचलित है। Presidium के इशारे ही पर ये चलते हैं। संविधान के अनुसार एक सर्व्वोच्च न्यायालय की भी स्थापना की गई है। नागरिकों के मूल अधिकारों में अपने विचार व्यक्त करने की स्वतन्त्रता, धर्म-पालन की स्वतन्त्रता, सभा करने की स्वतन्त्रता के अलावे काम मिलने, चिकित्सा पाने, छुट्टी मिलने और शिक्षा पाने के भी अधिकार संविधान में दिये गये हैं। नागरिकों को अनुशासन मानने,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इमानदारी से काम करने और देश की रक्षा करने के कर्त्तव्य भी मौलिक अधिकारों के साथ ही जोड़ दिये गये हैं।

सोवियत-संघ में कई राष्ट्रीय-राज्य सम्मिलित हैं, और कई अल्पसंख्यक जातियां हैं। पर सोवियत-संविधान और सरकार ने इन जातियों को सांस्कृतिक स्वतन्त्रता दे दिया है, और अल्पसंख्यकों की भाषाओं और संस्कृतियों के विकास में अद्भुत प्रगति हुई है। मध्य एशिया के पिछड़े राज्यों में जैसे तुर्कमान, ताजिकिस्तान, उजबेकिस्तान इत्यादि में, शिक्षा, विज्ञान और आधुनिक साधनों का खूब प्रचार हुआ है। सोवियत राज्य में जो विशिष्ट अल्पसंख्यक जातियाँ हैं उन्हें विधान में खास स्थान दिया गया है। कुछ स्वशासित सोवियत प्रजातन्त्र हैं, कुछ स्वशासित प्रदेश हैं और कुछ को राष्ट्रीय क्षेत्र कहा गया है। अपनी विशिष्ट संस्कृति और भाषा की रक्षा करने या उनका समुचित विकाश करने में इन्हें आजादी और मदद दी गई है। इस प्रकार सोवियत संघ की संस्कृति बहुमुखी और भिन्न २ प्रकार की भाषाओं और रीतिरीवाजों से धनी है। पिछड़ी जातियों में नवोत्साह और आत्मविश्वास की लहर दौड़ रही है। सोवियत सरकार की सफलताओं में इन पिछड़ी जातियों की उन्नति अपना विशेष स्थान रखती है। पर सांस्कृतिक स्वाधीनता व जातीय भाषाएं और संस्कृतियों के विकास में सोवियत सरकार का सक्रिय सहयोग के साथ २ राजनैतिक क्षेत्र में साम्यवादी दल और सोवियत रूस का प्रभाव दृढ़ है। व्यापार, मुद्रा, विदेशीनीति और प्रचार के साधनों पर संघ की सरकार का ही आधिपत्य है।

प्रजातान्त्रिक रूपरेखा कागज पर ही है, वास्तव में सोवियत-संघ में कम्यूनिष्टों का अधिनायकत्व है। यह सच है कि लेनिन और विशेषकर स्तालिन ने रूस को संसार के अग्रगण्य राष्ट्रों की पहली पंक्ति में ला दिया है। देश की आर्थिक स्थिति की कायापलट हो गई है। बेकारी की समस्या नहीं है, और शिक्षा और विज्ञान में अद्भुत प्रगति हुई है। देश की सैनिक शक्ति भी खूब बढ़ी है। इसलिए यदि लेनिन

CC-0. Pudukkottai Dharmaraja Maharaja Sarvajna Saraswathi Bhavan Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और स्तालिन रूस में पूज्य हैं, और उनका प्रभाव जनसाधारण पर सर्वोपरि है तब कोई ताज्जुब की चीज नहीं है। पर यह सफलता भी सोवियत-संघ में स्थापित अधिनायकत्व पर पर्दा नहीं डाल सकती। प्रचार के सभी साधन सरकार के अधीन हैं, और इनके द्वारा सारे देश के शिशु, बाल, और युवा को साम्यवाद और स्तालिन की भक्ति का पाठ रटाया जाता है। इसके बावजूद साम्यवादी-दल के अलावे किसी अन्य राजनैतिक दल की गुंजाइश नहीं है। साम्यवादी दल भी प्रजातान्त्रिक देशों के राजनैतिक दल ऐसा नहीं हैं क्योंकि कोई भी नागरिक इस दल का सदस्य नहीं हो सकता। सदस्यों का निर्वाचन बहुत छान बीन कर होता है और उन्हें कठिन अनुशासन का पालन करना पड़ता है। दल के संचालकों को यदि किसी पर शक हो जाय, तो उस सदस्य को दल से निकाल दिया जाता है, और कई प्रकार से तंग किया जाता है। समय २ पर इसलिए इस पार्टी में Purge होते रहते हैं। कुछ स्वतन्त्र विचार के लोग भी धारासभाएं में कभी २ चुने जाते हैं, पर उनकी संख्या नगण्य है, और सरकार पर उनका प्रभाव शून्य सा ही है। जार के समय में खुफिया पुलिस से लोग परेशान रहते थे, और इस विभाग के द्वारा जार अपने मामूली से मामूली विरोधियों को ठिकाने लगा देता था। साम्यवादी रूस में भी सरकारी जासूसों की भरमार है, कुशल शासन का अंग होने के कारण यह विभाग (OGPU) और भी अधिक कार्यपटु और भयंकर है। स्तालिन या उसकी सरकार के विरोधियों की आवाज सुनी जाना ही असम्भव सा है। १९३६-३८ में ऐसा ही एक बड़ा Purge हुआ और मास्को में हजारों तथाकथित देशद्रोहियों को मौत की सजा मिली। इन पर साम्यवाद का दुश्मन होने का आरोप लगाया गया था। रूस की योजनानुकूल आर्थिक प्रगति पर कुठाराघात करने का दोष इनके सर पर मढ़ा गया। स्तालिन ने उसका राजनैतिक फायदा उठाया और मास्को की इन मशहूर मुकदमों के द्वारा अपने राजनैतिक विरोधियों का खात्मा कर डाला। यह मार्के की बात है कि इनमें बहुत से साम्यवादी-क्रान्ति

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में अग्रदूत थे। मौस्को के इन मुकदमों का सोवियत-संघ में खुब प्रचार किया गया था। विरोधियों में आतंक छा गया और जनसाधारण में शासन के के प्रति भयमिश्रित आदर स्थापित हो गया। साम्यवादी चेकोस्लावेकिया में भी नवम्बर १९५२ में एक बड़ा Purge हुआ, और चोटी के नेताओं को पार्टी से निकाल दिया गया और बहुतों को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। रूमानिया में भी यही हाल है। १९५३ के आरम्भ में सोवियत्-रूस के कुछ प्रमुख डाक्टरों को देशद्रोही घोषित किया गया। शायद यह एक नये Purge की भूमिका है। इन्हीं सब कारणों से संसार के बहुत से विद्वानों का विचार है कि रूस में आर्थिक प्रगति जरूर हुई है, पर वैयक्तिक या राजनैतिक स्वतन्त्रता का अभाव है; शिक्षा, विज्ञान, साहित्य, और यहाँ तक कि मनोरंजन पर भी सरकार का ही वस्तुतः एकाधिपत्य है। विचार-स्वतन्त्रता वैज्ञानिकों को भी अलभ्य है।

सोवियत रूस की विदेशी नीति—

कार्लमार्क्स ने संसार के मजदूरों को एक होकर समाजवाद के लिए लड़ने के लिए आवाहन किया था। समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीयसंगठन (Socialist International) की स्थापना इसी उद्देश्य से की गई थी कि संसार की सभी समाजवादी पार्टियां परस्पर विचार-विमर्ष करें और समाजवादी क्रान्ति की ओर बढ़ते जांय। विश्वयुद्ध को साम्राज्यवादी युद्ध मानकर समाजवादी पार्टियों को इसमें सहयोग नहीं देना था, वरन् युद्ध का फायदा उठाकर अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन के द्वारा समाजवाद को विश्व में प्रतिष्ठित करना था। पर यह आशा पूरी नहीं हुई। समाजवादी दलों में फूट पड़ गई। जब प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ा तब समाजवादी पार्टियां किंकर्त्तव्यविमूढ़ थीं, और राष्ट्रीय भावना के दबाव में अपनी २ राष्ट्रीय सरकारों को युद्ध में सक्रिय सहयोग देने लगीं। लेनिन इसे बहुत बुरा समझता था, और उसका दल अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी संगठन से अलग हो गया। लेनिन और उसके साथियों ने अन्त में जारशाही का अन्त कर साम्यवादी दल के नेतृत्व में सोवियत संघ की स्थापना की।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर लेनिन को पूंजीवादी देशों का सामना करना पड़ा, और काफी परेशानी के वाद ही शांति मोल लेनी पड़ी।

युद्धकालीन साम्यवाद के कारण रूस में साम्यवादी दल का अधिनायकत्व स्थिर हो गया था। युद्ध में हारने के वाद जर्मनी में क्रान्ति हुई और गणतन्त्र स्थापित हो गया। कुछ सोवियतें भीं उठ खड़े हुए। आस्ट्रिया में क्रान्ति की लहर उठी और हंगेरी में भी क्रान्तिकारी गणतन्त्र स्थापित हुआ। इस क्रान्तिकारी परिस्थिति में साम्यवादी पार्टियाँ ऊपर सतह पर निकल आईं। लेनिन ने इस मौके का फायदा उठाया,

साम्यवादी अन्तर्राष्ट्रीय-संघ की स्थापना (१९१९)

और १९१९ में प्रथम साम्यवादी अन्तर्राष्ट्रीय संघ (Communist-International) की स्थापना की घोषणा की गई। यह कांग्रेस मौस्को में बुलाई गई। रूस की साम्यवादी पार्टी के कार्यक्रम की प्रशंसा की गई, और सोवियत-रूस का शासन को मजवूत बनाने में मदद देने का आश्वासन अन्य साम्यवादी दलों ने दिया। इस प्रकार लेनिन ने सोवियत् रूस के विरुद्ध पूंजीवादी राष्ट्रों का षडयन्त्र के मुकाविले में एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन खड़ा कर दिया, जिसका मतलव था कि प्रत्येक पूंजीवादी राष्ट्र में ही सोवियत के सक्रिय समर्थक और पूँजीवादी सरकार के खुले दुश्मन थे। साम्यवादी पार्टियों की नीति अन्तर्राष्ट्रीय संगठन से संचालित होने लगी। इनके प्रभाव की उन्नति और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सोवियत-रूस के प्रभाव की तरक्की में स्पष्ट सम्बन्ध स्थापित हो गया। १९१९-२१ में योरप में आस्ट्रिया, हंगेरी, पोलेन्ड, में साम्यवादी दल का प्रभाव बढ़ गया और उनकी सरकारें भी अल्पकाल के लिये स्थापित हो गईं। ट्राटस्की की नीति थी कि रूस के

ट्राटस्की की नीति

साम्यवाद की रक्षा और विकास के लिये पूरी दुनियां में विशेष कर सारे योरप में लगातार साम्यवादी क्रांतियां होनी चाहिए जिससे कि पूरा योरप साम्यवादी वन जाय, वरना पूंजीवादी राष्ट्रों से घिरा रह कर साम्यवादी रूस का वचना असम्भव है। पर रूस के पास न समय था और न साधन कि पूरे योरप में सफल साम्यवादी क्रान्तियों

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Varanasi. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का नेतृत्व करे। आस्ट्रिया, पोलेन्ड और हंगेरी में फिर से प्रजातान्त्रिक वैधानिक शासन स्थापित हो गया। साम्यवाद का प्रसार रुक गया।

पर रूस ऐसे विशाल देश में क्रान्तिकारी साम्यवादी अधिनायकत्व की स्थापना योरप के प्रजातान्त्रिक या पूंजीवाद राष्ट्रों के लिये एक सरदर्द था। पशुबल से वे इसका नाश करने में असमर्थ रहे। अब इन्होंने इसका बहिष्कार करने की नीति अपनाई। पर इससे सोवियत रूस ने आत्मसमर्पण नहीं किया। उसने अपने पड़ोसी छोटे छोटे राष्ट्रों से मैत्री-व्यवहार की सन्धियाँ की और फिनलैंड, पोलैण्ड इस्टोनिया, लैटविया, लिथूनियां प्रभृति बाल्टिक्-देशों की स्वातन्त्रता कबूल किया। छोटे छोटे पड़ोसी जैसे युगेस्लाविया और जेकोस्लावेकिया सोवियत-रूस को अपना मित्र समझने लगे। १६२१ में सोवियत-संघ ने टर्की, पर्शिया और अफगानिस्तान से सन्धि कर ली। सोवियत रूस से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिये इंगलैण्ड तैयार हो गया। १६२१ में इंगलैण्ड और इटैली ने अपने व्यापार मंडल (Trade-mission) रूस भेजा, और १६२२ में जेनोआ के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में रूस को बुलाया गया। पर फ्रांसिसी और बेल्जियम प्रतिनिधि रूस को तब तक मान्यता प्रदान करने के लिये तैयार नहीं थे जब तक वह अपना युद्ध-पूर्व ऋण न मान ले। सोवियत रूस को इस सम्मेलन से निराशा हुई। पर उसके प्रतिनिधि जर्मनी के प्रतिनिधियों से बात कर सके, और अन्त में १६२२ में रेपोल्लो की सन्धि पर हस्ताक्षर हो गया। सोवियत रूस को अब योरप के एक महान् राज ने राजनैतिक मान्यता दे दिया, जर्मनी और रूस दोनों अन्तर्राष्ट्रीय 'नाकाबन्दी' से निकलना चाह रहे थे। दोनों बहिष्कृत देश इसलिये एक दूसरे से हाथ मिलाने गये। १६२४ में जब इंगलैण्ड की मजदूर दल का शासन

सोवियत-रूस का बहिष्कार

छोटे २ राष्ट्रों से सोवियत का मैत्री सम्बन्ध

इंगलैण्ड से व्यापार-सम्बन्ध

जेनोआ सम्मेलन

रेपोल्लो की सन्धि

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इंगलैण्ड के द्वारा सोवियत की मान्यता

स्थापित हुआ इंगलैण्ड ने सोवियत रूस को सरकारी तौर से मान्यता प्रदान कर दिया। इसके बाद इटैली, फ्राँस, जापान और अन्य योरोपिअन राज्यों ने भी इंगलैण्ड का अनुकरण किया। अमेरिका अभी भी सोवियत रूस से सरकारी सम्बन्ध नहीं रखता था। पर ट्राटस्की को जब रूसी साम्यवादी दल से निकाल दिया गया (१९२४) तब रूस के बाहर दुनियां के राज्यों में ऐसा विश्वास होने लगा कि रूस ने अन्तर्राष्ट्रीय और स्थायी क्रान्ति की नीति छोड़ दिया है और रूस में साम्यवाद एक रूस की घरेलू समस्या है, तब रूस को अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में बहुत हद तक भाग लेने का उचित मौका मिला। राष्ट्रसंघ (League of Nations) के अनेक सम्मेलनों में भी सोवियत रूस सम्मिलित होने लगा। सोवियत रूस की विदेशी नीति का लक्ष्य था कि युद्ध न हो, और इसलिये वह योरप के भिन्न २ राज्यों से अनाक्रमक-सन्धि (Non-Aggression Pacts) कर रहा था। जर्मनी से १९२५ में रेपेल्लो की सन्धि दुहरायी गई, बाल्टिक-राज्यों से ऐसी सन्धियाँ की जा चुकी थी, और १९३२ में फ्रांस और इटैली से ऐसी ही अनाक्रमक सन्धियाँ की गई। १९२९ में बृटेन से कूटनीतिक सम्बन्ध जो १९२५ में अनुदार दल ने तोड़ दिया था, फिर स्थापित हो गया।

फ्रांस और इटली से सन्धियां

१९३३ में जर्मनी में हिट्लर और उसकी नाजीपार्टी की शक्ति स्थापित हुई। हिट्लर साम्यवादी रूस का विरोधी था, और वर्साई की सन्धि से जर्मनी पर जो अंकुश रखा गया था उसे हटाने के लिए तत्पर था। सोवियत संघ और फ्रांस हिट्लर के उत्कर्ष से चिन्तित हो उठे। उधर जापान की उग्र नीति से अमेरिका और रूस उद्विग्न हो गये। रूस अमेरिका में प्रचार की नीति छोड़ने को तैयार हो गया, और अमेरिका ने १९३३ नवम्बर में रूस को बाजाप्ता मान्यता प्रदान कर दिया। सितम्बर १९३४ में रूस राष्ट्र संघ का एक सदस्य बन गया। उसके विरुद्ध अन्तर्राष्ट्रीय-विलगाव

हिट्लर के उत्कर्ष का अन्तर्राष्ट्रीय कूटनीति पर प्रभाव

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीति इस प्रकार खत्म हुई। पर नाजी जर्मनी के भय ने फ्रांस और सोवियत रूस को एक दूसरे के और भी अधिक निकट ला दिया, और १६३५ की सन्धि के अनुसार फ्रांस और रूस ने एक दूसरे को किसी योरोपिअन शक्ति के आक्रमण के विरुद्ध मदद देने का वादा किया। इस तरह प्रथम विश्वयुद्ध के पहले की फ्रांस और रूस की सन्धि (Dual Alliance) नाजी जर्मनी के उत्कर्ष के कारण पुनर्जीवित हुई। पर पूर्व और पश्चिम दोनों ओर परिस्थिति नाजुक थी। पूर्व में जापान चीन और मन्चूरिया हड़प रहा था, पश्चिम में मुसोलिनी अबीसिनिया निगलने पर था और हिट्लर ने राइनलैंड, आस्ट्रिया, चेकोस्लावेकिया को अपने अधिकार में कर लिया था। इटैली और जर्मनी की गृह और वैदेशिक नीति से सोवियत रूस रंज था। इस समय इंगलैंड और फ्रांस की नीति थी कि इनका खुला विरोध न हो, बल्कि इन्हें कुछ ले-दे कर फुसलाया जाय जिससे कि युद्ध न छिड़े। अतः सोवियत रूस चाहते हुए भी इस परिस्थिति में अन्यायी और आक्रमणकारी दुस्साहसी मुसोलिनी और हिट्लर को रोकने की नीति को कार्यान्वित न कर सका।

सोवियत रूस ने जब यह देखा कि जर्मनी और इटैली की आक्रमक-नीति का खुल्लमखुल्ला सैनिक विरोध करने के लिए पश्चिम योरप के राष्ट्र तैयार नहीं हैं तब उसे अपनी चिन्ता हुई। उसे यह भी आशंका थी कि कहीं साम्राज्यवादी पूञ्जीवादी इंगलैंड और फ्रांस का जर्मनी से समझौता न हो जाय और सोवियत रूस पर इन सब का सम्मिलित आक्रमण न हो जाय। हिट्लर भी यह महसूस करने लगा था कि यद्यपि रूस और फ्रांस और इंगलैंड सब विरोधी हैं, फिर भी वह योरप में अपना आधिपत्य पहले स्थापित करना चाहता था और अपनी दोनों सीमाओं पर--पूर्व और पश्चिम पर--युद्ध से बचना चाहता था। इसलिए २३ अगस्त १६३६ में रूस और जर्मनी की अनाक्रमक सन्धि हो गई और जर्मनी ने पोलेण्ड पर धावा बोल दिया (१ सितम्बर १६३६)। इंगलैंड और फ्रांस ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर

द्वितीय महायुद्ध और रूस

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया। विश्वयुद्ध छिड़ गया। जापान ने अमेरिका के पर्ल-हार्बर पर धावा बोल दिया, और अमेरिका भी युद्ध में चला आया। जर्मनी ने प्रायः पूरे योरप को अपने पैरों तले रौंद डाला। पर इंगलैंड डटा रहा। स्वीडेन युद्ध से बाहर रहा।

हिट्लर ने अब रूस पर ही आक्रमण कर दिया (जून १९४०)। उसका इरादा दक्षिण रूस होते हुए भीं बाकू की तेल की खानों पर कब्जा करना था, और मध्यपूर्व होते हुए भारत पहुँचना था, जहाँ पूर्व से बढ़ते जापानी सेना से भेंट हो सकती, और विश्व का बँटवारा ये मिलकर कर सकते। पर रूस ने अद्भुत साहस दिखाया और अन्त में हिट्लर की सेना स्तालिनग्राड की मशहूर लड़ाई में परास्त हुई। यहीं से हिट्लर की पराजय आरम्भ होती है। अमेरिका की मदद से पश्चिम योरप में भी हिट्लर को अन्त में हारना ही पड़ा। रूस ने उसे बहुत तंग किया। चीन की लड़ाई के दलदल से जापान निबट न सका। फिर १९४५ में उसके शहर हिरोशिमा और नागासाकी पर अणुबम गिरा कर जापान को युद्ध बन्द करने को बाध्य किया गया। हिट्लर ने भी आत्महत्या कर ली। विश्वयुद्ध समाप्त हुआ।

पर दुनियां को सच्ची शांति नसीब नहीं हुई। जब तक दुश्मन मजबूत था तबतक तो मित्र-राष्ट्रों में बहुत हद तक सहयोग था पर जब युद्ध का परिणाम स्पष्ट हो गया तब अपने २ प्रभावक्षेत्र बढ़ाने के लिए होड़ मचने लगी। याल्टा और पोट्सडाम की गुप्त सन्धियां के द्वारा रूजवेल्ट, चर्चिल और स्तालिन ने युद्ध-पश्चात् विश्व के विभाजन की रूपरेखा तैयार किया था। हिट्लर से पददलित योरप की मुक्ति के लिए पूर्व से रूसी सेना और पश्चिम से अमेरिकी और बृटिश सेना बढ़ रही थी। अन्त में बर्लिन में दोनों ओर से सेनाए मिलीं, और बर्लिन का विभाजन हो गया। इस विश्वयुद्ध का परिणाम यह हुआ कि सोवियत रूस का प्रभाव बहुत बढ़ गया। समूचा पूर्वी योरप-पोलैण्ड, चेकोस्लावेकिया, युगोस्लाविया, हंगरी, रूमैनिया में

युद्ध का अन्त और रूस

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोवियत का प्रभाव स्पष्ट हो गया। सोवियत-रूस की मदद से इन देशों में साम्यवादी सरकारों की स्थापना हुई। युगोस्लाविया मार्शल टीटो के नेतृत्व में सोवियत रूस के नेतृत्व से निकल भागा। पर पूर्व योरप के अन्य राष्ट्र वस्तुतः सोवियत-रूस को अपना नेता मानते हैं। एशिया में साम्यवादी चीन सोवियत-रूस का समर्थक है। जापान यदि अमेरिका और बृटिश सेना के मातहत था, कोरिया रूस और अमेरिका के प्रभावक्षेत्र में बँट गया था। उत्तरी कोरिया से रूस ने अपनी सेना वापस बुला ली, जबकि साम्यवादी दल का अधिकार उत्तरी कोरिया पर स्थापित हो गया। सोवियत रूस की नीति यही रही है कि जब साम्यवादी दल का प्रभुत्व राज्य पर स्थापित हो जाता है, तब सोवियत रूस अपनी सेना और उच्च राजकर्मचारियों को वापस बुला लेता है, और संसार को दिखा देता है कि उसने विजित देशों को पूर्ण स्वतन्त्रता दे दिया है। पर इन देशों की साम्यवादी सरकार अपनी-अपनी आर्थिक और वैदेशिक नीति में सोवियत रूस का अनुसरण करती है। द्वितीय विश्वयुद्ध के मध्य में सोवियत रूस ने अन्तर्राष्ट्रीय-साम्यवादी संगठन (Comintern) भंग कर दिया था। इसका तात्पर्य यह था कि अन्य देशों के साम्यवादी दल से रूस का सरकारी सम्बन्ध टूट गया। पर युद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी संघ का पुनः संगठन हुआ और अक्टूबर १९५२ में इसका सम्मेलन मौस्को में हुआ। स्तालिन ने यह घोषणा की कि सोवियत रूस संसार के प्रगतिशील शक्तियों का नेतृत्व करने वाली साम्यवादी पार्टियों की मैत्री के कारण कृतज्ञ है, और रूस इन पार्टियो के अपने-२ देश के प्रतिक्रियावादी शासन और सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध आंदोलनों को सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि से देखेगा और भरसक मदद करेगा।

स्तालिन की इस घोषणा का कुछ लोगों ने यह अर्थ निकाला है कि सोवियत रूस की सरकार ने अब अन्य देशों की गृहनीति में उस देश की एक राजनैतिक पार्टी के पक्ष में हस्तक्षेप करने की नीति स्पष्ट कर दिया है। पर इसके विरुद्ध यह कहा जा सकता है कि स्तालिन

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के ये विचार सिर्फ मैत्री और सहानुभूति के भावों के प्रदर्शन हैं विशेष कर जब सोवियत् रूस और अन्य साम्यवादी पार्टियों की नीति जनता का शोषण का अन्त करना है, और विश्वशान्ति के आन्दोलन को मजबूत बनाना है। इस विचार की पुष्टि में यह कहा जाता है कि साम्यवादी पार्टियों ने अन्य प्रगतिशील और शान्तिप्रिय संगठनों के सहयोग से कई विश्वशान्ति सम्मेलन बुलाया है जैसे मौस्को, पिकींग, या वियेना में। सोवियत रूस अपने देश की आर्थिक स्थिति का सुधार करने के लिए और नयी पञ्चवर्षीय योजना को कार्यान्वित करने के लिए विश्वशान्ति का इच्छुक है। वह अपने अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव का विस्तार प्रचार और विदेशों की साम्यवादी पार्टियों के बल पर ही करना चाहता है। पर युद्ध के लिए भी बराबर तैयारी कर रहा है, और अपने मित्र-राष्ट्रों की रक्षा के लिए तत्पर हैं।

स्तालिन की मृत्यु

५ मार्च १९५३ की रात्रि में स्तालिन की दो दिन की बिमारी में मृत्यु हो गई। उसकी उम्र ७३ वर्ष की थी। स्तालिन एक महापुरुष था। आधुनिक रूस के निर्माण में स्तालिन का अत्याधिक हाथ था। रूस का औद्योगीकरण और नाजी जर्मनी पर विजय के लिए स्तालिन ही उत्तरदायी था। स्तालिन रूस में अत्यन्त प्रिय था, और उसके शव को देखने के लिए हजारों की कतारें लगी रहीं। नये प्रधान मन्त्री मेलेनकोव ने शांति के लिए प्रयत्न करने का आश्वासन दिया है।

———

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्यारहवां अध्याय ।

एशिया का पुनर्जागरण !

एशिया प्राचीन और मध्ययुग में सभ्यता का केन्द्र था। संसार की अत्यन्त प्राचीन सभ्यताएं-चीन, भारत, मेसोपोटेमिया की सभ्यता-यहीं विकसित हुई थी । संसार के महान्‌चिन्तक औरधर्मप्रवर्तक-

विषय-प्रवेश

जरथुस्त, कन्फूशिअस् बुद्ध, महावीर, ईसा और मुहम्मद यहीं जन्मे और यहीं उन्होंने अपने विचारों को प्रचार किया। संसार के महान् वैज्ञानिक, वैद्य, कलाकार और साहित्यिक इसी महादेश की सन्तान थे। धर्म, दर्शन, विज्ञान और विद्या या कला के क्षेत्र मे ही नहीं वरन् साम्राज्य-निर्माण और देशविजय के क्षेत्र मे भी एशिया आगे था। अरबों की विजययात्राओं का वर्णन पहले ही किया जा चुका है। चंगेज और तैमूर जैसे महान् सैनिक एशियानिवासी ही थे। व्यापार और वाणिज्य मे भी एशिया आगे था। भारत का मुगल-साम्राज्य अत्यन्त ही समृद्ध था। चीन, भारत और पर्शिया के व्यापारी देश-विदेश में अपना प्रभाव स्थापित किये हुये थे।

पर आधुनिक युग के प्रादुर्भाव ने एशिया को थका पाया। जब योरप में पुनर्जागरण की लहर दौड़ रही थी, व्यक्ति और संस्था अपने पुराने आदर्शों की जगह पर नये उत्साही आदर्शों की प्रतिष्ठा कर रहे थे, एशिया अपने प्राचीन वैभव और संस्कृति के गौरव की नशा में खुमारी ले रहा था। अतः आधुनिक योरप ने आधुनिक सभ्यता का नेतृत्व किया। औद्योगिक क्रान्ति के कारण योरप धनी और उत्साही ही नहीं, वरन् एशिया की तुलना में अत्याधिक शक्तिशाली हो गया था। भाग्य ने पलटा खाया। प्राचीन काल से ही सभ्यता और ज्ञान का भण्डार एशिया आधुनिक औद्योगिक युवा योरप के विज्ञान और यन्त्रकला के सामने टिक नहीं सका। आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारों के आधार पर किस तरह योरप में

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औद्योगिक क्रान्ति हुई, किस तरह धनी पूँजीपति वर्ग के नेतृत्व में नवनिर्मित उत्साही राष्ट्रों ने साम्राज्यवाद का पथ अख्तियार किया, और किस तरह योरप के भिन्न २ राष्ट्रों ने एशिया के प्रमुख भाग पर अपना राजनैतिक और आर्थिक प्रभुत्व स्थापित कर लिया इनका वर्णन उपर किया जा चुका है। पर राजनैतिक और आर्थिक प्रभाव के साथ-साथ ही एशिया में पश्चिमी सभ्यता के आदर्शों का प्रवेश हुआ। राजशासन की सुविधा के लिए और व्यापार की उन्नति के लिये योरोपियन प्रभु-देशों को पिछड़े एशिया में आधुनिक यन्त्रकला और उद्योगों को कुछ हद तक प्रोत्साहित करना पड़ा। पश्चिमी शिक्षा और साहित्य का भी प्रवेश हुआ। यातायात की सुविधा के कारण एशिया के भिन्न २ देशों से कुछ समृद्ध और शिक्षित व्यक्ति योरप की सैर करने जाने लगे। अतः पश्चिम और पूर्व के इस सम्पर्क से पूर्व अत्याधिक प्रभावित हुआ। राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ। पश्चिमी उदारवादी विचारों और प्रजातान्त्रिक आदर्शों से एशिया के नवजागृत शिक्षित वर्ग प्रेरणा लेने लगे। स्वशासन के अधिकार की मांग होने लगी। आधुनिक विज्ञान और उस पर आधारित औद्योगिक क्रान्ति का समुचित फायदा उठाने के लिए एशिया के भिन्न २ देशों में नवजागृति की लहर दौड़ गई। जापान ने आधुनिक यन्त्रकला और औद्योगिक क्रान्ति को अपना कर योरप के एक महान् राष्ट्र रूस को १९०५ में पराजित कर दिया था। जापान की इस विजय से सारे एशिया में आत्मविश्वास और उत्साह का संचार हो गया। एशिया पश्चिमी विद्या और विज्ञान को अपना कर योरप से पीछे नहीं रह सकता है, यह स्पष्ट हो गया। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद चीन, भारत, और मध्यपूर्व में स्वतन्त्रता या प्रगतिशील अन्दोलनों का ज़ोर बढ़ता गया। द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त भारत स्वतन्त्र हो गया, सुदूरपूर्व मे इन्डोनेशिया और फिलीपीन स्वतन्त्र हो गये। बर्मा स्वतन्त्र हो गया। मध्यपूर्व में योरोपीय साम्राज्यवाद के विरुद्ध जनआंदोलन सफल हो रहें हैं। मिश्र, सूडान, और मोरक्को में भी साम्राज्यवाद के विरुद्ध सफलता निकटतर आ गई है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

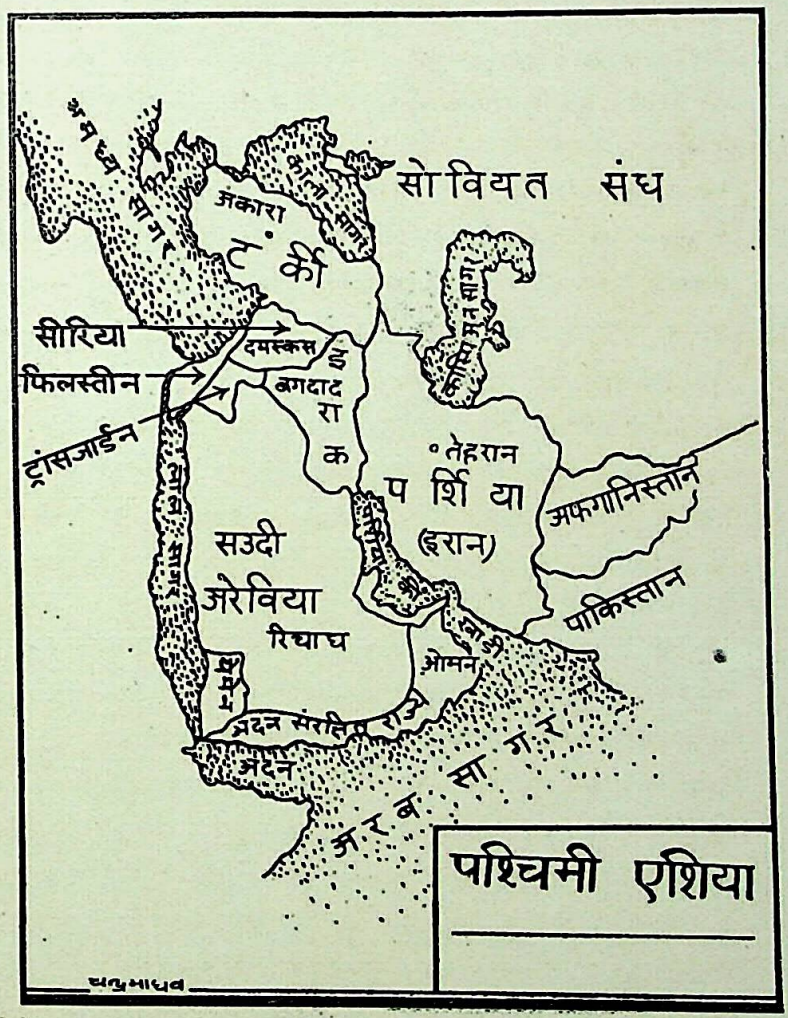

(Facing Page 354)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः यह स्पष्ट है कि विश्वयुद्ध और तदोपरान्त संक्रामक युग में एशिया में अभूतपूर्व जागृति हुई है, और पश्चिमी विज्ञान और यन्त्रविद्या (Technology) को अपना कर, और उदारवादी या क्रान्तिकारी विचारों से प्रेरित होकर वृद्ध एशिया फिर जाग उठा है, और यह निसन्देह है कि संसार की आखें आज एशिया पर टिकी हैं--यहीं आधुनिक सभ्यता का भाग्य का निवटारा होगा।

आधुनिक विज्ञान और यन्तकला के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आने के कारण भारत, चीन, और इस्लामी दुनियां के प्राचीन आदर्श, कला और समाज को जबरदस्त धक्का लगा है। संसार की इन प्राचीन जातियों में नया-पुराना संघर्ष है। प्रश्न यह है कि क्या पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति की लहर में पुरानी संस्कृतियां सदैव के लिए डूब ही जांयगी, या अनुभवी, और धार्मिक और अध्यात्मिक दृष्टि से समृद्ध इन प्राचीन संस्कृतियों के निकट सम्पर्क में आकर पश्चिमी भौतिक सभ्यता स्थिर और पूर्ण हो जायगी। पूर्व-पश्चिम के घात और प्रतिघात, नयी और पुरानी सभ्यताओं के टक्कर और उनके परिणाम, भौतिक ज्ञान और अध्यात्मिक अनुभवों के पारस्परिक सम्पर्क ने एशिया के भिन्न-भिन्न देशों या जातियों को और उनके इतिहास को झकझोर दिया है। इस संघर्ष की प्रतिक्रिया हम एशिया के प्रमुख क्षेत्रों में अलग-अलग देखेंगे।

(१) पश्चिमी एशिया का जागरण।

क--टर्की का रूपान्तर

पांचवीं सदी में रोम का पश्चिमी साम्राज्य हूनों के आक्रमणों के कारण और जर्मन जातियों के देशान्तर के कारण छिन्न-भिन्न हो गया। पर कुन्स्तुन्तिनिया रोम के पूर्वी साम्राज्य की राजधानी बनी रही। अरेबिया में इस्लाम की एक नयी शक्ति का आविर्भाव हुआ। अरब संसार विजय के लिये चल पड़े। उत्तर अफ्रिका, स्पेन प्रभृति रोमन प्रदेश अरबों के अधीन आ गये थे। अरबों का साम्राज्य एशियामाइनर की पूर्वी सीमा तक फैल चुका था, पर पूर्वी रोमन साम्राज्य का केन्द्र कुन्स्तुन्तिनिया अरबों के हाथ

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में नहीं आया। पश्चिमी सभ्यता और ईसाई संस्कृति इस प्रकार इस्लामी दुनियां के बीच बची रही। पर यदि अरबों से पूर्वी रोमन साम्राज्य किसी तरह बचा रहा, तुर्कों के पददलन से इसकी रक्षा नहीं हो सकी।

ग्यारहवीं सदी में सेल्जुक तुर्कों ने अरेबिया और इरान पर ही नहीं वरन् एशियामाइनर के एक वृहत भाग पर अधिकार कर लिया था। अतः सीधे-सादे तुर्क अब पूर्व रोमन साम्राज्य के प्रभाव में आ गये। उन्हें ऐश-इशरत का चस्का लगा। १४५३ में जब ओट्टमन तुर्कों ने कुन्स्तुन्तिनिया पर अपना कब्जा कर लिया तब तुर्क पूर्वी रोमन संस्कृति के पक्के वारिस बन गये। तुर्की साम्राज्य का शासन और शासकों का रहन-सहन 'बाइजन्टाइन' सभ्यता से अत्यन्त प्रभावित था, और भविष्य में तुर्की साम्राज्य की कमजोरियों का यह एक कारण बना। बाइजन्टाइन राज्य में विदेशियों को विशेषकर यूरोपिअनों को राज्य में बसने में प्रोत्साहन मिलता था, और उन्हें बहुत अंशों में स्वशासन की सुविधा थी। जब तुर्कों की सत्ता यहां स्थापित हुई तो यह स्थिति कायम रही। तुर्कों का स्वभाव था कि जब तक उन्हें हानि न पहुंचाई जाय वे प्रजा के रहन-सहन व स्वशासन में हस्तक्षेप नहीं करते थे। आगे चलकर यही तरीका कैपिट्युलेशन्स का आधार बना। विदेशियों को तुर्की का सुल्तान विशेषाधिकार देता था—उन्हें अपना कानून और न्यायविधि का व्यवहार करने का अधिकार दे दिया जाता था। अन्य विशेषाधिकार भी पीछे दिये जाने लगे। टर्की के सुल्तान इन विशेषाधिकारियों के दानपत्र देने में अपनी प्रतिष्ठा या शक्ति का ह्रास नहीं समझते थे, बल्कि उन्हें पश्चिमी योरोपीय राष्ट्र के याचक-प्रतिनिधियों को इन विशेष सुविधाओं को देने में अपनी शान ही मालूम पड़ती थी। पर जब तुर्की साम्राज्य कमजोर होने लगा तब योरोपीय राष्ट्रों को विशेषाधिकार देना सुल्तान के लिये अनिवार्य सा हो गया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन विशेष अधिकारों का दान (Capitulations) सचमुच में टर्की के सुल्तान की सार्वभौम सत्ता का इस हद तक आत्म-

कैपिट्युलेशन्स

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समर्पण ही था, और टर्की के आत्मसम्मान और स्वतन्त्रता की दृष्टि से ये अपमानजनक थे, और टर्की की लघुता और उसके शासन की अयोग्यता के स्थायी चिन्ह थे। इसलिये टर्की का राष्ट्रीय आन्दोलन इनको खत्म करने के लिये बराबर कटिबद्ध रहा, और इस आन्दोलन की सफलता के साथ साथ इनका अन्त हो गया।

बहुजातीय साम्राज्य।

ओट्टमन टर्की ने पूरे अरेबिया, एशियामाइनर, मिश्र, और पूर्वी योरप को अपने अधिकार में ले लिया था। इनके साम्राज्य में यदि एशिया के इस्लामी प्रदेश थे तो योरप के ईसाई देश भी थे। एशिया और योरप के खास खास विचारधाराओं से प्रत्यक्ष सम्पर्क में आने के कारण तुर्की साम्राज्य जटिल परिस्थिति में पड़ गया। एक तरफ इस्लाम इसे रूढ़ीवादी और धर्मान्धता के छोर में बांधे था; दूसरी ओर योरपीय ईसाई प्रजा आधुनिक क्रान्तिकारी और राष्ट्रीय विचारों से प्रभावित थीं। टर्की के लिये यह नया सवाल उठ खड़ा हुआ था। टर्की साम्राज्य बहुराष्ट्रीय-साम्राज्य था, इनमें अरब, इरानी, स्लाव, यूनानी, मुसलमान और ईसाई थे। यहां न जातीय एकता थी, न धार्मिक एकता थी। पूर्वी योरप की पराधीन जतियों के धर्म, संस्कृति, भाषा और रक्त भिन्न थे। १९वीं सदी में इनमें राष्ट्रीयता की भावना उमड़ पड़ी। तुर्की सल्तनत ने दमन की नीति अपनाई, पर यह नीति असफल रही। सर्विया और यूनान स्वतन्त्र हो गये।

शासन की कमजोरियां

प्रजा की राष्ट्रीय भावना की शक्ति और पश्चिमी संस्कृति के दबाव का टर्की तभी सफल विरोध कर सकता था यदि उसका शासन और समाज सुसंगठित रहता। पर तुर्की सल्तनत में कमजोरी आ गई थी। पहले सुल्तानों ने ईसाई प्रजा के साहसी युवकों को Janissary (नये सैनिक) नामक सैनिक संस्था में संगठित किया था। इन स्वामिभक्त सैनिकों के द्वारा सैनिक विजय में बड़ी सहायता मिली थी। पर अब यह

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्था पतनोन्मुख थी। राज पर इसका प्रभाव हो गया था, और कई गिरोहो में यह बंट गया था। विदेशी भी इस संस्था में आ गये थे। व्याह करने की अनुमति मिलने के बाद इन सैनिकों का नैतिक आचरण और त्याग की क्षमता में कमी आ गई थी। अतः सुल्तान अपने साम्राज्य में राष्ट्रीय विद्रोहों को दबाने में अपने को कमजोर पा रहा था। और जब शासकवर्ग वास्तव में कमजोर हो जाता है तब वह अपनी प्रजा के आंदोलन के प्रति क्रूरता की नीति वरतने लगता है। अपनी इसाई-प्रजा के विद्रोहों को दवाने में तुर्की सल्तनत ने जिस बर्वरता का परिचय दिया वह उसकी कमजोरी का लक्षण था। राष्ट्रीय आंदोलन उग्रतर होते गये, और योरप में टर्की की प्रतिष्ठा कम हो गई, और अन्य राष्ट्र जैसे रूस, फ्रांस इत्यादि को हस्तक्षेप करने का मौका मिला।

तुर्की सल्तनत की कमजोरी ने इंगलैंड, फ्रांस, रूस और आस्ट्रिया का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। रूस की नजर कुन्स्तुन्तिनिया पर थी।

पश्चिमी राष्ट्रों का स्वार्थ।

रूस युद्ध में हार गया और उसे अपमानजनक सन्धि करनी पड़ी। इंगलैंड रूस के बढ़ते प्रभाव से आशंकित था। उसे भारत की सुरक्षा का ख्याल था, और कमजोर टर्की की जगह पर कोई शक्तिशाली राष्ट्र का मध्यपूर्व में प्रभुत्व रहे उसे यह असह्य था। आस्ट्रिया बाल्कन् की ओर प्रसार करना चाहता था। फ्रांस की नजर नेपोलियन के समय से ही मिश्र और सीरिया और एशियामाइनर पर लगी थी। पश्चिमी राष्ट्रों के पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता और शक ने समस्या को और भी जटिल बना दिया। यदि रूस वृद्ध और बीमार टर्की की मृत्यु निश्चय समझ कर साम्राज्य का बँटवारा चाहता था, इंगलैंड बीमार टर्की को जिन्दा रखने में ही अपना हित समझता था। अतः निकट-पूर्वीय (Eastern question) समस्या ने योरप की कूटनीति को और भी गम्भीर और पेचीला बना दिया। असहाय टर्की योरप की कूटनीति का खिलौना बना रहा।

टर्की की कमजोरी का एक कारण यह था कि वह पिछड़ा देश था।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औद्योगिक क्रान्ति के कारण समृद्ध और उत्साही साम्राज्यवादी योरोपीय राष्ट्रों के सामने सामन्तवादी व्यवस्था पर आधारित धर्म-राज्य टर्की नहीं ठहर सकता था। टर्की का सुल्तान राजनैतिक नेता ही नहीं वरन् धार्मिक नेता भी था। वह खलीफा था। टर्की के सुल्तान की यह स्थिति भी पूर्वी रोमन साम्राज्य की विरासत थी। पूर्वी रोमन-सम्राट् स्वेच्छाचारी शासक ही नहीं, वरन् ईसाई धर्म का भी संरक्षक था। इस्लामी जगत् का खलीफा टर्की के सुल्तान के लिए यह एक बड़ा बंधन हो गया था। इस राष्ट्रीयता के युग में वह किसी भी जाति का विश्वासपात्र नहीं था—तुर्कों का भी नहीं। तुर्क भी अब इस्लामी जगत् या तुर्की साम्राज्य के अन्य मिलिअतों (Millet) की तरह बस एक मिलिअत थे। इस मौलिक कमजोरी के अलावे तुर्की सल्तनत के सुल्तान कमजोर, ऐशपसन्द और तड़क-भड़क के समर्थक हो गए। सामाजिक व्यवस्था दासों और सेविकाओं या बहुपत्निओं के कारण जर्जर हो गयी थी। आर्थिक क्षेत्र में औद्योगीकरण का अभाव था, और विदेशी पूञ्जी और कर्ज से ही यह शुरू हो सकता था। अतः विदेशियों का प्रभुत्व स्थापित हो गया। इंगलैंड और फ्रांस ने ईराक में कुछ विशेषाधिकार प्राप्त किया। जर्मनी टर्की का मित्र बन गया था। सीरिया और लेब्नान् फ्रांस के प्रभावक्षेत्र में आ रहे थे। १९वीं सदी के उत्तरार्ध तक रुमानिया और बल्गेरिया भी स्वतन्त्र हो गए थे। मेसिडोनिया और बोस्निया में भी आन्दोलन जोर पकड़ रहा था।

अतः टर्की के शासक वर्ग की अयोग्यता, विजित देशों में स्वतन्त्रता-आंदोलन, टर्की की आर्थिक औद्योगिक कमजोरी और साम्राज्यवादी देशों की तृष्णा के कारण कभी का विस्तृत और शक्तिशाली तुर्की-साम्राज्य अपना दम तोड़ रहा था। पाश्चात्य विज्ञान और यन्त्रकला और उदारवादी विचारों का विशेषकर बृटिश राजनीतिक विचारों का, और कैपिच्यूलेशन्स् के कारण टर्की में पश्चिमी न्यायशासन और जीने के तरीकों से तुर्की

आधुनिकता से सम्पर्क और सुधार

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रत्यक्ष सम्पर्क हुआ । फ्रेंच साहित्य का तुर्की साहित्य पर प्रभाव पड़ा । योरोपीय राष्ट्रों की तुलना में टर्की की सैनिक और आर्थिक कमजोरी से भी कुछ नवजवान तुर्कों में तत्कालीन सामाजिक और राजनैतिक अवस्था को बदलने की भावना पैदा होने लगी । सुल्तान महमूद द्वितीय (१८०८--३६) ने कुछ सुधार किया और पश्चिमी वेशभूशा अपनाया । सुल्तान अब्दुल मजीद ने सुधारों का एलान किया, इसे तन्जीमात कहा जाता है । शासन और सेना में सुधार किया गया । ओट्टोमन साम्राज्य के सभी प्रजा धर्म या जाति में भिन्न रहने पर भी बराबर माने गये । पर तन्जीमात सुधार का वास्तविक महत्व था सुधारों का युग का आगमन । पश्चिमी आदर्शों से उत्प्रेरित नवयुवक देशभक्तों का 'युवा-तुर्क' दल (Young Turk) वैधानिक शासन की स्थापना चाहता था । अब्दुल अजीज को गद्दी से उतारा गया, और युवा तुर्क दल का समर्थन प्राप्त अब्दुल हमीद द्वितीय (१८७६--१९०९) गद्दी पर आया । पार्लियामेन्ट बुलाई गई । पर सुल्तान वैधानिक शासक बनना नहीं चाहता था । जब बर्लिन की कांग्रेस के अनुसार रूस से युद्ध बन्द हो गया तब अब्दुल हमीद फिर तानाशाह बन बैठा । इसने इस्लाम-प्रसार (Pan Islam) की नीति अपनाई । इसके शासन काल में बाल्कन् प्रदेश में रहो-सही तुर्की प्रतिष्ठा का नाश हो गया । विदेशी कर्ज से राज दबा था । सार्वजनिक कर भी बहुत बढ़ गया था । योरोपीय महाजन राजस्व वसूल करने लगे, और इस विभाग के शासन में उनका प्रभाव भी बहुत बढ़ गया । जर्मनी के सम्राट् को खलीफा ने स्थायी मैत्री का आश्वासन दिया । आरमिनिया और मेसिडोनिया में तुर्की शासकों ने कई हत्याकांड रचे । टर्की में वैयक्तिक या प्रेस की स्वतन्त्रता को खत्म किया गया । पर युवा-तुर्क (Young-Turk) दल भीतर ही भीतर विद्रोह की तैयारी कर रहा था । इस समय पूरे मुस्लिम जगत् में इस्लाम का पूर्ण विकास और विस्तार (Pan-Islamisatem) का नारा फैल चुका था । सैय्यद जमालुद्दीन-अफगानी इस मंत्र के गुरू थे । उसका

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार था कि मुस्लिम जातियों में सुधार हो और इस्लाम नये विचारों को अपना कर फिर एक शक्ति बन जाय। इसलिए वह क्रान्ति जरूरी समझते थे। युवा-तुर्क दल इस विचार से इस समय बहुत प्रभावित था।

१६०८ में क्रान्ति हो गई। सुल्तान ने संविधान को फिर से लागू किया। जासूसी व्यवस्था और प्रेसों पर से प्रतिबन्ध उठा लिये गये। पार्लियामेन्ट बुलाने का प्रबन्ध करने की घोषणा की गई। पर आस्ट्रिया और बल्गेरिया टर्की का पुनरोदय नहीं चाहते थे। आस्ट्रिया ने बोस्निया और हर्जिगोवेनिया को अपने साम्राज्य में मिला लिया। युवा-तुर्क दल की प्रतिष्ठा को चोट लगी। तुर्की साम्राज्य में विजित जातियों में भी इस दल के प्रति असन्तोष था। अतः इन सब कारणों से १६०८ की क्रान्ति अपने लक्ष्य-वैधानिक शासन-पर पहुँचने में असफल रही। टर्की के भिन्न-२ शासित जातियों पर निरंकुश शासन के द्वारा ही युवा-तुर्क दल ने साम्राज्य को बचाने का पुराना तरीका अपनाया। इस्लाम-प्रसार (Pan-Islam) की नीति इन्होंने भी अपनाई और इसका वही बुरा परिणाम हुआ जैसा पहले हुआ था। इटैली ने त्रिपोली (Tripoli) पर अधिकार कर लिया और प्रथम बाल्कन् युद्ध में बल्गेरिया, रुमानिया, सर्विया ने मिलकर अपने पुराने दुश्मन, टर्की से युद्ध शुरू कर दिया और टर्की बुरी तरह पराजित हुआ (१६१३)। टर्की अब बिल्कुल जर्मनी के पल्ले बँधा रहा।

प्रथम विश्वयुद्ध में टर्की ने जर्मनी और आस्ट्रिया का पक्ष लिया। अन्त में टर्की की हार हुई। टर्की का अरब साम्राज्य उसके हाथ से निकल गया। अंगरेजों ने अरबों को टर्की के विरुद्ध उभाड़ा था और स्वतन्त्रता के सब्जबाग दिखलाया था। टर्की ने ३० अक्टूबर १६१८ की मुडरो की सन्धि के अनुसार हथियार डाल दिया।

टर्की की स्वतन्त्रता पर खतरा था। उसके साधन नष्ट प्राय थे, उसकी सेना हतोत्साह थी, और उसका साम्राज्य छिन्न भिन्न था। मित्र राष्ट्रों के

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए टर्की का अस्तित्व मिटा देना कोई मुश्किल नहीं थीं। पर रूस में बोल्शेविकों का आधिपत्य स्थापित हो गया, और पश्चिमी राष्ट्रों के विरुद्ध सोवियत् रूस टर्की को प्रोत्साहन देने के लिए तैयार था। मित्र राष्ट्रों में भी एकता नहीं थी। जर्मनी का भविष्य लेकर इंगलैंड और फ्रांस में मत-भेद उठ खड़ा हुआ था। टर्की के साम्राज्य के विभाजन के लिये मित्र राष्ट्रों में गुप्त सन्धियां हो गई थीं, पर टर्की पर अखिरी फैसला सुनाने में इन राष्ट्रों ने काफी देर किया। मित्र राष्ट्रों ने स्थायी तस्वीआ नहीं किया या, पर तब भी टर्की के विभिन्न भाग योरोपीय विजयी राष्ट्रों के अधिकार में थे। इटैली की महत्वकांक्षा के भय से ही इंगलैंड ने ग्रीस की सेना को स्मईर्ना पर अधिकार करने में मदद किया। तुर्कों को अपनी भूमि पर अपने पुराने शत्रु का आक्रमण असह्य था। इसी समय मुस्तफा कमाल कुन्स्तुन्तिनिया से भाग कर एशियामाइनर में राष्ट्रीय विरोध का संगठन करने में लग गया था। पर विजयी राष्ट्र तुर्की साम्राज्य का फैसला करने में लगे थे और १६२० में सेव्रे (Severes) की सन्धि की शर्तें टर्की को मानने के लिसे वाध्य होना पड़ा।

सेव्रे की सन्धि तुर्की-साम्राज्य की मृत्यु का इलान माना जा सकता है। तुर्की का अरब-साम्राज्य विदेशी अविभावक राष्ट्रों के संरक्षण में रखा गया था। थ्रास और स्माइर्ना ग्रीस को मिला। आरमिनिया स्वतन्त्र घोषित किया गया। टर्की का साम्राज्य एशियामाइनर में ही सीमित रखा गया। कुन्स्तुन्तिनिया टर्की का ही रहा पर वास्फोरस और दनियाल के दर्रे का असैन्यीकरण किया गया। टर्की को विदेशी राष्ट्रों के विशेषाधिकारों (Capitulation) की वृद्धि करनी पड़ी।

इस अपमानजनक संधि को मानकर टर्की ने अपनी असहायता या नपुंसकता मान ली थी। पर इसी समय टर्की के क्षितिज पर एक उज्जवल सितारा चमक उठा। वह था मुस्तफा कमाल। कमाल ने सचमुच कमाल कर दिखाया। युद्ध से ध्वंस्त और सेव्रे की सन्धि से अपमानित टर्की में उसने नयी जान फूंकी, और जब सबकुछ प्रायः खत्म हो गया था।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमाल ने राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व किया, और मृतप्राय टर्की को पुनर्जीवित किया। युद्ध और सेव्रे की सन्धि के बाद तुर्क साम्राज्य का नाश हो गया, पर उसकी चिता से नया तुर्की प्रजातन्त्र का जन्म हुआ। इस नवीन टर्की का जनक था मुस्तफा कमाल।

मुस्तफा कमाल अपना भाग्य विधाता स्वयं था। गरीब परिवार में जन्म लेकर (१८६०) वह अपनी बुद्धि और हिम्मत के बल पर ही तरक्की करता रहा। वह फ्रेंच भाषा सीख चुका था और वाल्तेयर और रूसो की पुस्तकों से प्रभावित था। अब्दुलहमीद के निरंकुश शासन के विरोध में वह क्रान्तिकारी बन गया और उसे जेल की हवा खानी पड़ी। सीरिया में निस्काशित होकर भी वह गुप्त समीतियों का संचालन करता रहा। फिर सेना में भर्ती होने पर इसे युवातुर्क दल से सम्पर्क हुआ। त्रिपोली और बाल्कन युद्ध में कमाल ने सैनिक योग्यता दिखाई थी। कमाल के ही विलक्षण नेतृत्व में तुर्की सेना ने बृटिश और साम्राज्य की सेना को दरिया-दनियाल पर कब्जा करने में विफल किया। पर कमाल को टर्की के सुल्तान में पूर्ण अश्रद्धा हो गई। जब जर्मनी और टर्की हार रहे थे, कुन्स्तुन्तिनिया खतरे में था, कमाल के अनुसार टर्की के सुल्तान मुहम्मद पाचवां अपनी जान और पद बचाने की फिक्र में था। इसलिए कमाल इस निर्णय पर पर पहुँचा कि अब एक ही रास्ता था, राष्ट्रीय सार्वभौम सत्ता के सिद्धांत पर नया टर्की-राज्य का निर्माण, और इसकी पूर्ण स्वतन्त्रता की प्राप्ति।

मुस्तफा कमाल एशियामाइनर में राष्ट्रीय क्रान्ति का संगठन करने लगा। धीरे धीरे कमाल के आदर्श-विदेशी प्रभाव और सुल्तान से एकदम स्वतन्त्र नया टर्की राज-के प्रति जनता और सेना में विश्वास हो गया। टर्की में नयी पार्लियामेन्ट के चुनाव की आज्ञा निकाली गई। नये प्रतिनिधियों में कमाल के पार्टी के सदस्यों या समर्थकों का बहुमत था। कमाल ने अंगोरा में इन प्रतिनिधियों की प्रारम्भिक सभा बुलाई, और एक राष्ट्रीय-समझौता (National Pact) पास हुआ, जिसमें

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह कहा गया कि "प्रत्येक राष्ट्र की तरह टर्की को भी अधिकार है कि वह अपने भविष्य का स्वयं निर्णय करें, और पूर्ण स्वतन्त्रता का उपभोग करे, जिससे कि राष्ट्रीय और आर्थिक विकास सम्भव हो और शासन सुचारु रूप से हो सके"। मित्र राष्ट्रों के लिये यह राष्ट्रीय पैक्ट खुली चुनौती थी। इस पैक्ट के अनुसार टर्की से विदेशी प्रभाव उठ जाता, और स्मइर्ना से फौज वापस करनी पड़ती। मित्र राष्ट्रों ने इसलिये अब उग्र कदम उठाना जरूरी समझा। कुन्स्तुन्तिनिया पर अधिकार कर लिया गया, राष्ट्र-वादियों को गिरफ्तार किया गया।

पर इससे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रोत्साहन ही मिला। कमाल ने अंगोरा की सरकार को ही वैध सरकार घोषित किया। कमाल के विद्रोह के विरुद्ध विदेशी हाथों में कठपुतली बना सुल्तान शक्ति का प्रयोग करने पर आमदा था। पर कमाल ने विलक्षण सेनापतित्व दिखाया। राष्ट्रीय आजादी की लड़ाई में अन्त में कमाल सफल हुआ। आरमिनअनों और यूनानियों को मुंह की खानी पड़ी। इटैलीं और फ्रास कमाल से अलग सन्धि करने को तैयार थे और युद्ध से अलग हो गए। यूनानियों को स्मइर्ना छोड़ना पड़ा (६ सेप्टेम्बर १९२२)। यूनानियों को कमाल ने 'बोरिया-बस्ता' लेते हुये अनातोलिया से खदेड़ दिया। लौजें (Lausssane) की सन्धि (१९२३) में टर्की की स्वतन्त्रता को मान लिया गया। टर्की की सीमा भी राष्ट्रीय मांग के अनुसार निर्धारित हुई। ओट्टोमन-सुल्तान के सार्वजनिक कर्ज का बोझ भी हल्का हुआ। विदेशी विशेषाधिकार-केपिट्युलेशन्स् का अन्त हुआ। मिल्लेत (Miliets) भी अवैध घोषित किये गये। यूनानियों और तुर्की-मुसलमानों की आबादी का अदला-बदला हो गया। अतः टर्की में अब राष्ट्रीय एकता थी। राष्ट्रीय हित के लिए यह अच्छा था। लौजें की संधि के बाद यह स्पष्ट था कि अनातोलिया, थ्रास, दर्रेदनियाल और बोस्फोरस और कुन्स्तुन्तिनिया टर्की के थे। सेना, जल-सेना और शासन की शक्ति टर्की के अधीन थी। तुर्क

कमाल का विद्रोह

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने घर में स्वयं प्रभु थे। टर्की एक पूर्ण राष्ट्रीय राज्य बन गया। तुर्कों का हित ही इस राज्य की चिन्ता का विषय हो गया।

कमाल ने अब टर्की के पुनर्निर्माण पर ध्यान दिया। उसने खिलाफत को उठा दिया। यह एक महत्वपूर्ण घटना थी। मध्यकालीन युग की एक प्रमुख संस्था का अन्त हो गया। टर्की अब इस्लामी तरजीह का का नेता नहीं रहा, और अब अपना नया रास्ता ढूंढ़ सकता था। टर्की को गणतन्त्र घोषित किया गया। कमाल राष्ट्रपति चुना गया। नये सम्विधान (जनवरी १६२७) के अनुसार राष्ट्रीय पार्लियामेन्ट एक सदन की थी। सार्वभौम सत्ता जनता में निहित थी। पार्लिन्यामेन्ट के प्रति मन्त्रीमंडल उत्तरदायी था। राष्ट्रीय लोकसभा को सभी तरह के कानून बनाने का अधिकार था। प्रत्येक बालिग नागरिक को मतदान का अधिकार था। १६३४ के संशोधन के अनुसार २३ वर्ष के अन्दर के प्रत्येक मर्द और औरत को वोट देने का अधिकार था।

खिलाफत का अन्त

टर्की का संविधान का रूप पश्चिमी प्रजातान्त्रिक संविधानों पर आधारित था। पर असल में मुस्तफा कमाल ने अपनी तानाशाही कायम किया। उसका राजनैतिक दल का नया नाम जनता पार्टी (People's Party) पड़ा, और लोकसभा में उसी दल के प्रतिनिधि चुने गये थे, जिनका नाम सरकार ने एक सूची में छापा था। सरकार के विरोधियों पर बड़े प्रतिबंध लगे थे। भाषण देने और प्रेस की स्वतन्त्रता नहीं के ही बराबर थी। सरकार के विरोधियों की हत्या भी की गई। पर कमाल के विचार में दृढ़ सरकार राष्ट्रीय एकता और टर्की को आधुनिक राष्ट्र बनाने के लिए जरूरी थी। टर्की की जनता स्वेच्छाचारी शासन से अभ्यस्त थी। अधिकांश जनता निरक्षर और अशिक्षित थी, और प्रजातान्त्रिक वैधानिक शासन के लिए सर्वथा अनुपयुक्त। मुस्तफा कमाल में साधारण जनता को पूर्ण विश्वास था। उनका कहना था

कमाल की तानाशाही

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि 'गाजी (कमाल) जो कुछ भी करता है ठीक ही करता है।' एक बात ध्यान देने की है कि कमाल का विचार था कि स्वेच्छाचारी पर लोकहितकारी सरकार के शासन से जनता प्रजातान्त्रिक सरकार चलाने के योग्य हो जायगी। प्रजातन्त्र की सफलता के ही लिए कमाल की तानाशाही जरूरी थी। कमाल के मरने के कुछ वर्ष बाद कमाल की पार्टी का पतन हुआ, और विरोधी पार्टी की सरकार बनी। टर्की में कोई क्रान्ति या खूनखराबी नहीं हुआ। जैसे प्रौढ़ प्रजातन्त्र में एक दल के बाद दूसरे दल की सरकार बनती है, वैसा ही हुआ।

आधुनिक टर्की का निर्माण

कमाल की पार्टी का एक लक्ष्य था टर्की को आधुनिक राज्य बना देना। आधुनिकता या पश्चिमी सभ्यता टर्की में बहुत पहले से ही प्रवेश कर रही थी। पर कमाल इस दिशा में पिल पड़ा। धर्मान्धों और दकियानूसों और स्थिर-स्वार्थों के प्रतिनिधियों ने उसका विरोध किया। पर शासन के बल पर कमाल ने इनके विरोध को दबा दिया। राजशासन की रूपरेखा में जो क्रान्तिकारी परिवर्तन हुये उसका जिक्र उपर किया गया है। कमाल ने यह निश्चय किया कि राष्ट्र की प्रगति के लिए और योरप के उन्नत राष्ट्रों की पंक्ति में रहने के लिए टर्की को पश्चिमी सभ्यता को अपनाना पड़ेगा। उसने कहा था—"वे (पश्चिमी के लोग--Westerners) जान जांयगें कि हमलोग उतने ही अच्छे हैं जितने वे तब वे हमारे साथ बराबरी का बर्ताव करेंगे। हम उनके सामने अपना सिर कभी नहीं झुकाएंगे।" और अभी भी वह इसी आदर्श से प्रेरित था। उसने टर्की को धर्मनिरपेक्ष (Secular) राज्य बना दिया। मजहबी कचहरियां उठा दी गई, मजहबी मकतबों को खत्म कर दिया गया, और मस्जिदों की जमीदारियों को राज्य ने अपने अधिकार में कर लिया। स्कूलों में धर्म-शिक्षा उठा दी गई है। और १९२८ में संविधान की यह धारा कि टर्की राज्य का धर्म इस्लाम है, रद्द कर दी गई। टर्की अब बिल्कुल धर्मनिरपेक्ष (Lay) राज बन गया। धर्म

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य की निजी चीज हो गया। राज्य का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं रहा। इस्लामी दुनियां का नेता टर्की का यह रूप निश्चय ही क्रान्तिकारी है। कुस्तुन्तिनिया से हटाकर अंकारा राजधानी ले जाना भी महत्वपूर्ण नहीं है। अंकारा में आधुनिक ढंग के मकान बने, प्रयोगशालाएँ और अजायब घरों को स्थापित किया गया। मूर्तिकला और चित्रकारी को प्रोत्साहन दिया गया। कलाकारों को सरकार से मदद मिलती थी।

१६२५ में एक कानून के द्वारा फेज-टोपी पहनना गुनाह करार दिया गया। कुछ लोग कमाल की आज्ञा की आलोचना करते हैं कि पश्चिमी सभ्यता को अपनाने का यह दिखौआ तरीका था। पर वास्तव में 'फेज' मुस्लिम और ईसाई तुर्क में भेद की निशानी था। अब योरोपीय पोशाक सभी तुर्क पहनने लगे। यह नये आचार-विचार का प्रतीक था। नया टर्की का मुख्य लक्षण है स्त्रियों की दशा में सुधार। इस्लामी दुनियां में स्त्रियों की दशा गिरी थी। वे पुरुषों की दासी ही रह गई थीं, और सार्वजनिक जीवन में उनका कुछ भाग नहीं था। पर्दा में रहना उनका धर्म था। कमाल ने एक नयी धर्मसंहिता (Civil Code) का प्रचलन किया। यह स्विट्जरलैण्ड के कानून का वस्तुतः अनुवाद ही था। इसके अनुसार स्त्रियों को कानून की नजर में पुरुषों को बराबरी का दर्जा दिया गया। शिक्षा और सामाजिक जीवन में स्त्रियां सक्रिय भाग ले रही हैं। डाक्टर, वकील, शिक्षक, वैज्ञानिक, विमानचालक और लोक-सभा के सदस्य के पदों पर कई तुर्की स्त्रियां हैं। बुर्का पहन कर निकलना बन्द हो गया है स्त्रियों में आत्मविश्वास और उत्साह उमड़ पड़ा है। पश्चिमी वेशभूषा, नाच-रंग, क्लब इत्यादि कुछ स्त्रियों को कुपथ पर भी ले गये हैं। पर यह संक्रामक-युग का प्रभाव है। धर्म और जाति के आधार पर टर्की के नागरिकों में कोई भेद नहीं है।

स्त्रियों की दशा

टर्की का न्यायशासन भी आधुनिक योरोपीय सिद्धान्तों पर स्थापित हुआ है। धार्मिक कचहरियां तो पहले ही उठा दी गई थी। शरिअत

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बन्धन को तोड़ डाला गया।

अरबी लिपि की जगह में रोमन लिपि को राज्यलिपि मानना कम क्रान्तिकारी नहीं था। यह लिपि जल्दी लिखी जा सकती थी। बालिगों को शिक्षा साक्षर बनाने में कमाल ने स्वयं उदाहरण पेश किया। वह देहातों में जाकर ब्लैकबोर्ड लेकर लोगों को लिखाना-पढ़ाना सीखाता था। टर्की में निरक्षरता बहुत हद तक दूर हो गई। स्कूल और कालिजों की संख्या बढ़ती गई। १६१३-१४ में ३६२३ प्राथमिक पाठशाला और ५६६३ शिक्षक ओर २१६१३० विद्यार्थी थे। पर १६३२-३३ में ६७३३ ऐसे स्कूल, १५०६४ शिक्षक और ५६७६६३ विद्यार्थी थे। पश्चिमी शिक्षा पद्धति अपनाई गई। विज्ञान और अनुसंधान विशेष कर चिकित्सा-शास्त्र को प्रोत्साहन दिया गया। व्यवहारिक और बुनियादी शिक्षा पर जोर डाला गया। कमाल अतातुर्क ने शिक्षकों को नया टर्की बनाने का उत्तरदायित्व समझाया—"नया टर्की—आने वाली पीढ़ियां, शिक्षकों, आपका ही काम होगा।"

इतिहास के अध्ययन के लिए एक खास इन्स्टीट्यूट खोला गया। नवीन टर्की में पढ़ने-लिखने के साथ-साथ खेल-कूद को भी प्रोत्साहन दिया गया। स्काउटी शिक्षा भी दी गई। पुरातत्वशास्त्र और भाषा-विज्ञान के अध्ययन में कमाल स्वयं दिलचस्पी लेता था। कला की भी उन्नति हुई। लैटिन लिपि के साथ-साथ कमाल ने टर्की में अन्तर्राष्ट्रीय जंत्री और अंक का भी प्रचार किया। टर्की में जुमा के बदले एतवार को छुट्टी का दिन माना गया। टर्की भाषा की उन्नति हुई है, और प्रत्येक बालक को टर्की भाषा में प्राथमिक पाठशाला में पढ़ना अनिवार्य कर दिया गया। पर्शियन और अरबी शब्दों का बहिस्कार किया जाने लगा। टर्की की भाषा में दर्जनों अखबार निकलते हैं। कई प्रशिक्षणालय (Teacher's Traning Schools) स्थापित हुये हैं। लड़कियों के लिए भी अलग स्कूल हैं।

आर्थिक-क्षेत्र में भी टर्की ने प्रगति की है। बड़े बड़े उद्योगों का

CC-0. Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकास हुआ। टर्की के राष्ट्रीय बैंक की स्थापना हुई। स्वदेशी पूञ्जीपतियों को सरकार से प्रोत्साहन मिला। चीनी, कपड़ा, और दरी बनाने की मिलें खुलीं। १९३४ में पंचवर्षीय योजना बनाई गई थी। कृषि को आधुनिक साधनों से समृद्ध किया गया है। ट्रैक्टरों का भी प्रयोग होने होने लगा है। कमाल ने स्वयं उदाहरण पेश किया। कृषि सहायक समीतियां और बैंकों के द्वारा कृषकों को कृषि सुधार करने में सहायता दी गई है। यूनानियों की जगह पर जब तुर्कों को पुनर्वासित किया गया तब जमीन का बँटवारा भी हुआ, और टर्की में स्वतन्त्र किसानों की संख्या काफी है। तम्बाकू, रेशम, रूई, फल के उत्पादन को सरकार से विशेष सहायता मिलती रही है क्योंकि राज्य आय का बड़ा भाग इन्हीं से प्राप्त होता है। राज्य में रेलवे लाइन बिछा दी गई। बन्दरगाहों की उन्नति की गई। कृषि और पशुपालन की उन्नति की गई। कृषि के लिए स्कूल खोले गये हैं, और विदेश भेजकर तुर्क युवकों को शिक्षा और व्यवहारिक ज्ञान दिलाया गया है। विदेशी विशेषज्ञों को भी बुलाया गया है। बिना विदेशी मदद के टर्की का औद्योगीकरण व आर्थिक विकास सम्भव नहीं था।

आर्थिक उन्नति

अतः यह कहने में अत्युक्ति नहीं है कि नवीन टर्की पुरानी लीक छोड़ कर नये रास्ते पर चला है और प्रत्येक दिशा में तरक्की हुई है। इसका बहुत अधिक श्रेय मुस्तफा कमाल को है तभी तो उसे टर्की का पिता-अतातुर्क कहा गया है। १९३८ में इसकी मृत्यु हो गई। पर टर्की उसकी ही निर्धारित राह पर चल रहा है।

कमाल एक सफल सेनापति, चतुर राजनीतिज्ञ और दृढ़ सुधारक था। वह बिस्मार्क, फ्रेडरिक् और मेकियावेलि सब एक साथ था।

जिस तरह भारत में गांधी और गांधीवाद का आदर होता है, उसी तरह टर्की में कमाल और कमालवाद की पूजा होती है। आज का टर्की कमालवाद का प्रत्यक्ष रूप है। राष्ट्रीय एकता, सैनिक शक्ति और

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिकता कमालवाद के विशेष लक्षण हैं। नये टर्की में अर्धचंदाकार चिह्न के अलावे पैनी तीर भी राजचिह्न माना जाता है। 'पैनी तीर' टर्की की क्रियमान शक्ति की द्योतक है।

टर्की के स्वातान्त्र्य संग्राम में सोवियत् रूस ने मदद की थी। इसलिये टर्की और सोवियत् में मित्रता हो गई। वही रूस जो टर्की का दुश्मन था, अब टर्की का मित्र बन गया था। पश्चिमी साम्राज्यवाद के विरुद्ध रूस और टर्की दोनों थे। टर्की ने पर्शिया और अफगनिस्तान से सन्धि कर ली। टर्की अब राष्ट्रीय राज्य था, इसलिये पर्शिया का उससे अब पुराना झगड़ा मिट चुका था। टर्की निरपेक्ष राज्य होते हुए भी अन्य इस्लामी देशों का मित्र बन गया। टर्की की अत्याधिक जनसंख्या मुसलिम ही थी। इंगलैण्ड और इटैली कमाल के अन्दोलन के विरुद्ध थे। नये टर्की ने इसलिये इनसे विमुख रहने की नीति अपनाई। पर देश के आर्थिक विकास के लिये पश्चिमी योरोपीय देशों का सहयोग आवश्यक था। लौजें की सन्धि के बाद जर्मनी से सम्बन्ध दृढ़ हुआ। जर्मनी भी प्रगति के पथ पर था। जर्मन बैंक और ठीकेदार टर्की के आर्थिक विकास के लिये टर्की में पहुँच गये। जर्मन विशेषज्ञों का टर्की में स्वागत हुआ। इटैली भी टर्की में पूंजी लगाने लगा, और कर्ज की बड़ी रकम दिया। निकट-पूर्व के बाजार इटैली के तैयार माल के लिये जरूरी थे। इटैली के ही प्रयत्न से टर्की और ग्रीस में भी सन्धियां स्थापित हो गई। इंगलैंड के प्रति टर्की में कटुता का भाव था, क्योंकि इंगलैंड ने ग्रीस को टर्की के विरुद्ध खुली मदद दी थी, और ईराक का अभिभावक-राष्ट्र बनकर टर्की की पूर्वी सीमा को निर्धारित किया था मोसुल प्रदेश को ईराक में मिला लिया था। फ्रांस से भी सम्बन्ध अच्छा नहीं था।

टर्की की विदेशी नीति

हिट्लर के उत्कर्ष के बाद टर्की ने अपनी स्थिति को और भी दृढ़ करने का निश्चय किया। कमाल अतातुर्क साम्यवाद का विरोधी था। रूस से मित्रता रहने के कारण कहीं टर्की में साम्यवाद के प्रचार की प्रगति

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को बढ़ावा न मिल जाय, कमाल रूस की मित्रता की डोर को ढीला करने लगा। वह पश्चिम योरप की ओर आकृष्ट हुआ। १६२८ में टर्की राष्ट्रसंघ का सदस्य हो गया, और १९३४ में टर्की, युगोस्लाविया, रूमानिया और ग्रीस ने बाल्कन् गुट कायम किया, जिसके अनुसार प्रत्येक सदस्य ने दूसरे सदस्य की राज्यसीमा का आदर करने की प्रतिज्ञा की। जब हिट्लर वर्साइ की सन्धि की धज्जियां उड़ा रहा था, और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति गम्भीर हो रही और पश्चिमी योरप के महान् राष्ट्र हिट्लर की तृष्णा की शांत करने में लगे थे, टर्की ने दर्रे दनियाल और बोस्फोरस की सैन्यीकरण की मांग की, और लौजें की सन्धि की असैन्यीकरण की धारा को हटा देने का उसका प्रस्ताव अन्य राष्ट्रों ने मान लिया। टर्की की कूटनीति की यह एक बड़ी विजय थी। टर्की अपनी सैनिक शक्ति को मजबूत करने में लगा था।

जब १६३६ की ३ सेप्टेम्बर को द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू हुआ तब पहले टर्की ने युद्ध से अलग रहने की नीति अपनाई। टर्की की भौगोलिक स्तिथि ऐसी थी कि यदि वह धुरी-राष्ट्रों (Axis Powers) का पक्ष लेता तो मित्र राष्ट्रों के लिये बड़ा नुकसानदेह होता। युद्ध बन्द होने के बाद टर्की धीरे-धीरे आंग्ल-अमेरिका गुट के प्रभाव में आ रहा है। अमेरिका से सैनिक और आर्थिक मदद लेकर टर्की अपनी स्थिति मजबूत कर रहा है। सोवियत् और साम्यवादी विरोधी नीति जारी है। टर्की उत्तर-अटलांटिक-संधि-व्यवस्था का सदस्य बन गया है। ग्रीस, युगोस्लाविया से भी टर्की की सन्धि हो गई है (फरवरी १६५३), सोवियत् गुट के बाल्कन राज्यों के आक्रमण या प्रत्याक्रमण को ध्यान में रख कर ही यह किया गया है और अमेरिका की साम्यवादी-विरोधी नीति की एक कड़ी है।

ख—अरब का जागरण

प्रथम विश्वयुद्ध के समय अरब प्रदेश टर्की के साम्राज्य के अन्तर्गत थे इंगलैंड और फ्रांस ने अरबों को टर्की के विरुद्ध उभाड़ा था। जेनरल लौरेन्स ने अपनी चतुरनीति से अरबों का समर्थन प्राप्त किया था। अरबों

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को स्वतन्त्रता का आश्वासन भी दिया गया था। अरबों ने दिल खोल मित्र राष्ट्रों की मदद की, और टर्की की सामरिक योग्यता इस तरह कम हो गई। पर टर्की की पराजय के बाद और उसके साम्राज्य के अन्त के बाद अरब देशों को स्वतन्त्रता नहीं मिली। इंगलैंड और फ्रांस अरब-संसार को आपस में विभाजित करने की गुप्त सन्धि कर चुके थे। (Sykes-Picot Agreement)। एक तरफ तो अरबों को अपने भाग्य का स्वयं निपटारा करने के अधिकार देने की प्रतिज्ञा की गई थी, दूसरी ओर फिलस्तीन में, जहां अरबों का अत्याधिक बहुमत था, एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की भी प्रतिज्ञा इंगलैंड के मन्त्री बालफोर ने की थी। अन्त में इंगलैंड को फिलस्तीन और इराक़ फ्रांस को सीरिया और लेब्नान शासनादेश (Mandate territory) के रूप में मिले, बहाना यह था कि पिछड़े देशों को स्वशासन की योग्यता प्राप्त हो इसलिये फ्रांस और इंगलैंड ऐसे उन्नत प्रजातन्त्र यहां प्रयास करेंगे, और शासन-प्रबन्ध की रिपोर्ट राष्ट्रसंघ में पेश करते रहेंगे। पर वास्तविकता यह थी कि अरब-प्रदेश इंगलैंड और फ्रांस के साम्राज्यवादी शोषण के अंग बन गये। इन देशों में लकड़ी, हुमाद और विशेषकर तेल की सुविधा थी। फिर ये इंगलैंड के लिये भारत और सुदुरपूर्व के रास्ते में पड़ते थे। युद्ध के समय में इस क्षेत्र का अत्यन्त ही अधिक सामरिक महत्व था।

पर २०वीं सदी के अरब-जगत् को साम्राज्यवादी नीति के शिकंजे में रखना आसान नहीं था। क्योंकि अब इन भोले-भाले अरबों में स्वतन्त्रता और प्रजातन्त्र के विचार घर कर रहे थे। पश्चिमी देशों के सम्पर्क में आने पर इन्हें पश्चिम के विकसित राजनैतिक विचारों की जानकारी हुई। मध्यवर्ग के युवक अब पश्चिमी भाषा और साहित्य का अध्ययन करने लगे। इनमें इसलिये अब मध्यकालीन दकियानुसी ख्यालों के विरुद्ध आधुनिक विचारों के प्रति आकर्षण हुआ। रेल और मोटर की सुविधा से यातायात की उन्नति हुई पर देश की एकता का भी ज्ञान हुआ। राष्ट्रीय एकता के विकास में रेल और हवाई जहाज का बड़ा प्रभाव है। अरबों

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को ओट्टमन टर्कों के साम्राज्य के विरुद्ध १८वीं और १९वीं सदी में बहा-विओं और मिश्र के शासक मुहम्मद और उसके पुत्र इब्राहिम ने भी उभाड़ा था। पर यह समय के पहले था। जब २०वीं सदी में मित्रराष्ट्रों ने अरबों में राष्ट्रीयता की भावना को जागृत किया तब परिस्थिति अनुकूल थी। धार्मिक कट्टरता और आर्थिक दरिद्रता में पले अरब आधुनिक विज्ञान और उदारवादी राजनैतिक विचार, से अत्यन्त प्रभावित हुए, और इनमें अपने देश की आजादी प्राप्त करने की इच्छा बलवती हो गई, क्योंकि तभी वे देश के साधनों को अपने हितों में लगा कर उन्नति कर सकते थे। मिश्र, फिलस्तीन, और सीरिया में देशी मध्यमवर्ग--छोटे-मोटे दूकानदार और पूंजीपति--स्वतन्त्रता चाहता था और मजदूर भी विदेशी पूंजीपति के शोषण के विरुद्ध संगठन और आंदोलन करने लगे। साम्यवादी विचारों का भी प्रवेश हुआ। राष्ट्रीय आंदोलन को इससे बल मिला। पर साम्राज्यवादी देश अपने तैयार माल के बाजार के लिये, यहां की 'तेल' के लिये और यातायात के साधनों पर अपना प्रभुत्व रखने लिए इस क्षेत्र पर अधिकार रखना जरूरी समझते थे। इसलिये यदि साम्राज्यवादी देशों के सम्पर्क में आने के कारण ही अरबों में आधुनिकता का विचार आया और राष्ट्रीय आंदोलनों की पृष्ठभूमि तैयार हुई, साम्राज्यवादी देश ही अब इन नये आदर्शों को दबाये रखने के लिये उद्धत थे। योरप के लिये २०वीं सदी यदि साम्राज्यवाद का युग है, तो एशिया के लिये राष्ट्रीयता का युग है। १९वीं सदी योरप में राष्ट्रीयता ने जिस बौद्धिक और धार्मिक क्रान्ति का पथप्रदर्शक का का काम किया था, वही क्रान्ति अब अरब-जगत में हो रही थी।

(i) **फिलस्तीन** (Palestine)–स्वेज-नहर के और भारतवर्ष के रास्ते से फिलस्तीन का प्रत्यक्ष सम्बन्ध रहने के कारण इंगलैंड की इस देश में बड़ी दिलचस्पी थी। फिर यहूदियों के लिए फिलस्तीन तीर्थ स्थान ही नहीं वरन् जन्मभूमि भी थी। इसी कारण साम्राज्यवादी देश इसे अरब-राष्ट्रीयता के बाहर रखना चाहते थे और अठारहवीं सदी में योरप में

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्वासित यहूदियों में राष्ट्रीयता की भावना जागृत हुई, और उन्नीसवीं सदी में यहूदियों के जत्थे फिलस्तीन आकर बसने लगे। यहूदी तेज और बुद्धिमान हैं, कार्यपटु और मेहनती भी। इनके पास धन की कमी नहीं थी। योरप और अमेरिका में रहने के कारण आधुनिक यन्त्रकला और विज्ञान का अनुभव भी इन्हें प्राप्त था। अतः फिलस्तीन में आकर इन्होंने यहूदी इलाकों का आधुनिक विकास करना शुरू किया। फिलस्तीन में स्वतन्त्र यहूदी (इजारायल) राष्ट्र की पुनर्स्थापना ही दुनियां भर के यहूदियों का लक्ष्य था। इनका एक विश्व-संगठन स्थापित हुआ और धन और प्रचार के कारण योरप विशेषकर इंगलैंड और अमेरिका के राजनैतिक क्षेत्र पर इनका प्रभाव भी बढ़ा। १९१७ में बाल्फर ने फिलस्तीन में यहूदियों के राष्ट्रीय देश (National Home) की स्थापना के प्रति सहानुभूति की घोषणा की। इस घोषणा का यहूदियों ने उत्साह-पूर्वक स्वागत किया--पर फिलस्तीन वीरान देश नहीं था। यहूदियों के चले जाने के बाद से ही अरबों ने इस देश को आवाद किया था। अरब राष्ट्रीयता फिलस्तीन को अरब जगत् का एक भाग समझती थी और बाहर के यहूदियों को यहां आकर बसना और लाकर बसाना उनके विचार में बेईमानी थी, उनकी राष्ट्रीयता का अपमान था। अरबों में इसलिए इस घोषणा से असन्तोष छा गया। ग्रेटब्रिटेन अरबों को भी दुश्मन नहीं बनाना चाहता था। युद्ध में अरबों को राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का आश्वासन मिला था। अरब-यहूदी समस्या इसलिए जटिल हो गई, और इंगलैण्ड दोनों की महत्वाकांक्षा को सीमाबद्ध करना चाहता था। १९२२ में चर्चिल-श्वेतपत्र में यह घोषणा की गई कि इंगलैंड फिलस्तीन के कुछ भाग में न कि पूरे फिलस्तीन में यहूदी राज्य स्थापित करने की नीति पर दृढ़ है। इंगलैंड की इस द्वैध (Dual) नीति के कारण एक ओर तो अरबों और यहूदियों की विरोधी महत्वाकांक्षाओं को बढ़ावा मिला, दूसरी ओर दोनों जातियों को इंगलैंड के प्रति सन्देह उत्पन्न हुआ। राष्ट्र-

इंगलैंड की द्वैध नीति

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संघ ने इंगलैंड को फिलस्तीन में एक शासनादेश प्रदेश के रूप में शासन करने की आज्ञा दी। इंगलैंड ने फिलस्तीन में अरबों के हितों की रक्षा का आश्वासन दिया, और यहूदियों को फिलस्तीन में धीरे-धीरे कम संख्या में आने को कहा। पर अरब-यहूदी संघर्ष होते रहे। बहुसंख्यक अरबों को अल्पसंख्यक बना कर ही यहूदी राज्य पूरे या फिलस्तीन के एक भाग पर स्थापित हो सकता था। अरब आत्मनिर्णय के अधिकार की मांग करने लगे और छोटे से देश में बहुसंख्यक यहूदियों को पुनर्वास कराना देश की आर्थिक स्थिति के लिए हानिप्रद बताया। अरबों ने अपना संगठन स्थापित किया और बृटेन से असहयोग और फिलस्तीन को सीरिया में मिला देने का आन्दोलन शुरू किया। यहूदियों पर आक्रमण भी होने लगे। मजदूरों और किसानों को यहूदी मालिकों के विरुद्ध उभाड़ा गया। इंगलैंड ने इन उपद्रवों का फायदा उठाकर शासन और कानून बनाने के सभी अधिकार प्राप्त कर लिया। अरबों को खुश करने के लिए एक शक्तिहीन व्यवस्थापिका परिषद् की स्थापना की गई, पर अरब राष्ट्रीय नेताओं ने बहिस्कार का मार्ग अपनाया।

बृटिश सरकार ने अरबों में फूट डालकर एक नयी पार्टी को प्रोत्साहित किया। युवक अरबों का ध्यान देश की आर्थिक दशा और राज की वित्त नीति पर गया, और पार्लियामेन्टरी विधान की मांग संयुक्त अरब कांग्रेस ने की (१९२८)। १९२९ से १९३९ तक अरबों ने यहूदियों के प्रति उग्र नीति अख्तियार किया, और उपद्रव होते रहे जिनमें कितनों की जान भी गई। इसी बीच फिलस्तीन में बाहर से आनेवाले यहूदियों की संख्या में भी वृद्धि हुई। इसे अरब लोग यहूदियों के द्वारा अपने देश पर आक्रमण ही समझते थे। जौर्डन् नदी के पश्चिमी प्रदेश में बृटिश सरकार के संरक्षण में ट्रांसजौर्डन का अरब-राज्य स्थापित किया गया, इससे यहूदी बहुत रंज थे। ये जौर्डन नदी के दोनों ओर के इलाके को यहूदी राज्य में रखने का स्वप्न देखते थे। यहूदियों ने संसार के धनी

अरबों का राष्ट्रीय आंदोलन

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहूदी संघ (World Zionism) के साधनों के कारण फिलस्तीन के यहूदी इलाकों में आर्थिक स्थिति और शिक्षा में काफी विकास दिखाया, और इसे लोगों ने यहूदी राज्य की स्थापना के प्रचार का एक बड़ा हथकन्डा बनाया। नाज़ी जर्मनी के अत्याचार के कारण भी यहूदियों ने संसार की सहानुभूति का फायदा उठाना चाहा और फिलस्तीन में यहूदियों की संख्या बढ़ती गई, और यह आशंका बढ़ी कि यदि यही रफ्तार जारी रही तो १९५२ तक फिलस्तीन की यहूदी आबादी अरबों की आबादी के बराबर हो जायगी। इसलिए अरबों का विरोध उग्रतर होता गया। बृटिश सरकार ने यहूदियों के आने पर और भूमि खरीदने पर प्रतिबन्ध लगाया। पर स्थिति बिगड़ती ही गई, अमन-चैन रखना मुश्किल हो गया। १९३७ की राज्य-कमीशन (Royal Commission) ने अन्त में अपनी रिपोर्ट में यह साफ लिख दिया कि अरबों और यहूदियों के प्रति की गई प्रतिज्ञाएँ पारस्परिक विरोधी हैं, और समस्या का समाधान है फिलस्तीन को अरब और यहूदी में, दो भागों में, बांट देना। अरबों ने स्वतन्त्र संयुक्त फिलस्तीन की मांग की और विभाजन के इस प्रस्ताव को एक मत से अस्वीकार कर दिया। आतंकवादी नीति अख्तियार किया गया। सरकार ने भी दमन की नीति अपनाई, अरब नेताओं की गिरफ्तारी हुई, मुफ्ती बेरुत भाग गया। पर आंदोलन दबा नहीं, और सैन्यबल पर ही किसी तरह शासन टिका रहा। जेरुसलेम तो हाथ से बाहर हो ही गया था (१९३८)। इस समय द्वितीय विश्वयुद्ध के बादल मँडरा रहे थे और बृटेन अरबों को दुश्मन नहीं बनाना चाहता था। मई १९३९ में ग्रेट बृटेन ने एक नई नीति की घोषणा की जिसके अनुसार १९४० में फिलस्तीन को स्वतन्त्र राज्य मान लिया जायगा, इंगलैंड के साथ इसका सन्धि-सम्बन्ध रहेगा, और पांच वर्ष तक ७५००० यहूदी हर वर्ष फिलस्तीन आ सकेंगे, और उसके बाद अरबों की राय से ही वे यहां बस सकेंगे। यहूदियों ने इस घोषणा का कस कर विरोध किया। वे इसे विश्वासघात का नग्न रूप समझते थे। राष्ट्र-संघ की स्थायी शासनादेश कमीशनरने भी इसे मैन्डेट के विरोधी ठहराया।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९३९ में युद्ध शुरू हो गया, और श्वेत पत्र पर विचार या फैसला स्थगित करना पड़ा। यहुदियों ने अब आतंकवाद का रास्ता अपनाया। इटैली और जर्मनी अरवों को वृटेन और फ्रांस के विरुद्ध उभाड़ते रहे।

द्वितीय विश्व युद्ध और उपरान्त

फिलस्तीन और सीरिया को स्वतन्त्रता न देकर इंगलैंड और फ्रांस अरवों के कोपभाजन वन चुके थे। यहूदी नाजी जर्मनी के विरुद्ध मित्र राष्ट्रों की मदद कर रहे थे, यद्यपि १९३९ के श्वेत-पत्र से वेहद रंज थे। यहूदी वड़ी तायदाद में गैरकानूनी जहाजों में लदकर फिलस्तीन पहुँचने लगे। जर्मनी ने इसे चुपचुप वढ़ावा ही दिया जिससे अरव-फिलस्तीन समस्या गर्म रहे। वृटेन और टर्की ऐसे जहाजों को रोक रहे थे इसलिये यहूदियों में उग्र Irgun और Stern दलों ने आतंकवाद को खुले तौर से अपनाया। १९४५ में वृटिश अफसर (Loud Moyn) की हत्या हुई। इंगलैंड में जव मजदूर दल की सरकार वनी (१९४५) यहूदियों को आशा वढ़ी। पर यहुदियों के आतंकवादी कारनामों के कारण यहुदी-समर्थक मजदूर दल की सरकार ने भी यहूदियों के पक्ष में कदम उठाना आसान नहीं समझा। वृटिश सरकार नयी नीति के लिये अमेरिका की सरकार से भी सलाह लेना जरूरी समझती थी। १९४४ के राष्ट्रपति पद के चुनाव के समय में अमेरिका के दोनों दलों ने यहूदियों के वोट प्राप्त करने के लिये उनकी मांगे मान लेने का वादा किया था। ट्रूमेन के दवाव में आकर इंगलैंड को ५००००० विस्थापित यहूदियों को फिलस्तीन में वसने देना मञ्जूर करना पड़ा। १९४५ के नवम्बर में संयुक्त-आंग्ल अमेरिका जांच-कमीशन की नियुक्ति की घोषणा हुई। इस कमीशन ने मई १९४६ में अपनी रिपोर्ट पेश किया। इस रिपोर्ट में फिलस्तीन को अभी वृटिश शासनादेश में रहने की सिफारिश की गई और यहूदियों को फिलस्तीन में आने की सुविधा नर्म करने की भी सिफारिश की गई, पर अरवों के हित और फिलस्तीन की कार्यव्यवस्था को भी ध्यान में रखने कहा गया। सचमुच में यह रिपोर्ट कोई साहसी कदम सिफारिश करने में

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असफल रही, और स्थिति बिगड़ती ही गई। अरबों ने इस रिपोर्ट का विरोध किया। उनकी मांगें थी--मैन्डेट का अन्त हो, बृटिश सेना वापस बुला ली जाय और प्रजातान्त्रिक राज्य स्थापित हो। यहूदियों ने भी अपने रक्षा-दल को विघटित करने से इन्कार किया, और वे आतंकवादियों को रोकने में भी असमर्थ रहे और बृटिश विरोधी विचारों का प्रचार जारी रहा। फिलस्तीन का मशहूर होटल King David Hotel का एक भाग बम से उड़ा दिया गया और बहुतों की जान गई। इंगलैंड ने गोलमेज कान्फ्रेंस में अरब राज्यों के और फिलस्तीन के अरबों औरयहूदी नेताओं को निमन्त्रित किया। पर फिलस्तीन के यहूदी और अरब दोनो दलों ने इसमें भाग लेने से इन्कार किया। गैरकानूनी तरीकों से यहूदी फिलस्तीन में बड़ी संख्या में आते रहे। अमेरिका के धनी यहूदी संस्थाओं और व्यक्तियों ने आर्थिक मदद देकर यह सम्भव किया। इधर लन्दन में कान्फ्रेंस हो रहा था उधर फिलस्तीन में आतंक छा रहा था। पर अब कुछ यहूदी नेता पूरे फिलस्तीन नहीं वरन् उसके एक भाग में ही यहूदी राज्य की स्थापना मानने को तैयार हो गये थे। बृटिश सरकार का नया प्रस्ताव था कि संघीय संविधान में स्वशासित यहूदी और अरब दोनों राज्य शामिल हो। अरबों और यहूदियों दोनों ने इसे नामञ्जूर किया। इंगलैंड ने फिलस्तीन समस्या को संयुक्त राष्ट्रसंघ में पेश करने का निश्चय किया (फरवरी १९४७)। संयुक्त राष्ट्रसंघ के विशेष अधिवेशन में असेम्बली ने फिलस्तीन की समस्या को मध्यम और छोटे-छोटे राष्ट्रों की एक प्रतिनिधि कमिटी के सिपुर्द किया, और इस कमिटी के बहुमत ने फिलस्तीन का विभाजन करने का सुझाव दिया, जब कि अल्पमत ने संघीय संविधान की सिफारिश की (अगस्त १९४७)। यहूदी और अरब दोनों एक भी सिफारिश पर एकमत नहीं थे, और इंगलैंड बिन दोनों के समझौते के कोई भी निर्णय बन्दूक के जोर पर नहीं लादना चाहता था। गत विश्व-युद्ध के कारण इंगलैंड के धन और जन की बड़ी हानि हुई थी और इंगलैंड अब फिलस्तीन में बेतरह उलझे नहीं रहना चाहता था और न उनके पास

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्याप्त साधन थे। संयुक्त-राष्ट्र-संघ की असेम्बली ने विभाजन का मसविदा मञ्जूर किया (नवम्बर १६४७)। यह यहूदी प्रभाव का परिणाम था। अरबों ने इस निर्णय का विरोध करने का निश्चय किया। इंगलैंड अब फिलस्तीन से पींड छुड़ाना चाहता था, इसलिये जनवरी १६४८ में बृटिस सेना का वापस बुलाने का निर्णय लिया। फिलस्तीन में अरबों और यहूदियों में युद्ध छिड़ गया यहूदियोंने अरबों कीसेना कोहरा कर फिलस्तीन में इजरायल राज्य घोषित कर दिया (मई १४,१६४८)। अमेरिका और रूस दोनों ने इसे मान लिया। दोनों इस नये समृद्ध और प्रभावशाली राज्य को अपना मित्र बनाना चाहते थे। पर अन्त में अमेरिका ही सफल रहा है, और फरवरी १६५३ में सोवियत रूस और इजरायल का कूटनीतिक सम्बन्ध टूट गया सोवियत रूस के विरुद्ध यहूदी-विरोधी नीति अख्तियार करने का आरोप लगाया गया, और इजरायल की सरकार पर सोवियत् विरोधी विचारों का प्रचार करने का दोष मढ़ा गया और सोवियत राजदूतावास में बम फुट कर सोवियत कर्मचारियों के हताहत होने का उत्तरदायी ठहराया। अमेरिका अपनी साम्यवादी-विरोधी नीति में फिलस्तीन का सामरिक महत्व समझ गया है।

फिलस्तीन की समस्या सुलझी नहीं है। अरब राज्यों ने इजरायल के विरुद्ध युद्ध की नीति अख्तियार किया। यद्यपि युद्ध अभी ठंडा पड़ा है, पर युद्ध की स्तिथि का अन्त नहीं हुआ है। संयुक्त राष्ट्र ने अरबों और यहूदियों में सुलह कराने के लिये मध्यस्थ या Mediater की नियुक्ति की। स्वीडेन का राजकुमार Count Bernedocte मारा गया। आजकल अमेरिका का नेग्रों नेता Bunche इस पद पर हैं। अरब-यहूदी संघर्ष आज के संकटासन्न विश्व के लिये खतरे की चीज है।

(ii) ट्रांसजौर्डन

जार्डन नदी के पूर्व स्थित प्रदेश ओट्टमन साम्राज्य के अन्तर्गत थे, पर उस पर कोई स्थायी और स्थिर शासन स्थापित नहीं हो सका था।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९१८ में जब सीरिया में फ्रांस का प्रभाव स्थापित हो गया, तब १९२० की सान् रेमो की कान्फ्रेन्स के अनुसार यह प्रदेश बृटेन को शासनादेश के रूप में मिला। फिलस्तीन के यहूदी इसे स्वतन्त्र यहूदी राज्य का एक अविछिन्न अंग समझते थे। इंगलैंड ट्रांसजोर्डन राज्य को अपना मित्र और अपने प्रभाव में रखना चाहता था। १९२० में जब सीरिया में अरबों के सामने फ्रांस की शक्तिकमजोर सिद्ध हुई, तब बृटेन ने इस छोटे से राज्य, ट्रांसजार्डन, को सीरिया से अलग रखने के ख्याल से स्वशासन का अधिकार देने की घोषणा की। बृटिश सलाहकारों की सलाह मानने पर ही यह आश्वासन चरितार्थ किया जाता। इसी बीच में अमीर अब्दुल्ला एक उत्साही सेना के साथ हजाज छोड़ कर पहुँच गया, और सीरिया में फ्रांस के विरुद्ध विद्रोह करने का नेतृत्व लेने का अपना निर्णय सुनाया। इंगलैंड ने अब्दुल्ला को ट्रांसजार्डन का राजा मान लिया, और वह बृटिश सलाह से राज करने लगा। सीरिया और फिलस्तीन दोनों को यह नापसन्द था। १९४६ में जब फिलस्तीन का मैन्डेट खत्म हुआ तब इंगलैंड ने ट्रांसजार्डन को एक स्वतन्त्र राज्य मान लिया। अमीर अब्दुल्ला बराबर बृटेन का मित्र रहा, और इस तरह इंगलैण्ड को अरब जगत् में अपना प्रभाव स्थापित रखने में एक अच्छा मित्र मिल गया। फिलस्तीन के यहूदियों के विरुद्ध युद्ध में अमीर अब्दुल्ला ने पहले खूब उत्साह दिखाया। अंग्रेजों की मदद भी उसे चुपचाप मिलती ही रही। उसकी हत्या हो जाने के बाद भी ट्रांसजार्डन इंगलैंड का मित्र ही है। हाल ही में वहां प्रतिक्रियावादी और प्रगतिशील दलों में घोर मतभेद हो गया है, और पार्लियामेन्ट के प्रति उत्तरदायी शासन की मांग की गई है। प्रायः सभी अरब देशों में इस समय स्वतन्त्रता के अलावे प्रजातान्त्रिक शासन की स्थापना के लिये भी आंदोलन उग्रतर होता जा रहा है।

(iii) सीरिया

सीरिया ओट्टमन साम्राज्य का एक अंग था। पर सीरिया में ओट्टमन तुर्कों का प्रभुत्व पूर्ण रूप से स्थापित नहीं था। सीरिया में ईसाई काफी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे, जो कि तुर्कों की धार्मिक नीति से सन्तुष्ट नहीं थे। सीरिया में इस्लाम के प्रसार के कारण अरबी संस्कृति और जाति का प्रभाव प्रधान था। अतः तुर्की शासन के प्रति इनकी आस्था दृढ़ नहीं हो सकती थी। अतः मिश्र में जब मुहम्मद अली अपना प्रभाव स्थापित कर चुका और खलीफा बनने का स्वप्न देखने लगा तब वह सीरिया पर भी अपना प्रभुत्व स्थापित करने में सफल हुआ (१८३२)। टर्की के विरुद्ध सीरिया में उसे अनुकूल वातावरण मिला। पर यह नहीं भूलना चाहिए कि मुहम्मद अली या उसका पुत्र इब्राहिम तुर्कों के विरुद्ध अरब राष्ट्रीयता के नेता थे। वास्तव में इन बाप-बेटों की वैयक्तिक महत्वाकांक्षा ही तुर्क विरोधी नीति की प्रेरणा थी। पर इसकी सफलता के लिए इन्हें अरबों के सक्रिय सहयोग की आवश्यकता थी। यद्यपि मुहम्मदअली स्वयं अरब नहीं था उसने और विशेषकर उसके पुत्र ने अरब आंदोलनों को जन्म देने का प्रयास किया। इब्राहिम की गवर्नरी में सीरिया में शासन प्रबन्ध बड़ा ही अच्छा रहा। पर योरप के महान राष्ट्र विशेषकर इंगलैंड अरबों का पुनरोत्थान नहीं चाहते थे, और न सीरिया में एक सबल और जन-प्रिय शासन उनके साम्राज्यवादी हितों के पक्ष में था। टर्की का साम्राज्य छिन्न-भिन्न न हो यही इंगलैंड की नीति थी। कमजोर पर मित्र टर्की के रहते उसे भारत के रास्ते के लिए कम चिन्ता रहती थी। अतः मुहम्मद अली को ओट्टमन सुल्तान की प्रभुता मानने को बाध्य किया गया, और सीरिया की गवर्नरी पैत्रिक नहीं वरन् वैयक्तिक निश्चित की गई। अब इब्राहिम को अपनी शक्ति बढ़ाने की जरूरत हुई कि जिनसे वह इन अपमानजनक शर्तों को तोड़ सके। इसलिए अरबों पर नये कर लगे, उन्हें निशस्त्र किया गया। अरबों ने अब मुहम्मद अली और इब्राहिम को अपना मुक्तिदाता नहीं वरन् अत्याचारी शासक समझना शुरू किया। १८४१ में योरप के राष्ट्रों ने इब्राहिम को सीरिया छोड़ देने पर बाध्य किया।

इब्राहिम का शासन काल

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुहम्मद अली की असफलता का कारण सिर्फ योरपीय राष्ट्रों का विरोध ही नहीं था वरन् अरबों में राष्ट्रीय चेतना का अभाव भी था। मुहम्मद अली की अरब-के-साम्राज्य की पुनर्स्थापना की योजना इस कारण वैयक्तिक स्वार्थ पर ही आधरित रही; और पार्मस्टन भारत की राह पर टर्की की जगह पर एक वृहत- अरब-राज्य की स्थापना की कल्पना का भी विरोधी था! सीरिया में ईसाई और इस्लाम के विभिन्न पंथों में काफी मतभेद था। ऐसी परिस्थिति में देशभक्ति की भावना नहीं उठ सकती थी।

इब्राहिम के शासन काल में धार्मिक सहिष्णुता की नीति अपनाई गई थी, और योरपीय पादरी और धर्मप्रचारकों को सीरिया में आने में कोई हिचकिचाहट नहीं थी। यद्यपि ईसाई मिशन सीरिया में पहले से ही स्थापित थे, पर १८३२ के बाद से अमेरिकी और फ्रांसीसी मिशनों ने अत्यधिक दिलचस्पी दिखाई। इन मिशनों ने सीरिया में स्कूल और कुछ समय बाद कालेज खोलने में विशेष भाग लिया। इब्राहिम पाशा ने प्राथमिक शिक्षा के प्रचार के लिये काफी प्रयत्न किया था। अब अरब अंधकार से रोशनी में आने लगे, और पश्चिमी प्रगतिशील विचारों-राष्ट्रीयता और उदार राजनैतिक विचारों-का प्रभाव पढ़े लिखे नवजवानों पर होने लगा। स्त्रियों के लिये भी स्कूल खुले। अमेरिकन मिशनों ने अरबी लिपि में छपी पुस्तकों का भी प्रचार किया। अरबी भाषा और साहित्य के विकास को प्रोत्साहित किया। पुस्तकों के बिना किसी जाति में राष्ट्रीय चेतना की भावना का उदय होना मुश्किल है। शिक्षित समुदाय प्राचीन अरब के गौरव और राष्ट्रीय एकता के भाव के प्रचार का नेतृत्व करने के योग्य बन गया। नासीफ याजेजी और बुट्रुस बुस्तानी अरबी भाषा और साहित्य के प्रकाण्ड पंडित थे और इन्होंने मिशनों के द्वारा स्थापित स्कूलों के लिये अरबी लिपि में पुस्तक लिखने में सहयोग दिया। इन विद्वानों ने अरबों में देशप्रेम की भावना का प्रचार अपने

राष्ट्रीय भावना की उत्पत्ति

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखों और भाषाओं के द्वारा किया। बुस्तानी ने एक अखबार भी निकाला (१८७०) और १८६३ में एक राष्ट्रीय विद्यापीठ की स्थापना की। धार्मिक सहिष्णुता और देशप्रेम का प्रचार ही उसका ध्येय था। इन्हीं दोनों विद्वानों के प्रयास से १८४७ में कला और विज्ञान परिषद् (Society of Arts and Sciences) की स्थापना हुई। इस परिषद् का लक्ष्य था कि अरब युवकों को पश्चिमी ज्ञान और विचारधारा के सम्पर्क में लाना। अन्य ऐसे परिषदों की भी स्थापना हुई। इनसबसे अरबों में ज्ञान की वृद्धि हुई, जागृति हुई, और राष्ट्रीय आंदोलन में इन परिषदों ने प्रमुख भाग लिया। सीरिया की विज्ञान-परिषद् (Syrian Scientific Society) की स्थापना १८५७ में हुई, प्रमुख अरब इसके सदस्य थे, यद्यपि इनके धर्म भिन्न भिन्न थे। इब्राहिम याजेजी नसीफ़ के पुत्र ने देशप्रेम से ओतप्रोत नज्में लिखी थीं जिसमें अरबों को विद्रोह करने का इशारा दिया गया था। तुर्कों के विरुद्ध राष्ट्रीय संग्राम की शुरुआत की यह प्रथम किरण थी। यह नज्म प्रत्येक अरब की जबान पर था।

टर्की के शासन के विरुद्ध अरबों में असन्तोष बढ़ रहा था। शिक्षा, विज्ञान, और पश्चिमी विचारधारा के बढ़ते सम्पर्क के कारण राष्ट्रीय चेतना का भी उदय हो रहा था। किसान सामन्ती व्यवस्था का अन्त चाहते थे और नवशिक्षित समुदाय मौलवी-मुल्लाओं के तर्कहीन प्रभाव से मुक्ति चाहता था। सीधे-सादे अरब किसान छोटे-मोटे विद्रोह पर उतर आये। इनका क्रोध ईसाई पादरियों पर भी हुआ। टर्की का सुल्तान कमजोर हो गया था। योरपीय राष्ट्र इस पर अपना राजनैतिक प्रभाव स्थापित करना चाहते थे। अतः इसाइयों और पश्चिमवालों के विरुद्ध अरबों को उकसाना आसान था। ईसाईयों की हत्या हुई (१८६०)। पर विद्रोह दबा दिया गया। पश्चिमी राष्ट्र अब हस्तक्षेप की नीति की यथार्थता का दम भरने लगे। धर्मान्ध मुल्ला-मौलवियों का प्रयास असफल रहा। सामन्ती व्यवस्था कमजोर हो गई। अब विद्रोह के

१८६० का विद्रोह

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये और भी अधिक ठोस कदम उठाये जाने लगे, और लोगों में टर्की के विरुद्ध स्वतन्त्रता प्राप्त करने की महत्वाकांक्षा दृढ़ हो गई।

१८७६ में अब्दुल हमीद टर्की का सुल्तान और खलीफा बना। वह उदारवादी विचारों के समर्थकों की मदद से ही गद्दी पर बैठा था। पर विधान के प्रति उसकी आस्था दिखावटी थी। वह समूचे साम्राज्य में सुदृढ़ स्वेच्छाचारी शासन स्थापित करना चाहता था। कुछ समय पहले से सैय्यद जमालुद्दीन अली-अफगानी इस्लाम की शक्ति को सुदृढ़ करने की (Pan-Islam) आवाज उठा रहा था। मुस्लिम जनता इस विचार से प्रभावित हो रही थी। अब्दुल हमीद ने Pan-Islam को समर्थन करने की नीति अपनाई। इस आधार पर वास्तव में वह अपना प्रभुत्व सभी मुस्लिम जातियों पर दृढ़ करना चाहता था। क्योंकि वह तुर्कों की नवजागृति से डर रहा था इसलिये साम्राज्य के गैर-तुर्कों या अरबों प्रति वह सहानुभूति और सहयोग और सहायता के भाव प्रदर्शित करना चाहता था। सीरिया जो कि अरब जागृति का केन्द्र था अब्दुल हमीद की इस नीति का लक्ष्य रहा। अरबी भाषा और साहित्य के विकास में सहायता दी गई। सीरिया के प्रमुख अरब विद्वान नेताओं की प्रतिष्ठा की गई। अब्दुल हमीद ने दमस्कस से मक्का होते हुए मदीना तक एक रेलगाड़ी चलाने की योजना कार्यान्वित किया। इससे मुस्लमानों और विशेषकर अरबों में इसकी इज्जत बढ़ी। इस रेलवे से सिर्फ Pan-Islam के आदर्श को ही चरितार्थ नहीं किया गया, पर अब अरब-संसार को तेज यातायात का साधन मिल गया। अरबों की एकता और जागृति और भविष्य के जनआंदोलन का प्रचार या प्रसार में भी सुभिता हुई।

अब्बुल हमीद का शासन वास्तव में दमन और जासूसी पर स्थिर था। सुल्तान के योरपीय प्रदेश अब हाथ से निकल रहे थे। १८७८ की बर्लिन की संधिक भी यही इशारा था। अतः टर्की के सुल्तान को अपने अरब-साम्राज्य पर ही दृढ़ नजर रखनीथी। पर सख्ती के बावजूद सीरिया में नवयुवकों में स्वतन्त्रता प्राप्तिकी भावना और

वेरुत्-समीति

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुर्की सुल्तान के प्रति घृणा और विरोध के भाव जाग्रत हो गये। १८७५ में बेरुत् में एक समिति की स्थापना हुई थी, जो चुपके छिप कर जनता में तुर्की सुल्तान के विरुद्ध हिंसक क्रान्ति का प्रचार कर रही थी। इस समिति के ऐसे ओजस्वी तुर्कविरोधी पर्चे यहां-वहां चिपके या डंटे में गाड़े रहते थे। इनमें सीरिया और लेब्नान् की पूर्ण स्वतन्त्रता, अरबी भाषा की सरकारी मान्यता की मांग और भाषण व छपे लेख पर प्रतिबन्ध उठाने की मांग की गई। तुर्की शासन इस गुप्त संगठन का रहस्योद्घाटन करने में असफल रहा। सीरिया के स्वतन्त्रता-आंदोलन का प्रचार इस प्रकार होता रहा। अभी आन्दोलन इतना दृढ़ और सार्वजनिक नहीं हुआ था कि उसका प्रकट् विस्फोट् हो जाय। पर राष्ट्रीय आंदोलन का रूप और ध्येय स्पष्ट सा हो गया। विदेशी जातियों को सीरिया में जनता की बेचैनी और राष्ट्रीय भावना की तेज प्रगति का आभास मिला।

इसी समय योरोपीय और अमेरिकन ईसाई मिशनों द्वारा व्यवस्थित स्कूलों और कालिजों में उन्नत विज्ञान और यन्त्रविद्या की तेज प्रगति के साथ चलने के लिए अरबी भाषा की जगह पर अंगरेजी और फ्रांसीसी भाषा पर ही ध्यान दिया जाने लगा। इससे मुस्लिम अरब शिक्षित वर्ग इन स्कूलों से अलग हो गया। इसका नतीजा यह हुआ कि अरब राष्ट्रीय जागृति और आंदोलन का नेतृत्व पश्चिमी संस्कृति के उपेक्षक मुस्लिम अरबों के हाथ में आ गया। यह अरब-राष्ट्रीयता के लिए जरूरी था। अरबों में पुनर्जागरण की भावना ऐसे ही मुस्लिम अरबों के कारण प्रज्वलित हुई जो कि अरब भाषा और परम्परा के निकट सम्पर्क में रहे और विदेशी-भाषा और संस्कृति के अराष्ट्रीयकरण प्रभाव से बचे रहे। अतः जिन विचारों का बीज ईसाईयों ने बोया था, वे बीज अब मुसलमानों में पनपने लगे।

इस जागृति का प्रतीक था अल्-कवाकेबी, जिसकी पुस्तकों में तुर्की अत्याचार के विरोध का स्पष्ट प्रचार था और जो अरबों के नेतृत्व में इस्लाम का पुनरोत्थान (Pan-Islam) का स्वप्न देखता था। अरबों में ही इस्लामी दुनियां का नेतृत्व करने की संभावना है, और इसके

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए अरबों की मुक्ति पहला कदम था।

१९०८ में टर्की हुई। अब्दुल हमीद गद्दी से उतारा गया और युवा-तुर्क दल (Young-Turk Party) की सत्ता स्थापित हुई।

१९०८ के क्रान्ति के परिणाम

इस क्रान्ति का अरबों ने पहले स्वागत किया, और उनका विश्वास था कितुर्की साम्राज्य में उनको उचित स्थान मिलेगा। पर टर्की की नयी सरकार सुदृढ़ केन्द्रीयकरण की नीति पर विश्वास करती थी। अरबों के स्वराज्य का स्वप्न मिटता नजर आया। इसलिएं अरबों में कई राजनैतिक समीतियां स्थापित हुई, जिनका ध्येय था कि तुर्की साम्राज्य में विकेन्द्रीयकरण की नीति अपनाई जाय, अरबी भाषा ही शिक्षा का और शासन का माध्यम बने, और प्रदेशीय सेना में अरबों की ही प्रधानता रहे। युवातुर्क दल की तुर्कीकरण (Pan-Turanism) और दमन की नीति से क्षुब्ध हो कुछ अरबों ने कई गुप्त समीतियों का संगठन किया जिनका ध्येय था अरबों की पूर्ण स्वाधीनता की प्राप्ति। सीरिया इस आंदोलन का प्रधान क्षेत्र था। सीरिया और ईराक में विकेन्द्रीयकरण-दल की समीति ने अरबों को बड़े पैमाने पर संगठित करने का प्रथम प्रयास किया। तुर्की साम्राज्य में योरोपीय प्रभाव की वृद्धि से भी अरब घबड़ाये हुये थे। इंगलैंड ऐडन, बहरिन् प्रभृति पर अपना विशेषाधिकार स्थापित कर चुका था। विश्वयुद्ध के बादल मंडरा रहे थे। इसलिए अरब विश्वयुद्ध से बचे रहना चाहते थे, और पूर्ण स्वतन्त्रता या कम से कम स्वशासन के अधिकार की प्राप्ति चाहते थे। इन्हीं ध्येयों के लिए कार्यक्रम निश्चित करने के लिइ पेरिस में एक अरब कांग्रेस बुलाई गई। टर्की की शासनारूढ़ पार्टी ने अपना एक प्रतिनिधि मंडल भेजा। अरबों ने पूर्ण राजनैतिक अधिकार, शासन में प्रमुख भाग, सेना में भर्ती और अरबी भाषा माध्यम बने ऐसी मांगें की। टर्की के प्रतिनिधिमंडल ने कुछ हद तक इन शर्तों को मञ्जूर किया; और अरबों की यह आंशिक विजय ही थी (१९१३)। पर वास्तव में टर्की की सरकार इस इकरार-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नामे को कार्यान्वित करना नहीं चाहती थी। अरबों को धोखा दिया गया। शर्तों की अवहेलना की जाने लगी, और अरबों का प्रिय सेनानायक अज़ीज अली को एकाएक गिरफ्तार कर लिया गया (फरवरी १६१४)। अरबों में बहुत असन्तोष फैल गया। यद्यपि अज़ीज अली को मृत्युदण्ड नहीं मिला, और अन्त में उसे छोड़ दिया गया, अरबों में टर्की के विरुद्ध घृणा की वृद्धि हुई, और पूर्णस्वतन्त्रता की लगन बढ़ी।

वास्तव में अरबों में अब काफी राष्ट्रीय चेतना फैल चुकी थी। सीरिया में अल्-मुन्तदा अल् अदबी (साहित्यक गोष्ठी), ओट्टमन विकेन्द्रीयकरण दल, अल् काहुतनिया, अल् फतात् (गुप्त समीति), सुधार समीति इत्यादि राजनैतिक संगठनों ने अरबों में स्वशासन या स्वाधीनता के लिये उत्साह और लगन का संचार किया, और टर्की के विरुद्ध, उसकी केन्द्रीयकरण नीति के विरुद्ध खुला या गुप्त विरोध का संगठन किया। अरब-संसार में विशेषकर सीरिया में टर्की के विरुद्ध वातावरण तैयार था।

इसी समय प्रथम विश्वयुद्ध शुरू हो गया और टर्की जर्मनी का पक्ष लेकर मित्र राष्ट्रों के विरुद्ध कूद पड़ा। टर्की कमज़ोर था। इंगलैंड पर्शिया की खाड़ी में अपना प्रभाव स्थापित कर चुका था। हेजाज में हूसैन टर्की के विरुद्ध अपनी स्थिति दृढ़ कर चुका था। प्रथम विश्वयुद्ध में इंगलेंड और फ्रांस ने टर्की के विरुद्ध अरबों को उभाड़ा। इंगलैंड अरबों की तुर्कविरोधी भावना से पूरा फायदा उठाना चाहता था। भारत और पर्शिया की खाड़ी में स्थापित इंगलैंड के प्रभाव की रक्षा के लिये अरब देशों को स्वतन्त्र पर इंगलैंड के मित्र बने रहना जरूरी समझा गया। पर फ्रांस भी सीरिया पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहता था। अतः एक ओर तो इंगलैंड ने मैकमोहन के द्वारा अरबों को टर्की के पंजे से मुक्ति का आश्वासन दिया, दूसरी ओर इंगलैड और फ्रांस और रूस ने टर्की के अरब साम्राज्य के बंटवारे पर समझौता कर लिया (Sykes Picot Agreement1916)। यह अत्यन्त शर्मनाक

प्रथम विश्वयुद्ध

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझौता था।

युद्ध के अन्त होने पर अरबों को बहुत हद तक निराशा ही हुई। टर्की से मुक्ति पाने पर १९१८ से ही दमस्कस में अमीर फैजल के नेतृत्व में और इंगलैंड की मदद से एक अरब सरकार की स्थापना हो गई थी। पर पारस्परिक साम्राज्यवादी स्वार्थों के लिये इंगलैंड और फ्रांस में समझौता हो गया और सीरिया फ्रांस का शासनादेश-प्रदेश बना। पर यह निर्णय सीरिया की राष्ट्रीय भावना के प्रतिकूल था। सीरिया के नागरिकों ने पूर्ण स्वतन्त्रता की मांग की और फ्रांस का शासन इन्हें बराबर ही अप्रिय रहा। पश्चिम के महान् राष्ट्रों के प्रति अरबों में अब नयी विरोधी भावना या घृणा का उदय हुआ। १९२० में सीरिया में भी ईराक़, फिलस्तीन की तरह विद्रोह हुआ। पर सीरिया में यह विद्रोह असफल रहा, और पूरे सीरिया पर फ्रांस का सैनिक अधिकार स्थापित हो गया और फैजल को देश से भगा दिया गया। वर्साई की सन्धि के अनुसार सीरिया तीन भागों में विभाजित किया गया था। यह सीरिया की राष्ट्रीय और भौगौलिक एकता की अवहेलना थी। इंगलैंड ने सीरिया को स्वतन्त्रता का वचन दिया था पर फिलस्तीन और मोसुल की लालच में वह सीरिया पर फ्रांस का अधिकार मान चुका था। यह प्रत्यक्ष धोखा था। अरब इंगलैंड के विरुद्ध हो गये। अरबों का असन्तोष हद से अधिक बढ़ गया विशेषकर जब इंगलैंड ईराक को राजनैतिक स्वतन्त्रता दे चुका था, सीरिया में फ्रांसीसी शासन का कुछ फायदा नजर नहीं आ रहा था। अरबों और फ्रांस में मनमुटाव बढ़ता ही गया। फ्रांस उत्तर-अफ्रिका तटस्थित अरब देशों पर स्वेच्छाचारी शासन स्थापित किये हुए था। इसलिये सीरिया के अरब फ्रांस की शासन-परम्परा से घबड़ाये रहते थे। फ्रांस भी अरब राष्ट्रीय आंदोलन को अपने साम्राज्य का कंटक ही समझता था। फ्रांस को सीरिया और लेब्नान शासनादेश के रूप में मिले थे। सीरिया और लेब्नान एक भौगोलिक क्षेत्र है पर फ्रांस इन्हें अलग रखना चाहता था, पर सीरिया अरब राष्ट्रीय

फ्रांस का शासनादेश

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आंदोलन का केन्द्र था, इसलिये सीरिया के विरुद्ध लेब्नान का विस्तार और विकास की नींति फ्रांस ने अपनाया। इसके बाद सीरिया को कई भागों में बांट दिया गया। आशय यह था कि राष्ट्रीय भावना के प्रतिकूल क्षेत्रीय प्रेम व भक्ति की वृद्धि हो, और साम्राज्यवादी फ्रांस इस प्रकार अपनी शक्ति स्थिर रख सके। अरबों के प्रति शक और दमन की नींति अख्तियार की गई। छापाखाना पर प्रतिबंध लगे। अरबों के आर्थिक हितों के विरुद्ध लेब्नान के ईसाईयों के हितों के प्रति पक्षपात किया गया। अरबी भाषा की जगह पर फ्रांसीसी भाषा में शिक्षा को प्रोत्साहन दिया गया। अरबों के साहित्य, भाषा और संस्कृति पर खतरा आ गया। फ्रांसीसी अफसर भी अत्यन्त क्रूर और पक्षपात की नीति वरत रहे थे। उनका आचरण विरोध की भावना को प्रोत्साहित करता था। इसका फल यह हुआ कि फ्रांस के शासनकाल में यातायात की आधुनिक सुविधाएं और आर्थिक और औद्योगिक विकास का उचित मूल्यांकण नहीं हुआ, और फ्रांसीसी शासन काल की कूटनीति और राष्ट्रीय-विरोधी नीति पर ही ध्यान दिया गया।

सैनिक शासन (Martial law and Military Dictatorship) के बावजूद छिट-पुट विद्रोह होते रहे जिन्हें दबाने में शासन ने हद से अधिक कठोरता दिखाई। पर १६२६ में फ्रांस ने लेब्नान के गणतन्त्र की घोषणा की और आंग्ल ईराक सन्धि के आदर्श पर फ्रांसीसी-सीरिया सन्धि की जायगी ऐसी घोषणा की गई। राष्ट्रीय आंदोलन को आंशिक विजय मिली। १६२६ में सीरिया को गणतन्त्र (Republic) घोषित किया गया, १६३२ में नया संविधान लागू हुआ जिसके अनुसार एक शक्तिहीन राष्ट्रपति और कमजोर अप्रतिनिधि लोकसभा का चुनाव हुआ। सीरिया के नेताओं ने इस सुधार का विरोध किया। उन्हें तो यह कहा गया था कि ईराक की तरह की व्यवस्था यहां लागू होगी। अतः राष्ट्रीय आंदोलन का रूख उग्र होता गया। फ्रांस की सरकार ने अब कड़ा रुख लिया। १६३६ में राष्ट्रीय नेताओं की गिरफ्तारी हुई। उनके अखबारों

राष्ट्रीय आंदोलन

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के आफिसों पर धावा किया गया। पुलिस का अत्याचार बढ़ गया। इसके विरुद्ध सीरिया में अभूतपूर्व शान्तिमय राष्ट्रीय आन्दोलन शुरू हो गया। दूकानों की हड़ताल रही। शासन से पूर्ण असहयोग रखा गया।

फ्रांस को झुकना पड़ा और अन्त में सेप्टेम्बर १६३६ में फ्रांस-सीरिया की नयी सन्धि हुई जिसके अनुसार तीन वर्ष के अन्दर 'आदेश' का अन्त हो जायगा, सीरिया राष्ट्रसंघ का सदस्य बनाया जायगा और सीरिया और लेब्नान में फ्रांसीसी फौज को निश्चित अवधि तक और निश्चित शर्तों पर टिके रहने का अधिकार रहेगा। फ्रांस और सीरिया में सहयोग और मैत्री के युग के आरम्भ की आशा हुई। पर यह दुराशा में परिणत हो गई। टर्की सीरिया में फ्रांस का शासनादेश का अन्त नहीं चाहता था क्योंकि सीरिया के एक भाग में (अलेक्जेन्ड्रीया) तुर्कों का बहुमत था, जो अरब-सीरिया के प्रजातन्त्र में अपनी स्थिति सुरक्षित नहीं समझते थे। फ्रांस टर्की का विरोध नहीं चाहता था क्योंकि भूमध्यसागर में इटैली के बढ़ते प्रभाव के जवाब में टर्की का सहयोग का वह प्रार्थी था और १६३८ की सन्धि के अनुसार टर्की इस प्रदेश में तुर्की सेना भेज कर अमनचैन कायम करने में फ्रांस की मदद कर सकता था। सीरिया की राष्ट्रीय सरकार को यह अत्यन्त ही नापसन्द था। राष्ट्रसंघ की चुनाव कमीशन ने फ्रांस की की गैर-तुर्की विरोधी नीति के कारण निष्पन्न चुनाव करने का प्रयास छोड़ दिया। टर्की की सेना इस प्रदेश में घुस आई, और चुनाव-रजिस्टर में ६३ प्रतिशत वोटर तुर्क ही थे। इसमें काफी बेइमानी और जबरदस्ती की गई थी। १६३६ की सन्धि के अनुसार फ्रांस ने टर्की को यह प्रदेश अपने राज्य में मिला लेने की अनुमति दे दी।

१९३६ की संन्धि

अभाग्यवश सीरिया की अनुभवहीन राष्ट्रीय सरकार के कार्यों से और फ्रांस के प्रोत्साहन से गैरमुस्लिम अल्पजातियां विरोध प्रदर्शन करने लगीं। फ्रांस ने इसका फायदा उठाया। फ्रांस की लोकसभा में १९३६ की सन्धि के विरोधियों का प्रभाव बढ़ रहा था और १६३६ की फरवरी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संधि का अन्त

में फ्रांसीसी सरकार ने इस सन्धि को लोकसभा में मनवाने से इन्कार किया, और १६३६ की जुलाई में सीरिया का विधान स्थगित कर दिया गया, और फ्रेंच शासन सीरिया पर पुनः स्थापित हो गया। शासनादेश जारी रहा।

द्वितीय विश्वयुद्ध

अतः अरब-संसार इंगलैंड और फ्रांस से फिलस्तीन और सीरिया की स्वतन्त्रता न देने के कारण अत्यन्त रंज था। जब युद्ध शुरू हो गया तब नाजी जर्मनी और फासिस्ट इटैली अरबों को मित्रराष्ट्रों के विरुद्ध भड़काते रहे। अरब फासिस्ट शासन और आंग्ल-फ्रांसीसी साम्राज्यवाद में फर्क नहीं समझते थे। १६४० में फ्रांस की हार से सीरिया के राष्ट्रीय आन्दोलन को बल मिला। जब जर्मनी के पिट्ठू फ्रांस के वीची शासन के विरुद्ध स्वतन्त्र फ्रांसीसी दल ने सीरिया और लेब्नान् को वीची शासन के प्रभाव से निकालना चाहा तब स्वतन्त्र फ्रांस का सेनाध्यक्ष कार्टू (Cartoux) ने सीरिया और लेब्नान् की पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा की, पर यह घोषणा मौखिक ही रही क्योंकि कोई वैधानिक सुविधाएँ नहीं दी गई, और स्वतन्त्र-फ्रांस दल भी सीरिया की स्वतन्त्रता नहीं चाहता था। सीरिया और लेब्नान् की सरकार के लिए यह असह्य था। १६४३ के चुनाव से यह स्पष्ट हो गया। स्वतन्त्र-फ्रांस की सरकार ने विधान को फिर स्थगित कर दिया। फ्रांस और सीरिया के अरबों में खाई बढ़ती जाती थी। युद्ध जारी था और इंगलैंड भारत की सुरक्षा के लिए मध्यपूर्व के महत्व को ध्यान में रखते हुये अरबों को दुश्मन नहीं बनाना चाहता था, और फ्रांस और सीरिया में समझौता कराना चाहता था। पर फ्रांस सीरिया और लेब्नान में अपनी सेना रखने के अधिकार पर दृढ़ था। फ्रांस की सरकार इंगलैंड पर शक करती थी कि इंगलैंड सीरिया में फ्रांस के विरुद्ध राष्ट्रीय आंदोलन को बढ़ावा दे रहा था। संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् में सीरिया और लेब्नान सरकार ने यह मांग की कि विदेशी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फौज इन देशों से वापस बुला ली जायँ (फरवरी १९४६) । अन्त में अमेरिका के हस्तक्षेप से १९४६ के अन्त तक विदेशी फौज इन देशों से हटा ली गई । राजनैतिक स्वतन्त्रता मिल गई । पर आर्थिक और औद्योगिक विकास के लिए सीरिया अभी भी इंगलैण्ड, फ्रांस और अमेरिका पर निर्भर करता है । शासन पर इंगलैंड का प्रभाव बढ़ गया है ।

(iv) ईराक

पश्चिमी राष्ट्रों की दिलचस्पी

ईराक (मेसोपोटामिया) प्राचीन सुमेरिअन और असीरियन सभ्यता का विश्वविख्यात केन्द्र था । मुस्लिम युग में भी अब्बासी खिलाफत के युग में ईराक सभ्यता और राजनीति के ऊँचे शिखर पर था । दशमी सदी के मध्याह्न में अब्बासी खिलाफत के पतन के साथ-२ ईराक के बुरे दिन आये । तुर्कों का साम्राज्य का एक अंग ईराक़ भी था । पर अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध से ओट्टमनों की शक्ति का ह्रास स्पष्ट हो गया, और सीरिया, ईराक और अरेबिया में वस्तुतः स्वतन्त्र अमीर या पाशाओं की शक्ति स्थापित हुई । सुलेमान पाशा ने बगदाद, बसरा और मौसूल को एक सूत्र में बांधा और ओट्टमन सुल्तान के प्रति मौखिक स्वामिभक्ति का इज़हार किया (१८०२) । कुछ समय पूर्व से ही ईराक़ और ईरान की ओर पश्चिमी व्यापारी राष्ट्रों की नज़र गई थी, और पुर्तगाल ने इस दिशा में पहला कदम उठाया था । केप के रास्ते का व्यवहार होने के बाद भी मध्यपूर्व का व्यापारिक महत्व एकदम खत्म नहीं हुआ था । डच, फ्रांसीसी और बृटिश व्यापारी कम्पनियां पूर्व और सुदूरपूर्व से व्यापार करने के लिए संगठित की गई । पुर्तगीजों का प्रभाव खत्म पर था और अंगरेजों का सितारा चमका । इरान के शाह ने इन्हें अपना विशिष्ठ प्रतिनिधि चुना । बृटिश कम्पनी के कारखाने और व्यापार के डिपो बहरिन और बसरा में खुल गये, और बगदाद से नावों के द्वारा व्यापार करने की छुट मिल गई । डचों की शक्ति का ह्रास होने के बाद फ्रांस ने इस दिशा में दिलचस्पी दिखाई और फ्रांस की फैक्टरियां खुलीं । तुर्की के सुलतान ने फ्रांस

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को अपनी ईसाई प्रजा का अभिभावक माना। फ्रांस का व्यापार और राजनैतिक प्रभाव अठारहवीं सदी में खूब बढ़ा। पर फ्रांस का व्यापार और भारतीय कम्पनी (East India Company) का प्रबन्ध अच्छा नहीं था, और घर से भी पर्याप्त मदद नहीं मिलती थी, इसलिए पर्शिया की खाड़ी की तिजारत का अत्याधिक भाग अंगरेजों के ही हाथ में रहा। बगदाद के पाशा को दक्षिण ईराक के विद्रोह को दबाने में नावों से मदद कर बृटिश कम्पनी ने लाभदायक दोस्ती स्थापित कर लिया, और इसका प्रभाव भी बढ़ रहा था। १७६८ में बगदाद और ओमान के शासकों के बीच मध्यस्थता करने का सौभाग्य बृटिश रेजिडेन्ट को मिला। फ्रांसीसी राजदूतों (Consuls) को गिरफ्तार किया गया। शायद यह बृटिश कम्पनी का ईशारा था। यद्यपि इन्हें फिर छोड़ दिया गया तब भी इनका दावा कि बृटिश कम्पनी के पहले इनका स्थान रहे, रद्द कर दिया गया। १८०२ में बगदाद में बृटिश रेजिडेन्ट कौन्सल बनाया गया, और बृटेन का ईराक में प्रभाव बढ़ने लगा। फ्रांस और इसके बाद रूस की प्रतिद्वन्द्विता के भय के कारण बृटेन ने पर्शिया की खाड़ी निकटस्थ शेखों पर अपना प्रभाव और भी अधिक दृढ़ किया, और बृटिश रेजिडेन्ट वस्तुतः इस प्रदेश का स्वामि बन बैठा। इंगलैंड को यह भय हो गया कि ईराक की राजधानी बगदाद में रूस का प्रभाव न स्थिर हो जाय। इसी समय टर्की पर जर्मनी का प्रभाव बढ़ रहा था, और बर्लिन-बगदाद की रेलवे की योजना बन रही थी। इंगलैंड ने पहले तो मध्यपूर्व में रूस के विरुद्ध जर्मनी का प्रवेश का स्वागत किया। पर फिर जर्मन के साम्राज्यवाद से डर गया। अन्त में रूस और इंगलैण्ड की सन्धि हुई। जर्मन साम्राज्यवाद के विरुद्ध इंगलैंड ने कठोर नीति बरतने का निश्चय किया। मध्यपूर्व में जर्मनी का बढ़ता प्रभाव इंगलैंड के भारतीय साम्राज्य के हितों के प्रतिकूल था। भारतीय शासन बसरा को अधिकार में कर लेने के पक्ष में था।

अतः योरोपीय साम्राज्यवाद ईराक में अपनी-२ गोटी बैठा रहे थे।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर योरप के सम्पर्क में आने के बाद ईराक में भी अन्य अरब देशों की तरह उदार विचारों का प्रवेश हुआ। बगदाद में स्कूलें और छापाखाने खुले। शासन शिक्षितों के अधिकार में था। नहरेंइत यादि बनाई गईं। देश की आर्थिक उन्नति हुई। रशीदपाशा और मीधत पाशा ने कई सार्वजनिक संस्थाएँ खोलीं—स्कूल, चिकित्सालय, नगरपालिका, अनाथालय। अखबार निकलने लगा, और सरकार में भ्रष्टाचार रोकने की कोशिश की गई। मिधत पाशा की देशभक्ति और जनकल्याण की भावना प्रशंसनीय है। भांप से चलनेवाले जहाज, डाक, तार का आरम्भ हुआ। देश प्रगति के पथ पर था यद्यपि उसे आधुनिक और सुव्यवस्थित नहीं कहा जा सकता था। सीरिया से राष्ट्रीयता की भावना की ज्योति ईराक भी पहुँच चुकी थी। बगदाद में एक राष्ट्रीय समीति का संगठन हुआ था जिसका लक्ष्य था तुर्कों को भगाकर स्वतन्त्र शासन की स्थापना करना। अरेबिया के राष्ट्रीय नेता इब्न सऊद से सहयोग और सहायता की अपेक्षा की गई। ईराक में इस समय करीब ७० अखबार चल रहे थे। यह जनजागृति का प्रतीक था। यातायात की असुविधा के कारण अरब आंदोलन पूर्ण एकता और संगठन नहीं प्राप्त कर सका।

ईराक मे जागृति

जब प्रथम विश्वयुद्ध शुरू हुआ तब ईराक टर्की के साम्राज्य का अंग था। बृटेन ने अरबों का सहयोग प्राप्त करने के लिए अरबों की स्वतन्त्रता की मांग को मान लिया था। अरबों के राष्ट्रीय जनमत व नेता मित्र-राष्ट्रों के पक्ष में थे, और टर्की की खिलाफत के विरुद्ध बगावत कर दिया। बृटिश-भारत की सरकार इसे नापसन्द करती थी, क्योंकि उसका लक्ष्य था दक्षिण ईराक को हड़प लेना और टर्की के विरुद्ध अरब विद्रोह के समर्थन से भारतीय मुसलमानों का खिलाफत के प्रति धार्मिक भक्ति की की भावना पर भी आघात होने का डर था। पर सैनिक आवश्यकताओं के कारण मित्रराष्ट्रों ने अरब विद्रोह का समर्थन किया। पर जब टर्की की हार हुई, और टर्की के एशियास्थित साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया तब मित्र-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रों ने अपना वादा भूल कर अपने साम्राज्यवादी हितों की रक्षा और वृद्धि में लग गये। कर्नल विल्सन का यह विचार था कि ईराक को अरेबिया से एकदम अलग रखा जाय, और इसका आर्थिक विकास बृटिश संरक्षण में रहे, और देश में बृटिश सत्ता स्थापित हो। चुनाव में बृटिश समर्थकों का बहुमत रहे उसने ऐसा प्रयास किया। पर ईराक में राष्ट्रीय आंदोलन होते रहे (१६१६)। १६२० में सेव्रे की सन्धि के अनुसार ईराक इंगलैंड का शासनदेश-क्षेत्र माना गया। पर ईराक में राष्ट्रीयता की भावना उग्रतर हो रही थी। कुछ महीने बाद खुला विद्रोह शुरू हो गया (जून १६२०)। बृटिश सरकार ने कुछ वैधानिक रियायतें देना मञ्जूर किया, और कुछ ईराकी ऊँचे पदों पर बहाल हुये। पर उग्र राष्ट्रवादियों ने आंदोलन जारी रक्खा। १६२१ मार्च में कैरो कान्फ्रेन्स में उपनिवेश-मन्त्री चर्चिल ने फैजल को ईराक का राजा बनाना निश्चय किया, और फैजल ईराक़ का शाह बना।

राष्ट्रवादियों ने यह आशा की थी कि राजतन्त्र की स्थापना का परिणाम होगा शासनादेश का अन्त और ईराक की पूर्ण स्वतन्त्रता की स्थापना। पर बृटेन ईराक पर अपना अधिकार रखना चाहता था। अतः १६२४ में एक सन्धि का मसविदा पेश किया गया, जिसके अनुसार ईराक की स्वतन्त्रता मानी गई पर ईराक की वैदेशिक नीति और अर्थनीति पर बृटेन का अधिकार रहा और शासन के क्षेत्र में राजा को बृटेन के हाई कमीश्नर की सलाह लेना पड़ेगा। राजा भी इस सन्धि के पक्ष में नहीं था, और राष्ट्रवादियों का विरोध गम्भीर था। अन्त में धूर्तता और कौशल से राष्ट्रीय लोक सभा में इस सन्धि को चन्द वोटों के बहुमत से पास कर लिया गया (१६२४ मार्च)।

१९२४ की संधि

ईराक न वास्तव में स्वतन्त्र हुआ और न यहाँ प्रजातन्त्र स्थापित हुआ। राज शासन और लोकसभा में अमीर-उमरावों का ही बाहुल्य रहा, और सामन्ती व्यवस्था और विशेषाधिकार वास्तव में कायम रहे।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की मांग होती रही और अन्त में जून १९३० की सन्धि हुई जो कि ईराक़ को एक स्वतन्त्र राज्य रूप में राष्ट्र-संघ में प्रवेश पाने पर लागू होती। इस सन्धि के अनुसार बृटेन को हवाई अड्डे का और सेना को इधर से उधर ले जाने का अधिकार मिला, युद्ध के समय ईराक़ बृटेन को हर प्रकार की सहायता देगा, और बृटेन ईराक को सैनिक सहायता देते रहेगा। कुछ समय बाद ईराक राष्ट्रसंघ का सदस्य बन गया। ईराक की राजनैतिक स्वतन्त्रता कायम हो गई, यद्यपि बृटेन का प्रभाव यहाँ दृढ़ रहा। ईराक का शासन वस्तुतः सामन्ती ही रहा, और चन्द कुलीन परिवार चालाकी से अपना प्रभुत्व स्थापित रक्खे रहे। प्रजातन्त्र का वास्तव में अभाव ही था। ईराक़ गुटबन्दी का शिकार बना रहा। और बृटिश सरकार ने फैज़ल और उसके गुट के द्वारा शासन और अर्थव्यवस्था पर अपना अधिकार जमाये रक्खा। १९३२ में मैन्डेन्ट के अन्त होने के बाद ईराकी जनता ने सरकार के प्रोत्साहन से ही असीरियन अल्पसंख्यक-जाति पर आक्रमण कर सैकड़ों (८००) को मौत के घाट उतार दिया। ईराकी सरकार की नीति से जनता में असन्तोष था, और इसका फायदा उठाकर १९३६ में बकीर सिद्की ने सेना की सहायता से शासन-यन्त्र अपने अधिकार में कर लिया। बकीर सिद्की ने वास्तव में सैनिक अधिनायकत्व स्थापित कर लिया था।

१९३० की संधि

सैनिक अधिनायकत्व १९३६

जब विश्वयुद्ध शुरू हुआ (१९३९), जर्मनी ईराक पर आंख गड़ाये हुआ था। अरबों की बृटिश-विरोधी भावना का फायदा धुरी-राष्ट्र लेना चाहते थे। १९४० में मित्र-राष्ट्रों की हार से मध्यपूर्व की सरकारों को बृटिश-शक्ति में विश्वास उठ सा गया। अरबों का नेता मुफ्ती स्पष्टतया जर्मनी के पक्ष में था। अतः १९४१ में ईराक में विद्रोह हो गया और बृटिश पक्षपाती सरकार की जगह पर रशीद अली फिर प्रधान मंत्री बना। बृटेन ने स्थिति की गम्भीरता देख कर १९३० की सन्धि के आधार

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर ईराक में नयी फौज उतारी, और हवाई अड्डा हब्बनिया पर अपना कब्जा रक्खा। ईराकी सेना हार गई, हिट्लर से मदद मिलने की भी आशा नहीं थी क्योंकि हिट्लर रूस से जूझने का निर्णय कर चुका था। ६ मई १९४१ में रशीद और उसके साथियों को ईराक से भागना पड़ा, और युद्ध-विश्राम सन्धि हुई।

रशीद अली

युद्ध के खत्म होने के बाद ईराक में पूर्ण स्वतन्त्रता की मांग करनेवाला दल मजबूत हो गया, और १९३० की सन्धि में तरमीम जरूरी हो गयी। प्रधान मंत्री सालिहजब्र ने १९४८ में लन्दन आकर एक नयी सन्धि का मसविदा पर विचार करना शुरू किया। इंगलैंड हवाई अड्डों पर अपना विशेषाधिकार चाहता था। इसके विरुद्ध बगदाद में क्रान्ति हुई (जनवरी १९४९)। प्रधानमन्त्री ने इस्तिफा दिया, और सन्धि को लोकसभा की स्वीकृति नहीं दी जायगी ऐसा आश्वासन दिया गया।

बृटेन को ईराक़ में गहरी दिलचस्पी है। एक तो ईराक़ की भौगोलिक स्थिति का इंगलैंड के पूर्वीय व्यापार और राजनैतिक प्रभाव के लिये बड़ा महत्व है। दूसरी बात यह है कि यहां तेल (oil) के कूप पाये जाते हैं। आजकल पिट्रोल या तेल का बहुत गम्भीर महत्व है। इंगलैंड के व्यापारी या सामरिक जहाजों के लिये यह जरूरी है। इंगलैंड ने ईराक में तेल निकालने और साफ करने के लिये एक कम्पनी खोली। ईराक की सरकार को सालाना सलामी मिलती है, पर इस तेल की तिजारत से बृटिश कम्पनी को बहुत ही अधिक आर्थिक लाभ है। अमेरिका भी अब इस व्यापार में भाग ले रहा है। उसे बृटिश ईराकी कम्पनी में एक चौथाई हिस्सा मिला है। फ्रांस भी इस में हाथ बटा रहा है। अतः 'तेल' की राजनीति का प्रभाव ईराक की और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर पड़ रहा है। पर इतना मूल्यवान् पदार्थ का स्वामि होते हुए भी ईराकी जनता दरिद्र है, पिछड़ी हुई है। असल समस्या है इनकी आर्थिक उन्नति, और यह साम्राज्यवादी नीति के पंजे से निकलने पर ही सम्भव हो सकेगी।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभी भी इंगलैंड अप्रत्यक्ष रूप से ही सही ईराक की अर्थव्यवस्था और सेना पर अपना प्रभाव रखे हुए हैं।

V ईरान

ईरान तुर्की- साम्राज्य का अंग था। पर वास्तव में अठारहवीं सदी में स्थानीय पाशा ही इस देश के मालिक बन बैठे थे। सोलहवीं सदी में पुर्तगीजों ने पर्शिया और पर्शिया की खाड़ी में तिजारती अड्डे स्थापित किया था। इंगलैंड, डच, और फ्रांस ने भी व्यापार के लिये इस प्रदेश में दिलचस्पी लेना शुरू किया। पर्शिया का शाह अब्बास (१५८७-१६२९) ने बृटिश व्यापारियों का बहुत आदर किया, और पर्शिया के रेशम के व्यापार के लिये इन्हें विशेषाधिकार दिया। पुर्तगीजों को बहरिन और हामुर्ज से मार भगाया गया। फ्रांस ने भी पर्शिया में व्यापार के अड्डे खोले। नेपोलियन इंगलैंड का महान् शत्रु था, और वह स्थल मार्ग से भारत पर आक्रमण करने को सोच रहा था इसलिये पर्शिया के शासक फतह अली शाह से गुप्त बातचीत हो रही थी। पर नेपोलियन ने रूस से १८०७ में टिल्जीट की सन्धि की। रूस उस समय पर्शिया की ओर प्रसार करने की नीति अपना रहा था। इसलिये पर्शिया और नेपोलियन की मैत्री खटाई में पड़ गई, और रूस की मदद से स्थल मार्ग होकर भारत पहुँचने का नेपोलियन की आशा भी कभी पूरी नहीं हुई। नेपोलियन के पतन के बाद इंगलैंड मध्यपूर्व में, ईरान में, पूर्ण शक्तिशाली बच गया था। उन्नीसवीं सदी के मध्याह्न से इस क्षेत्र में रूस बृटेन का घोर प्रतिद्वन्द्वी बन गया। भारत पर अधिकार की स्थापना से इंगलैंड भारतीय साम्राज्य के हितों के लिये पूरा चौकन्ना रहता था। इसलिये रूस का पर्शिया और अफगानिस्तान पर बढ़ते प्रभाव से इंगलैंड घबड़ा गया। बीसवीं सदी के आरम्भ में जर्मनी मध्यपूर्व राजनीति में कूद पड़ा। अन्त में १९०७ में रूस और इंगलैंड में सन्धि हुई जिसके अनुसार रूस ने पर्शिया में बृटेन की विशेष स्थिति मान ली, दक्षिण पर्शिया इंगलैण्ड के और उत्तर पर्शिया रूस के प्रभावक्षेत्र में माना गया। पर्शिया का जनमत का बिना ख्याल किये हुए यह सन्धि

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की गई थी, और साम्राज्यवादी राष्ट्रों की स्वार्थी नीति का एक उदाहरण थी। इंगलैंड की आंख पर्शिया के 'तेल' पर ठिकी थी और १६०८ में पशया के शाह को बृटिश कम्पनी को तेल निकालने का अधिकार और सुविधा देने को बाध्य किया गया। १६०६ में आंग्ल-ईरानिअन तेल कम्पनी गठित हुई। तभी से पर्शिया की राजनीति पर 'तेल' का महत्वपूर्ण प्रभाव रहा है।

आंग्ल-इरानिअन तेल कंपनी

इस ओर जब साम्राज्यवादी राष्ट्र पर्शिया के कमजोर शासन और आर्थिक पिछड़ापन से फायदा उठा कर शोषण की नीति को दृढ़ कर रहे थे, आधुनिक विज्ञान और विचार से सम्पर्क में आने के कारण नवशिक्षित पश्चिमी-शिक्षापद्धति से भिज्ञ नवयुवक अपने देश की गरीबी और असहायपन का उत्तरदायी विदेशी शोषण को ही समझने लगे, और राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित होने लगे। योरपीय व्यापारी, विशेषज्ञ, पुरातत्ववेत्ता और यात्रियों के सम्पर्क में आने का परिणाम था पर्शिया में आधुनिकता का प्रसार। छापाखाना खुलें, अखबारें निकलीं, और पर्शिया के नवयुवक उच्च शिक्षा प्राप्त करने इंगलैण्ड जाने लगे। पर्शिया में दारुल्फुनुन (House of Sciences) खुला जिसमें ईरानी और योरपीय शिक्षक विज्ञान और योरपीय भाषा (रूसी, जर्मन अंगरेजी और फ्रेंच) की शिक्षा देने लगे। तार, स्कूल बैंक इत्यादि आधुनिक सुविधाओं से भी आधुनिकता का प्रसार बढ़ा। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की भावना जागृत हुई।

जागृति

प्रथम विश्वयुद्ध में टर्की की हार के फलस्वरूप ईरान की स्वतन्त्रता कायम हुई। साम्यवादी क्रान्ति के बाद रूस ने उत्तर पर्शिया पर अपना विशेषाधिकार छोड़ दिया। साम्यवादी प्रचार बढ़ गया। १२६१ में रजा खां ने बृटिश समर्पित सरकार को उलट कर अपनी सरकार बनाई। बृटेन से सन्धि का मसविदा नामञ्जूर किया गया, और रूस से सन्धि हुई,

रजाशाह का शासन

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसके अनुसार रूस ने जारकालीन रूस को प्राप्त सभी रियायतें छोड़ दीं, पर शर्त यह थी कि किसी अन्य राष्ट्र को ये सुविधायें न दी जायं। यदि तृतीय शक्ति के द्वारा पर्शिया पर आक्रमण करने की योजना कार्यान्वित होने पर हो तब रूसी सेना पर्शिया में प्रवेश कर सकती थीं। इसमें सन्देह नहीं कि रूस पर्शिया के 'तेल' पर किसी विदेशी राष्ट्र का एकाधिपत्य नहीं चाहता था। रजा शाह पक्का देशभक्त था इसलिये उसे बृटिश तेल कम्पनी से झगड़ा हुआ क्योंकि इस कम्पनी के द्वारा बृटेन ईरान पर आर्थिक और राजनैतिक दबाव डालता था, और शोषण करता था। १६३२, १६३६ के झगड़ों में रूस ने पर्शिया की मदद की थी, और रूस से व्यापार बढ़ रहा था। रूस के इन्जिनिअरों की मदद से सड़कों का निर्माण हो रहा था। कारखाने खुले, आंटा की मिले खुलीं, रोटी बनाने की दूकानें खुलीं। देश प्रगति के पथ पर था। कमाल अतातुर्क रजाशाह का आदर्श था। पर जर्मन प्रचार भी पर्शिया में बढ़ रहा था। इंगलैण्ड की साम्राज्यवादी शोषक नीति से इरानियनों में असन्तोष था। जर्मनी १६३५ से मध्यपूर्व में बृटेन और रूस के प्रति प्रचार करने लगा। पर्शिया में प्रदर्शित फ़िल्मों में ४० प्रतिशत जर्मन चलचित्र थे। जर्मन विश्व-विद्यालय में पर्शिया के विद्यार्थियों की संख्या बढ़ गई। जर्मन प्रोफेसर और यन्त्रकलाविद् विशेषज्ञों ने ईरान में आना शुरू कर दिया। जर्मन जासूसों की भी संख्या बढ़ गई थी। जब द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू हुआ और कुछ समय बाद जर्मनी रूस पर चढ़ बैठा तब इंगलैण्ड और रूस मित्र बन गये। पर्शिया से ही इंगलैण्ड और रूस का प्रत्यक्ष सम्पर्क हो सकता था। पर जब पर्शिया की सरकार ने जर्मनों को अपने देश से निकालने का आंग्ल-रूसी सलाह नामञ्जूर किया, तब आंग्ल-रूसी सेना पर्शिया में घुस आई। रजाशाह को गद्दी छोड़नी पड़ी। रूस ने उत्तर पर्शिया और इंगलैण्ड ने दक्षिण पर्शिया पर अपना प्रभाव रक्खा, १६४२ की सन्धि के अनुसार इंगलैण्ड और रूस युद्ध खत्म होने के ६ महीने बाद अपनी २ फौज वापस बुला लेने की प्रतिज्ञा की। पर मित्रराष्ट्रों में सच्ची मैत्री

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं थी। उत्तर पर्शिया वस्तुतः सोवियत सैनिक शासन में था। अमेरिकन और बृटिश कम्पनियां दक्षिण पूर्व पर्शिया में और रूस खोरासान में रियायतें की मांग करने लगा। पर्शिया की मजलिश ने इसे नामञ्जूर किया, और यह फैसला किया कि जब तक विदेशी फौज देश से वापस नहीं बुलायी जायगी, तब तक ऐसे प्रस्तावों पर विचार नहीं होगा। पर्शिया में एक मजदूर दल-तूदे (Todeh) दल-स्थापित हो चुका था। इसका लक्ष्य था देश को समाजवाद के पथ पर ले जाना, और बृटिश और अमेरिकन आर्थिक-साम्राज्यवाद का विरोध करना। यह पार्टी अब रूस का पक्ष लेने लगी। १९४१ से उत्तर पर्शिया पर रूस का अधिकार था। युद्ध खत्म हो गया था, और विदेशी फौज का हटने का समय निकट आ रहा था। अजरबाइजान सोवियत संघ की सीमा पर उत्तर पर्शिया का एक प्रदेश था। यहां ही पर्शिया का अधिकांश अन्न उपजता था। अजरबाइजान में एक 'प्रजातन्त्रपार्टी' (Democratic Party) का संगठन हुआ। इस पार्टी का लक्ष्य था अजरबाइजान में स्वतन्त्र राज्य या बिल्कुल स्वशासन की स्थापना। पर्शिया की सरकार को यह विश्वास था कि इस पार्टी के पीछे सोवियत रूस है। पर्शिया की सरकार इस विद्रोह को दबाने में अशक्य थी। अतः १९४६ में यह मसला सुरक्षा परिषद् (Security Council) में पेश किया गया, और यह तय हुआ कि सोवियत और पर्शिया समझौता के लिये प्रयास करें। अमेरिका भी अब ईरान में बड़ी दिल-चस्पी लेने लगा। ईरान के तेल के अलावे सोवियत के विरुद्ध पर्शिया का भौगोलिक और सामरिक महत्व भी था। सोवियत रूस भी पर्शिया की सरकार से उत्तर पर्शिया की तेल की खानों के विकास के लिये रियायतें की आशा करता था। ईरान में बृटिश पूंजीवाद के विरुद्ध घोर प्रचार हो रहा था। तूदे पार्टी इसमें बड़ा भाग ले रही थी। पर्शिया वास्तव में एक ओर रूस और दूसरी ओर इंगलैण्ड की स्वार्थी नीति से पिसा जा रहा था। रूस ने अजरबाइजान के विद्रोहियों को त्याग दिया, क्योंकि स्थिति गम्भीर थी—अमेरिका प्रत्यक्ष हस्तक्षेप करने का संकेत दे का था।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्शिया के साधारण निर्वाचन में रूस अपने समर्थकों की विजय देखना चाहता था, और तेल निकालने की सुविधा की आशा रखता था। अतः अजरबाइजान का विद्रोह दबा दिया गया। पर निर्वाचन का फल रूस के पक्ष में नहीं था, और रूस को तेल निकालने की अनुमति देने का प्रस्ताव अत्याधिक बहुमत से गिर गया।

पर इंगलैंड के विरुद्ध भावना उग्रतर होती गई। आंग्ल-ईरानियन-तेल कम्पनी के विरुद्ध कई हड़तालें हुई। इस कम्पनी के विशेषाधिकार राष्ट्रीयता के लिए अपमान माने गये। अन्त में मुसद्दिक के मन्त्रीत्व में तेल-व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण किया गया। इसका अर्थ था आंग्ल-ईरानियन कम्पनी से झगड़ा, क्योंकि अब इस कम्पनी का व्यवसाय खत्म हो गया। इस कम्पनी में बृटिश सरकार का भी काफी शेयर है। इसलिए राष्ट्रीयकरण के इस कानून की वैधता के विरुद्ध मुकदमा शुरू हुआ। राष्ट्रीयकरण के कारण इस कम्पनी से मुआविजा के प्रश्न पर भी झगड़ा हो रहा है। ईरान और बृटेन का झगड़ा चल रहा है। अमेरिका मध्यस्थ बनकर समझौता का प्रयास कर रहा है। पर मुसद्दिक अपनी जिद पर डटे हैं; और बृटिश पूंजीवाद के सामने राष्ट्र का सर झुकाना उन्हें नापसन्द है। अमेरिका को यह डर है कि पर्शिया कहीं रूस का पल्ला न पकड़ ले। तेल व्यवसाय वस्तुतः ठप हैं। बृटेन ने इसके व्यापार पर प्रतिबंध लगा दिया है, और योरपीय विशेषज्ञों को यहां जाकर इन राष्ट्रीय तेलकूपों को चलानेमे सहयोग करने देना भी बृटेन नापसन्द करता है। अतः मुसद्दिक पर कई प्रकार के दवाव डाला जा रहा है। ईरान की अर्थव्यवस्था संकट में पड़ गई है। देखना यह है कि ईरान की स्वतन्त्रता और राष्ट्रीय सम्मान के साथ २ साम्यवाद से अर्थव्यवस्था और प्रजातन्त्र की रक्षा कैसे की जाती है। पूंजीवाद और राष्ट्रीयवाद का यह संघर्ष अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

vi अरेबिया।

सातवीं सदी में अरेबिया संसार विजेता ही नहीं वरन् धर्म गुरु भी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन गया था, पर अरबों की शक्ति के ह्रास के साथ २ अरब-एकता का भी, जिसे हज़रत मुहम्मद के नेतृत्व और व्यक्तित्व ने कायम की थी, नाश हो गया। फिरकेवाज अरब अब एक दूसरे से अलग हो गये। राष्ट्रीय एकता का पता नहीं था। टर्की के साम्राज्य में अरेबिया भी था। पर अठारहवीं सदी में अरेबिया में इस्लाम में आई हुई कूरीतियों को दूर कर पवित्र इस्लाम की पुनर्स्थापना के लिए मुहम्मद इब्न अब्दुल वहाब नामक एक धार्मिक नेता के नेतृत्व में वहाबी आन्दोलन अरेबिया में शुरू हुआ। वहाबी तुर्की शासन का अन्त करना चाहते थे। अरबों ने विद्रोह करना शुरू किया। मक्का-मदीना पर कब्जा कर लिया गया। बगदाद भी घिर गया, और दमस्कस भी खतरे में था। अतः टर्की के सुल्तान की आज्ञा पर मुहम्मदअली तुर्की सल्तनत की रक्षा के लिए चल पड़ा, और १८१८ तक वहाबी आन्दोलन को दबा दिया गया। टर्की की सत्ता फिर स्थापित हो गई।

टर्की-का शासन

मुहम्मदअली और उसके पुत्र इब्राहिम का लक्ष्य था कि अपने नेतृत्व में टर्की से स्वतन्त्र एक अरब-साम्राज्य की स्थापना करना। पर यह सम्भव नहीं था, क्योंकि न तो अरबों में अभी राष्ट्रीयता की भावना पैदा हुई थी, और न मुहम्मदअली स्वयं अरब था। सबसे बड़ी कमी थी कि दोनों वैयक्तिक स्वार्थ से प्रेरित थे, न कि रास्ट्रीय आन्दोलन के प्रति सहानुभूति से। अब्दुल हमीद १८७६ में गद्दी पर आया। वह अरेबिया को अपने शासन सूत्र में कस कर बांधना चाहता था। येमेन और तटस्थित क्षेत्रों पर तो उसका शासन दृढ़ हो सका और मक्का और मदीना के शरीफों को अपनी ओर वह मिला सका, पर अन्दर-अरेबिया टर्की के केन्द्रीय शासन से वास्तव में अलग ही रहा, और दो प्रधान परिवारों में—इब्न सऊद और इब्न रशीद में—प्रतिद्वन्दिता कटुतर हो रही थी। अब्दुल हमीद अरबों की सहानुभूति चाहता था। दमस्कस् से मक्का-मदीने की रेलवे लाइन बना कर भी उसने अरबों की सहानुभूति

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और कृतज्ञता प्राप्त किया था। पर वास्तव में उसका शासन सेना और जासूसी पर स्थित था।

सीरिया और ईराक़ के राष्ट्रीय आन्दोलनों की प्रतिक्रिया कुछ हद तक अरेबिया में होती रही। हेजाज़ रेलवे के द्वारा अरबों में निकट सम्पर्क और तेज़ी से विचारों का विनिमय सम्भव था। जब युवा-तुर्कदल के शासन-काल में अत्यन्त केन्द्रीयकरण की नीति अपनाई गई, तब अरबों ने गुप्त समीतियों को संगठित किया और छिट-पुट विद्रोह होने लगे, जिनसे अरेबिया अछूता न रहा। इसी बीच बृटेन ने दक्षिण-पूर्व अरेबिया में व्यापार और यातायात के मार्गों पर अपना प्रभुत्व रखने के लिए अरब सरदारों से सन्धि कर एडेन और अन्य समीप राज्यों को बृटिश सरंक्षण में कर लिया था। बहरिन तो बृटिश बन ही चुका था। बृटिश अफसर अफ-गान सरकारों के दरबारों में दूत बने बैठे थे और पर्शिया के तटस्थित बुशाइर में बृटिश रेजिडेन्ट बैठाया गया। दक्षिण पर्शिया में तेल के खानों को चालू करने की सुविधा प्राप्त करने पर बृटेन को निटकस्थ अरेबिया पर अपना प्रभाव रखना आवश्यक था।

अतः बृटेन अरेबिया के एक प्रमुख भाग पर अपना प्रभाव स्थापित कर चुका था, और वस्तुतः टर्की का स्वामित्व यहां नष्ट प्रायः था। १९१३ में इब्न सऊद टर्की के समर्थन-प्राप्त रशीद परिवार को हटाकर मध्य अरेबिया का प्रभु बन गया, और समुद्रतट प्रदेश अल्-हसा टर्की के हाथ से छीन लिया। यमन में इमाम यहया ने विद्रोह का झंडा उंचा किया था, और टर्की को समझौता करना पड़ा। यमन के उत्तर में 'असीर' प्रान्त में इदरिसी का विद्रोह दबा दिया गया था, पर वह मौका की ताक में था। हेजाज (जिसमें मक्का और मदीना है) में हुसैन की स्थित मजबूत थी, और युवातुर्क की एकता और सुधार समीति के इस प्रस्ताव का कि हेजाज का शासन टर्की के अन्य शासित प्रदेशों के समान रहे इसने विरोध किया, और टर्की इसे मक्का के शरीफ बने रहने रोक से न सका (१९१४)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी बीच प्रथम विश्वयुद्ध शुरू हो गया। हुसैन बड़ा होशियार था, और अन्त में जब बृटेन ने टर्की के विरोध में अरबों की स्वतन्त्रता की मांग और शरीफ के अधिकारों की रक्षा की मांग मान ली, तब हुसैन और उसके पुत्र अब्दुल्ला ने विद्रोह का झंडा उठाया (१९१६)। इब्न सऊद और इदरिसी मित्र राष्ट्रों के पक्ष में थे। इस युद्ध में अरबों ने बड़े उत्साह से मित्रराष्ट्रों की मदद की, क्योंकि उन्हें स्वतन्त्रता का आश्वासन मिल चुका था। युद्ध के बाद अरेबिया की स्वतन्त्रता के विषय में कोई हिच नहीं थी। फिलस्तीन, सीरिया और ईराक़ की समस्या साम्राज्यवादी हितों के कारण उलझी रही। पर अरेबिया में हेजाज का स्वतन्त्र राज्य हुसैन के नेतृत्व में युद्ध के मध्य में ही स्थापित हो चुका था। इब्न सऊद को यह नापसन्द था कि वह अरेबिया का राजा रहे पर मक्का मदीना उसके राज्य से बाहर रहें। इब्न सऊद बड़ा चतुर और कुशल शासक सिद्ध हुआ। उसने पूरे अरेबिया को एक सूत्र में बांधने की चेष्टा की और बहुत हद तक वह सफल हुआ। इब्न रशीद की रियासत को इब्न सऊद ने (१९२१) अपने राज्य में मिला लिया। हेजाज का राजा हुसैन और इंगलैंड की सरकार में फिलस्तीन के प्रश्न को लेकर कोई स्थायी संधि न हो सकी। इंगलैंड हुसैन को अब मदद देने के लिए तैयार नहीं था, और हुसैन को भी बृटिश साम्राज्यवाद के असली मकसद के प्रति अब शक हो गया। १९२४ के मार्च में हुसैन ने अपने को खलीफा घोषित किया। यह अदूरदर्शिता थी। अरबों ने हुसैन की महत्वाकांक्षा का विरोध किया। इब्न सऊद इसी ताक में था। वह हेजाज की ओर चल पड़ा। इंगलैंड ने हुसैन को मदद नहीं दिया। हुसैन जिसने गाढ़े वक्त में अंगरेजों के काम आया था, अब निसहाय था। इब्न सऊद ने जनवरी १९२६ में अपने को हेजाज का राजा घोषित किया। हुसैन भागकर साइप्रस गया। १९३१ में उसकी मृत्यु हो गई। १९३० में असीर भी इब्द सऊद के संरक्षण में आ गया। इंगलैंड से सन्धि कर उत्तरी

प्रथम विश्व-युद्ध और स्वतन्त्रता

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीमा निर्धारित की गई। १९२७ की जेद्दा की संधि के अनुसार इंगलैंड ने इब्न सऊद को अरेबिया और हेजाज का स्वतन्त्र और सार्वभौम सत्ताधारी शासक मान लिया। इब्न सऊद ने टर्की और पर्शिया से भी मैत्री की सन्धि की, और अरब जातियों से भी मैत्रीपूर्ण सन्धियां कीं।

इब्न सऊद का शासन

शासन में इब्न सऊद ने अद्भुत योग्यता दिखाई। शासन में भ्रष्टाचार कम हुआ, सादा और पवित्र इस्लाम के सिद्धान्तों का अरबों में पुनः प्रतिष्ठा की गई। गरीबों की दशा में सुधार किया गया। स्कूलें खुलीं। सड़कें बनीं। यातायात की सुविधा हुई। मोटर और रेल का प्रचार हुआ। राज्यकर उचित अनुपात और एक नियम से लागू किये गये। देश में अमन चैन स्थापित हुआ, यात्रियों को लूट-मार से छुट्टी मिली है। बञ्जारे अरब जातियों को कृषक बनाया गया। अतः इब्न सऊद ने अरेबिया में आधुनिकता लाया है, और अपने व्यक्तित्व और राजशक्ति के जोर पर अरब जातियों को प्रगति के पथ पर ला दिया है।

(२) भारतवर्ष

बृटिश राज्य की स्थापना

१८५७ तक भारतवर्ष में बृटिश राज्य पूर्णतया स्थापित हो चुका था। यह अंगरेजों की सफल कूटनीति, भारत की अनैक्यता और आधुनिक युद्ध-कौशल और साधनों से अनभिज्ञता का परिणाम था। पर अंगरेजों को अनेक यद्यपि असफल विरोधों का सामना करना पड़ा था। पिन्डारी, वहावी और सबसे मुख्य सिपाही-विद्रोह, जिसे स्वतन्त्रता का प्रथम संग्राम भी कहा जाता है, क्षेत्रिय आंदोलन नहीं वरन् सर्वव्यापी थे। इन आंदोलनों के मुख्य कारण थे अंगरेजों के बढ़ते प्रभाव के प्रति असन्तोष, आधुनिक सभ्यता के आघात से भारतीय समाज, धर्म और संस्कृति को अछूता रखने का प्रयास और देश की राजनैतिक शक्तियों को अपनी शक्ति को पुनः प्राप्त करने के लिए कुछ हद तक संगठित होकर मुकाबिला करने का हौसला। पर अन्त में ये सभी प्रयास

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असफल रहे, और पूरे देश पर यूनिअन-जैक फहराने लगा। पुराने आदर्शों को पुराने साधनों के द्वारा आधुनिकता के विरुद्ध पुनः प्रतिष्ठित करने की चेष्टा की असफलता स्वाभाविक थी।

पर अंगरेजी राज्य के साथ-साथ देश में आधुनिकता का प्रचार हुआ, और इसका परिणाम यह हुआ कि देश में पुनर्जागरण की लहर दौड़ गई। किसी भी क्रान्ति का पृष्ठाधार यही होता है। अंगरेजी राज्य में रेल, तार डाक इत्यादि की सुविधाओं का विकास हुआ। इससे सेना और माल के आवागमन के साथ-साथ विचारों का आदान-प्रदान भी तेजी से हो सका। देश एक है यह विचार दृढ़ होने लगा। पूरे देश में एक शासन की स्थापना ने भी देश की एकता की भावना को मजबूत किया। फिर जब यह निश्चय हो गया कि शिक्षा का माध्यम अंगरेजी होगी, तब देश के सभी कोने के पढ़े-लिखे बाबुओं की भाषा अंगरेजी हो गई, और इस प्रकार अंगरेजी सारे देश की एक भाषा बन गई, और इसका परिणाम हुआ उदार विचारों का देश भर में प्रचार। एकता की भावना को इससे भी बल मिला। अंगरेजी के ज्ञान से सिर्फ बृटिश राज्य शासन में किरानी और निम्न स्तर के अफसर बनने का ही मौका नहीं मिला वरन् शिक्षित भारतीयों को अब इंगलैण्ड और योरप के महान् उदार चिन्तकों के प्रगतिशील या क्रान्तिकारी विचारों को भी पढ़ने का अवसर मिला, और इनका प्रभाव स्वल्प नहीं था। देश में शिक्षितवर्ग या महान् विचारक अब सामाजिक सुधार और प्रजातान्त्रिक विचारों की भावना से प्रेरित हो पश्चिमी राजनैतिक विचार और संस्था भारत में भी फले-फूले ऐसा सोचने और लिखने लगे। योरप के विद्वानों ने संस्कृत को बड़े चाव से पढ़ना शुरु किया और इसके अन्वयकोष के कुछ अमूल्य रत्नों का योरोपीय भाषा में अनुवाद किया। बंगाल एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना बहुत पहले ही हो चुकी थी। भारतीय विद्वान भी मूल संस्कृत या अनुवाद से अपने प्रचीन गौरव से अवगत हो गये, और उनमें आत्माभिमान और आत्मविश्वास आया, जिसका पुनर्जागरण पर गहरा प्रभाव पड़ा।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस समय देश में कई महापुरुष पैदा हुये। राम मोहन राय, केशवचन्द्र सेन, दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द प्रभृति महापुरुषों ने अपने-२ क्षेत्रों में पुनर्जागरण की लहर दौड़ाई।

सुधारकों का प्रभाव

सामाजिक सुधार के प्रति उत्साह की लहर दौड़ गई। सामाजिक सुधार, अपनी प्राचीन साहित्य के प्रति आदर और देशभक्ति के मन्त्र इन महापुरुषों ने फूंका। देशभक्ति की भावना को व्यक्त करने में दयानन्द और विवेकानन्द प्रातः स्मरणीय हैं। आर्य समाज, ब्रह्म समाज, रामकृष्ण मिशन, और अन्य सांस्कृतिक सभा-समीतियों ने देश को जागृत करने में हाथ बँटाया। इसी समय देश में औद्योगिक विकास का भी श्रीगणेश हुआ। जूट, सूत इत्यादि की मिलें खुलीं। स्वदेशी पूंजीपति वर्ग की उत्पत्ति हुई। शिक्षा का प्रसार हुआ था। विश्वविद्यालय खुले। शिक्षितवर्ग, विशेषकर वकील-बैरिस्टर, अब देश के शासन में सक्रिय भाग लेने का आन्दोलन करने लगे।

१८८५ में इसी समय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। इसकी समाओं में शासन के प्रति शिकायतों का इजहार किया जाता था और दबी जबान से राजनैतिक सुधारों की मांग की जाने लगी थी। अभी बृटिश राज्य से विरोध करने का प्रश्न भी इस राष्ट्रीय सभा में नहीं उठ सकता था। पर कांग्रेस के प्रस्तावों का सरकार उचित आदर नहीं करती थी। कुछ लोग इसलिये उग्र रुख अख्तियार करने का प्रस्ताव करने लगे। रूस पर जापान की विजय से भारत में अंगरेजों के विरुद्ध मोर्चा लेने का हौसला बढ़ा। संघर्ष से अब बहुत डर नहीं था। लार्ड कर्जन की नीति से भी लोग क्षुब्ध थे। बंगाल का विभाजन का अर्थ यह लगाया गया कि क्योंकि बंगाल भारतवर्ष की नयी जागृति का नेता था इसलिये इसे टुकड़े-२ कर कमजोर बनाने का यह मसविदा था। बृटिश वस्त्रों की प्रति-द्वन्द्विता से भी देशी सूती मिलों की बड़ी हानि हो रही थी। अतः विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार का आंदोलन आरम्भ हुआ। यह काफी हद तक जनवादी

कांग्रेस का जन्म और राष्ट्रीय आंदोलन

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आंदोलन था। बंगाल का विभाजन रद्द कर दिया गया। कुछ नवयुवक अब आतंकवादी नीति अख्तियार करने लगे। बमों के द्वारा अब अंगरेजी की सल्तनत के विरुद्ध वे अपना असन्तोष प्रकट करने लगे। कांग्रेस में भी लोकमान्य तिलक और लाजपत राय उग्रदल के नेता बने, और वे बृटिश सरकार के विरुद्ध संघर्ष की नीति का प्रतिपादन करने लगे।

प्रथम विश्वयुद्ध के पहले भारत में राजनैतिक वातावरण काफी उष्ण था। स्वराज्य की मांग होने लगी थी। जब विश्वयुद्ध छिड़ा तब अधिकांश भारतीय नेताओं ने अंगरेजों को मदद देने की नीति अपनाई। उन्हें विश्वास था कि युद्ध के उपरान्त भारत को स्वशासन प्राप्त होगा। पर उन्हें निराशा हुई। १९१९ का पार्लियामेन्ट ऐक्ट भारतीय नेताओं को सन्तुष्ट नहीं कर सका, और इसके साथ २ रौलेट ऐक्ट के अनुसार वैयक्तिक स्वतन्त्रता पर गहरा आघात किया गया। अतः अब संघर्ष टाला नहीं जा सकता था। गांधीजी अब भारतीय-कांग्रेस के नेता बने। चम्पारण के सत्याग्रह में (१९१७) इन्होंने किसानों को निललहों के जुल्म से रिहा किया था। अब गांधीजी ने सत्याग्रह छेड़ने का एलान किया। जालियावांला-बाग में रौलेट कानून का विरोध प्रदर्शित करने वाली सभा पर गोली चलाई गई। आन्दोलन छिड़ गया। देश भर में अजीब उत्साह छा गया। चर्खे का प्रचार हुआ, विदेशी वस्त्रों का वहिष्कार किया गया, स्कूल-कालिज और कचहरियां छोड़ीं गईं और सरकार से असहयोग का कार्यक्रम शुरू हुआ। यह नयी तरह की लड़ाई थी जिसमें शस्त्र का व्यवहार वर्जित था। लोग खुशी से जेल जाने के लिये तैयार थे। पर अभाग्यवश चौरीचौरा-काण्ड गोरखपुर जिले में हुआ जिसमें उत्तेजित जनता ने थाना में आग लगा दिया और दर्जनों सिपाहियों को मार डाला। गांधीजी इससे निराश हो गये। वे इस निश्चय पर पहुँचे कि देश अभी सत्याग्रह या अहिंसक संघर्ष के लिये तैयार नहीं है। सत्याग्रह स्थगित कर दिया गया। जनता के उबलते

असहयोग-आंदोलन

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जोश पर पानी पड़ गया। गांधीजी ने ठीक किया या गलत इस पर देश के नेताओं में मतभेद रहा। पर इस संग्राम से देश की आम जनता में बृटिश राज्य का डर का भूत काफूर हो गया। जो जनताएक अदना सा लाल मुरेठा देख कर डर जाती थी वह अब सीना तानकर बृटिश राज्य के बड़े से बड़े पदाधिकारियों के सामने आत्मसम्मान के साथ सर ऊँचा रखने लगी। गांधीजी ने देश में इस तरह एक महान् मनोवैज्ञानिक क्रान्ति ला दी थी। बृटिश राज्य की नींव हिल गई।

देश में निराशा

१६२१ के बाद देश में कुछ समय तक निराशा छाई रही। इसी समय साम्प्रदायिक दंगे हुए। मुसलमानों की एक जमायत राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के संग्राम से अपना अहित समझती थी और बृटिश राज्य को सहयोग देकर विशेष सुविधाएं प्राप्त कर हिन्दूओं के बराबर राजशासन पर अपने अधिकार की स्थापना चाहती थी। इसमें शक नहीं कि अंगरेजों ने इस विचारधारा को प्रोत्साहित किया। खिलाफत आंदोलन, जो कि १६१८-२० के सत्याग्रह-संग्राम में घुल मिल गया था, अब ठंढा पड़ गया था। कांग्रेस ने मुस्लिम लीग से समझौता करने का बराबर प्रयास किया। पर साम्प्रदायवादी हिन्दुओं की जमायत हिन्दूमहासभा मुस्लिम लीग की विरोधी थी, और इन दोनों में समझौता असम्भव था। कांग्रेस के लिये यह बड़ा कठिन समय था। दूसरी ओर देश में अंगरेजों के विरुद्ध उग्रमत दृढ़ हो रहा था। क्रान्तिकारी युवकों ने जान की बाजी लगाकर देश के नवयुवकों के असन्तोष को व्यक्त करने के लिये बम फेंकना शुरू किया। कुछ अंगरेजों की हत्या हुई। भगतसिंह पकड़े गये। उस समय देश में मंदी हो गई थी। मजदूरों में असन्तोष बढ़ गया, किसानों की हालत बुरी हो गई, और बेकारी की समस्या गम्भीर हो गई।

अतः संघर्ष अब रोका नहीं जा सकता था। १६२६ में कांग्रेस ने पूर्ण स्वतन्त्रता की मांग की। जवाहरलाल लाहौर कांग्रेस के राष्ट्रपति थे। महात्मागांधी के नेतृत्व में सविनय अवज्ञा आंदोलन (Civil

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Disobedience Movement) अप्रिल १९३० में शुरू हुआ।

सत्याग्रह आंदोलन

नमक कानून तोड़ने के कार्यक्रम से यह आरम्भी हुआ। गांधीजी ने साबरमती से पैदल यात्रा कर दण्डी जाकर नमक बनाया। वे गिरफ्तार कर लिये गये। पर देश में हर जगह नमक बनने लगा। विदेशी कपड़ों और शराब की दूकान पर शांतिमय पिकेटिंग (धरना) देने का कार्यक्रम जोर शोर से चलने लगा। इस आंदोलन में स्त्रियों ने सराहनीय काम किया। सरकार ने भी दमन की नीति कठोर रखी। लाठी, बन्दूक, इत्यादि का व्यवहार किया गया। पेशावर के समीप अब्दुल गफ्फार खां के नेतृत्व में जोशीले पठानों ने अजीब हिम्मत दिखाई और हंसते २ दर्जनों ने सीना तान कर गोली खाई। १९३१ तक आंदोलन धीमा पड़ने लगा। इंगलैंड में भारतीय राजनैतिक समस्या को सुलझाने के लिये गोलमेज कान्फ्रेंस बुलाई। १९३१ में गांधी-इरविन समझौता के मुताबिक आंदोलन बन्द किया गया, सत्याग्रहियों को छोड़ दिया गया, और गांधीजी द्वितीय गोलमेज कान्फ्रेंस में भाग लेने के लिये तैयार हो गये। पर भगतसिंह को वे बचा न सके। उन्हे फांसी दे दी गई। नवयुवकों में इसलिसे बड़ा असन्तोष रहा।

करांची कांग्रेस का बड़ा महत्व है। इसमें प्रसिद्ध करांची प्रस्ताव पास हुआ जिसके अनुसार कांग्रेस ने प्रगतिशील अर्थ-व्यवस्था और सामाजिक न्याय का सिद्धान्त अपनाया। मूल-उद्योगों का राष्ट्रीयकरण, और हद से हद पांच सौ रुपया मासिक के निर्णय किये गये। सरदार बल्लभभाई पटेल इस कांग्रेस के सभापति थे।

गोलेमेज कान्फ्रेंस में गांधी जी को कुछ सफलता नहीं मिली। इधर देश में किसानों में असन्तोष बढ़ रहा था। वे कांग्रेस से कुछ ठोस कदम की आशा रखते थे। बृटिश सरकार गांधी-इरविन समझौते को भंग कर रही थी। नये वायसराय लौर्ड विलिंगडन कठोर नीति का समर्थक था। गांधी जी के लौटते २ ही आन्दोलन छिड़ गया (१९३२),

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और काफ़ी उग्र रहा। सब नेता गिरफ्तार कर लिये गये, पर जनता ने आंदोलन जारी रक्खा। इसी बीच बृटिश सरकार ने एक घोषणा की जिसके अनुसार हरिजनों को भी पृथक निर्वाचन का अधिकार मिला। गांधी जी ने इसे हिन्दुओं से हरिजनों का निकाल लेना समझा, और हिन्दू समाज और धर्म पर विषम कठोराघात बताया। इसके विरुद्ध जेल मे ही इन्होंने अनशन शुरू कर दी। देश का ध्यान स्वतन्त्रता-संग्राम से हट कर अछूतोद्धार पर चला गया। देश के हिन्दु और हरिजन नेताओं में समझौता हुआ (Poona Pact) और गांधी जी जेल से निकल कर हरिजन-उद्धार आंदोलन में लग गये। हरिजन हिन्दु समाज से अलग नहीं हुये। गांधी जी की यह बड़ी महत्वपूर्ण कीर्ति है।

हरि उद्धरन-आंदोलन

कांग्रेस में इस समय समाजवादी विचार का प्रवेश हो रहा था। जवाहरलाल इस विचार के पोषक थे। जयप्रकाशनारायण, आचार्य नरेन्द्रदेव प्रभृति ने कांग्रेस-समाजवादी दल का संगठन किया। कांग्रेस में इस समय दक्षिण और वामपंथी दलों में कांग्रेस पर कब्जा करने में ही होड़ मची थी। १९३५ के पार्लियामेन्ट-ऐक्ट के द्वारा प्रान्तों को कुछ हद तक स्वशासन मिला, और १९३७ में कई प्रान्तों मे कांग्रेसी मन्त्रीमंडल कायम हुये। किसानों की दशा में सुधार के कानून बने। नागरिक स्वतन्त्रा दी गई। राजबन्दी मुक्त हो गये। अन्तराष्ट्रीय स्थिति डावांडोल हो रही थी। जापान इटैली और जर्मनी आक्रमक नीति पर चल रहे थे। श्री जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में कांग्रेस ने प्रस्तावों के द्वारा अपनी सहानुभूति पीड़ित देशों के प्रति दिखाई, और आक्रमक नीति की निन्दा की। जब १९३९ में द्वतीय विश्वयुद्ध शुरू हुआ, तब कांग्रेस की सहानुभूति मित्र राष्ट्रों की ओर थी। पर बृटिश सरकार से अपने इरादों को खुलासा करने की मांग की गई, और भारत की स्वतन्त्रता की मांग

कांग्रेस-मंत्रीमंडल

द्वितीय विश्व-युद्ध

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मान ली जाय ऐसी आशा की गई। पर बृटिश साम्राज्यवाद ने सन्तोष-प्रद उत्तर नहीं दिया। कांग्रेसी मन्त्री-मंडल ने इस्तिफा दिया (१९३९)। गांधी जी ने ऐसे युद्ध में मदद देने से इन्कार किया और इस विरोध को वैयक्तिक सत्याग्रह के द्वारा व्यक्त किया। उधर बृटिश सेना योरप और एशिया में हार रही थी। जापान बर्मा, और मलाया पर विजय प्राप्त कर चुका था। सुभाषचन्द्र बोस भारत से भाग कर जर्मनी होते जापान पहुंच गये थे, और उनके नेतृत्व में आजाद हिन्द फौज भारत की ओर बढ़ रही थी। इधर भारत में अंगरेजों के विरुद्ध असन्तोष बढ़ रहा था। महात्मा गांधी के लेखों से लोगों को उत्साह और पथनिर्देश का संकेत मिल रहा था। अन्त में बृटिश सरकार ने (स्वर्गीय) सर स्टैफर्ड क्रुप्स को भारत के राज-नैतिक दलों से समझौता कर युद्ध में सहयोग प्राप्त करने के लिए भेजा, पर क्रुप्स मिशन असफल रहा। युद्धकाल में भारतीयों को प्रमुख उत्तरदायित्व नहीं देने का निश्चय ही इसकी असफलता का मुख्य कारण था।

क्रुप्स की असफलता से (जून १९४२) जनता में घोर नैराश्य छा गया और इंगलैंड के इरादों और वायदों पर विश्वास उठ गया। कांग्रेस ने जनआंदोलन छेड़ने का निश्चय किया। बम्बई की कांग्रेस महा-समिति की बैठक में ८ अगस्त १९४२ में 'भारत-छोड़ो' प्रस्ताव पास हुआ। गांधी जी आन्दोलन के नेता बनने वाले थे और उनका ख्याल था कि आंदोलन शुरू होने के पहले वायसराय से बात-चीत की जाय; पर बृटिश सरकार ने दमन की नीति अपनाई। गांधी जी और कांग्रेस की कार्यसमिति के सदस्य गिरफ्तार कर लिये गये। आन्दोलन की रूपरेखा नेताओं ने निश्चित नहीं किया था। नेताओं की गैरहाजिरी में, और कोई निर्देशित कार्यक्रम की अनुपस्थिति में जनता ने नेतृत्व हाथ में लिया, और अगस्त '४२' की क्रान्ति इतिहास में अमर रहेगी। रेल-तार काटे गये, देहात और शहर में अंगरेजी राज्य कई प्रान्तों और जिलों से कुछ दिन के लिए उठ गया। पर युद्ध की विषम परिस्थिति का बहाना

अगस्त ४२ की क्रान्ति

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकर सरकार ने भी अत्यन्त कड़ा रुख लिया। पुलिस और सेना का खुला अत्याचार स्थापित हुआ। संगीनों के बल पर आंदोलन दबाया गया। १९४२ की दिवाली की रात को जयप्रकाश ने अपने कुछ साथियों के साथ हजारीबाग जेल से भाग कर देश में पुनः उत्साह व आत्मविश्वास का संचार किया, और स्वतन्त्रता आन्दोलन के जलते दीप को बुझने नहीं दिया। जेल में महात्मा गांधी के अनशन ने तो देश को अपनी असहाय स्थिति का ज्ञान दिलाया और अंगरेजी शासन के विरुद्ध विरोध की भावना भारतीय नागरिकों में दृढ़ हो गई।

अब यह स्पष्ट हो गया कि भारत को संगीन के बल पर ही परतन्त्र रखा जा सकता था। आजाद हिन्द फौज का भारत की मुक्ति प्राप्त करने का प्रयास असफल रहा था। जापान हार चुका था। अब इस फौज के नेताओं पर मुकदमा चलाया जाना निश्चय हुआ। सारे देश में आजाद हिंद फौज के लिये गहरी सहानुभूति थी। जुलूस निकाले गये और उन पर गोली भी चली। पर देश की पूर्ण स्वतन्त्रता की मांग अब ठुकराई नहीं जा सकती थी। बम्बई में भारतीय जलसेना ने भी विद्रोह कर दिया (१९४६)। अब भारतीय सेना पर भी निर्भर नहीं किया जा सकता था। इंगलैंड में मजदूर दल की सरकार बन चुकी थी (१९४५)। बृटिश सरकार अब सत्ता हस्तान्तिरित करने के लिये तैयार थी। कई मसविदे पेश हुए जैसे वैभेल योजना और कैबिनेट मिशन। पर क्योंकि कांग्रेस और मुस्लिम लीग में कोई समझौता न हो सका बंगाल, बिहार पंजाब में भीषण साम्प्रदायिक दंगे हुए। इसको बहाना बनाकर अन्त में

भारत और पाकिस्तान की स्वतन्त्रता

भारत का विभाजन कर दो स्वतन्त्र राज्यों—भारत और पाकिस्तान-की घोषणा की गई। १५ अगस्त १९४७ को भारत स्वतन्त्र हुआ, और पूर्व बंगाल, पश्चिमी बंगाल, सिन्ध और सीमाप्रान्त को पाकिस्तान राज्य में संगठित किया गया। साम्प्रदायिक झगड़ों ने उग्र रूप धारण किया। गांधी जी नोआखाली जाकर इसे दबाने में प्रयत्नशील हो गये और

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें वहां सफलता भी मिली। पर देश में साम्प्रदायिकता की आग जलती रही। दिल्ली में प्रार्थना की मैदान में अभाग्यवश एक साम्प्रदायवादी हिन्दु नवयुवक ने राष्ट्रपिता गांधीजी की हत्या कर दिया (३० जनवरी १९४८)

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी संसार के इनेगिने महापुरुषों में थे। प्रभु ईसा के वाद संसार में ऐसी ज्योति नहीं पैदा हुई थी। गांधी जी ने

गांधीजी का बड़प्पन

भारत को स्वतन्त्रता ही नहीं दिया बल्कि संसार के सवसे शक्तिशाली साम्राज्य के विरुद्ध एक नयी तरह की लड़ाई-सत्याग्रह निकाली। सत्य और अहिंसा के वल पर विना घृणा का भाव लिये आततायी के विरुद्ध शांति-मय असहयोग कर अपने पवित्र लक्ष्य के लिए मर मिटने की हिम्मत रखते हुये संघर्ष करने और इस संघर्ष में अपनी विजय निश्चय समझने की व्यवहारिक शिक्षा गांधी जी ने भारतवासियों को ही नहीं, वरन् सारे विश्व की त्रस्त और उपेक्षित जनता को दिया। आधुनिक शस्त्रों से परिपूर्ण किसी भी राज्य या शासन के अत्याचार के विरुद्ध यदि किसी प्रकार की लड़ाई सम्भव है तो वह गांधी जी की बताई लड़ाई ही। संसार के महान् चिन्तक आल्डुअस हक्सले का यही विचार है। मिश्र और ट्यूनिशिया और केनेया और दक्षिण अफ्रिका के जन आंदोलन के नेताओं ने अपने संघर्ष के लिए गांधी जी का ऋण खुले आम माना है। विश्व-शांति के लिए गांधी जी के अमर संदेश को भुलाया नहीं जा सकता, और युद्ध की आशंका से घवड़ाई जनता गांधी जी के विचारों में ही अपना कल्याण समझने लगी है। गांधी जी गरीव और असहायों के सच्चे मित्र थे। हरिजनों के लिए उनका काम भूला नहीं जा सकता है। खादी उद्योग, ग्रामउद्योगसंघ, सर्वोदय संघ इत्यादि संस्थाओं के द्वारा गांधी जी ने देश के पुनर्निर्माण की रूपरेखा और राह का निर्देश किया है।

१९४७ से भारत का राज्य कांग्रेस के द्वारा चलाया जा रहा है। १९५२ से नया संविधान लागू हो गया। भारत धर्मनिरपेक्ष लोकतन्त्रात्मक गणतन्त्र है। हमारा संविधान प्रधानतः पार्लियामेन्टरी है। श्री राजेन्द्र प्रसाद

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रपति और श्री राधाकृष्णन् उपराष्ट्रपति चुने गये हैं। संसद में कांग्रेस पार्टी का अत्याधिक बहुमत रहा और श्री जवाहरलाल नेहरू प्रधान मन्त्री बने रहे, और भारत के अन्य राज्यों में कांग्रेस की सरकारें बनीं। देश अब पूर्णतया आज़ाद है यद्यपि स्वेच्छा से राष्ट्रमंडल (Commonwealth of Nations) का सदस्य है। नेहरू के नेतृत्व में विदेशों में भारत का प्रभाव बढ़ा है, और सोवियत और अमेरिकी दोनों गुटों से अलग रहने का निश्चय कर भारतवर्ष की स्वतन्त्र विदेशी नीति को सम्मान मिला है, और संयुक्त राष्ट्र में भारत की प्रतिष्ठा है। नेहरू ने एशिया और अफ्रिका की परतन्त्र जातियों को उनके स्वातन्त्र्य संग्राम में मदद दिया है। इन्डोनेशिया की स्वतन्त्रता में भारत का हाथ था। साम्यवादी चीन और समाजवादी वर्मा से भारत की मैत्री है। दुख की बात है कि पाकिस्तान से अभी तक सन्तोप्रद सम्बन्ध नहीं है। काश्मीर का मसला अभी तक हल नहीं हुआ है।

कांग्रेस-शासन

पर भारत की वैदेशिक नीति की सफलता भारत के समुचित आर्थिक विकास में है। गरीबी हमारी सबसे बड़ी समस्या है। उत्पादन की कमी सबसे बड़ी कमजोरी है। पर गरीबी को दूर करने की ओर और सामन्ती व्यवस्था को अन्त कर सामाजिक न्याय की ओर भी प्रगति हुई है। कई राज्यों में जमींदारी उठाने का कानून पास हो गया है। किसानों की दशा सुधारने की कोशिश की गई है। शिक्षा और विज्ञान की उन्नति के लिये वैज्ञानिक अनुसंधान-शालाएं खोली गई हैं। वर्तमान पंचवर्षीय योजना से देश में सन्तुलित विकास की आशा है। विदेशों से भी मदद ली जा रही है। भविष्य आशाप्रद है। पर प्रत्येक नागरिक को इस पुनर्निर्माण में सक्रिय सहयोग देना है और साम्प्रदायवादी विचारों को कुचलना है। देश में एकता रहे, इसलिए भाषा, प्रान्त, धर्म के प्रति अपने उत्साह को राष्ट्रीय-हित के विरोध में प्रयोग नहीं करना है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) सुदूर पूर्व

(क) जापान

१३वीं सदी में मार्को पोलो ने जापान के धन और ऐश्वर्य के बारे में योरप का ध्यान आकृष्ट किया था। जब भौगोलिक खोज का युग आया, तब योरपीय व्यापारी और ईसाई मिशनरी सुदूर पूर्व की यात्रा करने लगे। पोर्तगीज, डच, फ्रेंच, स्पेनिश और अंगरेज व्यापारी और मिशनरी जापान पहुँचे, और यहां ईसाई मत का प्रचार किया। पर व्यापारी और मिशनरी में अधिक फर्क नहीं था। इनके व्यापार से जापान के सामन्तों और व्यापारियों को असन्तोष था। इनके साथ २ पश्चिमी संस्कृति का प्रवेश हुआ और योरोपीय साम्राज्यवाद का भी। योरोपीय राष्ट्रों की प्रतिद्वन्द्विता इसका एक लक्षण था। जापान के शासक सामन्त-वर्ग को योरपीय साम्राज्यवाद का भय हुआ। राजनीति में योरपीय व्यापारी और पादरी भाग लेने लगे, और ईसाई धर्म के प्रचार में कहीं २ दबाव का प्रयोग किया गया। अतः जापान की सरकार ने ईसाई धर्म को अवैध कर दिया और १६३६ में सभी योरोपीयनों को, डचों को छोड़ कर, जापान से निकाल दिया।

जापान को विलगाव की नीति

जापान ने अब योरप से अपने को अलग रखने की नीति अख्तियार किया, और रूस, इंगलैंड, और अमेरिका के शांतिमय प्रयत्न, कि जापान में इन्हें व्यापार करने की आज्ञा मिले और चीन की तरह जापान भी अपने बन्दरगाहों को विदेशी राष्ट्रों के लिये खोल दे, असफल रहे। अन्त में बल प्रयोग किया गया, और १८५३-५४ में अमेरिकन नाविक-सेनापति पैरी ने बन्दूक के जोर पर जापान की सरकार को अपने देश से व्यापार करने के लिये बाध्य किया। रूस, इंगलैंड और फ्रांस ने भी बल प्रयोग कर व्यापार करने और राजदूत भेजने के अधिकार प्राप्त कर लिया। अब पश्चिमी नागरिक जापानी कानून से बाहर थे और अपने २ देश के कानून से बंधे थे।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदेशी माल पर चुंगी लगाने का अधिकार भी विदेशी राष्ट्रों के हाथ में चला गया।

जापान के इस अपमान और नुकसान की जिम्मेदारी जापान के शासक गुट पर पड़ी। जापान में सामन्ती राज्य था, सम्राट् की शक्ति वस्तुतः खत्म थी, और शोगुन सर्वेसर्वा था। दो सौ वर्ष से तोकुगवा (Tokugawa) गुट का प्रभुत्व था। विरोधी सामन्ती परिवारों ने जापान की असफलता का कारण इस परिवार को ही बनाया। सम्राट् की शक्ति की पुनर्स्थापना हो और सामन्ती शासन का अन्त हो, ऐसे निश्चय किये गये। १८६८ में शासन में रद्दोबदल हुआ। नये सम्राट् मेजी के हाथों में सत्ता आई। मेजी-युग से जापान में जागृति के युग का श्रीगणेश हुआ। जापान पश्चिमी औद्योगिक राष्ट्रों से पराजित हुआ था। अतः अब यह विश्वास हो गया कि जापान को पश्चिमी सभ्यता और औद्योगिक क्रांति को अपना कर ही पश्चिमी राष्ट्रों का मुकाबिला करने की शक्ति प्राप्त होगी। इसलिये पश्चिमीविज्ञान, औद्योगिक क्रान्ति, राजनैतिक संस्थाएं, साहित्य और शिक्षा का जापान में तेजी से विकास होने लगा।

जापान के विद्वबल-प्रयोग का परिणाम

१८६८ की घोषणा में यह कहा गया था कि शासन में जनता का सहयोग रहेगा और एक लोक-सभा का संगठन होगा। अब प्रश्न यह था कि शासन का क्या रूप हो? जापान में कई राजनैतिक पार्टियां उठ खड़ी हुई। प्रजातान्त्रिक विधान की मांग होने लगी। जापान के नेताओं ने योरप के देशों का भ्रमण किया। जर्मनी के संविधान से ये लोग बहुत प्रभावित थे। बिस्मार्क इनका आदर्श था। फरवरी ११, १८८६ में संविधान लागू हुआ। इसमें जर्मनी के संविधान की छाप स्पष्ट है। संविधान का लक्ष्य जनता को राजनैतिक अधिकार देना नहीं, वरन् राजतन्त्र को सुदृढ़ करना था। जनता को एक सीमित क्षेत्र में शासन में भाग लेने का मौका दिया गया। सम्राट् देवतुल्य पवित्र था। दो सदनों की व्यवस्थापिक सभा थी। परिषद् या (Upper

शासन का रूप

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

House) में कुलीन वर्ग की प्रधानता थी, और लोक सभा पर यह अंकुश का काम करती थी। शासन में कार्यकारिणी (Executive) व्यवस्थापिका (Legislative) से अधिक शक्तिशाली थी। स्वायत-शासन में मेयरों का चुनाव सम्राट् के द्वारा ही होता था। मन्त्रीमंडल व्यवस्थापिका सभाके प्रति उत्तरदायी नहीं था, और मन्त्रिमंडल में युद्ध और जल-सेना मन्त्रियों को विशेष अधिकार मिला, और सम्राट् के यहां इनकी प्रत्यक्ष पहुंच थी। अतः इंगलैंड की शासन पद्धति नहीं अपनाई गई। संविधान में पश्चिमी रूपरेखा जरूर अपनाई गई, पर वस्तुतः जापान में उच्चवर्ग और सम्राट् का शासन स्थापित रहा।

शिक्षा और विज्ञान

शिक्षा और विज्ञान के क्षेत्रों में भी पश्चिमी आदर्शों को आतुरता से अपनाया गया। जापानी विद्यार्थी हौलेन्ड, जर्मनी, और फ्रांस के प्रमुख विश्वविद्यालयों में पढ़ने के लिये भेजे गये, और वापस आने पर इन्होंने पश्चिमी विद्या, भाषा, विज्ञान और संस्कृति के प्रसार में बड़ा भाग लिया। पश्चिमी विद्वानों के सामाजिक-शासन, राजनीति, अर्थशास्त्र और दर्शन के ग्रन्थों का अनुवाद हुआ, और इन विषयों की पढ़ाई नवस्थापित जापानी स्कूल और कालिजों में शुरू हुई। रूसो, मिल इत्यादि को बड़े चाव से पढ़ा जाने लगा। जापानी विद्वानों ने भी पश्चिमी राजनीति शास्त्र और अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों के आधार पर पुस्तकें लिखीं, और इस प्रकार इन सिद्धान्तों का यहां भी प्रचार होने लगा, जैसे मुक्त व्यापार। फुकुजावा की सभ्यता की रूपरेखा (Outline of Civilisation) और डा० टाकुची उकीची की 'जापान की सभ्यता का संक्षिप्त इतिहास' प्रमुख ऐतिहासिक ग्रन्थ हैं, जिनका आधुनिक जापान की विचारधारा पर काफी प्रभाव पड़ा। पश्चिमी चिकित्सा शास्त्र का भी प्रचार हुआ। डच, जर्मन, और अंगरेज डाक्टरों ने इस दिशा में पथप्रदर्शक का काम किया। ज्योतिष का महत्व भी बढ़ा क्योंकि समुद्री यात्रा में इसकी जरूरत थी। शिक्षा पद्धति में क्रान्ति हुई। १८७१ में शिक्षा विभाग खुला। व्यवहारिक

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और नियमित शिक्षा जापानियों को मिले ऐसा निश्चय किया गया। बच्चों के लिये स्कूल जाना अनिवार्य कर दिया गया। पहले अमेरिकन शिक्षा पद्धति ही को आदर्श माना गया और अमेरिकन शिक्षा विशेषज्ञ जापान के शिक्षा विभाग के सलाहकार बने। अंगरेजी उच्च शिक्षा और माध्यमिक शिक्षा की माध्यम बनी, और प्राथमिक स्कूलों में भी अंगरेजी पढ़ाई जाने लगी। १८७७ में टोकियो विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। फ्रांसीसी और फिर जर्मन पद्धति ही शिक्षा का आदर्श बनी। विद्यार्थियों में राष्ट्र भावना का प्रचार किया गया और उन्हें भविष्य में नेता बनने का उत्तरदायित्व समझाया गया। स्त्रीशिक्षा का भी प्रसार हुआ। पहले स्त्रियों का कार्यक्षेत्र घर की चहारदिवारी तक ही सीमित था। वह बराबर पराधीन थी--पिता, पति, या पुत्र के अधीन। सीने-पिरोने, रसोई बनाने या सूत कातने और अन्य गृह कार्य के सिवा उनके लिये कोई विशेष शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी। पर आधुनिकता का तकाजा था स्त्रियों के प्रति बराबरी का व्यवहार हो। अतः लड़कियों के लिये स्कूल खोले गये, लड़कियां उच्च शिक्षा के लिये अमेरिका भेजी गई। महिलायों के लिये कालिज भी खुला। विश्वविद्यालय में महिलायों की भर्ती होने लगी (१९१३)। नये संविधान (१९४७) में स्त्रियों को पूर्ण बराबरी का दर्जा मिला है, और लड़कियों के लिये भी निशुल्क अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध हुआ है। जापानी शिक्षा पद्धति में अनुशासन और राष्ट्रीयता और राजभक्ति के आदर्शों पर जोर डाला गया, और विज्ञान और यन्त्रविद्या के अध्ययन के साथ २ कला, दर्शन, साहित्य, इतिहास और नैतिक आचरण पर भी बराबर ध्यान दिया गया।

आधुनिक प्रतिक्रिया जापान की सामाजिक व्यवस्था पर भी पड़ी। सामन्तवाद पश्चिमी आदर्शों के सामने टिक नहीं सका। सामन्तवाद का अन्त किया गया। बड़ी २ जमींदारीयों को मुआविजा देकर राज ने ले लिया। सामन्त-परिवारों को तलवार रखने का रिवाज उठा दिया गया। (१८८६)। यह उनका विशेषाधिकार था, और इसका अन्त

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामान्तवाद का अन्त का प्रतीक था। शोगुन पद का तो अन्त कर ही दिया गया था (१८६८) और टोकुगावा परिवार के विरोधी चार बड़े २ सामान्त परिवारों ने अपनी बड़ी २ रियासतें सम्राट को वापस कर दिया था। उच्च जमींदार वर्ग (Samurai) के विशेषाधिकारों का अन्त कर दिया गया, और प्रत्येक नागरिक अब सेना में भर्ती हो सकता था। समाज सेबहिस्कृत कोई जाति नहीं रही। चमड़े के काम करनेवालों को भी नागरिक अधिकार मिले। राजदरबार के सामन्ती रीतिरीवाज भी उठा दिये गये। गोमांस खाना और बाल बनाने का प्रचार भी सरकार की ओर से पश्चिमी सभ्यता के अनुकरण करने की ललक में ही हुआ। मनुष्यों की खरीद-बिक्री अवैध-घोषित हुई। स्त्रियों की दशा में सुधार हुये। फुकुजावा स्त्रियों के लिये शिक्षा और समान अवसर का पक्षपाती था। स्त्रियां अब राजनैतिक जीवन में समुचित भाग लेने के लिए तैयार होने लगीं। जापान में पश्चिमी तरीके से नाच-रंग करने के लिए नृत्य भवन खुले। पश्चिमी मनोरंजन के प्रति आकर्षण बढ़ा। जापान हर तरह से अपने को पश्चिमी संस्कृति का एक विकसित अंग बनाने के लिए उतावला था।

सामन्त वाद का अन्त

सामान्तवाद का अन्त और पूंजीवाद की स्थापना के लिए मेजी-युग का स्वागत हुआ था। पश्चिम संस्कृति (Westernisation) के अपनाने पर इस दिशा में अत्याधिक प्रगति मिली। जापान एक आधुनिक सबल देश बनना चाहता था, और इसलिए उसे आधुनिक अर्थव्यवस्था और औद्योगिक विकास को अपनाना था। १८६८ के पहले ही मुद्रा-आधारित अर्थव्यवस्था का आगमन हो चुका था, और जापानी पूंजीपतिवर्ग की उत्पत्ति हो गई थी। यह वर्ग अब राज पर अधिकार चाहता था पर विदेशी प्रतिक्रिया और देशी सामन्तवाद के विरोध के कारण यह सम्भव नहीं था। नया शासन पूंजीवाद का पोषक बना। देश में औद्योगिक उन्नति के लिए सरकार की ओर से अनुकरणीय प्रयत्न हुये। सरकार ने प्रयोग के रूप मे कई

औद्योगिक विकास

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फैक्टरियां खोलीं जिनमें सूती और उनी कपड़े, सिमेन्ट, सीसा कागज और शराब बनाने के कारखाने प्रमुख हैं। जब कोई कम्पनी या पूंजीपति इन उद्योगों को चलाने के लिए तैयार होते थे तब उन्हें हर प्रकार की सहायता दी जाती थी। उद्योगों के विकास के लिए मूलधन की आवश्यकता होती है। जापान मे इसलिये बैंकों की स्थापना हुई। जापान राष्ट्रीय बैंक १८७२ में स्थापित हुआ। १८८२ मे, 'जापान-का बैंक' की स्थापना हुई। निजी बैंक भी खुले। डाकखानों में भी बचत के बैंक (Savings Bank)खुले (१८७५)। इस प्रकार जापान में पूंजीपतिवर्ग को प्रोत्साहन मिला, और जापान की औद्योगिक उन्नति हुई। सभी प्रकार की चीजें जापान मे बनने लगीं और अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में जापान एक प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी था। चीन के विस्तृत बाजार पर इसकी नजर थी। कृषि में भी सुधार हुये। आधुनिक ढंग से कृषि की जाने लगी। खाद का व्यवहार खूब होने लगा। राज के आदर्श फार्म थे जिनका अनुकरण साधारण कृषक करने लगे। जापान अन्न, रेशम फल, चीनी, लकड़ी, कौफी पर्याप्त मात्रा में बाहर भेजने लगा।

जापान की सैनिक व्यवस्था में भी सुधार हुआ। पश्चिम देशों की सैनिक श्रेष्ठता के कारण ही जापान अपमानित हुआ था। अब यह निश्चय किया गया कि जापान की सेना योरप के महान् राष्ट्रों की सेना के नमूने पर नवसंगठित हो। जर्मनी की सैन्यव्यवस्था का अनुकरण किया गया। आधुनिक यन्त्रों और शस्त्रों से जापानी सेना को अवगत कराया गया, और उसकी सैनिक शिक्षा पश्चिमी ढंग से होने लगी। सामन्तवाद के अन्त के बाद अब सभी वर्गों के नागरिक सेना में भर्ती हो सकते थे। सेना का रूप राष्ट्रीय हो गया, और उसकी सम्भावनाएं बढ़ गईं। अनिर्वाय-भर्ती (Universal military Conscription) का कानून भी बन गया। जापान की स्थल, वायु और जल सेना का खूब विकास हुआ और सैनिक योग्यता में जापान अन्य उन्नत राष्ट्रों से कम नहीं था, यह युद्धों से प्रत्यक्ष हो गया। आन्तरिक और अन्तर्राष्ट्रीय उपद्रवों के बावजूद जापान में सबल और

सेना में सुधार

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केन्द्रीय शासन बना रहे इसलिए सबल राष्ट्रीय सेना अनिवार्य थी। पर इसका परिणाम यह हुआ कि सेना के उच्च पदाधिकारियों का राज और राजनीति पर बड़ा प्रभाव रहा। बजट का अत्याधिक भाग सेना पर खर्च किया जाने लगा, और सेनाध्यक्षों की सहायता प्राप्त कर ही कोई राजनैतिक दल जापान में शासन कर सकता था। युगमाता ने १८८६-१६२२ तक अपना प्रभाव इसी साधन पर बनाये रक्खा।

न्यायशासन में भी सुधार किये गये। विदेशी राष्ट्रों ने अपने लिए इस क्षेत्र में विशेषाधिकार प्राप्त कर लिया था कि उनके नागरिकों पर जापानी कानून नही बरती जाय। जागृत जापान इस अपमानजनक चीज का अन्त करना चाहता था इसलिए न्यायशासन को पश्चिमी न्याय व्यवस्था के आधार पर संगठित किया गया।

न्यायशासन

अब जापान ने विदेशी राष्ट्रों से अपने २ विशेषाधिकारों का अन्त करने की मांग की, क्योंकि ये विशेषाधिकार जिसके अनुसार जापान की भूमि पर ही जापानी कानून और न्यायालय नहीं वरन् विदेशी राष्ट्रों के कानून प्रचलित थे, जापान की जागृत राष्ट्रीयता और आधुनिकता के अपमान थे। जापान ने इसलिए सन्धियों पर पुनः विचार करने का प्रस्ताव रक्खा। लन्दन में कान्फ्रेन्स बुलाई गई पर यह विफल रही। अब जापान ने कूटनीति का सहारा लिया। कूटनीति में भी जापान ने पश्चिमी राष्ट्रों का अनुसरण किया, और विदेशी विशेषकर अमरिकी सलाहकारों की मदद से जापान का वैदेशिक-विभाग कुशल कूटनीतिज्ञों से खाली नहीं था। जब यह स्पष्ट हो गया कि सामूहिक रूप से इस प्रश्न का एक बार निबटारा नहीं हो सकता था, तब जापान ने प्रत्येक सम्बन्धित राज्यों से अलग २ सन्धि करने का निश्चय किया। जापान का एक विशिष्ट प्रतिनिधि-मंडल शुभ-संदेश लेकर अमेरिका, फ्रांस, इंगलैंड जर्मनी और हौलैन्ड गया। जापान आधुनिक राष्ट्रमंडल का एक सदस्य बनने का प्रयास कर रहा था। मेक्सिको ने अपने विशेषाधिकारों का अन्त कर दिया। इसके

विदेशी विशेषाधिकारों का अन्त

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाद जापानी कूटनीति के प्रचार से और जापान की उत्तरोत्तर सैनिक और औद्योगिक उन्नति के कारण अन्य राष्ट्रों ने भी पहले की सन्धियों में हेरफेर करना मान लिया, और १८९० तक विदेशी विशेषाधिकारों का अन्त हो गया और जापानी कानून और न्यायव्यवस्था पूरे जापान में विदेशियों पर भी लागू हुये।

अतः अब जापान पूर्ण रूप से स्वतन्त्र था। औद्योगिक विकास और पश्चिमी शिक्षा और विज्ञान की प्रगति के आधार पर जापान एक सबल आधुनिक राष्ट्र बन गया था। पश्चिमी संस्कृति और यन्त्रकला अपनाकर जापान ने दिखा दिया कि आधुनिकता या भौतिक विकास पश्चिम की बपौती नहीं है, और एशिया के एक छोर में स्थित जापान भी इस क्षेत्र में उनकी बराबरी करने की क्षमता रखता है। अतः एशिया के जागरण में जापान के उत्कर्ष का बड़ा महत्व है।

जापान की साम्राज्य-वादी नीति

पर जापान ने पश्चिमी राष्ट्रों की देखादेखी साम्राज्यवाद भी अपनाया। हम पिछले अध्यायों में देख चुके हैं कि सफल राष्ट्रीयता का एक परिणाम हुआ है साम्राज्यवाद का प्रसार। १९वीं सदी में योरप में ऐसी हवा चली थी कि प्रत्येक राष्ट्रराज्य अपने साम्राज्य के विस्तार में ही राष्ट्रीयता की सफलता और सम्मान मानता था। पूञ्जीपतिवर्ग ने राज्य पर अपना अधिकार प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से स्थापित कर लिया था। जापान में नवजागृत राष्ट्रीयता से और पश्चिमी संस्कृति और आदर्शों के अपनाने से साम्राज्यवाद की भावना को प्रोत्साहन मिला। आधुनिक जापान पश्चिमी राष्ट्रों से इस क्षेत्र में भी पीछे नहीं रहना चाहता था। औद्योगिक विकास के साथ-साथ पूञ्जीपति वर्ग का विकास हुआ, और बाजार और कच्चे माल की जरूरत बढ़ने लगी। राज्य ने इस मांग को पूरा करने का बीड़ा उठाया। इसका परिणाम यह हुआ कि जापान साम्राज्यवाद के पथ पर चल पड़ा, और जो एशिया का पथ प्रदर्शक बनता और अन्य एशियाटिक देशों की मुक्ति का सन्देश देता अब अपनी साम्राज्यवादी नीति के कारण एशिया का

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिशाप बन गया ।

१८७४ में फोरमोसा में फौज भेजी गई, और १८७६ तक फोरमोसा का शासन-प्रबन्ध जापान के अधीन हो गया । चीन जो फोरमोसा का अधिपति था मुंह ताकता रह गया । जापान का प्रभुत्व वस्तुतः (defacto sovereignty) स्थापित हो गया। १८७५ में ओग-

फोरमोसा

सवारा प्रायद्वीप समूह जापान के अधीन मान लिये गये । अमेरिका और ग्रेटब्रिटेन ने अपना-अपना दावा छोड़ दिया । जापान में मेजी-युग के आगमन के बाद कोरिया को नये शासन के प्रति मैत्री का भाव रखने को कहा गया । पर कोरिया डरा कि कहीं यह कोरिया को जापान के अधीन बनाने की चाल न हो । कोरिया और जापान में वैमनष्य बढ़ गया । १८७५ में जापान ने कोरिया के विरुद्ध बल का प्रदर्शन किया । अन्त में फरवरी १८७६ में सन्धि हुई । कोरिया

कोरिया

को जापान ने पूर्ण स्वतन्त्र राज्य माना, दोनों देशों में राजदूतावास (consulate) खुले, और कोरिया ने १८८० तक अपने बन्दरगाह फुसान, जिन्सेन, गेन्साब व्यापार के लिए खोल दिया । जापान से व्यापारिक संधि की गई । जापान का व्यापार-हित सधा पर कोरिया में जापान के विरुद्ध एक दल ने नागरिकों को जापान के विरुद्ध उभाड़ा और जापानी दूतावास पर हमला हुआ । अन्त में कोरिया की सरकार ने हर्जाना देना मञ्जूर किया और जापान को अपने दूतावास की रक्षा के लिए सेना रखने का अधिकार मिला (१८८२ अक्टूबर ३०) । कोरिया में चीन के समर्थकों एक दल था, और दूसरा जापान के समर्थकों का, और इनमें कटुता बढ़ती गई । कोरिया में जापान की सेना रहे, चीन इसे कोरिया की स्वतन्त्रता पर खतरा समझता था, और कोरिया को जापान के प्रभाव में बिल्कुल चला जाना अपने लिए अपमान-जनक और खतरनाक समझता था । जब १८८४ में फिर उपद्रव शुरू हुये, चीन ने भी सेना भेजने का निश्चय किया । जापान भी शान्ति कायम रखने के लिए सैनिक कारवाई करने पर तत्पर था । चीन और जापान में

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तनातनी बढ़ी। अन्त में टिन्टसीन के समझौता (Tientsin or Li-Ito Convention) के अनुसार चीन और जापान दोनों ने कोरिया की स्वतन्त्रता मान ली, चीन और जापान की सेना वापस बुला ली जायगी और कोरिया-सेना की शिक्षा के लिए न जापानी और न चीनी शिक्षक नियुक्त किये जायंगे।

इस सन्धि का फायदा रूस ने उठाना चाहा, और कोरिया की सरकार ने अब रूसी सहायता से शासन और सेना का पुनर्सङ्गठन करने की नीति अपनाई। जापान ने चीन को व्यापार के लिए अपने बन्दरगाहों को खोलने के लिए बाध्य किया था। जबकि पश्चिमी राष्ट्रों को चीन ने व्यापार के लिए सुविधा दे रखी थी, और उन्हे विशेषाधिकार दिया था, तब जापान की सैनिक शक्ति के मुकाबिले में चीन जापान की मांग को भी नहीं टाल सका (१८७१), पर इस सन्धि में सबसे अधिक सुविधाप्राप्त राष्ट्र वाली धारा नहीं थी। जापान का पश्चिमी राष्ट्रों के मुकाबिले में लघुतर स्थान था। १८७६ में चीन और जापान में दूतों की अदला-बदली हुई। चीन ने जापान को अपने बराबरी का दर्जा दिया। यह कम महत्वपूर्ण घटना नहीं थी। पर कोरिया के प्रश्न पर चीन और जापान का झगड़ा शुरू हो गया। टिन्टसीन के समझौते के बाद जापान कोरिया में आक्रमकनीति नहीं अपना रहा था। चीन का प्रभाव कोरिया की सरकार पर बढ़ रहा था। कोरिया में एक दल विदेशी, विशेष कर जापानी, प्रभाव का विरोधी था। वे जापानियों को पथभ्रष्ट समझते थे जिन्होंने अपनी आत्मा पश्चिम को बेच दी थी। अतः १८९४ में इन्होंने विद्रोह किया, और कोरिया की सरकार ने चीन से सहायता मांगी। जापान ने इस विद्रोह का गम्भीर अर्थ लगाया, और ऐसा न कि चीन का कोरिया पर एकाधिपत्य हो जाय, जापानी सेना भेजने का निश्चय किया। चीन ने जापान के साथ मिलकर कोरिया में हस्तक्षेप करना नामञ्जूर किया और यह कहा कि स्वतन्त्र कोरिया में जापान को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। पर जापान ने

चीन-जापान युद्ध १८९५

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोरिया से सेना वापस बुलाना नामञ्जूर किया। चीन-जापान युद्ध शुरू हो गया, और चीन की सेना बुरी तरह पराजित हुई। चीन ने सन्धि की याचना की। शिमोनेस्की की संधि (अप्रिल १७) के अनुसार चीन ने कोरिया की पूर्ण स्वतन्त्रता मान ली, और जापान को एक बड़ी रकम हर्जाने में दिया, चार और नगरों को जापानी व्यापार के लिए खोल दिया, और लिऊतांग पेनिन्सुला जापान को दे दिया। इस युद्ध के परिणाम से सारी दुनियां स्तम्भित रह गई। चीन की कमजोरी स्पष्ट-तया सिद्ध हो गयी, और विदेशी राष्ट्र चीन से अधिक सुविधा की मांग करने लगे। जापान की सैन्यशक्ति के प्रति योरपीय राष्ट्रों में आदर उत्पन्न हुआ, और सुदूरपूर्व की राजनीति में जापान की उपेक्षा करना नामुमकिन हो गया। इस युद्ध के बाद जापान में आत्मविश्वास दृढ़ हो गया। जापानी शेर ने लहू चाटा था, और अब उसका चस्का उसे प्रेरित करता रहा। जापान की साम्राज्यवादी तृष्णा तेज हो गई। सेना पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा, क्योंकि सेना ही साम्राज्य-प्रसार की नीति का यन्त्र था। जापान के औद्योगिक विकास में भी प्रगति हुई।

जापान की इस विजय से कुछ साम्राज्यवादी योरोपीय राष्ट्रों में भय का संचार हुआ। इन्हें अब उन्नत और सबल जापान की प्रति-द्वन्द्विता का डर था। वे जापान को इस विजय के लाभ से वंचित रखना चाहते थे। रूस सुदूरपूर्व की ओर अपना साम्राज्य बढ़ा रहा था। जापान के बढ़ते प्रभाव से वह भयभीत था। फ्रांस, रूस और जर्मनी ने जापान को लिऊतांग प्रदेश चीन को लौटा देने का प्रस्ताव भेजा। रूस सैनिक कारवाई के लिए भी तैयार था। अन्त में जापान को बहुत दुख के साथ इस त्रयराष्ट्रीय हस्तक्षेप के सामने झुकना पड़ा। यह जापान का राष्ट्रीय अपमान था। जापान इसे कभी भूला नहीं। जापान को यह स्पष्ट हो गया कि योरपीय राजनीति से अलग होकर वह अपनी निश्चित राह पर नहीं चल सकता था। रूस चीन को अपने प्रभाव में

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखना चाहता था, और इसलिए जापान को प्रश्रय नहीं देना चाहता था। मध्यएशिया और सुदूरपूर्व के प्रश्न पर इंगलैंड और रूस में घोर मतभेद था। इंगलैंड रूस के विरुद्ध मित्र की तलाश में था। जापान रूस से अत्याधिक रंज था ही। अतः १६०२ में इंगलैंड और जापान में सन्धि हो गई। रूस कोरिया की सरकार का सलाहकार बना था। जापान की सुरक्षा की योजना में कोरिया का बड़ा प्रमुख महत्व है। इसलिए जापान कोरिया को अमित्र के हाथ में नहीं जाने दे सकता था। चीन की कमजोरी और बौक्सर-विद्रोह का फायदा उटाकर रूस ने मन्चूरिया पर कब्जा कर लिया था। जापान, अमेरिका और ग्रेट-बृटेन के आश्वासन के बल पर चीन ने रूस का प्रस्ताव नामञ्जूर कर दिया। अन्त में जब इंगलैंड और जापान में संधि हुई तब रूस ने १८ महीने के अन्दर मन्चूरिया से निकल जाने का वायदा किया (अप्रिल १६०२), और फ्रांस और रूस की संधि सुदूरपूर्व में भी लागू होगी यह घोषणा की गई। रूस ने मन्चूरिया से निकलने का वादा को नहीं पूरा किया। जापान और रूस में १६०४ में युद्ध शुरू हो गया। कोरिया और मन्चूरिया रूस के साम्राज्य के अंग न बन जाय, जापान ने इसी उद्देश्य से लोहा लेने की ठानी। इस युद्ध में जापान विजयी रहा। पोर्टस्मथ की सन्धि (१६०६) के अनुसार रूस ने कोरिया में जापान के राजनैतिक, सैनिक और आर्थिक हितों कीप्रधानता मान ली। जापान को रूस ने लियुतांग प्रदेश पर अपने अधिकारों को दे दिया, जापान और रूस दोनों ने मन्चूरिया से अपनी-अपनी सेना वापस बुलाना मञ्जूर कर लिया।

रूस-जापान युद्ध १९०४ --५

रूस-जापान युद्ध में जापान की विजय का बड़ा महत्व है। रूस की जारशाही के पैर और भी लड़खड़ा गये। रूस की कमजोरी स्पष्ट हो गई। जापान का उत्कर्ष सिद्ध हो गया। पश्चिमी सभ्यता और राजनीति और सैनिक कौशल अपनाकर नये जापान ने पश्चिम के एक महान् राष्ट्र को पराजित किया था। सारे एशिया में जापान की विजय से

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्ध के परिणाम

उत्साह छा गया। जापान की साम्राज्यवादी तृष्णा और भी प्रज्वलित हुई। उसकी महत्वाकांक्षा बढ़ गई। चीन के नवयुवक जापान की ओर आकर्षित हुये। जापानके औद्योगिक विकास में बड़ी प्रगति हुई। सैन्यवाद (Militarism) का प्रभाव राज पर बहुत बढ़ गया। पहले तो पश्चिमी राष्ट्रों ने जापान को विजय के लिए बधाईयां दी थी, पर तुरन्त ही उन्हें यह भय हो गया कि जापान उनका एक बड़ा प्रतिद्वन्द्वी उठ खड़ा हुआ है। प्रशान्त-क्षेत्र में (Pacificworld) सन्तुलन ही उलट गया। जापान सुदूरपूर्व में सबसे अधिक शक्तिशाली रह गया।

जापान ने एशिया महादेश पर अपना पञ्जा फैलाना जारी रक्खा। चीन को मञ्चूरिया के कई नगरों को भी जापानी व्यापार के लिए खोलने पड़े।

चीन में प्रसार

दक्षिण मन्चूरिया रेल-कम्पनी में जापान की सरकार के काफी शेयर थे। जापान मन्चूरिया में अपना व्यापार फैलाना चाहता था। इससे इसके मित्र इंगलैंड और अमेरिका को आशङ्का होने लगी। अमेरिका को फिलीपीन पर बढ़ते प्रभाव का विरोध न करने का आश्वासन देकर जापान अमेरिका की राय से कोरिया को पूर्णतया जापानी संरक्षण में लाने की योजना कार्यान्वित करने में सफल हुआ (दिसम्बर १६०५)। फ्रांस, रूस और इंगलैंड ने जापान से मित्रता की संधि की। अमेरिका के प्रेसिडेन्ट रूजवेल्ट ने भी प्रशान्त-जगत् में स्थिरता और चीन में खुले-दरवाजा (मुक्त व्यापार) की नीति की रक्षा के लिये जापान से सहयोग करने को घोषणा की। जापान मन्चूरिया में रेल लाइनें बिछा रहा था। १६१० की सन्धि के द्वारा रूस और जापान ने मन्चूरिया में अपने-अपने प्रभावक्षेत्रों की सीमा निर्धारित की। १६१० में कोरिया जापान-साम्राज्य में मिला लिया गया। चीन की क्रान्ति का फायदा उठा कर जापान ने चीन की सरकार को रेल के विस्तार के लिए कर्ज लेने में जापानी बौन्डो को प्रधानता देने को वाध्य किया (१६१३)।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योरप में युद्ध के बादल मंडरा रहे थे। प्रथम विश्वयुद्ध अगस्त १६१४ में शुरू हो गया। इंगलैंड, फ्रांस और रूस जापान को जर्मनी के विरुद्ध युद्ध में कूदने का आवाहन करने लगे। अगस्त १६१५ में जापान युद्ध में कूद पड़ा। जापानी जलसेना ने जर्मनी के अधीन प्रायद्वीपों पर कब्जा कर लिया। युद्ध के अन्त होने पर जापान भी शांति के प्रस्तावों पर विचार करने के लिये पांचवां सदस्य बनकर इंगलैंड, अमेरिका, फ्रांस और इटैली के साथ विचार-विमर्श कर सका। जापान के लिये यह अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता थी। वर्साई की शांतिसभा में चीन और जापान के मतभेद स्पष्ट हो गये। वर्साई की संधि के अनुसार विश्वत् रेखा के उत्तर स्थित सभी जर्मन प्रायद्वीप जापान को मिल गये। शान्टुन्ग प्रदेश पर जापान को वे सब विशेषाधिकार प्राप्त हुये जो जर्मनी को प्राप्त थे, और जापान ने शान्टुन्ग प्रदेश को चीन को वापस करने का वायदा किया, पर राष्ट्रों ने उसपर जापान के आर्थिक हितों की प्रधानता मान ली। जापान राष्ट्रसंघ का एक सदस्य बन गया और एक महान् राष्ट्र होने के कारण परिषद् का स्थायी सदस्य बन गया। जापान अब संसार में एक प्रमुख शक्तिशाली राज्य था।

प्रथम विश्वयुद्ध

अमेरिका जापान के साम्राज्य के विस्तार से घबड़ा गया था, विशेषकर जब जापान अभी भी सेना की शक्ति बढ़ाने में ही लगा था। अब इंगलैंड अमेरिका, जापान, फ्रांस सभी नाविक-सेना की वृद्धि की होड़ में लग गये। वाशिंगटन में इस समस्या को सुलझाने के लिये एक कान्फ्रेंस बुलाई गई। फ्रांस, अमेरिका, इंगलैंड और जापान ने चतुर्दल समझौता किया जिसके अनुसार प्रशान्त-जगत् में शान्ति रखने में सहयोग करने की प्रतिज्ञा की गई। जलसेना को सीमित रखने के लिये पाँच राष्ट्रों की संधि हुई जिसके अनुसार अमेरिका, इंगलैंड, जापान, फ्रांस और इटैली की जलसेना का अनुपात ५ : ५ : ३ : १.७ : १.७ तय हुआ, और सभी राष्ट्रों को अपने जहाजों की संख्या कम करने को कहा गया। फरवरी १६२२ में नौ-राष्ट्रों की संधि के द्वारा

वाशिंगटन-कान्फ्रेंस

CC-0 In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नौ राष्ट्रों ने चीन की स्वतन्त्रता और पूर्णता का आदर करने का वचन दिया, और चीन को अपनी सरकार को दृढ़ करने में सहयोग का आश्वासन दिया। पर चीन में सभी राष्ट्रों को समान व्यापारिक अधिकार और सुविधा रहे ऐसा प्रयत्न करने का भी निश्चय किया गया। जापान ने शान्तुङ्ग प्रदेश चीन को लौटा दिया यद्यपि जापान का राजनैतिक और आर्थिक प्रभाव जस का तस रहा। जापान ने साइबिरिया और उत्तर साखालिन प्रायद्वीप से भी सेना वापस बुलाना मन्जूर कर लिया।

अतः वाशिंगटन कान्फ्रेन्स बहुत हद तक सफल रही। नाविक-सेना की होड़ रोकी गई, जापान नाविक-सेना में सिर्फ इंगलैंड और अमेरिका से ही कम था। यह स्पष्ट था कि अमेरिका या इंगलैंड जापान से युद्ध की सम्भावना निकट नहीं समझते थे। पर जापान में कुछ लोगों का विचार था कि वाशिंगटन के कान्फ्रेन्स में जापान के पर काटने की साजिश की गई, और इंगलैंड और अमेरिका की बराबरी का पद नहीं प्राप्त कर जापान अपमानित हुआ। नौ-राष्ट्र सन्धि के द्वारा जापान का चीन की ओर प्रसार पर रोक लगाई गई।

नाविक-सेना पर रोक

पर जापान को चीन में हस्तक्षेप करने का अवसर शीघ्र ही मिल गया। चीन में सन्-यात-सेन के नेतृत्व में क्रान्ति हुई थी और जापान ने पहले क्रान्ति का स्वागत किया था। पर जब राष्ट्रीय कुमिंटांग पार्टी चीन में अपना प्रभुत्व स्थापित करने में सफल हो रही थी, चीन में साम्राज्य-विरोधी भावनाएं उग्रतर हुई और विदेशी राष्ट्रों से असमान संधियों के विरुद्ध प्रदर्शन होने लगे, विदेशी माल का बहिष्कार हुआ और दूतावासों पर हमले हुये। जापान इसे नहीं सह सकता था। जापान में जेनरल तनाका (Tanaka) की सरकार (२० अप्रैल १९२७) की नीति चीन विशेषकर मन्चूरिया और, मंगोलिया प्रान्त हड़पने की थी। चीन और मन्चूरिया के सीमा पर मुकदन के समीप बम फटा, और जापानी सेना जापानी नागरिकों

तनाका सरकार की आक्रमण नीति

CC-0. Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की रक्षा का बहाना लेकर मन्चूरिया में घुस पड़ी (सितम्बर १९३१)। चीन-जापान युद्ध शुरू हो गया। राष्ट्र संघ ने जापान को आक्रमणकारी घोषित किया। पर असल में प्रधान राष्ट्र जापान के प्रति क्या नीति बरती जाय इसके विषय में एकमत नहीं थे। जापान को शत्रु बनाने के लिये कोई तैयार नहीं था। अतः जापान ने दक्षिण मन्चूरिया पर कब्जा कर लिया और मन्चू को नाम पिट्ठू सरकार का संगठन किया।

चीन-जापान युद्ध

जापान की उग्र साम्राज्यवादी नीति का आधार था पूंजीवाद का अत्याधिक विकास। प्रथम विश्वयुद्ध के समय में योरप बुरी तरह फंसा था, जापान को व्यापार बढ़ाने का मौका मिला। विदेशी माल की कमी के कारण जापान में औद्योगिक प्रगति तीव्र हुई, और जापान के वैदिशक व्यापार का पहले पहल प्रसार हुआ। कृषि पर भी ध्यान दिया गया क्योंकि युद्ध काल में खाद्यान्न में स्वालम्बन आवश्यक था। जापान के व्यापारी-जहाज संसार के समुद्री-व्यापार का एक बड़ा भाग ढोने लगे। जापान में बाहर से सोना आने लगा। जापान समृद्ध हो गया। पर चीजों की कीमत बढ़ गई। गरीब गरीब होते गये। पूंजीपति मालामाल हो गये। गरीबों का, उदाहरणस्वरूप मछुओं का, विद्रोह (Riot) दबाया गया। पर जब युद्ध खत्म हुआ तब स्थिति बिगड़ी। मंदी आ गई। पूंजीपतियों का मुनाफा कम होने लगा। मजदूरों की छटनी होने लगी। मजदूरों में संगठन की भावना बढ़ी, और आन्दोलन होने लगे। समाजवादी विचारों का प्रवेश हुआ। जापान को फैक्टरी कानून पास करना पड़ा, मजदूरों की दशा में सुधार करना पड़ा और मजदूर-संगठन को मान्यता देनी पड़ी। किसानों में भी असन्तोष था। पूंजीपति तैयार माल और कच्चे माल के लिये विदेशी प्रतिद्वन्द्विता से मुक्त सुरक्षित बाजार चाहते थे। अतः पूंजीवाद के हित के लिये और देश की जनता का ध्यान देश की गरीबी और प्रजातन्त्र के अभाव से उत्पन्न असन्तोष से हटा कर साम्राज्य विस्तार और राष्ट्रीय गौरव की वृद्धि की ओर आकृष्ट करने

जापानी पूंजीवाद

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिये चीन-विजय की योजना कार्यान्वित की गई। जैसे २ चीन में जापान उलझता गया, देश में मजदूर-आंदोलन और वाम-पंथी राजनैतिक दलों का प्रभाव बढ़ते गया। कई प्रकार की समाजवादी पार्टियां और साम्यवादी पार्टी का संगठन किया गया। समाजवाद और लोकतन्त्र देश के प्रधान आदर्श बन गये। विद्यार्थियों ने प्रगतिशील आंदोलनों का समर्थन किया। पर अभाग्यवश प्रगतिशील पार्टियां मिल कर काम न कर सकीं। सरकार ने दमन की नीति अपनाई। प्रेस और भाषण पर प्रतिबंध लगे। शोषक वर्ग के प्रोत्साहन से दकियानुसी दक्षिणपंथी पार्टियां मैदान में आई, और प्रगतिशील आंदोलन का विरोध करने लगीं।

सैनिक वर्ग का प्रभाव

युद्ध के विस्तार के साथ २ सैनिक वर्ग का प्रभाव राजशासन पर बढ़ गया। जापान में उग्र राष्ट्रीयता साधारण जनता को पथविमूढ़ कर रही थी। जापान एशिया नेता और मुक्तिदाता है ऐसे विचारों का जनता में प्रचार किया गया। जर्मनी के नाजीवाद और इटैली के फासिस्टवाद ही की तरह जापान में भी उग्र राष्ट्रीय दल की स्थापना हुई, जिसका आधार था सेना के बल पर जापान के साम्राज्य का अधिकाधिक प्रसार। सेना में इस विचार का जोर बढ़ गया, और इसलिये सेना के कुछ उत्तरदायी नेता राज पर अधिकार स्थापित करने का षड-यन्त्र करने लगे। उच्च अफसरों की हत्या हुई। स्थिति-स्थापकों और दकियानुसियों के दक्षिण-पंथी दलों के प्रभाव बढ़ रहा था। कुछ विद्वानों ने इन प्रगतिशील विचारों का समर्थन किया। इस परिस्थिति में सेना के अधिकारियों की सहायता से ही शासन चल सकता था। सेना-ध्यक्षों के इशारे पर ही जापानी मन्त्रीमंडल बनता और बिगड़ता रहा। जापान की राजनैतिक पार्टियों को वस्तुतः खत्म कर दिया गया, और जापान सैनिक अधिनायकत्व की ओर बढ़ रहा था। जर्मनी और इटैली की तरह जापान भी Totalitarian राज बन रहा था। प्रधानमन्त्री कोनो (Konoe) के नेतृत्व में साम्यवाद और प्रगतिशील विचारों का दमन हुआ, और युद्ध के सफल संचालन की नीति का समर्थन किया गया। जापान

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वी एशिया का नेतृत्व करे ऐसा निश्चय किया गया (१९४०)।

इस स्थिति में जापान साम्राज्यवाद के पथ पर द्रुत गति से चल पड़ा। दक्षिण मन्चूरिया पर जापान का अधिकार हो चुका था। (१९३२) यह सन्धियों केविरुद्ध था। पर इससे क्या। जापान राष्ट्रसंघ से निकल आया (१९३३)। चीन की अपील पर राष्ट्रसंघ ने कोई ठोस कदम नहीं उठाया। जापान की तृष्णा और भी बढ़ी। वाशिंगटन और लन्दन की सन्धियों की अवधि समाप्त होने पर जापान ने जर्मनी के साथ साम्यवाद-विरोधी समझौता (Anti-Comintern Pact) किया (१९३६)। जापान ने इससे और भी उत्साहित होकर चीन की प्रधानाभूमि पर ही आक्रमण कर दिया (१९३७)। नान्किंग जापान के हाथ में आ गया। पर चीन ने घुटने नहीं टेका। कुयमिंटांग और साम्यवादियों ने जापान के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा कायम किया। जापान चीन से निपट भी नहीं सका था कि द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू हो गया (१९३९)। जापान ने रूस से अनाक्रमक सन्धि कर ली थी (१९४०)। सितम्बर १९४० में जर्मनी, इटैली और जापान की दशसाला सन्धि हुई। जापान अपने नेतृत्व में बृहत पूर्वएशिया की स्थापना करने का स्वप्न पूरा करने में लग गया। और अमेरिका के पर्ल हार्बर पर अकस्मात् हमला कर (दिसम्बर, १९४१) द्वितीय विश्वयुद्ध में धुरी राष्ट्रों के पक्ष में प्रत्यक्ष रूप से कूद पड़ा।

चीन में जापान की विजय

द्वितीय विश्वयुद्ध में अमेरिका को खींचने में जापान की आक्रमक नीति का बड़ा हाथ था, यद्यपि जापान की व्यापारिक नीति और चीनी-नीति से इंगलैंड और अमेरिका बेतरह परेशान थे ही। उनके हितों का नुकसान हो रहा था। जापान का नारा 'एशिया एशियावालों का' आंग्ल-अमेरिकी साम्राज्यवाद को खुली चुनौती था। जापानी प्रतिद्वन्द्विता से इंगलैंड के सूती मिलों का बुरा हाल था। अतः युद्ध कभी न कभी छिड़ता ही। पर जापान का पर्ल-हार्बर पर नाटकीय आक्रमण से युद्ध का रूप एकाएक बदल गया। जर्मनी योरप में

द्वितीय विश्वयुद्ध

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विजय पर विजय प्राप्त कर रहा था। जापान अब इस मौके से क्यों चुकता! जापान को शुरू में अद्भुत सफलता मिली। इंगलैण्ड और अमेरिका और फ्रांस के विरुद्ध राष्ट्रीय भावना को उभाड़ कर जापान ने बहुत शीघ्र ही पूरे पूर्वी एशिया को जीत लिया। बर्मा, मलाया, इन्डो-चीन, इन्डोनेशिया, फिलीपीन सब जापान के अधीन आ गये। पूर्व एशिया में बृटिश और अमेरिकी साम्राज्यवाद का कुछ समय के लिये अन्त हो गया।

पर जापान की विजय क्षणिक थी। अमेरिका के असीम साधनों के विरुद्ध जापान के 'मिट्टी के पैर' टिक न सके। उधर जर्मनी भी रूस से उलझ कर बुरी हालत में था। जापान का भारत पर आक्रमण करने का हौसला पूरा नहीं हुआ। इम्फाल और कोहिमा की लड़ाई में जापानी और आजाद हिंद सेना परास्त हुई। भारत की प्रभावशाली राष्ट्रीय कांग्रेस ने महात्मागांधी और श्री जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में साम्राज्यवादी जापान से बृटिश साम्राज्यवाद के विरुद्धस हयोग करना नामंजूर किया। जापान के बृहत्-एशिया की नीति में एशिया का हित नहीं वरन् जापान के शासक वर्ग का स्वार्थ था, यह अधिकृत देशों से छिपा नहीं रह सका। बृटेन और अमेरिका के शासकों ने विजित देशों के राष्ट्रीय आन्दोलनों को स्वतन्त्रता का आश्वासन दिया। फिलीपीन में अमेरिका की सेना बढ़ने लगी। अन्त में जापान थक सा गया। चीन उसके लिये दलदल सिद्ध हुआ। रूस ने भी जापान पर युद्ध घोषित कर दिया। नागाशाकी और हिरोशिमा पर प्रथम अनुबम गिराये गये। जापान ने आत्मसमर्पण कर दिया (१४ अगस्त १९४५)।

जापान की पराजय (१९४५)

जापान मित्र राष्ट्रों के सैनिक अधिकार में रखा गया। जेनरल मैकार्थर प्रधान अफसर थे। वास्तव में जापान अमेरिका के प्रभुत्व में आ गया था। जापान को प्रजातान्त्रिक विधान दिया गया। सोवियत रूस और अमेरिका में मतभेद उठ खड़ा हुआ, और सोवियत ने जापान से अपनी सेना वापस बुली

जापान का पुर्ननिर्माण

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ली, और अन्तर्राष्ट्रीय कमीशन का बहिष्कार किया। अमेरिका अब जापान के प्रति अपनी नीति पूर्ण रूप से लागू कर सकता था। जापान की सैनिक योग्यता को खत्म करने के बदले अमेरिका के नेतृत्व में जापान का औद्योगिक और सैनिक विकास होने लगा है। जापान में महत्वपूर्ण राजनैतिक और आर्थिक सुधार हुए हैं। नये जापान का पुर्ननिर्माण हो रहा है। साम्यवाद के विरुद्ध लड़ाई में जापान का खास महत्व हैं। अन्त में १९५१ में जापान और अमेरिका की सन्धि हुई और जापान ने अमेरिकी सेना को जापान में रहने की अनुमति दे दी है, और इसके हवाई अड्डे का व्यवहार का भी। जापान में प्रजातान्त्रिक विधान लागू है। साधारण-निर्वाचन में योशिदा के उदारदल का बहुमत हुआ, पर जापान में समाजवादी पार्टी का प्रभाव स्वल्प नहीं हैं। जापान की गृह वैदेशिक नीति क्या होगी इस पर एशिया की आखें लगी हैं।

(ख) चीन

समुद्र, विस्तृत मरुभूमि और पहाड़ों से घिरा चीन बहिर्जगत् से अलग था, और इस भौगोलिक स्थिति का प्रभाव चीन की विदेशी नीति पर पड़ा। चीनी चीन को देवभूमि समझते थे, और उनका सम्राट् देवपुत्र कहा जाता था। चीनियों का यह विश्वास था अन्य देश चीन की बराबरी नहीं कर सकते। इसलिये चीनी विदेशी राज्यों को उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे। पर तब भी चीन बहिर्जगत् से प्राचीन काल में भी एकदम अलग नहीं रह सका था। ईरान, भारतवर्ष और रोमन साम्राज्य से उसका व्यापारिक सम्बन्ध था। भारत और चीन में बौद्ध धर्म के कारण अत्यन्त धार्मिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध रहा है। तब भी यह कहा जा सकता है कि प्रधानतः चीन दुनियां से अलग ही रहा।

भौगोलिक स्थिति

जब पूर्व से नया समुद्रीय-राता खुल गया, योरप के तिजारती कैन्टन आ सके। इंगलैंड, पुर्तगाल, डच, और रूस ने चीन से व्यापार करना शुरू कर दिया था। पर चीनी सरकार ने विदेशियों को कभी सम्मान प्रदान

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं किया, और व्यापार में बड़ी असुविधा थी। अन्त में व्यापार के विस्तार के लिये योरप के साम्राज्यवादी राष्ट्रों ने बरबस अपनी उन्नत शक्ति के द्वारा चीन को अपने बन्दरगाहों को योरप के व्यापारियों के लिये खोलने के लिए बाध्य किया। पश्चिमी राष्ट्रों ने चीन को समानता का व्यवहार करने को बाध्य किया। इंगलैंड को हौंगकौंग भी मिला। चीनी खरबूजे को काटने की यह शुरूआत थी। चीन को व्यापार के लिये अपने बन्दरगाहों को खोलना ही नहीं पड़ा, इन राष्ट्रों को राजनैतिक समता का स्थान ही नहीं देना पड़ा, बल्कि इन राष्ट्रों ने चीन को चीनी भूमि पर स्थित विदेशी वासस्थानों को चीनी कानून से मुक्त करने की सुविधा (Extra-Territorial Rights) भी देने को बाध्य किया। यह चीन की स्वतन्त्रता पर प्रतिबंध था।

विदेशी राष्ट्रों का प्रवेश

जब जापान को पश्चिमी राष्ट्रों ने बन्दूक के बल पर विदेशियों का स्वागत करने को बाध्य किया था, तब जापान में उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया यह हुई कि जापान ने पश्चिमी सभ्यता और यन्त्रविद्या को उत्साह से अपना लिया और पश्चिमी राष्ट्रों से उनके ही क्षेत्र में वह मुकाबिला कर सका। पर चीन में भी विदेशी साम्राज्यवाद की आक्रमक नीति के कारण इनके प्रति घृणा का भाव पैदा हुआ, पर इसकी प्रतिक्रिया यह हुई कि चीन ने विदेशी सभ्यता और विदेशियों को और भी अधिक उपेक्षा से देखना शुरू किया, और इनसे अलग रह कर अपनी संस्कृति को अस्पृश्य बनाये रखने की नीति अपनाई। अतः चीन आधुनिक राष्ट्रों के मुकाबिले में कमजोर ही रहा, और पश्चिमी राष्ट्र जिनमें अमेरिका भी अब शामिल था, चीन का आर्थिक शोषण करते रहे। इन सबों ने और अब आधुनिक जापान ने भी चीन से कई आर्थिक और व्यापारी रियायतें प्राप्त किया।

चीन की प्रतिक्रिया

ऐसी स्थिति में चीनी साम्राज्य की अविछिन्नता या एकता आधुनिक साम्राज्यवादी राष्ट्रों के विरुद्ध टिक नहीं सकती थी। जापान के उत्कर्ष से चीन को गहरा आघात लगा। फारमोसा जापान के प्रभुत्व में चला

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया था। अन्नाम और वर्मा फ्रांस और इंगलैंड के अधीन थे।

अपमानित चीन

कोरिया के प्रश्न पर चीन और जापान का युद्ध हुआ, और १८९५ में चीन बुरी तरह पराजित हुआ। इस पराजय से चीन की कमजोरी स्पष्ट हो गई। साम्राज्यवादी देशों को अब यह डर हुआ कि उनके प्रतिद्वन्द्वी ही कहीं चीन की विस्तृत भूमि हड़प ले, और चीन का आर्थिक शोषण का अत्याधिक फायदा उठावें। इसलिये अब इन राष्ट्रों ने चीनी खरबूजे को तरासने की नीति अपनाई। चीन को आर्थिक सहायता और कर्ज देने के बदले चीनी भूमि और व्यापार पर विशेषाधिकार प्राप्त करने लगे। जापान को फोरमोसा मिला। रूस को युद्ध के समय पोर्टआर्थर और अन्य चीनी बन्दरगाहों से व्यापार करने का अधिकार मिला। फ्रांस को यूनान प्रभृति दक्षिण प्रान्तों में रेल, व्यापार, और खानों में विशेष रियायतें मिलीं। जर्मनी ने किआचौ (Kiaochao) पर अधिकार कर लिया। इंगलैंड को वाइहाइवाई मिला। रूस ने २५ वर्षों के लिए पोर्ट आर्थर का इजारा लिया। फ्रांस को क्वागचौवान मिला। अतः उन्नीसवीं सदी के अन्त तक चीन को विभाजित करने की नीति स्पष्ट हो गई। मुक्त-व्यापार का सिद्धान्त मौखिक ही रह गया। पर इंगलैंड ने अमेरिकी हितों को आश्वासन दिया।

अतः चीन बुरी तरह अपमानित हो रहा था। चीन में सुधार आन्दोलन शुरू हुआ। राजदरबार से ही कुछ सुधारों की आज्ञाएँ निकलीं। आधुनिकता का प्रभाव सोये सिंह को जगा रहा था। पर ये सुधार बहुत मामूली थे। कुछ दूरदर्शी चीनी नेताओं ने जैसे सुन-यात-सेन बिना विदेशी शक्ति के नाश के चीन का कल्याण संभव नहीं समझा और उनके विचार में सुधारों का लक्ष्य विदेशी हस्तक्षेप और आक्रमण का विरोध करना नहीं था। चीन में विदेशियों के प्रति कटु भावना उग्रतर हो गई। इन मामूली सुधारों का भी दकियानुसी और स्थितिस्थापकों ने विरोध किया, और

बौक्सर आन्दोलन

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनसाधारण को पश्चिम संस्कृति से समझौता के विरुद्ध उभाड़ा। सुधारवादी सम्राट् को अप्रगतिशील राजमाता के हाथों में अधिकार सौंपना पड़ा पड़ा। सुधारों का अन्त हुआ, और प्रतिक्रियावादी नीति अपनायी गई। विदेशी वस्तुओं और आदर्शों से उनकी संस्कृति, उनका समाज और नैतिक आदर्श पददलित हो रहे थे। अतः इस विदेशी-विरोधी आंदोलन ने हिंसक रूप लिया, और Boxer Movement शुरू हुआ। मुक्का ही इस आंदोलन के सैनिकों का चिह्न था। विदेशी दूतावासों को लूटा गया और कितने विदेशियों की जान गई (१९००)। यद्यपि यह आंदोलन दबा दिया गया, तब भी इसका महत्व काफी है। अब यह पता चला कि चीन भी प्रत्याक्रमण कर सकता है। राबर्ट हार्ट ने कहा था "यह नयी सदी में आनेवाले परिवर्तन का श्रीगणेष है और सुदूरपूर्व के भविष्य के इतिहास की कुञ्जी है।"

इस उपद्रव को चीनी शासकों ने विदेशी मदद से ही दबाया था। साम्राज्यवादी राष्ट्रों ने इस उपद्रव का फायदा उठाया। मन्चूरिया में उपद्रव बड़े पैमाये पर हुआ था। रूस से इसे दबाया और मन्चूरिया पर अपना सैनिक प्रभुत्व स्थापित कर लिया। चीन का पूर्ण विभाजन ही हो जाता, पर इंगलैंड और जर्मनी ऐसा नहीं चाहते थे, और मुक्त व्यापार की नीति प्रचलित रखना चाहते थे। उन्हें भय था कि कहीं रूस और फ्रांस अपनी स्थिति और भी दृढ़ न कर लें। योरोपीय राष्ट्र चीन के बाहर बेतरह उलझे थे, और इसलए उस समय चीन के विभाजन के लिए तैयार नहीं थे। अमेरिका इसके विरुद्ध था। वह मुक्त-व्यापार की नीति का समर्थक था। चीन ने हर्जाना देना मन्जूर किया, विदेशी दूतवासों की रक्षा का प्रबन्ध किया, उत्तर चीन में विदेशी सेना की टुकड़ी रखना मन्जूर किया, और व्यापारिक सन्धियों में हेर-फेर किया।

साम्राज्यवाद राष्ट्रों का स्वार्थ

जापान और रूस युद्ध की ओर बढ़ रहे थे। इंगलैंड और जापान में १९०२ में सन्धि हो गई। रूस का मन्चूरिया पर अपना प्रभाव

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जापान का उत्कर्ष

स्थापित रखना जापान के लिये बड़ा संकट था। इंगलैंड से मित्रता के कारण जापान को रूस का सामना करने का हौसला बढ़ा। रूस और जापान में १६०४ में युद्ध शुरू हो गया, और रूस १६०५ में हार गया और उसे पोर्ट्समथ की सन्धि (१६०५) करनी पड़ी। जापान को पोर्टआर्थर मिल गया। १६१० में जापान ने कोरिया को बाजाप्ता हड़प लिया। रूस और जापान उत्तर और दक्षिण मन्चूरिया को अपने-२ प्रभावक्षेत्र बना चुके थे।

१९११ की क्रांति और सन्यात् सेन

अतः चीनी शासन असहाय बनकर देश को टुकड़े होते देख रहा था, और विदेशी शासन चीन पर स्थापित हो रहा था। चीन की आर्थिक दशा गिरी थी, और प्राचीन जीर्ण सामाजिक और राज्य-व्यवस्था आधुनिक समस्याओं को समझने और सुलझाने में अशक्य ही नहीं वरन् एक बड़ी रुकावट थी। लोगों ने चीन की इस अभाग्यपूर्ण स्थिति का जवाबदेह मन्चू राजवंश को ठहराया। चीन में क्रान्ति हुई, और सन्यात् सेन चीन के प्रजातन्त्र के राष्ट्रपति चुने गये (दिसम्बर २६, १६११) सन्यात सेन का जन्म १८६३ में कान्टन के समीप एक गांव में हुआ था। बचपन में ही उन्हें पश्चिमी शिक्षा मिली, और अंगरेजी भाषा सीखाई गई थी। उन्होंने चिकित्सा-शास्त्र का अध्ययन किया, और वे मूर्तिपूजा के विरोधी थे। वे ईसाई बन गये। वे चीन को बदलना चाहते थे, और इसके लिए मन्चू शासन का अन्त जरूरी समझते थे। जापान से चीन की हार के बाद सन्यात् सेन ऐसे उत्साही युवकों को बड़ा गुस्सा हुआ और कान्टन की सरकारी आफिसों पर इन्होंने कब्जा कर लिया (१८६५)। पर यह प्रयास असफल रहा। वे देश छोड़ कर भाग गये, और चीन की मुक्ति के लिये आंदोलन करते रहे। मंचु राजवंश का अन्त, विदेशी प्रभाव का अन्त और आधुनिक सिद्धान्तों पर नये और अखण्ड चीन का निर्माण उनके आदर्श थे। १६११ की क्रान्ति ने उनका मार्ग प्रशस्त किया। वे देश वापस आ गये और क्रान्ति का नेतृत्व अपने योग्य हाथों में ले लिया। दरबार

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने सैनिक नेता युआन शी-किह पर भरोसा किया। पर यह बड़ा अवसर-वादी निकला। इसने राष्ट्रीयवादियों को मदद देने का आश्वासन दिया। सन्यात् सेन त्यागी देशभक्त थे। इन्होंने चीन की एकता और प्रजा-तन्त्र के आंदोलन की शीघ्र सफलता के लिये संयुक्त मोर्चा बनाना निश्चय किया। अब मंचु-राजवंश के लिये कोई उपाय न था। १२ फरवरी १६१२ को बालक-सम्राट् ने राजगद्दी छोड़ने की घोषणा की। चीन प्रजातन्त्र घोषित हो गया। युआन-शी-किह राष्ट्रपति बना, सन्यात् सेन ने पूर्व निश्चय के अनुसार इस्तिफा दिया। देश में राष्ट्रीय एकता स्थापित हुई, और चीन पहले-पहल अपने लम्बे इतिहास में प्रजातन्त्र की राह पर चला।

पर राष्ट्रीय एकता टिकी नहीं। युआन शी किह की चीन की प्रधान पार्टी कूयिमिंटांग (Kuomintang) से पटी नहीं। सन् यात्सेन और उनकी राष्ट्रीय जनता पार्टी देश में शुद्ध लोकतन्त्र की स्थापना और विदेशी सत्ता का अन्त चाहती थी। युआन शी महत्वाकांक्षी था और विदेशी राष्ट्रों से उसकी साठ-गांठ थी। कूयिमिंटग के बावजूद उसने ग्रेट बृटेन, फ्रांस, रूस, जर्मनी और जापान से कर्ज के रूप में बड़ी रकमें लीं, और इसके बदले में नमक-कर रेहन कर दिया। यह राष्ट्रीय स्वतन्त्रता पर आघात था, और शासन पर विदेशियों का अधिकार मान लेना था। सन् यात् सेन ने इसके विरुद्ध आवाज उठाई। पर सेना के बल पर विद्रोह को दबा दिया गया। सन-यात्-सेन जापान भाग गये। युआन शीं सम्राट् बनने का स्वप्न देखने लगा। १६१६ में उसकी मृत्यु हुई, और लि-युआन-हुंग (Li-Yuan-Hung) राष्ट्रपति बना। चीन में प्रजातन्त्र तो स्थापित रहा, पर सन्-यात्-सेन के स्वप्न पूरे नहीं हुये। चीन की राष्ट्रीय एकता युआन-शी के कारण खटाई में पड़ गई। चीन का पुनर्निर्माण नहीं हो सका। तिब्बत और बाहरी मंगोलिया चीन से वस्तुतः निकल गये।

युआन शी किह की गद्दारी

इसी बीच प्रथम विश्वयुद्ध शुरू हो गया। चीन ने तटस्थता की

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीति अपनाई। पर जापान इस युद्ध से पूरा फायदा उठाना चाहता था।

प्रथम विश्वयुद्ध

जापान ने चीन में स्थित जर्मन प्रदेश किउचाऊ पर कब्जा कर लिया। यह चीन की तटस्थता पर आघात था। पर सामर्थ को क्या दोष! जापान ने चीन को अपनी २१ मांगे मानने को कहा। चीन ने इनमें कई को मान लिया। इन २१ मांगों का अर्थ था पूरे चीन पर जापान का राजनैतिक और आर्थिक प्रभाव स्थापित हो जाना। इससे जापान का असली मंशा साफ हो गया। जापात शान्तुंग चाहता था, मन्चूरिया और अन्दर मोंगोलिया को अपने प्रभावक्षेत्र में रखना चाहता था, और चीन की खानों पर अपना विशेषाधिकार चाहता था। जब अमेरिका युद्ध में आ गया तब उसने चीन को भी घसीटा। अमेरिका को चीन की सरकार अपना मित्र समझती थी। अमेरिका चीन की भूमि पर तोआंखे नहीं गड़ाये था, पर अपना व्यापार हित साधने में लगा था। चीन के प्रधान मन्त्री तुयान् ची-जुआई चीन को युद्ध में शामिल करने के लिये व्यग्र था, पर चीन की लोकसभा में कुयिमिटांग की की प्रधानता थी और वह इसके विरुद्ध थी। अतः चीन में घोर गृह कलह शुरू हो गया। राष्ट्रपति लि असहाय था। चांग हसुन नामक एक सैनिक नेता तो तुयान के विरुद्ध पार्लियामेन्ट की मदद करने के लिये आया, पर उसने राजतन्त्र की पुनर्स्थापना की घोषणा की। पर यह असम्भव था कि चीन में मंचु राज की पुनः स्थापना हो। तुयान फिर प्रधान मन्त्री बना और लि ने अवकाश ग्रहण किया। चीन युद्ध में शामिल हो गया। जब युद्ध खत्म हुआ तब चीन को यह आशा थी कि मित्रराष्ट्र विदेशी विशेषाधिकार, विशेष कर Extra-territorial Rights का अन्त कर देंगें। विल्सन के चौदह-सूत्रों (Fourteen Points) से भी उन्हें यही प्रेरणा मिली थी। पर शांति-सभा में उन्हें निराशा ही मिली। जापान को विजयी राष्ट्र रंज नहीं करना चाहते थे।

इधर चीन में गृहयुद्ध छिड़ा था। तुआन-चि जुआइ के प्रतिक्रियावादी शासन के विरुद्ध जनमत दृढ़ हो रहा था। विशाल चीन में यहां वहां

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामन्त वा सैनिक नेता अपना-२ शासन स्थापित कर रहे थे। लूट-खसोट भी जारी था। इसी समय भाग्यवश सन्-यात्-सेन चीन वापस आये और उन्होंने क्युमिंतांग (राष्ट्रीय पार्टी) दल का नेतृत्व अपने हाथ में ले लिया, और पेकिंग की सरकार के विरुद्ध नयी प्रजातन्त्रिक शासन की घोषणा की। सन्-यात्-सेन इस शासन के प्रधान बने और पूरे चीन की आवाज का प्रतिनिधित्व उनकी सरकार कैन्टन से करती है ऐसा दावा उन्होंने किया। उनके नेतृत्व में दक्षिण चीन क्रान्तिकारियों के अधीन आ गया। वर्साइ की शांतिसभा में इन राष्ट्रवादियों के प्रतिनिधि भी बुलाये गये थे। वहाँ इन्होंने विदेशी विशेषाधिकारों के अन्त की मांग की थी, और जब उनकी मांगे अस्वीकार की गई तब उन्होंने इंगलैंड को एक पत्र में इसके विरुद्ध खुली चेतावनी दी थी कि जागृत चीन इसे बर्दास्त नहीं करेगा। चीनी राष्ट्रवादियों को पेकिंग सरकार से युद्ध करने के लिये अस्त्रशस्त्रों की जरूरत थी। पर १९१९ में विदेशी राष्ट्रों ने, जिनमें जापान, अमेरिका और इंगलैंड भी थे, यह निश्चय किया कि कोई भी सरकार चीन के किसी दल को हथियार न बेचे; यद्यपि अमेरिका के कुछ नागरिक और मुनाफाखोर कम्पनियां पिकिंग सरकार को हथियार बेचते रहे। सन यात् सेन ने अन्त में रूस की ओर नजर दौड़ाई। सुन यात् सेन साम्यवादी नहीं थे, पर राष्ट्रीय संग्राम की सफलता के लिये कटिबद्ध थे। रूस ने सहायता देना मंजूर किया (१९२३) बोरोडिन ने चीन आकर देशचक्रों की मदद करना शुरू किया। और १९२४ में रूस ने चीन में कैपिट्युलेशन्श का भी अन्त कर दिया। जर्मनी ओर आष्ट्रिया ने भी नयी सन्धियों में Extra-territoriality की धारा को नहीं रखा था। पर अभी भी इंगलैंड, फ्रांस, अमेरिका और जापान इस अधिकार को रखे हुए थे। चीन इस कारण रंज था।

गृहयुद्ध और क्युमिन्तांग की विजय

१९२५ में सन्यात् सेन की मृत्यु हुई। उन्होंने अन्तिम सांस तक चीन में एकता लाने का प्रयत्न जारी रखा था। उनकी मृत्यु के बाद

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्-यात् सेन की मृत्यु

कुछ समय के लिये यह सम्भव हो सका। राष्ट्रवादियों और साम्यवादियों में संयुक्त मोर्चा बन गया, और इसका फल यह हुआ कि राष्ट्रवादियों की विजय होने लगी। च्यांगकाई शेक इस विजय का नेता था, और १९२८ में पिकिंग में राष्ट्रीय सेना घुस पड़ी। चीन में वस्तुतः अब कयूमिन्तांग के अधीन राजनैतिक एकता स्थापित हो गई थी।

पर अभाग्यवश चीन में गृहयुद्ध फिर छिड़ गया। च्यांगकाई शेक साम्यवादियों का कट्टर दुश्मन था। उसे चीनी राष्ट्रीय पूंजीपति और धनी लोग मदद दे रहे थे। साम्यवादियों का नाश करने का

पुनः गृहयुद्ध

च्यांगकाई शेक के निश्चय ने चीन में भयंकर गृहयुद्ध छेड़ दिया। १९२७ में ही साम्यवादियों को च्यांग ने हैन्कों छोड़ने को बाध्य किया था। पर साम्यवादियों का प्रभाव नष्ट नहीं हुआ और चीन के एक बड़े भाग पर उनका शासन वस्तुतः स्थापित था

पर क्यूमिन्तांग के अधीन चीन कई दिशा में उन्नति कर रहा था। सन यात् सेन के तीन लक्ष्य थे—जनता की सरकार, जनता का उच्च जीवन-स्तर और जनता की राष्ट्रीयता अर्थात् विदेशी प्रभाव का

देश की प्रगति

अन्त। च्यांग और उसकी पार्टी ने इसी पथ पर चलना निश्चय किया। विदेशी विशेषाधिकारों का धीरे २ अन्त हो गया, पर कैपिट्यूलेशन्श या चीनी भूमि पर कुछ विदेशी कानूनों के प्रचलन के अन्त में पूरी सफलता नहीं मिली। चीन में शैक्षणिक विकास भी हो रहा था। प्राथमिक पाठशाला से विश्वविद्यालय तक पश्चिमी विशेष कर अमेरिकन सिद्धान्त पर चलाये जा रहे थे। चीनी विद्यार्थी अमेरिका और इंगलैंड विद्याध्ययन के लिये जाते थे। दकियानुसी विचारों से मुक्त होकर चीनी मस्तिष्क पश्चिम के आदर्शों से अत्याधिक प्रभावित हो रहा था। स्त्री शिक्षा का प्रचार बढ़ा। सहशिक्षा को प्रोत्साहन दिया गया। स्त्रियों की दशा में इस तरह कुछ सुधार हुआ। साधारण जनता की भाषा ही साहित्यिकों की भाषा हुई। पर चीन की आर्थिक

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दशा में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ। उद्योगों का विकास सन्तोषप्रद नहीं था। साधारण जनता दरिद्र थी। बड़े २ जमींदार, मुनाफाखोर और विदेशी व्यापारी और पूंजीपति जनता का शोषण कर रहे थे। क्यूमिन्तांग की कोई निश्चय अर्थनीति नहीं थी। धनियों का प्रभाव इस पर काफी था। इस दल के कुछ प्रमुख नेता स्वयं मुनाफाखोर और जनता के शोषक थे। इसलिये जनता में इस दल की सरकार के प्रति पूरी आस्था नहीं पैदा हुई थी। साम्यवादी अपना प्रचार और संगठन कर रहे थे। देश में उपद्रव होते रहे, इससे भी समुचित आर्थिक विकास में दिक्कत ही हुई। १६२१ में जब चीन में उद्योगों और व्यापार की प्रगति हुई, तब जनता को इससे विशेष फायदा नहीं पहुंचा क्योंकि चीजों की मंहगी बहुत बढ़ गई थी, और मूल्यों का निर्धारण नहीं हो सका।

साम्यवादी दल की प्रगति

इस स्तिथि में साम्यवाद के नारों से जनता और भी आकर्षित हुई। साम्यवादी हूनान और निकटस्थ प्रदेशों में अपनी शक्ति दृढ़ कर चुके थे। यहां इन्होंने जमींदारों से भूमि छीन कर जनता में बांटा था, मुद्रास्फीति पर रोक लगाई थी, और जन साधारण में अति प्रिय हो चुके थे। पर च्यांगकाई शेक साम्यवादियों को नष्ट करने पर तुला था। इसलिये चीन में गृहयुद्ध जारी रहा। इसी समय जापान में १६३१ सेप्टम्बर में मन्चूरिया पर आक्रमण कर दिया। चीन ने अपने को असहाय पाया। मन्चूरिया हाथ से निकल गया। पर च्यांगकाई शेक कम्यूनिस्टों से उलझा था। चीन में राष्ट्रवादियों और साम्यवादियों में जापान के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा स्थापित हो यह विचार च्यांग के सेनानायकों का भी हुआ। च्यांग अपने एक सेनापति के द्वारा कैद कर लिया गया (१६३६)। अन्त में १६३७ में साम्यवादियों से जापान के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा बनाने की सलाह च्यांग ने मान ली। चीन जापन युद्ध जारी रहा १६३७ में पिकिंग के समीप एक साधारण घटना को बहाना बना कर जापान ने चीन पर ही आक्रमण कर दिया, यद्यपि लड़ाई का बाजाप्ता एलान कभी नहीं किया गया। जापान

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीन पर विजय पर विजय कर आगे बढ़ रहा था। इसी बीच द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू हुआ, और जापान के विरुद्धअमेरिका भी युद्ध में आ गया। चीन में अमेरिकी सेना, रसद और अफसर पहुँच गये। जापान और मित्र राष्ट्रों ने दोनों ने चीनी जनमत को अपने २ पक्ष में करने के लिये चीनी भूमि पर अपने कानूनों के प्रचलन के विशेषाधिकारों का अन्त कर दिया (१९४३)। यह स्पष्ट था कि युद्ध के अन्त होने के बाद फिर ये विशेषाधिकार स्थापित नहीं किये जा सकते थे। १९४५ में जापान ने आत्मसमर्पण कर दिया। चीन स्वतन्त्र हो गया।

चीन की स्वतन्त्रता

पर चीन का गृहयुद्ध और भी भीषण हो गया। जापान के विरुद्ध जो संयुक्त मोर्चा स्थापित हुआ था वह हार्दिक समझौता नहीं था। दोनों दोनों दलों में कटुता वर्त्तमान थी। जब जापान की पराजय निश्चित थी, दोनों दल अपनी २ स्तिथि सुधारने में लगे थे। साम्यवादियों का आठवां-दस्ताने (Eight Route Army) चाउ एन लाई के नेतृत्व में जापान के विरुद्ध लड़ाई में अभूतपूर्व योग्यता दिखाई थी। अब वही योग्य सेना च्यांगकाई शेक से उलझ पड़ी। अमेरिका से काफी धन और युद्ध सामग्री प्राप्त करने के बावजूद च्यांग की सेना को साम्यवादी-सेना खदेड़ती रही। च्यांग की सरकार ने मुद्रास्फीति से उत्पन्न तकलीफों को दूर करने में कोई सफलता नहीं प्राप्त की थी। चीन की भूमि समस्या का भी निदान नहीं हो रहा था। क्यूमिन्तांग के उच्च अफसर और च्यांग के सगे सम्बन्धी भी भ्रष्टाचार और मुनाफाखोरी और चोरबाजार के समर्थक थे। अतः साम्यवादियों की विजय निश्चित थी। और माउन्से तुंग के सफल और उत्साहवर्धक नेतृत्व में २१ नवम्बर १९४९ में चीनी जनवादी जनतन्त्र की घोषणा की गई।

गृहयुद्ध और माउन्से तुंग की विजय

माउन्सेतुंग के राष्ट्रपतित्व में नये चीन में अद्भुत् उन्नति हुई। है भूमि समस्या बहुत हद तक सुलझाई जा चुकी है। जमीन का बंटवारा

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ है। वैज्ञानिक साधनों का कृषि में प्रयोग हो रहा है। कृषि शिक्षा पर जोर दिया जा रहा है। अन्न का उत्पादन बहुत बढ़ गया है। अन्न का निर्यात हो रहा है। उद्योगों का भी विकास हो रहा है। बड़ी २ नदियों को बांध कर जल-विद्युत पैदा करने की योजनाएं कार्यान्वित की गई हैं। शिक्षा का अद्भुत प्रसार हुआ है। स्त्रियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया है। स्त्रियां स्वतन्त्र और बराबरी का दर्जा प्राप्त कर चुकी हैं। देश में विशेषकर नवजवानों में अप्रत्याशित उत्साह और आत्मविश्वास की लहर दौड़ रही है। प्राचीन जीर्ण आदर्शों और सामाजिक व्यवस्था की जगह पर नये प्रगतिशील आदर्शों और संस्थाओं का जन्म हुआ है। सोया सिंह जाग उठा है। क्रान्तिकारी पुनर्निर्माण प्रत्येक क्षेत्र में हो रहा है। प्रोफेसर त्रिपुरारी चक्रवर्ती के शब्दों में "यह कहना अधिक उचित होगा कि इन दो वर्षों में चीन में जितनी तवदिलीयां हुई हैं, वह गत चार हजार वर्षों में भी नहीं हुई थी"। निर्माण की इस तेज रफ्तार में कहीं कुछ गल्तियां भी हुई हों। पर तब भी नये चीन का जन्म और निर्माण संसार की महान् घटनाओं में गिना जायगा।

नये चीन का निर्माण

यह सत्य है कि माओत्से तुंग साम्यवादी हैं। पर चीन को साम्य-वादी राष्ट्र कहना एकदम ठीक नहीं होगा। चीन की सरकार में गैरसाम्यवादी भी हैं, और चीन में एक दल की सरकार नहीं, वरत् कई पार्टियों की मिलीजुलीसरकर (Coalition Government) है। उपप्रधानमन्त्री ही साम्यवादी नहीं हैं। साम्यवाद का अगला दस्ता मजदूरों का होना चाहिये। मील-मजदूर ही साम्यवादी क्रान्ति के अग्रदूत होते हैं, और उनका ही अधिनायकत्व स्थापित होता हैं। पर चीन की क्रान्ति कृषकों और खेतिहर मजदूरों के द्वारा हुई। कृषि और भूमि व्यवस्था की प्रधानता दी गई है। चीनी क्रान्ति को रूस से सहायता मिली है, पर रूस ने चीनी क्रान्ति का प्रत्यक्ष नेतृत्व नहीं किया।

पर यह भी ठीक है कि पश्चिमी राष्ट्रों की चीन विरोधी नीति चीन

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को बरबस रूस के पल्ले बंध जाने को मजबूर कर देगा। पूरे चीन में माउन्से सुंग की सरकार की स्थिति दृढ़ है। पर तब भी

विदेशी नीति

अमेरिका और संयुक्तराष्ट्र संघ ने चीन की इस सरकार को मान्यता नहीं दिया है, और फारमोसा भागे हुए च्यांगकाई शेक को चीन का शासक माना गया है। वृटेन और भारत ने नये चीन को मान्यता दी है। चीन और भारत में मित्रता है। यह मित्रता हजारों वर्ष की पुरानी है। चीन के पुनर्निर्माण में अमेरिकी राजनीतिज्ञ अडंगा लगा रहे हैं। कोरिया के युद्ध में चीन फंसा है। कोरिया किसी अमित्र के अधीन रहे यह चीन के लिये खतरे की चीज रही है, और रहेगी। इसलिये चीन को अमेरिका और संयुक्तराष्ट्र की सेना से कोरिया में जूझे रहना पड़ा है। सोवियत रूस से चीन की घनिष्ठ मित्रता है। पर चीन आज अधिक सबल और संगठित है।

(४) दक्षिणपूर्व एशिया

१८वीं सदी के अन्त तक दक्षिणपूर्व एशिया के देश भिन्न २ पश्चिमी राष्ट्रों के साम्राज्य के अंग बन चुके थे। बर्मा, मलाया, स्याम बृटिश साम्राज्य में थे। इन्डोचीन या अन्नाम फ्रांस के अधीन था। सुमात्रा जावा प्रभृति प्रायद्वीप डचों के अधीन थे, और फिलीपीन अमेरिका के अधिकार में था। पर द्वितीय विश्वयुद्ध दक्षिणपूर्व एशिया में क्रान्तिकारी परिवर्तन का कारण बना। जापान ने इन देशों को अपने अधीन कर लिया था। 'एशिया एशिआइयों के लिए' इसी नारे के बल पर उसने इन देशों की जनता को पश्चिमी साम्राज्यवाद के विरूद्ध उभाड़ा था और राष्ट्रीयता की भावना को उत्तेजित किया। पर जापान एशिया का मुक्तिदाता नहीं वरन् निरँकुश स्वामी बन बैठा। पर राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए जनता में बेचैनी रही, और जापानी साम्राज्यवादियों के विरूद्ध आंदोलन होते रहे। पश्चिमी राष्ट्रों ने अब जापान के विरूद्ध इन्हें भड़काया, और इन आन्दोलनों को प्रोत्साहन दिया। अन्त में

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

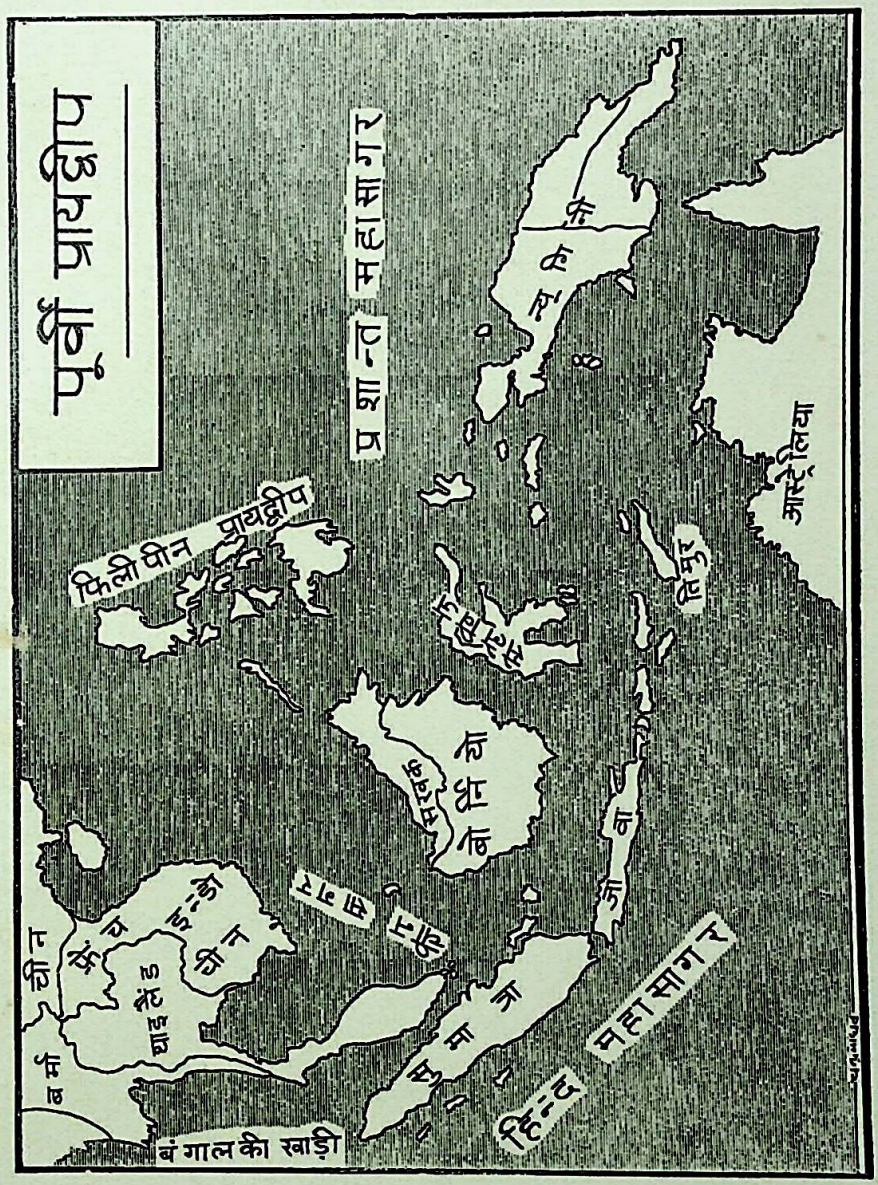

(Facing Page 448)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जापान की पराजय हुई, पर युद्ध के अन्त के बाद इन दक्षिण पूर्वी एशियाटिक राज्यों में पश्चिमी साम्राज्यवादियों का प्रभुत्व पुनः स्थापित हो, यह अब असम्भव था। इन देशों में राष्ट्रीय आन्दोलनों ने उग्र रूप धारण किया। चलते २ जापानियों ने इन्हें काफी युद्ध सामग्रि दे दिया था। अतः राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के संग्रामों ने भीषण रूप लिया, और अन्त में साम्राज्यवादियों को झुकना पड़ा है, और कई स्वतन्त्र राज्य स्थापित हो गये जैसे बर्मा, इन्डोनेशिया, स्याम, और अन्य देशों में अभी भी आन्दोलन चल रहे हैं। साम्यवादियों के बढ़ते प्रभाव ने साम्राज्यवादी राष्ट्रों को और भी सशंकित कर दिया है। पर यह स्पष्ट है कि दक्षिणपूर्व एशिया में विदेशी साम्राज्य का नामनिशान मिट कर ही रहेगा।

(क) बर्मा

बर्मा बृटिश साम्राज्य का अंग था। १९३५ के पार्लियामेन्ट-ऐक्ट के अनुसार बर्मा भारत से अलग कर दिया गयाथा। इनका असल मतलब था कि बर्मा को भारत की उग्र राष्ट्रीयता के प्रभाव से बचाये रखा जाय। पर यह मतलब सधा नहीं। बर्मा में राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की इच्छा बलवती हुई। द्वितीय विश्वयुद्ध ने मौका दिया। जापान से आतंकित हो बृटेन बर्मा की राष्ट्रीय पार्टी का सहयोग चाहता था, पर अपने प्रभाव की क्षति भी नहीं चाहता था। बा-माउने स्वतन्त्रता की मांग की। उस पर जापान का मित्र होने का आरोप लगाया गया। वह कैद कर लिया गया। बर्मा में असन्तोष बढ़ गया। जापान ने फायदा उठाया, और बृटेन से स्वतन्त्रता का आश्वासन देकर बर्मा पर आक्रमण किया और अन्त में अंगरेजी सेना को बर्मा छोड़ना पड़ा। जापान के संरक्षण में बर्मा की स्वतन्त्र सरकार बनी। पर बर्मा के देशभक्त बृटिश के चंगुल से छुट कर जापान के फैसिस्ट शासन के अधीन नहीं रहना चाहते थे। आंग सेन के नेतृत्व में फैसिस्ट-विरोधी जनवादी संघ ने जापानी प्रभुत्व के विरुद्ध आन्दोलन शुरू किया। अन्त में जापान की पराजय हुई और बर्मा से जापान को भागना पड़ा। (१९४५)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बृटेन की मंशा थी कि बर्मा में फिर बृटिश प्रभुत्व स्थापित हो। पर यह असम्भव था। आंग सेन के नेतृत्व में राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का आंदोलन प्रगति कर रहा था। बृटेन की मजदूर सरकार ने यह देखा कि बर्मा की राष्ट्रीयता की अवहेलना नहीं की जा सकती है। भारत को भी स्वतन्त्रता प्राप्त होनेवाली थी। लन्दन में गोलमेज कान्फ्रेन्स हुआ, जिसने बर्मा के संविधान सभा को यह हक दिया कि बृटेन के साथ अपने सम्बन्ध का निर्णय करे। जनवरी १९४७ के निर्वाचनों में आंग सेन के दल का बहुमत रहा। संविधान सभा ने पूर्ण स्वतन्त्रता, और बृटिश कामनवेल्थ से अलग होने का निर्णय किया। बृटेन ने इसे मान लिया। बर्मा स्वतन्त्र हुआ और नया संविधान लागू हुआ (जनवरी १९४८) पर संविधान सभा के खत्म होने के पहले ही आंग सेन को उनके विरोधियों ने मार डाला। पर इससे उनके दल का प्रभाव नहीं कमा। आंग सेन एक सफल राजनीतिज्ञ और महान् देशभक्त थे। उनकी मृत्यु के बाद भी उन्हीं की पार्टी की सरकार है। बर्मा को महान् संकटों से सामना करना पड़ा है। कम्यूनिष्ट इस सरकार के विरोधी हैं। पहाड़ी इलाकों में रहनेवाली अल्पमत करेन जातियां स्वशासन या स्वतन्त्रता की मांग के लिए लड़ रही है। क्यूमिंटाँग की सेना भी उधम मचा रही है। पर बर्मा की सरकार ने बड़े साहस से स्थिति का मुक़ाबिला किया है और देश में आर्थिक सुधार भी किया है। समाजवाद की ओर उनकी प्रगति है, पर वे प्रजातन्त्र में विश्वास करते हैं। भारत और बर्मा की पूरानी मित्रता है। बर्मा के बौद्ध भारत विशेष कर गया को अपना तीर्थस्थान समझते हैं। हाल ही में बर्मा में एशिया के समाजवादी पार्टियों का सम्मेलन हुआ था। प्रजातान्त्रिक समाजवाद की ओर बर्मा की प्रगति पर लोगों की आंखें लगी हैं।

(ख) इन्डोनेसिया

पूर्वी-भारतीय द्वीपसमूह (East Indies) अधिकतर डचों के अधीन थे जैसे, जावा, सुमात्रा, बालि, बोर्नियो, मदुरा प्रभृति। न्यूगिनी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डचों और अंगरेजों में बंटा था। हालैन्ड से कई गुणा अधिक क्षेत्रफल हालैन्ड का पूर्वी साम्राज्य का था। पर जब जर्मनी ने हौलेन्ड को हरा दिया, तब इन प्रायद्वीपों के राष्ट्रीय नेताओं ने स्वतन्त्रता प्राप्त करने का आंदोलन शुरू कर दिया। जापान भी युद्ध में आ गया और डचों के विरुद्ध इन द्वीपों की जनता को उभाड़ा। राष्ट्रीय नेता जापान की विजयों से खुश थे, क्योंकि उन्हें डचों से मुक्ति पाने का हौसला था। जापान ने एक-एक कर सभी प्रायद्वीपों को डचों से मुक्त किया, और अपने संरक्षण में स्वतन्त्र इन्डोनेशियन प्रजातन्त्र की स्थापना की। सुकर्ण इसके राष्ट्रपति हुये (१९४२)। जावा, सुमात्रा, और मदुरा पर सुकर्ण की सरकार का प्रभाव दृढ़ था। पर हारा हुआ हौलेन्ड अभी भी इन्डोनेसिया की स्वतन्त्रता मानने को तैयार न था। जब जापान हार गया, और बृटेन की फौज ने एक २ कर इन प्रायद्वीपों को जापानी अधिकार से मुक्त किया तब इन्हें फिर हौलेन्ड के अधीन दे दिया गया। पर इंगलैंड ने सुकर्ण से युद्ध कर जावा-सुमात्रा को डचों के हवाले करना मुनासिब नहीं समझा, क्योंकि यहां तो सुकर्ण को राष्ट्रीय सरकार सुदृढ़, स्वतन्त्र और जनप्रिय थी। अतः १९४५ के अन्त तक इन्डोनेसिया के एक भाग पर डचों का राज्य और दूसरे और बड़े भाग पर राष्ट्रीय सरकार का राज्य था। डचों की इच्छा थी कि समूचे इन्डोनेसिया पर येन केन प्रकारेण डच प्रभुत्व पुनर्स्थापित हो जाय। डचों ने एक ओर तो एक बड़ी सेना भेज कर राष्ट्रीय प्रजातन्त्र से लड़ने की योजना बनाई दूसरी ओर राष्ट्रीय दल में फूट पैदा कर अपने पक्ष में कोई समझौता हो, ऐसा प्रयास किया। पर दोनों उपाय असफल रहे। जापान ने इन्डोनेसिया में काफी युद्धसामग्री छोड़ दिया था। सुकर्ण के नेतृत्व में राष्ट्रीय संग्राम के सेनानियों ने साम्राज्यवाद का कस कर मुकाबिला किया। नवम्बर १९४६ में युद्धविराम की संधि हुई, और समझौता का मार्ग खुला। १९४७ मार्च में लिंगजाति-संधि हुआ जिसके अनुसार सुकर्ण अधिकृत इन्डोनेशियन प्रदेश को स्वतन्त्र प्रजातन्त्र माना गया, और अन्य

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रायद्वीपों को दो संघों में संगठित किया गया, और इन्डोनेशिया के संघीय प्रजातन्त्र की स्थापना की योजना बनी। इस संयुक्त राज्यसंघ को हौलेन्ड से मिला कर एक यूनियन बनायी जानेवाली थी। देश की विदेशी नीति और सेना पर यूनियन की सरकार का अधिकार रहता। इस समझौते से इन्डोनेसिया तीन मांगों में विभक्त हो गया, और 'यूनियन' की सरकार पर हौलेन्ड का अधिकार रहने के कारण पूर्ण स्वतन्त्रता भी नसीब नहीं हुई। सुकर्ण के अनुयायियों में भी इस समझौता पर मतभेद उठ खड़ा हुआ। डच सरकार ने भी अपनी स्थिति को और भी दृढ़ करने की कोशिश की। अन्त में संघर्ष फिर शुरू हो गया और डचों की सेना आगे बढ़ने लगी। यह स्पष्ट था कि डच समझौता के समय में अपनी शक्ति मजबूत करने में लगे थे। भारत ने इन्डोनेसिया का प्रश्न संयुक्त राष्ट्रसंघ में पेश किया और विश्वशान्ति संकट में है ऐसा विचार व्यक्त किया। सुरक्षा परिषद् ने युद्ध बन्द करने की सलाह दी और एक कमीशन को इन दो पक्षों में समझौता कराने का निर्देश दिया। पर कमीशन भी असफल रहा और डच सरकार ने अचानक इन्डोनेसिया पर आक्रमण कर दिया। नेता गिरफतार किये गये। मामला फिर संयुक्त राष्ट्रसंघ में पेश हुआ। लड़ाई बन्द करने की आज्ञा हुई (१९४९), पर डचों ने युद्ध जारी रक्खा। भारत के प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने दिल्ली में एशिआई सम्मेलन बुलाया (जनवरी १९४९) और इन्डोनेसिया की स्वतन्त्रता मानी जाय ऐसा सुझाव रक्खा। अगस्त १९४९ में समझौता हुआ। युद्ध बंद हुआ, नेताओं की रिहाई हुई, और हेग में एक गोलमेज कान्फ्रेन्स के द्वारा स्थायी समझौता करने का निश्चय हुआ। नवम्बर में गोलमेज कान्फ्रेन्स में महत्वपूर्ण में निर्णय हुये। इन्डोनेसिया एक राएबना जिसमें सुकर्ण-आंधकृत दल की प्रधानता रही। इन्डोनेसिया की स्वतन्त्रता मान ली गई, और हौलेन्ड और इन्डोनेसिया में परराष्ट्र नीति और आर्थिक नीति पर पारस्परिक सहयोग की आशा की गई। इन्डोनेसिया अब स्वतन्त्र राज्य है यद्यपि अभी तक हौलेण्ड और इन्डोनेसिया के

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्ध की रूपरेखा निश्चित नहीं हुई है। इन्डोनेसिया संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य है।

(ग) फिलीपीन

१८९९ में फिलीपीन स्पेन के पंजे से निकल कर अमेरिका के अधीन आ गया था। अमेरिकी शासन-काल में पाश्चात्य ढंग से शिक्षा का अत्याधिक विकास हुआ। उद्योग और कृषि में भी सुधार हुआ। पर अर्थनीति औरव्यापार पर अमेरिका का प्रभाव सुदृढ़ था। अमेरिका ने प्रतिनीधि सभाओं के द्वारा फिलीपीनों को शासन मे सहयोग देने के अधिकार का आदर किया था। पर इसका परिणाम यह हुआ कि फिलीपीनों में स्वतन्त्रता की भावना बढ़ी और साथ २ स्वशासन की योग्यता भी। जैसे २ आंदोलन की प्रगति हुई अमेरिका राजनैतिक रियायतें देते रहा। अन्त में १९३४ में कांग्रेस ने यह कानून बनाया कि फिलीपीन में संविधान सभा नया संविधान बनावे। पर फिलीपीन को अमेरिका से पूर्ण रूप से स्वतन्त्र होने का अवसर नहीं दिया गया। फिलीपीन को को बहुत अंशों में स्वतन्त्रता मिली, पर उग्र राष्ट्रवादी इससे असन्तुष्ट थे, क्योंकि वे पूर्ण स्वतन्त्रता चाहते थे, और अमेरिकी पूंजीवाद से फिलीपीन की अर्थव्यवस्था की मुक्ति चाहते थे। इसलिये फिलीपीन में शांति नहीं रही।

द्वितीय विश्वयुद्ध में जापान ने फिलीपीन से अमेरिकाकी सेना को खदेड़ भगाया (१९४२)। फिलीपीन स्वतन्त्र प्रजातन्त्र घोषित हुआ और लारेल राष्ट्रपति बने। जापान से सहयोग ही इस सरकार की नीति थी। पर फिलीपीन में एक दल था जो जापान का विरोधी था, और देश में पूर्ण लोकतन्त्र की स्थापना और आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था में समाजवादी सुधार चाहता था। यह हुकबली-हपदल कहलाता था यह विशुद्ध राष्ट्रीयवाद का समर्थक था और सामाजिक न्याय का पक्ष लेता था। इस दल ने जापान-समर्थक लारेल की सरकार से संघर्ष जारी रक्खा। जब १९४४ में अमेरिकी सेना ने फिलीपीन पर प्रत्याक्रमण किया, तब हुकबली-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हप दल ने जापान के विरुद्ध इन्हें मदद दिया। १९४५ तक अमेरिका ने फिलीपिन की विजय कर ली, और फिलीपीन को स्वतन्त्र कर दिया। अमेरिका की मदद से राष्ट्रपति ओमसेन की सरकार बनी। हुकबलीहप दल अमेरिका के प्रभाव से फिलीपीन की मुक्ति चाहता था और फिलीपीन की सरकार को अमेरिका का दास समझने लगा। अमेरिका की मदद से सरकार ने हुकबलीहप दल का दमन करना शुरू किया। पर इनकी शक्ति, अभी भी बनी है। साम्यवाद की ओर इनका झुकाव है। अमेरिका इसलिये और भी दृढ़ है कि इसको खत्म किया जाय।

फिलीपीन स्वतन्त्र है, पर आर्थिक और सामरिक दृष्टिकोण से अमेरिका पर आश्रित है। १९४६ की सन्धि के द्वारा अमेरिकनों को फिलपीन में जमीन खरीदने और स्वेच्छापूर्वक व्यापार करने के अधिकार प्राप्त हैं। फिलीपीन के हवाई अड्डों पर अमेरिका का अधिकार है, और युद्ध में फिलीपीन की रक्षा का भी उत्तरदायित्व अमेरिका ने ही लिया है।

(घ) थाइलैंड या स्याम

थाइलैंड स्वतन्त्र देश था। बृटिश वर्मा और फ्रेंच इन्डोचीन के बीच स्याम की स्वतन्त्रता बची रही। जापान के उत्कर्ष से स्याम बड़ा प्रभावित हुआ, और जापान से इसकी मित्रता रही। जापान के नागरिकों को व्यापार करने या जमीन-मकान खरीदने की सुविधा दी गई। जब द्वितीय विश्वयुद्ध में जापान कूद पड़ा, तब स्याम ने भी इंगलैंड और अमेरिका के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की। फ्रांस के पतन से फायदा उठाकर इन्डोचीन का वह भाग जिसमें थाई लोगों का बाहुल्य था स्याम में मिला दिया गया। जापान ने विरोध नहीं किया। पर जब जापान की हार होने लगी, तब बृटिश सेना नेजापान को स्याम से खदेड़ भगाया और स्याम को बृटिश संरक्षण में रखना चाहा। जापानी प्रभाव के विरुद्ध स्याम में एक राष्ट्रीय दल था जो पूर्ण स्वतन्त्रता का हामी था। इस दल के नेता लुआंग प्रदीत थे। इन्होंने यद्यपि जापान का विरोध किया था

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो फिर बृटेन की अधीनता कब बर्दास्त कर सकते थे। बृटेन की साम्राज्य-वादी नीति का कस कर विरोध हुआ। राष्ट्रीय आंदोलन अन्त में सफल हुआ। १ जनवरी १९४६ की सन्धि के अनुसार स्याम की स्वतन्त्रता बच गई, और अंगरेजों के व्यापार के जो अधिकार १९४१ में थे वे जहां के तहां रहे, और अंगरेजों को क्षतिपूर्ति के लिये एक बड़ी रकम मिली। पर थाइलैंड स्वतन्त्र रह गया। यह संयुक्तराष्ट्र संघ का सदस्य है। राष्ट्रीयता की विजय के साथ २ प्रजातन्त्र की विजय हुई है। स्वेच्छा-चारी राजतन्त्र या गुप्ततन्त्र की जगह पर जनता की चुनी हुए प्रतिनिधि से पार्लियामेन्ट और उसके प्रति उत्तरदायी मंत्रीमंडल की स्थापना हुई है।

(ङ) मलाया

१८वीं सदी के अन्त तक पूरे मलाया पर बृटिश आधिपत्य स्थापित हो गया था। सींगापुर बृटेन का एक सुदृढ़ दुर्ग, नाविक-सेना का केन्द्र और व्यापार का अड्डा था। मलाया के स्ट्रेट्स् सेट्लमैन्ट प्रत्यक्ष रूप से बृटिश राज्य का अन्तर्गत था, और मलाया के उत्तर और दक्षिण भाग में स्थित रियासतें भी बृटिश सरंक्षण में थे। उनके व्यापार और सेना पर बृटिश प्रभाव था। मलाया में टिन और रबर बहुत होता है। चावल की भी अच्छी उपज होती है। इसलिये बृटेन के आर्थिक हितों के लिये मलाया का शोषण अन्यन्त लाभप्रद था। पर बृटिश राजसत्ता की स्थापना के बाद मलयों में राष्ट्रीयता की भावना भी जागृत हुई। पर बृटेन इसे दबाये रहा। मलाया में मलय लोगों के अलावे भारतीय और चीनी पर्याप्त संख्या में थे। व्यापार और मजदूरी इनकी रोजी थी। यहां बौद्ध, हिन्दू और मुस्लिम थे। अतः जातीय और धार्मिक भिन्नता के कारण सामाज्यवादी शासक राष्ट्रीय एकता की स्थापना में अड़ंगा लगाने में बहुत हद तक सफल रहे।

पर द्वितीय विश्वयुद्ध से मलाया के राष्ट्रवादियों ने फायदा उठाया। जापान ने १९४२ में पूरे मलाया पर अधिकार कर लिया था। सींगापुर

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके अधीन था। कुछ समय बाद जापान ने स्वतन्त्र मलाया-प्रजातन्त्र की स्थापना की, और नयी सरकार बनी, जो जापान का समर्थन करती थी। राष्ट्रवादियों को स्वतन्त्रता के मीठे फल को चखने का सौभाग्य हुआ। जब जापान हारने लगा तब १९४५ तक इंगलैंड ने फिर मलाया-द्वीप को अपने अधिकार में कर लिया। पर अब यहां इन्हें एक राष्ट्रीय सरकार से सामना पड़ा। मलाया के देशभक्तों से बृटेन ने काम-चलाऊ समझौता करने का प्रयास किया। सींगापुर छोड़कर एक मलाया राज्यसंघ (union) बनाने का प्रस्ताव किया गया, जिसके हाई कमिश्नर इंगलैंड के नामजद रहेंगे और जिनका शासन पर नियंत्रण रहेगा। मलाया के देशभक्तों को यह मान्य नहीं था। देशभक्तों की यूनाइटेड मलाया नेशनल आर्गेनिजेशन ने बृटेन का विरोध करने की ठानी। बृटिश सरकार ने एक दूसरी योजना का प्रस्ताव रक्खा। मलाया में संघीय संविधान लागू हो और राज्यों को स्वशासन प्राप्त हो। बृटिश हाई कमिश्नर को संघीय राज्य को सिर्फ सलाह देने का अधिकार रहेगा। यह प्रस्ताव यूनाइटेड मलाया नेशनल आर्गेनिजेशन को मन्जूर था। पर मलाया की राष्ट्रीय पार्टी ने इसका विरोध किया। यह पार्टी मलाया की पूर्ण स्व-तन्त्रता चाहती थी, यह लोकतन्त्र की स्थापना के लिये कटिबद्ध थी और समाजवादी आर्थिक व्यवस्था की पक्षपाती थी। अतः संघर्ष जारी रहा। गुरिला-युद्ध ही किया जा सकता था। बृटेन ने भी उग्र नीति अख्तियार किया, और आतंक का राज्य-स्थापित हुआ। पर इतनी कठोर नीति के बावजूद संघर्ष जारी है। बृटेन की शक्ति का ह्रास ही हो रहा है। यह सम्भव है कि इन देशभक्तों में कुछ साम्यवादी हों, पर पूरे आंदोलन को साम्यवादी आंदोलन या आंतकवादियों की कुचेष्टा कहना गलत होगा। राष्ट्रीयता की भावना प्रधान है।

(च) इन्डोचीन

उन्नीसवीं सदी में फ्रांस ने इन्डोचीन पर अपना राज्य स्थापित कर लिया था। द्वितीय विश्वयुद्ध के आरम्भ में जर्मनी ने फ्रांस को हरा

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

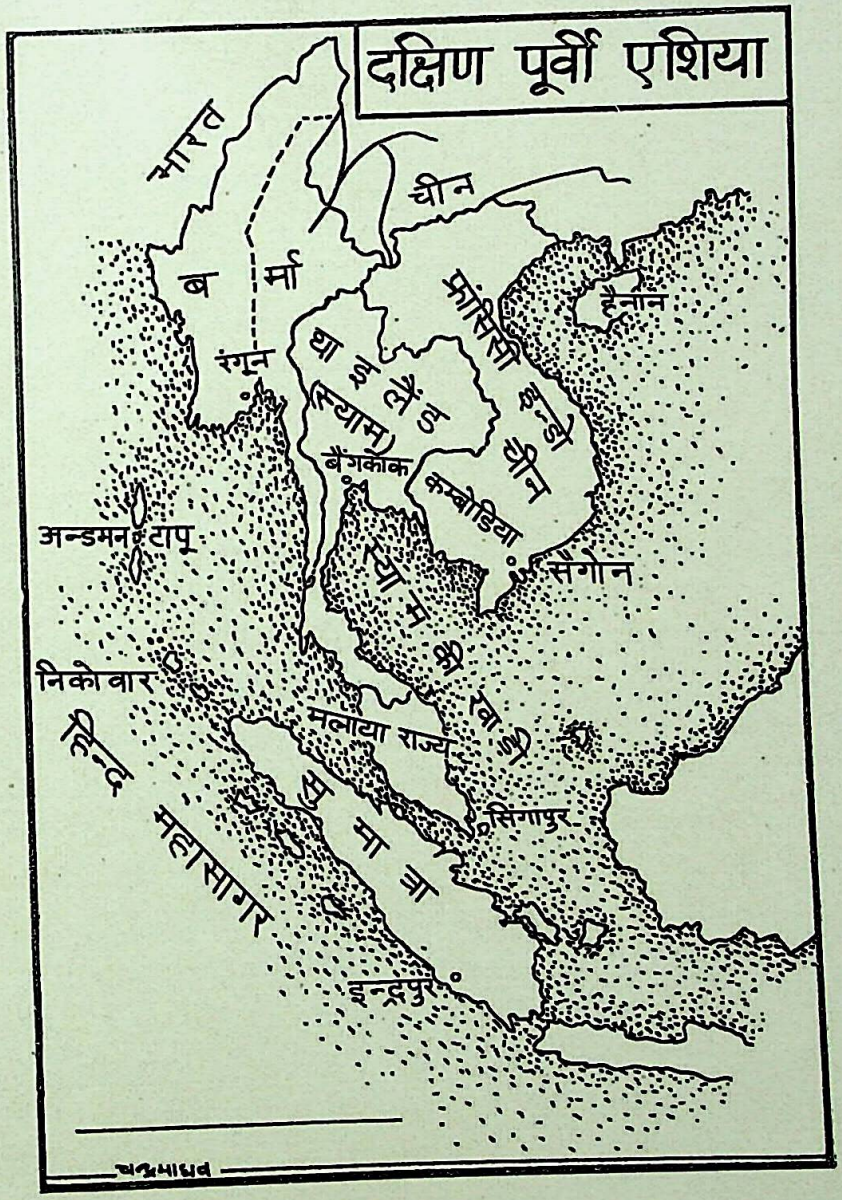

(Facing Page 456)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया (१९४०); और, फ्रांस में जर्मनी का समर्थन प्राप्त विची सरकार मार्शल पेतां के नेतृत्व में संगठित हुई। पर कुछ देशभक्त फ्रांसीसियों ने डी गॉल के नेतृत्वमें आजाद-फ्रेंच नामक संगठन की स्थापना की। इन्डोचीन को दोनों, विची (Vichy) सरकार और आजाद-फ्रेंच सरकार, ने अपने अधीन रखने की कोशिश की। विची सरकार ने इन्डोचीन में 'देकू' को शासक बनाया। देकू-सरकार जापान का समर्थन करती थी, और चीन के विरुद्ध जापान को सहायता देना इसने निश्चय किया। जापान धुरी राष्ट्रों की ओर से विश्वयुद्ध में कूद पड़ा। देकू-सरकार ने जापान को इन्डोचीन में सेना रखने की अनुमति पहले ही दे दिया था। अतः इन्डोचीन वस्तुतः जापान के संरक्षण में आ गया।

पर इन्डोचीन में एक राष्ट्रीय पार्टी थी जो कि देश की स्वतन्त्रता चाहती थी, और वह न फ्रांस और न जापान के प्रभुत्व का समर्थन कर सकती थी। राष्ट्रीय देशभक्तों ने आंदोलन करना शुरू किया, और जापान और देकू-सरकार के विरुद्ध गुरिला युद्ध शुरू हुआ।

१९४४ से जापान की शक्ति घटने लगी। योरप में जर्मनी हारने पर था। फ्रांस में फ्री-फ्रेंच का शासन डी गॉल के नेतृत्व में स्थापित हो चुका था। जापान ने इन्डोचीन से अपनी सेना लौटा ली, और हो ची मिन्ह के नेतृत्व में इन्डोचीन की स्वतन्त्रता की घोषणा हुई। इन्डोचीन रिपब्लिक बना। अन्नाम के सम्राट् बाओ दाई ने अपने पद का परित्याग किया। हो ची मिन्ह ने अपना जीवन राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के आंदोलन में बिताया था, वह दरिद्र परिवार का था, और जहाज और होटल में काम कर इसने फ्रांस में शिक्षा और अनुभव प्राप्त किया था। इसलिये वह राष्ट्रीय स्वतन्त्रता ही नहीं वरन् सामाजिक न्याय और आर्थिक समता का इच्छुक था। राष्ट्रीय आंदोलन में उसे साम्यवादियों से भी मदद मिली और जापानी सेना के लौटने के बाद राष्ट्रवादियों को युद्ध सामग्री भी मिली। 'वीयत-नाम स्वतन्त्र राज्य की स्थापना हुई (१९४५ सेप्टेम्बर)। पर फ्रांस अपने साम्राज्य को छिन्नभिन्न होते देखना नहीं चाहता

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। फ्री-फ्रेंच की सरकार ने इन्डोचीन में फ्रांसीसी प्रभुता की पुनर्स्थापना की चेष्टा की। पर राष्ट्रीयता की भावना की बिल्कुल उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। फ्रेंच सरकार ने यह सुझाव रक्खा कि इन्डोचीन में एक संघीय राज्य कायम हो जो कि फ्रांसिसी साम्राज्य के संघ का एक अंग रहे। सेना और विदेशी नीति पर फ्रेंच यूनियन का अधिकार रहे। यह प्रस्ताव हो ची मिन्ह को स्वीकार नहीं था। अन्त में फ्रांस ने बृटिश सेना की मदद से सेगौंन प्राप्त किया, पर पूरे इन्डोचीन पर अपना अधिकार नहीं स्थापित कर सका। हो-ची मिन्ह की शक्ति अन्नाम, टोन्किन और कोचिन चीन में दृढ़ थी। फ्रांस ने हनोई के समझौता के अनुसार हो-ची मिन्ह की वियतनाम सरकार को एक स्वतन्त्र रिपब्लिक मान लिया और यह रिपब्लिक इन्डोचीन फेडरेशन का एक भाग बनेगा, जो किफ्रेंच यूनियन का एक सदस्य रहेगा (मार्च १९४६)। पर यह समझौता निभा नहीं, क्योंकि फ्रांस वियतनाम का प्रभावक्षेत्र घटाने में लग गया था, और फेडरेशन पर फ्रांसीसी प्रभाव रहे यह राष्ट्रवादियों को मान्य नहीं था। अतः युद्ध शुरू हो गया। फ्रांस की सेना ने पहले कुछ सफलता प्राप्त की। पर राष्ट्रीय आंदोलन दबा नहीं। फ्रांस ने बाउ दाई को बुलाकर फ्रेंच अधीन इन्डोचीन का शासक बना दिया। बाउदाई साम्यवाद का विरोधी था। पर बाउ दाई की सरकार फ्रांस के प्रभाव पर निर्भर करती थी। हो-ची मिन्ह या विएटमिन्ह और बाऊ दाई या वियत नाम में युद्ध जारी है। फ्रांस इस युद्ध में पूरी तरह फंसा है। हो ची मिन्ह की विजय साम्यवाद की विजय होगी, ऐसा प्रचार कर फ्रांस ने अमेरिका को इस युद्ध में मदद देने के लिये आवाहन किया। संयुक्त-राज्य अमेरिका के नये राष्ट्रपति आइशेनहावर ने इन्डोचीन में बाउ दाई की सरकार को भरपूर मदद देने का अश्वासन दिया है। इस दवाव के कारण हो-ची-मिन्ह और इसकी राष्ट्रीय पार्टी साम्यवादी चीन और रूस पर अधिक से अधिक निर्भर होने पर वाध्य हैं।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बारहवां अध्याय

संयुक्त राज्य अमेरिका और विश्व-राजनीति

१७७६ में संयुक्त राज्य-संघ की स्थापना की घोषणा हुई थी, और स्वातन्त्र्य-संग्राम में सफलता प्राप्त कर संयुक्त-राज्य-संघ एक स्वतन्त्र राज्य के रूप में विश्व के रंगमंच पर आया। पर संयुक्त-राज्य अमेरिका अभी इस स्थिति में नहीं था कि वह दुनियां के इतिहास और राजनीति में सक्रिय भाग ले सके। पर उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में प्रेसिडेन्ट मुनरो ने अमेरिका की आवाज दुनियां के राष्ट्रों को सुनने के लिए वाध्य किया। मध्य और दक्षिण अमेरिका में योरपीय राष्ट्रों के उपनिवेश थे। दक्षिण अमेरिका के स्पेन के उपनिवेशों ने स्वातन्त्र्य-संग्राम छेड़ दिया। फ्रांस और स्पेन इनके आंदोलन को दवाना चाहते थे। अमेरिका के राष्ट्रपति मुनरो ने १८२३ में यह घोषणा की कि संयुक्त-राज्य अमेरिका अमेरिकन महादेश में योरपीय देशों का हस्तक्षेप नहीं वर्दास्त करेगा। अपने व्यापार के हितों को ध्यान में रखते हुये ग्रेटबृटेन ने इस सिद्धान्त का समर्थन किया। इसका परिणाम यह हुआ कि दक्षिण अमेरिका के उपनिवेश स्वतंत्र हो गये। मुनरों के सिद्धान्त ने इस प्रकार छोटे-२ राष्ट्रों को स्वतन्त्रता प्राप्त करने में मदद दिया। पर आगे चल कर इसी सिद्धान्त का सहारा लेकर संयुक्त राज्य अमेरिका योरपीय राज्यों के हस्तक्षेप के भय से मुक्त होकर मध्य अमेरिका और दक्षिण अमरिका के छोटे २ राज्यों को अपने राजनैतिक प्रभाव और आर्थिक अंचल में ले आया।

पर आरम्भ में यह सम्भव नहीं था। संयुक्त-राज्य अमेरिका स्वयं ही अभी अव्यवस्थित और असंगठित था। केन्द्र की शक्ति न्यून थी। अन्त

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में गुलामी प्रथा के अन्त का प्रश्न लेकर उत्तरी और दक्षिण सदस्य-राज्यों में युद्ध शुरू हो गया। गुलामी प्रथा के समर्थक कृषि और पशुपालन प्रधान दक्षिण-राज्य-संघ से निकल जाने का अधिकार का प्रयोग करना चाहते थे। पर राष्ट्रपति अब्रहम लिन्कन ने इसे नामन्जूर किया। गृह-युद्ध छिड़ गया और अन्त में लिन्कन के सिद्धान्तों की विजय हुई। संयुक्त-राज्य-संघ के सदस्य को संघ से निकलने का अधिकार का अन्त हो गया। उत्तर राज्यों का प्रभाव केन्द्रिय शासन पर बढ़ा, अर्थात् औद्योगिक नीति की प्रधानता रही। केन्द्र सबल हुआ, और एकता स्थापित हुई।

अब संयुक्त-राज्य संघ का औद्योगिक विकास द्रुतगति से होने लगा। पूंजीवाद सुदृढ़ हो गया। कच्चे माल को खरीदने के लिए और तैयार माल को बेचने के लिए बाजार की आवश्यकता बढ़ी। जब योरपीय साम्राज्यवादी राष्ट्र दक्षिण अफ्रिका का विभाजन करने में लगे थे, संयुक्त-राज्य को मुनरो के सिद्धान्त का फायदा उठा कर पूरे अमेरिकन महादेशों को अपने राजनैतिक और आर्थिक प्रभाव में ले आने में किसी प्रतिद्वन्द्विता का भय नहीं था। ह्यू-जोन्स ने ठीक ही कहा है। "यद्यपि मुनरों के सिद्धान्त ने पश्चिमी महादेश को योरप से बचाया, पर संयुक्त-राज्य अमेरिका से उसकी रक्षा नहीं की"।[1] संयुक्तराज्य अमेरिका के व्यापार के प्रसार के लिए १८८१ और १८८९ में Pan-American कान्फ्रेन्सें बुलाई गईं और व्यापारिक और व्यावसायिक समाचारों के विनिमय के लिए अमेरिकी महादेशीय ब्यूरो या सूचनालय की स्थापना हुई। दक्षिण अमेरिकन राज्यों के साथ चुंगी के प्रश्न पर कई सन्धियां हुईं। अमेरिका सुदूर पूर्व में व्यापार के प्रसार के लिये भी प्रयत्नशील रहा। चीन में से व्यापार करने की सुविधाएं प्राप्त हुई थीं, और कम्माडोर पेरी ने जापान को बलपूर्वक अमेरिका के लिए अपने

---

1. And while the Munro Doctrine protected the western Hemisphere from Europe, it did not protect it from the United States.

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन्दरगाहों को खोलने के लिए वाध्य किया। अमेरिका की औद्योगिक उन्नति और मालों के लिए वाजार की आवश्यकता ने संयुक्त-राज्य को विश्व के रंगमंच पर ला दिया।

अमेरिका अपने व्यापार और साम्राज्य के विस्तार के लिए प्रयत्न-शील हो गया। रूस से अलास्का खरीद लिया गया। इससे आर्थिक लाभ के अलावे देश की सुरक्षा दृढ़ हुई। पश्चिमी प्रायद्वीप समूह में अमेरिका की दिलचस्पी वढ़ी, और वरजिन (Virgin) प्रायद्वीप और सेन्ट्री डोमिनिगो पर अधिकार कर लिया गया और १६१७ में वरजिन प्रायद्वीप (Virgin Islands) डेनमार्क से खरीद लिया गया। १८७६-१८०० के वीच अमेरिका का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार प्रगति पर था। अमेरिका को अव अपने व्यापार की रक्षा के लिए मजवूत जल सेना की आवश्यकता हुई, और जल-सेना और व्यापारी जहाजों के लिए बन्दरगाहों की जरूरत पड़ी और इन बन्दरगाहों की रक्षा के लिए समुद्रीय बेड़े की जरूरत पड़ी। अतः अमेरिका दूरस्थित प्रायद्वीपों को अपने अधिकार में लाने की कोशिश करने लगा। स्पेन के विरुद्ध क्यूवा (Cuba) में विद्रोह हुआ। क्यूवा से अमेरिका का व्यापार वढ़ गया था और अमेरिका की पूंजी भी क्यूवा में लगाई गई थी। अतः स्पेन के विरुद्ध क्यूवा के राष्ट्रीय आन्दोलन से अमेरिका ने सहानुभूति दिखाई, और अन्त में स्पेन से युद्ध शुरू हो गया (१८६८)। अमेरिका की जलसेना की शक्ति के कारण अमेरिका विजयी हुआ, और स्पेन ने क्यूवा पर अपना अधिकार छोड़ दिया। अमेरिका को पश्चिमी प्रायद्वीप समूह के कई-एक द्वीप मिले, और फिलीपीन भी २ करोड़ डौलर देकर मिल गया। १६०२ में यद्यपि क्यूवा को स्वतन्त्रता मिली पर आर्थिक और सैनिक दृष्टिकोण से क्यूवा अमेरिका के संरक्षण में ही रहा। फिलीपीन अमेरिका के सुदूरपूर्व हितों का व्यापारिक और सामरिक केन्द्र वन गया।

अमेरिकन महादेश पर अमेरिका का एकाधिपत्य आसानी से स्थापित नहीं हो सका था। दक्षिण अमेरिका के राज्य संयुक्तराज्य

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की नीति सशंकित दृष्टि से देखते थे। पर अमेरिका ने वेन्यजुला और बृटिश गाइना की सीमा के प्रश्न पर इंगलैंड को अपनी नीति स्पष्ट कर दिया था (१८९५)। अमेरिकन नोट में कहा गया कि अमेरिका ने यदि योरपीय राजनीति में हस्तक्षेप नहीं करने का सिद्धान्त अपनाया था तो वह अमेरिकन महादेश में योरपीय हस्तक्षेप भी बर्दास्त नहीं कर सकता था, और अपनी आर्थिक और सामरिक साधनों के बल पर अमेरिका अपने विशेषाधिकार स्थापित करने में और किसी भी अन्य देश का सामना करने में बिल्कुल योग्य हैं और अमेरिका को अपनी नीति पर दृढ़ रहने के लिए पूर्ण सैन्यीकरण करना होगा। इंगलैंड को झुकना पड़ा। अमेरिका की उग्र नीति और बढ़ती शक्ति का यह स्वाभाविक परिणाम था। पर अमेरिकन महादेश पर अपने प्रभाव की वृद्धि के लिये दक्षिण अमेरिका से निकट और सुगम राह की आवश्यकता थी। सुदूरपूर्व से भी नजदीकी रास्ता की जरूरत थी। इसलिये अमेरिका पनामा की नहर बनाने में दिलचस्पी लेने लगा। पनामों में कोलम्बिया की सरकार के विरुद्ध विद्रोह को संयुक्त-राज्य ने प्रोत्साहित किया (१९०३), और पनामा के नये रिपब्लिक ने संयुक्तराज्य को नहर के इलाके की भूमि बराबर के लिये इजारा में दे दिया। १९२० में यह नहर चालू हुई। इस नहर के इलाके की रक्षा का भार भी संयुक्त राज्य को ही मिला, पनामा शहर में अमन-चैन कायम रखने का उत्तरदायित्व भी संयुक्त राज्य ने लिया। इस क्षेत्र में अमेरिका के इस बढ़ते प्रभाव को दक्षिण अमेरिका के छोटे २ राज्यों ने स्वागत नहीं किया।

पर अमेरिका अब संसार का एक महान् राष्ट्र बन गया था। थिओडोर रूजवेल्ट विश्वराजनीति में सक्रिय भाग लेने लगा था। रूस-जापान युद्ध के अन्त करने में अमेरिका ने हाथ बटाया था। बौक्सर-विद्रोह के बाद चीन के विभाजन होने को अमेरिका ने रोका और इसके बदले मुक्त-व्यापार की नीति (Open Door Policy) को अपनाया। मोरक्को और अलजिरिया के प्रश्न पर जब तस्वाली बढ़ी तब रूजवेल्ट ने शान्ति कायम रखने में

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहयोग दिया। विश्व की एकता और अमेरिका को विश्व-राजनीति से अलग नहीं रह सकने के सिद्धांतों का संकेत रूजवेल्ट ने किया।

प्रथम विश्व-युद्ध और तटस्थता का अन्त

पर अमेरिका में एक प्रभावशाली जनमत योरपीय या विश्व राजनीति से अमेरिका को अलग रखना चाहता था, और अमेरिका के व्यापार की उन्नति शान्तिमय हो, यही चाहता था। इसलिए जब प्रथम विश्वयुद्ध शुरू हुआ तब अमेरिका ने तटस्थता की नीति अपनाई। पर जनमत जर्मनी के विरुद्ध इंगलैंड और फ्रांस के पक्ष में बढ़ रहा था। अन्त में जब जर्मनी ने अमेरिकन जहाजों को डुबाना शुरू किया और मेक्सिको इत्यादि राज्यों को संयुक्त राज्य के विरुद्ध मदद का आश्वासन दिया तब जर्मनी के विरुद्ध जनमत दृढ़ हो गया। अन्त में जब जर्मनी ने पनडुब्बों के द्वारा जहाजों को डुबाने की नीति पर दृढ़ रहने की घोषणा की और अमेरिका के समुद्रीय व्यापार की स्वतन्त्रता पर आघात किया तब अपने व्यापार-हित और अपने नागरिकों की रक्षा के लिए अमेरिका युद्ध से अलग नहीं रह सका। विल्सन ने १६१४ से १६१६ तक शांति स्थापित करने का सतत प्रयास किया था, पर वह असफल रहा, और ६ अप्रैल १६१७ को कांग्रेस ने युद्ध की घोषणा कर दी।

विल्सन उदारवादी और आदर्शवादी था। युद्ध में मित्रराष्ट्रों की विजय हुई, पर विल्सन ने अपने प्रसिद्ध १४ सूत्रों की घोषणा की थी, जिनमें (i) जिन देशों को दुश्मनों के पञ्जे से छुटकारा मिलेगा उन्हें अपने भाग्य का निर्णय करने का अधिकार रहेगा-- Principle of Self-determination. (ii) सन्धियां खुलीं होंगी (iii) अन्तर्राष्ट्रीय शांति बनाए रखने के लिए राष्ट्र-संघ (League of Nations) की स्थापना होगी, मुख्य हैं। पराजित राष्ट्रों ने इन्हीं चौदह सूत्रों के आधार पर आत्मसमर्पण किया था। पर मित्र राष्ट्रों को विल्सन के आदर्शों में विशेष दिलचस्पी नहीं थी। गुप्त सन्धियां की गई थी, और वर्साइ की सन्धि में इन्हें भुलाया नहीं गया। ब्रिटेन और फ्रांस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने प्रथम विश्वयुद्ध के परिणाम स्वरूप अपना साम्राज्य बढ़ाया। राष्ट्र संघ यद्यपि स्थापित हुआ पर उसे काफी कमजोर कर दिया गया था। अतः विल्सन के आदर्श कार्यान्वित नहीं हुये, पर वह खुश था क्योंकि राष्ट्रसंघ की स्थापना हुई थी, और मध्य और पूर्व योरप में कई नये राष्ट्रीय स्वतन्त्र राज्य स्थापित हुये थे।

अमेरिका में वर्साइ की सन्धि से निराशा ही हुई। इस विश्वयुद्ध से अमेरिका को कोई फायदा नहीं हुआ, ऐसे विचार यहांजोर पकड़ने लगे। विल्सन वर्साई-सन्धि को कांग्रेस से मनवा न सका। अमेरिका राष्ट्रसंघ का सदस्य न बना। विल्सन की हार हुई। अमेरिका ने अब विश्व की राजनीति से अलग रह कर अपने उद्योग और व्यापार के विकास में लगे रहने का निश्चय किया। इस नीति के कुछ अपवाद भी हैं। जापान की जलसेना की वृद्धि से आशङ्कित हो सभी महान् नाविक-राष्ट्रों के साथ संधि की गई जिनमें ऐसे राष्ट्रों की नाविक सेना का अनुपात निश्चय हुआ। संयुक्त-राज्य मुक्त व्यापार की नीति का पोषक था क्योंकि अपार आर्थिक साधनों के कारण उसका औद्योगिक विकास चरम सीमा पर पहुँच गया था। पर प्रथम विश्वयुद्ध में जिन देशों ने अमेरिका से कर्ज लिया था वे कर्ज वापस करने में असमर्थ थे; और योरप की आर्थिक स्थिति इतनी बुरी थी कि अमेरिका का व्यापार ठप् सा पड़ गया। अमेरिका में १९२९ में आर्थिक संकट (Economic Crisis) व्यापार की मंदी से आया। राष्ट्रपति फ्रैंकलिन रुजवेल्ट ने बड़े साहस और दूरदर्शिता से इस स्थिति का मुकाबिला किया, और उदारवादी नीति अपनाई जिसे New Deal कहा जाता है (१९३६)।

पुनः तटस्थता

अमेरिका की विलगाव की नीति से योरप में नाजी और फैसिस्ट आक्रमक नीति की प्रगति हुई। इटैली ने अबिसीनिया और अलविनिया हड़प लिया। हिट्लर ने आस्ट्रिया, राइनलैंड को जर्मनी ने मिला लिया।

द्वितीय विश्वयुद्ध

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एशिया में जापान मन्चूरिया पर आक्रमण कर चुका था। अन्त में जब हिट्लर ने पोलैन्ड पर आक्रमण किया, तब द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू हो गया (सेप्टेम्बर १६३६)। अमेरिका ने तटस्थता की नीति बरती।

रुजवेल्ट की नीति

पर प्रेसिडेन्ट रुजवेल्ट की नीति थी कि अमेरिका नाज़ी जर्मनी के विरुद्ध पश्चिमी प्रजातन्त्र की मदद करे, और तटस्थता की नीति छोड़ दे। बहुत होशियारी से रुजवेल्ट ने धीरे-२ अमेरिका की कांग्रेस और जनता को अपने पक्ष में लाया। पहले तो नकद दाम देकर अमेरिका से युद्ध सामग्री खरीदने की अनुमति दी गई। पर युद्ध के समय में इंगलैंड के पास इतना धन नहीं था। इसलिए उधार-पट्टे का कानून पास हुआ जिसके अनुसार पश्चिमी प्रजातान्त्रिक राज्य बिना नगद दाम दिये उधार बही-खाते से अमेरिका के माल खरीद सकते थे। अमेरिका में रुजवेल्ट के प्रयास से सेना अत्यन्त दृढ़ की गई, अनिवार्य सैनिक-सेवा का कानून पास हुआ, और अमेरिका के कारखानों में वृहत् पैमाने पर युद्ध-सामग्री बनने लगे।

अटलांटिक चार्टर

अमेरिका की इस मदद से इंगलैंड को फायदा हुआ और वह हिट्लर के विरुद्ध लड़ाई में डटा रहा। रुजवेल्ट और चर्चिल ने मध्य एटलांटिक सागर में प्रिन्स आफ वेल्स नामक जहाज़ पर एटलांटिक चार्टर पर हस्ताक्षर किया। इस चार्टर में यह घोषणा की गई कि मित्रराष्ट्र किसी भी देश की जनता पर उसके विरुद्ध कोई विधान या शासन नहीं लादेंगे। इससे संसार के पराधीन देशों की जनता में आशा का संचार हुआ, और जनमत नाज़ी जर्मनी के विरुद्ध दृढ़ हो गया। आगे चलकर चर्चिल की इस नीति से, कि यह चार्टर सिर्फ योरप के लिए लागू था और नाज़ी जर्मनी के पददलित योरोपीय राष्ट्रों के लिए ही आत्मनिर्णय का सिद्धान्त माना गया था, एशिया और अफ्रीका की जनता में निराशा

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और क्षोभ पैदा हुआ। पर फिलहाल इस चार्टर से मित्रराष्ट्रों के प्रति सहानुभूति बढ़ी, और उनके इरादों के विषय में आश्वासन मिला। युद्ध के सैद्धान्तिक आदर्श-रूप पर प्रकाश पड़ा।

अमेरिका इस तरह युद्ध के निकट बढ़ा आ रहा था। जर्मनी के विरुद्ध रूस को भी धन और युद्ध-सामग्री से मदद दी जा रही थी। जर्मनी योरप में बेतरह उलझा था। इंगलैंड और रूस डट कर सामना कर रहे थे। इसी समय जापान ने पर्ल हार्बर पर आक्रमण कर दिया (७ दिसम्बर १९४१)। योरप में इंगलैंड के फंसे रहने का वह फायदा उठाना चाहता था। अमेरिका को युद्ध में घसीट कर शायद धुरी राष्ट्रों का अनुमान यह था कि वह तब मित्र राष्ट्रों की उतनी मदद नहीं कर सकेगा। पर यह अदूरदर्शिता थी। अमेरिका में अब युद्ध में शामिल होने के लिए उग्र जनमत हो गया और रुजवेल्ट को जापान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करने में कोई दिक्कत न हुई। जर्मनी और इटैली ने भी चन्द दिनों के बाद अमेरिका पर आक्रमण कर दिया।

अमेरिका के युद्ध में सक्रिय भाग लेने से युद्ध का नक्शा ही अन्त में बदल गया। अमेरिका, इंगलैंड और रूस में युद्धकाल में अनुकरणीय सहयोग रहा। अमेरिका मित्रराष्ट्रों के लिए अक्षय शस्त्रागार बन गया। योरप पर पुनः आक्रमण करने के लिए अमेरिकी सेना संगठित हुई। संयुक्त-कमान्ड का नेतृत्व जेनरल अइशेनहावर को मिला। १९४४ में योरप पर आक्रमण हुआ। जर्मनी रूस में असफल रहा, और रूस अब प्रत्याक्रमण कर रहा था। जापान भी भारत की ओर बढ़ने में असफल रहा। फिलीपीन में अमेरिका की सेना फिर घुस पड़ीं। धुरी राष्ट्रों की पराजय निश्चित थी। जापान के विरुद्ध चीन की च्यांगकाईशेक की सरकार को अमेरिका पूरी तरह मदद दे रहा था। विश्व युद्ध की रूपरेखा और युद्ध के बाद की व्यवस्था के लिये रुजवेल्ट, चर्चिल, स्तालिन ने तेहरान और याल्टा में मिले। पाटसडम, याल्टा, और केरी कान्फ्रेंसों

धुरी राष्ट्रों की पराजय

CC-0 In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में भी इन विषयों पर खुले दिल से मैत्री के वातावरण में विचार विनिमय हुआ। इसी सहयोग का परिणाम था कि धुरी राष्ट्रों की पराजय हुई। जापान के दो शहरों पर हिरोशिमा और नागासाकी—अमेरिका के बमवाजों ने अनु-बम गिराया। जापान ने भी आत्मसमर्पण कर दिया।

पर युद्धकाल में महान् राष्ट्रों में जैसा सहयोग था, अभाग्यवश युद्ध के अन्त होने पर यह सम्भव न हो सका। संयुक्त-राष्ट्रसंघ की स्थापना में रूस और अमेरिका ने सहयोग किया था। समझौते के आधार पर ही बर्लिन, आस्ट्रिया, बाल्कन-राज्य में सोवियत् रूस की सेना ने अपना प्रभाव स्थापित किया था। जापान और कोरिया में मित्रराष्ट्रों की संयुक्त सेना थी। पर बहुत शीघ्र रूस और अमेरिका के बीच खाई पड़ गई और वह बढ़ती ही गई है। चीन में साम्यवादी च्यांगकाईशेक के विरुद्ध सफल हो रहे थे। च्यांग की मदद में अमेरिका का अतुलित धन और सामग्री चीन में फंसा था। अमेरिका का यह ख्याल था कि रूस की सहायता से ही साम्यवादी दल सफलता प्राप्त कर रहा था। अतः चीन के प्रश्न पर गहरा मतभेद उठ खड़ा हुआ, जो अभी और भी अधिक बढ़ गया है, जब चीन से च्यांगकाईशेक को भागकर फ़ोरमोसा में शरण लेनी पड़ी है। अमेरिका ने चीन की नयी सरकार को मान्यता नहीं दिया है, और उसी के कारण संयुक्त राष्ट्रसंघ में अभी च्यांग की सरकार को ही चीन की सरकार मानकर प्रतिनिधित्व मिला है।

रूस और अमेरिका में मतभेद

द्वितीय विश्वयुद्ध में सारा योरप ध्वंसतः हो गया था। विजयी होकर भी इंगलैंड की आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी। रूस का भी अत्यधिक नुकसान हुआ था। पर रूस ने अपने प्रभाव विस्तार का योरप में बर्लिन तक कर लिया था। बाल्कन् राज्यों में साम्यवादी सरकारें स्थापित हो गईं थीं। युगोस्लाविया कुछ समय बाद सोवियत रूस के प्रभाव-अंचल से निकल गया। अमेरिका पूंजीवाद का दुर्ग है, और साम्यवाद के प्रसार से अमेरिका

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घबड़ा गया। संसार की साम्यवादी पार्टियों को रूस का पिछलग्गू

अमेरिका की साम्यवाद-विरोधी नीति

समझा जाने लगा। इसलिये राष्ट्रपति ट्रुमेन ने, जिन देशों में साम्यवादी के विरुद्ध युद्ध छिड़ा था, उन देशों की सरकारों को मदद देने की नीति की घोषणा की, और इसी आधार पर ग्रीस और टर्की को मदद दिया गया। पर यह नीति सर्वव्यापी थी। अमेरिका की साम्यवाद-विरोधी नीति का परिणाम यह हुआ कि संसार को साम्यवाद से बचाने का उत्तरदायित्व अमेरिका ने अपने सर लिया। इसलिये एक ओर तो वह अपनी सेना की उन्नति में लगा रहा और संसार के कोने-२ में सैनिक अड्डे स्थापित करने लगा, दूसरी ओर उसने योरप के प्रजातान्त्रिक राष्ट्रों के आर्थिक पुनरोत्थान के लिये भी आर्थिक मदद देने की नीति अपनायी। अमरीकी माल की खपत के लिये यह जरूरी था कि योरप की जनता इस स्थिति में रहे कि वह इन्हें खरीद सके। इसलिये इन देशों के जीवन-स्तर को उठाना जरूरी समझा गया। यह भी स्पष्ट था कि जहां जनता गरीब होती है वहां ही साम्यवाद का प्रचार आसान होता है।। इसलिये भी इन प्रजातान्त्रिक देशों की आर्थिक सहायता करना आवश्यक समझा गया। इसी आधार पर मार्शल योजना (जून १९४७) की घोषणा की गई। इसके द्वारा अमेरिका ने योरप के राज्यों को धन और सामग्री से कर्ज या दान के रूप में मदद देकर उन्हें अपने यहां के व्यापार और उत्पादन को बढ़ाने को कहा और इस अमरिकी धन का वहाँ समुचित उपयोग हो इसलिये अमरीकी प्रबन्धक नियुक्त किया गया। सोवियत रूस और उसके साथी-राज्यों ने इस योजना का विरोध किया क्योंकि उनके ख्याल में ऐसी योजना संयुक्त-राष्ट्र-संघ के तत्वावधान में कार्यान्वित होनी चाहिए थी, क्योंकि इस आर्थिक मदद के द्वारा अमेरिका अपना प्रभाव इन सहायता-प्राप्त देशों की विदेशी और आर्थिक नीति पर दृढ़ करेगा। पर अमेरिका अपने धन और सामग्री के दान और कर्ज पर अपना विशेष प्रभाव

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखना चाहता था। अतः सोवियत रूस के इस द्वारा योजना के विरोध से भी अमेरिका में सोवियत रूस के प्रति कटुता और शक की भावना दृढ़ हो गई। अब प्रत्येक क्षेत्र में ये दोनों महान् राष्ट्र एक दूसरे पर शक करने लगे।

इसका परिणाम यह हुआ कि युद्ध की सम्भावना बनी है। अमेरिका का दावा है कि प्रजातन्त्र की रक्षा के लिये प्रजातान्त्रिक राज्यों को संगठित होना चाहिये, और साम्यवाद का विरोध करना चाहिये। रूस का कहना है कि अमेरिका अपनी नीति के द्वारा संसार पर अपना आर्थिक साम्राज्य-वाद (Dollar Diplomacy) स्थापित कर रहा है, और साम्यवादी रूस का अन्त ही उसका लक्ष्य है। इसलिये जनवादी प्रजातन्त्रों को अपना संगठन सुदृढ़ करना चाहिये। प्रेसिडेन्ट ट्रुमेन के Point Four सिद्धांत के द्वारा संसार के पिछड़े देशों को अमेरिका ने आर्थिक और यन्त्रविद्या के विकास में मदद देने की नीति अपनाई गई। एशिया में इस नीति का प्रयोग हुआ है। इससे तो उद्योग, और शिक्षा इत्यादि में कुछ मदद मिली है, पर यह मदद अपर्याप्त है, और यह भी डर है कि कहीं इसके परोक्ष में अमेरिका का साम्राज्यवादी हित न सधे। अमेरिका अब विश्वराजनीति में इस तरह उलझ गया है कि इससे अलग नहीं हो सकता, और उसकी नीति का प्रभाव सारे विश्व पर पड़ता है। दुनियां आज दो गुटों में बँटा है—अमेरिका-इंगलैंड गुट और सोवियत गुट। संसार की प्रत्येक समस्या पर इन दो गुटों का पारस्परिक विरोधी दृष्टिकोण है। अमेरिका गुट का संयुक्तराष्ट्रसंघ में बहुमत है। कोरिया में संयुक्त राष्ट्र संघ के नाम पर अमेरिका ही अधिकांश रूप से युद्ध में लगा है। साम्य-वादी उत्तर-कोरिया को चीन का समर्थन प्राप्त है। अमेरिका के नेतृत्व में ही उत्तर-अटलांटिक-संधि-व्यवस्था का संगठन हुआ है, जिसका अभिप्राय है सम्भावित आक्रमण के प्रति संगठित विरोध, पर रूस इसे अपने देश के विरुद्ध आक्रमक नीति का प्रतीक समझता है। सभी भी इस संघ का

युद्ध की आशंका

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदस्य है, जब वह अटलांटिक क्षेत्र से बहुत दूर है। इस संधि-व्यवस्था के प्रति रूस का शक इस कारण बढ़ जाता है। अमेरिका पश्चिमी योरप के राष्ट्रों में एकता चाहता है जिससे कि अमेरिका की मदद से ये छोटे २ राज्य मिलकर रूस के सम्भावित आक्रमण का सामना कर सकें। सम्भावित युद्ध की कल्पना के आधार पर ही अमेरिका के प्रभाव में स्थित पश्चिमी जर्मनी को फिर सबल बनाया जा रहा है। मध्यपूर्व सुरक्षा योजना में मिश्र, टर्की और अन्य अरब राज्य और पाकिस्तान को भी संगठित करने की कोशिश की जा रही है, जिससे कि इस क्षेत्र में भी सोवियत-विरोधी नीति का सफल संचालन हो सके। सुदूरपूर्व में भी अमेरिका, इंगलैंड, आस्ट्रेलिया की ऐसी ही संयुक्त योजना बनाई जा रही है। अमेरिका के प्रभाव में जापान का शस्त्रीकरण हो रहा है। सैनिक और औद्योगिक दृष्टिकोण से अमेरिका ने नाविक अड्डे पूर्व और पश्चिम में फैला लिया है। जहां २ साम्यवाद के विरुद्ध संघर्ष है, वहां अमेरिका मदद देने के लिये कटिबद्ध है। इन्डोचीन इसका एक उदाहरण है।

अतः द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अमेरिका का प्रभाव विश्वराजनीति पर बेतरह पड़ रहा है। यह तो भविष्य ही बता सकेगा कि इसका परिणाम अन्त में युद्ध होता है या शांति। जर्मनी या आस्ट्रिया, कोरिया की समस्या इसी विरोधी नीति के कारण नहीं सुलझ सकी है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेरहवाँ अध्याय

शान्ति की खोज में

रोमन साम्राज्य के पतन के बाद योरप के एक बड़े भाग पर जो शांति स्थापित थी, वह अब विदा हो गई थी। योरप में बराबर युद्ध होते रहे। कुछ महान् चिन्तकों ने जैसे रूसो ने अन्तर्राष्ट्रीय युद्धों से व्यथित हो अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सहयोग की योजनाओं पर विचार किया। पर इन योजनाओं का कोई व्यावहारिक प्रयोग नहीं किया गया। पर फ्रांस की राज्यक्रांति और नेपोलियन के कारण योरप वर्षों तक युद्ध में फंसा रहा। जनता युद्धों से परेशान हो गई, और विजयी शासकों ने भी शांति की सांसे लेनी चाही।

अतः नेपोलियन के पतन के बाद युद्ध की सम्भावना रोकने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का वातावरण अनुकूल था।

कांग्रेस व्यवस्था

विजयी राष्ट्रों ने कांग्रेस-सिस्टम् की स्थापना की। पांच महान् राष्ट्रों ने यह तय किया कि अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने के लिये वे मिलते रहेंगे, और आवश्यकता पड़ने पर सैनिक कार्रवाई करने में सहयोग करेंगे। इस योरपीय-संघ (Concert of Europe) का बहुत महत्व है। अन्तर्राष्ट्रीय शांति को बनाये रखने की जिम्मेदारी महान् राष्ट्रों पर है और इसलिये इनमें पारस्परिक सहयोग आवश्यक है, यही सिद्धान्त राष्ट्र-संघ (League of Nations), और संयुक्त राष्ट्र-संघ (United Nations) का भी आधार है। पर कांग्रेस-सिस्टम् में कई खामियां थी। मेटरनिक् के नेतृत्व में यह संघ अन्य राज्यों के अन्दरूनी मामलों में दखल देने लगा, और योरप में अप्रगतिशील दकियानूसी राजनैतिक विचारों और समर्थकों

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का पोषक बन कर उदारवादी प्रजातान्त्रिक विचारों और आंदोलनों के दबाने का एक यन्त्र बन गया। अतः इंगलैंड इससे अलग हो गया। बिना किसी उच्च और जनप्रिय आदर्श पर आधारित हुए यह संघ कभी स्थायी सफलता नहीं प्राप्त कर सकता था। फिर इस योजना में एक कमजोरी यह भी थी कि यदि कोई महान् राष्ट्र स्वयं ही अपनी स्वार्थी-नीति को कार्यान्वित करने पर दृढ़ हो जाय तब इस संघ के टूटने के सिवा कोई अन्य परिणाम सम्भव नहीं था।

शक्ति संतुलन का सिद्धान्त

इस योजना की कमजोरी का ही परिणाम था कि योरपीय राष्ट्रों ने युद्ध की आशंका को दबाये रखने के लिये शक्ति-सन्तुलन (Balance of Power) का सिद्धांत अपनाया। इस सिद्धांत का अर्थ था कि महान् राष्ट्रों की शक्ति सन्तुलित हो, और कोई राष्ट्र इतना अधिक शक्तिशाली न हो जाय कि दूसरों के हितों का नुकसान हो। पर यह सिद्धांत विश्व-शांति कायम रखने में असफल रहा, क्योंकि जब जर्मनी ने बिस्मार्क के नेतृत्व में योरोपीय शक्ति-सन्तुलन को उलट दिया तब उसे रोकने का प्रयास नहीं किया गया। इंगलैंड योरपीय राजनीति से उदासीनता की नीति बरत रहा था, और फ्रांस की नीति ढुलमुल थी। जर्मनी के उत्कर्ष के बाद योरपीय राष्ट्रों ने फिर शक्ति-सन्तुलन की पुनर्स्थापना करने की कोशिश की, पर यह सब बेकार हुआ। फ्रांस, रूस और इंगलैंड इतनी देर के बाद सन्धि के सूत्र में बंधे, जब प्रथम विश्वयुद्ध का आरम्भ सन्निकट था।

प्रथम विश्व युद्ध के परिणाम

१९१४-१८ का प्रथम विश्वयुद्ध पहले की अन्तर्राष्ट्रीय युद्धों से विलक्षण था। इस युद्ध में सिर्फ प्रायः पूरा संसार ही अलिप्त नहीं हुआ था, बल्कि धन और जन की इतनी अधिक हानि कभी नहीं हुई थी। पूरा योरप युद्धभूमि बन गया था। विजित और विजेता सभी पीसे गये थे। इस वातावरण में, भविष्य में युद्ध न हो ऐसा प्रयास किया जाय, यह

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारणा जनता और सरकारों में दृढ़ हो गई थीं। जर्मनी पर विजय प्राप्त करने में अमेरिका ने सक्रिय भाग लिया था। अमेरिका की भूमि युद्ध से बची थी। अमेरिका अत्यन्त समृद्ध था। अमेरिका के कर्ज से योरपीय राष्ट्र दबे थे। अमेरिका की आवाज की बेहद इज्जत थी। अमेरिका की प्रतिष्ठा अत्यधिक बढ़ी-चढ़ी थी। इसलिये जब अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन ने युद्ध का अन्त कर स्थायी शांति की स्थापना के लिये सहयोग की मांग की तो उसकी भावना अनसुनी नहीं हो सकती थी। विल्सन् उदारवादी और आदर्शवादी था। उसके व्यक्तित्व और चरित्र से लोग प्रभावित थे।

अतः विल्सन् के चौदह सूत्रों के आधार पर ही शत्रुओं ने आत्म-समर्पण किया था। इन चौदह सूत्रों में चौदहवीं धारा थी कि विश्वशांति की सुरक्षा के लिए एक राष्ट्रसंघ का संगठन हो। विल्सन् राष्ट्रसंघ को एक सबल संस्था बनाना चाहता था जिसके द्वारा राष्ट्रों को शांति की सुरक्षा का पूर्ण आश्वासन मिले। वह सहयोग का एक रंगमंच बनाये रखना चाहता था। पर बहुत वादविवाद के बाद जब राष्ट्रसंघ की स्थापना हुई तो उसका रूप जैसा विल्सन ने कल्पना की थी वह हूबहू न रह सका, और एक कमजोर संस्था के रूप में ही राष्ट्रसंघ का जन्म हुआ।

पर राष्ट्रसंघ की स्थापना ही एक महत्वपूर्ण घटना थी। अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और शांति की स्थापना के लिए राष्ट्रसंघ प्रथम स्थायी संस्था था।

राष्ट्रसंघ के अंग

राष्ट्रसंघ के अंग थे-साधारण सभा (Assembly), परिषद् (Council), सचिवालय (Secretariat), अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर-संगठन (International labour organisation) और अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय। राष्ट्रसंघ का आफिस जेनेवा निश्चत हुआ, पर अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय हेग में ही रहा। असेम्बली के सदस्य सभी छोटे-बड़े स्वतन्त्र राज्य थे। भारत भी एक सदस्य था। सभी सदस्यों को एक ही वोट था। अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर वादविवाद करने का अधिकार असेम्बली को था। परिषद् या

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौन्सिल एक छोटी सभा होने के कारण अधिक कारगर थी। कौन्सिल में पांच महान् राष्ट्र स्थायी सदस्य थे, और ९ साधारण सदस्य असेम्बली से निर्वाचित होते थे। सभी सदस्यों को एक वोट था। कौन्सिल साल में प्रायः चार बार बैठती थी, और जरूरत पड़ने पर उसे जल्दी बुलाया जा सकता था। असेम्बली साधारणतः वर्ष में एकबार बुलाई जाती थी। राष्ट्रसंघ का एक अपना सचिवालय था, जिसके कर्मचारी राष्ट्रसंघ के नौकर थे। मजदूर-समस्या का महत्व समझा गया था, और अन्तर्-राष्ट्रीय मजदूर-संगठन के सदस्य सभी राष्ट्र थे, और मजदूरों की समस्या, जीवन-स्तर, स्वास्थ्य, गृह-समस्या पर विचार होता था, और स्वीकृत प्रस्तावों को सदस्यराष्ट्र कार्यान्वित करने में सहयोग देने का आश्वासन देते थे।

राष्ट्रसंघ की स्थापना एक अनुकूल वातावरण में हुई थी, और लोगों को इससे बड़ी आशाबंधी थी। राष्ट्रसंघ का प्रमुख लक्ष्य था शांति बनाये रखना, और यदि राष्ट्रों में किसी प्रश्न को लेकर झगड़ा खड़ा हो तो उसे अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय या पंचायत में पेश किया जाय, और उसका निर्णय मान्य हो। पर यदि कोई राष्ट्र, राष्ट्रसंघ का सदस्य रहे या न रहे, इसके बावजूद किसी राष्ट्र के प्रति आक्रमक नीति अपनाये तो राष्ट्रसंघ उसे आक्रमणकारी घोषित कर सकता था, और सभी राष्ट्रों को उसका आर्थिक बहिष्कार करने का आदेश दे सकता था। इस आक्रमण-कारी राष्ट्र के विरुद्ध सोलहवीं धारा के अनुसार आर्थिक प्रतिबंध या नाकाबन्दी (Blockade) की नीति लागू की जा सकती थी, और अन्त में अन्य राष्ट्रों को राष्ट्रसंघ इस आक्रमणकारी के विरुद्ध सैनिक कार्रवाई करने में सहयोग की अपेक्षा करती। अब प्रश्न यह था कि क्या राष्ट्रसंघ अन्तर्राष्ट्रीय शांति बनाये रखने में सफल रहेगा, और क्या यह इतना शक्तिशाली और प्रतिष्ठित था कि आक्रमणकारी के विरुद्ध अन्य राष्ट्रों का सैनिक सहयोग प्राप्त कर सके?

राष्ट्र संघ के अधिकार

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रसंघ को शुरू में कुछ हद तक सफलता मिली। १६२३ में इटैली और ग्रीस के झगड़े को राष्ट्रसंघ ने सफलतापूर्वक निबटाया। यूनान और वल्गेरिया में सीमा के प्रश्न पर जो झगड़ा उठ खड़ा हुआ, वह भी राष्ट्रसंघ के तत्वावधान में सुलझाया गया। राष्ट्रसंघ के ही निर्देशन में टर्की से विस्थापित यूनानियों को योरप में पुनःस्थापित किया गया। टर्की के साम्राज्य के पतन के बाद विभिन्न अरब राज्यों को फ्रांस और इंगलैंड के शासनादेश में रखा गया। राष्ट्रसंघ के सचिवालय में अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं के सम्बन्धित सूचनाओं का संग्रह होने लगा। अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर-संगठन ने भी अपने क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया। राष्ट्रसंघ के तत्वावधान में निरस्त्रीकरण कान्फ्रेंस (Disarmament Conference) ने सेना में कमी करने का प्रयत्न शुरू किया। विल्सन् के चौदह सूत्री योजना में शस्त्रास्त्रों की कमी एक प्रमुख सूत्र था। जब तक शस्त्रास्त्रों की वृद्धि की होड़ का अन्त नहीं होता था तब तक शांति का वातावरण स्थायी नहीं हो सकता था। इसलिए इस दिशा में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की अपेक्षा की गई थी, और विजित राष्ट्रों को निरस्त्र किया गया था। सुरक्षा के आश्वासन के लिए ही योरप के भिन्न २ राष्ट्रों ने सम्मिलत सन्धियां की जैसे लोकार्नो की संधि।

सीमित सफलता

पर राष्ट्रसंघ विश्वशांति बनाये रखने में असफल रहा। जब कोई महान् राष्ट्र किसी समस्या में स्वयं उलझा रहा तब राष्ट्रसंघ निष्पक्ष न रह सका और किसी महान् राष्ट्र के विरुद्ध कोई निर्णय करने या साहसी कदम उठाने में अशक्य सिद्ध हुआ। निरस्त्रीकरण में भी राष्ट्रसंघ विफल रहा। जब तक सुरक्षा का पूर्ण आश्वासन नहीं मिलता था तब तक महान् राष्ट्र अपनी सेना में कमी करने को तैयार नहीं थे। १६३२ में निरस्त्रीकरण सभा ने अपनी असफलता का एलान किया, और जर्मनी का अपनी सेना का पुनर्निर्माण करने का अधिकार मान लिया। कहां तो इस सभा का उद्देश्य था निरस्त्रीकरण, पर इसका निर्णय हुआ सैन्यीकरण! जर्मनी बहुत शीघ्र ही निर्धारित सीमा का उल्लंघन कर अपनी सेना की अत्यधिक

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृद्धि करने लगा। अस्त्रशस्त्रों की होड़ शुरू हो गई। युद्ध के लिए वातावरण तैयार होने लगा।

राष्ट्रसंघ युद्ध को रोकने में कितना पंगु है यह जापान के मन्चूरिया पर आक्रमण (सितम्बर १९३१) से स्पष्ट हो गया। चीन की अपील पर राष्ट्रसंघ ने लिटन कमीशन की नियुक्ति की, जिसका यह फैसला हुआ कि जापान आक्रमणकारी है। राष्ट्रसंघ ने जापान को आक्रमणकारी घोषित किया, पर कोई सैनिक कार्रवाई या आर्थिक नाकाबंदी का निर्णय करने का साहस नहीं कर सका। जापान राष्ट्रसंघ से निकल आया और मन्चूरिया पर अधिकार कर लिया। राष्ट्रसंघ की प्रतिष्ठा पर यह गहरा आघात था। इससे फासिस्ट और नाजी तानाशाहों को अपनी आक्रमक नीति को कार्यान्वित करने में प्रोत्साहन मिला। इटैली को वर्साइ की सन्धि-व्यवस्था से असन्तोष था। इटैली में साम्यवादी या समाजवादी विचारों का प्रभाव बढ़ रहा था। नये विद्यार्थियों और मजदूरों में बेहद परेशानी थी। मुसोलिनी पहले समाजवादी था, पर पीछे चलकर वह इटैली में तानाशाही की स्थापना का समर्थक बन गया। उसके नेतृत्व में फासिस्ट दल ने राज्य-शासन पर अपना एकाधिकार स्थापित कर लिया (१९२२–२५)। मुसोलिनी रोमन साम्राज्य की पुनर्स्थापना का स्वप्न देखता था, और जनता का ध्यान देश की आर्थिक विषमता से हटा कर प्राचीन गौरव को पुनः प्रतिष्ठित करने में लगाना चाहता था। अतः आक्रमक विदेशी ब नीति मुसोलिनी के लिये स्वाभाविक थी। १९३५ में इटैली ने अबिसीनिया पर आक्रमण कर दिया। दोनों राष्ट्रसंघ के सदस्य थे। अबिसीनिया ने राष्ट्रसंघ को इटैली के विरुद्ध आर्थिक और सैनिक कार्रवाई करने की अपील की। राष्ट्रसंघ ने इटैली को आक्रमणकारी घोषित किया। बहुत वादविवाद और देर के बाद राष्ट्रों को इटैली के विरुद्ध आर्थिक दबाव (Economic Sanctions) डालने को कहा गया। पर इस निश्चय को भी महान् राष्ट्रों ने दिल से नहीं माना। इटैली के विरुद्ध सैनिक कार्रवाई करने का तो सवाल

राष्ट्रसंघ की विफलता

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

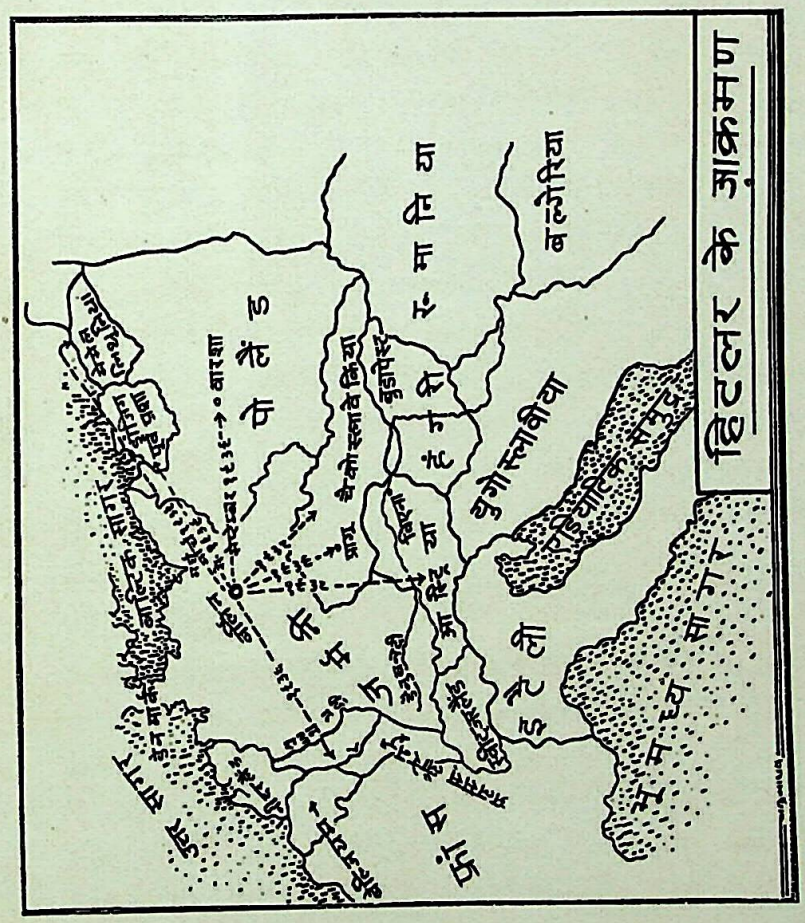

(Facing Page 476)

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही दूर रहा। अबिसीनिया पर इटैली का अधिकार हो गया, और महान् राष्ट्रों ने बहुत जल्दी से इटैली के राजा को अबिसीनिया का सम्राट् मान लिया। राष्ट्रसंघ की यह प्रत्यक्ष पराजय थी, और इस पराजय में इंगलैंड फ्रांस ऐसे राष्ट्रों का हाथ था। मुसोलिनी राष्ट्रसंघ की खुली अवहेलना बिना नुकशान उठाये कर सका, इससे हिटलर को प्रोत्साहन मिला। राइनलैंड पर जर्मनी का कब्जा हो गया, जेकोस्लावेकिया के कुछ प्रदेशों को हिटलर ने हड़प लिया। राष्ट्रसंघ मुंह ताकता रह गया। इंगलैंड और फ्रांस ने म्यनिक कान्फ्रेंस में हिटलर की मांग को मान लिया। वे हिट्लर की तृष्णा को शांत करने में लगे थे। पर हिटलर आगे बढ़ते गया और पोलैन्ड पर (१ सितम्बर १९३९) आक्रमण कर द्वितीय विश्वयुद्ध को आरम्भ कर दिया।

राष्ट्रसंघ इसप्रकार अपने प्रमुख लक्ष्य विश्वशांति बनाये रखने में विफल रहा। इस असफलता के कई कारण थे। राष्ट्रसंघ की योजना राष्ट्रपति विल्सन के दिमाग और प्रभाव की उपज थी। पर संयुक्त राज्य अमेरिका की कांग्रेस ने वर्साइ की संधि और राष्ट्रसंघ की स्थापना को नामंजूर किया। संसार का सबसे शक्तिशाली राज्य राष्ट्रसंघ के बाहर रहा, यह राष्ट्रसंघ के लिए बुरा हुआ। पर राष्ट्रसंघ की सबसे बड़ी कमजोरी यह थी कि इसके पास अपनी कोई सेना नहीं थी कि जिसके बल पर वह अपना निश्चय किसी आक्रमणाकारी के विरुद्ध बरबस कार्यान्वित कर सकता। उसे अपने सदस्य राष्ट्रों की भलमनसाहत पर ही निर्भर करना पड़ता था। पर ये राष्ट्र अपने राष्ट्रीय हितों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय जवाबदेही या कर्तव्य से विमुख होने के लिए तैयार थे। राष्ट्रसंघ की मूल कमजोरी यह थी कि राष्ट्रीय सार्वभौम सत्ता (National Sovereignty) और अन्तर्राष्ट्रीय कर्तव्य के सिद्धन्तों में सामञ्जस्य नहीं था। एक ओर तो राष्ट्रपति विल्सन ने राष्ट्रीयता के सिद्धान्त को पूरा बढ़ावा दिया था, और आत्मनिर्णय के सिद्धान्त के आधार पर योरप में नये राष्ट्रों की स्थापना का

विफलता के कारण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान
तिथि ... पु०सं० 832

समर्थन किया था, दूसरी ओर राष्ट्रसंघ की योजना के द्वारा राष्ट्रों को अन्तर्राष्ट्रीय बन्धन में बाँधने का प्रयास किया। राष्ट्रीय सार्वभौम सत्ता और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के सिद्धान्तों के टक्कर ने राष्ट्रसंघ को चूर कर दिया। फिर वर्साई का सन्धि-व्यवस्था को राष्ट्रसंघ के विधान से जोड़ कर भी गलती की गई, क्योंकि वर्साई सन्धि की अन्यायपूर्ण धाराओं के हटाने के प्रयास भी राष्ट्रसंघ के विरोधी ही माने गये, और राष्ट्रसंघ को कई असन्तुष्ट देशों में अन्यायपूर्ण स्थिति का रक्षक ही माना जाने लगा। राष्ट्रसंघ स्वयं अपना उत्तरदायित्व निभाने में असमर्थ था। महान् राष्ट्रों के हार्दिक सहयोग से ही यह सम्भव था, पर यह नहीं रहा। यदि योरपीय राष्ट्रों को अपनी सुरक्षा के प्रति पूर्ण आश्वासन रहता तो यह सम्भव था। इसलिये फ्रान्स ऐसे राज्य ने अपनी सुरक्षा के लिए राष्ट्रसंघ से बाहर ही मैत्री संगठन स्थापित करने की कोशिश की। सुरक्षा की खोज में सेना की वृद्धि की होड़ शुरू हुई, और योरप में फिर शक्ति-संतुलन के सिद्धान्त पर ही शांति एक कच्चे धागे से जुटी रही। पर जापान, इटैली और जर्मनी ने इस शक्ति-सन्तुलन को उलट दिया, और अन्त में इसलिए सुरक्षा की खोज में ही द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू हो गया।

द्वितीय विश्वयुद्ध धनजन की हानि की दृष्टि से प्रथम विश्वयुद्ध से कई गुणा अधिक भयानक था। योरप के कई शहर नष्ट हो गये। आर्थिक क्षति का लेखा नहीं हो सकता है। युद्ध के बीच में ही यह धारणा फिर दृढ़ हो गई कि भविष्य में युद्ध को रोकने के लिए कोई साहसी कदम उठाया जाय। मास्को में परराष्ट्रमंत्री सम्मेलन में बृटेन, अमेरिका, रूस और फ्रांस के मन्त्रियों ने यह घोषणा की युद्ध के अन्त के बाद विश्वशांति को बनाये रखने के लिए एक विश्वसंगठन की स्थापना की जायगी (१९४३)। नवम्बर १९४४ में संयुक्त-राज्य अमेरिका में डम्बर्टन ओक्स् (Dumbarton oaks) नामक स्थान पर संयुक्त-राष्ट्रसंघ का खाका तैयार किया गया, जिसे याल्टा कान्फ्रेंस में स्तालिन, चर्चिल और रूजवेल्ट ने

संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ हेरफेर के साथ मान लेने की घोषणा की, और जून १६४५ में सैन फ्रांन्सिसको में पचासों राष्ट्रों ने संयुक्तराष्ट्रसंघ के चार्टर पर हस्ताक्षर किया। इस प्रकार संयुक्तराष्ट्रसंघ की स्थापना हुई।

संयुक्त राष्ट्रसंघ की निम्नलिखित संस्थाएँ हैं :—(क) साधारण-सभा (General Assembly) जिसमें प्रत्येक स्वतन्त्र राष्ट्र सदस्य चुने जा सकते हैं। साधारण-सभा संयुक्त राष्ट्रसंघ के सभी कार्यों पर निरीक्षण रखती है : (ख) सुरक्षा परिषद् जिसमें पांच स्थायी सदस्य हैं (फ्रांस, वृटेन, संयुक्त-राज्य, चीन और सोवियत रूस), और ६ अस्थायी सदस्य छोटे और मध्यम राज्यों के प्रतिनिधि हैं : (ग) संयुक्तराष्ट्रसंघ की शैक्षणिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक समीति (Unesco), जिसका काम है संसार में शिक्षा, विज्ञान और संस्कृति की समस्याओं पर विचार करना और इनके समुचित विकास में योगदान देना; (घ) आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की प्रगति के लिए सामाजिक-आर्थिक समीतियां कायम की गई हैं; इसी समीति के अन्तर्गत खाद्य-कृषि संस्था (FAO) का संगठन हुआ है : (च) ट्रष्टीशीप कौन्सिल का काम है उन परतन्त्र देशों का शासन का निरीक्षण करना जिन्हें इस कान्सिल के तत्वावधान में रखा गया हो : (छ) अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय जो अन्तर्राष्ट्रीय कानूनी मसलों का निर्णय करे, या अन्य प्रश्नों का; जिसे उसके समक्ष रखा गया हो, निर्णय करने का भी अधिकार उसे है; (ज) संयुक्त राष्ट्र का सचिवालय।

संयुक्त राष्ट्रसंघ की संस्थाएँ

संयुक्त-राष्ट्रसंघ ने कई क्षेत्रों में सराहनीय काम किया है। यूनेस्को के नेतृत्व में पिछड़े देशों में विशेषकर अफ्रिका में शिक्षा और साक्षरता का प्रचार हुआ है। भारत और अन्य एशियाटिक देशों में भी उच्च शिक्षा और विज्ञान की प्रगति के लिए विशेषज्ञ, सम्बन्धित साहित्य और सूचना, और धन से मदद की गई है। सामाजिक और आर्थिक कौन्सिल ने खाद्यान्न की समस्या पर ध्यान दिया है। ट्रष्टीशीप कौन्सिल की रिपोर्ट जेनरल एसेम्बली में पेश किया जाता है, और शासित देशों की राजनीतिक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान
पुस्तक.....
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और आर्थिक प्रगति पर ध्यान दिया जा रहा है।

पर संयुक्त राष्ट्रसंघ का मुख्य उद्देश्य है शांति बनाये रखना। यह सच है कि प्रत्येक सदस्य राष्ट्र ने संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर पर हस्ताक्षर कर यह सिद्धान्त मान लिया है कि सब मिलकर शांति और अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा स्थापित रखेगें, और सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक मसलों को सुलझाने में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की वृद्धि करेंगे। पर अन्तर्राष्ट्रीय शांति को बनाए रखने की जिम्मेदारी सुरक्षा-परिषद् और विशेषकर पांच स्थायी महान् राष्ट्रों पर हैं। सुरक्षा-परिषद् को यह अधिकार है कि यदि कोई राष्ट्र शांति को भंग करे तब परिषद् सभी सदस्य-राष्ट्रों को सैनिक कार्रवाई करने की आज्ञा देगी, और कौन राष्ट्र कितनी सेना से मदद करेगा यह सुरक्षा परिषद् के अधीन संयुक्त सैनिक-अफसरों की कमीशन निश्चय करेगी। पर संयुक्त परिषद् के निर्णय के लिए पाँचों स्थायी सदस्यों का एकमत रहना जरूरी है। इसका मतलब यह है कि यदि कोई महान् राष्ट्र चाहे तो 'विटो' का प्रयोग कर संयुक्त परिषद् को पंगु बना सकता है। सोवियत् रूस ने विटो का सैकड़ों बार प्रयोग किया है। अमेरिका इसलिए विटो का अन्त करना चाहता है, पर यह असम्भव है क्योंकि इसके लिए भी सोवियत् रूस की सम्मति जरूरी है। अमेरिका ने असेम्बली को सुरक्षा-परिषद् के विरुद्ध अधिक शक्तिशाली बनाने की योजना रक्खी, पर यह भी सर्वमान्य नहीं हो सकी।

सुरक्षा परिषद्

'विटो' का आशय यह था कि किसी भी महान् राष्ट्र के विरुद्ध सामूहिक कार्रवाई करने का निर्णय न हो सके क्योंकि इसका मतलब होता युद्ध का श्रीगणेश। कोई भी महान् राष्ट्र अपने विरुद्ध कार्रवाई का सशस्त्र मुकाबिला अवश्य करेगा, यह निश्चित है। अतः 'विटो' की व्यवस्था का सैद्धान्तिक रूप से जो आलोचना की जाय, वस्तुस्थिति को ध्यान में रखते हुये यह जरूरी थी। संयुक्त-राष्ट्रसंघ की सफलता की

महान् राष्ट्रों में फूट

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

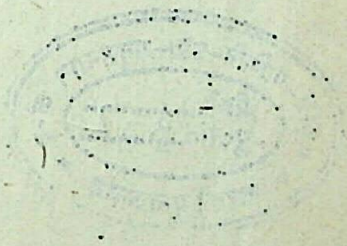

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिकामें अभिनय - कलाके अंकुर विद्यमान हैं। वह अपने किर-
दारोंकी जिन्दगीसे लेती है, कहानी
नहीं, क्योंकि उसकी जिन्दगी
बहुत बड़ी कहानी है।
...यायिक सिनेमाने उसे
...दिया, किन्तु वह
...ती थी, वैसी

...ट्डियो.

...नाले प्रकाशित

...काशी संस्करण

८ पृष्ठ, ४० पैसा

२०००) इनाम

दिनांक १२-२-१९८० की
रातको कर्णघण्टा मैदानसे मेरी
एम्बेसडर कार माडल-७६ नं०

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

अनिलकुमार मलहोत्रा, ... बलानाला, वाराणसी। फोन ६२७८१, ५२०१४ व ६२९२६

लखन... २४, ... कृपया ...

फाल्गुन २०३६ विक्रमी

मतदाता सूचियो... रीक्षणके लिए नयी...

नयी दिल्ली, १५ फरवरी (यू०) चुनाव आयोगने मतदाता सूचियोंके पुनरीक्षण तथा तैयारीके लिए एक नयी योजना बनायी है।

देशभरमें मतदाता सूचियोंमें संशोधनका काम आजसे शुरू हो गया है। पिछले लोकसभा चुनाव में मतदाता सूचियोंमेंसे बड़ी संख्यामें नाम निकाल दिये जानेकी शिकायतों को ध्यानमें रखते हुए यह कारवाई की जा रही है।

नयी योजनानुसार वर्तमान सूचियों त... एकमें ... सूचियां ... तैयार की...

नयी ... जानेके बा... प्रकाशित ... प्रकाशित ... इसपर ... जायेंगी ... सूचियां प्र...

साड़ियोंका नया पेट...

माल आ गया है...

अब केवल २ दिन ...

दामोंमें भारी ...

... इस्तीफा।—समाचार

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri